विषय-सूची

सुत्तसार-१

भूमिका

दीघनिकाय भाग - १

१. ब्रह्मजालसुत्त १
२. सामञ्ञफलसुत्त २
३. अम्बट्ठसुत्त ४
४. सोणदण्डसुत्त ७
५. कूटदन्तसुत्त ९
६. महालिसुत्त ११
७. जालियसुत्त १३
८. महासीहनादसुत्त १४
९. पोट्ठपादसुत्त १५
१०. सुभसुत्त १८
११. केवट्टसुत्त १९
१२. लोहिच्चसुत्त २०
१३. तेविज्जसुत्त २१

दीघनिकाय भाग - २

१. महापदानसुत्त २४
२. महानिदानसुत्त २७
३. महापरिनिब्बानसुत्त २९
४. महासुदस्सनसुत्त ३४

५. जनवसभसुत्त ३६
६. महागोविन्दसुत्त ३९
७. महासमयसुत्त ४२
८. सक्क पञ्हसुत्त ४२
९. महासतिपट्ठानसुत्त ४४
१०. पायासिराजञ्ञसुत्त ४७

दीघनिक ाय भाग - ३

१. पाथिक सुत्त ४८
२. उदुम्बरिक सुत्त ५०
३. चक्क वत्तिसुत्त ५२
४. अग्गञ्ञसुत्त ५५
५. सम्पसादनीयसुत्त ५७
६. पासादिक सुत्त ५९
७. लक्खणसुत्त ६१
८. सिङ्गालसुत्त ६२
९. आटानाटियसुत्त ६३
१०. संगीतिसुत्त ६४
११. दसुत्तरसुत्त ६५

मज्झिमनिक ाय भाग - १

१. मूलपरियायवग्ग ···································६६
१. मूलपरियायसुत्त ६६
२. सब्बासवसुत्त ६७
३. धम्मदायादसुत्त ६९
४. भयभेरवसुत्त ७०
५. अनङ्गणसुत्त ७२
६. आक ङ्खेय्यसुत्त ७४
७. वत्थसुत्त ७४

८. सल्लेखसुत्त ७६
९. सम्मादिट्ठिसुत्त ७८
१०. सतिपट्ठानसुत्त ८०

२. सीहनादवग्ग ८३

१. चूळसीहनादसुत्त ८३
२. महासीहनादसुत्त ८४
३. महादुक्खक्खन्धसुत्त. ८६
४. चूळदुक्खक्खन्धसुत्त. ८७
५. अनुमानसुत्त ८८
६. चेतोखिलसुत्त. ९०
७. वनपत्थसुत्त ९१
८. मधुपिण्डिक सुत्त. ९१
९. द्वेधावितक्क सुत्त. ९४
१०. वितक्क सण्ठानसुत्त ९५

३. ओपम्मवग्ग ९७

१. क क चूपमसुत्त ९७
२. अलगद्दूपमसुत्त ९८
३. वम्मीक सुत्त. १००
४. रथविनीतसुत्त १००
५. निवापसुत्त १०१
६. पासरासिसुत्त १०२
७. चूळहत्थिपदोपमसुत्त १०४
८. महाहत्थिपदोपमसुत्त १०६
९. महासारोपमसुत्त १०७
१०. चूळसारोपमसुत्त १०८

४. महायमक वग्ग १०९

१. चूळगोसिङ्गसुत्त. १०९

२. महागोसिङ्गसुत्त १०९
३. महागोपालक सुत्त ११०
४. चूळगोपालक सुत्त १११
५. चूळसच्चक सुत्त ११२
६. महासच्चक सुत्त ११४
७. चूळतण्हासङ्खयसुत्त ११६
८. महातण्हासङ्खयसुत्त ११७
९. महाअस्सपुरसुत्त ११८
१०. चूळअस्सपुरसुत्त ११९

५. चूळयमक वग्ग १२१

१. सालेय्यक सुत्त १२१
२. वेरञ्जक सुत्त १२२
३. महावेदल्लसुत्त १२२
४. चूळवेदल्लसुत्त १२३
५. चूळधम्मसमादानसुत्त १२३
६. महाधम्मसमादानसुत्त १२४
७. वीमंसक सुत्त १२५
८. कोसम्बियसुत्त १२५
९. ब्रह्मनिमन्तनिक सुत्त १२६
१०. मारतज्जनीयसुत्त १२८

मज्झिमनिकाय भाग - २

१. गहपतिवग्ग १३०

१. कन्दरक सुत्त १३०
२. अट्ठक नागरसुत्त १३१
३. सेखसुत्त १३१
४. पोतलियसुत्त १३२
५. जीवक सुत्त. १३३

६. उपालिसुत्त १३४
७. कुक्कुरवतिकसुत्त १३५
८. अभयराजकुमारसुत्त १३६
९. बहुवेदनीयसुत्त. १३७
१०. अपण्णकसुत्त १३८

२. भिक्खुवग्ग १३९

१. अम्बलट्ठिक राहुलोवादसुत्त १३९
२. महाराहुलोवादसुत्त. १३९
३. चूळमालुक्यसुत्त १४०
४. महामालुक्यसुत्त १४०
५. भद्दालिसुत्त १४१
६. लटुकिकोपमसुत्त १४३
७. चातुमसुत्त १४४
८. नळकपानसुत्त १४४
९. गोलियानिसुत्त १४५
१०. कीटागिरिसुत्त १४५

३. परिब्बाजक वग्ग १४७

१. तेविज्जवच्छगोत्तसुत्त १४७
२. अग्गिवच्छसुत्त. १४७
३. महावच्छसुत्त १४८
४. दीघनखसुत्त १४९
५. मागण्डियसुत्त १५०
६. सन्दकसुत्त. १५१
७. महासकुलुदायिसुत्त १५२
८. समणमुण्डिकसुत्त. १५३
९. चूळसकुलुदायिसुत्त १५४
१०. वेखनससुत्त १५५

४. राजवग्ग १५७

१. घटिकारसुत्त १५७

२. रट्ठपालसुत्त १५८

३. मघदेवसुत्त १५९

४. मधुरसुत्त १६०

५. बोधिराजकुमारसुत्त १६०

६. अङ्गुलिमालसुत्त १६२

७. पियजातिकसुत्त १६३

८. बाहितिकसुत्त १६४

९. धम्मचेतियसुत्त १६५

१०. कण्णकत्थलसुत्त १६६

५. ब्राह्मणवग्ग १६७

१. ब्रह्मायुसुत्त १६७

२. सेलसुत्त १६८

३. अस्सलायनसुत्त १६९

४. घोटमुखसुत्त १७०

५. चङ्कीसुत्त १७१

६. एसुकारीसुत्त १७१

७. धनञ्जानिसुत्त १७२

८. वासेट्ठसुत्त १७३

९. सुभसुत्त १७४

१०. सङ्गारवसुत्त १७५

मज्झिमनिकाय भाग - ३

१. देवदहवग्ग १७६

१. देवदहसुत्त १७६

२. पञ्चत्तयसुत्त १७७

३. किन्तिसुत्त १७८

४. सामगामसुत्त १७९
५. सुनक्खत्तसुत्त १८०
६. आनेञ्जसप्पायसुत्त १८१
७. गणक मोग्गल्लानसुत्त १८२
८. गोपक मोग्गल्लानसुत्त १८३
९. महापुण्णमसुत्त १८४
१०. चूळपुण्णमसुत्त १८५

२. अनुपदवग्ग ······································१८६

१. अनुपदसुत्त १८६
२. छब्बिसोधनसुत्त १८७
३. सप्पुरिसधम्मसुत्त १८७
४. सेवितब्बासेवितब्बसुत्त १८८
५. बहुधातुक सुत्त १८९
६. इसिगिलिसुत्त १९०
७. महाचत्तारीसक सुत्त १९०
८. आनापानसतिसुत्त १९१
९. क ायगतासतिसुत्त १९२
१०. सङ्खारुपपत्तिसुत्त १९३

३. सुञ्ञतवग्ग ······································१९४

१. चूळसुञ्ञतसुत्त १९४
२. महासुञ्ञतसुत्त १९४
३. अच्छरियअब्भुतसुत्त १९५
४. बाकु लसुत्त १९६
५. दन्तभूमिसुत्त १९६
६. भूमिजसुत्त १९७
७. अनुरुद्धसुत्त १९८
८. उपक्कि लेससुत्त १९९
९. बालपण्डितसुत्त २००

१०. देवदूतसुत्त २०१
४. विभङ्गवग्ग **२०३**
१. भद्देक रत्तसुत्त २०३
२. आनन्दभद्देक रत्तसुत्त २०३
३. महाक च्चानभद्देक रत्तसुत्त २०३
४. लोमसक ङ्गियभद्देक रत्तसुत्त २०४
५. चूळक म्मविभङ्गसुत्त २०४
६. महाक म्मविभङ्गसुत्त २०५
७. सळायतनविभङ्गसुत्त २०६
८. उद्देसविभङ्गसुत्त २०८
९. अरणविभङ्गसुत्त २०८
१०. धातुविभङ्गसुत्त २०९
११. सच्चविभङ्गसुत्त २१०
१२. दक्खिणाविभङ्गसुत्त २११
५. सळायतनवग्ग **२१२**
१. अनाथपिण्डिक ोवादसुत्त २१२
२. छन्नोवादसुत्त २१२
३. पुण्णोवादसुत्त २१४
४. नन्दक ोवादसुत्त २१४
५. चूळराहुलोवादसुत्त २१५
६. छछक्क सुत्त. २१५
७. महासळायतनसुत्त २१७
८. नगरविन्देय्यसुत्त २१८
९. पिण्डपातपारिसुद्धिसुत्त २१८
१०. इन्द्रियभावनासुत्त २१९

भूमिका

'सुत्तसार' में 'सुत्त पिटक' के सुत्तों का सार है।

भगवान बुद्ध की वाणी तीन पिटकों में सुरक्षित है –विनय पिटक ,सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक ।'विनय पिटक' में अधिकतर भिक्षुओं-भिक्षुणिओं के लिए विनय का विधान है, 'सुत्त पिटक' में सामान्य साधकों के लिए दिये गये उपदेशों का संग्रह है और 'अभिधम्म पिटक' में विपश्यना साधना में खूब पके हुए साधकों के लिए गूढ़ धर्मोपदेश हैं।

बुद्ध-वाणी में 'सुत्त पिटक' का विशेष महत्त्व है क्योंकि सबसे अधिक सामग्री इसी पिटक में है और हर किसी के लिए उपयोगी भी। विपश्यना साधना सिखाते समय विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्काजी भी इसी पिटक के उद्धरण दे-देकर धर्म समझाते हैं। अभिधम्म पिटक समझने के लिए भी सुत्त पिटक को जानने की जरूरत होती है जैसे छत पर जाने के लिए सीढ़ी की।

सम्यक संबुद्ध की वाणी का एक-एक शब्द सारगर्भित होता है। उसमें से सार निकालना अपने आपको धोखा देना है। अतः किसी भी पाठक के मन में यह भाव कदापि नहीं जागना चाहिए कि सार की बातें छांट-छांट कर यहां प्रस्तुत कर दी गयी हैं और बाकी सब कुछ निःसार है।

यह 'सुत्तसार' सुत्तों का सार इस मायने में है कि सुत्त पिटक में जो कुछ वर्णित है उसका यह स्थूल रूप में अविकल (बिना अपनी ओर से कुछ जोड़े-तोड़े) प्रस्तुतीकरण है। इस सार की तुलना उस बयार से की जा सकती है जो रंग-बिरंगे, सुगंधित पुष्पों के बीच में से लांघ कर मात्र उनकी सुगंध अपने साथ हर ले जाती है। यह 'सुत्तसार' भी भगवान के चित्र-विचित्र, निर्वाण की गंध से सुवासित उपदेशों का एक हल्का-सा **परिचयमात्र** है।

वस्तुतः यह ग्रंथ कोई नयी कृति नहीं है। विपश्यना विशोधन विन्यास द्वारा मूल रूप में प्रकाशित 'सुत्त पिटक' के हर ग्रंथ के साथ उसमें सम्मिलित सुत्तों का सार उनमें दिया गया है। आचार्य श्री सत्यनाराणजी गोयन्का के आदेशानुसार

यह सार इसलिए तैयार किया गया था कि साधक पहले इन्हें पढ़ कर फिर सुत्तों को पढ़ें, तो इससे सुत्त और अधिक अच्छी तरह समझ में आने लगेंगे।

अब आचार्यश्री सत्यनारायणजी गोयन्का ने यह उचित समझा है कि यदि ये सभी सुत्तसार स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिये जायँ तो एक अतिरिक्त लाभ यह होगा कि साधकगण जनभाषा के माध्यम से बुद्ध-वाणी को टुकड़ों-टुकड़ों में ही नहीं, बल्कि समग्र रूप से भी सुगमतापूर्वक समझने लगेंगे। आचार्यश्री के इसी चिंतन के फलस्वरूप यह कृति प्रस्तुत की जा रही है।

वर्तमान ग्रंथत्रय केवल सुत्तपिटक के सुत्तों का सार हैं जो कि पाठकों की सुविधा के लिए तीन भागों में प्रकाशित हो रहे हैं। इसके पहले भाग में दीघ एवं मज्झिम निकायों का, दूसरे में संयुत्त निकाय का और तीसरे में अंगुत्तर एवं खुद्दक निकायों का समावेश है।

जब सुत्तसार तैयार किये जा रहे थे, तब विपश्यना विशोधन विन्यास के उद्भट विद्वान डॉ. अंगराज चौधरी ने इनका निरूपण कर इनमें समुचित सुधार किये थे। इसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूं।

हमें विश्वास है कि इस कृति से विपश्यी साधकों को धर्म के अनेक अनजाने पक्षों की जानकारी मिलने के अतिरिक्त बुद्ध-वाणी को मूल रूप में पढ़ने की प्रेरणा भी मिलेगी।

सभी साधकगण के प्रति मंगल भावों सहित,

स. ना. टंडन

दीघनिकाय भाग - १

१. ब्रह्मजालसुत्त

इस सुत्त का आरंभ राजगह और नाळन्दा के बीच के रास्ते पर भिक्षु-संघ के साथ भगवान बुद्ध की यात्रा के साथ होता है।

सुप्पिय परिव्राजक और उसके शिष्य ब्रह्मदत्त में बुद्ध, धर्म और संघ को लेकर वाद-विवाद चल रहा है। एक इनकी निंदा करता है तो दूसरा प्रशंसा।

इस प्रसंग को लेकर भगवान भिक्षुओं को समझाते हैं कि यदि कोई व्यक्ति बुद्ध, धर्म और संघ की निंदा करे तो उससे न तो वैर, न असंतोष और न चित्त में कोप करे। ऐसा करने से अपनी ही हानि होती है। बल्कि सच्चाई का पता लगाना चाहिए कि जो कुछ कहा जा रहा है वह ठीक है या नहीं। ऐसे ही यदि कोई व्यक्ति बुद्ध, धर्म और संघ की प्रशंसा करे तो उससे न तो आनंदित, न प्रसन्न और न हर्षोत्फुल्ल होना चाहिए। ऐसा करने से अपनी ही हानि होती है। बल्कि सच्चाई का पता लगाना चाहिए कि जो कुछ कहा जा रहा है वह ठीक है या नहीं।

तदुपरांत भगवान यह समझाते हैं कि अज्ञानी लोग तथागत की प्रशंसा छोटे या बड़े गौण शीलों के लिए करते हैं जब कि उनकी प्रशंसा उन गूढ़ धर्मों के लिए की जानी चाहिए जिन्हें वे स्वयं जान कर और साक्षात्कार कर प्रज्ञप्त किया करते हैं। इस प्रसंग में वे अपने समय में प्रचलित बासठ प्रकार की मिथ्या धारणाओं (दार्शनिक मतों) पर प्रकाश डालते हैं। इनमें से कुछ तो आत्मा और लोक के 'आदि' को और अन्य इनके 'अंत' को लेकर प्रचलित थीं। इनको उन्होंने क्रमशः 'पूर्वांतकल्पिक' और 'अपरांतकल्पिक' की संज्ञा दी है।

'पूर्वांतकल्पिक' धारणाओं के अंतर्गत ऐसी मान्यताएं बतलायी गयी हैं जैसे आत्मा और लोक नित्य हैं, आत्मा और लोक अंशतः नित्य और अंशतः अनित्य हैं, लोक अंतवान अथवा अनंत है, आत्मा और लोक बिना कारण उत्पन्न होते हैं,

इत्यादि। इन वादों को प्रज्ञप्त करने वाले लोग इन्हें या तो अपनी अधूरी चित्त-समाधि के बल पर अथवा केवल तर्कों के आधार पर प्रज्ञप्त किया करते हैं।

'अपरांतकल्पिक' धारणाओं के अंतर्गत ऐसी मान्यताएं बतलाई गई हैं जैसे मरने के बाद भी आत्मा संज्ञी (अर्थात, होश वाली) बनी रहती है, मरने के बाद आत्मा अ-संज्ञी (अर्थात, बिना होश वाली) हो जाती है, मरने के बाद आत्मा न संज्ञी रहती है न अ-संज्ञी, आत्मा का पूर्ण उच्छेद हो जाता है, इत्यादि।

भगवान ने स्पष्ट किया है कि मिथ्या धारणाओं का पोषण करने वाले व्यक्ति सदा इंद्रिय-क्षेत्र में बने रहते हैं। इनकी छहों इंद्रियों पर उनके विषयों का स्पर्श होते रहने से वे वेदनाओं को अनुभव करते रहते हैं और इन वेदनाओं के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण आसक्ति, आसक्ति के कारण भव, भव के कारण जन्म और जन्म के कारण बुढ़ापा, मृत्यु, शोक ,विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और क्षोभ की अवस्थाओं में से गुजरते रहते हैं। ये इंद्रिय-क्षेत्र से परे की बात नहीं जानते।

केवल वही व्यक्ति जो वेदनाओं के उदय-व्यय, आस्वाद, दुष्परिणाम और इनके चंगुल से बाहर निकलने के उपाय को प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानते हैं, निर्वाण-लाभ कर मिथ्या धारणाओं से परे की बात को जान पाते हैं।

यही कारण है कि नाना प्रकार के वाद स्थापित करने वाले लोग वेदनाओं की यथाभूत जानकारी न होने से हमेशा इंद्रिय-क्षेत्र में बने रहने के कारण तालाब की मछलियों के समान मानों एक बृहज्जाल (ब्रह्मजाल) में फँसे रहते हैं।

२. सामञ्ञफलसुत्त

एक समय भगवान जीवक कोमारभच्च के आम्रवन में एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ विहार कर रहे थे। उन्हीं दिनों मगध-नरेश अजातसत्तु ने वहां आकर भगवान से यह प्रश्न किया कि जैसे भिन्न-भिन्न कलाओं से लोग इसी जीवन में प्रत्यक्ष जीविका कमा कर अपने आप को सुखी करते हैं, क्या इसी प्रकार श्रामण्य (अर्थात, भिक्षु होने) का फल भी प्रत्यक्ष फलदायक बतलाया जा सकता है?

यह सुन कर भगवान ने सर्वप्रथम राजा से ही पूछ लिया कि यदि कोई आपके प्रजा-जन अपनी पुण्य-पारमी बढ़ाने के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जायं तो उनके प्रति आपकी धारणा कैसी होगी? इस पर राजा ने कहा कि हम उनका अभिवादन करेंगे, उनकी सेवा करेंगे, उनको आसन देंगे।

यह सुन कर भगवान ने कहा कि श्रामण्य का यह फल तो प्रत्यक्ष हुआ। परंतु इससे भी कहीं सुंदर और उत्तम सांदृष्टिक (अर्थात, आंखो-देखे) फल हुआ करते हैं।

तब भगवान ने उन्हें विस्तार से समझाया कि संसार में जब कभी कोई तथागत उत्पन्न होता है तब वह अरहंत अवस्था पर पहुँचा हुआ, सम्यक सम्बुद्ध, विद्या और आचरण में संपन्न, अच्छी गति वाला, लोकों का जानकार, श्रेष्ठ, लोगों को रास्ते पर लाने वाला, देवों और मनुष्यों का शास्ता होकर अपने ही प्रयत्नों से सारे लोकों का साक्षात्कार कर ऐसे धर्म का उपदेश देता है जो आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी तथा अंत में कल्याणकारी होता है। ऐसे धर्म को सुन कर कोई भी गृहपति श्रद्धावान हो घर-बार त्याग कर प्रव्रजित हो जाता है और उनके द्वारा उपदिष्ट ब्रह्मचर्य का पालन करने में जुट जाता है। इसमें पुष्ट होने के लिए वह शील पालन करता है, इंद्रियों को वश में करता है, स्मृति और संप्रज्ञान बनाये रखता है और मात्र चीवर तथा पिंडपात से संतुष्ट रहता है। तत्पश्चात वह किसी निर्जन स्थान पर जा कर पालथी मार, शरीर को सीधा रख, मुख के इर्द-गिर्द जागरूक हो ध्यानावस्थित होने का उपक्रम करता है और ऐसा करता हुआ अपने चित्त से पांचों नीवरणों को दूर कर लेता है। यह नीवरण दूर होते ही उसे अपने भीतर उत्तरोत्तर प्रमोद, प्रीति, प्रश्रब्धि और सुख की अनुभूति होने लगती है। इसके फलस्वरूप उसका चित्त समाहित होने लगता है।

यह स्थिति आने पर नाना प्रकार के श्रामण्य-फल प्रकट होने लगते हैं जो पूर्व में कहे गए श्रामण्य-फल से कहीं बढ़-चढ़ कर होते हैं। इस प्रकार श्रमण प्रथम ध्यान से लेकर चतुर्थ ध्यान को, उत्तरोत्तर, प्राप्त कर इनमें विहार करने लगता है। इस अवस्था पर पहुँच कर उसका चित्त नितांत शुद्ध, निष्पाप, क्लेश-रहित, मृदु, मनोरम और निश्चल हो जाता है। तब यह भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के लिए नवाने योग्य हो जाता है जिससे इन ध्यानों से भी बढ़ कर श्रामण्य-फल अनुभव में आने लगते हैं।

चित्त को ज्ञान-दर्शन के लिए नवाने पर प्रज्ञापूर्वक यह जानकारी होने लगती है कि चार महाभूतों से बना हुआ यह शरीर पूरी तरह अनित्यता से ग्रस्त है, यह विज्ञान उससे आबद्ध है। ऐसे ही इसे मनोमय शरीर के निर्माण, ऋद्धियों की प्राप्ति, दिव्य श्रोत्र, परचित्तज्ञान, पूर्वजन्मों की स्मृति तथा प्राणियों की च्युति और उत्पाद को जानने के लिए भी नवाया जा सकता है। परंतु जब इसे आस्रवों

(चित्त-मलों) के क्षय के ज्ञान के लिए नवाया जाता है तब श्रमण यह प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है कि यह दु:ख है, यह दु:ख का समुदय है, यह दु:ख का निरोध है और यह दु:ख का निरोध कराने वाला मार्ग है। वह यह भी प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है कि ये आस्रव हैं, यह आस्रवों का समुदय है, यह आस्रवों का निरोध है और यह आस्रवों का निरोध करवाने वाला मार्ग है। इस प्रकार जानते-देखते उसका चित्त कामास्रवों से भी मुक्त हो जाता है, भवास्रवों से भी, अविद्यास्रवों से भी। तब उसे यह प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है – 'मैं मुक्त हो गया! मैं मुक्त हो गया!!' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है'।

भगवान ने कहा कि इससे बढ़ कर और कोई श्रामण्य-फल होता नहीं है।

३. अम्बट्ठसुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ कोसल देश के इच्छानंगल ब्राह्मणग्राम में विहार करते थे। उस समय पोक्खरसाति नाम के धनाढ्य ब्राह्मण को यह जानने की इच्छा हुई कि उनके बारे में जो यह ख्याति फैल रही है कि वे अरहंत, सम्यक सम्बुद्ध, विद्याचरणसंपन्न, अच्छी गति वाले, लोकों के जानकार, सर्वश्रेष्ठ, लोगों को राह पर लाने वाले सारथि, देवों और मनुष्यों के शास्ता, बुद्ध भगवान हैं, इत्यादि – यह कहां तक सही है।

इस कार्य के लिए पोक्खरसाति ने विद्वत्ता में अपने समान अम्बट्ठ नाम के अपने शिष्य को भेजा। शिष्य द्वारा यह पूछे जाने पर कि मुझे यह कैसे मालूम होगा कि भगवान की ख्याति सही है अथवा नहीं, उसने बतलाया कि मंत्रों के अनुसार महापुरुषों के बत्तीस शरीर लक्षण होते हैं। यदि वे घर में रहते हैं तो चक्रवर्ती राजा बनते हैं और घर त्याग दें तो सम्यक सम्बुद्ध होते हैं।

तब अम्बट्ठ अन्य बहुत से माणवकों के साथ जहां भगवान बुद्ध थे वहां गया और वहां पहुँच कर उनसे अशिष्टतापूर्ण बातें करने लगा और शाक्यों पर भी अनुचित आक्षेप करने लगा। जब भगवान ने उसका ध्यान उसके अशिष्ट व्यवहार की ओर आकर्षित किया, तब वह बोला –'हे गौतम! जो मुंडक, श्रमण, इभ्य (नीच), काले, ब्रह्मा के पैर की संतान हैं, उनके साथ ऐसे ही कथा-संलाप किया जाता है जैसा कि मेरा आप गौतम के साथ हुआ है'।

इस पर भगवान ने अम्बट्ठ को उसके अपने गोत्र 'कण्हायन' का इतिहास बतलाते हुए यह सिद्ध कर दिया कि वह शाक्यों के पूर्व-पुरुष राजा ओक्काक के दासी-पुत्र 'कण्ह' का वंशज है। यह जान कर अम्बट्ठ के साथ आए हुए माणवक कोलाहल करने लगे – 'अम्बट्ठ दुर्जात है, अकुलीन है, शाक्यों का दासी-पुत्र है, शाक्य अम्बट्ठ के आर्यपुत्र होते हैं, इत्यादि।'

जब भगवान ने देखा कि माणवक अम्बट्ठ को 'दासीपुत्र, दासीपुत्र' कह कर बहुत लजा रहे हैं तब उन्होंने उसको इससे छुड़ाने के लिए माणवकों से कहा कि अम्बट्ठ को अधिक मत लजाओ, यह 'कण्ह' एक ऋद्धि-संपन्न महान ऋषि थे। उन्होंने उनको इसकी कथा भी सुनायी।

तत्पश्चात भगवान ने अम्बट्ठ को जातिवाद के मिथ्या अभिमान को छोड़ देने का परामर्श देते हुए कहा –"अम्बट्ठ! जहां आवाह-विवाह होता है वहीं पर यह कहा जाता है 'तू मेरे योग्य है', 'तू मेरे योग्य नहीं है'। वहीं यह जातिवाद, गोत्रवाद, मानवाद भी चलता है 'तू मेरे योग्य है', 'तू मेरे योग्य नहीं है'। अम्बट्ठ! जो कोई जातिवाद में फँसे हैं, गोत्रवाद में फँसे हैं, मानवाद में फँसे हैं, आवाह-विवाह में फँसे हैं, वे अनुपम 'विद्या' और 'चरण' की संपदा से दूर हैं। अम्बट्ठ! जातिवाद, गोत्रवाद, मानवाद और आवाह-विवाह के बन्धन छोड़ कर ही अनुपम 'विद्या' और 'चरण' की संपदा का साक्षात्कार किया जाता है।"

अम्बट्ठ द्वारा यह पूछे जाने पर कि 'विद्या' और 'चरण' क्या होते हैं, भगवान ने उसे समझाया कि संसार में जब कभी कोई तथागत उत्पन्न होता है तब उसके द्वारा प्रतिपादित धर्म को सुन कर कोई गृहपति श्रद्धावान हो, घर-बार त्याग, प्रव्रज्या ग्रहण कर, शील-पालन, इंद्रियों के वशीकरण और स्मृति-संप्रज्ञान के सतत अभ्यास में लगा रह कर संतुष्टि को प्राप्त होता है और तत्पश्चात नीवरणों को दूर कर प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है तो यह 'चरण' के अंतर्गत आता है। ऐसे ही द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ ध्यान। इनमें से भी प्रत्येक 'चरण' के अंतर्गत आता है।

फिर जब वह गृहपति समाहित, शुद्ध तथा क्लेश-रहित चित्त से विपश्यना का ज्ञान प्राप्त करता है, वह 'विद्या' के अंतर्गत आता है। ऐसे ही चित्त से मनोमय शरीर का निर्माण करना, ऋद्धियों को अनुभव करना, दिव्य श्रोत्र प्राप्त करना, परचित्तज्ञान, पूर्वजन्मों की स्मृति, प्राणियों की च्युति और उत्पाद का ज्ञान तथा

आस्रवों के क्षय का ज्ञान – ये सब के सब एक-एक करके 'विद्या' के अंतर्गत आते हैं।

ऐसा भिक्षु 'विद्यासंपन्न' भी कहलाता है, 'चरणसंपन्न' भी, और 'विद्याचरणसंपन्न' भी। इस 'विद्यासंपदा' और 'चरणसंपदा' से बढ़ कर कोई 'विद्या-संपदा' अथवा 'चरण-संपदा' नहीं होती है।

इधर अम्बट्ठ माणवक ने भगवान के चंक्रमण करते हुए उनके शरीर पर महापुरुषों के बत्तीसों लक्षण देख लिये। तत्पश्चात वह भगवान की अनुमति प्राप्त कर अपने आचार्य पोक्खरसाति के पास चला आया।

पोक्खरसाति को उसने भगवान के साथ हुए अपने संलाप का ब्यौरा दिया और यह भी कहा कि भगवान की जो ख्याति फैल रही है वह सही है क्योंकि मैंने उनके शरीर पर विद्यमान बत्तीसों महापुरुष-लक्षण देख लिये हैं।

पोक्खरसाति ने अम्बट्ठ माणवक को भगवान के साथ अभद्रतापूर्ण आचरण करने के लिए बुरा-भला कहा और उसे अपने पास से दूर हटाया।

अगले दिन पोक्खरसाति स्वयं भगवान के दर्शनार्थ गया और अम्बट्ठ के बाल-व्यवहार के लिए उनसे क्षमा-याचना की। भगवान ने अम्बट्ठ के सुखी होने का आशीर्वचन कहा।

पोक्खरसाति ने भी भगवान के शरीर पर बत्तीसों महापुरुष-लक्षण देख लिये। तत्पश्चात उसने भिक्षु-संघ सहित भगवान को भोजन के लिए आमंत्रित किया। भोजन करवा चुकने के पश्चात वह भगवान के पास एक नीचे आसन पर बैठ गया।

तब भगवान ने उसे आनुपूर्वी कथा कही जैसे कि दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा; भोगों के दुष्परिणाम; अपकार, मलिनकरण; और गृह त्यागने के माहात्म्य को प्रकाशित किया। जब भगवान ने पोक्खरसाति को उपयुक्त-चित्त, मृदु-चित्त, आवरणरहित-चित्त, उद्गत-चित्त (प्रसन्न-चित्त) जान लिया तब उसे बुद्धों का स्वयं जाना हुआ धर्मोपदेश – दुःख-समुदय-निरोध-मार्ग – प्रकाशित किया। तत्पश्चात जैसे धवल, निर्मल वस्त्र को रंग अच्छी तरह पकड़ लेता है, वैसे ही पोक्खरसाति को उसी आसन पर बैठे-बैठे विरज, विमल, धर्मचक्षु –'जो कुछ उत्पन्न होने वाला (समुदयधर्मा) है, वह सब कुछ नाशवान (निरोधधर्मा) है' – उत्पन्न हुआ।

तदुपरांत पोक्खरसाति ब्राह्मण ने अपने पुत्र, भार्या, परिषद तथा अमात्यों के साथ भगवान की शरण ग्रहण की, और धर्म तथा भिक्षु-संघ की भी।

४. सोणदण्डसुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ अङ्ग देश में विचरते हुए चम्पा पहुँचे और वहां गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर विहार करने लगे।

उस समय सोणदण्ड नाम का ब्राह्मण मगधराज बिम्बिसार द्वारा प्रदत्त चम्पा का स्वामी हो कर रहता था। अन्य ब्राह्मणों के साथ भगवान के दर्शनार्थ जाने का उसका मन हुआ परंतु कुछ एक ब्राह्मणों ने उसे वहां जाने के लिए हतोत्साहित किया और अनेक प्रकार की युक्तियां देते हुए कहा कि श्रमण गौतम को ही उसके दर्शनार्थ आना चाहिए। इस पर सोणदण्ड ने उनकी युक्तियों का खंडन करते हुए, भगवान के कितने ही अन्य गुणों का बखान करते हुए यह भी कहा कि वे आर्यशीलयुक्त, काम-राग-रहित, महापुरुष के शरीर लक्षणों से युक्त, चारों परिषदों से सम्मानित, अनुपम विद्या और आचरण के कारण यशस्वी और चम्पा में आने के कारण हमारे अतिथि हैं। उनकी जितनी प्रशंसा की जाये, वह कम है। अतः मुझे ही भगवान के दर्शनार्थ जाना चाहिए।

तत्पश्चात वह ब्राह्मण-जन के साथ गग्गरा पुष्करिणी गया। वहां भगवान ने उससे यह प्रश्न पूछा कि ब्राह्मण लोग कितने अंगों से युक्त पुरुष को 'ब्राह्मण' कहते हैं। इस पर सोणदण्ड ने उत्तर दिया कि ब्राह्मण लोग पांच अंगों से युक्त पुरुष को 'ब्राह्मण' कहते हैं। ये अंग हैं –(१) वह माता और पिता –दोनों ओर से सुजात, सात पीढ़ी तक संशुद्ध, और जाति के मामले में सर्वथा दोषरहित हो। (२) वह वेदपाठी; मंत्रधर; निघंटु; कैटभ, शिक्षा, अक्षरप्रभेद एवं इतिहास-सहित तीनों वेदों में पारंगत; पदक; वैयाकरण तथा लोकायत एवं महापुरुष-लक्षणों का जानकार हो। (३) गौर-वर्ण, सुंदर एवं दर्शनीय हो। (४) शील में खूब पुष्ट हो। (५) पंडित, मेधावी, यज्ञ-दक्षिणा ग्रहण करने वालों में प्रथम या द्वितीय हो।

तब भगवान द्वारा यह पूछा गया कि क्या इन पांच अंगों में से किन्हीं अंगों को छोड़ देने पर भी कोई पुरुष 'ब्राह्मण' कहला सकता है? इस पर सोणदण्ड ने एक-एक करके वर्ण, मंत्र और जाति को नकारते हुए कहा कि शील और मेधा (याने प्रज्ञा) इन दो अंगों से युक्त पुरुष को भी 'ब्राह्मण' कह सकते हैं। अपने इस कथन की पुष्टि में उसने अपने भांजे अंगक का उदाहरण देते हुए कहा कि

वह वर्णवान, मंत्रधर और जाति के मामले में सर्वथा दोषरहित है; परंतु यदि वह हिंसा, चोरी, परस्त्रीगमन, असत्यभाषण और मद्यपान –यह सभी कुछ करता हो तो ऐसे में वर्ण, मंत्र और जाति का क्या महत्व है?

भगवान द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या उपरोक्त दो अंगों में से किसी एक को छोड़ देने पर भी कोई पुरुष 'ब्राह्मण' कहला सकता है, सोणदण्ड ने कहा – नहीं। प्रज्ञा शील से प्रक्षालित है और शील प्रज्ञा से। जहां शील है वहां प्रज्ञा है; जहां प्रज्ञा है वहां शील है। शीलवान को प्रज्ञा होती है, प्रज्ञावान को शील। शील और प्रज्ञा को संसार में अगुआ बतलाया जाता है। यह ऐसे ही है जैसे कोई हाथ से हाथ धोए, पैर से पैर।

भगवान ने इसका अनुमोदन किया पर यह पूछ लिया कि 'शील' क्या होता है और 'प्रज्ञा' क्या होती है। इस पर सोणदण्ड ने कहा कि हम तो इतना भर ही जानते हैं। अच्छा हो यदि भगवान ही इस पर प्रकाश डालें।

तब भगवान ने कहा कि संसार में जब कभी कोई तथागत उत्पन्न होता है और कोई व्यक्ति उसके द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान होकर तीनों प्रकार के शीलों का पालन करने लगता है, तब वह 'शीलसंपन्न' हो जाता है। फिर इंद्रियों को वश में कर, हर अवस्था में स्मृतिमान और संप्रज्ञानी रह, संतुष्ट हुआ हुआ, अपने चित्त से पांचों नीवरणों को दूर कर समाहित चित्त से उत्तरोत्तर चारों ध्यानों का अभ्यास कर (विपश्यना) ज्ञान के लिए अपने चित्त को नवाता है, तो यह 'प्रज्ञा' होती है। ऐसे ही जब वह चित्त को आस्रवों के क्षय के ज्ञान के लिए नवाता है और इसके फलस्वरूप यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है', तो यह 'प्रज्ञा' ही है।

यह सुन कर भाव-विभोर हो सोणदण्ड ने भगवान से कहा कि आप मुझे अपना अंजलिबद्ध शरण में आया हुआ उपासक स्वीकार करें और भिक्षु-संघ सहित मेरे यहां कल का भोजन स्वीकार करें।

अगले दिन भोजन हो चुकने पर सोणदण्ड ने भगवान से कहा कि यदि मैं परिषद में बैठे हुए आसन से उठ कर आपका अभिवादन करूं तो परिषद मेरा तिरस्कार करेगी जिससे मेरा यश क्षीण होगा और यश क्षीण होने से भोग क्षीण होगा। हमें यश से ही भोग मिलते हैं। अतः यदि मैं परिषद में बैठे हुए हाथ जोड़ूं

तो इसे आप मेरा खड़ा होना जानें। यदि मैं परिषद में बैठा हुआ अपना साफा हटाऊं तो उसे आप मेरा सिर से किया गया अभिवादन मानें। ऐसे ही यदि यान में बैठे हुए मैं कोड़ा ऊपर उठाऊं तो उसे आप मेरा यान से उतरना मानें और यदि मैं यान में बैठा हुआ हाथ उठाऊं तो उसे आप मेरा सिर से किया गया अभिवादन स्वीकार करें।

५. कूटदन्तसुत्त

एक समय भगवान भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ मगध देश के खाणुमत ब्राह्मणग्राम में अम्बलट्ठिका में विहार करते थे। उस समय कूटदन्त नाम का ब्राह्मण मगधराज बिम्बिसार द्वारा प्रदत्त खाणुमत का स्वामी होकर रहता था। भगवान के पास जाकर उसने कहा कि मैं एक महायज्ञ करना चाहता हूं, मैं सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-संपदा को नहीं जानता, मुझे इसका उपदेश करें।

इस पर भगवान ने कहा कि पूर्वकाल में महाविजित नाम का एक अत्यंत वैभवशाली राजा था। वह भी पृथ्वीमंडल का शासक होकर एक महायज्ञ करना चाहता था। उसने अपने पुरोहित ब्राह्मण को बुलाया और उसे इस बारे में सीख देने के लिए कहा।

पुरोहित ने राजा से कहा आपके राज्य में बहुत लूटमार होती है। पहले इसे शांत करना चाहिए। इसके लिए आप को कृषि एवं गो-रक्षा में उत्साह रखने वालों को बीज-भोजन, वाणिज्य में उत्साह रखने वालों को पूंजी, राजकार्य में उत्साह रखने वालों को भत्ता-वेतन देना चाहिए। इससे ये लोग अपने-अपने काम में लगे हुए आपके जनपद को सतायेंगे नहीं। आपको भी विपुल राशि प्राप्त होगी। आपका देश कंटक-रहित और क्षेम-युक्त हो जायेगा। राजा ने ऐसा ही किया और कालांतर में पुरोहित को बुला कर कहा कि मेरा देश कंटक-रहित और क्षेम-युक्त हो गया है।

तब पुरोहित ने राजा को यज्ञ-संपदा के सोलह परिष्कारों के बारे में बतलाया –

१. **चार अनुमति-पक्ष** : यज्ञ करने के बारे में राज्य के क्षत्रियों, अमात्यों, ब्राह्मण महाशालों तथा धनी वैश्यों की अनुमति प्राप्त करना।

२. **राजा के आठ गुण** : सुजात, अभिरूप, शीलवान, सु-संपन्न, चतुरंगिणी सेना से युक्त, दानपति, बहुश्रुत तथा मेधावी होना।

३. **पुरोहित के चार गुण** : सुजात, त्रैविद्य, शीलवान तथा मेधावी होना।

तत्पश्चात पुरोहित ने राजा को तीन विधियों का उपदेश दिया। उसने कहा कि यज्ञ करने से पहले, यज्ञ करते समय और यज्ञ कर चुकने पर यह ग्लानि नहीं होनी चाहिए कि एक बड़ी धनराशि व्यय हो जायेगी, व्यय हो रही है अथवा व्यय हो गयी।

तदनंतर पुरोहित ने यज्ञ करने से पूर्व ही राजा के हृदय से दान लेने वालों के प्रति उत्पन्न होने वाले दस प्रकार के चित्त-विकारों को दूर किया और यज्ञ करते समय उसके चित्त का सोलह प्रकार से समुत्तेजन-संप्रहर्षण किया।

उस यज्ञ में न तो गायें मारी गयीं, न बकरे-भेड़े, न मुर्गे-सूअर, न नाना प्रकार के प्राणी । न यूप के लिए वृक्ष काटे गये, न वेदी पर बिछाने के लिए दर्भ। जो काम करने वाले नौकर-चाकर थे उन्होंने भी दंड-तर्जित, भय-तर्जित हो, आंसू बहाते, रोते हुए सेवा नहीं की। जिसने जो चाहा वही किया, जो नहीं चाहा वह नहीं किया। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, खांड से वह यज्ञ संपन्न हुआ।

भगवान ने यह भी बतलाया कि उस यज्ञ का याजयिता पुरोहित मैं ही था।

कूटदन्त द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या इस सोलह परिष्कार वाली त्रिविध यज्ञ-संपदा से कम सामग्री और कम क्रिया वाला, किन्तु महाफलदायी, कोई यज्ञ होता है, भगवान ने कहा – हां।

तत्पश्चात उन्होंने उसे एक-से-एक उत्तम, प्रणीततर यज्ञों के बारे में बतलाया –

१. **दान-यज्ञ** – वे नित्य-दान जो प्रत्येक कुल में सदाचारी प्रव्रजितों को दिये जाते हैं।

२. **त्रिशरण-यज्ञ** – यह जो प्रसन्नचित्त हो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जाना है।

३. **शिक्षापद-यज्ञ** – यह जो प्रसन्नचित्त हो शिक्षापदों का ग्रहण करना है (अर्थात, जीवों की अ-हिंसा, अ-स्तेय, अ-व्यभिचार, अ-मृषावाद, नशे-पते से विरति)।

४. **शील-यज्ञ –** जब संसार में तथागत के उत्पन्न होने पर उनके द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान होकर कोई व्यक्ति चूळ, मज्झिम और महा इन तीनों प्रकार के शीलों का पालन करके शीलसंपन्न हो जाता है।

५. **समाधि-यज्ञ –** जब कोई व्यक्ति इंद्रियों को वश में कर, हर अवस्था में स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बना रह, संतुष्ट हुआ, अपने चित्त से नीवरणों को दूर कर, समाहित चित्त से उत्तरोत्तर प्रथम से चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है।

६. **प्रज्ञा-यज्ञ –** जब कोई व्यक्ति अपने समाहित हुए मृदु, निर्मल चित्त को (विपश्यना) ज्ञान के लिए तथा आस्रवों के क्षय के ज्ञान के लिए नवाता है जिससे वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्य पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे करने को कुछ रहा नहीं।' इस यज्ञ-संपदा से बढ़ कर कोई दूसरी यज्ञ-संपदा नहीं है।

यह सुन कर कूटदन्त ब्राह्मण ने भगवान से कहा आप मुझे अंजलिबद्ध शरण में आया हुआ उपासक स्वीकार करें। भगवान ने उसे आनुपूर्वी कथा कही जैसे कि दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा; भोगों के दुष्परिणाम, अपकार, मलिनकरण; और गृह त्यागने के माहात्म्य को प्रकाशित किया। जब उन्होंने उसे उपयुक्त-चित्त, मृदु-चित्त, आवरणरहित-चित्त, उद्गत-चित्त जाना तब जो बुद्धों का स्वयं अनुभूत धर्मोपदेश है – दुःख, समुदय, निरोध, मार्ग – उसे प्रकाशित किया। जैसे धवल, निर्मल वस्त्र को रंग अच्छी तरह पकड़ लेता है वैसे ही कूटदन्त ब्राह्मण को उसी आसन पर, यह विरज, विमल धर्मचक्षु प्राप्त हुआ कि जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह नाशवान है।

६. महालिसुत्त

एक समय वेसाली में महावन की कूटागारशाला में भगवान विहार करते थे। उस समय लिच्छवी सरदार ओट्ठद्ध ने उनसे कहा कि सुनक्खत्त नाम के लिच्छवि-पुत्र ने मुझे बतलाया था कि मैं लगभग तीन वर्ष तक भगवान के पास रहा जिससे मैं मन को लुभाने वाले दिव्य शब्द सुन पाऊं परंतु मैं इन्हें नहीं सुन पाया। तो क्या लिच्छवि-पुत्र ने दिव्य शब्दों के होते हुए भी इन्हें नहीं सुना अथवा इनका अस्तित्व नहीं होने से इन्हें नहीं सुना?

इस पर भगवान ने कहा कि दिव्य शब्दों के होते हुए भी लिच्छवि-पुत्र ने इन्हें नहीं सुना । इसका कारण यह है कि किसी-किसीको दिव्य रूपों के दर्शनार्थ एकांश (एकतरफ़ा)समाधि प्राप्त होती है, परंतु दिव्य शब्दों के श्रवणार्थ नहीं। ऐसे ही किसी-किसीको दिव्य शब्दों के श्रवणार्थ एकांशसमाधि प्राप्त होती है परंतु दिव्य रूपों के दर्शनार्थ नहीं। और किसी-किसीको दिव्य रूपों के दर्शनार्थ और दिव्य शब्दों के श्रवणार्थ उभयांश (दोतरफ़ा) समाधि प्राप्त हो जाती है।

भगवान ने ओट्ठद्ध के इस संशय को भी दूर किया कि भिक्षुगण उनके पास इन समाधि-भावनाओं के साक्षात्कार हेतु ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि इनसे बढ़-चढ़ कर और इनसे अधिक उत्तम दूसरे ही धर्म हैं जिनके साक्षात्कार के लिए भिक्षुगण उनके पास ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। और वे हैं –

* तीन संयोजनों (बंधनों) का समूल नाश हो जाने से 'सोतापन्न' हो जाना, जिससे उस व्यक्ति का अध:पतन नहीं होता और उसका संबोधि (परम ज्ञान) प्राप्त कर लेना सुनिश्चित हो जाता है;

* तीन संयोजनों (बंधनों) का समूल नाश हो जाने और राग, द्वेष तथा मोह के निर्बल पड़ जाने से 'सकदागामी' हो जाना, जिससे वह व्यक्ति एक ही बार इस संसार में आकर अपने दु:खों का अंत कर लेता है;

* पांच अवरभागीय (यहीं आवागमन में अवरुद्ध रखने वाले) संयोजनों का समूल नाश हो जाने से 'ओपपातिक' अनागामी हो जाना, जिससे वह व्यक्ति इस लोक में लौट कर नहीं आता और उच्च लोक में ही निर्वाण-लाभ कर लेता है; और

* आस्रवों (चित्त-मलों) का नाश हो जाने से इसी संसार में आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा की विमुक्ति का स्वयं साक्षात्कार कर विहार करने लगता है।

भगवान ने यह भी दर्शाया कि इन धर्मों का साक्षात्कार करने के लिए जो मार्ग है वह यही है जिसे 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' कहते हैं, अर्थात –

सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि।

७. जालियसुत्त

भगवान के कोसम्बी के घोसिताराम में विहार करते समय मुण्डिय परिव्राजक और दारुपत्तिक के शिष्य जालिय ने भगवान से प्रश्न किया –'आवुस! गौतम! जो जीव है वही शरीर है या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है?'

भगवान ने उन्हें समझाया कि संसार में जब कोई व्यक्ति तथागत के बतलाये हुए मार्ग पर चल कर शील में प्रतिष्ठित हुआ, अपने चित्त से पांचों नीवरणों को दूर कर प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है तब उसके लिए यह प्रश्न अ-प्रासंगिक हो जाता है –'जो जीव है वही शरीर है या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है?'

ऐसे ही यह प्रश्न उस व्यक्ति के लिए अ-प्रासंगिक हो जाता है जो द्वितीय, तृतीय अथवा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है। ऐसे ही उस व्यक्ति के लिए जो अपने चित्त को ज्ञान-दर्शन के लिए, मनोमय शरीर के निर्माण के लिए, ऋद्धियों के लिए, दिव्य श्रोत्र-धातु प्राप्त करने के लिए, परचित्तज्ञान के लिए, पूर्वजन्मों को स्मरण करने के लिए, प्राणियों की च्युति और उत्पाद को जानने के लिए अथवा आस्रवों के क्षय के ज्ञान के लिए नवाता है। इस अंतिम अवस्था के प्राप्त होने पर तो वह अपनी प्रज्ञा से जानने लगता है कि यह दुःख है, यह दुःख का समुदय है, यह दुःख का निरोध है, यह दुःख का निरोध करानेवाला मार्ग है। वह इसे भी प्रज्ञा से जानने लगता है कि ये आस्रव हैं, यह आस्रवों का समुदय है, यह आस्रवों का निरोध है, यह आस्रवों का निरोध कराने वाला मार्ग है। उसके इस प्रकार जानते, देखते उसका चित्त कामास्रवों से भी मुक्त हो जाता है, भवास्रवों से भी, अविद्यास्रवों से भी। तब उसे यह ज्ञान होता है –'मैं मुक्त हो गया! मैं मुक्त हो गया!!' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।' जब कोई व्यक्ति इसे इस प्रकार जान लेता है, देख लेता है तब वह ऐसा नहीं कह सकता –'जो जीव है वही शरीर है या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है।'

भगवान ने कहा मैं स्वयं इसे इस प्रकार जानता हूं, देखता हूं और यह नहीं कहता –'जो जीव है वही शरीर है या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है।'

८. महासीहनादसुत्त

एक समय भगवान उरुञ्ञा के पास कण्णकत्थलनाम के मृगदाव में विहार करते थे। उस समय अचेल कस्सप ने उनके पास जा कर पूछा क्या यह सही है कि आप सभी प्रकार की तपश्चर्या की निंदा करते हैं और कठोर तपस्या को अनुचित बतलाते हैं।

इस पर भगवान ने कहा कि ऐसा कहने वाले मेरे बारे में ठीक से नहीं कहते हैं। मैं कठोर जीवन बिताने वाले और कम कठोर जीवन बिताने वाले – दोनों प्रकार के तपस्वियों की गति को जानता हूं। शरीर छोड़ने के पश्चात इनमें से नरक में भी पैदा होते हैं, स्वर्ग में भी। अतः मैं सभी की निंदा कैसे कर सकता हूं? जो कोई आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करेगा वह कहने ही लगेगा कि श्रमण गौतम समयोचित बात बोलने वाला, सच्ची बात बोलने वाला, सार्थक बात बोलने वाला, धर्म की बात बोलने वाला और विनय की बात बोलने वाला है।

तब अचेल कस्सप ने कहा कि अनेक श्रमणों और ब्राह्मणों के तप ऐसे होते हैं जैसे नग्न रहना, आचार-विचार छोड़ देना, व्रत करना, भिक्षा वा खान-पान के बारे में तरह-तरह के माप-दंड अपनाना, बाहरी वेषभूषा, उठने-बैठने-सोने के तौर-तरीके, इत्यादि। यह सुन कर भगवान ने कहा कि इस प्रकार का तप करने वाला व्यक्ति शील-संपत्ति, चित्त-संपत्ति और प्रज्ञा-संपत्ति की भावना नहीं कर सकता और न ही इनका साक्षात्कार कर सकता है। वह श्रामण्य और ब्राह्मण्य से दूर रह जाता है। श्रमण अथवा ब्राह्मण तो वही कहलाता है जो वैर और द्रोह-रहित हो कर मैत्री-भावना करता है और चित्त-मलों का क्षय हो जाने से निर्मल चित्त की मुक्ति और प्रज्ञा द्वारा मुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर विहार करता है।

तत्पश्चात अचेल कस्सप द्वारा शील-संपत्ति, चित्त-संपत्ति और प्रज्ञा-संपत्ति के बारे में जानकारी चाहे जाने पर भगवान ने कहा कि जब संसार में कोई तथागत उत्पन्न होता है और उसके द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान हो कर कोई व्यक्ति हिंसा को छोड़ हिंसा से विरत रहता है, दंड और शस्त्र को छोड़ देता है, संकोच-शील, दयावान और सभी जीवों का हितानुकंपी हो विहार करता है, यह उसकी शील-संपत्ति होती है। बुरी आजीविका से विरत रहना भी

शील-संपत्ति होती है। ऐसा शील-संपन्न हुआ व्यक्ति कहीं से भय नहीं देखता और अपने भीतर निर्दोष सुख को अनुभव करता है। यह होती है 'शील-संपत्ति'।

जब वह व्यक्ति अपनी इंद्रियों को वश में कर, हर अवस्था में स्मृति और संप्रज्ञान बनाये हुए, संतुष्ट हुआ, चित्त के नीवरणों को दूर कर, समाहित चित्त से प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है, यह उसकी चित्त-संपत्ति होती है। इसी प्रकार जब वह द्वितीय, तृतीय अथवा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है, यह भी होती है उसकी 'चित्त-संपत्ति'!

इसी प्रकार समाहित-चित्त होकर जब वह व्यक्ति (विपश्यना) ज्ञान के लिए अपने चित्त को नवाता है, यह उसकी प्रज्ञा-संपत्ति होती है। ऐसे ही जब वह अपने चित्त को आस्रवों के क्षय के ज्ञान के लिए नवाता है जिसके फलस्वरूप यह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है' –यह भी होती है 'प्रज्ञा-संपत्ति'!

इस 'शील-संपत्ति', 'चित्त-संपत्ति', 'प्रज्ञा-संपत्ति' से बढ़ कर कोई अन्य शील-संपत्ति, चित्त-संपत्ति, प्रज्ञा-संपत्ति नहीं होती है।

भगवान ने अन्य आचार्यों के मन में अपने बारे में होने वाली अनेक भ्रांतियों को भी यह कहकर दूर किया कि श्रमण गौतम सिंह-गर्जना करता है, परिषदों में गर्जना करता है, बड़ी कुशलता के साथ गर्जना करता है, लोग उससे प्रश्न पूछते हैं, वह लोगों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देता है, प्रश्नों के उत्तर से चित्त प्रसन्न करता है, लोग इसे सुनने योग्य मानते हैं, सुन कर प्रसन्न होते हैं, प्रसन्नता प्रकट करते हैं, सच्चाई का प्रतिपादन करने लगते हैं और इसके प्रतिपादन में लगे हुए उसे प्राप्त कर लेते हैं।

कालांतर में अचेल कस्सप ने भगवान के पास प्रव्रज्या पायी, उपसंपदा पायी और साधनाभ्यास करते हुए अरहंतों में से एक हुआ।

९. पोट्ठपादसुत्त

एक समय सावत्थी में भिक्षाटन के लिए जाते-जाते भगवान तिन्दुकाचीर के वाद-भवन पर चले गये। वहां पोट्ठपाद नाम का परिव्राजक तीन सौ साधुओं को निरर्थक कथा-कहानियां सुना रहा था। भगवान को आते देख वे सब चुप हो गये।

भगवान का स्वागत कर पोट्ठपाद ने उनसे यह जानना चाहा कि अभिसंज्ञा-निरोध कैसे होता है। इस पर उन्होंने कहा कि पुरुष की संज्ञाएं स-कारण, स-प्रत्यय उत्पन्न भी होती हैं और निरुद्ध भी होती हैं। कोई-कोई संज्ञा शिक्षा से उत्पन्न होती है, कोई-कोई शिक्षा से निरुद्ध हो जाती है।

तत्पश्चात भगवान ने 'शिक्षा' के बारे में समझाया कि जब कोई व्यक्ति तथागत द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान हो कर शीलों का पालन करता हुआ; इंद्रिय-संवर, स्मृति-संप्रज्ञान और संतोष का आश्रय लेता हुआ अपने चित्त से नीवरणों को दूर कर, समाहित चित्त से, एक से एक ऊंचा ध्यान करता है तब इन ध्यानों के समय शिक्षा से उत्पन्न और निरुद्ध होने वाली संज्ञाओं की स्थिति इस प्रकार रहती है –

चूंकि साधक अपनी ही संज्ञा ग्रहण करने वाला होता है, अतः वह वहां से वहां, वहां से वहां, क्रमशः श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर संज्ञा को प्राप्त करता जाता है। उसके चिंतन न करने, अभिसंस्करण न करने से सूक्ष्म संज्ञाएं नष्ट हो जाती हैं और स्थूल संज्ञाएं उत्पन्न होती नहीं। इस प्रकार, क्रमशः, अभिसंज्ञा-निरोध की स्थिति आ जाती है।

तब पोट्ठपाद ने यह जानना चाहा कि संज्ञा पुरुष की आत्मा होती है, या संज्ञा और आत्मा अलग-अलग होते हैं। इस पर भगवान ने कहा कि तुम जैसे भिन्न दृष्टि वाले, भिन्न चाह वाले, भिन्न रुचि वाले, भिन्न आयोग वाले, भिन्न आचार्य वाले के लिए यह जान लेना दुष्कर है।

तब पोट्ठपाद ने एक-एक करके यह जानना चाहा कि क्या लोक शाश्वत है; अशाश्वत है; अंतवान है; अनंत है; जीव ही शरीर है; जीव और शरीर अलग-अलग हैं; मरने के बाद तथागत फिर पैदा होता है, या नहीं होता है, या होता है और नहीं भी होता है, या न होता है न नहीं होता है। इन प्रश्नों को भगवान ने 'अव्याकृत' (अनिर्वचनीय) कहा क्योंकि ये न तो अर्थयुक्त हैं, न धर्मयुक्त, न आदि-ब्रह्मचर्य के उपयुक्त और न ही ये निर्वेद, विराग, निरोध, शांति, अभिज्ञा, संबोधि अथवा निर्वाण के लिए उपयोगी हैं।

तब पोट्ठपाद द्वारा यह पूछे जाने पर कि भगवान ने क्या-क्या 'व्याकृत' किया है, उन्होंने कहा –

'यह दु:ख है'; 'यह दु:ख का समुदय है'; 'यह दु:ख का निरोध है'; 'यह दु:ख के निरोध का उपाय है'।

दो तीन दिन बीतने पर चित्त हत्थिसारिपुत्त और पोट्ठपाद भगवान के पास गये। उस अवसर पर चर्चा के दौरान भगवान ने कहा कि कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण ऐसी दृष्टि रखते हैं कि 'मरने के बाद आत्मा अ-रोग, एकांत-सुखी होती है।' यह पूछे जाने पर ये कहते हैं कि हम न तो इस एकांतसुख वाले लोक अथवा आत्मा को जानते हैं; न वहां ले जाने वाले मार्ग को जानते हैं और न ही उस लोक में उत्पन्न हुए देवताओं के शब्द सुन पाते हैं कि ऐसे ही मार्ग पर आरूढ़ होकर हम यहां पर पैदा हुए हैं। इससे उनका कथन वैसे ही प्रमाणरहित हो जाता है जैसे किसी जनपदकल्याणी की कामना करने वाले व्यक्ति ने न तो उसे देखा हो और न उसके बारे में कुछ जानता हो, या किसी महल पर चढ़ने के लिए सीढ़ी बनाने वाले व्यक्ति ने न तो महल को देखा हो और न उसके बारे में कुछ जानता हो।

तत्पश्चात भगवान ने तीन प्रकार के आत्म-प्रतिलाभ (जन्म-ग्रहण) की जानकारी दी – स्थूल, मनोमय तथा अ-रूप (अ-भौतिक)। चार महाभूतों से बना हुआ, ग्रास-ग्रास करके आहार करने वाला 'स्थूल' जन्म-ग्रहण होता है। रूपी, मनोमय, सब अंग-प्रत्यंग वाला, इंद्रियों से परिपूर्ण 'मनोमय' जन्म-ग्रहण होता है। अ-रूप (देवलोक में) संज्ञामय होना 'अ-रूप' जन्म-ग्रहण होता है।

भगवान ने कहा मैं तीनों प्रकार के जन्म-ग्रहण से छूटने के लिए धर्मोपदेश करता हूं। इससे चित्त-मल उत्पन्न करने वाले (संक्लेशिक) धर्म छूट जाते हैं, शोधक धर्म बढ़ते हैं, प्रज्ञा की परिपूर्णता वा विपुलता को इसी जीवन में अपनी अभिज्ञा से साक्षात जान कर, प्राप्त कर, विहार करने लगते हैं। इससे प्रमोद भी होता है और प्रीति, प्रश्रब्धि, स्मृति, संप्रज्ञान तथा सुख-विहार भी होता है।

तत्पश्चात भगवान ने वर्तमान शरीर की सत्यता को प्रज्ञप्त किया। उन्होंने कहा कि जिस समय जैसा जन्म-ग्रहण होता है – स्थूल, मनोमय अथवा अ-रूप – उस समय उसी को स्वीकार करना होता है, अन्य को नहीं। जैसे गाय से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी, घी से घी का सार तैयार होता है परन्तु इन पदार्थों में से जिस समय जो पदार्थ विद्यमान होता है, उसी को यथार्थतः स्वीकार करना होता है, अन्य को नहीं।

भगवान के उपदेश से प्रभावित हो पोट्ठपाद परिव्राजक भगवान का शरणागत

उपासक हुआ और चित्त हत्थिसारिपुत्त भगवान के पास प्रव्रज्या, उपसंपदा पा अरहंतों में से एक हुआ।

१०. सुभसुत्त

भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ ही दिन बाद आयुष्मान आनन्द सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। उस समय तोदेय्यपुत्र सुभ नाम के माणवक ने उन्हें अपने घर पर आमंत्रित कर उनसे कहा –'आप भगवान गौतम के बहुत दिनों तक सेवक तथा समीपचारी रहे। कृपया यह बतलायें कि भगवान किन धर्मों की प्रशंसा किया करते थे, किन धर्मों को वे जनता को सिखाते और उनमें प्रवेशित-प्रतिष्ठित करते थे?

इस पर आयुष्मान आनन्द ने उसे भगवान द्वारा प्रशंसित तीन स्कंधों की जानकारी दी –

(१) आर्य शील-स्कंध, (२) आर्य समाधि-स्कंध, तथा (३) आर्य प्रज्ञा-स्कंध।

तत्पश्चात इनके बारे में विस्तार से समझाया कि संसार में तथागत के उत्पन्न होने पर उनके द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान होकर कोई गृहपति कैसे विविध प्रकार के शीलों का पालन कर 'शीलसंपन्न' हो जाता है।

फिर इंद्रियों को वश में करता हुआ, हर अवस्था में स्मृति और संप्रज्ञान बनाये हुए, संतुष्ट रह कर, पांचों नीवरणों का प्रहाण कर, एक-के-बाद-एक चारों ध्यान करके 'समाधिसंपन्न' हो जाता है।

और तदनंतर अपने चित्त में विपश्यना-ज्ञान से लेकर आस्रवक्षय-ज्ञान तक विविध प्रकार के ज्ञान जगा कर 'प्रज्ञासंपन्न' हो जाता है। आस्रवक्षय-ज्ञान होने के साथ ही उस व्यक्ति को यह अभिज्ञान हो जाता है – 'मैं मुक्त हो गया! मैं मुक्त हो गया!'

आर्य प्रज्ञा-स्कंध से परे करने को कुछ शेष नहीं रह जाता है।

सुभ माणवक ने भी 'आर्य प्रज्ञा-स्कंध' की परिपूर्णता को जान कर आश्चर्य व्यक्त किया और शरण-त्रय ग्रहण करते हुए आयुष्मान आनन्द से याचना की कि वे उसे जीवन भर के लिए अपनी शरण में आया हुआ उपासक स्वीकार करें।

११. केवट्टसुत्त

एक समय भगवान नाळन्दा के निकट पावारिक आम्रवन में विहार कर रहे थे। उस समय गृहपतिपुत्र केवट्ट ने उनसे अनुरोध किया कि आप समृद्ध एवं घनी आबादी वाले नाळन्दा नगर में अपने किसी भिक्षु को भेज कर वहां अलौकिक ऋद्धियों का प्रदर्शन करावें। इससे नाळन्दा-वासी आप के प्रति और अधिक श्रद्धालु हो जायेंगे।

इस पर भगवान ने कहा मैं अपने भिक्षुओं को ऐसा धर्मोपदेश नहीं देता कि तुम गृहस्थों को अपनी ऋद्धियों का प्रदर्शन करो। ऋद्धि-बल तीन प्रकार के होते हैं जिन्हें मैंने स्वयं जान कर और साक्षात्कार कर बतलाया है। ये हैं – (१) ऋद्धि-प्रातिहार्य, (२) आदेशना-प्रातिहार्य, तथा (३)अनुशासनी-प्रातिहार्य।

तब भगवान ने इन तीनों के गुण-दोष बतलाये। उन्होंने कहा 'ऋद्धि-प्रातिहार्य' में भिक्षु अपने ऋद्धि-बल से अनेक प्रकार की अलौकिक शक्तियों का प्रदर्शन करता है, परंतु गन्धारी नाम की विद्या द्वारा भी ऐसा किया जा सकता है। ऐसे ही 'आदेशना-प्रातिहार्य' में भिक्षु दूसरों के चित्त को जान लेता है, परंतु मणिका नाम की विद्या द्वारा भी ऐसा किया जाना संभव है। इन दोनों के इन दोषों को देख कर मुझे इनके प्रदर्शन से संकोच होता है।

'अनुशासनी-प्रातिहार्य' में भिक्षु ऐसा अनुशासन करता है – 'ऐसा विचारो, ऐसा मत विचारो; ऐसा मन में करो, ऐसा मन में मत करो; इसे छोड़ दो, इसे स्वीकार कर लो।' और फिर जब इस संसार में कोई तथागत उत्पन्न होता है और उसके द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान हो कर कोई गृहपति शीलसंपन्न हो जाता है और तदुपरांत इंद्रियों को वश में कर, स्मृति और संप्रज्ञान का अभ्यासी हो, संतुष्ट हुआ, चित्त के नीवरणों को दूर कर प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहरता है तो यह भी 'अनुशासनी-प्रातिहार्य' है। और इसी प्रकार द्वितीय, तृतीय अथवा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त होकर विहरना अथवा चित्त को (विपश्यना) ज्ञान से लेकर आस्रवक्षय-ज्ञान तक नवाते जाना 'अनुशासनी-प्रातिहार्य' ही है। आस्रवक्षय-ज्ञान की अंतिम अवस्था पर तो भिक्षु प्रज्ञापूर्वक यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।'

एक बार एक भिक्षु के मन में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि ये चार महाभूत –

पृथ्वीधातु, जलधातु, तेजोधातु तथा वायुधातु – कहां जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं। तब उस भिक्षु ने अपने समाहित चित्त से पहले देवलोक और फिर ब्रह्मलोक में जाकर इस प्रश्न का समाधान चाहा परंतु न तो कोई देव और न ही ब्रह्मा स्वयं इसका समाधान कर पाये।

तब उस भिक्षु ने भगवान बुद्ध से यही प्रश्न किया। इस पर उन्होंने कहा कि यह प्रश्न ऐसे पूछना चाहिए – 'कहां पर जल, पृथ्वी, तेज तथा वायु स्थित नहीं रहते हैं? कहां दीर्घ, ह्रस्व, अणु, स्थूल, शुभ, अशुभ, नाम और रूप बिल्कुल समाप्त हो जाते हैं?'

उन्होंने इसका उत्तर इस प्रकार दिया – 'अनिदर्शन (अर्थात, जहां उत्पत्ति, स्थिति और लय की बात नहीं है), अनंत और अत्यंत प्रभायुक्त निर्वाण जहां है, वहां जल, पृथ्वी, तेज और वायु स्थित नहीं रहते। वहां दीर्घ, ह्रस्व, अणु, स्थूल, शुभ, अशुभ, नाम और रूप बिल्कुल समाप्त हो जाते हैं। विज्ञान के निरोध से वहां सभी का अवसान हो जाता है।'

१२. लोहिच्चसुत्त

एक समय भगवान कोसलदेश में चारिका करते हुए सालवतिका पहुँचे। वहां पर लोहिच्च नाम का ब्राह्मण रहता था। उसके मन में यह पाप-दृष्टि पैदा हुई कि कोई श्रमण या ब्राह्मण कुशल धर्म को जान कर इसे किसी दूसरे को न बताये, क्योंकि कोई किसी दूसरे के लिए कर ही क्या सकता है?

भगवान ने उसकी इस पाप-दृष्टि को दूर करने के लिए उसे कहा कि यदि कोई व्यक्ति अपनी समूची आय का अकेला ही उपभोग करे, किसी को कुछ न दे, तो वह उसके आश्रितों के लिए हानिकारक होगा, अहितकारक होगा, उनके मन में शत्रुता जगाने वाला होगा जिससे मिथ्या-दृष्टि पैदा होगी। और मिथ्या-दृष्टि रखने वाले की दो ही गतियां होती हैं – नरक या नीच योनि में जन्म!

ऐसी पाप-दृष्टि वाला व्यक्ति उन कुलपुत्रों के लिए भी हानिकारक सिद्ध होगा जो भव से निवृत्त होने के लिए तथागत के बताये धर्म में आकर ऐसी विदग्धता हासिल कर लेते हैं जिससे सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी अथवा अरहंत हो जाते हैं अथवा दिव्यगर्भ का परिपाक करते हैं। वह हानिकारक होने से अहितकारक, शत्रुता जगाने वाला और मिथ्या-दृष्टि पैदा करने वाला होगा जिसकी दो ही गतियां होती हैं – नरक या नीच योनि में जन्म!

तत्पश्चात भगवान ने उसे समझाया कि तीन प्रकारके गुरु सचमुच आक्षेप के योग्य होते हैं: (१) जो श्रमणभाव को प्राप्त किये बिना ही श्रावकों को धर्म सिखाते हैं और श्रावक उनकी बात सुनते नहीं हैं। (इन गुरुओं का यह कृत्य ऐसा लगता है मानों मुँह फेरे हुए का आलिंगन करना चाहते हों।) (२) जो श्रमणभाव को प्राप्त किए बिना ही श्रावकों को धर्म सिखाते हैं और श्रावक उनकी बात सुनते हैं। (इन गुरुओं का यह कृत्य ऐसा लगता है मानों अपने खेत की सफाई को छोड़ कर दूसरे के खेत की सफाई करना चाहते हों।) (३) जो श्रमणभाव को प्राप्त कर श्रावकों को धर्म सिखाते हैं परंतु श्रावक उनकी बात को नहीं सुनते। (इन गुरुओं का यह कृत्य ऐसा लगता है मानों किसी पुराने बंधन को काट कर नया बंधन खड़ा करना चाहते हों।)

संसार में ऐसे भी गुरु होते हैं जिन पर आक्षेप नहीं किया जा सकता। जब संसार में कोई तथागत उत्पन्न होता है और उसके द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान होकर कोई व्यक्ति शीलसंपन्न हो, समाधि का अभ्यास करता हुआ प्रथम से लेकर चतुर्थ ध्यान को क्रमशः प्राप्त कर इनमें विहार करते हुए इसमें विदग्धता हासिल कर लेता है, ऐसा गुरु आक्षेप के योग्य नहीं होता। ऐसे ही जब कोई व्यक्ति निर्मल किये हुए समाहित चित्त को (विपश्यना) ज्ञान के लिए अथवा आस्रवों के क्षय के ज्ञान के लिए नवाता है जबकि वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है' –ऐसा गुरु भी आक्षेप के योग्य नहीं होता।

भगवान का यह धर्मोपदेश सुन लोहिच्च को ऐसे लगा मानों नरक के गड्ढे में गिरते हुए उसे ऊपर खींच कर धरती पर रख दिया गया हो। भाव-विभोर होकर उसने भगवान से याचना की कि आप मुझे जीवन भर के लिए उपासक स्वीकार करें।

१३. तेविज्जसुत्त

एक समय भगवान कोसल देश के मनसाकट ग्राम के उत्तर की ओर अचिरवती नदी के तीर पर आम्रवन में विहार कर रहे थे। उस समय वासेट्ठ और भारद्वाज नाम के दो ब्राह्मण माणवक उनके पास गये और उनसे अपना यह विवाद सुलझाने के लिए कहा कि ब्रह्मा की सलोकता के लिए सही वा सीधा मार्ग

कौनसा है। ये दोनों ही अपने-अपने आचार्य के बतलाये हुए मार्ग को सही वा सीधा बतला रहे थे।

इस पर भगवान द्वारा अलग-अलग प्रश्न पूछे जाने पर वासेट्ठ माणवक ने स्वीकार किया कि त्रैविद्य ब्राह्मणों में एक भी ब्राह्मण ऐसा नहीं है जिसने ब्रह्मा को अपनी आंख से देखा हो, इनके एक भी आचार्य-प्राचार्य ने सात पीढ़ी तक ब्रह्मा को आंख से नहीं देखा। यही नहीं, जो त्रैविद्य ब्राह्मणों के पूर्वज, मंत्रों के प्रवक्ता ऋषि थे उन्होंने भी कहीं पर यह नहीं कहा –'जहां ब्रह्मा है, जिससे ब्रह्मा है, जहां से ब्रह्मा है हम उसे जानते हैं, हम उसे देखते हैं।'

इस पर भगवान ने कहा कि ऐसा होने पर तो त्रैविद्य ब्राह्मणों का यह कथन सर्वथा अ-प्रामाणिक हो जाता है कि ब्रह्मा की सलोकता के लिए 'अमुक' मार्ग है क्योंकि उनमें से, पहले-पीछे, न इसे किसी ने जाना, न देखा – जैसे अंधों की पंक्ति में पहले वाला भी नहीं देखता, बीच वाला भी नहीं देखता, पीछे वाला भी नहीं देखता।

इसके अतिरिक्त जब ब्राह्मण बनाने वाले धर्मों को छोड़ कर और अ-ब्राह्मण बनाने वाले धर्मों को अपना कर त्रैविद्य ब्राह्मण ब्रह्मा-सहित विभिन्न देवताओं का आह्वान करते हैं, तब ऐसा नहीं हो सकता कि वे मृत्यु के पश्चात ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त करें –जैसे नदी के इस तीर पर खड़े व्यक्ति के आह्वान करते रहने से नदी का दूसरा तीर इस ओर नहीं आ जाता।

ऐसे ही ब्राह्मण बनाने वाले धर्मों को छोड़ कर और अ-ब्राह्मण बनाने वाले धर्मों को अपना कर पांच कामभोगों में डूबे हुए त्रैविद्य ब्राह्मण मृत्यु के पश्चात ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त करें, ऐसा नहीं हो सकता –जैसे नदी के इस पार दृढ़ सांकल से पीछे बांह करके मज़बूत बंधन से बँधा हुआ व्यक्ति नदी के उस पार जाने की इच्छा होने पर भी उस पार नहीं जा सकता। (ये पांच 'कामभोग' आर्य-विनय में 'सांकल' अथवा 'बंधन' कहलाते हैं।)

ऐसे ही ब्राह्मण बनाने वाले धर्मों को छोड़ कर और अ-ब्राह्मण बनाने वाले धर्मों को अपना कर पांच नीवरणों से ढँके हुए त्रैविद्य ब्राह्मण मृत्यु के पश्चात ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त करें, ऐसा नहीं हो सकता –जैसे नदी के इस पार अपने आप को सिर तक ढांपे हुऐ कोई व्यक्ति नदी के उस पार जाने की इच्छा होने पर भी उस पार नहीं जा सकता। (ये पांच 'नीवरण' आर्य-विनय में 'आवरण' अथवा 'अवनाहन', अर्थात, बंधन कहलाते हैं।)

तदनंतर भगवान ने यह भी स्पष्ट किया कि ब्रह्मा और त्रैविद्य ब्राह्मणों के गुण एक दूसरे के सर्वथा विपरीत हैं। ब्रह्मा अ-परिग्रही, अ-वैरी, अ-द्रोही, संक्लेश-रहित और प्रभावशाली है जबकि ब्राह्मण परिग्रही, वैरी, द्रोही, संक्लेश-युक्त और अप्रभावशाली हैं। उपास्य और उपासक के गुणों में इतना अंतर होने पर किसी त्रैविद्य ब्राह्मण का मृत्यु के पश्चात ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त करना संभव नहीं हो सकता।

तब वासेट्ठ माणवक ने भगवान से प्रार्थना की कि आप ही ब्रह्मा की सलोकता के मार्ग का उपदेश करें।

इस पर भगवान ने कहा कि जब संसार में कोई तथागत पैदा होता है और उसके द्वारा साक्षात्कार किये गये धर्म के प्रति श्रद्धावान हो कर कोई व्यक्ति शीलसंपन्न हो जाता है और अपने चित्त से नीवरण दूर कर अपने भीतर उत्तरोत्तर प्रमोद, प्रीति, प्रश्रब्धि और सुख अनुभव करने लगता है, इससे उसका चित्त खूब समाहित हो जाता है। ऐसे समाहित चित्त से जैसे-जैसे मैत्री, करुणा, मुदिता अथवा उपेक्षा को भावित किया जाता है वैसे-वैसे ब्रह्मा की सलोकता का मार्ग खुलता जाता है।

इस प्रकार ब्रह्म-विहार करने वाला व्यक्ति अ-परिग्रही, अ-वैरी, अ-द्रोही, संक्लेश-रहित और प्रभावशाली होता है। ब्रह्मा के भी यही गुण हैं। अतः ब्रह्म-विहार करने वाला व्यक्ति ब्रह्मा के समान गुणों वाला हो कर मृत्यु के उपरांत ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त कर लेता है।

दीघनिकाय भाग - २

१. महापदानसुत्त

एक समय सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते हुए भगवान ने भिक्षुगण के अनुरोध पर उन्हें पूर्वजन्म-संबंधी धार्मिक कथा कही। उन्होंने बतलाया कि आज से इक्यानवे कल्प पहले भगवान, अरहंत और सम्यक संबुद्ध विपस्सी संसार में उत्पन्न हुए थे। उनके बाद सिखी, वेस्सभू, ककुसन्ध, कोणागमन, कस्सप और वे स्वयं सम्यक संबुद्ध हुए हैं।

इन सबका संक्षिप्त परिचय देने के बाद उन्होंने विपस्सी भगवान की जीवनी का विस्तार से उल्लेख करते हुए बतलाया कि उनके पिता राजा बन्धुमान और माता देवी बन्धुमती थी। उनकी राजधानी का नाम भी बन्धुमती था। वे तुसित देव-लोक से च्युत हो कर, स्मृति और संप्रज्ञान के साथ, अपनी माता की कोख में प्रविष्ट हुए थे। उनके उत्पन्न होने पर नैमित्तिक ब्राह्मणों ने बतलाया था कि इनका शरीर महापुरुष के बत्तीस लक्षणों से युक्त है। यदि ये घर में रहे तो चक्रवर्ती राजा होंगे और घर से बे-घर हो प्रव्रजित हुए तो सम्यक संबुद्ध होंगे।

राजा बन्धुमान ने विपस्सी कुमार के लिए सर्व-प्रकार की सुख-सुविधाएं जुटायीं और पांचों कामगुणों का प्रबन्ध करवाया। परंतु अलग-अलग अवसरों पर वृद्ध, रोगी, मृत और संन्यासी को देख कर उनके मन में निर्वेद जागने से वे अपने सिर-दाढ़ी मुँड़वा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बे-घर हो प्रव्रजित हो गये।

तत्पश्चात एकांत में ध्यान करते समय उनके मन में यह विचार आया कि यह संसार बहुत कष्ट में पड़ा है। कोई जन्मता है, जीर्ण होता है, मर जाता है। एक स्थिति से च्युत होता है और दूसरी में उत्पन्न हो जाता है। इससे बाहर निकलने का रास्ता कैसे जाना जाये? तब सही चिंतन के द्वारा, अपनी प्रज्ञा जगा कर, उन्होंने यह जान लिया कि नामरूप के कारण विज्ञान, और विज्ञान के कारण नामरूप, नामरूप के कारण छह इन्द्रियां, छह इन्द्रियों के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के

कारण भव, भव के कारण जन्म और जन्म के कारण बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते हैं। इस प्रकार इस 'केवल दुःख-समूह' की ही उत्पत्ति होती है।

तदनंतर उन्होंने यह भी जान लिया कि नामरूप के निरोध से विज्ञान, विज्ञान के निरोध से नामरूप, नामरूप के निरोध से छह इन्द्रियां, छह इन्द्रियों के निरोध से स्पर्श, स्पर्श के निरोध से वेदना, वेदना के निरोध से तृष्णा, तृष्णा के निरोध से उपादान, उपादान के निरोध से भव, भव के निरोध से जन्म और जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास –सभी निरुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार सारे दुःखों का निरोध हो जाता है।

इस सारे प्रपंच की उत्पत्ति और निरोध को जानकर बोधिसत्व विपस्सी के चक्षु ऐसे धर्म में खुले जिसके बारे में पहले कभी सुना ही नहीं था। उनमें ज्ञान जाग उठा और जाग उठे – प्रज्ञा, विद्या, आलोक।

तत्पश्चात बोधिसत्व ने पांच उपादान-स्कंधों में उदय-व्यय को देखा –यह रूप है, यह रूप का समुदय है, यह रूप का अस्त हो जाना है; यह वेदना है, यह वेदना का समुदय है, यह वेदना का अस्त हो जाना है; यह संज्ञा है, यह संज्ञा का समुदय है, यह संज्ञा का अस्त हो जाना है; यह संस्कार है, यह संस्कार का समुदय है, यह संस्कार का अस्त हो जाना है; यह विज्ञान है, यह विज्ञान का समुदय है, यह विज्ञान का अस्त हो जाना है। इन पांचों स्कंधों के उत्पत्ति-विनाश को देखकर उनका चित्त शीघ्र ही चित्त-मलों से सर्वथा मुक्त हो गया।

तब सम्यक संबुद्ध हुए विपस्सी भगवान ने अपने बुद्ध-चक्षु से संसार को देखा। इसके फलस्वरूप उन्होंने विविध प्रकार के प्राणियों को देखा –अल्प रज वाले, अधिक रज वाले; तीक्ष्ण इन्द्रिय वाले, मृदु इन्द्रिय वाले; अच्छे आकार वाले, बुरे आकार वाले; बात को जल्दी समझने वाले, बात को देर से समझने वाले; परलोक का भय खाने वाले, परलोक का भय न खाने वाले। तब उनके मन में हुआ कि जो कोई श्रद्धा के साथ मेरी बात सुनेंगे उनके लिए अमृत अर्थात मोक्ष का द्वार खुल जायेगा।

तदनंतर विपस्सी भगवान ने सर्वप्रथम मेधावी राजपुत्र खण्ड और पुरोहितपुत्र तिस्स को स्वयं अनुभव किये गये धर्म –दुःख, समुदय, निरोध तथा मार्ग –का उपदेश दिया जिससे इन्हें भी विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ –'जो कुछ समुदयधर्मा

है वह सब निरोधधर्मा है।' इस प्रकार इसी जीवन में धर्म का साक्षात्कार कर, सभी संशयों से मुक्त हो, उन्होंने बुद्ध और धर्म की शरण ग्रहण की और शनैः शनैः उनके चित्त नितांत आस्रव-विहीन हो गये। फिर धर्म के महत्व को भांप कर बहुत बड़ी संख्या में अन्य लोग भी घर से बे-घर हो भगवान के पास धर्म सीखने के लिए आये और इसी प्रकार आस्रव-विहीन हुए।

उन दिनों राजधानी बन्धुमती में अड़सठ लाख भिक्षुओं का महासंघ निवास करता था। भगवान ने उन्हें संबोधित करते हुए कहा –'भिक्षुओ! चारिका के लिए जाओ, बहुत लोगों के हित के लिए, बहुत लोगों के सुख के लिए, लोगों पर अनुकंपा करने के लिए, देवों और मनुष्यों के अर्थ, हित और सुख के लिए। एकाकी नहीं, दो-दो होकर जाओ। आदि में कल्याणकारी,मध्य में कल्याणकारी, अंत में कल्याणकारी,अर्थ-युक्त, विशद, केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाशन करो।थोड़े से मैल के कारण धूमिल दृष्टि वाले ऐसे लोग हैं जो धर्म की बात न सुनने के कारण हानि उठा रहे हैं। वे धर्म को समझने वाले हो जायेंगे। और छह-छह वर्षों के अंतराल पर प्रातिमोक्ष के वाचन के लिए राजधानी बन्धुमती में आते रहना।'

यह सुनकर अधिकांश भिक्षु एक ही दिन में चारिका के लिए निकल पड़े और छह वर्ष बाद राजधानी में लौट आये। उस समय भिक्षु-संघ के लिए प्रातिमोक्ष का पाठ करते हुए विपस्सी भगवान ने कहा –

'क्षांति और तितिक्षा परम तप हैं; प्रव्रजित श्रमण दूसरों को हानि नहीं पहुँचाता, न दूसरों को कष्ट देता है। बुद्ध-जन निर्वाण को सबसे उत्तम बतलाते हैं।'

'सब प्रकार के पापों का न करना, कुशल कर्मों का संचय करना, चित्त को निर्मल करते रहना – यह बुद्धों की शिक्षा हैं।

'कठोर वचन, दुर्वचन न कहना, दूसरों की हिंसा न करना, प्रातिमोक्ष में संयम बरतना, भोजन की मात्रा को जानना, एकांत में सोना-बैठना, समाधि का अभ्यास – यह बुद्धों की शिक्षा है।'*

अंत में भगवान ने कहा एक समय मुझे सुद्धावास देवों ने कहा था कि आज से इक्यानवे कल्प पहले विपस्सी भगवान ने संसार में जन्म लेकर संबोधि प्राप्त कर धर्मचक्र प्रवर्तित किया था और हम लोग उन्हीं के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन कर, सांसारिक भोग-विलासों से विरक्त हो, यहां उत्पन्न हुए हैं। अन्य

देव-लोकों के देवों ने भी अपने आप को भगवान विपस्सी से लेकर उनके उत्तरवर्ती सम्यक-संबुद्धों सिखी, वेस्सभू, ककुसन्ध, कोणागमन, कस्सप तथा मेरा साक्षी होना बतलाया था। तथागत की धर्म-धातु इतनी बींधने वाली होती है कि इससे वह अतीत काल में परिनिर्वाण प्राप्त किये हुए, सारे प्रपंच को छिन्न-भिन्न किये हुए, सारे दुःखों से विमुक्त हुए, बुद्धों को उनके सारे विवरण सहित उन्हें जान लेते हैं।

२. महानिदानसुत्त

एक समय जब भगवान कुरु-देश में कुरुओं के निगम कम्मासधम्म में विहार कर रहे थे, आयुष्मान आनन्द ने उनसे कहा –'आश्चर्य है भंते! अद्भुत है भंते! कितना गंभीर है और गंभीर-सा दीखता भी है यह प्रतीत्यसमुत्पाद, किन्तु मुझे यह साफ-साफ दिखलाई पड़ता है'।

इस पर भगवान ने उन्हें समझाया – 'ऐसा मत कहो आनन्द! यह प्रतीत्यसमुत्पाद गंभीर है और गंभीर-सा दिखलाई भी देता है। आनन्द! इस धर्म के न जानने से ही यह प्रजा उलझे सूत-सी, गांठें पड़ी रस्सी-सी, मूंज-बल्वज-सी, अपाय, दुर्गति और पतन को प्राप्त होती है और संसार से पार नहीं हो पाती।'

तत्पश्चात भगवान ने उन्हें, कारणों के विश्लेषण सहित, प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धांत समझाया – "नाम-रूप के कारण विज्ञान होता है, विज्ञान के कारण नाम-रूप। नाम-रूप के कारण स्पर्श होता है, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जन्म और जन्म के कारण बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते हैं। इस प्रकार इस 'केवल दुःख-पुंज' का समुदय होता है।"

तदनंतर भगवान ने बतलाया कि आत्मा को मानने वाले आत्मा का प्रज्ञापन चार प्रकार से करते हैं – १. यह रूपवान और सूक्ष्म है; २. रूपवान और अनंत है; ३. रूपरहित और सूक्ष्म है; ४. रूपरहित और अनंत है। आत्मा को नहीं मानने वाले इन प्रज्ञप्तियों को नकारते हैं।

आत्म-दर्शी आत्मा को तीन प्रकार से जानता है – १. वेदना मेरी आत्मा है; २. वेदना मेरी आत्मा नहीं, अ-प्रतिसंवेदन मेरी आत्मा है; अथवा ३. न वेदना मेरी

आत्मा है, न अ-प्रतिसंवेदन मेरी आत्मा है, मेरी आत्मा वेदना धर्म वाली है। ये तीनों प्रकार के चिंतन ठीक नहीं हैं।

पहले प्रकार के चिंतन में यह दोष है कि वेदनाएं तीन प्रकार की होती हैं – सुखद, दुःखद और अदुःखद-असुखद – और इन तीनों में से जिस समय जो प्रकट होती है उस समय वही अनुभव होती है, अन्य दो प्रकार की नहीं; और ये सब अनित्यधर्मा भी हैं; तो जो कोई जिस किसी वेदना को आत्मा मान लेता है वह थोड़ी ही देर में निरुद्ध हो जाती है और तब ऐसे लगने लगता है कि मेरी आत्मा तो चली गई। दूसरे प्रकार के चिंतन में यह दोष है कि जहां अ-प्रतिसंवेदन है अर्थात, कुछ भी अनुभव नहीं होता, वहां 'मैं हूं' – ऐसा नहीं कह सकते। तीसरे प्रकार के चिंतन में यह दोष है कि यदि सारी-की-सारी वेदनाएं सर्व प्रकार से सर्वथा नष्ट हो जाएं तो वेदनाओं के सर्वथा निरुद्ध हो जाने से 'मैं हूं' – ऐसा कह पाना संभव नहीं रहता।

परंतु जो व्यक्ति न वेदना को आत्मा समझता है, न अ-प्रतिसंवेदन को, और न ही इसे वेदना-धर्म वाला मानता है, वह लोक में किसी को 'मैं और मेरा' करके ग्रहण नहीं करता, ग्रहण न करने वाला होने से त्रास नहीं पाता, त्रास न पाने से स्वयं परिनिर्वाण को प्राप्त होता है। तब वह अपनी प्रज्ञा से जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, अब इससे परे यहां आना नहीं है।' ऐसा व्यक्ति संसार में जितने भी अधिवचन, वचन-व्यवहार, निरुक्ति, भाषा-व्यवहार, प्रज्ञप्ति, प्रज्ञप्ति-व्यवहार, ज्ञान, ज्ञान के जो विषय होते हैं उन्हें जान कर मुक्त होता है। ऐसे व्यक्ति के लिए यह कहना अ-युक्त होता है – 'नहीं जानता है, नहीं देखता है, यह इसका दर्शन है।'

तदनंतर भगवान ने यह समझाया कि 'प्रज्ञा-विमुक्त' कौन कहलाता है। प्रज्ञा-विमुक्त वह होता है जो सात प्रकार की विज्ञान की स्थितियों और दो प्रकार के आयतनों के समुदय, अवसान, आस्वाद, परिणाम तथा निस्सरण को यथाभूत जान कर उपादानों को ग्रहण न करते हुए मुक्त होता है। विज्ञान की सात स्थितियां हैं – १. नाना काया –नाना संज्ञा, २. नाना काया –एक संज्ञा, ३. एक काया –नाना संज्ञा, ४. एक काया –एक संज्ञा, ५. आकाश –आयतन, ६. विज्ञान – आयतन, ७. आकिंचन्य – आयतन। दो आयतन हैं – १. असंज्ञि-सत्व-आयतन अर्थात, संज्ञारहित सत्वों का आवास, और २.

नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतन अर्थात, न तो संज्ञा वाला और न ही अ-संज्ञा वाला आयतन।

भगवान ने आठ विमोक्ष भी गिनवाये हैं। इनमें से आठवें विमोक्ष के अंतर्गत कोई व्यक्ति नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतन का अतिक्रमण कर संज्ञा-वेदयित-निरोध की अवस्था, जिसमें संज्ञा और वेदना का पूर्णतया निरोध हो जाने से सर्व प्रकार का लोकीय अनुभव भी निरुद्ध हो जाता है, प्राप्त कर विहरने लगता है। जब आठों विमोक्षों को अनुलोम अर्थात, १ से ८, प्रतिलोम अर्थात, ८ से १, तथा अनुलोम प्रतिलोम अर्थात, १ से ८, फिर ८ से १, जहां चाहता है, जब चाहता है, जितना चाहता है उतनी समाधि प्राप्त कर उठ खड़ा होता है, और आस्रवों के क्षय से इसी जन्म में आस्रव-रहित चित्त की मुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त हो विहरता है, तब वह 'उभयतोभाग-विमुक्त' कहलाता है।

३. महापरिनिब्बानसुत्त

एक समय भगवान राजगह में गिज्झकूटपर्वत पर विहार करते थे। उस समय मगध का राजा अजातसत्तु वज्जी पर आक्रमण कर उसे तहस-नहस करना चाहता था। इस बारे में भगवान का मत जानने के लिए उसने अपने ब्राह्मण मंत्री को उनके पास भेजा। भगवान ने उसे बतलाया कि एक समय मैंने वज्जियों को सात अपरिहाणीय धर्म कहे थे। जब तक वे इन धर्मों का पालन करते रहेंगे तब तक उनका उत्कर्ष ही होगा, अपकर्ष नहीं। ब्राह्मण के चले जाने पर भगवान ने भिक्षुओं को भी प्रकार प्रकार से अपरिहाणीय धर्मों की जानकारी दी जिससे उनका भी उत्कर्ष हो, अपकर्ष नहीं।

विहार के समय भगवान प्रायः यही धर्म-कथा कहा करते थे – 'यह शील है, यह समाधि है, यह प्रज्ञा है। शील से परिभावित समाधि महाफलदायी होती है। समाधि से परिभावित प्रज्ञा महाफलदायी होती है। प्रज्ञा से परिभावित चित्त आस्रवों – कामास्रव, भवास्रव, अविद्यास्रव – से भली प्रकार मुक्त हो जाता है।'

कुछ समय पश्चात भगवान के जीवन की अंतिम यात्रा प्रारंभ हुई। वे अम्बलट्ठिका होते हुए नाळन्दा पहुँचे जहां सारिपुत्त ने उनके प्रति बड़ी उदार वाणी कही कि संबोधि में उनसे बढ़कर न कोई हुआ है, न होगा, न है। (इस बारे में देखिए 'सम्पसादनीय-सुत्त' – दीघ०३-५)। वहां से पाटलिगाम पहुँच कर

भगवान ने गृहस्थों को दुराचार के पांच दुष्परिणाम और सदाचार के पांच सुपरिणाम गिनाये। उन्हीं दिनों वज्जिओं की रोक-थाम के लिए इस ग्राम में एक बड़ा नगर बसाने का काम भी चल रहा था। इसे देख भगवान ने कहा कि जितने भी आर्यों के निवास हैं और जितने भी व्यापारिक मार्ग हैं, उनमें यह पाटलिपुत्त प्रधान नगर होगा, पर इसके तीन शत्रु होंगे –आग, पानी और आपस की फूट।

वहां से कोटिगाम पहुँच भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि चार आर्य-सत्यों का यथाभूत दर्शन न करने से ही इस संसार में आवागमन का क्रम चलता आ रहा है। जब इन्हें (विपश्यना द्वारा) देख लेते हैं तब भव-रज्जु (तृष्णा) नष्ट हो जाती है और दु:ख की जड़ कट जाने से पुनर्जन्म नहीं होता। फिर नातिका पहुँच उन्होंने 'धर्म-आदर्श' नाम का उपदेश दिया जिससे युक्त हुआ आर्यश्रावक अपनी आगे की गति स्वयं जान सकता है।

तत्पश्चात वेसाली पहुँच भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि 'स्मृति' और 'संप्रज्ञान' के साथ विहार करो, यही हमारा अनुशासन है। फिर यह भी समझाया कि 'स्मृतिमान' कैसे होते हैं और 'संप्रज्ञानी' कैसे? जब कोई व्यक्ति राग और द्वेष को दूर करने के लिए जागरूक रह, संप्रज्ञान जगाये हुए, उद्योगशील हो काया में कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करता है तब वह 'स्मृतिमान' होता है; और जब वह चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते शरीर की हर अवस्था में किसी भी प्रकार की शारीरिक क्रिया करते हुए अपने बारे में संपूर्ण जानकारी बनाये रखता है तब वह 'संप्रज्ञानी' होता है।

वेसाली में भगवान ने भिक्षु-संघ के साथ अम्बपाली गणिका के यहां भोजन पाया और उसके द्वारा भिक्षु-संघ को दान में दिये गये उसके उपवन को स्वीकार किया। फिर वहां से चल कर वेळुवगाम पहुँचे जहां वर्षावास किया। इस काल में उन्हें भयानक बीमारी लग गयी और मरणान्तक पीड़ा होने लगी परंतु उन्होंने उसे स्मृति और संप्रज्ञान के साथ, बिना दु:ख मानते हुए, सहन कर लिया।

भगवान के स्वस्थ होते ही आनन्द ने भगवान से कहा कि आपकी बीमारी के समय मुझे कुछ नहीं सूझता था, केवल यह विश्वास था कि आप तब तक परिनिर्वाण प्राप्त नहीं करेंगे जब तक भिक्षु-संघ को कुछ कह न लेंगे। यह सुन कर भगवान बोले कि मैंने सब तरह से खुलासा करके धर्म दर्शा दिया है। मेरी कोई आचार्य-मुष्टि नहीं है। ऐसा नहीं है कि मैं भिक्षु-संघ को धारण करता हूं अथवा

यह मेरे उद्देश्य से है। अतः बिना किसी दूसरे का सहारा ढूंढे अपना द्वीप, अपना सहारा स्वयं बन कर विहार करो। धर्म को अपना द्वीप बना, धर्म के सहारे विहार करो। और यह तब होता है जब कोई व्यक्ति स्मृतिमान, संप्रज्ञानी, उद्योगशील हो काया, वेदनाओं, चित्त तथा धर्मों की अनुपश्यना करने लगता है।

तत्पश्चात भगवान ने वेसाली के चापाल चैत्य में जाकर यह घोषणा की कि तब से तीन माह बाद तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे। इसके साथ ही उन्होंने स्मृति और संप्रज्ञान के साथ अपने आयु संस्कार को छोड़ दिया। उस समय बड़ा भीषण, लोमहर्षक भूचाल आया और देव-दुन्दुभियां बज उठीं। आनन्द के पूछने पर भगवान ने उसे उन आठ प्रत्ययों के बारे में बतलाया जिनकी वजह से ऐसे बड़े भूचाल आते हैं।

तदुपरांत उन्होंने आठ प्रकार की परिषदों, आठ प्रकार के अभिभू-आयतनों तथा आठ विमोक्षों के बारे में भी आनन्द को समझाया। उन्होंने कहा कि आठवां विमोक्ष वह होता है जब कोई व्यक्ति नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा आयतन का सर्वथा अतिक्रमण कर संज्ञा-वेदयित-निरोध को प्राप्त हो कर विहार करने लगे।

इसके बाद भगवान ने महावन की उपस्थानशाला में भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि मैंने स्वयं जान कर जो धर्म उपदिष्ट किया है उसे अच्छी तरह सीख कर उसका सेवन, भावन, संवर्धन करना जिससे यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हो, बहुत लोगों का हितकारक, बहुत लोगों का सुखकारक, लोकों का अनुकंपक और देवों तथा मनुष्यों के अर्थ, हित और सुख के लिए हो। ये धर्म हैं – चार स्मृति-प्रस्थान, चार सम्यक-प्रधान, चार ऋद्धि-पाद, पांच इन्द्रिय, पांच बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग।

भगवान ने उन्हें यह भी कहा कि सारे संस्कार व्ययधर्मा हैं, प्रमादरहित हो इस सच्चाई का संपादन करो। उन्होंने उनको तीन माह बाद अपना परिनिर्वाण होने की सूचना भी दी।

फिर वेसाली को छोड़ भोगनगर पहुँच कर भगवान ने भिक्षुओं को चार महाप्रमाणों का उपदेश दिया। इसमें उन्होंने यह समझाया कि यदि कोई व्यक्ति किसी का भी हवाला देकर यह कहे कि 'यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का उपदेश है,' तो बिना इस उक्ति का अभिनंदन किये, बिना इसकी निंदा किये

इसकी तुलना सूत्र से कर लेनी चाहिए और विनय को देख जाना चाहिए। यदि यह इनसे मेल खाये, तो इसे सु-गृहीत जानें, अन्यथा दुर्गृहीत।

वहां से भगवान पावा पहुँचे जहां पर उन्होंने कर्मार-पुत्र चुन्द के आमंत्रण पर उसके यहां भोजन किया। इस भोजन को खाकर उन्हें खून गिरने की कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई और मरणान्तक पीड़ा होने लगी। उसे उन्होंने स्मृति और संप्रज्ञान से युक्त हो, बिना दुःखित हुए, सहन कर लिया। वहां से उन्होंने कुसिनारा की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में ककुधा नदी में स्नान कर जहां आम्रवन था वहां गये और यह घोषणा की कि आज रात के पिछले पहर कुसिनारा के उपवत्तन नामक मल्लों के शालवन में जुड़वां शाल-वृक्षों के बीच वे परिनिर्वाण-लाभ करेंगे।

वहां से आगे प्रस्थान करने से पूर्व भगवान ने आनन्द से कहा कि शायद कोई कर्मार-पुत्र चुन्द को चिंतित करे कि तूने अ-लाभ कमाया है जैसा कि तेरा पिंडपात खा कर तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए हैं। तुम उसकी चिंता को यह कहकर दूर करना कि मैंने स्वयं भगवान के मुख से सुना था कि 'दो पिंडपात समान फलवाले हैं, दूसरे पिंडपातों से बहुत ही महाफलप्रद हैं। कौन से दो? १. जिस पिंडपात का भोजन कर तथागत अनुत्तर सम्यक संबोधि को प्राप्त हुए, और २. जिस पिंडपात का भोजन कर तथागत अनुपाधिशेष निर्वाणधातु को प्राप्त हुए।'

इसके पश्चात भगवान कुसिनारा के मल्लों के शालवन उपवत्तन में गये और वहां जुड़वें शालों के बीच मंचक बिछवा कर स्मृति-संप्रज्ञान के साथ विश्राम करने लगे। उस समय अकाल होने पर भी वह जुड़वां शाल फूलों से लद रहे थे और तथागत की पूजा के लिए वे फूल उनके शरीर पर बिखरने लगे। ऐसे ही आकाश से दिव्य मंदार-पुष्प, चंदन-चूर्ण उनके शरीर पर गिरने लगे। दिव्य वाद्य बजने लगे, दिव्य संगीत होने लगे। यह देख भगवान ने आनन्द से कहा कि इनसे तथागत सत्कृत, गुरुकृत, मानित, पूजित नहीं होते। जो भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका धर्म के मार्ग पर आरूढ़ हो विहार करते हैं उसी से तथागत सत्कृत, गुरुकृत, मानित, पूजित होते हैं।

उस समय दसों लोकधातुओं के बहुत से देवता तथागत के दर्शनार्थ एकत्रित हुए। भगवान ने देखा कि जो देवता अ-वीतराग थे वे बुरी तरह क्रंदन कर रहे थे कि सुगत बहुत जल्दी निर्वाण को प्राप्त कर रहे हैं, परंतु जो देवता वीतराग थे वे

स्मृति-संप्रज्ञान के साथ, शांत रह कर यह जान रहे थे – 'संस्कार (बने हुए पदार्थ) अनित्य हैं, तो कैसे इन्हें बनाये रख सकते हैं?

तत्पश्चात भगवान ने आनन्द को समझाया कि श्रद्धालु कुलपुत्र के लिए ये चार स्थान दर्शनीय, वैराग्य पैदा करने वाले होते हैं – १. जहां तथागत उत्पन्न हुए, २. जहां सम्यक-संबुद्ध बने, ३. जहां धर्मचक्र प्रवर्तन किया, और ४. जहां अनुपाधिशेष निर्वाण-धातु को प्राप्त हुए। उन्होंने उसे यह भी समझाया कि तुम तथागत की शरीर-पूजा की तरफ से बेपरवाह रहना और सदर्थ के लिए ही उद्योगशील रहना। जिन्हें तथागत में बहुत अनुराग होगा वे ही उनकी शरीर-पूजा करेंगे। फिर उसे यह भी समझाया कि तथागत के महापरिनिर्वाण के पश्चात उनके शरीर का क्या करना होता है और कौन लोग स्तूप बनाये जाने के योग्य होते हैं।

तब आनन्द विहार में जाकर विलाप करने लगा कि मैं अभी शैक्ष्य हूं और मेरे शास्ता का परिनिर्वाण हो रहा है। भगवान ने उसे बुलवा कर कहा कि तुम शोक मत करो। मैंने तो पहले ही कह रखा है कि सभी प्रियों से पार्थक्य होने वाला है। जो कुछ उत्पन्न हुआ है, संस्कृत है वह नष्ट होने वाला है। ऐसा नहीं हो सकता कि वह नष्ट न हो। तूने लंबे समय तक तन, मन, वचन से अपरिमित मैत्री के साथ तथागत की सेवा की है। तूने पुण्य कमाया है । तू निर्वाण-साधन में लग, शीघ्र ही अनास्रव हो जा। फिर उन्होंने आनन्द के चार अद्भुत गुणों का बखान भी किया।

आनन्द ने भगवान से कहा कि इस छोटी सी नगरी में परिनिर्वाण को मत प्राप्त हों। चम्पा, राजगह आदि किसी महानगर में परिनिर्वाण-लाभ करें। वहां बहुत से लोग तथागत के भक्त हैं। इस पर भगवान ने उसे बतलाया कि यही कुसिनारा पूर्वकाल में महासुदस्सन नाम के चक्रवर्ती राजा की कुसावती नाम की राजधानी थी जो दूर दूर तक फैली हुई, जनाकीर्ण, समृद्ध और वैभव-संपन्न थी।

तब आनन्द ने कुसिनारा में जाकर वहां के निवासियों को उनके क्षेत्र में तथागत के होने वाले महापरिनिर्वाण की जानकारी दी। इस पर बहुत से लोग उनके दर्शनार्थ चले आये और उनकी वंदना की। इसी बीच सुभद्द नाम का परिव्राजक भी वहां पर चला आया। वह धर्म के बारे में अपना कुछ संशय दूर करना चाहता था। पर आनन्द ने यह कहकर उसे भगवान के समीप जाने से रोक दिया कि वे इस समय थके हुए हैं, उन्हें कष्ट मत दो। इन दोनों का कथा-संलाप सुन भगवान ने परिव्राजक को अपने पास बुला उसे धर्मोपदेश दिया

और उसके संशय का निवारण किया। भगवान ने उसे बतलाया कि जिस धर्म-विनय में आर्य अष्टांगिक मार्ग उपलब्ध नहीं होता, वहां न सोतापन्न है, न सकदागामी, न अनागामी, न अरहंत। जिस धर्म-विनय में आर्य अष्टांगिक मार्ग उपलब्ध होता है वहां सोतापन्न भी होता है, सकदागामी भी, अनागामी भी और अरहंत भी। यदि भिक्षु ठीक से विहार करें तो लोक अरहंतों से शून्य न हो। कालांतर में प्रव्रज्या, उपसंपदा पा यह परिव्राजक अरहंत हुआ। यही सुभद्द भगवान का अंतिम शिष्य हुआ।

महापरिनिर्वाण प्राप्त करने से पूर्व भगवान ने आनन्द से कहा कि शायद तुम्हें ऐसा लगे कि हमारे शास्ता चले गये, अब हमारे शास्ता नहीं हैं – ऐसा मत सोचना। मैंने जो धर्म और विनय प्रज्ञप्त किये हैं, वे ही मेरे बाद तुम्हारे शास्ता होंगे। फिर उन्होंने भिक्षुओं को भी अंतिम बार संबोधित करते हुए कहा कि सभी संस्कार अनित्य हैं, अ-प्रमाद के साथ इस सच्चाई का संपादन करो अर्थात, इसे अनुभूति पर उतारो। यही भगवान का अंतिम वचन था।

तत्पश्चात भगवान ध्यानावस्थित हो महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए। इसके साथ ही भीषण, लोमहर्षक महाभूचाल हुआ। देवेंद्र सक्क (शक्र) ने गाथा कही – 'संस्कार (कृत वस्तुएं) अ-नित्य हैं, उत्पाद-व्यय स्वभाव वाले हैं, उत्पन्न हो-होकर नष्ट होते रहते हैं, इनका नितांत उप-शमन ही (वास्तविक) सुख है'।

तथागत के शरीर की दाह-क्रिया के पश्चात प्रदेशों के शासक उनकी अस्थियों को बटोर उन्हें स्तूप-निर्माण के लिए ले गये।

४. महासुदस्सनसुत्त

भगवान अपने परिनिर्वाण के समय कुसिनारा के पास उपवत्तन नाम के मल्लों के शाल-वन में दो शाल-वृक्षों के बीच विहार कर रहे थे। उस समय आनन्द ने उनसे कहा यदि आप इस छोटी सी नगरी के स्थान पर चम्पा, राजगह, सावत्थी, साकेत, कोसम्बी, बाराणसी जैसे किसी महानगर में परिनिर्वाण लाभ करें तो अच्छा हो। वहां बहुत से लोग तथागत के भक्त हैं जो उनके शरीर की पूजा करेंगे।

इस पर भगवान ने कहा कि पूर्वकाल में महासुदस्सन नाम का चारों दिशाओं पर विजय प्राप्त करने वाला एक मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा था। यही कुसिनारा

उसकी कुसावती नाम की राजधानी थी जो अत्यंत विस्तीर्ण, समृद्ध तथा वैभव-संपन्न थी।

उस राजा के पास सात रत्न थे – १. चक्र-रत्न, २. हस्ति-रत्न, ३. अश्‍व-रत्न, ४. मणि-रत्न, ५. स्त्री-रत्न, ६. गृहपति-रत्न, तथा ७. परिणायक-रत्न। उसे चार ऋद्धियां भी प्राप्त थीं – १. परम-सौंदर्य, २. दीर्घ-आयु, ३. नीरोगता, और ४. ब्राह्मणों तथा गृहस्थों का वात्सल्य।

एक बार वह राजा अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ उद्यानभूमि में गया। वहां पर उसने बहुत सी पुष्करिणियां खुदवाईं और उनके तीर पर विविध प्रकार के दान स्थापित किये। इधर ब्राह्मण और गृहस्थ भी राजा को भेंट करने के लिए बहुत सा धन लेकर चले आये परंतु राजा ने उसे स्वीकार नहीं किया, उल्टा उन्हें ही अपने यहां से और धन ले जाने के लिए कहा। उन लोगों ने अपने साथ लाए हुए धन को अपने घरों में वापिस ले जाना उचित नहीं समझा और राजा के लिए एक प्रासाद (महल) तैयार करवाने का निर्णय लिया। राजा इससे सहमत हुआ। देवपुत्र विस्सकम्म ने 'धम्म' नामक प्रासाद तैयार कर दिया। राजा ने उसके सामने धर्म-पुष्करिणी बनवा दी। इन दोनों के तैयार हो जाने पर राजा ने उस समय के अच्छे-अच्छे श्रमणों तथा ब्राह्मणों को संतुष्ट कर 'धम्म'-प्रासाद में प्रवेश किया।

तब राजा को यह भान हुआ कि 'यह मेरे दान, दम, संयम – इन तीन कर्मों का फल है जिससे मैं इस समय इतना समृद्धिशाली एवं महानुभाव हुआ हूं।' उसके मुख से प्रीति-वाक्य निकला –

'ठहर काम-वितर्क! ठहर व्यापाद-वितर्क! ठहर विहिंसा-वितर्क!

बस काम-वितर्क!! बस व्यापाद-वितर्क!! बस विहिंसा-वितर्क'!!

तत्पश्‍चात वह कूटागार में प्रवेश कर उत्तरोत्तर प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर इनमें विहार करने लगा और इसके बाद क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा-युक्त श्रेष्ठ चित्त से एक-एक करके सभी दिशाओं को व्याप्त कर विहरने लगा।

बहुत समय बाद सुभद्दादेवी नाम की राजमहिषी अन्य स्त्रियों के साथ राजा को देखने के लिए गयी। उसे दरवाजा पकड़े खड़ा हुआ देख राजा ने उसे भीतर

आने से रोक दिया और स्वयं तालवन में पलंग बिछवा कर दाहिनी करवट हो, पैर के ऊपर पैर रख, स्मृति और संप्रज्ञान के साथ सिंहशय्या लगा ली।

इस पर महिषी को आशंका हुई कि कहीं राजा मरणासन्न तो नहीं है? मन में यह विचार आते ही उसने राजा को उसके धन-वैभव की याद दिलाते हुए कहा कि आप इनसे प्रसन्न हो अपने जीवित रहने की कामना करें। इस पर राजा ने उसे कहा, 'तुमने बहुत दिनों तक मेरे साथ इष्ट एवं प्रिय आचरण किया है; अतः इस अंतिम समय में अनिष्ट एवं अप्रिय आचरण करना उचित नहीं है।' इस समय तुम्हें यह कहना चाहिए –'देव! सभी प्रिय वस्तुओं से बिछोह होता है। आप किसी कामना के साथ प्राण न छोड़ें। कामना-युक्त मृत्यु दुःखपूर्ण होती है, गर्ह्य होती है। आपका जो इतना वैभव है उसमें लिप्त न हों। जीवित रहने की कामना मन में न करें'।

महिषी ने ऐसा ही किया। इसके कुछ ही देर बाद राजा की मृत्यु हो गयी। चारों ब्रह्मविहारों की भावना करता हुआ वह ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ।

अंत में भगवान ने कहा यह राजा महासुदस्सन मैं ही था। वह कुसावती नाम की राजधानी और वह सारा वैभव मेरा ही था। देखो, ये सभी संस्कार (कृत वस्तुएं) क्षीण हो गये, निरुद्ध हो गये, बदल गये। इसी प्रकार सभी संस्कार अ-नित्य हैं, अ-ध्रुव हैं, अ-विश्वसनीय हैं। इसीलिए सभी संस्कारों से निर्वेद प्राप्त करना, विरक्त हो जाना, विमुक्त हो जाना उचित है।

भगवान ने यह भी बतलाया कि पहले छह बार इसी स्थान पर मेरी मृत्यु हो चुकी है। अब यहां सातवीं बार मेरा शरीरपात हो रहा है। मैं सारे लोकों में कोई अन्य स्थान नहीं देखता जहां तथागत को आठवीं बार शरीर त्यागना पड़े।

यह कह कर भगवान ने यह भी कहा –

"सभी संस्कार अनित्य हैं; उत्पत्ति और क्षय स्वभाव वाले हैं; ये उत्पन्न हो-हो कर मिट जाते हैं; इनका शांत हो जाना ही 'सुख' है।"

५. जनवसभसुत्त

एक समय भगवान नातिका में गिञ्जकावसथ में विहार करते हुए कासी और कोसल, वज्जी और मल्ल, चेति और वंस, कुरु और पञ्चाल तथा मच्छ और सूरसेन नामक जनपदों में बुद्ध, धर्म और संघ की परिचर्या करने वाले मृत

परिचारकोंकी पारलौकिक गति का बखान कर रहे थे। आयुष्मान आनन्द के मन में हुआ कि भगवान को अङ्ग और मगध के परिचारकोंकी गति का भी बखान करना चाहिए क्योंकि वहां पर भी बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति श्रद्धा रखने वाले बहुत लोग थे और मगधराज बिम्बिसार तो मरते दम तक भगवान का यशोगान करते रहे। उपयुक्त समय पा कर आयुष्मान आनन्द ने भगवान से इस बारे में निवेदन कर दिया।

कालांतर में भगवान ने अपने समाहित चित्त से मगध के परिचारकों की पारलौकिक गति को जान लिया और बाद में आनन्द को बतलाया कि मेरे ऐसा जान लेने के पश्चात मगधराज बिम्बिसार मेरे सामने जनवसभ नामक यक्ष के रूप में प्रकट हुआ और मुझसे कहा कि मैं अब सातवीं बार वेस्सवण महाराज का मित्र हो कर उत्पन्न हुआ हूं। जब से मैं आप के प्रति श्रद्धावान हुआ हूं तब से मेरी अपाय गति नहीं हुई है और मैं सकदागामी होने के लिए आशान्वित हूं।

जनवसभ ने यह भी बतलाया कि पिछले दिनों उपोसथ को वैशाख पूर्णिमा की रात को सभी तावतिंस देवता सुधर्मा सभा में इकट्ठे होकर बैठे थे। चारों ओर देवताओं की बड़ी भारी सभा लगी थी। चारों दिशाओं के लोकपाल चारों महाराजा भी बैठे थे। उस समय इंद्र के साथ-साथ सभी तावतिंस देवता इस बात से बहुत प्रसन्न थे कि सुगत के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन करके हमारे लोक में आये हुए नये देव कांति, आयु और यश में दूसरों से बढ़-चढ़ कर हैं। उन्हें इस बात से भी प्रसन्नता हुई कि 'देव-लोक भर रहा है; असुर-लोक क्षीण हो रहा है।'

तभी वहां पर बड़े भारी तेज-पुंज के साथ सनङ्कुमार ब्रह्मा भी प्रकट हुए। आठ अंगों से युक्त ब्रह्मस्वर में उन्होंने तावतिंस देवताओं को संबोधन करते हुए कहा –

* भगवान लोगों के हित-सुख के लिए प्रयत्नशील हैं। जो कोई बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में गये हैं और जिन्होंने शीलों को पूरा किया है वे किसी न किसी देवलोक में उत्पन्न होते हैं। सब से हीन शरीर पाने वाला भी गंधर्व का शरीर पा लेता है।

* सब कुछ जाननहार, देखनहार, अरहंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध को चार ऋद्धिपाद प्राप्त हैं –छंद, वीर्य, चित्त एवं मीमांसा। नाना प्रकार की ऋद्धियों की सिद्धि इन्हीं चार ऋद्धिपादों को भावित करने से ही होती है। महाब्रह्मा भी इन्हीं चार ऋद्धिपादों को भावित करने से महान ऋद्धिवाले महानुभाव हुए हैं।

* सब कुछ जाननहार, देखनहार, अरहंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध को सुख की प्राप्ति के लिए तीन अवकाश प्राप्त हैं – १. भोगों में और अ-कुशल धर्मों में न लगने से उत्पन्न होने वाला सुख, और फिर इससे बढ़ कर सौमनस्य; २. काया, वाणी और चित्त के स्थूल संस्कारों के शांत हो जाने से उत्पन्न होने वाला सुख, और फिर इससे बढ़ कर सौमनस्य; और ३. अविद्या के दूर हो जाने तथा विद्या के जागने से उत्पन्न होने वाला सुख, और फिर इससे बढ़ कर सौमनस्य।

* सब कुछ जाननहार, देखनहार, अरहंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध द्वारा कुशल की प्राप्ति के लिए चारों स्मृति-प्रस्थान प्रज्ञप्त किये गये हैं। कौन से चार? काया में कायानुपश्यी होकर विहरना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर विहरना, चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहरना, और धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहरना।

* सब कुछ जाननहार, देखनहार, अरहंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध ने सम्यक समाधि की भावना और परिशुद्धि के लिए सात समाधि-परिष्कारों को अच्छी तरह प्रज्ञप्त किया है। कौन से सात? सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम और सम्यक स्मृति। सम्यक दृष्टि वाला मनुष्य सम्यक संकल्प में समर्थ होता है, सम्यक संकल्प वाला सम्यक वाणी में, सम्यक वाणी वाला सम्यक कर्मांत में, सम्यक कर्मांत वाला सम्यक आजीव में, सम्यक आजीव वाला सम्यक व्यायाम में, सम्यक व्यायाम वाला सम्यक स्मृति में, सम्यक स्मृति वाला सम्यक समाधि में, सम्यक समाधि वाला सम्यक ज्ञान में और सम्यक ज्ञान वाला मनुष्य सम्यक विमुक्ति में समर्थ होता है जिसे सम्यक प्रकार से कहने वाले मनुष्य कहते हैं – भगवान का धर्म स्वाख्यात (सुंदर प्रकार से कहा गया) है, सान्दृष्टिक (इसी संसार में साक्षात्कार किये जाने के योग्य) है, अकालिक (सद्यः फलप्रद) है, एहि-पश्यिक ('आओ, देखो!' का भाव जगाने वाला) है, औपनयिक (निर्वाण के समीप ले जाने वाला) है, प्रत्येक (हर एक) के लिए हितकारी है और विज्ञों (पंडितों) द्वारा ज्ञेय है। जो कोई बुद्ध, धर्म तथा संघ में स्थिर रूप से प्रसन्न हैं और उत्तम प्रिय शील से युक्त हैं उनके लिए अमृत (निर्वाण) का मार्ग खुला हुआ है।

तत्पश्चात ब्रह्मा ने घोषणा की कि चौबीस लाख से भी अधिक मगध के

परिचारक अतीत काल में मार के तीन बंधनों के कट जाने से सोतापन्न हो गये हैं, वे फिर कभी तीन अपायों में नहीं गिर सकते और नियत रूप से संबोधि प्राप्त करने में लगे हैं। और यहां सकदागामी भी हैं ।

भगवान ने यह सारा वृत्तांत जनवसभ यक्ष से सुन कर और स्वयं अभिज्ञा से जान कर इसे आयुष्मान आनन्द को बताया। आयुष्मान आनन्द ने इसे भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों, उपासिकाओं को बतलाया। यही ब्रह्मचर्य ऋद्धियुक्त, उन्नत, विस्तारित, विख्यात और विशाल हो कर देवों तथा मनुष्यों में प्रकाशित हुआ।

६. महागोविन्दसुत्त

एक समय जब भगवान राजगह के गिज्झकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे, पञ्चसिख नाम का गंधर्वपुत्र ढलती रात में उनके पास आया और कहने लगा कि मैंने जो तावतिंस देवों के मुँह से सुना है, उसे आपसे कहूंगा।

भगवान की अनुमति पा कर उसने कहा कि बहुत दिन पहले एक उपोसथ की रात में सभी तावतिंस देव सुधर्मासभा में बैठे थे। बहुत बड़ी देव-परिषद चारों ओर बैठी थी। चारों दिशाओं के लोकपाल चारों महाराजा भी बैठे थे। उस समय तावतिंस देव इस बात से अत्यंत प्रसन्न हो रहे थे कि भगवान के यहां से ब्रह्मचर्य का पालन कर जो लोग देव-लोक में आये हैं वे छवि और यश में अन्य देवों से बढ़-चढ़ कर हैं।

देवों के इंद्र सक्क ने भी इसका अनुमोदन किया और भगवान के गुणों का बखान किया।इतने में सनङ्कुमार ब्रह्मा भी वहां पर आ गये। उन्होंने भी तावतिंस देवों की अभिव्यक्ति का अनुमोदन किया, देवेंद्र सक्क से भगवान के गुणों को सुना और फिर देवों को संबोधित करते हुए कहा कि भगवान बहुत समय पहले भी महाप्रज्ञावान थे।

उन्होंने कहा कि बहुत पहले दिसम्पति नाम का राजा राज्य करता था। गोविन्द नाम का ब्राह्मण उसका पुरोहित था। गोविन्द का पुत्र जोतिपाल था। रेणु राजपुत्र, जोतिपाल और अन्य छह क्षत्रिय –ये आठों मित्र थे। गोविन्द ब्राह्मण के मरने पर उसका स्थान जोतिपाल ने ले लिया जो अपने पिता से भी बढ़-चढ़ कर पंडित और अर्थदर्शी निकला।इस पर लोगों ने उसका नाम 'महागोविन्द' रख दिया।

कालांतर में राजा का भी देहांत हो गया और राजपुत्र रेणु का राज्याभिषेक हुआ। फिर रेणु के आदेश से महागोविन्द ने भारतवर्ष को सात समान भागों में बांट दिया। बीच का भाग रेणु ने रख लिया और शेष छह भाग अपने क्षत्रिय-मित्रों में बांट दिये। इन मित्रों ने भी महागोविन्द को अपना पुरोहित बना लिया।

तब महागोविन्द इन सात मूर्धाभिषिक्त क्षत्रियों का अनुशासन करने लगा और सात ब्राह्मण महाशालों तथा सात सौ स्नातकों को मंत्र पढ़ाने लगा। कुछ समय बाद उसकी ऐसी ख्याति फैल गयी कि वह ब्रह्मा को साक्षात देखता है, उनसे वार्तालाप व मंत्रणा भी करता है।

तब महागोविन्द के मन में आया कि मेरी ख्याति का कोई आधार नहीं है। पर मैंने बड़े-बूढ़ों तथा आचार्यगण को यह कहते सुना है कि जो वर्षा-काल के चातुर्मास में समाधि लगा कर करुणा-भावना करता है वह ब्रह्मा को साक्षात देख लेता है, उनसे वार्तालाप एवं मंत्रणा भी करने लगता है। अतः मैं भी क्यों न वर्षा-काल के चातुर्मास में समाधि लगा कर करुणा-भावना करूं?

तब महागोविन्द ने रेणु राजा के पास जाकर यह सारी बात बतलायी और उससे कहा कि मेरे समाधि-काल में भोजन लाने वाले को छोड़ कर कोई दूसरा व्यक्ति मेरे पास न आये। राजा इससे सहमत हुआ। फिर छहों क्षत्रियों, ब्राह्मण महाशालों तथा स्नातकों और अपनी स्त्रियों की भी सहमति प्राप्त कर वह एक उपयुक्त स्थान पर समाधि का अभ्यास करने लगा।

कुछ समय के पश्चात सनङ्कुमार ब्रह्मा महागोविन्द के सामने प्रकट हुए। महागोविन्द ने उनसे पूछा – 'कहां रह कर और क्या अभ्यास कर मनुष्य अमृत ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है?' ब्रह्मा ने उत्तर दिया – 'मनुष्यों में ममत्व को छोड़ कर एकांत में रहना, करुणाभाव-युक्त होना, पापों से अलग रहना, मैथुन-कर्म से विरत रहना – इन्हीं का अभ्यास कर, और इन्हीं को सीख कर, मनुष्य अमृत ब्रह्म-लोक को प्राप्त होता है।' ब्रह्मा ने उसे यह भी बतलाया कि क्रोध, मिथ्या-भाषण, वंचना, मित्र-द्रोह, कृपणता, अभिमान, ईर्ष्या, तृष्णा, विचिकित्सा, पर-पीड़ा, राग, द्वेष, मद और मोह – इनसे युक्त हो कर नारकीय लोग ब्रह्मलोक से गिर कर दुर्गंध को प्राप्त होते हैं। इन्हें आमगंध' कहते हैं।

महागोविन्द को लगा कि आमगंध गृहस्थ से जल्दी दूर नहीं किये जा सकते।

अतः मुझे घर से बे-घर हो प्रव्रजित हो जाना चाहिए। तब वह रेणु राजा, छहों क्षत्रियों, सातों ब्राह्मणमहाशालों, सात सौ स्नातकों तथा अपनी स्त्रियों को अपना मंतव्य जतला कर सिर और दाढ़ी मुँडवा कर प्रव्रजित हो गया। उसकी देखादेखी ये सब भी प्रव्रजित हो गये और इनके अतिरिक्त हजारों अन्य लोगों ने भी प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

महागोविन्द ने एक-एक करके मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा-युक्त चित्त से सभी दिशाओं को आप्लावित किया और अपने श्रावकों को ब्रह्म-लोक का मार्ग बतलाया। उनमें से जिन्होंने धर्म को जान लिया, वे मर कर ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हुए। जो धर्म को पूरी तरह नहीं समझ पाये, वे मर कर परनिम्मितवसवत्ती, निम्मानरति, तुसित, यामा, तावतिंस अथवा चातुमहाराजिक देवलोक में उत्पन्न हुए। जिन्होंने सब से हीन शरीर पाया, वे गन्धब्ब-लोक में उत्पन्न हुए। इस प्रकार उन सभी कुलपुत्रों की प्रव्रज्या सार्थक हुई।

भगवान ने पञ्चसिख से कहा, "मैं ही उस समय का महागोविन्द ब्राह्मण था। मैंने ही उन श्रावकों को ब्रह्मलोक का मार्ग बतलाया था। मेरा वह ब्रह्मचर्य न निर्वेद के लिए, न विराग के लिए, न निरोध के लिए, न परम शांति के लिए, न ज्ञान-प्राप्ति के लिए, न संबोधि के लिए और न निर्वाण के लिए था। वह केवल ब्रह्म-लोक की प्राप्ति के लिए था। परंतु मेरा यह ब्रह्मचर्य निर्वेद, विराग, निरोध, परम शांति, ज्ञान-प्राप्ति, संबोधि और निर्वाण के लिए है। और इस ब्रह्मचर्य का आधार है यही 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' –सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि।"

भगवान ने आगे कहा कि जो मेरे श्रावक पूरा-पूरा धर्म जानते हैं वे आस्रवों के क्षय होने से, आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, विहार करते हैं, और जो पूरा-पूरा धर्म नहीं जानते वे औपपातिक, सकदागामी अथवा सोतापन्न हो जाते हैं। ऐसे सभी कुलपुत्रों की प्रव्रज्या सार्थक हो जाती है।

तत्पश्चात पञ्चसिख भगवान के कथन का अभिनंदन कर और उनकी प्रदक्षिणा कर वहां से अंतर्धान हो गया। **

७. महासमयसुत्त

एक समय भगवान अरहंत-अवस्था-प्राप्त पांच सौ भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ शाक्यदेश में कपिलवत्थु के महावन में विहार कर रहे थे। उस समय उनका दर्शन करने के लिए दसों लोकधातुओं के बहुत से देवता एकत्र हुए। यह देख चारों सुद्धावास लोक के देवता भी वहां पर चले आये और उन्होंने भगवान के सन्मुख अपनी-अपनी गाथाएं कहीं।

तत्पश्चात भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि इन सब देवशरीरधारियों को विवेकपूर्वक जान लो। इस पर कितनों ने सौ, हजार अथवा सत्तर हजार देवता देखे; कितनों ने सौ हजार देवता देखे और कितनों ने सभी दिशाओं को अनंत देवों से आकीर्ण पाया।

तब भगवान ने यह सब जान कर श्रावकगण को वहां पर एकत्रित देवशरीरधारियों के नाम, इत्यादि का परिचय दिया।

इंद्र और ब्रह्मा के साथ सभी देवों के आगमन पर मार सेना भी वहां पर आ धमकी और सबको राग से वश में करने का यत्न करने लगी। इतने में क्रोध से आगबबूला हुआ मार भी वहां पर आ पहुँचा।

यह सब अपनी अभिज्ञा से जान कर भगवान ने श्रावकों को सचेत किया – 'मार-सेना आयी हुई है। इसे विवेकपूर्वक जान लो'।

भगवान की बात सुन कर सभी श्रावक वीर्यपूर्वक सचेत हो गये। उन वीतराग भिक्षुओं के आगे मार-सेना भाग छूटी और किसी एक का भी बाल बांका नहीं कर पायी।

८. सक्क पञ्हसुत्त

एक समय भगवान मगध में वेदियक पर्वत की इन्दसाल-गुहा में विहार कर रहे थे। उस समय देवेंद्र सक्क तावतिंस देवों के साथ गंधर्वपुत्र पञ्चसिख को आगे कर उनके दर्शनार्थ गये।

सक्क ने पञ्चसिख से कहा कि ध्यानमग्न, समाधिस्थ तथागत के पास मेरे

जैसा कोईसहसा नहीं जा सकता।अतः पहले आप जा कर उन्हें प्रसन्न करें।हम आपके पीछे उनके दर्शनार्थ आयेंगे।

इस पर भगवान से न बहुत दूर, न बहुत निकट रह कर पञ्चसिख अपनी बेलुवपण्डु वीणा बजाने लगा और बुद्ध, धर्म, संघ, अरहंत तथा भोग-संबंधी गाथाएं गाने लगा। गाथाओं के पूरा होने पर भगवान ने उससे पूछा तुमने इन्हें कब रचा था। पञ्चसिख ने इसका विवरण दिया।

तत्पश्चात सक्क भी तावतिंस देवों के साथ भगवान के समीप चले आये। सक्क ने भगवान से कहा मैंने अपने से पहले उत्पन्न हुए देवों को यह कहते सुना है कि जब कोई तथागत संसार में उत्पन्न होते हैं तब देवलोक भरने लगते हैं और असुरलोक क्षीण होने लगते हैं। अब मैंने इसे अपनी आंखों से देख लिया है। उन्होंने गोपक देवपुत्र के कथन का हवाला देते हुए बतलाया कि कैसे स्मृति खोये हुए व्यक्ति स्मृति-लाभ कर देवों से भी आगे निकल जाते हैं।

तदनंतर सक्क ने भगवान से अनुमति प्राप्त कर उनसे पूछा कि ऐसा कौनसा बंधन है जिसके कारण सभी प्राणी वैर, दंड, शत्रुता और हिंसाभाव को छोड़ कर वैर-रहित होकर रहना चाहते हुए भी सदा दंड-सहित, शत्रुता और हिंसाभाव से युक्त हो कर ही रहते हैं? भगवान ने बतलाया ये बंधन हैं –ईर्ष्या और मात्सर्य।

फिर ईर्ष्या और मात्सर्य के निदान, समुदय के बारे में पूछे जाने पर भगवान ने कहा ये प्रिय और अ-प्रिय के कारण होते हैं और इनके नहीं होने से नहीं होते। प्रिय और अ-प्रिय छंद (चाह) के कारण होते हैं। छंद वितर्क के कारण होता है। वितर्क प्रपंचसंज्ञासंख्या के कारण होता है। फिर भगवान ने सौमनस्य, दौर्मनस्य और उपेक्षा-भाव को लेकर प्रपंचसंज्ञासंख्या के निरोध का मार्ग प्रज्ञप्त किया।

तत्पश्चात सक्क के प्रश्नों के उत्तर में भगवान ने प्रातिमोक्ष-संवर, इन्द्रिय-संवर के बारे में बतलाया और यह भी स्पष्ट किया कि सभी श्रमण और ब्राह्मण एक ही सिद्धांत का प्रतिपादन करने वाले, एक ही शील को मानने वाले, एक ही अभिप्राय वाले क्यों नहीं होते हैं? भगवान ने कहा इसका कारण यह है कि संसार के सभी लोग भिन्न-भिन्न धातु के बने होते हैं, तो जो जीव जिस धातु का बना होता है उसी को हठपूर्वक ,दृढ़तापूर्वक ग्रहण कर लेता है कि यही सच है, बाकी सब झूठ। इसी कारण सभी श्रमण, ब्राह्मण एकरूप नहीं होते।

सक्क ने भगवान के प्रति आभार व्यक्त किया कि आपने बहुत दिनों से चली

आ रही मेरी शंका और दुविधा को दूर कर दिया है। भगवान ने उससे पूछा कि क्या इससे पहले भी तुम्हें कभी ऐसा संतोष, सौमनस्य प्राप्त हुआ था? सक्क ने कहा देवासुर संग्राम के समय देवताओं की जीत होने पर मेरे मन में जो संतोष, सौमनस्य हुआ था वह लड़ाई-झगड़े के संबंध में था –निर्वेद, विराग, निरोध, शांति, ज्ञान, संबोधि, निर्वाण के लिए नहीं था। अब भगवान का धर्मोपदेश सुन मुझे जो संतोष, सौमनस्य प्राप्त हुआ है, वह लड़ाई-झगड़े के संबंध में नहीं, बल्कि पूर्णतया निर्वेद, विराग, निरोध, शांति, ज्ञान, संबोधि और निर्वाण के लिए है।

तब देवेंद्र सक्क ने हाथ से पृथ्वी को छू कर तीन बार प्रीति-वाक्य कहे –

'नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स!'

सक्क के इस प्रकार कहते-कहते उसे विरज, विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ – 'जो कुछ समुदयधर्मा है, वह सब निरोधधर्मा है।' और अन्य अस्सी हजार देवताओं को भी।

९. महासतिपट्ठानसुत्त

एक समय भगवान कुरु-प्रदेश में कुरुओं के निगम कम्मासधम्म में विहार करते थे। उस समय भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि ये जो चार स्मृति-प्रस्थान हैं वे सत्वों की विशुद्धि, शोक और क्रंदन का विनाश, दुःख और दौर्मनस्य का अवसान, सत्य की प्राप्ति, निर्वाण का साक्षात्कार –इन सब के लिए अकेला मार्ग है।

चार स्मृति-प्रस्थान हैं – लोलुपता और दौर्मनस्य को दूर कर, स्मृति और संप्रज्ञान के साथ, उद्योगशील हो, काया में कायानुपश्यी हो कर विहरना, और ऐसे ही वेदनाओं में वेदनानुपश्यी हो कर, चित्त में चित्तानुपश्यी हो कर और धर्मों में धर्मानुपश्यी हो कर विहरना।

'कायानुपश्यना' के लिए भिक्षु किसी निर्जन स्थान पर जा कर पालथी मार, शरीर को सीधा रख, मुख के इर्द-गिर्द जागरूकता बनाये रख, नैसर्गिक तौर पर आने जाने वाले श्वास को जानने का काम शुरू करता है। फिर सारी काया को अनुभव करते हुए, और तदुपरांत काया पर होने वाले उपद्रवों के शांत होने पर, श्वास लेना वा छोड़ना सीखता है। इस प्रकार काया के भीतरी अथवा बाहरी; अथवा भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के भागों में कायानुपश्यना करता हुआ

विहार करता है, कायामें उदय अथवा व्यय; अथवा उदय के साथ-साथ व्यय होने वाले धर्मों का अनुपश्यी हो कर विहार करता है। तब 'यह काया है!' –इस पर जागरूकता स्थिर हो जाती है। जितनी देर तक इस प्रकार का केवल ज्ञान, केवल दर्शन बना रहता है उतनी देर तक अनासक्त हो कर विहार करता है और संसार में कुछ भी ग्रहण करने योग्य नहीं रहता। इस प्रकार कायामें कायानुपश्यी हो कर विहार करना होता है।

फिर केवल बैठे-बैठे ही नहीं, चलते-फिरते, खड़े रहते, लेटे-लेटे अथवा शरीर की अन्य अवस्थाओं में भी, इन अवस्थाओं को यथाभूत जानते हुए, कायानुपश्यना की जाती है। और फिर इससे भी आगे बढ़ कर हर प्रकार की शारीरिक क्रिया में संप्रज्ञान बनाये रख कर कायानुपश्यना करनी होती है। शरीर के भीतर अशुचि याने प्रतिकूल विषयों को आलंबन बना कर उक्त प्रकार से कायानुपश्यना करनी होती है।

'वेदनानुपश्यना' करते समय जैसी भी वेदना अनुभव हो – सुखद, दुःखद, अदुःखद-असुखद, सामिष, निरामिष – उसे प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानना होता है और पूर्ववत भीतर, बाहर, सर्वत्र उदय-व्यय की अनुभूति के साथ विहार करना होता है जिससे जागरूकता स्थिर हो कर केवल इसी बात का ज्ञान अथवा दर्शन प्राप्त हो – 'यह वेदना है!'

'चित्तानुपश्यना' करते समय जैसी भी चित्त की स्थिति हो – रागयुक्त, रागविहीन; द्वेषयुक्त, द्वेषविहीन; मोहयुक्त, मोहविहीन; इत्यादि – उसे प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानना होता है और पूर्ववत भीतर, बाहर, सर्वत्र उदय-व्यय की अनुभूति के साथ विहार करना होता है जिससे जागरूकता स्थिर हो कर केवल इसी बात का ज्ञान, अथवा दर्शन, प्राप्त हो –'यह चित्त है!'

'धर्मानुपश्यना' करते समय भी चित्त में जागने वाले धर्मों की जैसी-जैसी स्थिति हो उन्हें प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानना होता है और पूर्ववत भीतर, बाहर, सर्वत्र उदय-व्यय की अनुभूति के साथ विहार करना होता है जिससे जागरूकता स्थिर होकर केवल इसी बात का ज्ञान, अथवा दर्शन, प्राप्त हो –'ये धर्म हैं!'

नीवरणों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है कि इस समय नीवरण है, अथवा नहीं है, अथवा उत्पन्न हो रहा है, अथवा इसका प्रहाण हो रहा है अथवा प्रहाण हुए-हुए का अब पुनः उद्भव नहीं होता है। (नीवरण हैं:

१. कामच्छंद = कामुकता, २. व्यापाद = द्रोह, ३. स्त्यानमृद्ध = तन-मन का आलस, ४. औद्धत्य-कौकृत्य = उद्वेग-खेद, ५. विचिकित्सा = संदेह।)

उपादान-स्कंधों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है कि इस समय स्कंध उदय हो रहा है अथवा अस्त हो रहा है। (उपादान-स्कंध हैं: १. रूप, २. वेदना, ३. संज्ञा, ४. संस्कार, ५. विज्ञान।)

आयतनों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है कि यह भीतर का आयतन है, यह बाहर का आयतन है, यह दोनों के संसर्ग से होने वाला संयोजन है, यह अविद्यमान संयोजन की उत्पत्ति है, यह उत्पन्न हुए संयोजन का प्रहाण है और यह प्रहाण हुए-हुए संयोजन का अब अनुद्भव है। (आयतन हैं: १. बाह्य-चक्षु, २. श्रोत्र, ३. घ्राण = नासिका; ४. जिव्हा, ५. काय = त्वक। ६. आभ्यंतर – मन तथा उनके विषय।)

बोध्यंगों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है कि इस समय बोध्यंग है, अथवा नहीं है, अथवा उत्पन्न हो रहा है, अथवा भावित हो कर परिपूर्ण हो रहा है। (बोध्यंग हैं: १. स्मृति, २. धर्मविचय, ३. वीर्य, ४. प्रीति, ५. प्रश्रब्धि, ६. समाधि, ७. उपेक्षा।)

आर्य-सत्यों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक, यथाभूत, यह जानना होता है कि यह दुःख है, यह दुःख का समुदय है, यह दुःख का निरोध है, यह दुःख-निरोध का उपाय है।

तत्पश्चात भगवान ने स्पष्ट किया कि दुःख, दुःख का समुदय, दुःख का निरोध और दुःख-निरोध का उपाय – इनसे क्या अभिप्राय है। संक्षेप में पांचों उपादान-स्कंध ही 'दुःख' हैं; बार-बार राग जगाने वाली तृष्णा 'दुःख का समुदय' है; इस तृष्णा का सर्वथा निरोध 'दुःख का निरोध' है; और आर्य अष्टांगिक मार्ग (सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि) दुःख-निरोध का उपाय' है।

अंत में भगवान ने प्रज्ञप्त किया कि जो कोई मेरे बतलाये अनुसार इन चार स्मृति-प्रस्थानों की सात वर्ष भावना करे उसे इन दो फलों में से एक की आशा रखनी चाहिए – इसी जन्म में अर्हत्व का साक्षात्कार अथवा उपाधि शेष होने पर अनागामि-भाव। भगवान ने आगे प्रज्ञप्त किया कि इससे कहीं कम अवधि में भी इस फल की आशा की जा सकती है।

१०. पायासिराजञ्ञसुत्त

एक समय आयुष्मान कुमारकस्सप एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ कोसल देश में सेतब्या नगर के उत्तर की ओर सिंसपा-वन में विहार करते थे। उस समय पायासि राजन्य कोसल-नरेश प्रसेनदि द्वारा प्रदत्त सेतब्या का स्वामी होकर रहता था।

उन दिनों कुमारकस्सप की ऐसी कीर्ति फैल रही थी कि वे पंडित, मेधावी, बहुश्रुत, मन की बात जानने वाले, अच्छी प्रतिभा वाले, अनुभवी तथा अरहंत हैं। यह मानते हुए कि अरहंतों का दर्शन करना अच्छा होता है, सेतब्या के बहुत से लोग सिंसपा-वन जाने लगे। पायासि राजन्य भी उनके साथ हो लिया।

वहां पहुँच कर पायासि राजन्य ने कुमारकस्सप से कहा कि मैं ऐसे सिद्धांत को मानने वाला हूं कि न तो कोई परलोक होता है, न जीव मर कर पैदा होते हैं और न ही अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल होता है। इसके लिए उसने अनेक तर्क दिये – १. मरे हुओं को किसी ने लौट कर आते नहीं देखा, २. धर्मात्मा आस्तिकों को भी मरने की इच्छा नहीं होती, ३. जीव के निकल जाने पर मृत शरीर का न तो वज़न ही कम होता है और न ही जीव को कहीं से निकलते जाते देखा जाता है।

कुमारकस्सप ने ढेर-सारी उपमाएं देकर पायासि राजन्य की इस मिथ्या-दृष्टि को दूर किया। इससे भाव-विभोर हो कर पायासि राजन्य ने कहा मैं भगवान गौतम की शरण जाता हूं, धर्म की भी, भिक्षु-संघ की भी। आज से आप जीवन भर के लिए मुझे अपना उपासक स्वीकार करें।

इस 'सुत्त' में यह भी समझाया गया है कि दान कैसे देना चाहिए। दान श्रद्धापूर्वक, अपने हाथ से, उत्तम मन से देना चाहिए।

दीघनिकाय भाग - ३

१. पाथिक सुत्त

एक समय भगवान मल्ल देश में अनुपिय नाम के निगम में विहार करते थे। एक दिन भिक्षाटन के लिए जाने से पूर्व वे भार्गव-गोत्र परिव्राजक के यहां चले गये। परिव्राजक ने उनसे पूछा क्या यह सही है कि लिच्छवि-पुत्र सुनक्खत्त ने आपको छोड़ दिया है।

भगवान ने कहा सुनक्खत्त ने मुझे कहा था कि मैं आपको छोड़ता हूं। मैं अब आप के धर्म-विनय याने अनुशासन को नहीं मानता। आप मुझे अलौकिक ऋद्धि-बल नहीं दिखलाते। आप मुझे लोगों में आगे करके उपदेश नहीं देते।

यह सुन कर मैंने उसे ही पूछा था कि क्या मैंने कभी तुझे कहा कि आ कर मेरे धर्म को स्वीकार कर, मैं तुझे अलौकिक ऋद्धि-बल दिखलाऊंगा, मैं तुझे लोगों में आगे करके उपदेश दूंगा । तूने ही वज्जिगाम में अनेक प्रकार से मेरी, धर्म की तथा संघ की प्रशंसा की थी। अब लोग तुम्हें ही दोष देंगे कि तुम श्रमण गौतम के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन करने में असमर्थ रहे। मेरे ऐसा कहने पर वह आपायिक के समान इस धर्म-विनय से चला गया।

तत्पश्चात भगवान ने कहा कि सुनक्खत्त के सामने अचेल कोरक्खत्तिय, अचेल कळारमट्टक तथा अचेल पाथिक के ऐसे प्रसंग भी उपस्थित हुए जिनमें इन लोगों के बारे में मैंने जो-जो भविष्यवाणी की थी वह वैसी-की-वैसी सही निकली। यह अलौकिक ऋद्धि-बल ही थे, फिर भी वह यही कहता रहा कि भगवान मुझे अलौकिक ऋद्धि-बल नहीं दिखलाते और वह इस धर्म-विनय से चला गया।

तदनंतर भगवान ने लोगों की इस मान्यता के बारे में प्रकाश डाला कि सृष्टि ईश्वर अथवा ब्रह्मा की बनायी हुई है। उन्होंने बतलाया कि कोई समय ऐसा आता है जब इस लोक का प्रलय हो जाता है। उस काल में भी आभस्सर योनि में जन्मे हुए प्राणी मनोमय, प्रीति-भोजी, स्वयं-प्रभ, अंतरिक्ष-गामी और यशस्वी होकर चिरकाल तक बने रहते हैं। बहुत समय के बाद फिर लोक की उत्पत्ति होती

है। उस समय शून्य ब्रह्म-विमान प्रकट होता है। तब आभस्सर लोक का कोई प्राणी उस लोक से च्युत हो कर इस विमान में उत्पन्न होता है। वह मनोमय, प्रीति-भोजी, स्वयं-प्रभ, अंतरिक्ष-गामी और यशस्वी बना रह कर, बहुत दिनों तक इसमें रहता है। फिर अकेले रह, जी ऊब जाने से दूसरे प्राणियों के आने की कामना करता है। तब आयु अथवा पुण्य के क्षय होने से दूसरे प्राणी भी उस विमान में उत्पन्न होते हैं और मनोमय, प्रीति-भोजी, स्वयं-प्रभ, अंतरिक्ष-गामी और यशस्वी बने रह कर, बहुत दिनों तक वहां टिकते हैं।

तब शून्य ब्रह्म-विमान में पहले उत्पन्न हुआ प्राणी सोचता है कि मैं ही ब्रह्मा, ईश्वर, कर्ता, निर्माता हूं। मेरे चाहने से ही ये दूसरे प्राणी उत्पन्न हुए हैं। बाद में उत्पन्न हुए प्राणी भी सोचते हैं कि यही ब्रह्मा, ईश्वर, कर्ता, निर्माता है क्योंकि हमने इसे यहां पर पहले से ही विद्यमान पाया था।

उन बाद में उत्पन्न हुए प्राणियों में से जब कोई प्राणी इस लोक में जन्म लेकर, समाधि का अभ्यास कर, अपने उस पूर्वजन्म-विशेष को स्मरण करता है, परंतु उससे पहले के जन्म को स्मरण नहीं करता, तब ऐसा कहने लगता है कि जो वह ब्रह्मा, ईश्वर, कर्ता, निर्माता है; जिसने हमें उत्पन्न किया, वह नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अ-विपरिणामधर्मा है और हम लोग, जो उनसे उत्पन्न हुए; अ-नित्य, अ-ध्रुव, अल्पायु एवं मरणधर्मा हैं।

इसी प्रकार कितने ही लोग खिड्डापदोसिक, मनोपदोसिक अथवा अधिच्चसमुप्पन्न देवता के आदिपुरुष होने के मत को मानते हैं। ये देवता भी अपनी-अपनी देवकाया छोड़कर इस लोक में उत्पन्न हो, समाधि के अभ्यास द्वारा, अपने पूर्वजन्म-विशेष को स्मरण कर, परंतु उससे पहले के जन्म को स्मरण न कर, गलत धारणा के शिकार हो जाते हैं।

परंतु मैं लोकों की अग्र अवस्था को प्रज्ञा से जानता हूं। मैं इसे तो प्रज्ञा से जानता ही हूं, इससे परे भी प्रज्ञा से जानता हूं, और उस प्रज्ञा से जाने हुए के प्रति आसक्ति नहीं करता हूं, और अनासक्त रह मैं अपने भीतर मुक्ति का अनुभव करता हूं, जिसे हर प्रकार से जान कर तथागत कभी दुःख नहीं पाते हैं।

यह कहने के उपरांत भगवान ने कहा कि कई लोग मुझ पर यह कहने का झूठा दोष लगाते हैं कि जिस समय शुभ विमोक्ष उत्पन्न करके योगी विहार करता है उस समय वह प्रज्ञा से सब कुछ अशुभ ही अशुभ देखता है। वस्तुतः मैं ऐसा

नहीं कहता। मेरा कहना तो यह है कि जिस समय शुभ विमोक्ष उत्पन्न करके योगी विहार करता है उस समय वह प्रज्ञा से सब कुछ शुभ ही शुभ देखता है।

इस पर परिव्राजक ने भगवान से प्रार्थना की कि आप मुझे उस धर्म का उपदेश करें जिससे मैं शुभ-विमोक्ष को उत्पन्न कर विहार कर सकूं। परंतु भगवान ने कहा कि दूसरे मत वाले, दूसरे विचार वाले, दूसरी रुचि वाले, दूसरे शासन का अनुगमन करने वाले, दूसरे आचार्य वाले लोगों के लिये शुभ-विमोक्ष को उत्पन्न कर विहार करना दुष्कर है।

२. उदुम्बरिक सुत्त

एक समय भगवान राजगह के गिज्झकूट पर्वत पर विहार करते थे। उस समय निग्रोध नाम का परिव्राजक तीन हजार परिव्राजकों की एक बड़ी मंडली के साथ उदुम्बरिका नामक आराम में वास करता था।

एक दिन निग्रोध नाना प्रकार की निरर्थक कथा-कहानियां कहती, शोर मचाती, अपनी मंडली के साथ बैठा था। इतने में भगवान के सन्धान नाम के श्रावक गृहपति वहां आ पहुँचे। गृहपति के साथ संलाप करते हुए निग्रोध ने भगवान के बारे में अपशब्द कहे कि उनकी बुद्धि मारी गयी है, वे सभा से मुँह चुराते हैं, संवाद करने में असमर्थ हैं, इत्यादि।

इतने में भगवान भी वहां पर आ गये। निग्रोध ने उनका स्वागत कर उनसे पूछा कि वह कौन सा धर्म है जिससे आप अपने श्रावकों को विनीत करते हैं, जिससे विनीत हुए-हुए वे आदि-ब्रह्मचर्य के पालन में आश्वासन पाते हैं। इस पर भगवान ने कहा कि अन्य मत वाले, अन्य सिद्धांत वाले, अन्य रुचि वाले, अन्य शासन का अनुगमन करने वाले, अन्य आचार्य वाले तुम लोगों को यह समझाना बहुत कठिन है, अतः तुम अपने मत के बारे में ही प्रश्न पूछो।

इस पर निग्रोध ने पूछा कि क्या होने से तप-जुगुप्सा पूरी होती है और क्या होने से पूरी नहीं होती। भगवान ने कहा यदि कोई तपस्वी अपने तप के कारण अपने मन में अहंकार, ईर्ष्या, मात्सर्यादि विकृतियां जगाता है अथवा अपनी मान्यता के प्रति चिपकाव पैदा कर लेता है तो ये उस तपस्वी के उपक्लेश होते हैं और यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह इन मामलों में परिशुद्ध बना रहता है।

फिर भगवान ने इससे आगे-से-आगे प्रशंसनीय और सार्थक तपों की जानकारी दी। जैसे –

* कोई व्यक्ति चार संयमों (चातुर्याम संवर) से सुरक्षित हो जाय अर्थात, न जीव-हिंसा करे, न करवाये, न इसमें सहमत हो; और इसी प्रकार चोरी न करने, झूठ न बोलने और पांच कामगुणों में प्रवृत्त न होने के बारे में सजग रहे। फिर प्रव्रज्या को निभाता हुआ, ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ, एकांत में स्मृति और संप्रज्ञान के साथ पांचों नीवरणों को दूर कर चित्त के उपक्लेशों को प्रज्ञा से दुर्बल करने के लिए मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा-युक्त चित्त से सभी दिशाओं में विहार करे।

* उक्त प्रकार से ब्रह्मविहार करने के बाद अपने पूर्व-जन्मों को स्मरण करने में लगे।

* उक्त प्रकार से अपने पूर्व-जन्मों को स्मरण करने के अनंतर अपने दिव्य-चक्षु से सत्वों की च्युति और उत्पाद को जानने लगे।

यहां पर भगवान ने कहा कि इतने से ही तप-जुगुप्सा श्रेष्ठ और सार्थक हो जाती है परंतु जिस धर्म में मैं अपने श्रावकों को विनीत करता हूं वह इससे बढ़-चढ़ कर है।

यह सुन कर परिव्राजक बहुत हल्ला करने लगे कि हम तो आचार्य-सहित मारे गये क्योंकि हम लोग इससे अधिक कुछ जानते नहीं।

इस अवसर को उचित जान गृहपति सन्धान ने निग्रोध को याद दिलाया कि तुम तो कहते थे कि भगवान की बुद्धि मारी गयी है, वे सभा से मुँह चुराते हैं, संवाद करने में असमर्थ हैं, इत्यादि। अब तुम क्यों नहीं प्रश्न करके उनको चक्कर खिलाते?

यह सुन कर निग्रोध को अपने कहे पर बहुत पश्चात्ताप हुआ और इसके लिए भगवान से कहा कि संयम न रखने के मेरे अपराध को क्षमा करें। भगवान ने उसे क्षमा करते हुए कहा कि आर्य-विनय में यह बुद्धिमानी ही समझी जाती है कि व्यक्ति भविष्य में संयम रखने के लिए अपने अपराध को स्वयं स्वीकार कर धर्मानुकूल प्रतिकार करे। उन्होंने उसे यह भी समझाया कि 'भगवान' बुद्ध हो बोध के लिए, दांत हो दमन के लिए, शांत हो शमन के लिए, तीर्ण हो तरण के लिए और परिनिवृत्त हो परिनिर्वाण के लिए धर्मोपदेश करते हैं।

भगवान ने यह भी कहा कि यदि कोई सज्जन, निश्छल, सरल स्वभाव वाला, बुद्धिमान मेरे पास आये, मैं उसे धर्म सिखाऊं और वह मेरी शिक्षा के अनुसार काम करे, तो जिस उद्देश्य के लिए कुलपुत्र घर से बेघर हो अनुपम ब्रह्मचर्य के अंतिम लक्ष्य को सात वर्ष में ही स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करने लगते हैं वह उस लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा। और सात वर्ष ही क्यों, इससे कहीं कम समय में भी प्राप्त कर सकता है।

भगवान ने निग्रोध को और भी समझाया कि तुम ऐसा मत सोचना कि मैं जो कुछ कह रहा हूं वह अपने चेलों की संख्या बढ़ाने के लिए, तुम्हें अपने उद्देश्य से डिगाने के लिए, तुमसे अपनी आजीविका छुड़वाने के लिए, तुम्हारे मताचार्यों की बुराइयों को दृढ़ करने के लिए अथवा उनकी अच्छाइयों से तुम्हें अलग करने के लिए है। मैं तो चाहता हूं कि अभी जो तुम्हारा आचार्य है, वही तुम्हारा आचार्य रहे, अभी जो तुम्हारा उद्देश्य है, वही तुम्हारा उद्देश्य रहे, अभी जो तुम्हारी आजीविका है, वही तुम्हारी आजीविका रहे, अभी जो अपने आचार्यों के साथ तुम्हारे अकुशल अथवा कुशल धर्म हैं, वे वैसे के वैसे बने रहें। मेरा धर्मोपदेश तो इसलिए है कि जो अ-नष्ट बुराइयां क्लेशों को उत्पन्न करने वाली, आवागमन की कारणभूत, सभी प्रकार की पीड़ाओं को देने वाली, दुःख-परिणाम वाली, जन्म, जरा और मृत्यु की कारण हैं, उनका नाश हो जाये जिससे कि तुम्हारे क्लेश देने वाले धर्म नष्ट हो जाएं और शुद्ध धर्म बढ़ें, और तुम प्रज्ञा की पूर्णता और विपुलता को प्राप्त हो, उसे इसी संसार में जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करने लगो।

३. चक्कवत्तिसुत्त

एक समय भगवान मगध के मातुला नामक स्थान पर विहार कर रहे थे। वहां पर उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि अपने आपको अपना द्वीप, अपना आश्रय, बना कर विहार करो; धर्म को अपना द्वीप, अपना आश्रय, बना कर विहार करो; कोई अन्य आश्रय मत देखो। और यह तब संभव हो पाता है जब कोई व्यक्ति स्मृति और संप्रज्ञान बनाये हुए, उद्योगशील हो, काया में कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करने वाला हो।

तत्पश्चात भगवान ने उनको दळ्हनेमि नामक चक्रवर्ती राजा का वृत्तांत

सुनाया। सात रत्नों से युक्त वह इस पृथ्वी को दंड और शस्त्र के बिना ही धर्म से जीत कर इस पर राज्य करता था। समय आने पर वह अपने ज्येष्ठ पुत्र कुमार को राज्य-भार सौंप कर प्रव्रजित हो गया। कुमार ने भी धर्मानुसार शासन किया और चक्रवर्ती राजा हुआ। इसके बाद के छह शासक भी चक्रवर्ती राजा हुए। ये सभी धर्म की रक्षा करने वाले होकर चक्रवर्ती-व्रत का पालन किया करते थे।

इनमें से अंतिम राजा ने बाकी सब कुछ तो किया परंतु निर्धनों को धन नहीं दिया जिससे निर्धनता बहुत बढ़ गयी और लोग एक दूसरे की वस्तुएं चुराने लगे। जब चेतावनी देने पर भी लोग इससे विरत नहीं हुए तब राजा ने तेज हथियारों से उनका सिर कटवाना शुरू किया। फिर राजा की देखा-देखी लोग भी तेज-तेज हथियार बनवाने लगे जिससे खून-खराबा बढ़ने लगा। इससे उनकी आयु भी घटने लगी, वर्ण भी घटने लगा। शनैः शनैः झूठ बोलना, चुगली खाना, स्त्रियों से दुराचार, कठोर वचन, निरर्थक प्रलाप, अनुचित लोभ, हिंसाभाव, मिथ्यादृष्टि, माता-पिता के प्रति गौरव का अभाव, श्रमणों-ब्राह्मणों और परिवार के बड़े-बूढ़ों के प्रति श्रद्धा का अभाव – इन बातों को प्रोत्साहन मिलने लगा। इनसे आयु और वर्ण का भी, उत्तरोत्तर ह्रास होने लगा।

अब एक ऐसा समय आयेगा जब सदाचार पूरी तरह लुप्त हो जायेगा और कदाचार खूब बढ़ जायेगा। माता-पिता का सम्मान न करने वालों की प्रशंसा होने लगेगी। माता, मौसी, मामी, गुरुपत्नी या बड़े लोगों की स्त्रियों का कुछ विचार न रहेगा। लोगों में एक दूसरे के प्रति बड़ा तीव्र क्रोध, प्रतिहिंसा, दुर्भावना पैदा होगी और वे तीक्ष्ण शस्त्रों से – 'यह मृग है, यह मृग है' – इस भाव से एक दूसरे के प्राण-लेवा हो जायेंगे।

ऐसी अवस्था आ जाने पर कुछ लोगों के मन में यह होगा कि पाप-कर्म करने से हम इस प्रकार के घोर जाति-विनाश को प्राप्त हुए हैं, अतः पुण्य करना चाहिए। हम लोग जीव-हिंसा से विरत हों। इससे उनकी आयु भी बढ़ने लगेगी, वर्ण भी। इससे वे और कुशल कर्म करने के लिए प्रोत्साहित होंगे, यथा चोरी से विरत रहना, व्यभिचार से विरत रहना, झूठ बोलने से विरत रहना, चुगली खाने से विरत रहना, कठोर वचन से विरत रहना, निरर्थक प्रलाप से विरत रहना, अनुचित लोभ, हिंसाभाव और मिथ्यादृष्टि को छोड़ देना और माता-पिता के प्रति गौरव का भाव तथा श्रमणों-ब्राह्मणों और परिवार के बड़े-बूढ़ों के प्रति श्रद्धा का

भाव अपनाना। इससे उनकी आयु और वर्ण की भी, उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जायेगी।

उस समय जम्बु-द्वीप अत्यंत समृद्ध और संपन्न होगा। उसमें सङ्ख नाम का चक्रवर्ती राजा उत्पन्न होगा जो इस पृथ्वी को दंड और शस्त्र के बिना ही धर्म से जीत कर इस पर अधिष्ठित होगा। उस समय मेत्तेय्य नाम के भगवान, अरहंत, सम्यक संबुद्ध संसार में उत्पन्न होंगे। वे भी देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण-ब्राह्मण सहित, देव-मनुष्य-युक्त इस लोक को स्वयं जान और साक्षात्कार कर उपदेश देंगे और अर्थपूर्ण, विशद, केवल परिपूर्ण और परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को प्रज्ञप्त करेंगे। राजा सङ्ख भी घर-बार छोड़ कर, उनके पास प्रव्रजित हुए, अ-प्रमत्त, संयमी और आत्म-निग्रही हो, विहार करते-करते, उसी जन्म में ब्रह्मचर्य की चरम उपलब्धि कर लेंगे।

इसके पश्चात भगवान ने फिर एक बार भिक्षुओं को स्वावलंबी बनने का उपदेश दिया, और यह भी समझाया कि –

* भिक्षु, इच्छा होने पर, चार ऋद्धिपादों (छंद, वीर्य, चित्त, मीमांसा) की भावना करने से अपनी आयु कल्प भर या इससे कुछ अधिक, कर सकता है – यही भिक्षु की 'आयु' होती है।

* जब भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्ष के संयम से संयत होकर विहार करता है, आचार-विचार से युक्त होता है, थोड़े भी बुरे कर्म से भय खाता है, नियमों (शिक्षापदों) के अनुसार आचरण करता है – यही उसका 'वर्ण' होता है।

* जब भिक्षु प्रथम, द्वितीय, तृतीय अथवा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है – यही उसका 'सुख' होता है।

* जब भिक्षु मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा-भरे चित्त से सभी दिशाओं में विहार करता है – यही उसका 'भोग' होता है।

* जब भिक्षु आस्रवों (चित्त-मलों) के क्षय हो जाने से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जन्म में जान कर, साक्षात्कार कर विहार करता है – यही उसका 'बल' होता है।

४. अग्गञ्‍ञसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में पुब्बाराम में विहार करते थे। उस समय वासेट्ठ और भारद्वाज नाम के दो ब्राह्मण प्रव्रज्या लेने की दृष्टि से भिक्षुओं के साथ परिवास करते थे।

एक दिन भगवान ने वासेट्ठ से पूछा कि तुम ब्राह्मण कुल से प्रव्रज्या लेने के लिए आये हो। क्या इस कारण ब्राह्मण लोग तुम्हारी निंदा अथवा परिहास नहीं करते हैं?

वासेट्ठ ने कहा ये लोग कहते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण हीन हैं; ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण हैं, दूसरे वर्ण कृष्ण हैं; ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अ-ब्राह्मण नहीं; ब्राह्मण ही ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए पुत्र, ब्रह्मजात, ब्रह्मनिर्मित तथा ब्रह्मदायाद हैं। ये मुंडे श्रमण नीच, कृष्ण, भ्रष्ट और ब्रह्मा के पैर से उत्पन्न हुए हैं। यह उचित नहीं है कि तुम लोग श्रेष्ठ वर्ण को छोड़ कर नीच वर्ण के हो जाओ। इस प्रकार ये ब्राह्मण लोग हमारी निंदा अथवा परिहास करते रहते हैं।

इस पर भगवान ने कहा ये लोग पुरानी बातों को भूल जाने के कारण ही ऐसा कहते हैं। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र चार वर्ण हैं। इन सभी में कृष्ण और शुक्ल धर्मों को करने वाले – दोनों प्रकार के लोग पाये जाते हैं। तो ब्राह्मण यह कैसे कह सकते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं? विद्वान लोग ऐसा नहीं मानते, क्योंकि इन्हीं चार वर्णों में जो भिक्षु अरहंत, क्षीणाश्रव, ब्रह्मचारी, कृतकृत्य, भारमुक्त, परमार्थ-प्राप्त, शिथिल भव-बंधन वाला और सर्वोत्कृष्ट ज्ञान के कारण विमुक्त हो जाता है, वह सभी से आगे बढ़ जाता है।

भगवान ने आगे समझाया कि धर्म ही मनुष्य में श्रेष्ठ है। जिस किसी की तथागत में अटूट श्रद्धा होती है, वह किसी भी श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या संसार में अन्य किसी से भी डिगाया नहीं जा सकता और उसका यह कहना ठीक होता है कि मैं भगवान के मुख से उत्पन्न, धर्म से उत्पन्न, धर्म-निर्मित और धर्म-दायाद पुत्र हूं। यह इसलिए, क्योंकि धर्म-काय, ब्रह्म-काय, धर्म-भूत, ब्रह्म-भूत – ये तथागत के ही नाम हैं।

तत्पश्चात भगवान ने प्रलय के बाद सृष्टि के क्रमिक विकास और प्राणियों की क्रमिक अवनति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। प्राणियों के नैतिक पतन का

उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि जब स्थिति यहां तक बिगड़ गयी कि लोगों ने धान के खेतों का बँटवारा कर इनके इर्द-गिर्द मेड़ बांध दी, तब कोई कोई लोभी सत्व अपने भाग को बचा कर दूसरे के भाग को चुराने लगे। कई बार चेतावनी देने पर भी जब इस प्रवृत्ति में कोई सुधार नहीं हुआ तब लोगों ने हाथ से, ढेले से, लाठी से मारामारी शुरू कर दी। उसी के बाद से चोरी, निंदा, मिथ्या-भाषण और दंड-कर्म होने लगे।

तब प्राणियों को अहसास हुआ कि हम में पाप जागा है जैसा कि हम चोरी, निंदा, मिथ्या-भाषण और दंड-कर्म करते हैं। अतः हम क्यों न एक ऐसे प्राणी का चयन करें जो सचमुच क्रोध करने योग्य बात पर क्रोध करे, निंदनीय कर्मों की निंदा करे और निकालने योग्य को निकाल दे। इसके लिए हम उसे अपने धान में से हिस्सा दें।

तत्पश्चात उन प्राणियों ने इस काम के लिए अपने में से सुंदर, सुरूप, प्रासादिक और महाशक्तिशाली व्यक्ति का चयन कर लिया जो ठीक से उचितानुचित का अनुशासन करने लगा और लोग उसे धान का अंश देने लगे। महाजनों द्वारा सम्मत होने से उसका नाम 'महासम्मत' पड़ा, क्षेत्रों का अधिपति होने से उसका नाम 'क्षत्रिय' पड़ा और धर्म से दूसरों का रंजन करने से उसका नाम 'राजा' पड़ा।

तब उन्हीं प्राणियों में से किन्हीं-किन्हीं के मन में यह हुआ कि हम में पाप जागा है जैसा कि हम चोरी, निंदा, मिथ्या-भाषण और दंड-कर्म करते हैं। अतः हम पाप करना छोड़ दें। उन लोगों ने पाप करना छोड़ (बाह) दिया, इससे उनका नाम 'ब्राह्मण' पड़ा। वे जंगल में पर्णकुटी बना कर वहां ध्यान करते रहते थे, इससे उनका नाम 'ध्यायक' पड़ा। इन्हीं में से कुछ लोग ध्यान पूरा न कर सकने के कारण ग्राम या निगम के पास आकर ग्रंथ बनाते हुए रहने लगे। ध्यान न करने के कारण इनका नाम 'अ-ध्यायक' पड़ा। उस समय ऐसा व्यक्ति हीन समझा जाता था, आज वह श्रेष्ठ समझा जाता है।

उन्हीं प्राणियों में से कितने ही मैथुन-कर्म करके अलग-अलग कामों (विष्वक्कर्मांत) में लग गए। इससे उनका नाम 'वैश्य' पड़ा। बचे हुए जो प्राणी क्षुद्र आचार वाले थे, वे 'शूद्र' कहलाए।

क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र – इन चार मंडलों से ही श्रमण-मंडल की उत्पत्ति हुई। परंतु इहलोक तथा परलोक में मनुष्यों में धर्म ही श्रेष्ठ है।

भले ही कोई क्षत्रिय हो या ब्राह्मण, या वैश्य, या शूद्र, या श्रमण, वह काया, वाणी और मन से दुराचार कर, मिथ्या-दृष्टि वाला हो, मृत्यु के उपरांत नरक में पैदा होता है; काया, वाणी और मन से सदाचार कर, सम्यक दृष्टि वाला हो, मृत्यु के उपरांत स्वर्ग में पैदा होता है; काया, वाणी और मन से दोनों प्रकार के कर्म कर, मिश्रित दृष्टि वाला हो, मृत्यु के उपरांत सुख-दुःख दोनों भोगता है। और यदि वह सैंतीस बोधिपक्षीय धर्मों की भावना करे तो इसी लोक में निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

चारों वर्णों में जो भिक्षु अरहंत, क्षीणाश्रव, ब्रह्मचारी, कृतकृत्य, भारमुक्त, परमार्थ-प्राप्त, शिथिल भव-बन्धन वाला और सर्वोत्कृष्ट ज्ञान के कारण मुक्त हो जाता है, वही उनमें श्रेष्ठ कहलाता है। धर्म ही मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है – इहलोक में भी, परलोक में भी।

'गोत्र लेकर चलने वाले लोगों में क्षत्रिय श्रेष्ठ होता है; विद्या और आचरण से युक्त, देवों वा मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है।'

५. सम्पसादनीयसुत्त

एक समय नाळन्दा के पावारिक आम्रवन में भगवान के विहार करते समय सारिपुत्त ने उनसे कहा कि 'संबोधि' (परम ज्ञान) में आप से बढ़ कर न कोई हुआ है, न होगा, न है।

इसके लिए भगवान ने उन्हें ताड़ना दी कि जब तुम्हें न तो अतीत के बुद्धों का ज्ञान है, न अनागत बुद्धों का और न तुम वर्तमान बुद्ध के बारे में ही पूरी तरह जानते हो तो फिर मेरे बारे में ऐसा परम उदार सिंहनाद क्यों?

इस पर सारिपुत्त ने अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया कि भले सभी बुद्धों का मुझे चेतःपरिज्ञान नहीं है, किन्तु सभी की धर्म-समानता मुझे विदित है। अतीत काल के बुद्धों ने पांचों नीवरणों को दूर कर, प्रज्ञा द्वारा चित्त के मैल हटा, चारों स्मृति-प्रस्थानों में चित्त को सु-प्रतिष्ठित कर, सात बोध्यंगों की यथार्थ से भावना कर, सर्वश्रेष्ठ सम्यक संबोधि को प्राप्त किया था। भविष्य काल में भी बुद्ध ऐसे

ही सम्यक संबोधि प्राप्त करेंगे। और आप भगवान ने भी इसे इसी तरह प्राप्त किया है।

तदनंतर सारिपुत्त ने बुद्ध की विशेषताओं का उल्लेख किया –

* यह भगवान सम्यक संबुद्ध हैं, इनका धर्म अच्छी तरह आख्यात किया हुआ है, इनका श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।
* ये चार स्मृति-प्रस्थान, चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रिय, पांच बल, सात बोध्यंग, आर्य अष्टांगिक मार्ग –इन कुशल धर्मों का उपदेश देते हैं।
* ये चक्षु एवं रूप, श्रोत्र एवं शब्द, घ्राण एवं गंध, रसना एवं रस, काया एवं स्पर्श, और मन एवं धर्म – इन आयतन-प्रज्ञप्तियों का उपदेश करते हैं।
* ये चार प्रकार से प्राणियों के गर्भ-प्रवेश के बारे में उपदेश करते हैं।
* ये चार प्रकार की आदेशना-विधि का धर्मोपदेश करते हैं।
* ये चार प्रकार की दर्शन-समापत्तियों के बारे में बतलाते हैं।
* ये पुद्गलप्रज्ञप्ति-विषयक उपदेश करते हैं।
* ये प्रधानों के बारे में उपदेश करते हैं।
* ये चार प्रकार की प्रतिपदा के बारे में उपदेश करते हैं।
* ये वाचिक आचरण के बारे में धर्मोपदेश करते हैं।
* ये शील-संबंधी आचरण के बारे में धर्मोपदेश करते हैं।
* ये सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी तथा अरहंत – इनसे संबंधित अनुशासन-विधि का उपदेश करते हैं।
* ये परपुद्गलविमुक्तिज्ञान को उपदेशते हैं।
* ये तीन प्रकार के शाश्वत-वादों को लेकर धर्मोपदेश करते हैं।
* ये अनेक प्रकार के पूर्व-जन्मों को आकार और नाम के साथ स्मरण करते हैं और सत्वों की च्युति तथा उत्पत्ति के बारे में भी धर्मोपदेश करते हैं।
* ये ऋद्धिविध (दिव्य शक्तियों) के बारे में धर्मोपदेश करते हैं।

तत्पश्चात भगवान ने सारिपुत्त के इस कथन को धर्मानुकूल बतलाया कि अतीत काल में जो अरहंत सम्यक संबुद्ध थे वे संबोधि में भगवान के बराबर थे और जो अनागत काल में होंगे वे भी उनके बराबर होंगे। उन्होंने यह भी प्रज्ञप्त किया कि एक ही लोक धातु में एक ही समय दो अरहंत सम्यक संबुद्ध नहीं हो सकते।

भगवान ने सारिपुत्त से कहा तुम भिक्षु-भिक्षुणियों तथा उपासक-उपासिकाओं को यह धर्मोपदेश देते रहो। इससे जिन अजान व्यक्तियों को तथागत के बारे में कोई संशय अथवा संदेह होगा वह दूर हो जायेगा।

सारिपुत्त द्वारा इस प्रकार भगवान के सम्मुख अपना संप्रसाद (श्रद्धाभाव) व्यक्त करने के कारण इस उपदेश का नाम'सम्पसादनीय' पड़ा।

६. पासादिक सुत्त

एक समय भगवान शाक्य-देश में वेधञ्ञा नामक शाक्यों के अम्बवन प्रासाद में विहार करते थे।

उस समय निर्ग्रंथ नाटपुत्त की पावा में हाल ही में मृत्यु हुई थी। उनके मरने पर निर्ग्रंथों में फूट पड़ गयी और धर्म-विनय को लेकर आपस में वाग्युद्ध होने लगा। उनके गृहस्थ शिष्य भी धर्म में अन्यमनस्क हो खिन्न और विरक्त रहने लगे।

चुन्द नाम के व्यक्ति से यह समाचार जान कर आयुष्मान आनन्द उसे अपने साथ ले कर भगवान के पास गये और उन्हें भी इसकी जानकारी दी। भगवान ने कहा जहां शास्ता सम्यक संबुद्ध नहीं होता, धर्म दुराख्यात, दुष्प्रवेदित, पार न लगाने वाला, शांति न पहुँचाने वाला होता है और उस धर्म में श्रावक धर्मानुसार मार्गारूढ़ होकर विहार नहीं करते, वहां शास्ता की भी निंदा होती है, धर्म की भी, श्रावक की भी।

इस समय लोक में मैं अरहंत, सम्यक संबुद्ध, शास्ता उत्पन्न हुआ हूं, धर्म स्वाख्यात, सुप्रवेदित, पार लगाने वाला, शांति पहुँचाने वाला है; और मेरे श्रावक सद्धर्म का आशय समझते हैं और उनका ब्रह्मचर्य सांगोपांग तथा सब तरह से परिपूर्ण है। मेरा यह ब्रह्मचर्य समृद्ध, उन्नत, विस्तारित, प्रसिद्ध, विशाल और देवों तथा मनुष्यों में सु-प्रकाशित है।

मैंने स्वयं जान कर जिन धर्मों का उपदेश किया है उनका सभी को मिलजुल

कर संगायन करना चाहिए। उनमें विवाद नहीं करना चाहिए। ये धर्म हैं – चार स्मृति-प्रस्थान, चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रिय, पांच बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग। मेरा धर्मोपदेश ऐहलौकिक और पारलौकिक – दोनों ही आस्रवों के संवर और नाश के लिए होता है।

सुखोपभोग दो प्रकार के होते हैं – एक वे जो निकृष्ट, मूढ़ों द्वारा सेवित, अनर्थयुक्त होते हैं जिनका प्रयोजन न निर्वेद, न विराग, न निरोध, न शांति, न अभिज्ञा, न संबोधि और न निर्वाण होता है; दूसरे वे जो एकांत-निर्वेद, विराग, निरोध, शांति, अभिज्ञा, संबोधि और निर्वाण के लिए होते हैं। पहली प्रकार के सुखोपभोग हैं – जीवों का वध कर, चोरी कर, झूठ बोल, पांच कामगुणों से सेवित हो आनंद मनाना। दूसरी प्रकार के सुखोपभोग हैं – चारों ध्यानों को प्राप्त कर विहार करना। इसके चार फल हो सकते हैं – १. तीन संयोजनों के नाश से अविनिपातधर्मा, नियत संबोधि-परायण सोतापन्न होना; २. तीन संयोजनों के नाश के अतिरिक्त राग, द्वेष और मोह के दुर्बल हो जाने से सकदागामी होना; ३. पांच अवरभागीय संयोजनों के नष्ट हो जाने से औपपातिक देवता हो वहीं निर्वाण पा लेना; और ४. आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चेतोविमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्ति को यहीं स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर, विहार करना।

जानन-हार, देखन-हार, अरहंत, सम्यक संबुद्ध अपने श्रावकों को जो धर्म-देशना देते हैं वह यावज्जीवन अनुल्लंघनीय रहती है, जैसे नीचे तक अच्छी तरह गड़ा हुआ इंद्रकील अचल और दृढ़ होता है। जो भिक्षु ब्रह्मचर्य को पूरा कर, कृतकृत्य, भारमुक्त, परमार्थ-प्राप्त, सांसारिक बंधनों से मुक्त, क्षीणाश्रव, अरहंत हो जाते हैं वे नौ बातों के अ-योग्य हो जाते हैं – १. जान बूझ कर जीव-हिंसा करना; २. चोरी करना; ३. मैथुन-सेवन; ४. जान बूझ कर झूठ बोलना; ५. गृहस्थ-काल के सांसारिक भोगों को जोड़ना-बटोरना; ६. राग का मार्ग अपनाना; ७. द्वेष का मार्ग अपनाना; ८. मोह का मार्ग अपनाना; ९. भय का मार्ग अपनाना।

तथागत अतीत, अनागत और प्रत्युत्पन्न धर्मों के विषय में कालोचित वक्ता, सत्य-वक्ता, अर्थवादी, धर्मवादी, विनयवादी होते हैं। उनको वह सब मालूम रहता है जो देवताओं, मार, ब्रह्मा सहित लोक की देव-मनुष्य-श्रमण-ब्राह्मण-सहित जनता ने देखा, सुना, पाया, जाना, खोजा, मन से विचारा होता है। जिस रात्रि को तथागत अनुपम सम्यक संबोधि प्राप्त करते हैं

और जिस रात्रि को उपाधि-रहित परिनिर्वाण प्राप्त करते हैं, इन दो घटनाओं के बीच में जो कुछ कहते हैं, जो निर्देश देते हैं, वह सब वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं। इसीलिए तथागत यथावादी तथाकारी और यथाकारी तथावादी होते हैं।

तत्पश्चात भगवान ने 'अव्याकृत' और 'व्याकृत' विषयों की चर्चा करते हुए कहा कि वही विषय व्याकरणीय (विवेचन-योग्य) होते हैं जो अर्थोपयोगी, धर्मोपयोगी, ब्रह्मचर्योपयोगी अथवा एकांत-निर्वेद, विराग, निरोध, शांति, ज्ञान, संबोधि, निर्वाण के लिए हों, जैसे – 'यह दुःख है', 'यह दुःख का समुदय है', 'यह दुःख का निरोध है', 'यह दुःख-निरोध का उपाय है।'

तदुपरांत उन्होंने पूर्वांत और अपरांत दृष्टियों की चर्चा करते हुए कहा कि जो लोग केवल अपनी दृष्टि को सच और बाकी सब को झूठ बतलाते हैं, मैं उनसे सहमत नहीं हूं क्योंकि ऐसे मामलों में अलग प्रकार से सोचने वाले लोग भी होते हैं। इस प्रज्ञप्ति में मैं किसी को अपने समान भी नहीं देखता, अपने से बढ़ कर कहां? बल्कि प्रज्ञप्ति में मैं ही बढ़-चढ़ कर हूं। इन सभी दृष्टियों को दूर करने के लिए मैंने चार स्मृति-प्रस्थान प्रज्ञप्त किये हैं – स्मृति और संप्रज्ञान बनाये हुए, उद्योगशील हो, काया में कायानुपश्यना करना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना करना, चित्त में चित्तानुपश्यना करना, धर्मों में धर्मानुपश्यना करना।

७. लक्खणसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि महापुरुष के बत्तीस शरीर लक्षण होते हैं। इन लक्षणों से युक्त व्यक्ति की दो ही गतियां होती हैं, कोई अन्य नहीं। यदि वह घर में रहता है तो धार्मिक, धर्म-राजा, चारों ओर विजय पाने वाला, लोगों की भलाई का संरक्षक, सात रत्नों से युक्त चक्रवर्ती राजा होता है। वह सागर-पर्यंत इस पृथ्वी को दंड और शस्त्र के बिना ही धर्म से जीत कर इस पर प्रतिष्ठित होता है। यदि वह घर से बे-घर हो कर प्रव्रजित होता है तो संसार के आवरण को हटाने वाला अरहंत, सम्यक संबुद्ध होता है।

तत्पश्चात भगवान ने बत्तीस महापुरुष-लक्षणों का विवरण देते हुए कहा कि इन लक्षणों को बाहर के ऋषि भी जानते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि किस-किस कर्म के करने से किस-किस लक्षण का लाभ होता है।

तदनंतर भगवान ने यह स्पष्ट किया कि तथागत द्वारा अपने पूर्व के जन्मों में मनुष्य का जीवन बिताते हुए किस-किस प्रकार के उत्तम कर्म किये जाते हैं जिनके फलस्वरूप वर्तमान जीवन में महापुरुष-लक्षण प्रकट हो जाते हैं, और ऐसे लक्षणों वाला व्यक्ति यदि चक्रवर्ती राजा बने तो उसे किस-किस बात की उपलब्धि होती है और यदि वह सम्यक संबुद्ध बने तो उसे क्या-क्या उपलब्धि होती है।

तथागत द्वारा अपने पूर्व-जन्मों में किये जाने वाले कर्म ऐसे होते हैं, जैसे – सदाचार का जीवन जीना, बहुत लोगों को सुख पहुँचाना, जीव-हिंसा से विरत रहना, उत्तम भोजन का दान, लोगों का परस्पर मेल कराना, अर्थ-धर्म-युत वाणी, श्रद्धापूर्वक कलाएं सीखना, हित-जिज्ञासा, अक्रोध, वस्त्र-दान, बिछुड़े हुओं का मेल कराना, योग्य-अयोग्य पुरुष का विचार, परहित-आकांक्षा, दूसरों को न सताना, प्रिय-दृष्टि, कुशल कर्मों में अगुआपन, सच्ची प्रतिज्ञा करना, कलह मिटाना, मीठा बोलना, भावपूर्ण वचन, सम्यक आजीविका।

८. सिङ्गालसुत्त

एक समय भगवान राजगह में वेळुवन के कलन्दक निवापमें विहार करते थे। उन दिनों एक तरुण गृहस्थ सिङ्गाल ने उनसे यह जानना चाहा कि आर्य-विनय में छह दिशाओं को नमस्कार कैसे किया जाता है।

इस पर भगवान ने कहा जब आर्य-श्रावक के चार कर्म-क्लेश नष्ट हो गये होते हैं, वह चार स्थानों से पाप-कर्म नहीं करता और छह अपाय-मुखों का सेवन नहीं करता –तब वह चौदह पापों से दूर हो, छह दिशाओं को प्रतिच्छादित कर दोनों लोकों की विजय में लग जाता है और मरने पर स्वर्ग-लाभ करता है।

चार कर्म-क्लेश हैं – जीव-हिंसा, चोरी, व्यभिचार और असत्य-भाषण।

पाप-कर्म न करने वाले चार स्थान हैं –छंद, द्वेष, मोह और भय के रास्ते न जाना।

छह अपाय-मुख (विनाश के हेतु) हैं –नशे का सेवन, संध्या-समय चौरस्ते की सैर, नाच-तमाशे में लगना, जुआ और दूसरी मस्तिष्क बिगाड़ने वाली प्रवृत्तियों में लगना, बुरे मित्र की मिताई और आलस्य में फँसना।

तत्पश्चात भगवान ने बतलाया कि इन चार को मित्र के रूप में अ-मित्र

जानना चाहिए – परधनहारक ,बातूनी, खुशामदी तथा विनाश में सहायक ।और इन चार मित्रों से सुहृद जानना चाहिए – उपकार करने वाला, सुख-दु:ख में समान भाव रखने वाला, अर्थ की प्राप्ति का उपाय बतलाने वाला और अनुकंपा करने वाला।

तदुपरांत भगवान ने छह दिशाओं के प्रतिच्छादन के बारे में समझाया – माता-पिता को पूर्व-दिशा, आचार्यों को दक्षिण-दिशा, पुत्र-स्त्री को पश्चिम-दिशा, मित्र-अमात्यों को उत्तर-दिशा, दास-कर्मकरों को नीचे की दिशा और श्रमण-ब्राह्मणों को ऊपर की दिशा जानना चाहिए।

भगवान ने यह भी प्रज्ञप्त किया कि इन लोगों की सेवा कितने-कितने प्रकार से की जानी चाहिए और सेवा पाकर ये लोग सेवा करने वाले पर किस-किस प्रकार से अनुकंपा करने लगते हैं। ऐसा होने पर विभिन्न दिशाएँ प्रच्छन्न (ढँकी हुई), क्षेमयुक्त और निरापद हो जाती हैं।

९. आटानाटियसुत्त

एक समय भगवान राजगह के गिज्झकूट पर्वत पर विहार करते थे। उस समय चारों दिशाओं के अभिपालक महाराजा (वेस्सवण, धतरट्ठ, विरुळ्हक और विरुपक्ख) अपने यक्षों, गंधर्वों, कूष्मांडों तथा नागों की विशाल सेना के साथ उनके पास गये।

वहां पर वेस्सवण महाराज ने भगवान से कहा कि बहुत से यक्ष आपसे प्रसन्न हैं और बहुत से अ-प्रसन्न। आप जीव-हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलने और नशे का सेवन करने से विरत रहने का धर्मोपदेश करते हैं। जो-जो यक्ष इनसे विरत नहीं रहते हैं, उनको आपका धर्मोपदेश सुहाता नहीं है। आपके श्रावक जंगलों में एकांतवास करते हैं। वहां पर बड़े-बड़े यक्ष भी निवास करते हैं, जो आपके इस प्रवचन से अ-प्रसन्न हैं। उनको प्रसन्न रखने के लिए भिक्षुओं, भिक्षुणिओं, उपासकों, उपासिकाओं की रक्षा, अ-विहिंसा और सुख-विहार के लिए आटानाटिय रक्षा (अनुमोदनार्थ) ग्रहण करें।

भगवान की मौन-स्वीकृति पाकर वेस्सवण महाराज ने 'आटानाटिय रक्षा' कही।

इसके अंतर्गत उन्होंने सर्वप्रथम भगवान विपस्सी से लेकर शाक्यपुत्र गोतम

तक सातों बुद्धों को नमस्कार किया। तत्पश्चात चारों महाराजाओं और उनके प्रभुत्व का वर्णन किया। तदुपरांत रक्षा न मानने वाले यक्षों को प्राप्त होने वाले दंड का उल्लेख किया और अंततः यह भी बतलाया कि यदि कोई अ-मनुष्य द्वेषयुक्त चित्त से श्रावकों के पीछे लग जाये तो उस समय किन यक्षों, महायक्षों, सेनापतियों, महासेनापतियों को टेर देनी चाहिए।

तत्पश्चात चारों महाराजा और इसी प्रकार यक्ष भी अपने-अपने आसन से उठ कर और भगवान का अभिवादन कर वहां से अंतर्धान हो गये।

रात बीत जाने पर भगवान ने भिक्षुओं को भी उपरोक्त प्रसंग की जानकारी दी और उनसे कहा आटानाटिय रक्षा को सीखो, इसमें कुशल हो जाओ, इसे धारण करो। आटानाटिय रक्षा भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों और उपासिकाओं के बचाव, अभिरक्षण, अविहिंसा एवं सुख-विहार के लिए सार्थक है।

१०. संगीतिसुत्त

एक समय भगवान भिक्षुओं के महासंघ के साथ मल्ल-देश में चारिका करते हुए पावा-नामक नगर में पहुँचे। वहां पर नगरवासियों के अनुरोध पर भगवान ने उनके द्वारा हाल ही में बनाये गये सन्थागार (प्रजातंत्र भवन) में आकर धार्मिक कथा सुना कर उन्हें संप्रहर्षित किया।

नगरवासियों के चले जाने के पश्चात भगवान ने भिक्षु-संघ को धार्मिक कथा कहने के लिए आयुष्मान सारिपुत्त से कहा और स्वयं विश्राम करने के लिए लेट गये।

आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि निर्ग्रंथ नाटपुत्त ने पावा में अभी-अभी प्राण छोड़े हैं और तभी से निर्ग्रंथों में फूट पड़ गयी है। वे एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगा रहे हैं कि तुम धर्म-विनय को नहीं जानते, तुम मिथ्यारूढ़ हो, तुम्हारा कथन अर्थवान नहीं है, तुम पहले कहने वाली बात को पीछे कहते हो और पीछे कहने वाली बात को पहले, तुम्हारा वाद उल्टा है, इत्यादि-इत्यादि। इसका कारण यह है कि नाटपुत्त द्वारा प्रतिपादित धर्म दुराख्यात, दुष्प्रवेदित, अ-नैर्याणिक, अनुपशम-संवर्तनिक, अ-सम्यक-संबुद्ध-प्रवेदित, प्रतिष्ठा-रहित और आश्रय-रहित था। परंतु हमारे भगवान द्वारा प्रतिपादित धर्म स्वाख्यात (अच्छी प्रकार बतलाया गया),

सु-प्रवेदित (ठीक प्रकार से प्रकट किया गया), नैर्याणिक (दुःख से पार ले जाने वाला), उपशम-संवर्तनिक (शांति-दायक),सम्यक-संबुद्ध-प्रवेदित (सम्यक संबुद्ध द्वारा प्रकट किया गया) है। इसे सभी को समान रूप से संगायन करना चाहिए, विवाद नहीं करना चाहिए, जिससे यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हो, बहुत लोगों के हित-सुख के लिए हो, लोक पर अनुकंपा करने वाला हो, देवताओं तथा मनुष्यों के भले और हित-सुख के लिए हो।

तत्पश्चात आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धर्मों को एक से लेकर दस तक की संख्या में वर्गीकृत करते हुए भिक्षुओं को उनका संगायन करते रहने और उनमें विवाद न करने के लिए कहा जिससे ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हो। आयुष्मान सारिपुत्त ने बार-बार इस बात को दोहराया है कि इन धर्मों का भली प्रकार आख्यान इनके जानन-हार, देखन-हार, अरहंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध ने किया है।

११. दसुत्तरसुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ चम्पा में गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर विहार कर रहे थे। वहां पर आयुष्मान सारिपुत्त ने उन भिक्षुओं को आमंत्रित कर उन्हें सब ग्रंथियों का विमोचन करने वाले 'दसुत्तर' धर्म का बखान किया जिससे कि वे अपने-अपने दुःखों का अंत कर निर्वाण-लाभ कर सकें।

आयुष्मान सारिपुत्त ने प्रज्ञप्त किया है कि 'दसुत्तर' धर्मों में कौन-कौनसे धर्म उपकारक, भावनीय, परिज्ञेय, प्रहातव्य, हानभागीय, विशेषभागीय, दुष्प्रतिवेध्य, उत्पादनीय, अभिज्ञेय अथवा साक्षात्कार किये जाने के योग्य हैं।

ये सभी धर्म वास्तविकता पर आधारित, तथ्यपूर्ण, यथार्थ और भगवान तथागत द्वारा सम्यक प्रकार से अपनी बोधि द्वारा जाने गये हैं।

मज्झिमनिकाय भाग - १

१. मूलपरियायवग्ग

१. मूलपरियायसुत्त

एक समय भगवान उक्कट्ठा के सुभगवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को समस्त धर्मों के मूल का उपदेश दिया। उन्होंने कहा –

"इस संसार में पृथग्जन पृथ्वी को पृथ्वी के तौर पर जानता है, और इसे ऐसा जानकर इसको मानता है, इसमें मानता है, इससे मानता है, 'यह मेरी है' –ऐसा मानता है और इसका अभिनंदन करता है। वह ऐसा इसलिए करता है क्योंकि उसे पूरी सच्चाई ज्ञात नहीं है।

"ऐसा व्यक्ति जैसा पृथ्वी के बारे में जानता है, वैसा ही जल, अग्नि, वायु, भूत (प्राणी), देव, प्रजापति, ब्रह्मा, आभास्वर, शुभकृत्स्न, वेहप्फल, अभिभू, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यातन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन, दृष्ट, श्रुत, मुत (घायित, सायित, फुसित), विज्ञात, एकत्व, नानात्व, सर्व और निर्वाण के बारे में जानता है।

"ऐसे ही वह भिक्षु भी जो अभी शैक्ष्य है, अर्हंत नहीं हुआ है, सर्वोत्कृष्ट योगक्षेम की तलाश में विहरता है, पृथ्वी, जल, अग्नि आदि को उक्त प्रकार से सन्देह के साथ जानता है। उसके ऐसा जानने का कारण यह है कि उसे अभी सीखना है।

"जो भिक्षु अर्हंत हो गया है, आस्रव-रहित हो गया है, ब्रह्मचर्यवास पूरा कर चुका है, जो करना था सो कर चुका है, जिसने अपना बोझ उतार दिया है, जिसने सदर्थ (निर्वाण) प्राप्त कर लिया है, जिसके सांसारिक बंधन नष्ट हो चुके हैं, जो सम्यक ज्ञान के आधार पर विमुक्त हो चुका है, वह पृथ्वी को पृथ्वी के तौर पर जानता है, और इसे ऐसा जान कर इसको न मानता है, न इसमें मानता

है, न इससे मानता है, न 'पृथ्वी मेरी है' – ऐसा मानता है, और न इसका अभिनंदन करता है। वह ऐसा इसलिए करता है क्योंकि उसे पूरी सच्चाई ज्ञात रहती है।

"ऐसे ही उसे जल, अग्नि, वायु आदि के बारे में पूरी सच्चाई ज्ञात रहती है।

"अर्हंत-अवस्था-प्राप्त, आस्रव-रहित व्यक्ति के समान ही वीतराग, वीतद्वेष, वीतमोह व्यक्ति को इनके बारे में पूरी सच्चाई ज्ञात रहती है।

"अर्हंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध, तथागत को भी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि के बारे में पूरी सच्चाई ज्ञात रहती है।

"अर्हंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध, तथागत पृथ्वी को पृथ्वी के तौर पर जानता है, और इसे ऐसा जान कर न इसको मानता है, न इसमें मानता है, न इससे मानता है, न 'पृथ्वी मेरी है' – ऐसा मानता है, और न इसका अभिनंदन करता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह जानकर कि 'नन्दी (तृष्णा) दुःख का मूल है', वह जान लेता है कि भव से जन्म और जन्मे हुए को बुढ़ापा और मृत्यु अवश्यंभावी है। इसलिए वह सारी तृष्णाओं के क्षय, विराग, निरोध, त्याग, प्रतिनिःसर्ग से सर्वोत्कृष्ट सम्यक संबोधि (यथार्थ परमज्ञान) को प्राप्त है।"

सुनने वाले भिक्षुओं ने भगवान के भाषण का अभिनंदन नहीं किया (क्योंकि वे इसका आशय नहीं समझ पाए)।

२. सब्बासवसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को सारे आस्रवों के संवर से संबंधित उपदेश दिया।

भगवान ने आरंभ में ही स्पष्ट कर दिया कि मैं आस्रवों (चित्त-मलों) के क्षय के बारे में स्वयं जानते हुए, देखते हुए उपदेश देता हूं; बिना जाने, बिना देखे नहीं। उन्होंने बतलाया कि मन का चिंतन-मनन दो प्रकार का होता है – यथार्थ और अ-यथार्थ। अ-यथार्थ चिंतन-मनन से अनुत्पन्न आस्रव उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हुए आस्रव खूब बढ़ते हैं। यथार्थ चिंतन-मनन से अनुत्पन्न आस्रव उत्पन्न नहीं होते हैं और उत्पन्न हुए आस्रव नष्ट होते हैं।

उन्होंने आस्रवों से छुटकारा पाने का उपाय बताया –

१. दर्शनः अ-मनसिकरणीय धर्मों को मन में न करने और मनसिकरणीय धर्मों को मन में करने से भिक्षु यथार्थ चिंतन-मनन करता है –यह दुःख है, यह दुःख का समुदय है, यह दुःख का निरोध है, यह दुःख का निरोध कराने वाला मार्ग (उपाय) है। इससे तीन संयोजन (बंधन) नष्ट हो जाते हैं – (१) सत्कायदृष्टि (काया के भीतर किसी नित्य आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करना); (२) विचिकित्सा (संशय); (३) शीलव्रत-परामर्श (शील एवं व्रत से शुद्धि प्राप्त करना)। इसे कहते हैं'दर्शन' से आस्रवों का प्रहाण।

२. संवरः ठीक से जान कर, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया एवं मन –इन छः इंद्रियों में संवर करने वाले को पीड़ाजनक और संतप्त करने वाले आस्रव उत्पन्न नहीं होते हैं। इसे कहते हैं 'संवर' से आस्रवों का प्रहाण।

३. प्रतिसेवनः ठीक से जान कर, भिक्षु द्वारा चीवर का इतना मात्र सेवन करने से जिससे सर्दी, गर्मी, डंस-मच्छर-हवा-धूप-सरीसृप का प्रतिघात और शरीर का ढंकना-मात्र होता हो; और इसी प्रकार पिंडपात (भिक्षान्न), शयनासन, औषध का इतना मात्र उपयोग करने से जिससे भिक्षु की अपरिहार्य भौतिक आवश्यकताओं की ही पूर्ति होती हो, पीड़ाजनक और संतप्त करने वाले आस्रव उत्पन्न नहीं होते हैं। इसे कहते हैं 'प्रतिसेवन' से आस्रवों का प्रहाण।

४. अधिवासनः ठीक से जान कर, भिक्षु द्वारा सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, डंस-मच्छर- हवा-धूप-सरीसृप के आघात को, और शरीर पर उत्पन्न होने वाली विभिन्न प्रकार की दुःखद संवेदनाओं को सहन करने का स्वभाव हो जाने पर पीड़ाजनक और संतप्त करने वाले आस्रव उत्पन्न नहीं होते हैं। इसे कहते हैं 'अधिवासन' से आस्रवों का प्रहाण।

५. परिवर्जनः ठीक से जान कर, अनुचित आसन, अनुचित विचरण-स्थान, बुरे मित्रों के सेवन को त्यागने से पीड़ाजनक और संतप्त करने वाले आस्रव उत्पन्न नहीं होते हैं। इसे कहते है 'परिवर्जन' से आस्रवों का प्रहाण।

६. विनोदनः ठीक से जान कर, उत्पन्न हुए कामवितर्क, व्यापादवितर्क, विहिंसावितर्क को दूर करने से पीड़ाजनक और संतप्त करने वाले आस्रव उत्पन्न नहीं होते हैं। इसे कहते हैं 'विनोदन' से आस्रवों का प्रहाण।

७. भावनाः ठीक से जान कर, विवेक-युक्त, विराग-युक्त, निरोध-युक्त, मुक्ति-परिणाम वाले स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि एवं उपेक्षा

संबोध्यंगों की भावना करने से पीड़ाजनक और संतप्त करने वाले आस्रव उत्पन्न नहीं होते हैं। इसे कहते हैं 'भावना' से आस्रवों का प्रहाण।

अंत में भगवान ने कहा कि इन उपायों का आश्रय लेने से जिस भिक्षु के आस्रव नष्ट हो जाते हैं, उसके बारे में कहा जाता है – 'यह भिक्षु सारे आस्रवों (सब्बासव) के संवर से युक्त हो विहरता है; इसने तृष्णा को काट दिया है; संयोजन (बंधन) को हटा दिया है; मानाभिसमय (अभिमान के स्पष्ट ज्ञान) से दुःख का अंत कर दिया है'।

३. धम्मदायादसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को उपदेश दिया कि तुम मेरे 'धर्म-दायाद' (धर्म की विरासत पाने वाले) होओ, आमिष-दायाद (भौतिक वस्तुओं की विरासत पाने वाले) मत बनो।

बाद में आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को समझाया कि किन कारणों से श्रावक शास्ता से अलग होकर विहरते हुए विवेक (एकांतचिंतन) की शिक्षा ग्रहण नहीं करते और किन कारणों से ग्रहण करते हैं।

विवेक की शिक्षा ग्रहण न करने वाले भिक्षु तीन कारणों से निंदा के पात्र होते हैं: (१) शास्ता से अलग होकर विहरते हुए विवेक की शिक्षा ग्रहण नहीं करते; (२) जिन बातों को छोड़ने के लिए शास्ता कहते हैं उन्हें नहीं छोड़ते; (३) संग्रह करने की प्रवृत्ति वाले, ढीले-ढाले, भागने में आगे और एकांतचिंतन में फिसल जाने वाले होते हैं।

विवेक की शिक्षा ग्रहण करने वाले भिक्षु तीन कारणों से प्रशंसा के पात्र होते हैं: (१) शास्ता से अलग होकर विहरते हुए विवेक की शिक्षा ग्रहण करते हैं; (२) जिन बातों को छोड़ने के लिए शास्ता कहते हैं उन्हें छोड़ देते हैं; (३) न तो संग्रह करने की प्रवृत्ति वाले, न ही ढीले-ढाले, न भागने में आगे और न एकांतचिंतन में फिसल जाने वाले होते हैं।

आयुष्मान सारिपुत्त ने यह भी समझाया कि बुरे हैं लोभ, द्वेष, क्रोध, वैर, पाखंड, दुर्भावना, ईर्ष्या, मात्सर्य, माया, ठगी, जड़ता, उत्तेजना, मान, अतिमान, मद तथा प्रमाद। इनके विनाश के लिए है 'मध्यम मार्ग', जो यही है 'आर्य

अष्टांगिक मार्ग', अर्थात सम्यक दर्शन, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति तथा सम्यक समाधि।

४. भयभेरवसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां जानुस्सोणि नाम का ब्राह्मण उनके पास गया और उनसे वार्तालाप करते समय उनसे कहने लगा – "हे गौतम! कठिन हैं दूरस्थ वनखंड, एकांत शयनासन; दुष्कर है एकांत-रमण (प्रविवेक); अकेले विहरना कठिन है; समाधि प्राप्त न होने वाले भिक्षु के मन को वन मानो हर लेते हैं।"

भगवान ने इसका समर्थन किया और कहा –"मैं भी जब तक सम्यक संबुद्ध नहीं हुआ था, मुझे भी ऐसा ही लगता था। परंतु तब मेरे मन में ऐसा हुआ कि जिस किसी श्रमण अथवा ब्राह्मण के कायिक ,वाचिक अथवा मानसिक कर्म एवं आजीविका अपरिशुद्ध होते हैं, जो लोभी एवं काम-वासनाओं में तीव्र राग रखने वाले, हिंसायुक्त चित्त वाले, मन में दुष्ट संकल्प रखने वाले, शारीरिक और मानसिक आलस्य से प्रेरित, उद्धत और अशांत चित्त वाले, संशयालु, संदेह-ग्रस्त, अपना उत्कर्ष चाहने वाले पर दूसरे की निंदा करने वाले, जड़ और भीरु प्रकृति वाले, लाभ, सत्कार तथा प्रसिद्धि चाहने वाले, आलसी, उद्योगहीन, नष्ट हुई स्मृति वाले, असंप्रज्ञानी, असमाहित, विभ्रांतचित्त, दुष्प्रज्ञ, बहरे और गूंगे होते हैं वे दूरस्थ वनखंड एवं एकांत शयनासन का सेवन करते हुए अपने इन दोषों के कारण बुरे भय-भैरव (भय और त्रास का) आह्वान करते हैं, किंतु मैं उन लोगों में से एक हूं जिनमें ये दोष नहीं हैं। मैं इन दोषों के विपरीत सद्गुणों से संपन्न हुआ दूरस्थ वनखंड एवं एकांत शयनासन का सेवन करता हूं। हे ब्राह्मण! अपने भीतर अनवद्यता को देखकर मुझमें अरण्य-विहार करने का और अधिक उत्साह हुआ।

"मैंने भी भयप्रद, रोमांचकारी वासस्थानों में विहार किया जिससे कुछ भय-भैरव देख सकूं। जब मेरे पास कोई मृग आता, या मोर काठ गिराता अथवा पवन पल्लवों को फरफराता, तब मुझे ऐसे लगता मानों भय-भैरव आ रहा है। तब मैं सोचता कि मैं क्यों दूसरे में भय की आकांक्षा से विहरता हूं? क्यों न मैं जिस-जिस अवस्था में रहते भय-भैरव मेरे पास आता है उस-उस अवस्था में रहते उसे हटाऊं? तब मेरे टहलते समय भय-भैरव आता तो मैं उसे टहलते हुए हटाता। ऐसे ही खड़े-खड़े, बैठे-बैठे, लेटे-लेटे भी हटाता।

“कोई-कोईश्रमण अथवा ब्राह्मण रात को दिन और दिन को रात के समान जानते हैं। मैं इसे ‘सम्मोह-विहार’ कहता हूं। मैं रात को रात और दिन को दिन के समान जानता हूं।

“हे ब्राह्मण! मैंने न दबने वाला वीर्य (उद्योग) आरंभ किया था। उस समय मेरी अमुषित स्मृति जागृत थी, प्रश्रब्ध काया उत्तेजना-रहित थी, समाधिनिष्ठ चित्त एकाग्र था। फिर मैं, क्रमशः, प्रथम ध्यान से चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरने लगा।

“इस प्रकार चित्त के एकाग्र, परिशुद्ध, अंगण-रहित, उपक्लेश-रहित, कोमल, कार्योपयोगी, स्थिर एवं अचल हो जाने पर मैंने पूर्वजन्मों की स्मृति के ज्ञान के लिए चित्त को नवाया। इस प्रकार मैं आकार एवं उद्देश्य सहित अनेक प्रकार के पूर्व-निवासों को स्मरण करने लगा। इस तरह रात्रि के प्रथम पहर में मुझे यह पहली विद्या प्राप्त हुई।

“फिर मैंने चित्त को प्राणियों की च्युति और उत्पत्ति के ज्ञान के लिए नवाया। तब मैं अमानुष, विशुद्ध, दिव्य चक्षु से अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगति वाले, दुर्गति वाले प्राणियों को मरते-जन्मते देखने लगा; कर्मानुसार गति को प्राप्त होते प्राणियों को पहचानने लगा। इस तरह रात्रि के दूसरे पहर में मुझे यह दूसरी विद्या प्राप्त हुई।

“फिर मैंने चित्त को आस्रवों के क्षय के ज्ञान के लिए नवाया। तब मैंने पूरी तरह यथार्थतः जान लिया –‘यह दुःख है’; ‘यह दुःख का समुदय है’; ‘यह दुःख का निरोध है’; ‘यह दुःख के निरोध का मार्ग (उपाय) है’। मैंने पूरी तरह यथार्थतः यह भी जान लिया –‘यह आस्रव है’; ‘यह आस्रवों का समुदय है’; ‘यह आस्रवों का निरोध है’; ‘यह आस्रवों के निरोध का मार्ग (उपाय) है’। इस प्रकार देखते, जानते मेरा चित्त काम (काम-वासना-रूपी) आस्रवों से मुक्त हो गया, भव (जन्म लेने के लोभ रूपी) आस्रवों से मुक्त हो गया, अविद्या-आस्रवों से मुक्त हो गया। विमुक्त होने पर ‘विमुक्त हो गया!’ –ऐसा ज्ञान हुआ। मैंने पूरी तरह जान लिया –‘जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।’ इस तरह रात्रि के तीसरे पहर में यह तीसरी विद्या प्राप्त हुई।”

अंत में भगवान ने स्पष्ट किया कि वीत-राग, वीत-द्वेष, वीत-मोह होने पर भी

मैं दूरस्थ वनखंड एवं एकांतशयनासन का सेवन दो कारणों से करता हूं – (१) इसी शरीर में अपने सुखविहार के लिए; और (२) आने वाली जनता पर अनुकंपा करने के लिए (जिससे वह भी मेरा अनुगमन कर सुफलभागी हो)।

५. अनङ्गणसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –

"आवुस! संसार में चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं। कौन से चार?

(१) कोई व्यक्ति अंगण(चित्तमल)-सहित होता हुआ 'मेरे भीतर अंगण है' – इसे यथार्थतः नहीं जानता है।

(२) कोई अंगण-सहित होता हुआ 'मेरे भीतर अंगण है' – इसे यथार्थतः जानता है।

(३) कोई अंगण-रहित रहता हुआ 'मेरे भीतर अंगण नहीं है' –इसे यथार्थतः नहीं जानता है।

(४) कोई अंगण-रहित रहता हुआ 'मेरे भीतर अंगण नहीं है' –इसे यथार्थतः जानता है ।

"इन व्यक्तियों में से जिनको अपने भीतर अंगण होने अथवा न होने की यथार्थतः जानकारी रहती है वे 'श्रेष्ठ', और जिन्हें ऐसी जानकारी नहीं रहती है वे 'हीन', कहलाते हैं ।"

आयुष्मान महामोग्गल्लान द्वारा आयुष्मान सारिपुत्त से इसका कारण पूछे जाने पर उन्होंने बतलाया कि जो अपने भीतर अंगण के होने की यथार्थतः जानकारी नहीं रखते हैं, वे उसे दूर करने के लिए उद्यम नहीं करते और अंगण-युक्त, मलिन चित्त से ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं । जो यथार्थतः जानकारी रखते हैं, वे उसे दूर करने के लिए उद्यम करते हैं और अंगण-रहित, निर्मल चित्त से मृत्यु को प्राप्त होते हैं। जो अपने भीतर अंगण के न होने की यथार्थतः जानकारी नहीं रखते हैं, वे मन में शुभ-निमित्त को करते हैं जिससे उनके मन में राग चिपटता है और वे अंगण-सहित, मलिन चित्त से मृत्यु को प्राप्त होते हैं। जो यथार्थतः जानकारी रखते हैं, वे मन में शुभ-निमित्त को नहीं करते हैं, जिससे उनके मन में राग नहीं चिपटता है और वे अंगण-रहित, निर्मल चित्त

से मृत्यु को प्राप्त होते हैं। अंगण-युक्त, मलिन चित्त से मृत्यु को प्राप्त होने वाले 'हीन', और अंगण-रहित, निर्मल चित्त से मृत्यु को प्राप्त होने वाले 'श्रेष्ठ,' कहलाते हैं ।

तदनंतर यह पूछे जाने पर कि 'अंगण' से क्या अभिप्राय होता है, उन्होंने बतलाया कि पापपूर्ण, अकुशल, इच्छाओं से ग्रस्त होना अंगण कहलाता है। इसे स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अनेक उदाहरण दिए। जैसे – किसी भिक्षु के मन में यह इच्छा उत्पन्न हो कि मैं अपराध करूं पर दूसरे भिक्षु न जान पाएं कि मैंने अपराध किया है। यदि उस भिक्षु को पता चल जाए कि दूसरे भिक्षु उसके अपराध को जान जाते हैं तो वह कुपित एवं अप्रसन्न होता है। यह कोप, यह अप्रसन्नता – दोनों ही अंगण हैं।

जिस किसी भिक्षु की पापपूर्ण, अकुशल इच्छाएं विनष्ट नहीं होती हैं, सब्रह्मचारी उसका सत्कार नहीं करते हैं, भले ही वह वनवासी हो। ऐसे भिक्षु के बारे में ऐसी कल्पना की जा सकती है मानों दो चमचमाती हुई कांसे की थालियों के बीच मुर्दा सांप, कुत्ते अथवा मनुष्य का मांस ढँका हुआ रखा हो। जिस भिक्षु की पापपूर्ण, अकुशल इच्छाएं नष्ट हो जाती हैं, सब्रह्मचारी उसका सत्कार करते हैं, भले ही वह ग्रामवासी हो। ऐसे भिक्षु के बारे में ऐसी कल्पना की जा सकती है मानों दो चमचमाती हुई कांसे की थालियों के बीच साफ शालि के चावल को अनेक प्रकार के सूप एवं व्यंजन के साथ सजा कर रखा हो।

तत्पश्चात आयुष्मान महामोग्गल्लान ने कहा कि एक समय एक यानकार रथ के चक्के की पुट्ठी को गढ़ रहा था जब कि उसके पास बैठा हुआ एक अन्य यानकार मन-ही -मन चाह रहा था कि वह यानकार उस पुट्ठी के बांकेपन को दूर कर उसे गढ़ पाए और वह दोष-रहित हो जाए। सचमुच ऐसा होते देख दूसरा यानकार प्रसन्नचित्त हो बोल उठा – "मानों हृदय से मेरे हृदय की बात जान कर गढ़ रहा है।" ऐसे ही इस समय आयुष्मान सारिपुत्त इस उपदेश द्वारा अपने हृदय से ऐसे भिक्षुओं के हृदय को जान कर जो श्रद्धा-रहित, शठ, मायावी, पाखंडी, उद्धत, अभिमानी, चपल, मुखर, असंयतेन्द्रिय एवं अन्य दुर्गुणों से युक्त हैं, गढ़ रहे हैं। और जो भिक्षु श्रद्धालु, अ-शठ, अ-मायावी, पाखंड-रहित, अनुद्धत, अनभिमानी, अ-चपल, अ-मुखर, संयतेन्द्रिय एवं अन्य सद्गुणों से युक्त हैं, वे इस धर्मोपदेश को सुन कर मानों वचन और मन से पान कर रहे हैं, आहार कर रहे

हैं। आयुष्मान सारिपुत्त सब्रह्मचारियों को बुराइयों से उठा कर अच्छाइयों में स्थापित कर रहे हैं।

इस प्रकार दोनों महानागों ने एक दूसरे के सुभाषित का अनुमोदन किया।

६. आकङ्खेय्यसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –" शील एवं प्रातिमोक्ष से युक्त होकर विहार करो। आचार तथा गोचर से संपन्न हुए, छोटी-से-छोटी बुराइयों में भी भय देखते हुए, प्रातिमोक्ष के संवर से संवृत हुए विहार करो। शिक्षापदों को ग्रहण कर उनका अभ्यास करो।"

तदनंतर भगवान ने भिक्षुओं की विभिन्न आकांक्षाओं का उल्लेख करते हुए बतलाया कि इन्हें पूरा करने के लिए उन्हें शीलों को परिपूर्ण करने वाला, भीतर से शांतचित्त, अखंड-ध्यानी, विपश्यी तथा शून्यागारों का अधिकाधिक सेवन करने वाला होना चाहिए।

भिक्षुओं की आकांक्षाएं इस प्रकार की हो सकती हैं जैसे सब्रह्मचारियों (गुरुभाइयों) का प्रिय, वांछनीय, आदृत एवं सम्मान-भाजन होना; चीवर, पिंडपात, शयनासन और ग्लान-प्रत्यय –भैषज्य-परिष्कार का लाभी होना; भय-भैरव को परास्त करने वाला होना; इसी जन्म में सुख-विहार कराने वाले चारों ध्यानों को बिना किसी कठिनाई के प्राप्त करने वाला होना; संयोजनों के क्षय हो जाने से सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी हो जाना; अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करना; दिव्य श्रोत्र, परचित्तज्ञान, पूर्व-निवास-अनुस्मृति, दिव्य चक्षु प्राप्त करना; आस्रवों के क्षय से इसी जीवन में स्वयं की अभिज्ञा से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा अंतिम मुक्ति प्राप्त करना, इत्यादि।

७. वत्थसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –

"मैले-कुचैले वस्त्र को किसी भी रंग में डाला जाए तो वह बदरंग ही रहेगा –

वस्त्र के मैला होने से। ऐसे ही चित्त के मलिन होने से दुर्गति ही हो सकती है। परंतु यदि उजले वस्त्र को किसी रंग में डाला जाए तो वह ठीक से रंग को पकड़ता है – वस्त्र के धवल होने से । ऐसे ही चित्त के निर्मल होने से सुगति ही हो सकती है।

"चित्त के उपक्लेश (मल) हैं – (१) अभिध्या (विषम लोभ); (२) व्यापाद (द्रोह); (३) क्रोध; (४) उपनाह (वैरभाव); (५) म्रक्ष (दूसरे के गुणों का अवमूल्यन करना); (६) प्रदाश (निष्ठुरता); (७) ईर्ष्या; (८) मात्सर्य; (९) माया; (१०) शठता; (११) स्तंभ (जड़ता); (१२) सारंभ (उत्तेजना); (१३) मान; (१४) अतिमान; (१५) मद; तथा (१६) प्रमाद।

"जब कोई भिक्षु इन उपक्लेशों को इस प्रकार जान कर इन्हें त्याग देता है, तब वह बुद्ध में प्रगाढ़ श्रद्धा वाला हो जाता है, और चिंतन करता है – 'वह भगवान अर्हंत, सम्यक-संबुद्ध, विद्याचरणसंपन्न, सुगत, लोकों के जानकार, पुरुषों को दमन करने (सन्मार्ग पर लाने) के लिए अनुपम सारथी, देवों और मनुष्यों के शास्ता, बुद्ध भगवान हैं।' वह धर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा वाला हो जाता है और चिंतन करता है – 'भगवान का धर्म सु-आख्यात (सुंदर रूप से कहा गया), सांदृष्टिक (इसी जीवन में फल देने वाला), अकालिक (सद्यःफलप्रद), एहिपश्यिक (आओ – देखो का भाव जगाने वाला), औपनेय्यिक (निर्वाण की ओर ले जाने वाला) और विद्वानों द्वारा प्रत्यात्म रूप से जानने योग्य है।' वह संघ में प्रगाढ़ श्रद्धा वाला हो जाता है और चिंतन करता है – 'भगवान का श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न (सुमार्ग पर आरूढ़), ऋजु-प्रतिपन्न (सरल मार्ग पर आरूढ़), न्याय-प्रतिपन्न (न्याय के मार्ग पर आरूढ़), सामीचि-प्रतिपन्न (ठीक मार्ग पर आरूढ़) है। यह जो चार पुरुष-युगल (सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी, अर्हंत), आठ पुरुष-पुद्गल (मार्ग एवं फल के भेद से चार पुरुष-युगल) हैं, यह भगवान का श्रावक-संघ है, जो कि आह्वान करने योग्य है, पाहुना बनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, हाथ जोड़ने योग्य है, और लोक के लिए पुण्य बोने का अनुपम क्षेत्र है।

"जब भिक्षु के मल नष्ट हो जाते हैं और वह बुद्ध, धर्म और संघ में प्रगाढ़ श्रद्धा वाला हो जाता है तब वह अर्थवेद, धर्मवेद और धर्मोपसंहित प्रमोद प्राप्त करता है। प्रमोद-प्राप्त व्यक्ति को प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिमनस्क की काया

प्रशांत होती है, प्रशांत काया वाला सुख अनुभव करता है, सुखी का चित्त समाहित हो जाता है।

"वह भिक्षु, क्रमशः, मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा युक्त चित्त से प्रत्येक दिशा को व्याप्त कर विहरता है।

"वह जानता है कि 'यह निकृष्ट है', 'यह उत्तम है' –इन लौकिक संज्ञाओं से ऊपर निस्सरण (निकास) है। ऐसा जानते, देखते उसका चित्त कामास्रवों, भवास्रवों तथा अविद्यास्रवों –इन सभी से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने पर 'विमुक्त हो गया' –यह ज्ञान होता है। वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।' ऐसे व्यक्ति के लिए कहा जाता है –'भिक्षु भीतर का स्नान किए हुए है।'"

उस समय सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण भगवान के पास बैठा था। उसने उनसे स्नान करने के लिए बाहुका नदी चलने के लिए कहा। उसका कहना था कि यह नदी पवित्र मानी जाती है और बहुत से लोग इसमें अपने किए पापों को बहाते हैं। इस पर भगवान ने कहा –"बाहुका, अधिकक्क, गया, सुन्दरिका, सरस्सती, पयाग तथा बाहुमती में अकुशल कर्मों वाला मूढ़ चाहे नित्य नहाये, किंतु शुद्ध नहीं होगा। यदि तू झूठ नहीं बोलता, हिंसा नहीं करता, चोरी नहीं करता, श्रद्धावान और मात्सर्य-रहित है तो गया जाकर क्या करेगा, कुआं भी तेरे लिये गया है।" ऐसा कहा जाने पर सुन्दरिक भारद्वाज आश्चर्यचकित होकर बुद्ध, धर्म और संघ की शरण चला गया और भगवान से प्रव्रज्या, उपसंपदा पाकर एकांत में प्रमादरहित, उद्योगयुक्त, आत्मनिग्रही हो विहरते हुए थोड़े ही समय में निर्वाण-लाभी हुआ।

८. सल्लेखसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां पर उन्होंने आयुष्मान महाचुन्द के एक प्रश्न का समाधान करते हुए कहा –

"संसार में आत्मवाद अथवा लोकवाद को लेकर जो अनेक प्रकार की दृष्टियां उत्पन्न होती हैं, उनको जहां ये दृष्टियां उत्पन्न होती हैं, जहां ये आश्रय ग्रहण

करती हैं, जहां ये व्यवहृत होती हैं, वहां 'यह मेरा नहीं', 'न यह मैं हूं', 'न यह मेरी आत्मा है' – इस प्रकार इसे यथार्थ तौर पर सम्यक प्रज्ञा से देख कर इन दृष्टियों का प्रहाण, परित्याग होता है।

"यदि प्रथम ध्यान करते हुए कोई भिक्षु समझे कि मैं कड़ा तप (सल्लेख) करते हुए विहर रहा हूं, तो यह ऐसा नहीं है। आर्यविनय में इसे दृष्टधर्म सुखविहार (इसी जन्म में सुखपूर्वक विहार करना) कहते हैं। यही बात द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ ध्यान के बारे में भी चरितार्थ होती है।

"यदि कोई भिक्षु आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन और नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त होकर विहरते समय ऐसा समझे कि मैं कड़ा तप कर रहा हूं, तो यह ऐसा नहीं है। आर्यविनय में इन्हें शांतविहार कहते हैं।

"कड़ा तप ऐसे प्रसंगों में करना चाहिए – दूसरे हिंसक होंगे, हम अहिंसक रहेंगे; दूसरे प्राण लेने वाले होंगे, हम इससे विरत रहेंगे; दूसरे बिना दिया लेने वाले (तस्कर) होंगे, हम इससे विरत रहेंगे; दूसरे अ-ब्रह्मचारी होंगे, हम ब्रह्मचारी रहेंगे; दूसरे झूठ बोलने वाले होंगे, हम इससे विरत रहेंगे; दूसरे चुगली खाने वाले होंगे, हम इससे विरत रहेंगे; दूसरे कठोर वचन कहने वाले होंगे, हम इससे विरत रहेंगे; दूसरे व्यर्थ प्रलाप करने वाले होंगे, हम इससे विरत रहेंगे; इत्यादि।

"कुशल धर्मों (अच्छी बातों) के बारे में विचार उत्पन्न होना ही बड़ा हितकर होता है, काया और वाणी से उसके अनुष्ठान का तो कहना ही क्या? इसलिए इन बातों के बारे में विचार करना चाहिए – दूसरे हिंसक होंगे, हम अहिंसक रहेंगे; इत्यादि।

"जैसे कोई विषम (ऊबड़खाबड़) मार्ग हो और उसकी परिक्रमा करने के लिए दूसरा समतल मार्ग हो, अथवा जैसे कोई विषम (दुस्तर) तीर्थ (नाव का घाट) हो और उसकी परिक्रमा करने के लिए दूसरा सम-तीर्थ हो, ऐसे ही हिंसक व्यक्ति की परिक्रमा करने के लिए अहिंसा होती है; इत्यादि।

"जैसे अकुशल धर्म नीचे गिराने वाले होते हैं और कुशल धर्म ऊपर उठाने वाले, वैसे ही हिंसक व्यक्ति को अहिंसा ऊपर उठाने वाली होती है; इत्यादि।

"जो स्वयं गिरा हुआ है, वह दूसरे गिरे हुए को उठा पायेगा, यह संभव नहीं है। जो स्वयं गिरा हुआ नहीं है, वह दूसरे गिरे हुए को उठा पायेगा, यह संभव है। जो स्वयं अदान्त (संयम-रहित), अविनीत, अपरिनिवृत्त (परिनिर्वाण न पाया

हुआ) है, वह दूसरे को दान्त, विनीत, परिनिवृत्त करेगा, यह संभव नहीं है। जो स्वयं दान्त, विनीत, परिनिवृत्त है, वह दूसरे को दान्त, विनीत, परिनिवृत्त करेगा, यह संभव है। हिंसक व्यक्ति के लिए अहिंसा परिनिर्वाण के लिए होती है; इत्यादि।

अंत में भगवान ने आयुष्मान चुन्द को कहा – "श्रावकों के हितैषी, अनुकंपक, शास्ता ने अनुकंपा करके जो कुछ करना चाहिए था, वह कर दिया है। अब यह रहे वृक्षमूल, यह रहे शून्यागार! ध्यानरत हो जाओ, प्रमाद मत करो, बाद में पछतावा मत करना। यह तुम्हारे लिए हमारा अनुशासन है।"

९. सम्मादिट्ठिसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां भिक्षुओं द्वारा पूछे जाने पर आयुष्मान सारिपुत्त ने उन्हें बतलाया –

"जब आर्यश्रावक अकुशल (बुराई) को जानता है, अकुशल-मूल को जानता है, कुशल (भलाई) को जानता है, कुशल-मूल को जानता है – इतने से वह सम्यक दृष्टि वाला होता है। उसकी दृष्टि सीधी होती है, वह धर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा वाला होता है और सद्धर्म को प्राप्त होता है ।

"अकुशल होते हैं – प्राणियों की हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलना, चुगली करना, कठोर वचन बोलना, व्यर्थ प्रलाप करना, लोलुपता, प्रतिहिंसा और मिथ्यादृष्टि (गलत धारणा)। अकुशल-मूल हैं – लोभ, द्वेष तथा मोह।

"कुशल होते हैं – प्राणियों की हिंसा न करना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, झूठ न बोलना, चुगली न करना, कठोर वचन न बोलना, व्यर्थ प्रलाप न करना, लोलुपता का अभाव, प्रतिहिंसा का अभाव और सम्यक दृष्टि (सही धारणा)। कुशल-मूल हैं – अ-लोभ, अ-द्वेष तथा अ-मोह।

"जब आर्यश्रावक इस प्रकार अकुशल, अकुशल-मूल, कुशल तथा कुशल-मूल को जानता है तब वह रागानुशय का प्रहाण कर, प्रतिघ (प्रतिहिंसा)-अनुशय को दूर कर, 'अस्मि' (मैं हूं) – इस दृष्टिमान-अनुशय का समुच्छेद कर, अविद्या को नष्ट कर, विद्या को उत्पन्न कर, इसी जीवन में दुःखों का अंत करने वाला होता है – इतने से भी आर्यश्रावक सम्यक दृष्टि वाला होता है। उसकी दृष्टि सीधी होती है, वह प्रगाढ़ श्रद्धा वाला होता है और सद्धर्म को प्राप्त होता है।" तदनंतर

आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं के लिए अन्य धर्म-पर्याय भी प्रस्तुत किए जिनसे आर्यश्रावक सम्यक दृष्टि वाला होता है। ये पर्याय हैं –

* जब वह प्रज्ञापूर्वक आहार, आहार का समुदय, आहार का निरोध, तथा आहार का निरोध कराने वाले मार्ग (उपाय) को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक दुःख, दुःख का समुदय, दुःख का निरोध तथा दुःख का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक जरा-मरण, जरा-मरण का समुदय, जरा-मरण का निरोध तथा जरा-मरण का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक जाति (जन्म), जाति का समुदय, जाति का निरोध तथा जाति का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक भव, भव का समुदय, भव का निरोध तथा भव का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक उपादान, उपादान का समुदय, उपादान का निरोध तथा उपादान का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक तृष्णा, तृष्णा का समुदय, तृष्णा का निरोध तथा तृष्णा का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक वेदना, वेदना का समुदय, वेदना का निरोध तथा वेदना का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक स्पर्श, स्पर्श का समुदय, स्पर्श का निरोध तथा स्पर्श का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक षड़ायतन (छह इन्द्रियां), षड़ायतन का समुदय, षड़ायतन का निरोध तथा षड़ायतन का निरोध करानेवाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक नामरूप, नामरूप का समुदय, नामरूप का निरोध तथा नामरूप का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक विज्ञान, विज्ञान का समुदय, विज्ञान का निरोध तथा विज्ञान का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक संस्कार, संस्कार का समुदय, संस्कार का निरोध तथा संस्कार का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक अविद्या, अविद्या का समुदय, अविद्या का निरोध तथा अविद्या का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है।

* जब वह प्रज्ञापूर्वक आस्रव, आस्रव का समुदय, आस्रव का निरोध तथा आस्रव का निरोध कराने वाले मार्ग को जानता है। और यह जो सारे मार्ग बतलाए गए हैं, यह 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' ही है, अर्थात सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि।

१०. सतिपट्ठानसुत्त

एक समय भगवान कुरु-प्रदेश में कुरुओं के निगम कम्मासधम्म में विहार करते थे। उस समय भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि ये जो चार स्मृति-प्रस्थान हैं वे सत्वों की विशुद्धि, शोक और क्रंदन का विनाश, दुःख और दौर्मनस्य का अवसान, सत्य की प्राप्ति, निर्वाण का साक्षात्कार –इन सब के लिए अकेला मार्ग है।

चार स्मृति-प्रस्थान हैं – लोलुपता और दौर्मनस्य को दूर कर, स्मृति और संप्रज्ञान के साथ, उद्योगशील हो, काया में कायानुपश्यी हो कर विहरना, और ऐसे ही वेदनाओं में वेदनानुपश्यी हो कर, चित्त में चित्तानुपश्यी हो कर और धर्मों में धर्मानुपश्यी हो कर विहरना।

'कायानुपश्यना' के लिए भिक्षु किसी निर्जन स्थान पर जा कर पालथी मार, शरीर को सीधा रख, मुख के इर्द-गिर्द जागरूकता बनाये रख, नैसर्गिक तौर पर आने जाने वाले श्वास को जानने का काम शुरू करता है। फिर सारी काया को अनुभव करते हुए, और तदुपरांत काया पर होने वाले उपद्रवों के शांत होने पर, श्वास लेना वा छोड़ना सीखता है। इस प्रकार काया के भीतरी अथवा बाहरी; अथवा भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के भागों में कायानुपश्यना करता हुआ विहार करता है, काया में उदय अथवा व्यय; अथवा उदय के साथ-साथ व्यय होने वाले धर्मों का अनुपश्यी हो कर विहार करता है। तब 'यह काया है!' –इस पर जागरूकता स्थिर हो जाती है। जितनी देर तक इस प्रकार का केवल ज्ञान,

केवलदर्शन बना रहता है उतनी देर तक अनासक्त हो कर विहार करता है और संसार में कुछ भी ग्रहण करने योग्य नहीं रहता। इस प्रकार काया में कायानुपश्यी हो कर विहार करना होता है ।

फिर केवल बैठे-बैठे ही नहीं, चलते-फिरते, खड़े रहते, लेटे-लेटे अथवा शरीर की अन्य अवस्थाओं में भी, इन अवस्थाओं को यथाभूत जानते हुए, कायानुपश्यना की जाती है। और फिर इससे भी आगे बढ़ कर हर प्रकार की शारीरिक क्रिया में संप्रज्ञान बनाये रख कर कायानुपश्यना करनी होती है। शरीर के भीतर अशुचि याने प्रतिकूल विषयों को आलंबन बना कर उक्त प्रकार से कायानुपश्यना करनी होती है।

'वेदनानुपश्यना' करते समय जैसी भी वेदना अनुभव हो – सुखद, दुःखद, अदुःखद-असुखद, सामिष, निरामिष – उसे प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानना होता है और पूर्ववत भीतर, बाहर, सर्वत्र उदय-व्यय की अनुभूति के साथ विहार करना होता है जिससे जागरूकता स्थिर हो कर केवल इसी बात का ज्ञान अथवा दर्शन प्राप्त हो – 'यह वेदना है'।

'चित्तानुपश्यना' करते समय जैसी भी चित्त की स्थिति हो – रागयुक्त, रागविहीन; द्वेषयुक्त, द्वेषविहीन; मोहयुक्त, मोहविहीन; इत्यादि – उसे प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानना होता है और पूर्ववत भीतर, बाहर, सर्वत्र उदय-व्यय की अनुभूति के साथ विहार करना होता है जिससे जागरूकता स्थिर हो कर केवल इसी बात का ज्ञान, अथवा दर्शन, प्राप्त हो –'यह चित्त है!'

'धर्मानुपश्यना' करते समय भी चित्त में जागने वाले धर्मों की जैसी-जैसी स्थिति हो उन्हें प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानना होता है और पूर्ववत भीतर, बाहर, सर्वत्र उदय-व्यय की अनुभूति के साथ विहार करना होता है जिससे जागरूकता स्थिर होकर केवल इसी बात का ज्ञान, अथवा दर्शन, प्राप्त हो –'ये धर्म हैं!'

नीवरणों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है कि इस समय नीवरण है, अथवा नहीं है, अथवा उत्पन्न हो रहा है, अथवा इसका प्रहाण हो रहा है अथवा प्रहाण हुए-हुए का अब पुनः उद्भव नहीं होता है। नीवरण हैं – (१) कामच्छंद = कामुकता,(२) व्यापाद = द्रोह, (३) स्त्यानमृद्ध = तन-मन का आलस, (४) औद्धत्य-कौकृत्य = उद्वेग-खेद, (५) विचिकित्सा = संदेह।

उपादान-स्कंधों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है

कि इस समय स्कंधका उदय हो रहा है अथवा अस्त हो रहा है। उपादान-स्कंध हैं – (१) रूप, (२) वेदना, (३) संज्ञा, (४) संस्कार, (५) विज्ञान।

आयतनों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है कि यह भीतर का आयतन है, यह बाहर का आयतन है, यह दोनों के संसर्ग से होने वाला संयोजन है, यह अविद्यमान संयोजन की उत्पत्ति है, यह उत्पन्न हुए संयोजन का प्रहाण है और यह प्रहाण हुए-हुए संयोजन का अब अनुद्भव है। आयतन हैं: बाह्य- (१) चक्षु, (२) श्रोत्र, (३) घ्राण = नासिका; (४) जिह्वा, (५) काय (=त्वक)। आभ्यंतर – (६) मन तथा उनके विषय।

बोध्यंगों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक यह जानना होता है कि इस समय बोध्यंग है, अथवा नहीं है, अथवा उत्पन्न हो रहा है, अथवा भावित हो कर परिपूर्ण हो रहा है। बोध्यंग हैं – (१) स्मृति, (२) धर्मविचय, (३) वीर्य, (४) प्रीति, (५) प्रश्रब्धि, (६) समाधि, (७) उपेक्षा।

आर्य-सत्यों की धर्मानुपश्यना करते समय प्रज्ञापूर्वक, यथाभूत, यह जानना होता है कि यह दुःख है, यह दुःख का समुदय है, यह दुःख का निरोध है, यह दुःख-निरोध का उपाय है।

तत्पश्चात भगवान ने स्पष्ट किया कि दुःख, दुःख का समुदय, दुःख का निरोध और दुःख-निरोध का उपाय – इनसे क्या अभिप्राय है। संक्षेप में पांचों उपादान-स्कंध ही 'दुःख' हैं; बार-बार राग जगाने वाली तृष्णा 'दुःख का समुदय' है; इस तृष्णा का सर्वथा निरोध 'दुःख का निरोध' है; और आर्य अष्टांगिक मार्ग (सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि) 'दुःख-निरोध का उपाय' है।

अंत में भगवान ने प्रज्ञप्त किया कि जो कोई मेरे बतलाये अनुसार इन चार स्मृति-प्रस्थानों की सात वर्ष भावना करे उसे इन दो फलों में से एक की आशा रखनी चाहिए – इसी जन्म में अर्हत्व का साक्षात्कार अथवा उपाधि शेष होने पर अनागामि-भाव। भगवान ने आगे प्रज्ञप्त किया कि इससे कहीं कम अवधि में भी इस फल की आशा की जा सकती है।

———

२. सीहनादवग्ग

१. चूळसीहनादसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा –

"भिक्षुओ! यहां ही श्रमण है, यहां द्वितीय श्रमण है, यहां तृतीय श्रमण है, यहां चतुर्थ श्रमण है, अन्य मत (प्रवाद) श्रमणों से शून्य हैं। इस प्रकार सम्यक रूप से सिंहनाद करो।

"यदि अन्य मतावलंबी कहें कि आपके पास यह कहने के लिए क्या प्रमाण है, तो उन्हें कहना चाहिए कि उन भगवान जाननहार, देखनहार, अर्हंत, सम्यक संबुद्ध ने हमें चार बातें बतलाई हैं, जिनको हम अपने भीतर भली प्रकार देखते हुए ऐसा कहते हैं। ये चार बातें हैं – शास्ता में श्रद्धा, धर्म में श्रद्धा, शीलों को परिपूर्ण करने वाला होना और गृहस्थों एवं प्रव्रजितों का सहधर्मी, प्रिय तथा मनोनुकूल होना।"

तत्पश्चात भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि यदि अन्य मतावलंबी कहें कि हमारी भी यही स्थिति है, अतः आप में और हम में क्या अंतर है, तो उनसे उनकी निष्ठा के बारे में प्रश्नोत्तर करना चाहिए।

तदनंतर भगवान ने दो प्रकार की दृष्टियों (भव-दृष्टि तथा विभव-दृष्टि), और चार प्रकार के उपादानों (काम-उपादान, दृष्टि-उपादान, शील-व्रत-उपादान, आत्मवाद-उपादान) की चर्चा करते हुए बतलाया कि अनेक श्रमण अथवा ब्राह्मण अपने आप को सारे उपादानों का परित्याग करने वाला बखानते तो हैं परंतु इनकी यथार्थ रूप से जानकारी न होने के कारण वे इन्हें सम्यक रूप से प्रज्ञप्त नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार के धर्मविनय में शास्ता वा धर्म के बारे में श्रद्धा, शीलों में परिपूर्ण करने वाला होना और सहधर्मियों के साथ प्रिय एवं मनोनुकूल होना – ये सब सम्यक प्रकार के नहीं होते। इसका कारण यह होता है कि इनका संबंध ऐसे धर्मविनय से होता है जो दुराख्यात (ठीक प्रकार से व्याख्यान किया हुआ), दुष्प्रवेदित (ठीक प्रकार से न जाना गया), अनैर्याणिक (पार न ले जाने वाला), अनुपशम-संवर्तनिक (शांति को प्राप्त न कराने वाला) और अ-सम्यक संबुद्ध-प्रवेदित (अ-सम्यक संबुद्ध द्वारा जाना गया) होता है। तथागत

अर्हंत सम्यक संबुद्ध अपने आप को सारे उपादानों का परित्याग करने वाला कहते हैं और इनकी यथार्थ रूप से जानकारी होने के कारण इन्हें सम्यक रूप से प्रज्ञप्त करते हैं। इस प्रकार के धर्म-विनय में शास्ता वा धर्म के बारे में श्रद्धा वा अन्य बातें सम्यक प्रकार की होती हैं। इनका संबंध ऐसे धर्मविनय से होता है जो सु-आख्यात, सु-प्रवेदित, नैर्याणिक, उपशम-संवर्तनिक तथा सम्यक संबुद्ध-प्रवेदित होता है।

अंत में भगवान ने समझाया कि पूर्व-वर्णित चारों उपादानों का निदान, समुदय, जाति, प्रभव 'तृष्णा' है। 'तृष्णा' का निदान, समुदय, जाति, प्रभव 'वेदना' है। ऐसे ही 'वेदना' का 'स्पर्श'; 'स्पर्श' का 'षड़ायतन'; 'षड़ायतन' का 'नामरूप'; 'नामरूप' का 'विज्ञान'; 'विज्ञान' का 'संस्कार'; और 'संस्कार' का 'अविद्या'। जब भिक्षु की अविद्या नष्ट हो जाती है और विद्या उत्पन्न हो जाती है, तब यह किसी भी उपादान को ग्रहण नहीं करता है; ग्रहण न करने से उत्तेजित नहीं होता है; और उत्तेजित नहीं होने से इसी शरीर से निर्वाण पा लेता है। वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।'

२. महासीहनादसुत्त

एक समय भगवान वेसाली नगर के बाहर पश्चिम दिशा के वनखंड में विहार करते थे।

उस समय सुनक्खत्त नाम का लिच्छविपुत्र, जिसने हाल ही में भगवान के धर्मविनय को छोड़ दिया था, वेसाली की परिषद में कहता फिरता था –"श्रमण गौतम के पास उत्तरमनुष्यधर्म (दिव्यशक्ति) और आर्यज्ञानदर्शनविशेष की पराकाष्ठा नहीं है। वह तर्क से प्राप्त, विमर्श पर आधारित, स्वयं की प्रतिभा से जाने हुए धर्म का उपदेश देता है। वह जिस किसी को धर्मोपदेश देता है, वह पूरी तरह से अपने दुःख के विनाश को प्राप्त होता है।"

आयुष्मान सारिपुत्त को इसकी जानकारी मिलने पर उन्होंने इस बारे में भगवान से कहा। इस पर भगवान बोले –"सुनक्खत्त क्रोधी व्यक्ति है। उसने क्रोध में ही यह कहा होगा। निंदा करने के विचार से बोलते हुए भी उसने यह कहकर तथागत की प्रशंसा ही की है –'वह जिस किसी को धर्मोपदेश देता है, वह पूरी तरह से अपने दुःख के विनाश को प्राप्त होता है।'" तदनंतर भगवान ने

तथागत के दस बलों और चार वैशारद्यों का वर्णन करते हुए बतलाया कि इनसे युक्त हो तथागत उच्च (आर्षभ) स्थान को जानते हैं, परिषद में सिंहनाद करते हैं, ब्रह्मचक्र (धर्मचक्र) को चलाते हैं। भगवान ने आठ परिषदों, चार योनियों और पांच गतियों की भी विस्तृत जानकारी दी और बार बार जतलाया कि इनके इस प्रकार जाननहार, देखनहार मेरे बारे में यदि कोई ऐसा कहे कि श्रमण गौतम के पास उत्तरमनुष्यधर्म और आर्यज्ञानदर्शनविशेष की पराकाष्ठा नहीं है, इत्यादि और अपने इस चिंतन को न छोड़े और इस पर अड़ा रहे, तो वह नरक में डाला हुआ जैसा होगा।

तत्पश्चात भगवान ने कहा कि मैं चार अंगों से युक्त ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करना जानता हूं –

(१) तपस्वियों में मैं परम तपस्वी था;

(२) रूक्षाचारियों में मैं परम रूक्षाचारी था;

(३) जुगुप्सा करने वालों में मैं परम जुगुप्सु था;

(४) एकांतसेवियों में मैं परम एकांतसेवी था।

इनके अनेकानेक उदाहरण देते हुए उन्होंने बतलाया कि मैं अपने शरीर को तरह तरह की भीषण यातनाएं देता था, अपने शरीर पर वर्षों का मैल चढ़ाए रखता था, क्षुद्र से क्षुद्र प्राणियों के प्रति दयाभाव बनाए रखता था, हेमंत की बर्फीली रातों में रात रात भर खुले मैदान में विहरता था। मैं श्मशान में मुर्दों की हड्डियों का तकिया बनाकर सोता था। उस समय चरवाहे मेरे पास आकर मुझ पर थूकते थे, मूत्र करते थे, धूल फेंकते थे, कानों में सींक भी डालते थे, पर मैं अपना उपेक्षा-भाव बनाए रखता था।

भगवान ने आगे कहा कि कोई कोई श्रमण-ब्राह्मण ऐसी दृष्टि रखते हैं – 'आहार से शुद्धि होती है।' तब वे बेर, मूंग, तिल अथवा तंडुल से बने आहार का ही सेवन करते थे। मैं भी एक समय में इनमें से एक ही वस्तु के बराबर आहार को काम में लेता था। इसके फलस्वरूप मेरा शरीर अत्यंत कृश हो गया। मेरे अंग-प्रत्यंग ऐसे हो गए मानों किसी अस्सी वर्ष के बूढ़े व्यक्ति के हों। मेरे कूल्हे ऊंट के पांव के समान, मेरी पीठ के कांटे रस्सी की ऐंठन जैसे, मेरी पसलियां पुरानी इमारत की खिसकी हुई कड़ियों की नाईं हो गईं। मैं पेट का चमड़ा पकड़ने लगता तो पीठ का कांटा हाथ में आता और पीठ का कांटा पकड़ने

लगता तो पेट का चमड़ा हाथ में आ जाता। मेरे पेट का चमड़ा पीठ के कांटोंसे सट गया था।

भगवान ने कहा कि ऐसी कठोर चर्या के बावजूद मैं उत्तरमनुष्यधर्म तथा आर्यज्ञानदर्शनविशेष की पराकाष्ठा को नहीं पा सका। इसका कारण यही था कि मेरे पास निर्वाण की ओर ले जाने वाली, दुःखों का समूल नाश कराने वाली यह आर्यप्रज्ञा नहीं थी।

भगवान ने अपने निजी अनुभव के आधार पर कतिपय अन्य दृष्टियों को भी असार्थक बतलाया, जैसे –'संसरण करने से शुद्धि होती है'; 'उपपत्ति (पुनर्जन्म) से शुद्धि होती है'; 'आवास से शुद्धि होती है'; 'यज्ञ से शुद्धि होती है'; 'हवन से शुद्धि होती है।'

भगवान ने इस धर्मपर्याय को 'लोमहंसनपरियाय' भी कहा क्योंकि इसे सुनते-सुनते भगवान की परिचर्या में जुटे हुए आयुष्मान नागसमाल को लोमहर्षण (रोमांच) हो आया था।

३. महादुक्खक्खन्धसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। एक दिन भिक्षुओं ने उनसे कहा –"आज हम सावत्थी में भिक्षाटन के लिए जाने से पूर्व अन्यतैर्थिक (दूसरे मत वाले) परिव्राजकों के आराम में चले गए। वहां पर उन्होंने हमसे पूछा कि हमारे और श्रमण गौतम के धर्मोपदेश में क्या अंतर है जबकि हम भी श्रमण गौतम के समान कामों (कामभोगों), रूपों तथा वेदनाओं के परित्याग को प्रज्ञप्त करते हैं। इस पर हम यह सोच कर बिना अभिनंदन, बिना प्रतिवाद किए वहां से चले आए कि इस बारे में भगवान से ही पूछेंगे।" यह सुनकर भगवान ने कहा –"ऐसे लोगों से कामों, रूपों तथा वेदनाओं के आस्वाद (भोग), आदीनव (दुष्परिणाम) तथा निस्सरण (निकासी) के बारे में पूछना चाहिए। चूंकि यह उनका विषय नहीं है, इसलिए वे इसका उत्तर नहीं दे पाएंगे।"

तदनंतर भगवान ने उनको कामों, रूपों तथा वेदनाओं के आस्वाद, आदीनव तथा निस्सरण के बारे में विस्तार से समझाया। वेदनाओं की चर्चा करते समय उन्होंने व्यक्त किया कि जब कोई भिक्षु प्रथम ध्यान से लेकर चतुर्थ ध्यान तक

किसी भी ध्यान को प्राप्त कर विहरता है, उस समय वह न तो अपने आप को, न किसी दूसरे को, न दोनों को पीड़ा पहुँचाने को सोचता है। उस समय वेदना पीड़ा-रहित होती है और पीड़ा-रहितता वेदनाओं का श्रेष्ठ (उत्तम) आस्वाद है। वेदनाओं की अनित्यता, दु:खता तथा विपरिणामधर्मता (बदलते रहने का स्वभाव) उनका आदीनव है। वेदनाओं से छन्द-राग को दूर करना, छन्द-राग का परित्याग उनका निस्सरण है।

जो कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण कामों, रूपों तथा वेदनाओं के आस्वाद को आस्वाद के समान, आदीनव को आदीनव के समान और निस्सरण को निस्सरण के समान यथाभूत जानते हैं, वे स्वयं भी वेदनाओं को पूरी तरह जान लेते हैं और दूसरे को भी ऐसे ही शिक्षित कर पाते हैं। जो इस बारे में स्वयं अज्ञानी होते हैं, वे ऐसा नहीं कर पाते।

४. चूळदुक्खक्खन्धसुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में कपिलवत्थु के निग्रोध आराम में विहार करते थे। उस समय महानाम शाक्य उनके पास आकर कहने लगा – "भंते! लंबे समय से मैं भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म को ऐसे समझता हूं – 'लोभ चित्त का उपक्लेश है, द्वेष चित्त का उपक्लेश है, मोह चित्त का उपक्लेश है। पर कभी मेरे चित्त से लोभ वाले, कभी द्वेष वाले और कभी मोह वाले धर्म चिपटे रहते हैं। तब मुझे ऐसा होता है कि कौन-सा धर्म मेरे भीतर से छूटा नहीं है जिससे कभी चित्त से लोभ वाले, कभी द्वेष वाले और कभी मोह वाले धर्म चिपटे रहते हैं?"

यह सुनकर भगवान ने कहा –"महानाम! वही धर्म तेरे भीतर से छूटा हुआ नहीं है जिससे कभी लोभ वाले, कभी द्वेष वाले और कभी मोह वाले धर्म तेरे चित्त से चिपटे रहते हैं। यदि वह तेरे भीतर से छूटा हुआ होता, तो तू घर में न रहता, न कामोपभोग करता। चूंकि वह धर्म तेरे भीतर से छूटा नहीं है, इसलिए तू गृहस्थ है, कामोपभोग करता है।"

तत्पश्चात भगवान ने महानाम को कामभोगों के आस्वाद एवं आदीनव (दुष्परिणाम) के बारे में विस्तृत जानकारी दी।

इसके उपरांत भगवान ने राजगह में गिज्झकूट पर्वत पर अपने विहार करने

के समय की एक घटना का उल्लेख किया। उस समय बहुत से निर्ग्रंथ इसिगिलि के पास काळसिला पर खड़े हुए, आसन छोड़, उपक्रम करते हुए दुःखपूर्ण, तीव्र वेदनाएं अनुभव कर रहे थे। भगवान द्वारा यह पूछे जाने पर कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं, उन्होंने कहा कि निगंठ नातपुत्त सर्वज्ञ हैं और उनका यह कथन है – "पहले के किए हुए दुष्कर्मों की निर्जरा इस कठोर तपस्या से करो और जो इस समय यहां काया, वाणी और मन का संवर है, उससे भविष्य के दुष्कर्मों से बचो। इस प्रकार चित्त आस्रव-रहित हो जाएगा जिससे शनैः शनैः कर्मों का क्षय, दुःख का क्षय और वेदना का क्षय हो जाएगा। वेदना का क्षय हो जाने से सारे दुःखों की निर्जरा हो जाएगी। हमें यह कथन अच्छा लगता है। हम इससे संतुष्ट हैं।"

तब भगवान द्वारा पूछे गए विभिन्न प्रश्नों के उत्तर में निर्ग्रंथों ने स्वीकार किया कि हमें यह नहीं मालूम कि हम पहले थे भी या नहीं; हमने पूर्व में दुष्कर्म किये भी हैं या नहीं; हमने अमुक-अमुक दुष्कर्म किए हैं; इतने दुःख की निर्जरा हो गई है, इतने की होनी है और इतने दुःख की निर्जरा होने पर सारे दुःख की निर्जरा हो जाएगी; इसी जन्म में अकुशल धर्मों का विनाश और कुशल धर्मों का लाभ होना है। भगवान ने कहा कि यदि ऐसा ही हो तो निर्दयी, क्रूर एवं लहू से रंगे हाथों वाले नीच जाति के लोग ही प्रव्रजित होंगे।

तदनंतर चर्चा के दौरान निर्ग्रंथों के मुंह से यह बात निकल गई कि मगध के राजा सेनिय बिम्बिसार भगवान से अधिक सुख-विहारी हैं। इस संदर्भ में भगवान ने उनसे पूछा कि क्या राजा बिम्बिसार बिना शरीर को हिलाए डुलाए, मौन रहते हुए सात रात-दिन एकांत-सुख अनुभव करते हुए विहार कर सकता है? निर्ग्रंथों ने उत्तर दिया – नहीं। तदुपरांत उन्होंने यहां तक स्वीकार कर लिया कि राजा बिम्बिसार एक रात-दिन भी इस प्रकार विहार नहीं कर सकता। भगवान ने कहा कि मैं इस प्रकार सात रात-दिन तक विहार कर सकता हूं। ऐसा होने पर अधिक सुख-विहारी कौन हुआ – मगधराज सेनिय बिम्बिसार अथवा मैं? इस पर निर्ग्रंथों ने अंगीकार किया – "ऐसा होने पर तो मगधराज से आयुष्मान गौतम ही अधिक सुख-विहारी हैं।"

महानाम शाक्य ने संतुष्ट होकर भगवान के भाषण का अभिनंदन किया।

५. अनुमानसुत्त

एक समय आयुष्मान महामोग्गल्लान भग्ग जनपद में सुसुमारगिरि के

भेसकळावन मृगदाव में विहार करते थे। वहां पर उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –

"चाहे कोई भिक्षु आह्वान करे –'आप मुझ से संभाषण करें, मैं आप के द्वारा संभाषण के योग्य हूं।' किंतु यदि वह दुर्वचन कहनेवाले, दुर्वचन पैदा करनेवाले धर्मों से युक्त है, और शिक्षा ग्रहण करने में असमर्थ, उत्साहहीन है तो फिर सब्रह्मचारी उसे संभाषण के योग्य नहीं मानते और न उस व्यक्ति में विश्वास उत्पन्न करना उचित समझते हैं।

"परंतु यदि वह सुवचन कहनेवाले, सुवचन पैदा करनेवाले धर्मों से युक्त है, और शिक्षा ग्रहण करने में समर्थ, उत्साही है तो फिर सब्रह्मचारी उसे संभाषण के योग्य मानते हैं और उस व्यक्ति में विश्वास उत्पन्न करना उचित समझते हैं।

आयुष्मान मोग्गल्लान ने विस्तार से यह भी समझाया कि दुर्वचन पैदा करने वाले और सुवचन पैदा करने वाले धर्म कौन से होते हैं।

तत्पश्चात आयुष्मान मोग्गल्लान ने कहा –"भिक्षु अपने आप को इस प्रकार समझाए कि जो व्यक्ति पाप की इच्छा करनेवाला है, पापपूर्ण इच्छा के वशीभूत है, वह मुझे अप्रिय, अरुचिकर होता है। मैं भी पाप की इच्छा करने वाला हूं, पापपूर्ण इच्छा के वशीभूत हूं। अतः मैं भी दूसरों को अप्रिय, अरुचिकर होऊंगा। यह जानते हुए भिक्षु को ऐसा चित्त उत्पन्न करना चाहिए कि मैं पाप की इच्छा करने वाला नहीं होऊंगा, मैं पापपूर्ण इच्छाओं के वशीभूत नहीं होऊंगा।

"भिक्षु को अपने आप को इस प्रकार परखना चाहिए –क्या मैं पाप की इच्छा करनेवाला हूं, पापपूर्ण इच्छाओं के वशीभूत हूं? यदि उसे प्रतीत हो कि मैं पाप की इच्छा करनेवाला हूं, पापपूर्ण इच्छाओं के वशीभूत हूं, तो उसे अकुशल धर्मों के परित्याग के लिए यत्न करना चाहिए। परंतु यदि उसे ऐसा लगे कि मैं पाप की इच्छा करने वाला नहीं हूं, पापपूर्ण इच्छाओं के वशीभूत नहीं हूं, तो उसे उसी प्रसन्नता एवं आनंद के साथ रात-दिन कुशल धर्मों को सीखते विहार करना चाहिए।"

आयुष्मान मोग्गल्लान ने अन्य अनेक अकुशल धर्मों की भी चर्चा करते हुए अपने आशय को सुस्पष्ट किया और अंत में कहा –

"जैसे कोई चमक दमक प्रिय युवती अथवा युवक एकदम स्वच्छ दर्पण अथवा जल-पात्र में अपने मुख के प्रतिबिंब को देखते हुए –यदि वहां पर मैल दिखे तो

उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं, और वहां पर मैल नहीं दिखे तो उससे संतुष्ट रहते हैं – 'अहो! लाभ है हमें! नितांत स्वच्छ है हमारा मुख!'

"ऐसे ही यदि भिक्षु अपनी परख करते समय अपने आप में अकुशल धर्मों को अविनष्ट पाए, तो उसे इनके विनाश के लिए यत्न करना चाहिए। परंतु यदि वह इन्हें विनष्ट पाए, तो उसे उसी प्रसन्नता एवं आनंद के साथ रात-दिन कुशल धर्मों को सीखते विहार करना चाहिए ।"

६. चेतोखिलसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां पर उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –

"भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षु के चित्त के पांच चेतोखिल (कंटक) नष्ट नहीं हुए, चित्त के पांच बंधन भली प्रकार विच्छिन्न नहीं हुए, वह इस धर्मविनय में वृद्धि, उत्कर्ष, विपुलता को प्राप्त हो पायेगा, यह संभव नहीं है।

"चित्त के नष्ट न हुए पांच चेतोखिल (कंटक) हैं – (१) शास्ता के बारे में संदेह; (२) धर्म के बारे में संदेह; (३) संघ के बारे में संदेह; (४) शिक्षा के बारे में संदेह; तथा (५) सब्रह्मचारियों के बारे में कुपित, असंतुष्ट एवं रोषपूर्ण मानस।

"चित्त के अविच्छिन्न पांच बंधन हैं – (१) कामभोगों में राग, द्वेष, प्रेम, पिपासा, परिदाह (जलन) तथा तृष्णा का अभाव न होना; (२) ऐसे ही काया में; (३) ऐसे ही रूप में; (४) इच्छानुसार पेट भर भोजन करके शय्या-सुख, करवट का सुख तथा आलस्य का सुख भोगते हुए विहार करना; तथा (५) किसी देव-निकाय देवयोनि का प्रणिधान करके ब्रह्मचर्य का पालन करना।

"जब तक चित्त के ये पांच कंटक तथा पांच बंधन कायम रहते हैं, तब तक वह भिक्षु का चित्त आतप्य (कठोर परिश्रम), अनुयोग (साधना), सातत्य (निरंतर अभ्यास) तथा प्रधान (दृढ़ उद्योग) के लिए नहीं झुकता है।

"जिस किसी भिक्षु के चित्त के पांच कंटक दूर हो जाते हैं, चित्त के पांच बंधन भली प्रकार कट जाते हैं, वह इस धर्मविनय में वृद्धि, उत्कर्ष, विपुलता को प्राप्त कर सकेगा, यह संभव है। ऐसा भिक्षु छंद-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करता है; वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करता है; चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना

करता है; मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करता है; और पांचवां है उत्साह।

"इस प्रकार उत्साह-सहित पंद्रह अंगों से युक्त भिक्षु निर्वेद (वैराग्य), संबोधि (परमज्ञान) तथा सर्वोत्तम योगक्षेम (निर्वाण) की प्राप्ति के योग्य होता है।"

७. वनपत्थसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां पर उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –"यदि कोई भिक्षु वनप्रदेश, ग्राम, नगर, जनपद अथवा व्यक्ति का आश्रय लेकर विहरे परंतु उसकी अनुपस्थित स्मृति उपस्थित न हो, असमाहित चित्त समाहित न हो, अपरिक्षीण आस्रव परिक्षीण न हों, अलब्ध अनुत्तर योगक्षेम (निर्वाण) उपलब्ध न हो, और प्रव्रजित के लिए अपेक्षित चीवर, पिंडपात आदि भी कठिनाई से मिलते हों, तो वहां नहीं रहना चाहिए, वहां से रात हो या दिन चले जाना चाहिए। यदि चीवर, पिंडपात आदि आसानी से मिल जाते हों, तो भी वहां नहीं रहना चाहिए, वहां से चले जाना चाहिए।

"परंतु यदि अनुपस्थित स्मृति उपस्थित होती हो, असमाहित चित्त समाहित होता हो, अपरिक्षीण आस्रव परिक्षीण होते हों, अलब्ध अनुत्तर योगक्षेम (निर्वाण) उपलब्ध होता हो, और प्रव्रजित के लिए अपेक्षित चीवर, पिंडपात आदि कठिनाई से मिलते हों, तो वहीं रहना चाहिए, वहां से चले नहीं जाना चाहिए और यदि चीवर, पिंडपात आदि आसानी से मिल जाते हों, तब तो यावज्जीवन वहीं बने रहना चाहिए, वहां से चले नहीं जाना चाहिए।"

[इस सुत्त का आशय यह है कि जहां रहने से आध्यात्मिक उन्नति होती हो, भले ही भौतिक सुविधाएं जुटाना सरल हो अथवा कठिन, वहां बने रहना चाहिए, वहां से चले नहीं जाना चाहिए।]

८. मधुपिण्डिक सुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में कपिलवत्थु के निग्रोध आराम में विहार करते समय महावन में दिवा-विहार के लिए चले गए। वहां पर दण्डपाणि शाक्य ने उनसे पूछा – "आप श्रमण किस वाद, किस सिद्धांत वाले हैं?"

भगवान ने कहा –"आवुस! जिस वाद वाला देव-मार-ब्रह्मासहित सारे लोक में, श्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य सारी प्रजा में, लोक में किसी के साथ झगड़ा नहीं करता; कामुकता से रहित विहरते हुए संदेहरहित, कौकृत्य को तहस-नहस किए हुए, भव-अभव में तृष्णारहित ब्राह्मण को जैसे संज्ञाएं नहीं सतातीं –यह है मेरा वाद, यह है मेरा सिद्धांत।"

ऐसा कहने पर दण्डपाणि सिर हिला कर चला गया।

बाद में भगवान ने निग्रोधाराम में भिक्षुओं को इस घटना की जानकारी दी। इस पर एक भिक्षु ने भगवान द्वारा दण्डपाणि को दिए गए उत्तर के बारे में स्पष्टीकरण चाहा, जिस पर उन्होंने कहा –"भिक्षुओ! जिसके कारण पुरुष को प्रपंचसंज्ञा का ज्ञान आता है, जहां अभिनंदन, अभिवादन एवं गवेषणा करने योग्य नहीं है, यही है अंत भिन्न भिन्न प्रकार के अनुशयों का, चाहे वह राग-संबंधी हों अथवा द्वेष, दृष्टि, विचिकित्सा, मान, भवराग अथवा अविद्या-संबंधी। यही है अंत दंडग्रहण, शस्त्रग्रहण, कलह, विग्रह, विवाद, 'तू-तू-मैं-मैं', पिशुनता (चुगली) और मृषावाद (झूठ) का। यहां ये पापपूर्ण अकुशल धर्म पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं।"

यह कह कर भगवान वहां से उठ कर विहार में चले गए।

भगवान के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद भिक्षुओं को यह हुआ कि भगवान अपने प्रवचन का विस्तार से अर्थ बताए बिना विहार में प्रवेश कर गए हैं, अतः क्यों न भगवान द्वारा प्रशंसित और विज्ञ सब्रह्मचारियों द्वारा सम्मानित आयुष्मान महाकच्चान से इसका विस्तार से अर्थ जान लिया जाए।

भिक्षुओं के अनुरोध पर आयुष्मान महाकच्चान ने उन्हें बतलाया –"आवुस! चक्षु और रूप के कारण चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है, तीनों (चक्षु-इन्द्रिय, रूप-विषय, और विज्ञान) का मेल स्पर्श कहलाता है, स्पर्श के कारण वेदना होती है, जिसका वेदन (अनुभव) करता है, उसका संज्ञान (पहचान) करता है, जिसका संज्ञान करता है उसके बारे में वितर्क करता है, जिसके बारे में वितर्क करता है, उसका प्रपंच करता है। जिसका प्रपंच करता है उसके कारण पुरुष को भूत, भविष्य एवं वर्तमान से संबंधित चक्षु द्वारा विज्ञेय रूपों में प्रपंच-संज्ञा का संख्यान आता है।

"ऐसे ही श्रोत्र तथा शब्द के कारण श्रोत्रविज्ञान; घ्राण तथा गंध के कारण

घ्राणविज्ञान; जिह्वा तथा रस के कारण जिह्वाविज्ञान; काया तथा स्प्रष्टव्य के कारण कायविज्ञान; और मन तथा उसके धर्म के कारण मनोविज्ञान उत्पन्न होते हैं; और फिर पूर्ववत आगे की प्रक्रिया चलती जाती है।

"चक्षु, रूप तथा चक्षुर्विज्ञान के होने पर ही स्पर्श का प्रज्ञापन संभव होता है, स्पर्श के प्रज्ञापन से वेदना का, वेदना के प्रज्ञापन से संज्ञा का, संज्ञा के प्रज्ञापन से वितर्क का और वितर्क के प्रज्ञापन से प्रपंच-संज्ञा-संख्या-समुदाचरण (ज्ञान के उपचार का जानना) संभव हो पाता है। "ऐसे ही श्रोत्र, शब्द तथा श्रोत्रविज्ञान; घ्राण, गंध तथा घ्राणविज्ञान; जिह्वा, रस तथा जिह्वाविज्ञान; काया, स्प्रष्टव्य तथा कायविज्ञान; और मन, उसके धर्म तथा मनोविज्ञान के होने पर ही स्पर्श का प्रज्ञापन संभव होता है और पूर्ववत आगे का क्रम चलता जाता है।

"चक्षु, रूप तथा चक्षुर्विज्ञान के न होने पर स्पर्श का प्रज्ञापन संभव नहीं होता है जिससे पूर्व में उल्लेख-प्राप्त आगे की प्रक्रिया नहीं चल पाती। ऐसा ही श्रोत्र, शब्द तथा श्रोत्रविज्ञान; घ्राण, गंध तथा घ्राणविज्ञान; जिह्वा, रस तथा जिह्वाविज्ञान; काया, स्प्रष्टव्य तथा कायविज्ञान; और मन, उसके धर्म तथा मनोविज्ञान के संदर्भ में जानने योग्य है।"

अंत में आयुष्मान महाकच्चान ने भिक्षुओं से कहा कि मैंने अपनी समझ से भगवान द्वारा व्याख्या न किए गए उपदेश का अर्थ बतलाया है, यदि आप चाहें तो भगवान से भी अर्थ पूछ लें और वह जैसा व्याख्यान करें, वैसा धारण करें।

इसके बारे में भिक्षुओं द्वारा भगवान से पूछे जाने पर उन्होंने उत्तर दिया – "भिक्षुओ, पंडित है महाकच्चान; महाप्रज्ञावान है महाकच्चान! यदि तुमने यह अर्थ मुझ से पूछा होता, तो मैं भी इसका ऐसे ही व्याख्यान करता जैसा महाकच्चान ने किया है। इसको ऐसे ही धारण करो।"

तदनंतर आयुष्मान आनन्द ने कहा –"भंते! जैसे किसी बहुत भूखे व्यक्ति को कोई मधुपिंड (लड्डू) मिल जाए और वह इसे जहां-जहां से खाए, वहीं -वहीं से तृप्तिकारक स्वादु रस पाए; ऐसे ही कोई कुशाग्रबुद्धि भिक्षु इस धर्मपर्याय के अर्थ को अपनी प्रज्ञा से जहां कहीं से परखे, वहीं-वहीं से आत्मविभोरता और चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करेगा। भंते! क्या नाम है इस धर्मपर्याय का?

इस पर भगवान ने कहा –" तो आनन्द! इसे मधुपिण्डिक-धर्मपर्याय के नाम से धारण कर।"

९. द्वेधावितक्क सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां पर भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा –

"भिक्षुओ! संबोधि प्राप्त करनेसे पहले भी मेरे मन में ऐसा होता था –'क्यों न मैं वितर्कोंको दो टूक करके विहार करूं?' तब मैं कामवितर्क,व्यापादवितर्क और विहिंसावितर्क को एक भाग बनाता था और नैष्क्रम्यवितर्क, अव्यापादवितर्क और अविहिंसावितर्क को दूसरा भाग।

"अप्रमत्त, उद्योगशील तथा आत्मसंयमी होकर विहरते समय भी मुझे कामवितर्कउत्पन्न होता था। तब मैं प्रज्ञापूर्वक जानता था –'मुझे यह कामवितर्क उत्पन्न हुआ है। यह मेरे लिए, दूसरे के लिए, हम दोनों के लिए बाधाजनक है। यह प्रज्ञा-निरोधक, विनाश पक्ष वाला और निर्वाण तक न ले जाने वाला है।' जैसे- जैसे मैं इन बातों का मनन करता,वैसे-वैसे कामवितर्कसमाप्त होता जाता। इस प्रकार मैं बार-बार उत्पन्न होने वाले कामवितर्कोंको दूर करता रहता था। ऐसे ही व्यापादवितर्क अथवा विहिंसावितर्क के उत्पन्न होने पर मैं उन्हें भी दूर किया करता था।

"भिक्षु जैसे-जैसे अधिक अनुवितर्क,अनुविचार करता है, वैसे-वैसे चित्त को झुकना होता है। यदि कामवितर्क के बारे में अधिक अनुवितर्क, अनुविचार करता है, तो वह नैष्क्रम्यवितर्क को छोड़ता है और कामवितर्क को बढ़ाता है जिससे उसका चित्त कामवितर्ककी ओर झुकता है। ऐसे ही व्यापादवितर्क एवं विहिंसावितर्क के बारे में भी होने से चित्त इनकी ओर झुकता है।

"अप्रमत्त, उद्योगशील तथा आत्मसंयमी होकर विहरते समय मुझे जब नैष्क्रम्यवितर्क उत्पन्न होता था, तब मैं प्रज्ञापूर्वक जानता था – 'मुझे यह नैष्क्रम्यवितर्कउत्पन्न हुआ है। यह न मेरे लिए, न दूसरे के लिए, न हम दोनों के लिए बाधाजनक है। यह प्रज्ञापूर्वक,अविनाश-पक्ष वाला और निर्वाण की ओर ले जाने वाला है।' मैं कभी भी इस बारे में अनुवितर्क,अनुविचार करता तो इस कारणसे भय नहीं देखता। पर बहुत देर तक अनुवितर्क,अनुविचार करनेसे मेरा शरीर थक जाता, जिससे चित्त भी शिथिल होकर समाधि से परे हट जाता था। सो मैं अपने भीतर ही चित्त को स्थापित करता था, जिससे यह शिथिल न हो

जाय । ऐसे ही मैं अव्यापादवितर्क अथवा अविहिंसावितर्क के उत्पन्न होने पर भी किया करता था।

“यदि भिक्षु नैष्क्रम्यवितर्क के बारे में अधिक अनुवितर्क, अनुविचार करता है तो वह कामवितर्क को छोड़ता है और नैष्क्रम्य वितर्क को बढ़ाता है, जिससे उसका चित्त नैष्क्रम्यवितर्क की ओर झुकता है। ऐसे ही अव्यापादवितर्क एवं अविहिंसावितर्क के बारे में भी होने से चित्त इनकी ओर झुकता है।

“मैने न दबने वाला वीर्य आरंभ कर रखा था, न भूलने वाली स्मृति मेरे सम्मुख थी, मेरा शरीर प्रशांत और चित्त एकाग्र था। शनैःशनैः मैं प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरने लगा। एकाग्र हुए, नितांत शुद्ध, उपक्लेशरहित, मृदु, आनेञ्जप्राप्त चित्त को विभिन्न उद्देश्यों के लिए नवाने पर मुझे पूर्वनिवासों की स्मृति उभर आई, कर्मानुसार प्राणियों की च्युति एवं उत्पत्ति का ज्ञान होने लगा और आस्रवों के क्षय का ज्ञान होने से स्पष्ट हो गया कि जन्म समाप्त हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है। इस प्रकार प्रमादरहित, उद्योगशील तथा आत्मसंयमी होकर विहार करते हुए मेरी अविद्या नष्ट हुई, विद्या उत्पन्न हुई; अंधकार नष्ट हुआ, प्रकाश उत्पन्न हुआ।”

अंत में भगवान ने एक उपमा दर्शाने के पश्चात भिक्षुओं को कहा – “भिक्षुओ! श्रावकों के हितैषी, अनुकंपक, शास्ता ने अनुकंपा करके जो कुछ करना था वह कर दिया है। यह रहे वृक्ष-मूल, यह रहे शून्यागार! ध्यानरत हो जाओ, मत प्रमाद करो, मत पीछे पश्चात्ताप करना – यह तुम्हारे लिए हमारा अनुशासन है।”

१०. वितक्क सण्ठानसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां पर उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बतलाया कि उन्हें समय समय पर निम्नांकित पांच निमित्तों का चिंतन करना चाहिए –

(१) जिस निमित्त को लेकर मन में राग, द्वेष और मोह वाले अकुशल वितर्क उत्पन्न होते हों, उन्हें छोड़ कुशल निमित्त को मन में लाना चाहिए। ऐसा करने से अकुशल वितर्क नष्ट हो जाते हैं और मन एकाग्र हो जाता है।

(२) यदि ऐसा करने पर भी अकुशल वितर्क उत्पन्न होते हों, तो उन वितर्कों के दुष्परिणाम की जांच करनी चाहिए।

(३) यदि फिर भी अकुशल वितर्क उत्पन्न हों, तो उन वितर्कों को मन में नहीं लाना चाहिए।

(४) यदि अकुशल वितर्क फिर भी उत्पन्न होते ही हों, तो इन वितर्कों के संस्कार का संस्थान (आकार) मन में लाना चाहिए।

(५) यदि ऐसा करने पर भी स्थिति पूर्ववत बनी रहे, तो दांतों को दांतों पर रख कर, जिह्वा को तालु से चिपटा कर, चित्त से चित्त का निग्रह करना चाहिए। ऐसा करने से अकुशल वितर्क नष्ट हो जाते हैं और मन एकाग्र हो जाता है।

ऐसा भिक्षु वितर्क के तौर-तरीकों को वश में करने वाला कहलाता है। वह जिस वितर्क को चाहता है, उसे मन में लाता है; जिस वितर्क को नहीं चाहता, उसे मन में नहीं लाता। वह तृष्णा का उच्छेद कर, बंधन-मुक्त हो, अहंकार को सम्यक रूप से जान कर दुःख का अंत कर डालता है।

३. ओपम्मवग्ग

१. ककचूपमसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय मोळियफग्गुन नाम का भिक्षु भिक्षुणियों से अत्यधिक मेलजोल रखता था। भगवान ने उसे समझाया कि तेरे समान श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुए कुलपुत्र के लिए यह ठीक नहीं है कि तू भिक्षुणियों से अत्यधिक मेलजोल रखे। तुम्हें तो यह सीखना चाहिए कि न तो मेरे चित्त में विकार जागेंगे, न मैं मुँह से बुरे वचन बोलूंगा और मैं द्वेषरहित हो, मैत्री-पूर्ण चित्त से हितचिंतक एवं अनुकंपक होकर विहरूंगा।

तत्पश्चात भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि तुम भी बुराई को छोड़ो और अच्छाई में लगो। इससे तुम इस धर्मविनय में परिपुष्ट होगे।

तदनंतर भगवान ने भूतकाल की वेदेहिका नाम की गृहपत्नी की बात बताई जिसके बारे में यह प्रसिद्ध था कि वह विनम्र, झगड़ा न करनेवाली और शांत है। परन्तु जब काळी नाम की उसकी दासी ने कुछ ढोंग रच कर उसकी परीक्षा ली तो पता चला कि उसके भीतर तो बहुत क्रोध समाया हुआ है। भिक्षुओं को इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और केवल धर्म का ही सत्कार, पूजन एवं अभिवर्द्धन करते हुए विनम्रता हासिल करनी चाहिए।

इसके बाद भगवान ने बतलाया कि लोग एक दूसरे से पांच तरह से बात करते हैं – (१)समयानुसार अथवा बिना समय देखे; (२)सच अथवा झूठ; (३)कोमल अथवा कठोर; (४)सार्थक अथवा निरर्थक; और (५)मैत्रीपूर्ण चित्त से अथवा द्वेषयुक्त चित्त से। इस बारे में भिक्षुओं को तो यही सीखना चाहिए कि न तो हमारे चित्त में विकार जागेंगे, न हम मुँह से बुरे वचन बोलेंगे और हम द्वेषरहित हो, मैत्रीपूर्ण चित्त से हितचिंतक एवं अनुकंपक होकर विहार करेंगे। विरोधी व्यक्ति को भी मैत्रीपूर्ण चित्त से आप्लावित कर विहरेंगे। उसे आलंबन बना कर सारे संसार को विपुल, विस्तीर्ण, अप्रमेय मैत्रीपूर्ण, वैररहित चित्त से सराबोर कर विहार करेंगे।

अंत में भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि यदि कोई चोर-उचक्के आरे से

तुम्हारे अंग-अंग को चीरे और ऐसा होने पर तुममें से कोई अपना चित्त दूषित कर बैठे, तो वह मेरी शिक्षा के अनुसार चलने वाला नहीं होगा।

क्रकच (आरे) के दृष्टांत वाला यह उपदेश निरंतर मन में बनाए रखने से चिरकाल तक हित-सुख के लिए होता है।

२. अलगद्दूपमसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय अरिट्ठ नाम के भिक्षु को ऐसी पापपूर्ण दृष्टि उत्पन्न हुई –"मैं भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म को ऐसे जानता हूं – जिन्हें भगवान ने विघ्नकारक धर्म बतलाया है, वे सेवन किए जाने पर विघ्न नहीं कर सकते।"

इस गलत धारणा के लिए भगवान ने उसकी भर्त्सना की और कहा –"मैंने तो अनेक प्रकार से विघ्नकारक धर्मों को विघ्नकारक बतलाया है और सेवन किए जाने पर वे विघ्न ही करते हैं। मैंने कामभोगों को अस्थि-कंकाल, मांस-पेशी, तृण-उल्का, सुलगते अंगार, स्वप्न, वध-शाला, शक्ति-शूल, सर्प-शिर आदि की उपमा देते हुए इन्हें अत्यंत दुःखदायी, बहुत परेशानी पैदा करने वाला और दुष्परिणामी बखाना है।"

तत्पश्चात भगवान ने कहा कि कोई-कोई मोघपुरुष धर्म को धारण करते हुए भी उसके अर्थ को प्रज्ञा से नहीं परखते, जिससे वे इसकी अनुभूति से वंचित रह जाते हैं। जैसे अलगद्द (सांप) की तलाश में घूमता हुआ व्यक्ति एक बड़े सांप को पा ले, परंतु उसे गलत स्थान से पकड़े जिससे सांप उसे डस ले और वह मृत्यु अथवा मृत्यु-समान दुःख को प्राप्त हो जाए, वैसे ही मोघपुरुष द्वारा दुर्गृहीत धर्म चिरकाल तक उसके अहित एवं दुःख का कारण बना रहता है।

इसके विपरीत कोई-कोई कुलपुत्र धर्म को धारण करते हुए उसके अर्थ को प्रज्ञा से परखते हैं जिससे वे इसे अनुभूति पर उतार लेते हैं। जैसे अलगद्द की तलाश में घूमता हुआ व्यक्ति एक बड़े सांप को पा ले और उसे सही प्रकार से पकड़े जिससे सांप भले उससे लिपट जाए परंतु वह उसकी कोई हानि न कर सके, वैसे ही कुलपुत्र द्वारा सुगृहीत धर्म चिरकाल तक उसके हित एवं सुख का कारण बना रहता है।

तदनंतर भगवान ने कहा –"मैं एक बेड़े के समान (भवसागर से) पार जाने के लिए धर्म का उपदेश करता हूं, उसे पकड़ रखने के लिए नहीं।"

इसके बाद भगवान ने छः दृष्टि-स्थानों पर प्रकाश डाला। कोई अनार्य व्यक्ति रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान और दृष्ट, श्रुत, मुत, विज्ञात, प्राप्त, पर्येषित और मन द्वारा अनुविचारित पदार्थों को 'यह मेरा है', 'यह मैं हूं', 'यह मेरी आत्मा है' –ऐसा समझता है। परंतु आर्य-श्रावक इन्हें ऐसा नहीं समझता जिससे वह अशनित्रास (भय) को प्राप्त नहीं होता है ।

तत्पश्चात भगवान ने यह भी समझाया कि बाहर किस प्रकार अशनित्रास होता है और कैसे अशनित्रास नहीं होता है। ऐसे ही भीतर किस प्रकार अशनित्रास होता है और कैसे अशनित्रास नहीं होता है।

भगवान ने आगे समझाया कि (शरीर के) भीतर अथवा बाहर, स्थूल अथवा सूक्ष्म, निकृष्ट अथवा उत्कृष्ट, दूर अथवा निकट, जो कुछ भी भूत-भविष्य-वर्तमान का रूप है, वह सब - 'यह मेरा नहीं है', 'यह मैं नहीं हूं', 'यह मेरी आत्मा नहीं है' –ऐसे इसे यथार्थतः ठीक से जानकर देखना चाहिए। ऐसा ही वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के बारे में भी करना चाहिए। इससे आर्य-श्रावक रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से निर्वेद प्राप्त कर लेता है। निर्वेद से विराग को प्राप्त होता है। विराग प्राप्त होने पर विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर "मैं विमुक्त हो गया!" –यह जान लेता है। फिर वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –"जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।" इसी को कहते हैं "उत्क्षिप्त-परिघ", "संकीर्ण-परिख", "वीततृष्ण", "निरर्गल", "आर्य", "पन्न-ध्वज", "पन्न-भार", "वि-संयुक्त"। (भगवान ने इनका आशय भी स्पष्ट किया)।

अंत में भगवान ने भिक्षुओं से कहा –"रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान तुम्हारे नहीं हैं। इन्हें (अर्थात, इनके प्रति आसक्ति) छोड़ दो। यह छोड़ना चिरकाल तक तुम्हारे हित-सुख के लिए होगा। इस प्रकार मैंने धर्म को खोल कर भली प्रकार समझा दिया है। ऐसे सु-आख्यात धर्म में उन भिक्षुओं को कुछ भी उपदेश देने की आवश्यकता नहीं रही है जो अर्हत, औपपातिक (अनागामी), सकदागामी, सोतापन्न हो चुके हैं। ऐसे सु-आख्यात धर्म में जो भिक्षु श्रद्धानुसारी, धर्मानुसारी हैं वे भी संबोधिपरायण हैं। जिनकी मुझ में मात्र श्रद्धा अथवा प्रेम है, वे स्वर्गपरायण हैं अर्थात, उनका स्वर्ग-लाभ करना सुनिश्चित है।"

३. वम्मीक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान कुमारकस्सप अन्धवन में विहरते थे।

किसी शुभ्र रात्रि में एक शुभ्र देवता ने आयुष्मान कुमारकस्सपके पास आकर उनसे पहेली के रूप में कुछ प्रश्न किए। रात बीत जाने पर आयुष्मान ने भगवान के पास जाकर इनका अर्थ जानना चाहा।

भगवान ने सभी प्रश्नों का समाधान किया। इनका सार यह निकला कि शैक्ष्य (निर्वाण की ओर अग्रसर) व्यक्ति को आर्य प्रज्ञा से अविद्या का नाश करना चाहिए और नीवरणों, उपादान-स्कंधों अर्थात स्कंधों में व्याप्त उपादान, कामगुणों तथा नंदीराग (तृष्णा) को भली प्रकार छोड़ देना चाहिए।

४. रथविनीतसुत्त

एक समय मन्ताणि-पुत्र आयुष्मान पुण्ण अंधवन में दिवा-विहार के लिए गए। वहां आयुष्मान सारिपुत्त भी जा पहुँचे।

आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान पुण्ण से यह जानना चाहा कि वह किस लिए भगवान के पास ब्रह्मचर्यवास करते हैं – क्या शील-विशुद्धि के लिए? चित्त-विशुद्धि के लिए? दृष्टि-विशुद्धि के लिए? कांक्षावितरण-विशुद्धि (अर्थात, संशय दूर करने) के लिए? मार्गामार्गज्ञानदर्शन-विशुद्धि के लिए? प्रतिपद-ज्ञानदर्शन-विशुद्धि के लिए? ज्ञानदर्शन-विशुद्धि के लिए?

आयुष्मान पुण्ण द्वारा हर बार नकारात्मक उत्तर दिए जाने पर आयुष्मान सारिपुत्त ने उनसे कहा कि आप ही बताइए कि किसलिए आप भगवान के पास ब्रह्मचर्यवास करते हैं। इस पर उन्होंने कहा कि मैं उपादान-रहित परिनिर्वाण के लिए भगवान के पास ब्रह्मचर्यवास करता हूं।

तब आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान पुण्ण से फिर पूछ लिया कि क्या शील-विशुद्धि उपादान-रहित परिनिर्वाण है? चित्त-विशुद्धि उपादान-रहित परिनिर्वाण है? दृष्टि-विशुद्धि उपादान-रहित परिनिर्वाण है? कांक्षावितरण-विशुद्धि उपादान-रहित परिनिर्वाण है? मार्गामार्गज्ञानदर्शन-विशुद्धि

उपादान-रहित परिनिर्वाण है? प्रतिपद-ज्ञानदर्शन-विशुद्धि उपादान-रहित परिनिर्वाण है? ज्ञानदर्शन-विशुद्धि उपादान-रहित परिनिर्वाण है?

इस बार भी आयुष्मान पुण्ण द्वारा हर बार नकारात्मक उत्तर ही दिया गया। और यह पूछे जाने पर कि क्या उपादान-रहित परिनिर्वाण उपरोक्त धर्मों से अलग होता है, उन्होंने नकारात्मक उत्तर ही दिया।

तत्पश्चात आयुष्मान पुण्ण ने एक दृष्टांत देकर अपने कथन को स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि जैसे कोसलनरेश पसेनदि को सावत्थी में रहते हुए साकेत में अत्यावश्यक कार्य हो जाए और वह इन दोनों नगरों के बीच सात रथविनीत स्थापित करे और फिर, क्रमशः, पहले से दूसरे, दूसरे से तीसरे, तीसरे से चौथे, चौथे से पांचवें, पांचवें से छठे और छठे से सातवें रथविनीत से यात्रा कर अपने गंतव्य स्थान पर जा पहुँचे, ऐसे ही शील-विशुद्धि, चित्त-विशुद्धि, दृष्टि-विशुद्धि, कांक्षावितरण-विशुद्धि, मार्गामार्गज्ञानदर्शन-विशुद्धि, प्रतिपद-ज्ञानदर्शन-विशुद्धि, ज्ञानदर्शन-विशुद्धि में से हर कोई अपने से अगली अवस्था तक पहुँचाने के लिए है। ज्ञानदर्शन- विशुद्धि भी तभी तक है जब तक कोई उपादान-रहित परिनिर्वाण को प्राप्त नहीं हो जाता।

आयुष्मान पुण्ण ने फिर दोहराया कि मैं उपादान-रहित परिनिर्वाण के लिए भगवान के पास ब्रह्मचर्यवास करता हूं।

तदनंतर दोनों आयुष्मानों ने एक दूसरे का परिचय प्राप्त किया और एक दूसरे के सुभाषित का समनुमोदन किया।

५. निवापसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां पर उन्होंने निवाप (मृगों को फँसाने के लिये तैयार किए गए खेत) से संबंधित दृष्टांत देते हुए भिक्षुओं को बताया कि निवाप से अभिप्राय पांच कामगुणों से है, निवाप को बोने वाला नैवापिक पापी मार है, नैवापिक परिषद मार की परिषद है और मृग-समूह श्रमण-ब्राह्मणों का नाम है। जैसे मृग अधिकतर नैवापिक तथा उसकी परिषद के चंगुल में फँस जाते हैं परंतु कोई-कोई उनकी पकड़ में नहीं आते, वैसे ही श्रमण-ब्राह्मण अधिकतर पापी मार तथा उसकी परिषद के वशीभूत हो जाते हैं, परंतु कोई-कोई उनके वश में नहीं आते।

मार के वश में आने वाले श्रमण-ब्राह्मण तीन प्रकार के होते हैं – जो लोकामिषों (सांसारिक विषयों) को भोगते हुए मदमस्त, प्रमादी एवं स्वेच्छाचारी हो जाते हैं; जो लोकामिषों से भयभीत होकर जंगल में निवास करने लगते हैं परंतु वहां कष्ट आने पर उसे न झेल सकने के कारण लोकामिषों को भोगने के लिए चले आते हैं जिससे मदमस्त, प्रमादी एवं स्वेच्छाचारी हो जाते हैं; जो अमूर्छित रह कर लोकामिषों को भोगते हैं परंतु अनेक प्रकार की मिथ्या दृष्टियों का शिकार हो जाते हैं, यथा 'लोक नित्य है', 'लोक अनित्य है', 'लोक अन्तवान है', 'लोक अन्तरहित है', 'जो जीव है वही शरीर है', 'जीव अन्य और शरीर अन्य है', इत्यादि।

चौथे प्रकार के श्रमण-ब्राह्मण वहां आश्रय ग्रहण करते हैं जहां मार और मार परिषद की पहुँच नहीं होती। यह तब होता है जब कोई भिक्षु प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरता है। इसे कहते हैं –'भिक्षु ने मार को अंधा कर दिया है, मार की दृष्टि से अगम्य होकर वह पापी के लिए अदृश्य हो गया है।' ऐसे ही फिर द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ध्यान, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहरने पर। और तब नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का अतिक्रमण कर संज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त कर विहरने पर। प्रज्ञा से देखने के कारण उसके आस्रवों (चित्तमलों) का पूर्ण क्षय हो जाता है। इस अंतिम अवस्था के लिए तो यह और भी कहा जाता है –"उसने लोक में तृष्णा को पार कर लिया है।"

६. पासरासिसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते हुए रम्मक ब्राह्मण के आश्रम में चले गए। वहां पर एकत्र हुए भिक्षुओं को उन्होंने कहा –"भिक्षुओ! एकत्र होने पर तुम्हारे लिए दो ही काम करने योग्य होते हैं – धार्मिक कथा करना अथवा आर्य मौन का पालन।"

तत्पश्चात भगवान ने कहा कि पर्येषणा (गवेषणा) दो प्रकार की होती है – आर्य तथा अनार्य। अनार्य पर्येषणा करने वाला व्यक्ति स्वयं जन्म, जरा, व्याधि, मरण, शोक, संक्लेश धर्मों वाला होकर इन्हीं धर्मों की खोज करता है। आर्य पर्येषणा करने वाला व्यक्ति स्वयं इन धर्मों वाला होकर इनके दुष्परिणामों को देखकर इनके विपरीत अनुत्तर, योगक्षेम, निर्वाण की खोज करता है।

भगवान ने बतलाया –“बुद्ध बनने से पहले मैं भी अनार्य पर्येषणा करता था। फिर मुझे हुआ कि मैं क्यों न आर्य पर्येषणा करूं? तब मैं तरुण अवस्था में ही घर बार छोड़कर उत्तम शांतिपद की तलाश में निकल पड़ा। आचार्य आलार कालाम ने मुझे आकिंचन्यायतन तक विद्या सिखाई और आचार्य उद्दक रामपुत्र ने उससे आगे नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तक विद्या सिखाई और अपने बराबर के पदों पर स्थापित किया। परंतु, चूंकि इनके द्वारा सिखाए गए धर्म न तो निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संबोध और न निर्वाण के लिए थे, अतः मैं इन्हें अपर्याप्त जानकर फिर उत्तम शांतिपद की खोज में निकल गया।

“वहां से चारिका करते हुए मैं मगध में उरुवेला सेनानिगम में पहुँचा जो अत्यंत रमणीय और ध्यान के लिए अत्यंत उपयुक्त स्थान था। वहां पर मुझे निर्वाण का साक्षात्कार हुआ और यह ज्ञान उत्पन्न हुआ –‘मेरी विमुक्ति अचल हो गई है, यह अन्तिम जन्म है, अब नया जन्म नहीं हो सकता’।

“तब मुझे ऐसे लगा कि मुझे जो गंभीर, दुर्दर्श, दुर्ज्ञेय, शांत, उत्तम, तर्क से अप्राप्य, निपुण तथा पंडितों द्वारा जानने योग्य धर्म प्राप्त हुआ है, यदि मैं कामभोगों में रत लोगों को इसका उपदेश करूं तो वे इसे समझ नहीं पाएंगे और इससे केवल परेशानी ही होगी। अतः मेरा मन धर्म-प्रचार की ओर न झुक अल्प-उत्सुकता की ओर झुक गया।

“तब सहम्पति ब्रह्मा ने प्रकट होकर मुझसे कहा –‘भंते! आप धर्मोपदेश करें। अल्प मल वाले प्राणी भी हैं, धर्म न सुनने से वे नष्ट हो जाएंगे। (उपदेश सुनकर) वे धर्म के ज्ञाता हो जाएंगे’।

“तब मैं बुद्ध-नेत्र से लोक को निहारने लगा। मैंने पाया कि इसमें दोनों तरह के प्राणी हैं – कम मैल वाले; अधिक मैल वाले; तीक्ष्ण-इन्द्रिय, मंद-इन्द्रिय; सुंदर स्वभाव वाले, बुरे स्वभाव वाले; सुगमता से सिखाए जाने योग्य, कठिनता से सिखाए जाने योग्य; इत्यादि। यह देख मैंने ब्रह्मा से कहा –‘जिनके श्रोत्र हैं उनके लिए अमृत के द्वार खुल गए हैं। वे श्रद्धा से मुक्त होवें।

“तब सर्वप्रथम मैंने अपने आचार्य आलार कालाम को धर्मोपदेश देना चाहा परंतु वे एक सप्ताह पूर्व ही प्राण त्याग चुके थे। फिर मैंने आचार्य उद्दक रामपुत्त को धर्मोपदेश देना चाहा परंतु वे भी पिछली रात प्राण छोड़ चुके थे। तब मैंने

अपने पुराने साथियों –पंचवर्गीय भिक्षुओं –को धर्मोपदेश देने का सोचा जो उस समय वाराणसी के इसिपतन मिगदाय में विहार कर रहे थे।

"मैने वहां पहुँच कर उन्हें धर्म सिखाया जिसके फलस्वरूप उन्होंने जन्म, जरा, व्याधि, मरण, शोक ,संक्लेश धर्मों के दुष्परिणामों को जानकर,अनुत्तर योगक्षेम निर्वाण का साक्षात्कार कर लिया और उन्हें भी यह ज्ञान उत्पन्न हुआ –'हमारी विमुक्ति अचल हो गई है, यह अन्तिम जन्म है, अब नया जन्म नहीं हो सकता' "।

इसके उपरांत भगवान ने भिक्षुओं को पांच कामगुणों के बारे में समझाया। उन्होंने कहा –"जैसे पाश-राशि (जाल के ढेर) में बँधा हुआ जंगली मृग मुसीबत में पड़ा होता है, वैसी ही दशा उन श्रमण-ब्राह्मणों की होती है जो पांच कामगुणों में लिप्त रहते हैं। बंधन-प्राप्त मृग शिकारी के वश में होता है और कामगुणों में लिप्त श्रमण-ब्राह्मण मार के वश में।

"जो श्रमण-ब्राह्मण पांच कामगुणों से अ-लिप्त रहते हैं वे मार की पहुँच से बाहर चले जाते हैं। मार की पहुँच से बाहर रहने का उपाय है प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन और संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था को प्राप्त कर विहरना। इस अंतिम अवस्था में तो चित्त सर्वथा आस्रव-विहीन हो जाता है।"

७. चूळहत्थिपदोपमसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय वच्छायन गोत्र के पिलोतिक परिव्राजक ने जाणुस्सोणि ब्राह्मण के समक्ष भगवान के प्रज्ञा-पांडित्य की बहुत सराहना की।

जाणुस्सोणि द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर वच्छायन ने कहा –"जैसे कोई चतुर नाग-वनिक नाग-वन में लंबे-चौड़े हाथी के पैर को देख कर विश्वास करने लगे –'अरे, महानाग है', वैसे ही मुझे श्रमण गौतम के चार पद देखने पर यह विश्वास हो गया कि वे सम्यक-संबुद्ध हैं, उनका धर्म सु-आख्यात है और उनका श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।

"मैंने पहला पद यह देखा कि बाल की खाल निकालने वाले कोई-कोई क्षत्रिय पंडित श्रमण गौतम से शास्त्रार्थ करने की तैयारी करते हैं परंतु जब वह उनको

अपने धार्मिक उपदेश से समुत्तेजित, संप्रहर्षित करते हैं तब वे उन्हीं के शिष्य हो जाते हैं। दूसरा पद यह देखा कि ब्राह्मण पंडित भी यही करते हैं। तीसरा पद यह देखा कि गृहपति पंडित भी यही करते हैं। और चौथा पद यह देखा कि श्रमण पंडित भी श्रमण गौतम से शास्त्रार्थ करने के स्थान पर गृहत्यागी बन उनसे प्रव्रज्या की मांग करने लगते हैं। इस पर श्रमण गौतम उन्हें प्रव्रजित एवं उपसंपन्न करते हैं। तब वे लोग एकांतसेवन करते हुए, प्रमादरहित हो, आत्मसंयमी बन, उस अनुपम ब्रह्मचर्य-फल को शीघ्र ही, इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर, विहरने लगते हैं जिसके लिए कुलपुत्र घर से बेघर होकर प्रव्रजित होते हैं।"

यह सुनकर जाणुस्सोणि ब्राह्मण ने हाथ जोड़ कर तीन बार यह उदान कहा – 'नमस्कार है उन भगवान, अर्हंत, सम्यक संबुद्ध को! नमस्कार है उन भगवान, अर्हंत, सम्यक संबुद्ध को!! नमस्कार है उन भगवान अर्हंत, सम्यक संबुद्ध को!!!'

तदनंतर जाणुस्सोणि ब्राह्मण भगवान के पास गया और उन्हें पिलोतिक परिव्राजक के साथ हुए कथा-संलाप को कह सुनाया। इस पर उन्होंने कहा कि इतने मात्र से हस्तिपद-उपमा परिपूर्ण नहीं होती।

तब भगवान ने उपमा को विस्तार से समझाया – "जैसे कोई चतुर नाग-वनिक नाग-वन में लंबे-चौड़े हाथी के पैर को देख कर भी यह विश्वास नहीं करता – 'अरे, महानाग है', क्योंकि नाग-वन में वामनिका नाम की हथिनियों के भी बड़े पैर होते हैं। वह लंबे-चौड़े पैर और ऊंचे डील को देख कर भी ऐसा विश्वास नहीं करता, क्योंकि काळारिका नाम की हथिनियां भी ऐसी ही होती हैं। वह लंबे-चौड़े हाथी के पैर, ऊंचे डील और ऊंचे दांतों से सुशोभित प्राणी को देख कर भी ऐसा विश्वास नहीं जमाता क्योंकि करेणुका नाम की हथिनियां भी ऐसी ही होती हैं। परंतु जब वह लंबे-चौड़े हाथी के पैर, ऊंचे डील, ऊंचे दांतों से सुशोभित और ऊंचे से शाखा को टूटते हुए देखता है और उस वृक्ष के तले, अथवा खुले स्थान पर चलते हुए, खड़े हुए, बैठे हुए या लेटे हुए नाग को देखता है, तब विश्वास करने लगता है –'यही वह महानाग है'।

"जब इस लोक में तथागत के प्रति श्रद्धावान होकर कोई गृहपति घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाता है और आर्य शील-स्कंध, आर्य इन्द्रिय-संवर, आर्य स्मृति-संप्रज्ञान से युक्त हो, नीवरणों को त्याग, प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरता है, तो भले ही यह तथागत से सेवित, तथागत से रंजित, तथागत का पद

कहलाता है, आर्य-श्रावक इतने से ही विश्वास नहीं कर लेता कि भगवान सम्यक संबुद्ध हैं, उनका धर्म सु-आख्यात है और उनका श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।

"ऐसे ही द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान तथा चतुर्थ ध्यान, पूर्वनिवासानुस्मृति-ज्ञान और च्युति-उत्पाद-ज्ञान भी तथागत के पद कहलाते हैं परंतु आर्य-श्रावक इनसे विश्वास नहीं कर लेता कि भगवान सम्यक-संबुद्ध हैं, उनका धर्म सु-आख्यात है और उनका श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।

"जब परिशुद्ध हुए समाहित चित्त को आस्रवों के क्षय के ज्ञान के लिए नवाया जाता है, तब चारों आर्य सत्यों की प्रज्ञापूर्वक यथाभूत जानकारी होने लगती है। इस बात की भी प्रज्ञापूर्वक जानकारी होती है कि ये आस्रव हैं, यह आस्रवों का समुदय है, यह आस्रवों का निरोध है, यह आस्रवों के निरोध का उपाय है। यह भी तथागत का पद कहलाता है परंतु आर्य-श्रावक इससे भी विश्वास नहीं करता कि भगवान सम्यक-संबुद्ध हैं, उनका धर्म सु-आख्यात है और उनका श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।

"जब इस प्रकार जानते, देखते चित्त कामास्रवों, भवास्रवों तथा अविद्यास्रवों से विमुक्त हो जाता है तब यह ज्ञान उत्पन्न होता है – 'मैं छूट गया'! तब भिक्षु यह भी प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है – 'जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है। यह भी तथागत का पद है।' इससे आर्य-श्रावक को विश्वास जमता है – 'भगवान सम्यक-संबुद्ध हैं, उनका धर्म सु-आख्यात है, उनका श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।' इससे हस्तिपद की उपमा भी विस्तार से परिपूर्ण हो जाती है।"

यह सुनकर जाणुस्सोणि ब्राह्मण आश्चर्य व्यक्त करते हुए भगवान की शरण में चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

८. महाहत्थिपदोपमसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा – "जंगम प्राणियों के जितने पद हैं, वे सभी हाथी के पैर में समा जाते हैं। महानता में हाथी का पैर उनमें अग्र(श्रेष्ठ) कहलाता है। ऐसे ही जितने कुशल धर्म होते हैं, वे सभी चार आर्य-सत्यों में समाए होते हैं। आर्य-सत्य हैं – दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध तथा दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा।"

इसके पश्चात आयुष्मान सारिपुत्त ने स्पष्ट किया कि 'दुःख' आर्य-सत्य क्या होता है? संक्षेप में पांच उपादान-स्कंध ही दुःख हैं। ये पांच उपादान-स्कंध हैं – रूप-उपादानस्कंध, वेदना-उपादानस्कंध, संज्ञा-उपादानस्कंध, संस्कार-उपादानस्कंध तथा विज्ञान-उपादानस्कंध।

तदनंतर उन्होंने प्रत्येक उपादानस्कंध का खुलासा करने के पश्चात बतलाया कि इन पांच उपादानस्कंधों में जो छंद-राग जागता है, वही 'दुःख-समुदय' है और इनमें जो छंद-राग का त्यागना है, वही 'दुःख-निरोध' है।

९. महासारोपमसुत्त

एक समय भगवान राजगह में गिज्झकूट पर्वत पर विहार करते थे। वहां पर उन्होंने देवदत्त को लेकर भिक्षुओं को समझाया कि यदि कोई कुलपुत्र अपने दुःखों का अंत करने के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाए, परंतु प्रव्रज्या के फलस्वरूप लाभ-सत्कार-प्रशंसा पा कर यह सोचने लगे कि मेरा संकल्प पूरा हुआ, और इस बात को लेकर अभिमान करने लगे और प्रमादी हो जाए, तो वह दुःख में ही पड़ा रहेगा। ऐसे ही वह व्यक्ति भी दुःख में ही पड़ा रहेगा जो शील-संपदा, अथवा समाधि-संपदा, अथवा ज्ञानदर्शन के आराधन से अपने संकल्प की पूर्ति होना मान लेता है, और इस बात को लेकर अभिमान करता है और प्रमादी हो जाता है। इसके विपरीत यदि कोई कुलपुत्र ज्ञानदर्शन से भी अपने आप को परिपूर्ण-संकल्प न माने और न इस बात का अभिमान करे, न प्रमाद करे तो वह अकालविमोक्ष का आराधक हो जाता है। ऐसा व्यक्ति अकालविमोक्ष से च्युत हो जाए, इसकी संभावना नहीं होती है।

इस संदर्भ में भगवान ने वृक्ष का दृष्टांत देते हुए कहा कि कोई सार (हीर) चाहने वाला पुरुष कभी टहनी वा पत्ते को, कभी पपड़ी को, कभी छाल को और कभी फल्गु को सार मान उन्हें काट कर ले जाता है। परंतु जो काम सार से लेना होता है, वह इनसे ले नहीं पाता। यदि वह पुरुष सचमुच सार को सार मान उसे काट कर ले जाए, तो जो काम सार से लेना होता है, वह उसके लिए समर्थ हो जाता है।

अंत में भगवान ने कहा –"यह ब्रह्मचर्य लाभ-सत्कार-प्रशंसा पाने के लिए नहीं है, न शील-संपदा, न समाधि-संपदा, न ज्ञानदर्शन पाने के लिए। यह जो च्युत न होने वाली चित्त की विमुक्ति है, उसी के लिए यह ब्रह्मचर्य है, यही सार है, यही इसका अंत है।"

१०. चूळसारोपमसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने पिङ्गलकोच्छ नामक ब्राह्मण को कहा –"यदि कोई सार चाहने वाला पुरुष वृक्ष के सार (हीर) को छोड़ इसकी टहनी वा पत्ते, अथवा पपड़ी, अथवा छाल, अथवा फल्गु को सार मान इन्हें काटकर ले जाए, तो जो काम सार से लेने योग्य होता है वह उसमें विफल रहता है।

"ऐसे ही यदि कोई पुरुष अपने दुःखों का अंत करने के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाए, परंतु प्रव्रज्या के फलस्वरूप लाभ-सत्कार-प्रशंसा पाकर यह सोचने लगे कि मेरा संकल्प पूरा हुआ, और इस बात को लेकर अभिमान करने लगे, तो वह इससे उत्तम धर्म का साक्षात्कार करने के लिए न तो रुचि पैदा करता है और न उद्योग ही करता है। यही दशा उन पुरुषों की भी होती है जो शील-संपदा, अथवा समाधि-संपदा, अथवा ज्ञानदर्शन का आराधन कर अपने आप को परिपूर्ण-संकल्प मान लेते हैं।

"परंतु कोई पुरुष ऐसा भी होता है जो ज्ञानदर्शन का आराधन करके भी अपने आप को परिपूर्ण-संकल्प नहीं मानता, न इस बात को लेकर अभिमान करता है, बल्कि इससे उत्तम धर्म का साक्षात्कार करने के लिए रुचि उत्पन्न करता है और उद्योग करता है।"

तत्पश्चात भगवान ने बतलाया कि ज्ञानदर्शन से उत्तम धर्म होते हैं –प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तथा संज्ञावेदयितनिरोध। इस अंतिम अवस्था पर प्रज्ञा से देख कर पुरुष के आस्रव पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं।

भगवान ने आगे कहा –"यदि कोई पुरुष वृक्ष के सार को ही सार मान इसे काटकर ले जाए, तो उसे सार से जो काम करना था वह उससे कर पायेगा।

"यह ब्रह्मचर्य लाभ-सत्कार-प्रशंसा पाने के लिए नहीं है, न शील-संपदा, न समाधि-संपदा, न ज्ञानदर्शन पाने के लिए। यह जो च्युत न होने वाली चित्त की विमुक्ति है, उसी के लिए यह ब्रह्मचर्य है, यही सार है, यही इसका अंत है।"

यह सुन कर पिङ्गलकोच्छ ब्राह्मण आश्चर्य व्यक्त करते हुए भगवान की शरण में चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

----

४. महायमक वग्ग

१. चूळगोसिङ्गसुत्त

एक समय भगवान नातिका के गिञ्जकावसथ में विहार करते हुए गोसिङ्ग-सालवनदाय में जा पहुँचे जहां आयुष्मान अनुरुद्ध, आयुष्मान नन्दिय तथा आयुष्मान किम्बिल विहरते थे।

वहां पर भगवान द्वारा उनका कुशल-क्षेम, आदि पूछे जाने पर उन्होंने बतलाया – "हम एकजुट होकर, प्रमुदित मन से, बिना विवाद किए, दूध वा पानी के मिश्रण के समान, एक-दूसरे को प्यार-भरी दृष्टि से देखते हुए विहरते हैं। हमारे शरीर नाना हैं, परंतु चित्त एक है।

"हम प्रमाद-रहित, आलस्य-रहित, संयमी हो विहार करते हैं। हर पांचवें रोज रात-भर धार्मिक चर्चा करते हैं।

"हमें उत्तर-मनुष्य-धर्म अलमार्यज्ञानदर्शन-विशेष प्राप्त हुआ है। इच्छा होने पर हम प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरते हैं। ऐसे ही द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन, संज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त हो विहरते हैं। इस अंतिम अवस्था पर प्रज्ञा से देख कर हमारे आस्रवों का पूर्णतया क्षय हो गया है। इससे परे वा इससे उत्तम कोई सुखविहार हमें दिखलाई नहीं देता है"।

भगवान ने इसका अनुमोदन किया और तब वे तीनों आयुष्मानों को धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, संप्रहर्षित कर वहां से चले गए।

दीघ परजन यक्ष को भगवान ने कहा –"ये तीनों कुलपुत्र बहुत लोगों के सुख के लिए, बहुत लोगों के हित के लिए, लोक पर अनुकंपा करने के लिए तत्पर हैं"।

२. महागोसिङ्गसुत्त

एक समय भगवान गोसिङ्ग-सालवनदाय में अनेक प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थविर शिष्यों के साथ विहार करते थे।

वहां पर एक दिन सायंकाल के उपरांत आयुष्मान महामोग्गल्लान, आयुष्मान

महाकस्सप, आयुष्मान अनुरुद्ध, आयुष्मान रेवत तथा आयुष्मान आनन्द, आयुष्मान सारिपुत्त के पास धर्म सुनने के लिए जा पहुँचे।

आयुष्मान सारिपुत्त ने बारी-बारी से इन्हीं से पूछ लिया कि रमणीय गोसिङ्ग-सालवन किस प्रकार के भिक्षु से शोभायमान हो सकता है? इस पर इन सभी ने, और अंत में स्वयं सारिपुत्त ने भी, इस बारे में अपने-अपने विचार प्रकट किए।

तत्पश्चात वे सभी भगवान के पास चले गए और उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान से पूछा कि हममें से किसका कथन सुभाषित है?

इस पर भगवान ने सभी के कथन को सुभाषित बतलाया और अपनी ओर से कहा –"किस प्रकार के भिक्षु से गोसिङ्ग-सालवन शोभायमान हो सकता है? यहां, सारिपुत्त, कोई भिक्षु भोजन के उपरांत भिक्षा से निवृत्त हो, आसन मार, शरीर को सीधा रख, स्मृति को मुख के इर्द-गिर्द प्रस्थापित कर यह संकल्प करे –'मैं तब तक इस आसन को नहीं छोड़ूंगा जब तक मेरे चित्त से पूर्णतया आस्रव छूट न जाएं।' सारिपुत्त! ऐसे भिक्षु से गोसिङ्ग-सालवन शोभायमान होगा"।

३. महागोपालक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि ग्यारह अंगों (बातों) से युक्त ग्वाला गोयूथ की रक्षा करने के अ-योग्य होता है। ये अंग हैं – (१) रूप का जानकार नहीं होता; (२) लक्षण-कुशल नहीं होता; (३) काली मक्खियों का निवारक नहीं होता; (४) व्रण को ढंकने वाला नहीं होता; (५) धुआं करने वाला नहीं होता; (६) तीर्थ (घाट) का जानकार नहीं होता; (७) पान को नहीं जानता; (८) वीथी (मार्ग) को नहीं जानता; (९) गोचर (चरागाह) का जानकार नहीं होता; (१०) बिना छोड़े (अशेष) दुह लेने वाला होता है; (११) गो-पितरों, गो-परिणायकों (वृषभों) की अतिरिक्त सेवा नहीं करता।

तदनंतर भगवान ने कहा कि ग्यारहवें अंग के अंतर्गत गो-पितरों, गो-परिणायकों के स्थान पर संघ-पितरों, संघ-परिणायकों का अध्याहार करने पर इन्हीं ग्यारह अंगों से युक्त भिक्षु भी इस धर्म-विनय में वृद्धि पाने के अ-योग्य होता है।

भगवान ने यह भी बतलाया कि इन अंगों के विपरीत ग्यारह अंगों से युक्त ग्वाला गोयूथ की रक्षा करने के योग्य हो जाता है और भिक्षु भी इस धर्म-विनय में वृद्धि पाने के योग्य हो जाता है।

भगवान ने भिक्षु के संदर्भ में इन अंगों की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया कि चार महाभूतों की यथार्थतः जानकारी होना रूप को जानना है; कर्म-लक्षण से कोई बाल होता है और कोई पंडित – इसकी यथार्थतः जानकारी होने से लक्षण-कुशल होता है; उत्पन्न हुए अकुशल धर्मों का स्वागत न करने वाला काली मक्खियों का निवारक होता है; इंद्रियों का संवर करने वाला व्रण को ढंकने वाला होता है; सुने, जाने अनुसार दूसरों को विस्तार से धर्म का उपदेश करने वाला धुआं करने वाला कहलाता है; बहुश्रुत भिक्षुओं के पास समय-समय पर जाकर प्रश्न पूछने वाला तीर्थ का जानकार होता है; धर्म-विनय के उपदेश के समय अर्थ-वेद, धर्म-वेद धर्म-प्रमोद को पाने वाला पान का जानकार होता है; आर्य अष्टांगिक मार्ग को यथार्थतः जानने वाला वीथी का जानकार होता है; चारों स्मृति-प्रस्थानों का यथाभूत ज्ञाता गोचर-कुशल होता है; श्रद्धालु गृहपतियों से चीवर, पिंडपात, भैषज्य आदि मिलने पर उनसे ग्रहण करने योग्य मात्रा को जानने वाला स-शेष दुहने वाला होता है; और स्थविर भिक्षुओं के लिए गुप्त एवं प्रकट रूप से मैत्रीयुक्त कायिक, वाचिक तथा मानसिक कर्म करने वाला संघ-पितरों, संघ-परिणायकों की अतिरिक्त सेवा करने वाला होता है।

४. चूळगोपालक सुत्त

एक समय भगवान वज्जी देश के उक्कचेला में गंगा नदी के तीर पर विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को एक ग्वाले की मूर्खता और दूसरे की बुद्धिमत्ता से संबंधित दृष्टांत देकर समझाया कि जो कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण इहलोक तथा परलोक से अपरिचित हैं, मार के लक्ष्यालक्ष्य से अपरिचित हैं, मृत्यु के लक्ष्यालक्ष्य से अपरिचित हैं, उनके उपदेश को श्रद्धा-योग्य मानना चिरकाल तक अहितकर, दुःखकर होता है। इसके विपरीत जो कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण इहलोक तथा परलोक से परिचित हैं, मार के लक्ष्यालक्ष्य से परिचित हैं, मृत्यु के लक्ष्यालक्ष्य से परिचित हैं, उनके उपदेश को श्रद्धा-योग्य मानना चिरकाल तक हितकर, सुखकर होता है।

अंत में भगवान ने कहा –"मैं इहलोक तथा परलोक का जानकार हूं, मार के

लक्ष्यालक्ष्य का जानकार हूं, मृत्यु के लक्ष्यालक्ष्य का जानकार हूं। जो कोई मेरे उपदेश को श्रद्धा-योग्य मानेंगे उनके लिए यह चिरकाल तक हितकर, सुखकर होगा।

"जानकार संबुद्ध ने निर्वाण की प्राप्ति के लिए कल्याणकारीअमृत-द्वार खोल दिया है। पापी मार के स्रोत को छिन्न-भिन्न, विध्वस्त और विशृंखलित कर दिया है। भिक्षुओ! खूब प्रमुदित हो, मंगलकामी हो"।

५. चूळसच्चक सुत्त

एक समय भगवान वेसाली में महावन में प्रविष्ट हो एक वृक्ष के तले दिवाविहार के लिए बैठे थे। उस समय सच्चक नाम का निर्ग्रंथपुत्र बड़ी भारी लिच्छवी-परिषद के साथ वहां जा पहुँचा।

वहां सच्चक ने भगवान से यह जानना चाहा कि आप अपने शिष्यों को कैसे शिक्षा देते हैं। इस पर उन्होंने कहा –"मैं इस प्रकार शिक्षा देता हूं –'भिक्षुओ! रूप अनित्य है, वेदना अनित्य है, संज्ञा अनित्य है, संस्कार अनित्य है, विज्ञान अनित्य है। भिक्षुओ! रूप अनात्म है, वेदना अनात्म है, संज्ञा अनात्म है, संस्कार अनात्म है, विज्ञान अनात्म है। सारे संस्कारअनित्य हैं, सारे धर्म अनित्य हैं"।

सच्चक ने इसका प्रतिवाद करतेहुए कहा –"जैसे बीज तथा प्राणी पृथ्वी का आश्रय लेकर वृद्धि को प्राप्त होते हैं; जैसे बल से किए जाने वाले काम पृथ्वी का आश्रय लेकर संपन्न किए जाते हैं; ऐसे ही पुरुष भी रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान का आश्रय लेकर पुण्यापुण्य का सृजन करता है"।

सच्चक ने आगे कहा –"मेरे विचार में रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान मेरी आत्मा हैं"।

तब भगवान ने सच्चक से पूछा कि क्या कोई राजा अपने राज्य में किसी को मरवा सकता है, जलवा सकता है, देश से निकलवा सकता है? सच्चक ने इसे संभव बतलाया। तब भगवान ने उससे पूछ लिया कि जो तुम यह कहते हो कि रूप मेरी आत्मा है, तो क्या यह रूप तुम्हारे वश में है –'मेरा रूप ऐसा होवे, मेरा रूप ऐसा न होवे'?

इस पर सच्चक पहले तो चुप हो गया परंतु जब भगवान द्वारा तीसरी बार यही प्रश्न पूछा गया, तो कहा – "नहीं, भो गौतम"!

फिर शनैः शनैः भगवान के अन्य प्रश्नों के उत्तर को सच्चक स्वीकार करता चला गया –

* वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान भी मेरे वश में नहीं हैं।

* रूप अनित्य है।

* जो अनित्य है, वह दुःख है।

* जो अनित्य, दुःख, परिवर्तनशील है, उसके बारे में यह सोचना उचित नहीं है –'यह मेरा है', 'यह मैं हूं', 'यह मेरी आत्मा है।'

* जो स्थिति रूप की है, वही वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान की भी है।

* जो कोई दुःख में पड़ा है, दुःख को 'यह मेरा है', 'यह मैं हूं', 'यह मेरी आत्मा है' –ऐसा समझता है, वह दुःख को दूर कर सके ,यह संभव नहीं है।

इसके उपरांत भगवान ने कहा कि यदि कोई सार चाहने वाला पुरुष सार (हीर) की खोज में तीक्ष्ण कुल्हाड़े के साथ वन में प्रवेश करे और वहां एक बड़े भारी केले के तने को देखे और उसे वह जड़ से काटे,सिर से भी काटे और फिर पत्तों की लपेटन को उधेड़ता चला जाए तो ऐसा करने पर भी फल्गु तक नहीं पा सकता, सार कहां से पायेगा?

तब सच्चक ने भगवान से पूछा कि आपके श्रावक कैसे संदेहरहित, आत्मविश्वासी एवं आत्मनिर्भर होकर आपके शासन में विहरते हैं? इस पर भगवान ने कहा –"मेरे श्रावक भूत, भविष्य, वर्तमान का, शरीर के भीतर या बाहर का, स्थूल या सूक्ष्म, दूर या निकट –जो कोई रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार अथवा विज्ञान होता है, उसे 'न यह मेरा है', 'न यह मैं हूं', 'न यह मेरी आत्मा है' – इस प्रकार यथाभूत प्रज्ञा से देखते हैं"।

इसके बाद सच्चक ने फिर पूछ लिया –"भो गौतम! भिक्षु किस प्रकार अर्हंत, क्षीणास्रव, ब्रह्मचर्यवास पूरा करने वाला, कृत-कृत्य, भार-मुक्त, सदर्थ-प्राप्त, भवबंधन-रहित तथा सम्यक ज्ञान से विमुक्त होता है? भगवान ने इसका उत्तर भी पहले समान ही दिया।

तत्पश्चात सच्चक ने भगवान को भिक्षु-संघ सहित अगले दिन भोजन के लिए आमंत्रित किया तथा अपने यहां उत्तम भोजन करा संतृप्त किया।

६. महासच्चक सुत्त

एक समय जब भगवान वेसाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे, सच्चक नाम का निर्ग्रंथपुत्र टहलता हुआ वहां चला आया।

सच्चक ने भगवान से कहा –"जो श्रमण-ब्राह्मण काया की भावना में लगे हुए चित्त की भावना नहीं करते, वे शारीरिक दुःख वेदना पाते हैं। जो चित्त की भावना में लगे हुए काया की भावना नहीं करते, वे चैतसिक दुःख वेदना पाते हैं। मुझे लगता है आपके शिष्य चित्त की भावना करते हैं, काया की भावना नहीं"।

भगवान को उसे समझाना पड़ा कि आर्यविनय में कोई व्यक्ति कैसे अभावितकाय वा अभावितचित्त होता है और कैसे भावितकाय वा भावितचित्त। मूढ़ व्यक्ति को सुख वेदना उत्पन्न होने पर वह इसमें राग करता है, जब यह वेदना निरुद्ध होकर दुःख वेदना उत्पन्न होती है तब बिलखता है। अभावितकाय होने से सुख वेदना उसके चित्त से चिपटती है और अभावितचित्त होने से दुःख-वेदना। आर्य-श्रावक को सुख वेदना उत्पन्न होने पर वह इसमें राग नहीं करता, जब वह वेदना निरुद्ध होकर दुःख वेदना उत्पन्न होती है तब बिलखता नहीं। भावितकाय होने से सुख वेदना उसके चित्त से चिपटती नहीं और न ही भावितचित्त होने से दुःख वेदना।

तब सच्चक ने भगवान से पूछा कि क्या आपको चित्त से चिपटने वाली सुख वेदना अथवा दुःख वेदना उत्पन्न होती है? इस पर भगवान ने उसे बतलाया – "मैं तरुण अवस्था में ही घरबार छोड़कर उत्तम शांतिपद की तलाश में निकल गया था। आचार्य आलार कालाम ने मुझे आकिंचन्यायतन तक और आचार्य उद्दक रामपुत्त ने मुझे उससे आगे नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तक विद्या सिखाई और अपने बराबर के पदों पर स्थापित किया। परंतु, चूंकि इनके द्वारा सिखाए गए धर्म न तो निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संबोध, और न निर्वाण के लिए थे, अतः मैं इन्हें अपर्याप्त जानकर फिर उत्तम शांतिपद की खोज में निकल गया।

"वहां से चारिका करते हुए मैं मगध में उरुवेला सेनानिगम में पहुँचा जो अत्यंत रमणीय और ध्यान के लिए अत्यंत उपयुक्त स्थान था। वहां मैंने दांतों पर दांत रख कर, जिव्हा द्वारा तालु को दबाकर, चित्त का चित्त से निग्रह किया।

इससे मेरी कांख से पसीना छूटता था। फिर मैंने श्वासरहित ध्यान करना शुरू किया। इससे शरीर पर अनेक प्रकार के उपद्रव प्रकट होने लगे और मैं मृत-समान हो गया। परंतु हर अवस्था में मेरा वीर्य दबने वाला न था, मेरी स्मृति अमुषित थी, और काया तत्पर थी परंतु साधना से पीड़ित होने के कारण अशांत हो जाती थी। ऐसे में भी उत्पन्न हुई दुःख वेदना मेरे चित्त से नहीं चिपटती थी।

"तब एक बार मैंने आहार को बिल्कुल छोड़ देने को सोचा, फिर थोड़ा-थोड़ा आहार लेना आरंभ कर दिया। उस समय मेरा शरीर दुर्बलता की चरम सीमा तक पहुंच चुका था। मेरी पीठ के कांटे और पेट की खाल आपस में सट गए थे। उस समय मुझे लगता था कि जो कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण तप करके दुःखपूर्ण, तीव्र, कठोर, कटु वेदना अनुभव करते रहे हैं, कर रहे हैं अथवा करेंगे, वे इससे अधिक नहीं हो सकतीं। परंतु इस दुष्करकारिका से भी मुझे उत्तर-मनुष्य-धर्म अलमार्यज्ञानदर्शनविशेष की उपलब्धि नहीं हुई। तब मैंने सोचा कि क्या बोधि प्राप्त करने का कोई अन्य उपाय भी हो सकता है?

"तब मैंने स्थूल आहार ग्रहण कर, सबल हो, प्रथम ध्यान में विहरने का उपक्रम किया। फिर द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरने लगा। इन ध्यानों के समय उत्पन्न हुई सुख वेदना मेरे चित्त से नहीं चिपटती थी।

"फिर एकाग्र हुए, नितांत शुद्ध, उपक्लेश-रहित, मृदु, अडोल चित्त को विभिन्न उद्देश्यों के लिए नवाने पर मुझे पूर्वनिवासों की स्मृति उभर आई, कर्मानुसार प्राणियों की च्युति एवं उत्पत्ति का ज्ञान होने लगा और आस्रवों के क्षय का ज्ञान होने से स्पष्ट हो गया कि 'जन्म समाप्त हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।' इस प्रकार प्रमादरहित, उद्योगशील तथा आत्मसंयमी होकर विहार करते हुए मेरी अविद्या नष्ट हुई, विद्या उत्पन्न हुई, अंधकार नष्ट हुआ, प्रकाश उत्पन्न हुआ। ऐसे में उत्पन्न हुई सुख वेदना भी मेरे चित्त से नहीं चिपटती थी।"

इसके उपरांत सच्चक ने फिर भगवान से पूछ लिया कि क्या आप दिन को सोते हैं? इस पर भगवान ने कहा कि मैं ग्रीष्म के अंतिम मास में भोजन के पश्चात भिक्षा से निपट कर चतुर्गुण संघाटी को बिछा कर दाहिनी करवट स्मृति-संप्रज्ञान से युक्त हो सोता हूं।

सच्चक ने टिप्पणी की कि इसे तो कोई-कोईसम्मोह (मूढ़ता) का विहार कहते हैं। भगवान ने स्पष्ट किया कि इतने से ही सम्मूढ़ या अ-सम्मूढ़ नहीं होता। जिस किसी के संक्लेशिक ,पुनर्जन्म देने वाले, कष्टकारक दु:ख-परिणामी आस्रव नष्ट नहीं होते वह 'सम्मूढ़' होता है। आस्रवों के नष्ट हो जाने से 'अ-सम्मूढ़' होता है। तथागत के आस्रव उच्छिन्न-मूल, अभाव को प्राप्त, भविष्य में उत्पन्न न होने योग्य सिर-कटे ताड़ जैसे हो जाते हैं।

७. चूळतण्हासङ्खयसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में मिगारमाता के प्रासाद पुब्बाराम में विहार करते थे। देवेंद्र सक्क (शक्र) ने वहां जाकर भगवान से पूछा –"भंते! भिक्षु कैसे संक्षेप में तृष्णा के क्षय हो जाने से विमुक्त हो, अत्यंत निष्ठावान, अत्यंत ब्रह्मचारी, पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ, देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ हो जाता है"?

भगवान ने प्रत्युत्तर दिया –"देवेंद्र! भिक्षु यह सुना होता है –'सभी धर्मों में अभिनिवेश (राग) नहीं करना चाहिए।' इससे वह सारे धर्मों को भली-भांति, परिपूर्णता से जान लेता है और तब सुखद, दु:खद अथवा अदु:खद-असुखद – जिस किसी वेदना को अनुभव करता है, उसमें अनित्यानुदर्शी, विरागानुदर्शी, निरोधानुदर्शी, प्रतिनिसर्गानुदर्शी होकर विहार करता है। ऐसा करते हुए वह लोक (इंद्रियजगत) में कुछ भी ग्रहण नहीं करता।कुछ भी ग्रहण नहीं करने से उत्तेजित नहीं होता। उत्तेजित नहीं होने से इसी शरीर में परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है और प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।' इस प्रकार भिक्षु संक्षेप में तृष्णा के क्षय हो जाने से विमुक्त हो, अत्यंत निष्ठावान, अत्यंत योगक्षेम वाला, अत्यंत ब्रह्मचारी, पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ, देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ हो जाता है"।

तत्पश्चात देवेंद्र भगवान के भाषण का अनुमोदन कर, उन्हें प्रणाम कर, प्रदक्षिणा करते हुए वहां से अंतर्धान हो गया।

उस समय आयुष्मान महामोग्गल्लान भगवान के पास ही बैठे थे। उन्हें यह जानने की इच्छा हुई कि क्या उस यक्ष ने भगवान के भाषण को समझ कर उसका अनुमोदन किया है अथवा बिना समझे ही? तब वह वहां से अंतर्धान होकर तावतिंस देवलोक में प्रकट हुए और वहां देवेंद्र से भगवान के भाषित को सुनकर वापस लौटे।

८. महातण्हासङ्खयसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय साति नाम के भिक्षु को यह पापपूर्ण दृष्टि उत्पन्न हुई – "मैं भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म को ऐसे जानता हूं कि वही विज्ञान संधावन, संसरण करता है, कोई दूसरा नहीं"।

भगवान को यह मालूम होने पर उन्होंने उसे बुलवा कर कहा –"मोघपुरुष! तुमने किसको मुझे ऐसा उपदेश करते हुए सुना है? मैंने तो अनेक प्रकार से विज्ञान को प्रतीत्य-समुत्पन्न (प्रत्यय, अर्थात कारण से उत्पन्न हुआ) कहा है; प्रत्यय के बिना विज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता। तू बात को ठीक से न समझ कर हम पर लांछन लगा रहा है और पाप कमा रहा है। यह दीर्घकाल तक तेरे अहित एवं दुःख के लिए होगा"।

तत्पश्चात भगवान ने अन्य भिक्षुओं को समझाया कि जिस-जिस प्रत्यय से विज्ञान उत्पन्न होता है, वही-वही उसकी संज्ञा होती है। जैसे चक्षु के प्रत्यय से रूप में उत्पन्न होने वाला विज्ञान चक्षुर्विज्ञान कहलाता है। ऐसे ही श्रोत्रादि के अध्याहार से श्रोत्र-विज्ञान, घ्राण-विज्ञान, जिह्वा-विज्ञान, काय-विज्ञान तथा मनो-विज्ञान अपनी-अपनी संज्ञा पाते हैं।

तदनंतर भगवान ने पांच स्कंधों और चार प्रकार के आहारों का विश्लेषण करने के बाद कहा –"भिक्षुओ! अविद्या के कारण संस्कार होता है, संस्कार के कारण विज्ञान, विज्ञान के कारण नाम-रूप, नाम-रूप के कारण षडायतन, षडायतन के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जन्म, जन्म के कारण जरा-मरण, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य तथा उपायास (परेशानी) होते हैं। इस प्रकार इस निरे दुःख-स्कंध की उत्पत्ति होती है।

"परंतु अविद्या के पूरी तरह विराग, निरोध से संस्कार का निरोध होता है, संस्कार के निरोध से विज्ञान, विज्ञान के निरोध से नाम-रूप, नाम-रूप के निरोध से षडायतन, षडायतन के निरोध से स्पर्श, स्पर्श के निरोध से वेदना, वेदना के निरोध से तृष्णा, तृष्णा के निरोध से उपादान, उपादान के निरोध से भव, भव के निरोध से जाति (जन्म), जाति के निरोध से जरा-मरण, शोक, विलाप, दुःख,

दौर्मनस्य तथा उपायास का निरोध होता है। इस प्रकार इस निरे दुःख-स्कंध का निरोध हो जाता है"।

भगवान ने प्रश्नोत्तर के माध्यम से भिक्षुओं को यह हृदयंगम कराया –'इसके होने पर यह होता है; इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है', और इसी प्रकार 'इसके न होने पर यह नहीं होता; इसका निरोध होने पर इसका निरोध होता है'।

तत्पश्चात भगवान ने बतलाया कि कैसे कोई कुमार इन्द्रियों के परिपक्व हो जाने पर पहले खिलौनों से खेलता है और फिर बड़ा होकर पांच प्रकार के कामगुणों का सेवन करता हुआ राग और द्वेष करने लगता है। वह वेदनाओं का अभिनंदन कर तृष्णा-जनित उपादान से ग्रस्त हो जाता है जिससे, क्रमशः, निरे दुःख-स्कंध की उत्पत्ति होती है। फिर जब कभी संसार में कोई तथागत उत्पन्न होते हैं और कोई गृहपति उनके द्वारा साक्षात्कार किए गए धर्म के प्रति श्रद्धावान होकर आर्य शील-स्कंध, आर्य इंद्रिय-संवर, आर्य स्मृति-संप्रज्ञान से युक्त हो, ध्यान के लिए बैठ, पांचों नीवरणों को चित्त से हटा, क्रमशः, प्रथम ध्यान से चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरता है, तब वह चक्षु से रूप को देख कर प्रिय रूप में रागयुक्त नहीं होता, न अप्रिय रूप में द्वेषयुक्त होता है, बल्कि प्रमाणरहित चित्त के साथ कायिकस्मृति को बनाए रखता है। वह उस चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा की विमुक्ति को यथार्थतः जान लेता है जिसमें उसके सारे अकुशल धर्म निरुद्ध हो जाते हैं। वह वेदनाओं का अभिनंदन नहीं करता जिससे तृष्णा-जनित उपादान का निरोध हो जाता है। उपादान का निरोध हो जाने से, क्रमशः, निरे दुःख-स्कंध का निरोध हो जाता है।

अंत में भगवान ने कहा –"भिक्षुओ! मेरे द्वारा संक्षेप में कही गई इस तृष्णा-संक्षय-विमुक्ति को धारण करो और साति को तृष्णा के महाजाल में फँसा हुआ जानो"।

९. महाअस्सपुरसुत्त

एक समय भगवान अङ्ग देश में अस्सपुर नाम के निगम में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को समझाया कि वे सही अर्थ में 'श्रमण' कैसे कहला सकते हैं।

भगवान ने कहा कि श्रमण-भाव के लिए केवल लज्जाशील और संकोचशील

होना ही पर्याप्त नहीं है। इससे आगे भी सीखना होता है कायिक आचरण की परिशुद्धता; वाचिक आचरण की परिशुद्धता; मानसिक आचरण की परिशुद्धता; आजीविका की परिशुद्धता; इन्द्रिय-संवर; भोजन की मात्रज्ञता; जागरण में तत्परता; स्मृति-संप्रज्ञान से युक्तता।

भगवान ने आगे कहा कि इसके पश्चात भिक्षु एकांत-वास करता हुआ ध्यान करने के लिए बैठता है और पांचों नीवरणों से चित्त का परिशोधन करता है। फिर प्रथम ध्यान से लेकर चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरता है। तदनंतर एकाग्र हुए, नितांत शुद्ध, उपक्लेश-रहित, मृदु, अडोल चित्त को विभिन्न उद्देश्यों के लिए नवाने पर पूर्वनिवासों को स्मरण करता है, कर्मानुसार प्राणियों की च्युति एवं उत्पत्ति को जानने लगता है और आस्रवों के क्षय का यथार्थ ज्ञान हो जाने से वह प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है – 'जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।

अंत में भगवान ने कहा कि ऐसा भिक्षु 'श्रमण' भी कहलाता है, 'ब्राह्मण' भी, 'स्नातक' भी, 'वेदगू' भी, 'श्रोत्रिय' भी, 'आर्य' भी, 'अर्हंत' भी। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि भिक्षु को ऐसा कहने के क्या कारण हैं।

१०. चूळअस्सपुरसुत्त

एक समय भगवान अङ्ग देश में अस्सपुर नाम के निगम में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को समझाया कि कोई भिक्षु कैसे श्रमणों के उपयुक्त प्रतिपद पर आरूढ़ नहीं होता है और कैसे आरूढ़ होता है।

श्रमणों के उपयुक्त प्रतिपद पर अनारूढ़ भिक्षु के राग, द्वेष, क्रोध, वैर, पाखंड, तिरस्कार, ईर्ष्या, मात्सर्य, शठता, माया, पापेच्छा या मिथ्या दृष्टि नष्ट नहीं हुए होते। उसके किसी बाह्याचार के कारण भी उसमें श्रमण-भाव नहीं आ जाता। यदि ऐसा होता तो उसको मित्र-अमात्य, जाति-बंधु पैदा होते ही उसे वैसा बाह्याचारी बना देते और कहते कि इस बाह्याचार के कारण तुम्हारे राग, द्वेष, क्रोधादि नष्ट हो जायेंगे।

श्रमणों के उपयुक्त प्रतिपदा पर आरूढ़ भिक्षु के राग, द्वेष, क्रोध, वैर, पाखंड, तिरस्कार, ईर्ष्या, मात्सर्य, शठता, माया, पापेच्छा या मिथ्या दृष्टि नष्ट हुए होते हैं। वह इन पापकारी, अकुशल धर्मों से अपने आप को विमुक्त देखता

है। इससे उसमें प्रमोद जागता है, प्रमोद से प्रीति होती है, प्रीति होने से काया प्रश्रब्ध होती है, काया प्रश्रब्ध होने से सुख का अनुभव होता है और सुखी होने से चित्त समाहित हो जाता है। तब वह क्रमशः मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा-युक्त चित्त से, एक-एक करके सभी, दिशाओं को आप्लावित कर विहरता है। इसकी निरंतर भावना करने से भीतर शांति प्राप्त होती है। भीतर शांति प्राप्त होने से भिक्षु श्रमणों के उपयुक्त प्रतिपदा पर आरूढ़ हुआ होता है। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र –इनमें से किसी भी कुल का व्यक्ति हो, वह आस्रवों का क्षय हो जाने से 'श्रमण' कहलाने लगता है।

---

५. चूळयमक वग्ग

१. सालेय्यक सुत्त

एक समय भगवान कोसल देश में चारिका करते हुए साला नामक ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचे। उस समय उस ग्राम के ब्राह्मण-गृहपति भगवान के दर्शनार्थ गए। तब उनकी जिज्ञासा शांत करने के लिए भगवान ने उन्हें बतलाया कि कोई-कोईप्राणी अधर्माचरण, विषम-आचरण के कारण शरीर छोड़ने पर अपाय-गति को प्राप्त होते हैं और कोई-कोईधर्माचरण, समतापूर्ण आचरण के कारण सु-गति को।

तदुपरांत भगवान ने उन्हें बतलाया कि काया, वाणी तथा मन से संबंधित अधर्माचरण, विषम आचरण निम्न प्रकार के होते हैं –

* कायिक -(१) प्राणियों के प्रति निर्दयता, (२) अदिन्नादान (न दी हुई वस्तु हर लेना), (३) कामों में मिथ्याचार।

* वाचिक –(१) मिथ्यावादिता, (२) चुगलखोरी, (३) कठोर भाषण, (४) प्रलाप।

* मानसिक – (१) लोभ, (२) व्यापाद, (३) मिथ्या दृष्टि।

फिर यह भी बतलाया कि धर्माचरण, समतापूर्ण आचरण निम्न प्रकार के होते हैं -

* कायिक -(१) प्राणियों के प्रति दयालुता, (२) अदिन्नादान से विरति, (३) कामों में मिथ्याचार से विरति।

* वाचिक –(१) मिथ्यावादिता से विरति, (२) चुगलखोरी से विरति, (३) कठोर भाषण से विरति, (४) प्रलाप से विरति।

* मानसिक – (१) लोभ का अभाव, (२) अव्यापाद, (३) सम्यक दृष्टि।

अंत में भगवान ने बतलाया कि यदि धर्माचरण, समतापूर्ण आचरण करने वाला व्यक्ति यह आकांक्षा करे कि मैं शरीर छोड़ने पर वैभव-संपन्न क्षत्रियों, अथवा ब्राह्मणों, अथवा वैश्यों, अथवा अमुक-अमुक देवताओं के बीच उत्पन्न होऊं, तो हो सकता है उसकी आकांक्षा पूरी हो जाए । इसका कारण यह होता है

कि वह वैसा ही धर्माचरण, समतापूर्ण आचरण करने वाला होता है । वह तो यदि चाहे कि मैं आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा की विमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरूं तो, इसी कारणवश, यह भी संभव हो सकता है।

भगवान के वचन सुनकर गृहपतियों ने आश्चर्य व्यक्त किया और वे भगवान की शरण चले गए, और धर्म तथा संघ की भी।

२. वेरञ्जक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय वेरञ्जा-निवासी ब्राह्मण-गृहपति भी किसी कार्यवश सावत्थी में निवास करते थे।

एक बार वे भगवान के दर्शनार्थ उनके पास गए। वहां उनकी जिज्ञासा शांत करने के लिए भगवान ने उन्हें बतलाया कि कोई-कोई प्राणी अधर्माचरण, विषम-आचरण के कारण शरीर छोड़ने पर अपाय गति को प्राप्त होते हैं और कोई-कोई धर्माचरण, समतापूर्ण आचरण के कारण सु-गति को। (शेष 'सालेय्यक सुत्त' के समान)

३. महावेदल्लसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां आयुष्मान महाकोट्ठिक ने आयुष्मान सारिपुत्त से प्रज्ञा, विज्ञान, वेदना, संज्ञा, सम्यक दृष्टि, भव-पुनर्भव, प्रथम ध्यान, पांच इन्द्रियां, आयु संस्कार तथा वेदनीय धर्म, संज्ञावेदयितनिरोध आदि से संबंधित अनेक प्रश्न पूछकर इनका समाधान प्राप्त किया।

अंत में आयुष्मान महाकोट्ठिक ने चेतोविमुक्ति से संबंधित भी अनेक प्रश्न पूछे जिनका समाधान करते हुए आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा कि यह जो अप्रमाणा, आकिंचन्या तथा अनिमित्त चेतोविमुक्तियां हैं, उनमें अकोप्या चेतोविमुक्ति सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि यह राग, द्वेष और मोह से शून्य होती है।

४. चूळवेदल्लसुत्त

एक समय भगवान राजगह में वेळुवन के कलन्दकनिवापमें विहार करते थे। उस समय विसाख नाम के उपासक ने धम्मदिन्ना भिक्षुणी से सत्काय, आर्य अष्टांगिक मार्ग, समाधि, संस्कार, संज्ञावेदयितनिरोध, वेदना आदि से संबंधित अनेक प्रश्न पूछे जिनका उसने संतोषजनक ढंग से उत्तर दिया। फिर भी उसने कहा कि यदि चाहो तो भगवान से भी इन्हीं प्रश्नों को पूछो और जैसा वह कहें वैसे ही धारण करो।

उपासक विसाख द्वारा भगवान को धम्मदिन्ना भिक्षुणी के साथ हुए अपने कथा-संलाप का ब्यौरा दिए जाने पर उन्होंने कहा –"धम्मदिन्ना पंडिता है, महाप्राज्ञा है। यदि तुम मुझसे भी यही बात पूछते, तो मैं भी ऐसे ही उत्तर देता जैसा धम्मदिन्ना ने दिया है। अतः इसे इसी तरह धारण करो"।

५. चूळधम्मसमादानसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को चार प्रकार केधर्मसमादान बतलाए –

(१) वर्तमान में सुखद परंतु आगे के लिए दुःख-परिणामी; और

(२) वर्तमान में भी दुःखद और आगे के लिए भी दुःख-परिणामी;

(३) वर्तमान में दुःखद परंतु आगे के लिए सुख-परिणामी; और

(४) वर्तमान में भी सुखद और आगे के लिए भी सुख-परिणामी।

तदनंतर भगवान ने समझाया कि पहले धर्मसमादान के अंतर्गत व्यक्ति कामभोगों में डूबे रहते हैं और शरीर छोड़ने के बाद अपाय गति पाते हैं। दूसरे धर्मसमादान के अंतर्गत वे काया के आतापन-संतापन में लगे रहते हैं और शरीर छोड़ने के बाद अपाय गति पाते हैं। तीसरे धर्मसमादान के अंतर्गत वे स्वभाव से ही तीव्र राग, द्वेष एवं मोह वाले होकर दुःख-दौर्मनस्य को झेलते हुए भी परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं और शरीर छोड़ने पर सुगति पाते हैं। चौथे धर्मसमादान के अंतर्गत वे स्वभाव से ही तीव्र राग, द्वेष एवं मोह वाले न होकर

दु:खदौर्मनस्य को अनुभव न करते हुए प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरते हैं और शरीर छोड़ने पर सुगति पाते हैं।

६. महाधम्मसमादानसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को समझाया कि अनाड़ी व्यक्ति न तो सेवन करने योग्य धर्मों को जानता है, न अ-सेवन करने योग्य धर्मों को। अतः वह अ-सेवनीय धर्मों के सेवन में लग जाता है, सेवनीय धर्मों के नहीं। इससे उसके अनिष्ट धर्म बढ़ने लगते हैं और इष्ट धर्म क्षीण होने लगते हैं। इसके विपरीत आर्य श्रावक सेवन करनेयोग्य धर्मों को भी जानता है और अ-सेवन करनेयोग्य धर्मों को भी। अतः वह अ-सेवनीय धर्मों का सेवन नहीं करता, बल्कि सेवनीय धर्मों के सेवन में लगता है। इससे उसके अनिष्ट धर्म क्षीण होते हैं और इष्ट धर्म बढ़ते हैं।

तत्पश्चात भगवान ने उन्हें बतलाया कि चार धर्मसमादान होते हैं –

(१) वर्तमान में दु:खद और भविष्य में भी दु:ख-परिणामी,

(२) वर्तमान में सुखद परंतु भविष्य में दु:ख-परिणामी,

(३) वर्तमान में दु:खद परंतु भविष्य में सुख-परिणामी, और

(४) वर्तमान में सुखद और भविष्य में भी सुख-परिणामी।

अविद्या-ग्रस्त व्यक्ति इन धर्मसमादानों को यथार्थतः नहीं जानता। वह भविष्य में दु:खपरिणामी धर्मसमादानों का सेवन और सुखपरिणामी धर्मसमादानों का अ-सेवन करता है। इसके फलस्वरूप उसके अनिष्ट धर्म बढ़ते और इष्ट धर्म क्षीण होने लगते हैं। इसके विपरीत, विद्या को प्राप्त हुआ व्यक्ति इन धर्मसमादानों को यथार्थतः जानता है। वह भविष्य में दु:ख-परिणामी धर्मसमादानों का अ-सेवन और सुखपरिणामी धर्मसमादानों का सेवन करता है। इसके फलस्वरूप उसके अनिष्ट धर्म क्षीण होते हैं और इष्ट धर्म बढ़ते हैं।

इसके अनंतर भगवान ने इन धर्मसमादानों के उदाहरण भी दिए और इन्हें स्पष्ट करने के लिए उपमाएं भी कहीं।

७. वीमंसक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को बताया कि दूसरे के मन की बात न जानने वाले मीमांसक भिक्षु को तथागत के बारे में जांच करनी चाहिये कि वह सम्यकसंबुद्ध हैं अथवा नहीं। इसके लिए मीमांसक को अपनी जांच के फलस्वरूप, क्रमशः, इन निर्णयों पर पहुंचना चाहिए –

* आंख और कान से जानने योग्य मलिन धर्म (पाप) तथागत में नहीं हैं।

* आंख और कानसे जानने योग्य पाप-पुण्य-मिश्रित धर्म तथागत में नहीं हैं।

* आंख और कान से जानने योग्य अवदात धर्म (पुण्य) तथागत में हैं।

* यह दीर्घकालसे इस कुशलधर्म से युक्त हैं, हाल ही में युक्त नहीं हुए हैं।

* यह ख्याति-प्राप्त, यश-प्राप्त हैं और इनमें कोई दोष नहीं आए हैं।

* यह भय से नहीं, बिना भय के विरक्त हुए हैं; और राग के क्षय के कारण वीतराग होने से काम-भोगों का सेवन नहीं करते हैं। इसके पश्चात मीमांसक को तथागत से भी पूछना चाहिए कि उनमें आंख और कानसे जानने योग्य मलिन धर्म (पाप), पाप-पुण्य-मिश्रित धर्म, अवदात धर्म (पुण्य) क्या हैं? उनके उत्तर से भी पूर्वोक्त निर्णयों की पुष्टि ही होगी।

ऐसे शास्ता के पास धर्म सुनने के लिए जाना चाहिए। उनके उत्तमोत्तम धर्मोपदेश सुनकर उनके प्रति श्रद्धा जागती है – "भगवान सम्यकसंबुद्ध हैं, उनका धर्म सु-आख्यात है, उनका श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है"।

जब किसी व्यक्ति में तथागत के प्रति इन व्यञ्जनों से दर्शन-मूलक दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न होती है, तब वह किसी भी श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा अथवा लोक में किसी भी व्यक्ति द्वारा हटाई नहीं जा सकती है।

८. कोसम्बियसुत्त

एक समय भगवान के कोसम्बी के घोसिताराम में विहरते समय कोसम्बी में भिक्षु परस्पर कलह एवं विवाद करते थे। भगवान ने उन्हें बुला कर कहा – "भिक्षुओ! जिस समय तुम परस्पर कलह एवं विवाद करते हो, उस समय अपने

सब्रह्मचारियों के प्रति तुम्हारा प्रच्छन्न अथवा प्रकट, मैत्रीपूर्ण, न तो कायिककर्म उपस्थित रहता है, न वाचिक कर्म, न मानसिक कर्म। यह चिरकालतक तुम्हारे अहित एवं दुःख के लिए होगा।"

तत्पश्चात उन्होंने सभी भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –"ये छः धर्म आपसी मेलजोल, अ-विवाद तथा एकीभावके लिए होते हैं – (१) सब्रह्मचारियों के प्रति प्रच्छन्न अथवा प्रकट, मैत्रीपूर्ण, कायिककर्मका उपस्थित होना; (२) ऐसे ही वाचिक कर्मका; (३) ऐसे ही मानसिक कर्मका; (४) धर्म से प्राप्त होने वाले लाभों को शीलवान सब्रह्मचारियों के साथ मिल-बांट कर उपभोग करना; (५) समाधि को प्राप्त कराने वाले निष्कलंक शीलों से युक्त होकर प्रच्छन्न एवं प्रकटरूप से सब्रह्मचारियों के साथ विहार करना; और (६) सम्यक रूप से दुःख का नाश कराने वाली आर्य दृष्टि से युक्त होकर प्रच्छन्न एवं प्रकट रूप से सब्रह्मचारियों के साथ विहरना"।

तदनंतर भगवान ने कहा –"इन छः धर्मों में जो सम्यक रूप से दुःख का नाश करानेवाली आर्य दृष्टि है, वह कूटागारके कूट (शिखर) के समान सब में अग्र (श्रेष्ठ) होती है।

"इस दृष्टि से सात लोकोत्तर आर्य-ज्ञान प्राप्त होते हैं – (१) सच्चाईयों को जानने के लिए मानस का स्थिर-संकल्प होना; (२) भीतर शांति एवं सुख अनुभव करना; (३) अन्य परंपरा वालों का ऐसी दृष्टि से संपन्न न होना; (४) दोष हो जाने पर अपने शास्ता अथवा विज्ञ सब्रह्मचारियों के सामने उसे प्रकट कर देना और भविष्य के लिए सतर्क रहना; (५) सब्रह्मचारियों के छोटे-बड़े करणीयों को ध्यान में रखना; (६) तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय को मन लगा कर सुनना; और (७) इस धर्म-विनय के उपदेश के समय अर्थ-वेद, धर्म-वेद तथा धर्म से संसिक्त प्रमोद प्राप्त करना"।

अंत में भगवान ने कहा कि इन सात अंगों से युक्त आर्य-श्रावक 'सोतापन्न' हो जाता है।

९. ब्रह्मनिमन्तनिक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –"भिक्षुओ! एक

समय मेरे उक्कट्ठा के सुभगवन में विहरते समय बक नामक ब्रह्मा को यह पापपूर्ण दृष्टि उत्पन्न हुई – 'यह (ब्रह्मलोक) नित्य, ध्रुव, शाश्वत, केवल, अच्यवनधर्मा है; यह न जन्मता है, न जीर्ण होता है, न मरता है, न च्युत होता है, न उपजता है। इससे आगे कोई दूसरा निस्सरण (निकास) नहीं है।

"तब मैं अपने चित्त से बक ब्रह्मा के चित्त की बात जानकर, वहीं अंतर्धान होकर, उस ब्रह्मलोक में जा प्रकट हुआ और उसे कहा कि तुम अविद्या में पड़े हो जो अ-नित्य को नित्य, अ-ध्रुव को ध्रुव, अ-शाश्वत को शाश्वत, अ-केवल को केवल, च्यवनधर्मा को अ-च्यवनधर्मा कहते हो और जो जन्मता है, जीर्ण होता है, मरता है, च्युत होता है, उपजता है, उसे कहते हो –'यह न जन्मता है, न जीर्ण होता है, न मरता है, न च्युत होता है, न उपजता है'; और आगे निस्सरण (निकास) होने पर भी यह कहते हो –'इससे आगे कोई दूसरा निस्सरण नहीं है'।

"ब्रह्मा! मैं तुम्हारी गति और प्रभाव को जानता हूं कि तुम कैसे महान ऋद्धि वाले, महानुभाव तथा महाशक्तिशाली हो। पर दूसरे भी काय (लोकसमूह) हैं जिन्हें तुम न जानते हो, न देखते हो, किंतु मैं उन्हें जानता-देखता हूं। तुम आभस्सर नामक लोक से च्युत होकर यहां उत्पन्न हुए हो। यहां बहुत लंबा निवास करने से तुम्हें उसकी स्मृति नहीं है, पर मैं उसे जानता-देखता हूं। ऐसे ही सुभकिण्ह, वेहप्फल, अभिभू नाम के लोक हैं जिन्हें तुम न जानते हो, न देखते हो, पर मैं उन्हें जानता-देखता हूं। इस प्रकार मैं अभिज्ञा (ज्ञान) में तुम्हारे से बढ़कर हूं।

"ब्रह्मा! मैंने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि को इनके सही स्वरूप में जानकर इनसे आसक्ति नहीं की और इनसे परे की सच्चाई (निर्वाण) को भी जाना। इससे भी मैं अभिज्ञा में तुम्हारे से बढ़कर हूं।

"तब बक ब्रह्मा ने मुझे अंतर्धान करने की चेष्टा की परंतु वह इसमें सफल नहीं हो पाया। इस पर मैंने बक से कहा कि यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हे अंतर्धान करूं। उसकी स्वीकृति मिलने पर मैंने इस प्रकार का ऋद्धि-बल प्रयोग किया जिससे ब्रह्मा, ब्रह्म-परिषद और ब्रह्म-पार्षद मेरे शब्द सुनते थे, पर मुझे देख नहीं पाते थे। उस समय मैंने यह गाथा कही –'भव में भय को देख, और भव को वि-भव का इच्छुक देख, मैंने भव का स्वागत नहीं किया, और नंदी (तृष्णा) को स्वीकार नहीं किया।

"मेरी महान ऋद्धिमत्ता और महानुभावता को देखकर ब्रह्मा, ब्रह्म-परिषद तथा ब्रह्म पार्षद आश्चर्यचकित हो गए और कहने लगे कि शाक्यकुल से प्रव्रजित श्रमण गौतम के समान कोई दूसरा श्रमण अथवा ब्राह्मण हमने इससे पहले नहीं देखा।

"तब पापी मार ने एक ब्रह्म पार्षद में आविष्ट हो मुझे दूसरों को धर्मोपदेश देने से हतोत्साहित किया। इस पर मैंने उससे कहा कि मैं तुझे पहचानता हूं, तू पापी मार है। तुझे लगता है कि श्रमण गौतम के धर्मोपदेश से लोग तेरे चंगुल से बाहर निकल जाएंगे, इसीलिए मुझे हतोत्साहित करता है"।

यह सुत्त मार के प्रलोभन में न पड़ने और ब्रह्मा के निमंत्रण से कहा गया, अतः इसका नाम 'ब्रह्मनिमन्तनिक' पड़ा।

१०. मारतज्जनीयसुत्त

एक समय आयुष्मान महामोग्गल्लान भग्ग देश में सुसुमारगिरि के भेसकळावन मृगदाय में विहार करते समय टहल रहे थे। उस समय पापी मार उनके पेट में घुसा था।

आयुष्मान महामोग्गल्लान को ऐसा हुआ कि क्यों मेरा पेट गुड़गुड़ा रहा है? तब वह विहार में प्रवेश कर, बिछे आसन पर बैठ अपने मन में इसका कारण खोजने लगे। उन्होंने पापी मार को पहचान लिया और उसे कहा –"निकल, पापी! मत तथागत या उसके श्रावक को सता, मत यह चिरकाल-पर्यंत तेरे लिए अहितकर, दुःखप्रद हो"।

तत्पश्चात आयुष्मान महामोग्गल्लान ने मार को बतलाया – "भूतकाल में मैं दूसी नाम का मार था और तू मेरा भांजा था। उस समय भगवान ककुसन्ध अर्हत, सम्यक-संबुद्ध लोक में उत्पन्न हुए थे। विधुर और सञ्जीव उनके मुख्य श्रावक-युगल थे।

"दूसी मार शीलवान, कल्याणधर्मा भिक्षुओं की गति-अगति को नहीं जानता था, अतः ब्राह्मण-गृहपतियों को ही उकसाता रहता था जिससे उनके माध्यम से उसे उन भिक्षुओं को गिराने का अवसर मिलता रहे"।

"एक बार भगवान ककुसन्ध आयुष्मान विधुर को पीछे ले ग्राम में भिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए। तब दूसी मार ने एक बालक में आविष्ट हो एक कंकड़ ले, उसे

आयुष्मान विधुर के सिर पर दे मारा जिससे उनका सिर फट गया। फिर भी आयुष्मान विधुर भगवान का अनुगमन करते रहे। तब भगवान ने नागावलोकन किया। इस अवलोकन मात्र से दूसी मार अपने स्थान से च्युत हो महानरक में उत्पन्न हुआ और वहां सहस्रों वर्षों तक पकता रहा।

"आग नहीं चाहती कि मैं मूर्ख को जलाऊं, मूर्ख ही जलती आग से भिड़ कर जलता है । ऐसे ही मार! तू भी तथागत से भिड़ कर आग पकड़ते मूर्ख के समान स्वयं जलेगा। मार ! तू बुद्ध से परे हट और भिक्षुओं से गिरने की आशा मत कर"।

इस प्रकार भेसकळावन में भिक्षु ने मार को फटकारा जिससे वह खिन्न हो, वहीं अंतर्धान हो गया।

मज्झिमनिकाय भाग - २

१. गहपतिवग्ग

१. कन्दरक सुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ चम्पा में गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर विहार करते थे। हाथीवान के पुत्र पेस्स और कन्दरक परिव्राजक वहां जा पहुंचे।

एकदम मौन धारण किए भिक्षु-संघ को देख कर कन्दरक को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने भगवान से कहा कि जैसे आपने भिक्षु-संघ को सुप्रतिपन्न किया है, वैसे ही भूतकाल में सम्यक संबुद्धों ने किया होगा और ऐसे ही भविष्य में सम्यक संबुद्ध करेंगे।

भगवान ने इसकी पुष्टि की और उसे बतलाया कि इस भिक्षु-संघ में क्षीणास्रव अर्हंत भी हैं और चारों स्मृति-प्रस्थानों में स्थिरचित्त हो विहरने वाले शैक्ष्य भी।

फिर उन्होंने पेस्स से चर्चा के दौरान उसे चार प्रकार के पुद्गलों की जानकारी दी – (१) आत्मंतप, (२) परंतप, (३) आत्मंतप-परंतप, तथा (४) न-आत्मंतप-न-परंतप। इनमें से पहले प्रकार का व्यक्ति अपने आप को संतापित करने वाले कामों में लगा होता है, दूसरे प्रकार का व्यक्ति दूसरों को संतापित करने वाले कामों में, तीसरे प्रकार का व्यक्ति अपने आप को भी और दूसरों को भी संतापित करने वाले कामों में, और चौथे प्रकार का व्यक्ति न अपने आप को और न दूसरों को संतापित करने वाले कामों में व्यापृत होता है।

पेस्स तथा कन्दरक के चले जाने के पश्चात भगवान ने भिक्षुओं को चारों प्रकार के पुद्गलों की सोदाहरण विस्तृत जानकारी दी। न-आत्मंतप-न-परंतप पुद्गल की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि ऐसे व्यक्ति का चित्त पूरी तरह से आस्रव-विहीन हो जाने से उसमें ज्ञान जागता है – 'मैं विमुक्त हो गया! मैं

विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।' वह इसी जीवन में वितृष्ण, शांत, शीतल, सुख का अनुभव करनेवाला और स्वयं ब्रह्मभूत होकर विहार करने लगता है।

२. अट्ठक नागरसुत्त

एक समय आयुष्मान आनन्द वेसाली के वेळुवगामक में विहार करते थे। वहां अट्ठक नगर के दसम गृहपति ने उनसे पूछा –"भंते! क्या जाननहार, देखनहार, अर्हंत-अवस्था-प्राप्त, सम्यक संबुद्ध भगवान ने कोई ऐसा एक धर्मोपदेश किया है जिसमें प्रमादरहित, उद्योगशील, तत्पर होकर विहरते हुए, विमुक्त न हुआ चित्त विमुक्त हो जाए, पूरी तरह क्षीण न हुए आस्रव पूरी तरह क्षीण हो जाय, प्राप्त न हुआ अनुपम योगक्षेम (निर्वाण) प्राप्त हो जाय?"

इस पर आयुष्मान आनन्द ने गृहपति को इस धर्मोपदेश के बारे में समझाया। उन्होंने कहा कि जब कोई भिक्षु प्रथम ध्यान को प्राप्त होकर विहरता है तब वह इसे अभिसंस्कृत (कृत) समझता हुआ इसे अपनी प्रज्ञा से अनित्य एवं निरोध स्वभाव वाला जानता है। इस ध्यान में अवस्थित हो वह आस्रवों के क्षय को प्राप्त होता है, अथवा पांचों अवरभागीय संयोजनों के क्षय से औपपातिक ,अनागामी हो जाता है।

आयुष्मान आनन्द ने ऐसे ही द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान एवं चतुर्थ ध्यान, चारों ब्रह्मविहारों, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन एवं आकिंचन्यायतन को लेकर भी गृहपति को समझाया।

तब गृहपति ने कहा –"भंते! जैसे कोई पुरुष एक निधि-मुख (खजाने के मुँह) को खोजते हुए एक ही बार ग्यारह निधिमुखों को पा जाए, ऐसे ही मैंने एक अमृत-द्वार को खोजते हुए एक ही बार ग्यारह अमृत-द्वार पा लिया है।"

३. सेखसुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में कपिलवत्थु के निग्रोधाराम में विहार करते थे । उस समय कपिलवत्थु के शाक्यों ने हाल ही में एक नया संस्थागार बनवाया था। उन्होंने भगवान के पास जाकर अभ्यर्थना की कि प्रथम

बार आप ही इसका उपयोग करें। इसके बाद जब हम इसका उपयोग करेंगे, तब वह चिरकाल तक हमारे हित-सुख के लिए होगा।

इस पर भगवान ने संस्थागार में जाकर शाक्यों को बहुत रात तक धार्मिक कथा कह कर समुत्तेजित, संप्रहर्षित किया और फिर आयुष्मान आनन्द को बाकी उपदेश देने के लिए कह कर स्वयं स्मृति-संप्रज्ञान के साथ विश्राम करने लगे।

तत्पश्चात आयुष्मान आनन्द ने महानाम शाक्य को संबोधित करते हुए कहा –"महानाम ! आर्यश्रावक शील-सदाचार से युक्त, इंद्रियों में संयम रखने वाला, भोजन की मात्रा का जानकार, जागरण में तत्पर, सात सद्धर्मों सहित इसी जन्म में सुख-विहार के लिए उपयोगी चारों चैतसिक ध्यानों का इच्छानुसार एवं बिना किसी कठिनाई के प्राप्त करने वाला होता है।"

फिर आयुष्मान आनन्द ने इस पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा कि ऐसा आर्यश्रावक शैक्ष्य-प्रातिपद (निर्वाण-प्राप्ति के लिए मार्गारूढ़) कहलाता है। वह निर्भेदन करने, संबोधि प्राप्त करने तथा अनुपम योगक्षेम अधिगत करने के योग्य होता है। वह उपेक्षा और जागरूकता की परिशुद्धता को प्राप्त कर अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों को स्मरण करने लगता है, दिव्य चक्षु से कर्मानुसार गति को प्राप्त होते प्राणियों को प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है, आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगता है। ऐसा आर्यश्रावक विद्यासंपन्न कहलाता है, चरणसंपन्न भी, और विद्याचरणसंपन्न भी।

तदनंतर भगवान उठ खड़े हुए और उन्होंने आयुष्मान आनन्द की उनके भाषण के लिए सराहना की।

४. पोतलियसुत्त

एक समय भगवान अङ्गुत्तराप जनपद में आपण नाम के निगम में विहार करते थे। उस काल में पोतलिय गृहपति ने उनके पास जाकर उनसे कहा कि मैंने सारा काम-धंधा छोड़ दिया है, संपत्ति पुत्रों को दे दी है, केवल खाने-पहनने भर से मेरा वास्ता रहा है –इस प्रकार मेरे सारे व्यवहारों का पूर्णतया उच्छेद हो गया है।

इस पर भगवान ने कहा कि आर्य-विनय में इसे व्यवहार-उच्छेद नहीं कहते।

तब गृहपति के अनुरोध पर भगवान ने उसे समझाया कि व्यवहार-उच्छेद के लिये ये आठ धर्म होते हैं –

(१) अहिंसा का सहारा ले, हिंसा को छोड़ना;

(२) अ-चौर्य का सहारा ले, चोरी को छोड़ना;

(३) सच का सहारा ले, झूठ को छोड़ना;

(४) अ-पिशुनता का सहारा ले, पिशुनता (चुगली) को छोड़ना;

(५) अ-लोभ का सहारा ले, लोभ को छोड़ना;

(६) अ-निंदादोष का सहारा ले, निंदादोष को छोड़ना;

(७) अक्रोध-उपायास का सहारा ले, क्रोध-उपायास को छोड़ना; और

(८) अन्-अतिमान का सहारा ले, अतिमान को छोड़ना।

फिर भगवान ने कहा कि इनसे भी पूरी तरह से व्यवहार-उच्छेद नहीं होता। पूरी तरह से व्यवहार-उच्छेद तब होता है जब कोई आर्य-श्रावक अनुपम उपेक्षा एवं स्मृति की परिशुद्धता को प्राप्त कर –

* अनेक प्रकार के पूर्व-निवासों को आकार एवं नाम सहित स्मरण करने लगता है;

* विशुद्ध, अमानुष, दिव्य चक्षु से मरते-जन्मते, कर्मानुसार गति प्राप्त करते प्राणियों को जानने लगता है; और

* इसी जन्म में आस्रवों के क्षय से, आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा पूर्ण विमुक्ति को स्वयं अभिज्ञा से जान कर विहरने लगता है।

यह सुन कर भाव-विभोर होकर गृहपति भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

५. जीवक सुत्त

एक समय जब भगवान राजगह में जीवक कोमारभच्च के आम्रवन में विहार करते थे, तब जीवक ने उनके पास जाकर कहा –"भंते! मैंने सुना है कि लोग श्रमण गौतम के उद्देश्य से जीव को मारते हैं, और वह जानते हुए अपने उद्देश्य

से बनाए, अपने उद्देश्य से किये कर्म वाले मांस को खाते हैं। क्या ऐसा कहने वाले भगवान के विषय में सच कहते हैं? उन पर झूठा दोष तो नहीं लगाते?"

इस पर भगवान ने कहा –"ऐसा कहने वाले मेरे विषय में सच नहीं कहते हैं। वे मुझ पर झूठा दोष लगाते हैं। वस्तुतः जो कोई तथागत या उनके श्रावक के उद्देश्य से जीव को मारता है, वह पांच स्थानों से बहुत पाप कमाता है। ये पांच स्थान हैं : (१) यह कहना –'जाओ, अमुक जीव को ले आओ'; (२) गले में फंदा डाल जीव को खींच कर लाते देख दुःख, दौर्मनस्य अनुभव करना; (३) यह कहना –'जाओ, इस जीव को मारो'; (४) जीव को मारते समय दुःख, दौर्मनस्य अनुभव करना; और (५) तथागत या उसके श्रावक को अनुचित पदार्थ खिलाना।

यह सुन कर अत्यंत भाव-विभोर हो जीवक कोमारभच्च भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

६. उपालिसुत्त

एक समय भगवान नाळन्दा में पावारिक-आम्रवन में विहार करते थे। उस काल में निर्ग्रंथ नाटपुत्त भी निर्ग्रंथों की एक बड़ी परिषद के साथ उसी नगर में विहरते थे।

एक दिन निर्ग्रंथ दीघतपस्सी भगवान के पास चला गया। वहां उसने उनको बतलाया कि निर्ग्रंथ नाटपुत्त पापकर्म करने के लिए, पापकर्म की प्रवृत्ति के लिए कर्मों का विधान नहीं करते, केवल 'दंड' का विधान करते हैं, और काय-दंड, वचन-दंड, मन-दंड में से 'काय-दंड' को महादोषयुक्त बतलाते हैं। भगवान ने कहा कि तथागत दंड का नहीं, 'कर्मों' का विधान करते हैं, और काय-कर्म, वचन-कर्म, मन-कर्म में से'मन-कर्म' को महादोषयुक्त बतलाते हैं।

निर्ग्रंथ नाटपुत्त को इसका पता चलने पर उनकी अनुमति प्राप्त कर उनका शिष्य उपालि गृहपति भगवान से इस बारे में वाद रोपने के लिए उनके पास गया। परंतु वहां वह उनकी युक्तियों से इतना प्रभावित हुआ कि वह उनकी शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

इस पर भगवान ने उससे कहा –"गृहपति! सोच समझ कर करो।" यह सुन

कर उपालि और अधिक प्रभावित हुआ, और दूसरी बार भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

भगवान फिर बोले – "गृहपति! लंबे समय से तुम्हारा कुल निर्ग्रंथों के लिए प्याऊ की तरह रहा है, उनके आने पर 'पिंड नहीं देना चाहिए' – यह मत समझना।" यह सुन कर उपालि और भी अधिक प्रभावित हुआ और तीसरी बार भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

तदुपरांत भगवान ने उसे आनुपूर्वी कथा कही, जैसे कि दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, भोगों के दुष्परिणाम, अपकार, मलिनकरण, और गृह त्यागने के माहात्म्य को प्रकाशित किया। जब भगवान ने उसे उपयुक्त-चित्त, मृदु-चित्त, आवरणरहित-चित्त, उद्गत-चित्त (प्रसन्न-चित्त) जान लिया तब उसे बुद्धों का स्वयं जाना हुआ धर्मोपदेश – दुःख, समुदय, निरोध तथा मार्ग – प्रकाशित किया। तत्पश्चात जैसे धवल, निर्मल वस्त्र को रंग अच्छी तरह पकड़ लेता है, वैसे ही उपालि को उसी आसन पर बैठे-बैठे विरज, विमल, धर्मचक्षु – 'जो कुछ उत्पन्न होने वाला (समुदयधर्मा) है, वह सब कुछ नाशवान (निरोधधर्मा) है' – उत्पन्न हुआ।

तब से उपालि ने निर्ग्रंथों, निर्ग्रंथिनियों के लिए अपने घर के कपाट बंद कर दिए और भिक्षुओं-भिक्षुणियों तथा उपासकों-उपासिकाओं के लिए खोल दिए।

यह जानकारी मिलने पर कि उपालि गृहपति श्रमण गौतम का श्रावक हो गया है, पहले दीघतपस्सी और बाद में निर्ग्रंथ नाटपुत्त स्वयं उसके घर गए और इस बात को सही पाया। उपालि ने भगवान के अनेकानेक गुणों का बखान करते हुए सुस्पष्ट किया कि वह भगवान का ही श्रावक है।

७. कुक्कुरवतिक सुत्त

एक समय भगवान कोलिय जनपद में हलिद्दवसन नाम के निगम में विहार करते थे। उस काल में गोव्रतिक (गाय के समान आचरण करने का व्रत लिये हुए) पुण्ण और कुक्कुरव्रतिक(कुत्ते के समान आचरण करने का व्रत लिये हुए) अचेल सेनिय वहां आकर उनसे मृत्यु के उपरांत एक दूसरे की गति के बारे में पूछने लगे।

भगवान ने कहा कि गोव्रतिक और कुक्कुरव्रतिक मिथ्या दृष्टि वाले होते हैं,

और मिथ्या दृष्टि वालों की इन दो में से एक ही गति होती है – नरक या पशु-योनि में जन्म।

यह सुन कर पुण्ण और अचेल सेनिय दोनों रोने लगे। फिर पुण्ण ने भगवान से याचना की कि हमें ऐसा धर्मोपदेश करें जिससे हम ये दोनों प्रकार के व्रत छोड़ दें।

तदुपरांत भगवान ने उन्हें बतलाया कि मैंने चार प्रकार के कर्मों को स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, अनुभव किया है। ये कर्म हैं –

(१) कृष्ण और कृष्ण-विपाक (बुरे और बुरे परिणाम वाले);

(२) शुक्ल और शुक्ल-विपाक (अच्छे और अच्छे परिणाम वाले);

(३) कृष्ण-शुक्ल और कृष्ण-शुक्ल-विपाक ; और

(४) अकृष्ण-अशुक्ल और अकृष्ण-अशुक्ल-विपाक ।

फिर उन्होंने इनका खुलासा करते हुए बतलाया कि जो जैसा करता है, वैसी ही उसकी उत्पत्ति होती है। काया, वाणी और मन से व्यापाद के संस्कार बनाने वाला केवल दुःखमय वेदना अनुभव करते हुए व्यापाद-युक्त लोक में उत्पन्न होता है, जैसे निरयलोक। व्यापाद-रहित संस्कार बनाने वाला केवल सुखमय वेदना अनुभव करते हुए व्यापाद-रहित लोक में उत्पन्न होता है, जैसे देवलोक। व्यापाद-युक्त तथा व्यापाद-रहित संस्कार बनाने वाला दुःखद-सुखद वेदना को अनुभव करता हुआ मनुष्य-लोक में, अथवा देवलोक में अथवा विनिपातिक हो जन्म लेता है। पूर्वोक्त तीनों प्रकार के संस्कारों के क्षय के लिए उपयोगी मानसिक चेतना कहलाती है – अकृष्ण-अशुक्ल, अकृष्ण-अशुक्ल-विपाक ।

यह सुन कर पुण्ण अत्यंत भाव-विभोर हो भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी। अचेल सेनिय ने भगवान से प्रव्रज्या, उपसंपदा पाई और कुछ ही काल के पश्चात एकांतवास करते हुए, प्रमाद-रहित एवं आत्मसंयमी हो अर्हंत अवस्था को प्राप्त हुआ।

८. अभयराजकुमारसुत्त

एक समय भगवान राजगह में वेळुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे। उस काल में अभय राजकुमार के आमंत्रण पर वे उसके घर गए जहां उन्होंने उसको

बतलाया कि तथागत किस प्रकार के वचन बोलते हैं, और किस प्रकार के वचन नहीं बोलते हैं।

भगवान ने कहा कि तथागत इस प्रकार के वचन नहीं बोलते हैं –

(१) अयथार्थ, असत्य, अनर्थयुक्त और दूसरों के लिये अप्रिय, अमनाप;

(२) यथार्थ, सत्य, अनर्थयुक्त और दूसरों के लिये अप्रिय, अमनाप;

(३) अयथार्थ, असत्य, अनर्थयुक्त पर दूसरों के लिये प्रिय, मनाप;

(४) यथार्थ, सत्य, अनर्थयुक्त और दूसरों के लिये प्रिय, मनाप।

वह समय देखकर इस प्रकार के वचन बोलते हैं –

(१) यथार्थ, सत्य, अर्थयुक्त पर दूसरों के लिये अप्रिय, अमनाप; और

(२) यथार्थ, सत्य, अर्थयुक्त और दूसरों के लिये प्रिय, मनाप।

९. बहुवेदनीयसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस काल में पञ्चकङ्ग स्थपति तथा आयुष्मान उदायी में इस बात पर मतभेद था कि भगवान ने कितने प्रकार की वेदनाएं कही हैं। एक कहता था तीन प्रकार की –सुखद, दुःखद एवं अदुःखद-असुखद। दूसरा कहता था दो प्रकार की – सुखद एवं दुःखद।

जब यह बात भगवान तक पहुँची, तब उन्होंने स्पष्ट किया कि मैंने पर्याय से दो वेदनाएं भी कही हैं, तीन भी, पांच भी, छः भी, अठारह भी, छत्तीस भी, एक सौ आठ भी।

तदनंतर उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि पांच कामगुणों के आश्रय से जो सुख, सौमनस्य उत्पन्न होता है, वह काम-सुख कहलाता है। इस सुख से बढ़कर, उत्तरोत्तर, दूसरे सुख भी होते हैं, जैसे प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान तथा चतुर्थ ध्यान, और फिर आकाशानन्त्यायतन, विञ्ञाणानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन तथा नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहरना, और फिर इसका भी सर्वथा अतिक्रमण कर संज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त हो विहरना।

१०. अपण्णक सुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ कोसल (जनपद) में चारिका करते हुए साला नामक ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचे। उनकी मंगल-कीर्ति सुनकर वहां के ब्राह्मण-गृहपति दर्शनार्थ उनके पास चले आए।

भगवान ने उनसे पूछा – "गृहपतियो! क्या तुम्हारे मनोनुकूल कोई शास्ता है जिसमें तुम्हारी गहरी श्रद्धा हो?"

गृहपतियों से नकारात्मक उत्तर मिलने पर भगवान ने उनसे कहा कि तब तो तुम्हें अपर्णक (द्विविधा-रहित) धर्म ग्रहण करना चाहिए।

तत्पश्चात भगवान ने परस्पर-विरोधी वाद स्थापित करने वालों की मिथ्या-दृष्टि की तुलना बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सम्यक दृष्टि से की और उन्हें इसके लाभों से अवगत कराया।

अंत में उन्होंने उन्हें संसार में विद्यमान चार प्रकार के पुद्गलों की जानकारी दी – (१) आत्मंतप, (२) परंतप, (३) आत्मंतप-परंतप, तथा (४) न-आत्मंतप-न-परंतप। (विस्तार के लिए देखिए – "कन्दरक सुत्त", पृष्ठ सं. १३१)

न-आत्मंतप-न-परंतप पुद्गल की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि ऐसे व्यक्ति का चित्त पूरी तरह से आस्रव-विहीन हो जाने से उसमें ज्ञान जागता है – 'मैं विमुक्त हो गया! मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।' वह इसी जीवन में वितृष्ण, शांत, शीतल, सुख का अनुभव करने वाला और स्वयं ब्रह्मभूत हुआ विहार करने लगता है।

यह सुन कर, आश्चर्य-चकित हो, साला-निवासी ब्राह्मण गृहपति भगवान की शरण चले गए, और धर्म तथा संघ की भी।

---

२. भिक्खुवग्ग

१. अम्बलट्ठिक राहुलोवादसुत्त

एक समय जब भगवान राजगह में वेळुवन कलन्दक निवापमें विहार करतेथे, तब आयुष्मान राहुल अम्बलट्ठिका में विहरते थे।

एक दिन भगवान सायंकाल ध्यान से उठ अम्बलट्ठिका चले गए और वहां आयुष्मान राहुल को उपदेश देते हुए यह सीखने के लिए कहा –

* मैं हँसी में भी झूठ नहीं बोलूंगा।

* मैं बार-बार विवेचन करकेकाया, वाणी तथा मन के कर्मोंको पूर्ण रूप से सुधारूंगा।

२. महाराहुलोवादसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस कालमें उन्होंने आयुष्मान राहुल कोसमझाया कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को इस प्रकार यथाभूत, सम्यक प्रकारसे जानना चाहिए –'न यह मेरा है', 'न मैं यह हूं', 'न यह मेरी आत्मा है'।

उन्होंने उसे यह भी समझाया कि किसप्रकारआनापानसति कीभावना किये जाने पर वह महाफलदायिका,बड़े माहात्म्य वाली होती है। उन्होंने कहा कि भीतरी और बाहरी पांचों महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) में से प्रत्येक कोइस प्रकार यथाभूत, सम्यक प्रकारसे जानना चाहिये –'न यह मेरा है', 'न मैं यह हूं', 'न यह मेरी आत्मा है'। इनके समान भावना करनेसे चित्त को अच्छे या बुरे लगने वाले स्पर्श इससे चिपटते नहीं। ऐसे ही मैत्री, करुणा,मुदिता एवं उपेक्षा की भावना करनेसे द्वेष, विहिंसा, अरति तथा प्रतिहिंसा, क्रमशः, छूट जाते हैं। अशुभ की भावना करनेसे राग और अनित्य-संज्ञा की भावना करने से अहंकार छूट जाता है।

अंत में भगवान ने भिक्षु की विभिन्न अवस्थाओं में उसके द्वारा अपने आश्वास-प्रश्वास की जानकारी बनाये रखने के बारे में सारी प्रक्रिया को

समझाया। उन्होंने कहा कि इस प्रकार भावित की गई आनापानसति से अंतिम श्वास भी जानकारी में ही छूटते हैं, बिना जानकारी के नहीं।

३. चूळमालुक्यसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। मालुक्य-पुत्र ने वहां जाकर उनसे जानना चाहा कि जिन बातों को उन्होंने 'अ-व्याकृत' कहा है (जैसे कि 'लोक नित्य है,' 'लोक अनित्य है', 'लोक अंतवान है', 'लोक अनंत है', इत्यादि) – इनके बारे में वह उसे साफ-साफ बतलाएं कि वह इनके विषय में जानते भी हैं, अथवा नहीं।

भगवान ने कहा कि चाहे लोक नित्य हो अथवा अनित्य, लोक अंतवान हो अथवा अनंत, जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, रोना-पीटना, दु:ख, दौर्मनस्य, परेशानी –ये सब तो हैं ही। मैं इसी जन्म में इनके विनाश का उपाय बतलाता हूं।

उन्होंने आगे कहा कि मेरे द्वारा 'अ-व्याकृत' धर्म सार्थक एवं आदि-ब्रह्मचर्य के लिये उपयोगी नहीं हैं; ये न तो निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संबोधि, न निर्वाण के लिये हैं। मेरे द्वारा 'व्याकृत' धर्म हैं –

(१) 'यह दु:ख है';

(२) 'यह दु:ख का समुदय है';

(३) 'यह दु:ख का निरोध है';

(४) 'यह दु:ख का निरोध कराने वाली प्रतिपदा है।

ये सार्थक एवं आदि-ब्रह्मचर्य के लिये उपयोगी हैं; ये निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि, निर्वाण के लिये हैं। अत: मेरे द्वारा 'अ-व्याकृत' को 'अ-व्याकृत' के तौर पर और 'व्याकृत' को 'व्याकृत' के तौर पर ग्रहण करना चाहिए।

४. महामालुक्यसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां मालुक्य-पुत्र भगवान द्वारा उपदिष्ट पांच अवरभागीय संयोजनों के सम्बन्ध में यथार्थ उत्तर नहीं दे पाया। अत: भगवान ने इसे फिर से समझाया।

उन्होंने कहा कि पांच अवरभागीय संयोजन हैं –

(१) सत्काय-दृष्टि;

(२) विचिकित्सा;

(३) शीलव्रतपरामर्श;

(४) काम-राग; और

(५) व्यापाद।

इनके विनाश के लिये उपाय है, उपधि को त्याग कर, अकुशल धर्मों को दूर कर, कायिक चंचलता को शांत कर, कामों से विरहित हो, प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरना; पांच स्कंधों से संबंध रखने वाले धर्मों को अनित्य, दु:ख एवं अनात्म के तौर पर देख, उन धर्मों से चित्त को हटा, निर्वाण-धातु की ओर चित्त लगाना। इसमें स्थित होने से आस्रवों के क्षय को प्राप्त होना –और यदि ऐसा न हो, तो उसी धर्म-अनुराग से, पांचों अवरभागीय संयोजनों के क्षय से, औपपातिक, अनागामी हो जाना।

इन्हीं पांच अवरभागीय संयोजनों के विनाश के लिये अन्य उपाय हैं –द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान तथा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरना; फिर रूप-संज्ञा को सर्वथा छोड़ने के उपरांत, क्रमशः, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन को प्राप्त हो विहरना और पूर्ववत निर्वाण-धातु में स्थित हो आस्रवों के क्षय को प्राप्त होना, अथवा औपपातिक, अनागामी हो जाना।

तत्पश्चात आयुष्मान आनन्द ने भगवान से पूछ लिया कि यदि पांच अवरभागीय संयोजनों के विनाश के लिए यही उपाय है, तो कोई भिक्षु चित्त की विमुक्ति वाले और कोई प्रज्ञा से पूर्ण विमुक्ति वाले क्यों होते हैं? भगवान ने स्पष्ट किया कि इंद्रिय(मन:शक्ति)-भेद के कारण ऐसा होता है।

५. भद्दालिसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –"भिक्षुओ! मैं एक आसन-भोजन का सेवन करता हूं। इससे मैं आरोग्य, उत्साह, बल और सुख-विहार अनुभव करता हूं। तुम भी ऐसा ही करो।"

इस पर आयुष्मान भद्दालि ने कहा –“भंते! मैं ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि इससे मुझे चिंता और उदासी होगी।” परंतु लगभग तीन माह पश्चात उन्होंने भविष्य में संवर रखने का संकल्प जतलाते हुए, इस अपराध के लिए भगवान से क्षमा-याचना की। भगवान ने यह कहते हुए उन्हें क्षमा कर दिया कि आर्य-विनय में यह वृद्धि ही कहलाती है जब कोई व्यक्ति अपराध को अपराध के तौर पर देखकर भविष्य में संवर रखने के लिए उसका धर्मानुसार प्रतिकार कर दे।

तत्पश्चात भगवान ने उन्हें समझाया कि –

* शास्ता की शिक्षा का पूरी तरह पालन करने से कैसे, उत्तरोत्तर, आध्यात्मिक लाभ होता जाता है।

* वह कौन सा हेतु है जिसके कारण कोई भिक्षु बार बार अपराध करता है और कोई भिक्षु नहीं करता है।

* वह कौन सा हेतु है जिसके कारण पूर्वकाल में शिक्षापद कम होते थे पर बहुत से भिक्षु उत्तम ज्ञान में अवस्थित थे, परंतु अब शिक्षापद बहुत हैं पर कम भिक्षु ही उत्तम ज्ञान में अवस्थित हैं।

तदनंतर भगवान ने उन्हें ‘आजानीयसुसूपम’ धर्मपर्याय का उपदेश दिया। इसमें उन्होंने यह बतलाया कि जैसे कोई चतुर सारथी किसी अच्छी नसल के घोड़े को पाकर उसे दस प्रकार से, क्रमवार, निरंतर शिक्षा देते हुए इस योग्य बना देता है, जिससे वह राजा का अंग कहलाने लगे; वैसे ही दस अंगों से युक्त भिक्षु भी आवाहन-योग्य, पाहुना बनाने योग्य, दक्षिणा दिए जाने योग्य, हाथ जोड़े जाने योग्य, लोक के पुण्य बोने का अनुपम क्षेत्र हो जाता है। भिक्षु के संदर्भ में ये दस अंग हैं –

(१) अशेष सम्यक दृष्टि,

(२) अशेष सम्यक संकल्प,

(३) अशेष सम्यक वचन,

(४) अशेष सम्यक कर्मांत

(५) अशेष सम्यक आजीविका,

(६) अशेष सम्यक व्यायाम,

(७) अशेष सम्यक स्मृति,

(८) अशेष सम्यक समाधि,

(९) अशेष सम्यक ज्ञान, तथा

(१०) अशेष सम्यक विमुक्ति।

६. लटुकिकोपमसुत्त

एक समय भगवान अङ्गुत्तराप (जनपद) में आपण नाम के निगम में विहार करते थे। वहां आयुष्मान उदायी द्वारा चर्चा छेड़ने पर भगवान ने कहा कि मैं जब किसी बात को छोड़ने के लिए कहता हूं, तब कोई-कोई मोघपुरुष उसे नहीं छोड़ते, परंतु सीख चाहने वाले भिक्षु उसे अपने लिए दृढ़ बंधन मानते हुए उसे छोड़ देते हैं। पूति-लता के बंधन से बंधी हुई लटुकिका (गोरय्या) वहीं वध, बंधन अथवा मरण की प्रतीक्षा करती हुई दृढ़ बंधन से बंधी हुई ही मानी जा सकती है, किसी दुर्बल बंधन से नहीं।

भगवान ने आगे कहा कि संसार में चार प्रकार के व्यक्तियों में से जो व्यक्ति उपधि (आसक्ति) को दुःखों का मूल जानकर, उपधि-रहित हो जाता है, वही 'वि-संयोगी' कहलाता है; अन्य प्रकार के व्यक्ति नहीं। 'वि-संयोगी' के मन का झुकाव अलग प्रकार का होता है।

तत्पश्चात उन्होंने पांच काम-गुणों की चर्चा करते हुए इनसे उत्पन्न होने वाले सुख को 'अनार्य सुख' कहा, जिससे भय खाना चाहिए। परंतु चार ध्यानों को प्राप्त हो उनमें विहरने से होने वाले सुख को 'नैष्क्रम्य सुख' कहा, जिससे भय करने का कोई कारण नहीं।

ध्यानों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि इनमें से पहले तीन प्रकार के ध्यान इंगित (अस्थिर) कहलाते हैं क्योंकि इनमें से प्रत्येक में कुछ-न-कुछ अ-निरुद्ध रह जाता है। चतुर्थ ध्यान अनिंगित (स्थिर) कहलाता है।

फिर उन्होंने कहा कि मैं प्रथम ध्यान से लेकर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तक की प्रत्येक अवस्था को 'अपर्याप्त' बतलाते हुए उसका 'अतिक्रमण' करने के लिए कहता हूं। नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का सर्वथा अतिक्रमण "संज्ञावेदयितनिरोध" की अवस्था है।

अंत में भगवान ने आयुष्मान उदायी से पूछा कि क्या कोई ऐसा छोटा-बड़ा संयोजन (बंधन) देखते हो जिसे दूर करने के लिए मैं नहीं कहता?

आयुष्मान उदायी ने कहा – “नहीं, भंते!”

७. चातुमसुत्त

एक समय जब भगवान चातुमा के आमलकीवन में विहार करते थे, तब सारिपुत्त, मोग्गल्लान आदि पांच सौ भिक्षु उनके दर्शनार्थ वहां चले आए। चूंकि ये आगंतुक भिक्षु कई कारणों से बहुत कोलाहल कर रहे थे, अतः भगवान ने उन्हें वहां से चले जाने के लिये कहा, परंतु बाद में उन पर अनुकंपा करते हुए उन्हें धर्मोपदेश दिया।

उन्होंने भिक्षुओं को कहा कि पानी में उतरने वाले को चार प्रकार के भय हो सकते हैं –

(१) ऊर्मि-भय;

(२) कुंभील-भय;

(३) आवर्त-भय; तथा

(४) सुसुका-भय।

यही चार भय उस व्यक्ति को भी हो सकते हैं, जो इस धर्म-विनय में घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ हो।

तत्पश्चात भगवान ने इन चार प्रकार के भयों के बारे में विस्तार से समझाते हुए बतलाया कि अनुशासन करने वाले के प्रति क्रोध, दुश्चिंता का होना ऊर्मि-भय है; ठूंस-ठूंस कर पेट भरना कुंभील-भय है; पांच कामगुणों का होना आवर्त-भय है; और स्त्रियों का ही नाम है सुसुका-भय।

८. नळकपानसुत्त

एक समय भगवान कोसल जनपद में नळकपान के पलासवन में विहार करते थे। उस काल में बहुत से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुलपुत्र भगवान के पास घर से बेघर हो प्रव्रजित हुए थे। उन्होंने उनको समझाया कि प्रव्रजित हो, कुलपुत्र को क्या करना चाहिये।

उन्होंने उनको यह भी स्पष्ट किया कि यह जो तथागत मरे हुए श्रावकों की उत्पत्ति बतलाते हैं – ‘वह वहां पैदा हुआ है, वह वहां पैदा हुआ है’ – यह

किसलिए है। यह न लोगों को ठगने के लिए, न लोगों को बातचीत में लगाए रखने के लिए, न लाभ-सत्कार-प्रशंसा पाने के लिए, और न इसलिए है कि लोग तथागत को ऐसा जानें। यह इसलिए है कि खूब उत्साह वाले, प्रमोद-प्राप्त, श्रद्धालु कुलपुत्र उसे सुनकर उसके लिये चित्त लगाएं। यह दीर्घ कालतक उनके हित-सुख के लिए होता है।

९. गोलियानिसुत्त

एक समय जब भगवान राजगह में वेळुवन-कलन्दक निवापमें विहार करते थे तब आयुष्मान सारिपुत्त ने गोलियानि नामक भिक्षु को वनवासी भिक्षुओं द्वारा पालन करने योग्य अठारह धर्मों के बारे में उपदेश दिया।

उन्होंने कहा कि संघ में आये, संघ में रहते वनवासी भिक्षु को सब्रह्मचारियों के प्रति सम्मान-भाव रखना चाहिए; आसन-कुशलहोना चाहिए (अर्थात स्थविरों के बैठने से पूर्व स्वयं न बैठना और नये भिक्षुओं को आसन से न हटाना –यह जानना चाहिए); अपने छोटे-मोटे कर्तव्यों को जानना चाहिए; असमय में ग्राम में प्रवेश नहीं करना चाहिए; इत्यादि। इसके अतिरिक्त उसे इंद्रियों पर संयम रखने वाला, भोजन की मात्रा का जानकार, जागरण में तत्पर, उद्योगशील, स्मृतिमान, एकाग्रचित्त एवं प्रज्ञावान होना चाहिए। उसे अभिधर्म, रूप-रहित लोकों से संबंधित शांत विमोक्षों तथा उत्तर-मनुष्यधर्मों में भी मन लगाना चाहिए।

१०. कीटागिरिसुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ कासी [जनपद] में चारिका करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को आमंत्रित कर कहा – "भिक्षुओ! मैं रात्रि-भोजन से विरत हो भोजन करता हूं। इससे मैं आरोग्य, उत्साह, बल और सुख-विहार अनुभव करता हूं। तुम भी ऐसा ही करो।"

भिक्षुओं ने कहा – "अच्छा, भंते!"

जब चारिका करते हुए भगवान उसी जनपद के कीटागिरि निगम में पहुँचे, तब इन भिक्षुओं ने वहां के निवासी भिक्षुओं अस्सजि और पुनब्बसु को भी रात्रि-भोजन से विरत हो भोजन करने के लिए कहा, परंतु वे नहीं माने। वे इसी बात पर अड़े रहे कि हम सायंकाल भी भोजन करेंगे, प्रातःकाल भी, दिन में भी,

विकालमें भी। उनका कहना था कि जब हमें इससे प्रत्यक्ष आरोग्य, उत्साह, बल और सुख-विहार अनुभव होता है, तब हम भविष्य के पीछे क्यों दौड़ें?

इस पर भगवान ने उन्हें अपने पास बुलाकर भांति-भांति से समझाया कि मैं उसी का उपदेश करता हूं जो मुझे ज्ञात, दृष्ट, विदित, साक्षात्कृत और प्रज्ञा से अनुभूत होता है।

इस संदर्भ में उन्होंने यह भी समझाया कि मैं अर्हत-अवस्था-प्राप्त भिक्षुओं को 'प्रमाद-रहित हो करो' –ऐसा नहीं कहता, क्योंकि वे तो 'करणीय' को कर चुके होते हैं। 'प्रमाद-रहित हो करो' –मेरा यह उपदेश शैक्ष्यों के लिए होता है, जिन्हें अभी निर्वाण का साक्षात्कार करना होता है। ऐसे ही मैं सात प्रकार के पुद्गलों में से 'उभयतोभाग-विमुक्त' और 'प्रज्ञा-विमुक्त' – इन दो प्रकार के पुद्गलों को 'प्रमाद-रहित हो करो' – ऐसा नहीं कहता। ऐसा करने के लिए मैं अन्य पांच प्रकार के पुद्गलों को कहता हूं। ये पुद्गल कहलाते हैं – काय-साक्षी, दृष्टि-प्राप्त, श्रद्धा-विमुक्त, धर्मानुसारी तथा श्रद्धानुसारी। इसके अतिरिक्त मैं आरंभ से ही परम ज्ञान की आराधना के लिए नहीं कहता; परम ज्ञान की आराधना, क्रमशः, शिक्षा, क्रिया तथा प्रतिपदा से होती है।

अंत में भगवान ने चतुष्पद व्याकरण की जानकारी भी दी, जिसका अर्थ करने पर बुद्धिमान व्यक्ति उसे जल्दी ही प्रज्ञा से जान लेता है।

---

३. परिब्बाजक वग्ग

१. तेविज्जवच्छगोत्तसुत्त

एक समय भगवान वेसाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे। वे एक पुण्डरीक परिव्राजकाराम में वास करने वाले वच्छगोत्त परिव्राजक के यहां चले गए।

वहां उन्होंने वच्छगोत्त की इस भ्रांति को दूर किया कि श्रमण गौतम सर्वज्ञ हैं और चलते, ठहरते, सोते, जागते उन्हें हर समय ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है। उन्होंने स्पष्ट किया कि वास्तविकता तो यह है कि मैं तीन विद्याओं का वेत्ता हूं –

(१) मैं जब चाहूं, अपने अनेक पूर्वनिवासों (पूर्वजन्मों) को स्मरण कर सकता हूं;

(२) मैं जब चाहूं, अ-मानुष विशुद्ध दिव्य चक्षु से अपने-अपने कर्मानुसार गति को प्राप्त करने वाले प्राणियों को जान लेता हूं; और

(३) मैं आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरता हूं।

२. अग्गिवच्छसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस काल में वच्छगोत्त परिव्राजक ने वहां जाकर भगवान से लोक, जीव तथा तथागत को लेकर उस समय प्रचलित विभिन्न दृष्टियों की चर्चा करते हुए उनसे पूछा कि इनमें क्या दोष देखकर आप इन्हें ग्रहण नहीं करते?

भगवान ने कहा कि इनमें से प्रत्येक दृष्टि चंचल वा बांधने वाली है; दु:ख, विघात, परेशानी एवं जलन पैदा करने वाली है; न निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संबोधि और न निर्वाण के लिये है। इनमें यही दोष देख कर मैं इन्हें ग्रहण नहीं करता।

तब वच्छगोत्त द्वारा यह पूछे जाने पर कि आपकी क्या दृष्टि है, भगवान ने कहा कि तथागत की दृष्टि दूर हो गई है। अब तो तथागत का दृष्ट (साक्षात्कार किया हुआ) यही है –'यह रूप है, यह रूप का समुदय है, यह रूप का निरोध है;

और ऐसे ही वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के बारे में। कोई भी सारी मान्यताओं, सारे मंथनों, सारे अहंकार-ममकार-मानरूपी अनुशयों के क्षय, विराग, निरोध, त्याग और अनुत्पाद से विमुक्त हो जाता है –मैं यह कहता हूं।'

फिर यह पूछे जाने पर कि ऐसा विमुक्त-चित्त व्यक्ति कहां पैदा होता है, भगवान ने कहा कि यह प्रश्न ऐसे ही है जैसे जलती हुई आग के बुझ जाने पर कोई यह जानना चाहे कि वह आग किस दिशा को गई –पूर्व को, पश्चिम को, उत्तर को या दक्षिण को? ऐसा ही तथागत के बारे में होता है। प्राण छोड़ने पर वह विज्ञान संज्ञा से मुक्त हो, महासागर के समान गंभीर, अप्रमेय, अवगाहन के अयोग्य हो जाता है। इसलिए उसके बारे में यह नहीं कहा जाता –'उत्पन्न होता है'; 'उत्पन्न नहीं होता है'; 'उत्पन्न होता भी है और नहीं भी होता है'; 'न उत्पन्न होता है, न नहीं उत्पन्न होता है'।

यह सुनकर वच्छगोत्त परिव्राजक आश्चर्यचकित हो भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

३. महावच्छसुत्त

एक समय भगवान राजगह में वेळुवन कलन्दकनिवापमें विहार करते थे। वहां उन्होंने वच्छगोत्त परिव्राजक को उसके चाहने पर कुशल-अकुशल (भलाई-बुराई) का उपदेश दिया। फिर यह भी समझाया कि भिक्षु तृष्णा के समूल नष्ट हो जाने से अर्हत, क्षीणास्रव, ब्रह्मचर्यवास पूरा किया हुआ, कृतकृत्य, भारमुक्त, सदर्थ-प्राप्त, भग्न-भवसंयोजन और सम्यक ज्ञान द्वारा विमुक्ति पाने वाला हो जाता है।

तत्पश्चात परिव्राजक के अनेक प्रश्नों के उत्तर में भगवान ने उसे बतलाया कि आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति एवं प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जन्म में साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने वाले; अवरभागीय संयोजनों के क्षय से औपपातिक, अनागामी हुए; और उनके शासन में अतिश्रद्धावान होकर विहरने वाले व्यक्तियों की संख्या काफी बड़ी है।

इस पर परिव्राजक को लगा कि भगवान का ब्रह्मचर्य पूर्ण है, क्योंकि वह स्वयं जिस धर्म की आराधना करते हैं, उनसे शिक्षा ग्रहण करने वाले भी उसी के आराधक हैं। जैसे गंगा नदी सागरोन्मुख होती है, वैसे ही भगवान की परिषद

निर्वाणोन्मुख है। तब वह आश्चर्यचकित हो, भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

समय आने पर वच्छगोत्त परिव्राजक ने भगवान के पास प्रव्रज्या, उपसंपदा पाई और कालांतर में शमथ और विपश्यना का गहरा अभ्यास कर वह अर्हंत अवस्था को प्राप्त हुआ।

४. दीघनखसुत्त

एक समय भगवान राजगह में गिज्झकूट पर्वत पर सूकरखत में विहार करते थे। दीघनख परिव्राजक ने वहां आकर उनसे कहा –"मैं इस वाद, दृष्टि को मानने वाला हूं – सभी (मत) मुझे अच्छे नहीं लगते।"

इस पर भगवान ने उसे बतलाया कि श्रमण-ब्राह्मण अपनी-अपनी पसंद के अनुसार इन दृष्टियों को मानते हैं –(१) 'हमें सभी मत अच्छे लगते हैं'; (२) 'हमें सभी मत अच्छे नहीं लगते'; और (३) 'हमें कोई-कोई मत अच्छे लगते हैं, कोई-कोई नहीं।' इनमें से पहली दृष्टि अ-सराग, अ-संयोग, अन्-उपादान के समीप होती है; दूसरी दृष्टि सराग, संयोग, उपादान के समीप; और तीसरी दृष्टि में दोनों का संमिश्रण रहता है। फिर उन्होंने बतलाया कि इन दृष्टियों को कैसे छोड़ा जाता है।

तदुपरांत उन्होंने यह भी बतलाया कि –

* चार महाभूतों से बनी इस काया की अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता को सम्यक प्रकार से देखने से इसके प्रति आसक्ति जाती रहती है।

* सुखद, दुःखद तथा अदुःखद-असुखद वेदनाओं को अनित्य, संस्कृत, प्रतीत्य-समुत्पन्न, क्षय-धर्मा, विराग-धर्मा, निरोध-धर्मा जानने से आर्य श्रावक इनसे निर्वेद को प्राप्त होता है, निर्वेद को प्राप्त हो विरक्त होता है, विराग को प्राप्त हो विमुक्त होता है, विमुक्त होने पर –'मैं विमुक्त हूं!' –यह ज्ञान जागता है, और वह प्रज्ञापूर्वक जानने लगता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।' इस प्रकार विमुक्त-चित्त भिक्षु न किसी के साथ संवाद करता है, न विवाद।

भगवान के भाषित को सुन कर वहां पर विद्यमान आयुष्मान सारिपुत्त का चित्त आस्रवों से अलग हो मुक्त हो गया, क्योंकि उन्हें लगा कि भगवान उन्हें

उन-उन धर्मों को छोड़ने के लिए कह रहे हैं। उधर दीघनख परिव्राजक को भी यह विरज, विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ –'जो कुछ उत्पत्ति स्वभाव वाला है, वह निरोध स्वभाव वाला भी है ही।'

५. मागण्डियसुत्त

एक समय भगवान कुरु (जनपद) के कम्मासधम्म नामक निगम में भारद्वाज-गोत्र ब्राह्मण की अग्निशाला में तृण के आसन पर विहरते थे। वहां मागण्डिय परिव्राजक ने उस आसन को 'भूनहु' (अवनतिकारक) गौतम की शय्या कहा।

इस पर भगवान ने उसे पहले इंद्रियों के संवर और फिर इन इंद्रियों के विषयों के समुदय, निरोध, आस्वाद, आदीनव (दोष), तथा निस्सरण (इनसे बाहर निकलने के उपाय) के बारे में बतलाया। फिर यह भी बतलाया कि पहले गृहस्थ जीवन में मैं भी पांच कामगुणों से युक्त था, परंतु गृह त्यागने के पश्चात मैं कामभोगों के समुदय, निरोध, आस्वाद, आदीनव, निस्सरण को यथार्थतः जान कर, इनकी जलन को दूर कर, शांतचित्त हो विहरने लगा हूं। दिव्य सुखों को भी मात करने वाली इस रति में रमते हुए मैं पूर्वकालीन कामभोगों से होने वाली रति की स्पृहा नहीं करता। यह ऐसे ही है जैसे कोई रोगी व्यक्ति औषध के सेवन से रोग-रहित हो जाने पर औषध-सेवन की स्पृहा करना छोड़ दे।

फिर भगवान ने यह उदान कहा –"आरोग्य परम लाभ है, निर्वाण परम सुख है। अमृत की ओर ले जाने वाले मार्गों में अष्टांगिक मार्ग मंगलकारी है।"

यह सुनकर मागण्डिय परिव्राजक को बहुत आश्चर्य हुआ और कहने लगा कि 'आरोग्य परम लाभ है, निर्वाण परम सुख है' – यह कथन तो हमारे आचार्य-प्राचार्यों के कथन से मेल खाता है। जब भगवान ने उसे इसका आशय समझाने के लिए कहा तो वह इसका सही आशय समझाने में असमर्थ रहा। इस पर भगवान ने कहा कि पूर्व के अर्हत सम्यक संबुद्धों ने इस गाथा को कहा था जो धीरे-धीरे अनाड़ियों में चली गई और वे इसका सही आशय भूल गए।

भगवान ने मागण्डिय से कहा कि तुम्हें आर्य-चक्षु नहीं होने से तुम्हारे लिए आरोग्य को जान लेना, निर्वाण को देख पाना संभव नहीं है। परंतु जब मागण्डिय ने भगवान में अपनी अत्यधिक श्रद्धा व्यक्त की तब उन्होंने उसे सत्पुरुषों का

सेवन करने के लिए कहा जिससे वह सद्धर्म को सुन, और तदनुसार आचरण कर, स्वयं ही जान ले, देख ले – 'यह रोग, गंड, शल्य है; यहां सारे रोग, गंड, शल्य निरुद्ध हो जाते हैं।'

कालांतर में आयुष्मान मागण्डिय ने भगवान के पास प्रव्रज्या, उपसंपदा पाई और उसके थोड़े ही समय पश्चात एकाकी, एकांतवासी, प्रमादरहित, उद्योगी और आत्म-संयमी हो, विहरते हुए उन्होंने इसी जन्म में अनुपम ब्रह्मचर्य-फल का साक्षात्कार कर लिया, और वह अर्हतों में से एक हुआ।

६. सन्दक सुत्त

एक समय जब भगवान कोसम्बी के घोसिताराम में विहार करते थे, तब आयुष्मान आनन्द भिक्षुओं को देवकतसोब्भ की गुफ़ा देखने के लिए ले गए। वहां सन्दक परिव्राजक ने परिव्राजकों की एक बड़ी परिषद के समक्ष आयुष्मान आनन्द को धार्मिक कथा कहने के लिए अनुरोध किया।

इस पर आयुष्मान आनन्द ने उन्हें बतलाया कि जाननहार, देखनहार सम्यक संबुद्ध भगवान ने चार अ-ब्रह्मचर्यवास कहे हैं, और चार आश्वासन न देने वाले ब्रह्मचर्यवास। इनका वास करने पर कोई सम्यक मार्ग, धर्म और कुशल को नहीं पा सकता। फिर उन्होंने इनमें से प्रत्येक की विस्तृत जानकारी दी।

तदनंतर सन्दक ने सम्यक मार्ग, धर्म और कुशल को प्राप्त कराने वाले ब्रह्मचर्यवास के बारे में पूछा।

इस पर आयुष्मान आनन्द ने बताया कि जब कोई तथागत संसार में उत्पन्न होता है और उसके द्वारा साक्षात्कार किए गए धर्म को सुन कर कोई गृहपति उसके प्रति श्रद्धावान हो आर्य शील, आर्य इंद्रिय-संवर, आर्य स्मृति-संप्रज्ञान का अभ्यासी हो, अपने चित्त से पांचों नीवरणों को दूर कर, प्रथम ध्यान प्राप्त कर विहरने लगे, तब वह श्रावक शास्ता के पास अपनी पूरी शक्ति लगाकर ब्रह्मचर्यवास करता हुआ सम्यक मार्ग, धर्म और कुशल को पा सकता है। ऐसे ही द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान तथा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरते हुए; और फिर चित्त के समाहित, परिशुद्ध, उपक्लेश-रहित, मृदु एवं अडोल होने पर इसे भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के लिए नवाने पर पूर्व-निवासों की स्मृति उभरने, अथवा कर्मानुसार प्राणियों की च्युति एवं उत्पाद, अथवा आस्रवों के क्षय का ज्ञान होने

पर भी शास्ता के पास अपनी पूरी शक्ति लगा कर ब्रह्मचर्यवास करता हुआ सम्यक मार्ग, धर्म और कुशल को पा सकता है।

तब सन्दक द्वारा यह पूछे जाने पर कि इस धर्म-विनय में कितने धर्मनायक हैं, आयुष्मान आनन्द ने उनकी संख्या पांच सौ से भी अधिक बतलाई। इससे सन्दक को बहुत आश्चर्य हुआ कि इतने अधिक धर्मनायक होने पर भी न अपने धर्म की बड़ाई करते हैं, न पर-धर्म की निंदा, बल्कि ठीक जगह पर धर्म उपदेशते हैं।

अंततः सन्दक परिव्राजक ने अपनी परिषद को भगवान के पास ब्रह्मचर्यवास करने के लिए प्रेरित किया।

७. महासकुलुदायिसुत्त

एक समय भगवान राजगह में वेळुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे। उस काल में मोर-निवाप परिव्राजकाराम में सकुलुदायी जैसे प्रसिद्ध परिव्राजक वास करते थे।

एक दिन भगवान बहुत सवेरे मोर-निवाप परिव्राजकाराम चले गए। वहां सकुलुदायी परिव्राजक ने उनसे कहा कि पिछले दिनों श्रमण-ब्राह्मण यह चर्चा करते पाए गए कि पूरण कस्सप, मक्खलि गोसाल आदि आचार्य अपने श्रावकों से न सत्कृत हैं, न पूजित। केवल श्रमण गौतम ही अपने श्रावकों से सत्कृत, पूजित हैं।

भगवान द्वारा यह पूछे जाने पर कि मुझ में ऐसे कौनसे धर्म हैं जिनके कारण मैं श्रावकों से सत्कृत, पूजित हूं, उदायी ने ये पांच धर्म बताए – (१) अल्पाहारी होना, (२) जैसे-तैसे चीवर से संतुष्ट रहना, (३) जैसे-तैसे पिंडपात से संतुष्ट रहना, (४) जैसे-तैसे शयनासन मे संतुष्ट रहना, और (५) एकांतवासी होना।

इस पर भगवान ने कहा कि इन धर्मों के कारण मैं श्रावकों से सत्कृत, पूजित नहीं हूं। जिन धर्मो के कारण मैं सत्कृत, पूजित हूं, वे हैं –

(१) उत्तम शील-स्कंध,

(२) सुंदर ज्ञान-दर्शन,

(३) उत्तम प्रज्ञा-स्कंध,

(४) चार आर्य सत्यों का व्याख्यान, और

(५) श्रावकों को ऐसा मार्ग बतलाना जिस पर आरूढ़ हो वे चारों स्मृति-प्रस्थानों, चारों सम्यक-प्रधानों, चारों ऋद्धिपादों, पांच इंद्रियों, पांच बलों, सात बोध्यंगों, आर्य अष्टांगिक मार्ग, आठ विमोक्षों, आठ अभिभू-आयतनों, दस कृत्स्न-आयतनों और चार ध्यानों की भावना करने लगते हैं। इस मार्ग पर आरूढ़ हो श्रावक जान लेते हैं कि चार महाभूतों से बना हुआ यह शरीर पूरी तरह अनित्यता से ग्रस्त है, यह विज्ञान उससे आबद्ध है। वे इस काया से अन्य काया का निर्माण करने में सक्षम हो जाते हैं, अनेक प्रकार के ऋद्धिविध अनुभव करते हैं, दिव्य श्रोत्र एवं परचित्तज्ञान के लाभी हो जाते हैं, पूर्व-निवासों और कर्मानुसार प्राणियों की च्युति एवं उत्पाद के जानकार हो जाते हैं, और आस्रवों के क्षय से चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगते हैं।

८. समणमुण्डिक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां पञ्चकङ्ग स्थपति ने उनसे कहा कि मुझे उग्गाहमान परिव्राजक ने बतलाया है कि काया से पाप-कर्म न करने वाला, बुरे वचन न बोलने वाला, दुष्ट संकल्प न करने वाला और दूषित आजीविका न कमाने वाला –इन चार अंगों से युक्त व्यक्ति कुशलसंपन्न, परम कुशल, उत्तमता को प्राप्त, अयोध्य (जिससे लड़ा न जा सके) श्रमण कहलाता है।

भगवान ने कहा कि ऐसा होने पर तो उत्तान सोने वाला अबोध छोटा बच्चा ही कुशलसंपन्न, परम कुशल उत्तमता को प्राप्त अयोध्य श्रमण होगा, क्योंकि उसके अंग अ-परिपक्व होने के कारण वह पापाचार में प्रवृत्त ही नहीं हो सकता।

उन्होंने कहा कि मैं दस धर्मों से युक्त व्यक्ति को कुशलसंपन्न, परम कुशल, उत्तमता को प्राप्त, अयोध्य श्रमण कहता हूं। ये धर्म हैं – (१) अशैक्ष्य (निर्वाणप्राप्त) की सम्यक दृष्टि, (२) अशैक्ष्य का सम्यक संकल्प, (३) अशैक्ष्य की सम्यक वाणी, (४) अशैक्ष्य का सम्यक कर्मांत, (५) अशैक्ष्य की सम्यक आजीविका, (६) अशैक्ष्य का सम्यक व्यायाम, (७) अशैक्ष्य की सम्यक स्मृति, (८) अशैक्ष्य की सम्यक समाधि, (९) अशैक्ष्य का सम्यक ज्ञान, और (१०) अशैक्ष्य की सम्यक विमुक्ति।

९. चूळसकुलुदायिसुत्त

एक समय जब भगवान राजगह में वेळुवन-कलन्दक निवापमें विहार करते थे, तब वह एक दिन परिव्राजकाराम में एक बड़ी परिषद के साथ वास करने वाले सकुलुदायी परिव्राजक के यहां चले गए।

वहां प्रारंभिक चर्चा के उपरांत भगवान ने उसे धर्म का बखान किया –"ऐसा होने पर यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है। ऐसा नहीं होने पर यह नहीं होता है, इसका निरोध होने से यह निरुद्ध हो जाता है।"

उदायी परिव्राजक को धर्म का यह वर्णन बहुत अच्छा लगा।

तत्पश्चात उसने भगवान से कहा –"भंते! हमारी परंपरा में यह कहा जाता है –'यह परम वर्ण है, यह परम वर्ण है।'"

भगवान द्वारा 'परम वर्ण' को स्पष्ट करने के लिए कहे जाने पर उदायी ने कहा –"जैसे शुभ्र, उत्तम जाति की अठकोणी, पालिश की हुई वैदूर्य-मणि पीले दोशाले में रखी हुई भासित होती है, मृत्यु के उपरांत आत्मा भी इसी प्रकार के वर्ण वाली होकर निरोग होती है।"

फिर भगवान द्वारा पूछे जाने पर उदायी ने स्वीकार किया कि इस वैदूर्य-मणि के वर्ण से अधिक चमकीला तो रात्रि के अंधकार में चमकने वाला जुगनू कीड़ा ही होता है। इस पर भगवान ने उसे कहा कि जो वर्ण जुगनू कीड़े से भी गया-बीता है, तुम इसी को 'परम वर्ण' बतलाकर उसी की प्रशंसा कर रहे हो?

तदुपरांत उदायी ने अपनी परंपरा की अन्य बात बताई –"एकांत सुख वाला लोक है, उसका साक्षात्कार करने के लिए तर्कसंगत मार्ग भी है।" परंतु इस बारे में भगवान द्वारा प्रश्न किए जाने पर वह इसे स्पष्ट नहीं कर पाया।

इस पर भगवान ने स्वयं इस पर प्रकाश डालते हुए उसे बतलाया कि एकांत सुख वाले लोक का साक्षात्कार करने के लिए जो प्रतिपदा है उसमें होता है – प्रथम ध्यान से लेकर चतुर्थ ध्यान को, क्रमशः, प्राप्त कर इनमें विहरना; और चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरते समय एकांत सुख वाले लोक में उत्पन्न हुए देवताओं के साथ ठहरना, संलाप करना और उनका साक्षात्कार करना।

फिर भगवान ने कहा कि केवल इसी के लिए भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य का पालन

नहीं करते। इससे उत्तम दूसरे ही धर्म हैं जिनका साक्षात्कार करने के लिए वे मेरे पास ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि इसके अंतर्गत पूर्व-निवासों की अनुस्मृति, प्राणियों की कर्मानुसार च्युति और उत्पाद और आस्रवों के क्षय का ज्ञान हो जाता है। आस्रवों के क्षय से भिक्षु को यह बोध होता है –'मैं विमुक्त हो गया, मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।'

यह सुनकर, आश्चर्य-चकित हो, सकुलुदायी परिव्राजक ने भगवान, और धर्म तथा संघ की भी, शरण जाने का अपना मंतव्य प्रकट किया, परंतु उसकी परिषद ने उसको भगवान के पास ब्रह्मचर्य पालन करने में विघ्न डाला।

१०. वेखनससुत्त

एक समय जब भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे, तब वेखनस परिव्राजक ने उनके पास आकर यह उदान कहा – "यह परम वर्ण है! यह परम वर्ण है!!"

भगवान द्वारा 'परम वर्ण' को स्पष्ट करने के लिये कहे जाने पर पारिव्राजक ने कहा –"जैसे शुभ्र, उत्तम जाति की अठकोणी, पालिश की हुई वैदूर्य-मणि पीले दोशाले में रखी हुई भासित होती है, मृत्यु के उपरांत आत्मा भी इसी प्रकार के वर्ण वाली होकर निरोग होती है।"

तब भगवान द्वारा पूछे जाने पर परिव्राजक ने स्वीकार किया कि इस वैदूर्य-मणि के वर्ण से अधिक चमकीला तो रात्रि के अंधकार में चमकने वाला जुगनू कीड़ा ही होता है। इस पर भगवान ने उसे कहा कि जो वर्ण जुगनू कीड़े से भी गया-बीता है, तुम उसी को 'परम वर्ण' बतलाकर उसी की प्रशंसा कर रहे हो।

तदनंतर भगवान ने उसे यह भी कहा कि कामों से काम-सुख, और काम-सुख से कामाग्र-सुख श्रेष्ठ कहलाता है, परंतु दूसरी दृष्टि और अन्य प्रकार की रुचि रखने के कारण तुम्हारे लिये इसे समझ पाना दुष्कर है। इसे तो वही भिक्षु जान सकते हैं जो अर्हंत, क्षीणास्रव, ब्रह्मचर्यवास पूरा किये हुए, कृतकरणीय,

भारमुक्त, सदर्थ-प्राप्त, क्षीण-भवसंयोजन और सम्यक प्रकार से विमुक्त हो निर्वाण प्राप्त किए हुए हों।

भगवान ने यह भी कहा कि यदि कोई धोखाधड़ी, ठगी न करनेवाला, सरल प्रकृति का विज्ञ पुरुष मेरे पास आए और मैं उसे अनुशासित कर धर्म सिखाऊं, और वह मेरे अनुशासन में रहते हुए इसका अभ्यास करे, तो वह शीघ्र ही, स्वयं ही जान लेगा, देख लेगा कि कैसे सम्यक प्रकार से अविद्या-रूपी बंधन से मुक्ति होती है।

४. राजवग्ग

१. घटिकारसुत्त

एक समय एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ कोसल जनपद में चारिका करते हुए भगवान एक स्थान पर मुस्करा उठे। जब आयुष्मान आनन्द ने इसका कारण जानना चाहा, तब उन्होंने बतलाया कि पूर्वकाल में इस प्रदेश में वेगलिङ्ग नाम का ग्रामनिगम था जो अत्यंत समृद्ध और घनी आबादी वाला था। इसके समीप सम्यक संबुद्ध भगवान कस्सप का आराम था, जहां वह भिक्षु-संघ को उपदेश दिया करते थे।

तदनंतर उन्होंने बतलाया कि इसी ग्रामनिगम में घटिकार नाम का कुम्हार रहता था, जो भगवान कस्सप का उपस्थाक (प्रधान सेवक) था। जोतिपाल नाम का माणव उसका प्रिय मित्र था। घटिकार के बार-बार आग्रह करने पर जोतिपाल भगवान के दर्शन करने चला गया, जहां उन्होंने उसको धार्मिक कथा कहकर समुत्तेजित, संप्रहर्षित किया। बाद में फिर भगवान के पास जाकर जोतिपाल ने उनसे प्रव्रज्या, उपसंपदा ग्रहण की। इसके थोड़े ही दिन बाद भगवान वहां से वाराणसी जाकर इसिपतन मिगदाय में विहार करने लगे।

कासि-नरेश किकी ने भगवान से अनुरोध किया कि वह वाराणसी में वर्षावास करना स्वीकार करें, परंतु उन्होंने यह कहते हुए कि मेरा वर्षावास हो चुका है, उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। इससे उसे दुःख, दौर्मनस्य हुआ।

तदनंतर कासि-नरेश ने भगवान से पूछा कि क्या मुझसे अच्छा आपका कोई उपस्थाक है ? इस पर उन्होंने कहा कि घटिकार कुम्हार मेरा अग्र-उपस्थाक है। जैसे तुम्हें मेरे द्वारा वर्षावास स्वीकार न करने से दुःख, दौर्मनस्य हुआ है, वैसा घटिकार को न होता, न होगा। घटिकार बुद्ध, धर्म और संघ में अत्यंत श्रद्धा-भाव रखता है। वह आर्य शीलों से युक्त है। वह चारों आर्य सत्यों में संशय-रहित है। वह अंधे माता-पिता का पोषण करता है। वह पांच अवरभागीय संयोजनों के क्षय से औपपातिक, अनागामी हो, निर्वाण प्राप्त करने वाला है।

अंत में भगवान ने कहा कि उस समय का जोतिपाल माणव मैं ही था।

२. रट्ठपालसुत्त

एक समय भगवान कुरु (जनपद) में एक बड़े भिक्षुसंघ के साथ चारिका करते हुए थुल्लकोट्ठिक नाम के निगम में पहुँचे। 'अर्हतों का दर्शन करना अच्छा होता है' –यह सोच कर निगम के ब्राह्मण-गृहपति उनके पास चले आए। वहां भगवान ने धार्मिक कथा कह उनको समुत्तेजित-संप्रहर्षित किया।

उस परिषद में वहां के अग्र-कुलिक का पुत्र रट्ठपाल भी बैठा था। वह भगवान की वाणी से इतना प्रभावित हुआ कि उसने घर से बेघर हो प्रव्रजित होने की ठान ली। जब उसने भगवान के पास प्रव्रज्या, उपसंपदा पाने के लिए याचना की तो उन्होंने इसके लिए उसके माता-पिता की पूर्वानुमति का होना आवश्यक बतलाया। माता-पिता ने इस शर्त पर अनुमति दी कि प्रव्रजित होने के उपरांत वह उनको दर्शन देगा। तत्पश्चात भगवान से प्रव्रज्या, उपसंपदा पा कर आत्म-संयमी हो विहरते आयुष्मान रट्ठपाल ने जल्दी ही अर्हत अवस्था का साक्षात्कार कर लिया।

तदनंतर भगवान की अनुमति प्राप्त कर आयुष्मान रट्ठपाल माता-पिता को दर्शन देने के लिए अपने पिता के घर गए। वहां पर उनके पिता ने उन्हें अपार धन का लालच देकर गृहस्थ बन, भोगों को भोगने और पुण्य करने के लिए कहा। आयुष्मान रट्ठपाल ने वह धन गंगा नदी में बहा देने का सुझाव दिया। उन्होंने जाते-जाते यह भी कहा कि मुझ मृग के लिए जो जाल फैलाया गया था, मैं उसमें नहीं फँसा।

वहां से आयुष्मान रट्ठपाल राजा कोरव्य के मिगचीर उद्यान में चले गए। राजा कोरव्य भी वहां आ पहुंचा और उनसे घर से बेघर हो, प्रव्रजित होने का कारण पूछा। इस पर उन्होंने कहा कि जाननहार, देखनहार भगवान बुद्ध ने चार धर्म-उद्देश कहे हैं जिनको जान कर, देख कर, सुन कर मैंने ऐसा किया है। ये धर्म-उद्देश हैं –

(१) यह नश्वर संसार ले जाया जा रहा है;

(२) यह लोक त्राण-रहित, आश्वासन-रहित है;

(३) लोक अपना नहीं है, सब कुछ छोड़ कर जाना होता है; और

(४) लोक कमियों वाला, तृप्ति-रहित और तृष्णा का दास है।

आयुष्मान रट्ठपाल ने इन धर्म-उद्देशों का आशय भी विस्तार से समझाया, और अंत में कहा कि कामभोगों के दुष्परिणाम को देख कर मैं प्रव्रजित हुआ हूं; दोष-रहित होने से श्रामण्य ही श्रेष्ठ है।

३. मघदेवसुत्त

एक समय भगवान मिथिला में मघदेव-आम्रवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने आयुष्मान आनन्द को बतलाया कि पूर्वकाल में इसी मिथिला में मघदेव नाम का एक धार्मिक राजा हुआ था। अपने सिर में पके केश देखकर उसने सोचा कि मैंने मानुष-काम भोग लिया है, अब दिव्य भोगों के खोजने का समय है। अतः वह दाढ़ी-मूंछ मुंड़वा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया। जाते समय उसने अपने श्रेष्ठ पुत्र कुमार को भी समय आने पर ऐसा ही करने के लिए कहा, जिससे यह कल्याणकारी मार्ग अनुप्रवर्तित रहे। उसने उसे इस बात के लिए भी सचेत किया कि कहीं वह इस उत्तम परंपरा का समुच्छेदक बन इसका अंतिम पुरुष न हो जाए।

कालांतर में प्रव्रजित हुआ राजा मघदेव चार ब्रह्मविहारों की भावना कर शरीर छोड़ने पर ब्रह्मलोक को प्राप्त हुआ।

राजा मघदेव के पुत्र, पौत्रादि इसी मघदेव आम्रवन में इसी प्रकार प्रव्रजित हुए। इस परंपरा का निर्वाह करने वाला अंतिम राजा निमि हुआ। इस राजा के पुत्र कळारजनक ने घर-बार नहीं छोड़ा, जिससे वह इस कल्याणकारी मार्ग का समुच्छेदक और इस परंपरा का अंतिम पुरुष हुआ।

तत्पश्चात भगवान ने प्रकट किया कि उस समय का राजा मघदेव मैं ही था। उस समय का कल्याणकारी मार्ग न तो निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संबोधि, न निर्वाण के लिए था; यह केवल ब्रह्मलोक पाने तक था। परंतु अब जो आठ अंगों वाला मार्ग मेरे द्वारा प्रज्ञप्त किया गया है वह एकांत निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि तथा निर्वाण के लिए है।

भगवान ने आयुष्मान आनन्द को सचेत किया कि कहीं तुम मेरे द्वारा प्रवर्तित इस कल्याणकारी मार्ग के अंतिम पुरुष मत हो जाना।

४. मधुरसुत्त

एक समय आयुष्मान महाकच्चान मधुरा में गुन्दावन में विहार करते थे। उस काल में माधुर राजा अवन्तिपुत्त ने वहां आकर उनसे पूछा – "भो कच्चान! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं – 'ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण हीन हैं; ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण हैं, दूसरे वर्ण कृष्ण हैं; ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अ-ब्राह्मण नहीं; ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, मुख से उत्पन्न, ब्रह्मज, ब्रह्म-निर्मित, ब्रह्मा के उत्तराधिकारी हैं।' इस बारे में आपको क्या कहना है?"

इस पर आयुष्मान महाकच्चान ने अनेक उदाहरण प्रस्तुत कर यह सिद्ध कर दिया कि ब्राह्मण-समेत किसी भी वर्ण का व्यक्ति दुष्कर्म करने पर अपायगति और सत्कर्म करने पर सद्गति का भागी हो सकता है। वस्तुतः चारों वर्ण समान हैं, और लोक में यह प्रलाप ही है कि 'ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण हीन हैं; इत्यादि।'

तदनंतर अत्यंत भावविभोर हो माधुर राजा बुद्ध की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

५. बोधिराजकुमारसुत्त

एक समय भगवान भग्ग (जनपद) में सुसुमारगिरि के भेसकळावन मृगदाय में विहार करते थे। उस काल में बोधि राजकुमार ने उन्हें नव-निर्मित कोकनद नाम के प्रासाद पर आमंत्रित कर भिक्षुसंघ सहित भोजन करवाने के पश्चात कहा – "भंते! मुझे ऐसा होता है कि सुख से सुख नहीं प्राप्त करना चाहिये, बल्कि दुःख से सुख प्राप्त करना चाहिये।"

इस पर भगवान ने कहा –"बुद्ध बनने से पहले मुझे भी ऐसा ही होता था। तब मैं तरुण अवस्था में ही घरबार छोड़कर उत्तम शांतिपद की तलाश में निकल पड़ा। आचार्य आळार कालाम ने मुझे आकिंचन्यायतन तक और आचार्य उद्दक रामपुत्त ने इससे आगे नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तक विद्या सिखाई और अपने बराबर के पदों पर स्थापित किया।परंतु चूंकि इनके द्वारा सिखाए गए धर्म न तो निर्वेद, न विराग, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न संबोध और न निर्वाण के लिए थे, अतः मैं इन्हें अपर्याप्त जानकर फिर उत्तम शांतिपद की खोज में निकल गया।

"वहां से चारिका करते हुए मैं मगध में उरुवेला सेनानिगम में पहुँचा जो अत्यंत रमणीय और ध्यान के लिए अत्यंत उपयुक्त स्थान था। वहां मैंने दांतों पर दांत रख कर, जिह्वा द्वारा तालु को दबा कर, चित्त का चित्त से निग्रह किया। इससे मेरी कांख से पसीना छूटता था। फिर मैंने श्वासरहित ध्यान करना शुरू किया। इससे शरीर पर अनेक प्रकार के उपद्रव प्रकट होने लगे और मैं मृत-समान हो गया। परंतु हर अवस्था में मेरा वीर्य न दबने वाला था, मेरी स्मृति अमुषित थी, मेरी काया तत्पर थी, भले साधना से पीड़ित होने के कारण अशांत हो जाती थी।

"तब एक बार मैंने आहार को बिल्कुल छोड़ देने की सोची, परंतु बाद में थोड़ा-थोड़ा आहार लेना आरंभ कर दिया। उस समय मेरा शरीर दुर्बलता की चरम सीमा पर पहुँच गया था। मेरी पीठ के कांटे और पेट की खाल आपस में सट गए थे। उस समय मुझे लगता था कि जो कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण तप करके दुःखपूर्ण, तीव्र, कठोर, कटु वेदना अनुभव करते रहे थे, कर रहे हैं अथवा करेंगे, वे इससे अधिक नहीं हो सकती। परंतु इस दुष्कर कारिका से भी मुझे उत्तर-मनुष्यधर्म अलमार्यज्ञान-दर्शनविशेष की उपलब्धि नहीं हुई। तब मैंने सोचा कि क्या बोधि प्राप्त करने का कोई अन्य उपाय भी हो सकता है?

"तब मैंने स्थूल आहार ग्रहण कर, सबल हो, प्रथम ध्यान में विहरने का उपक्रम किया। फिर द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरने लगा।

"फिर एकाग्र हुए, नितांत शुद्ध, उपक्लेश-रहित, मृदु, अडोल चित्त को विभिन्न उद्देश्यों के लिए नवाने पर मुझे पूर्वनिवासों की स्मृति उभर आई, कर्मानुसार प्राणियों की च्युति एवं उत्पत्ति का ज्ञान होने लगा और आस्रवों के क्षय का ज्ञान होने से स्पष्ट हो गया कि जन्म समाप्त हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे करने को कुछ रहा नहीं। इस प्रकार प्रमादरहित, उद्योगशील तथा आत्मसंयमी होकर विहार करते हुए मेरी अविद्या नष्ट हुई, विद्या उत्पन्न हुई, अंधकार नष्ट हुआ, प्रकाश उत्पन्न हुआ।

"तब सहम्पति ब्रह्मा के सुझाव पर प्राप्त विद्या को मैंने लोगों में बांटने का निर्णय लिया। अपने आचार्यों –आळार कालाम तथा उद्दक रामपुत्त –का देहांत हो चुकने के कारण मैं उन्हें यह विद्या नहीं सिखला पाया। तब मैंने अपने पुराने साथियों –पंचवर्गीय भिक्षुओं –को धर्मोपदेश दिया, जिसके फलस्वरूप वे भी

उत्तम ब्रह्मचर्य-फल को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगे।"

बोधि राजकुमार के एक प्रश्न के उत्तर में भगवान ने उसे पांच आध्यात्मिक प्रयास के अंगों की जानकारी भी दी। ये अंग हैं –

(१) तथागत की बोधि के प्रति श्रद्धा का भाव,

(२) नीरोगता एवं फुर्तीलापन,

(३) अशठता,

(४) दृढ़ पराक्रम, तथा

(५) बींधने वाली आर्य प्रज्ञा।

फिर उन्होंने कहा कि इन अंगों से युक्त भिक्षु तथागत को विनायक पाकर अनुत्तर ब्रह्मचर्य-फल को इसी जन्म में सात वर्षों में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार कर सकता है। फिर उन्होंने सात वर्ष की अवधि को शनैः शनैः कम करते हुए यहां तक कह दिया कि इन अंगों से युक्त भिक्षु सायंकाल को अनुशासित किया जाने पर प्रातःकाल और प्रातःकाल अनुशासित किया जाने पर सायंकाल (विशेष) निर्वाणपद प्राप्त कर सकता है।

६. अङ्गुलिमालसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस काल में राजा पसेनदि के कोसल राज्य में अङ्गुलिमाल नाम का एक निर्दयी डाकू रहता था। वह मनुष्यों को जान से मार कर उनकी अंगुलियों की माला धारण करता था। उसके आतंक से ग्राम अ-ग्राम, निगम अ-निगम और जनपद अ-जनपद हो गए थे।

एक बार भगवान उसी रास्ते से जा रहे थे जहां अङ्गुलिमाल रहता था। इस पर अङ्गुलिमाल अपने हथियार ले उनके पीछे हो लिया, परंतु वह बड़े वेग से दौड़कर भी उनको पकड़ नहीं पाया। तब खड़ा होकर वह भगवान से बोला –"ठहर जा, श्रमण!"

भगवान ने कहा – "मैं तो ठहरा हुआ हूं, अङ्गुलिमाल! तू चल रहा है।"

अङ्गुलिमाल को यह समझ में नहीं आया कि यह श्रमण स्वयं चलते हुए को

ठहरा हुआ और मुझ ठहरे हुए को चलायमान कैसे बता रहा है। अतः उसने इस बारे में उनसे पूछा।

भगवान ने कहा –"अङ्गुलिमाल! सारे प्राणियों के प्रति दंड छोड़ देने से मैं सदा स्थिर हूं, और तू प्राणियों में अ-संयमी होने से अ-स्थिर है।"

भगवान के धार्मिक वचन सुनकर अङ्गुलिमाल ने अपने हथियार फेंक दिये, और उनसे वहीं पर प्रव्रज्या मांगी। भगवान ने उसे कहा –"आओ, भिक्षु!" यही उसकी प्रव्रज्या हुई।

तब भगवान आयुष्मान अङ्गुलिमाल को अनुगामी-श्रमण बना, चारिका करते हुए, सावत्थी ले गए। वहां पर उन्हें भिक्षु के रूप में ध्यान करते हुए देखकर राजा पसेनदि को बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिसे हम दंड से भी, शस्त्र से भी दान्त नहीं बना सके, उसे भगवान ने बिना दण्ड, बिना शस्त्र दान्त बना दिया है।

कालांतर में आयुष्मान अङ्गुलिमाल अर्हंत अवस्था को प्राप्त हुए। विमुक्ति का सुख अनुभव करते हुए उन्होंने यह उदान कहा –

"जो पहले प्रमाद करके पीछे प्रमाद नहीं करता, वह मेघ से मुक्त हुए चंद्रमा के समान इहलोक को प्रकाशित करता है।

"कोई दंड से दमन करते हैं, कोई अंकुश और कोड़े से। तथागत द्वारा मैं बिना दंड, बिना शस्त्र ही दमित किया गया हूं।

"हिंसक होने से पहले मेरा नाम अहिंसक था। आज मैं यथार्थ नाम वाला हो गया हूं, क्योंकि मैं किसी की हिंसा नहीं करता।

"मैंने तीनों विद्याओं को पा लिया है, बुद्ध का शासन कर लिया है।"

७. पियजातिक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस काल में एक गृहपति का प्रिय, एकलौता पुत्र मर गया। इससे उसे न तो कोई काम अच्छा लगता, न भोजन, और वह श्मशान में जाकर विलाप करता रहता।

वह भगवान के पास गया, तो उन्होंने कहा कि प्रियजातिक से उत्पन्न होते ही

हैं – शोक , विलाप, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास (परेशानी)। उसे भगवान का यह कथन अच्छा नहीं लगा और वह वहां से चला गया।

उस समय थोड़ी ही दूर पर बहुत से जुआरी जुआ खेल रहे थे। गृहपति ने उन्हें यह सारी बात बतलाई, तो उन्होंने कहा कि प्रियजातिक से उत्पन्न होते हैं – आनंद, सौमनस्य। उसे उनका कथन अच्छा लगा – अपने चिंतन के अनुरूप।

यह चर्चा, क्रमशः, राजा के रनिवास में भी पहुँच गयी। वहां कोसल-नरेश पसेनदि ने रानी मल्लिका को भगवान के कहे को अनादर के भाव से कहा। तब रानी ने नाळिजङ्घ नाम के ब्राह्मण को भगवान के पास उनके कथन की पुष्टि करवाने के लिये भेजा। भगवान ने अनेक उदाहरण देकर अपने कथन की पुष्टि की।

तब रानी ने राजा को एक-एक करके पूछा कि क्या उन्हें कुमारी वजिरी, क्षत्रिया वासभा, सेनापति विटटूभ और वह स्वयं प्रिय हैं। राजा ने इन सबका प्रिय होना बतलाया। फिर रानी ने पूछ लिया कि यदि इन पर कोई संकट आ जाये, अथवा अन्यथात्व हो, तो क्या आपको शोक , विलाप, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास होंगे या नहीं? राजा ने कहा कि इससे तो मेरे जीवन का भी अन्यथात्व हो सकता है, शोकादि उत्पन्न होने का तो कहना ही क्या है। फिर रानी ने कहा – "महाराज! इसीलिये जाननहार, देखनहार, अर्हंत, सम्यक संबुद्ध भगवान ने कहा था कि प्रियजातिक से उत्पन्न होते ही हैं – शोक , विलाप, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास।"

तब राजा ने कहा –"आश्चर्य! मल्लिके !! आश्चर्य! मल्लिके !! मुझे लगता है भगवान प्रज्ञा से खूब बींध-बींध कर देखते हैं।" फिर उसने जिधर भगवान थे, उधर हाथ जोड़कर तीन बार यह उदान कहा –

"नमस्कार है उन भगवान, अर्हंत, सम्यक संबुद्ध को!"

८. बाहितिक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस काल में एक बार कोसल के राजा पसेनदि ने अचिरवती नदी के तीर पर आयुष्मान आनन्द से कथा-संलाप करते हुए पूछा कि क्या भगवान

श्रमणों, ब्राह्मणों तथा विज्ञों से निंदित कायिक, वाचिक अथवा मानसिक आचरण कर सकते हैं?

आयुष्मान आनन्द ने कहा – "नहीं, महाराज।"

तदनंतर राजा पसेनदि के अन्य प्रश्नों के उत्तर में आयुष्मान आनन्द ने बतलाया –

* अकुशल आचरण स-दोष होता है।

* स-दोष आचरण हिंसा-युक्त होता है।

* हिंसा-युक्त आचरण दुःख-परिणामी होता है।

* दुःख-परिणामी आचरण वह होता है जो अपनी पीड़ा, पर-पीड़ा, दोनों की पीड़ा के लिये होता है।

फिर यह भी बतलाया –

* कुशल आचरण अ-दोष होता है।

* अ-दोष आचरण हिंसा-रहित होता है।

* हिंसा-रहित आचरण सुख-परिणामी होता है।

* सुख-परिणामी आचरण वह होता है जो न अपनी पीड़ा, न पर-पीड़ा, न दोनों की पीड़ा के लिये होता है।

उन्होंने यह भी कहा कि भगवान सभी अकुशल धर्मों से रहित और सभी कुशल धर्मों से युक्त हैं।

आयुष्मान आनन्द के कथा-संलाप से अत्यंत प्रसन्न हो कर राजा पसेनदि ने उन्हें एक सोलह हाथ लंबा, आठ हाथ चौड़ा बाहितिक (वस्त्र-विशेष) भेंट किया, जो उन्होंने बाद में भगवान को समर्पित कर दिया।

९. धम्मचेतियसुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में मेदाळुप नामक निगम में विहार करते थे। कोसल के राजा पसेनदि ने वहां जाकर उनसे कहा कि भगवान में मुझे धर्म-दर्शन होता है – भगवान सम्यक संबुद्ध हैं, उनका धर्म सु-आख्यात है, संघ सुमार्ग पर आरूढ़ है। अपने इस कथन की पुष्टि में उसने कहा –

* कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण कुछ समय तक ही ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और फिर पांच कामगुणों के सेवन में लग जाते हैं। परंतु यहां भिक्षु जीवनभर परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।

* बाहर विवाद ही विवाद चलते रहते हैं, परंतु यहां भिक्षु विवाद-रहित हो, दूध-जल के मिश्रण के समान, एकजुट होकर विहरते हैं।

* कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण कृश, दुर्वर्ण, रोगी दिखलाई देते हैं, पर यहां भिक्षु हृष्ट-पुष्ट, उदग्र (आनंदित) एवं प्रसन्नेन्द्रिय दिखलाई देते हैं।

* बाहर की परिषद में काम के समय लोग बीच-बीच में अपनी बात डालते रहते हैं, पर यहां परिषद ऐसी विनय-संपन्न होती है कि भगवान के धर्मोपदेश करते हुए श्रावकों के थूकने, खांसने तक का भी शब्द सुनाई नहीं देता।

* कई शास्त्रार्थ करने वाले भगवान के साथ वाद रोपने की तैयारी करते हैं, परंतु उनके सामने आने पर उनकी धार्मिक कथा से प्रेरित हो, वाद रोपना भूल, उल्टे उन्हीं के श्रावक बन, उनसे प्रव्रज्या की मांग करने लगते हैं।

* मैं जिनको आजीविका देता हूँ, यश लाता हूं, वे भी मेरा उतना सम्मान नहीं करते, जितना भगवान का करते हैं। ये भगवान के शासन में अवश्य कोई विशेष बात देखते होंगे।

जब राजा पसेनदि धर्म-चैत्यों का बखान कर चला गया, तब भगवान ने भिक्षुओं को कहा –"भिक्षुओ! धर्म-चैत्यों को सीखो, धर्म-चैत्यों को पूरा करो, धर्म-चैत्यों को धारण करो। धर्म-चैत्य सार्थक एवं ब्रह्मचर्य के मूल हैं।"

१०. कण्णकत्थलसुत्त

एक समय भगवान उरुञ्ञा में कण्णकत्थलमिगदाय में विहार करते थे। उस समय एक बार कोसल-नरेश पसेनदि ने वहां आकर उनसे सर्वज्ञता, चारों वर्णों की शुद्धि, देवों तथा ब्रह्मा के बारे में पूछा। भगवान ने उसके प्रश्नों का यथोचित उत्तर दिया।

लौटते समय कोसल-नरेश ने कहा –"भंते! जो-जो हमने भगवान से पूछा, वही-वही उन्होंने बतलाया। वह हमको रुचता है, अच्छा लगता है, उससे हम संतुष्ट हैं।"

---

५. ब्राह्मणवग्ग

१. ब्रह्मायुसुत्त

एक समय भगवान पांच सौ भिक्षुओं के महा-भिक्षुसंघ के साथ विदेह (जनपद) में चारिका कर रहे थे। उस समय मिथिला-निवासी १२०-वर्षीय ब्रह्मायु नाम के महाविद्वान ब्राह्मण को यह जानने की इच्छा हुई कि भगवान के बारे में जो यह ख्याति फैल रही है कि वह अरहंत, सम्यक संबुद्ध, विद्याचरणसंपन्न, अच्छी गति वाले, लोकों के जानकार, सर्वश्रेष्ठ, लोगों को राह पर लाने वाले सारथि, देवों और मनुष्यों के शास्ता, बुद्ध भगवान हैं, इत्यादि – यह कहां तक सत्य है।

इस कार्य के लिये ब्रह्मायु ने उत्तर नाम के अपने शिष्य को भेजा। शिष्य द्वारा यह पूछे जाने पर कि मुझे यह कैसे मालूम होगा कि भगवान की ख्याति सही है अथवा नहीं, उसने बतलाया कि मंत्रों के अनुसार महापुरुषों के बत्तीस शरीर लक्षण होते हैं। यदि वे घर में रहते हैं तो चक्रवर्ती राजा बनते हैं और घर त्याग दें तो सम्यक संबुद्ध होते हैं।

तदनंतर उत्तर ने भगवान के पास जाकर उनके शरीर में बत्तीसों महापुरुष-लक्षणों को खोज लिया और छः माह तक छाया के समान उनका पीछा करते हुए उनकी चाल-ढाल को भी देखा। तब पूर्णतया संतुष्ट होकर उसने अपने आचार्य से भगवान की ख्याति सही होने के बारे में निवेदन कर दिया।

कालांतर में जब चारिका करते हुए भगवान मिथिला पहुँचे, तब ब्रह्मायु स्वयं दर्शनार्थ उनके पास चला गया और उसने भी उनके शरीर पर बत्तीसों महापुरुष-लक्षणों को जान लिया। भगवान ने भी उसे इस बारे में अपना संशय दूर करने के लिये कहा। उन्होंने यह भी कहा कि 'मुझे अभिज्ञेय अभिज्ञात हो गया है, मैंने भावनीय को भावित कर लिया है और प्रहातव्य को प्रहीण कर दिया है, इसीलिए मैं बुद्ध हूं'।

तदनंतर ब्रह्मायु की जिज्ञासा शांत करने के लिये भगवान ने उसे 'ब्राह्मण', 'वेदगू', 'त्रैविद्य', 'श्रोत्रिय', 'अर्हत', 'केवली', 'मुनि' तथा 'बुद्ध' – इन शब्दों का सही आशय भी समझाया। यह सुनते ही ब्रह्मायु भगवान के पांव चूमने और

सहलाने लगा और इस प्रकार उनके प्रति अत्यंत विनम्रता का भाव प्रदर्शित करने में लग गया।

तब भगवान ने उसे रोक कर उसको आनुपूर्वी कथा कही जैसे कि दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, भोगों के दुष्परिणाम, अपकार, मलीनता, और गृह त्यागने के माहात्म्य को प्रकाशित किया। जब उन्होंने ब्रह्मायु को उपयुक्त-चित्त, मृदु-चित्त, आवरणरहित-चित्त, उद्गत-चित्त (प्रसन्न-चित्त) जान लिया तब उसे बुद्धों का स्वयं जाना हुआ धर्मोपदेश – दुःख, समुदय, निरोध, मार्ग – प्रकाशित किया। तत्पश्चात जैसे धवल, निर्मल वस्त्र रंग को अच्छी तरह पकड़ लेता है, वैसे ही ब्रह्मायु को उसी आसन पर बैठे-बैठे विरज, विमल, धर्मचक्षु – 'जो कुछ उत्पन्न होने वाला (समुदयधर्मा) है, वह सब कुछ नाशवान (निरोधधर्मा) है' – उत्पन्न हुआ।

इस पर आश्चर्यचकित, एवं भावविभोर हो, ब्रह्मायु भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

इसके कुछ ही दिन बाद ब्रह्मायु का देहांत हो गया। भिक्षुओं द्वारा उसकी गति के बारे में पूछे जाने पर भगवान ने बतलाया कि ब्रह्मायु पांच अवरभागीय संयोजनों के क्षय से औपपातिक (देवता) हो, वहीं निर्वाण प्राप्त करने वाला है, उस लोक से लौट कर आने वाला नहीं है।

२. सेलसुत्त

एक समय भगवान साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ अङ्गुत्तराप जनपद में चारिका करते हुए आपण नाम के निगम में पहुँचे। वहां केणिय जटिल उनसे मिलने के लिये आया, और उनके धर्मोपदेश से समुत्तेजित, संप्रहर्षित हो उसने उन्हें भिक्षु-संघ सहित अगले दिन अपने यहां भोजन करने के लिये आमंत्रित किया।

जब अपने आश्रम पर पहुँच कर केणिय जटिल व्यवस्था में जुट गया, तब तीन सौ विद्यार्थियों को वेद पढ़ाने वाले सेल नामक ब्राह्मण को भी उससे यह पता चल गया कि अगले दिन भिक्षु-संघ सहित 'बुद्ध' वहां आ रहे हैं। यह सोचकर कि 'बुद्ध' – ऐसा घोष भी संसार में दुर्लभ है, और सम्यक संबुद्ध में महापुरुषों के

बत्तीस शरीर-लक्षण होते हैं, वह अपने तीन सौ माणवकों के साथ भगवान के पास मिलने के लिये चला गया।

वहां पहुँच कर सेल ने भगवान के शरीर पर बत्तीसों महापुरुष-लक्षण देख लिये, और अपना यह संशय भी दूर किया कि वह सचमुच सम्यक संबुद्ध हैं। तदुपरांत उसने अपनी परिषद के साथ भगवान के पास प्रव्रज्या एवं उपसंपदा पाई। कालांतर में वह और उसकी परिषद अर्हंत अवस्था को प्राप्त हुए।

३. अस्सलायनसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय अस्सलायन ब्राह्मण ने उनके पास जाकर कहा –"भो गोतम! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं –'ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण हीन हैं। ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण है, दूसरे वर्ण कृष्ण हैं। ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अ-ब्राह्मण नहीं। ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, मुख से उत्पन्न, ब्रह्मज, ब्रह्म-निर्मित, ब्रह्मा के दायाद हैं।' इस विषय में आपका क्या कहना है?"

इस पर भगवान ने अस्सलायन से ही एक-एक कर कई प्रश्न पूछे जिनका उत्तर देते हुए उसने स्वीकार किया कि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र में से कोई भी प्राणि-हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, चुगलखोर, कटुभाषी, बकवादी, लोभी, द्वेषी, मिथ्या दृष्टि वाला हो, काया छोड़, मृत्यु के उपरांत दुर्गति को प्राप्त होगा, और यदि वह इनसे विरत रहेगा, तो सद्गति को प्राप्त होगा।

अस्सलायन ने यह भी स्वीकार किया कि चारों वर्णों में से किसी भी वर्ण का व्यक्ति वैर-रहित, द्वेष-रहित, मैत्री-चित्त की भावना कर सकता है, केवल ब्राह्मण ही नहीं। किसी भी वर्ण का व्यक्ति शुक्ति (सुतुही, सितुआ) और स्नान-चूर्ण लेकर नदी पर जाकर मैल धो सकता है, केवल ब्राह्मण ही नहीं। किसी भी वर्ण का व्यक्ति आग जलाए, वह जाज्वल्यमान होगी और उससे आग का काम लिया जा सकेगा।

अंत में भगवान ने अस्सलायन को पूर्व-काल की बात बताई जबकि सात ब्राह्मण-ऋषियों को भी ऐसी ही पापपूर्ण दृष्टि उत्पन्न हुई थी कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, इत्यादि। परंतु वे असित देवल नाम के एक अन्य ऋषि के समक्ष अपनी धारणा को सिद्ध नहीं कर पाए।

यह सुन कर, आश्चर्य-चकित हो, अस्सलायन भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

४. घोटमुखसुत्त

एक समय आयुष्मान उदेन वाराणसी में खेमिय अंबवन में विहार करते थे। वहां धार्मिक प्रव्रज्या को लेकर उनका घोटमुख ब्राह्मण के साथ कथा-संलाप आरंभ हुआ।

इस कथा-संलाप के दौरान आयुष्मान उदेन ने घोटमुख को चार प्रकार के पुद्गलों की जानकारी दी – (१) आत्मंतप, (२) परंतप, (३) आत्मंतप-परंतप, तथा (४) न-आत्मंतप-न-परंतप। (विस्तार के लिए देखिए "कन्दरकसुत्त" -पृष्ठ सं. [१३१])

घोटमुख ब्राह्मण ने कहा कि इनमें से मुझे चौथे प्रकार का पुद्गल रुचता है।

तत्पश्चात आयुष्मान उदेन ने उसे दो प्रकार की परिषदों की जानकारी दी – (१) मणि-कुंडल, पुत्र-भार्या, दास-दासी, खेत-मकान, सोना-चांदी में अनुरक्त; और (२) मणि-कुंडल, पुत्र-भार्या, दास-दासी, खेत-मकान, सोना-चांदी को छोड़, घर से बेघर हो, प्रव्रज्या-प्राप्त।

घोटमुख ब्राह्मण ने स्वीकार किया कि चौथे प्रकार के पुद्गल अधिकतर दूसरी प्रकार की परिषद में मिलते हैं। इसके साथ ही धार्मिक प्रव्रज्या के बारे में जो उसकी गलतफहमी थी, वह भी दूर हो गयी।

तदनंतर आयुष्मान उदेन ने घोटमुख के चाहने पर उसे चार प्रकार के पुद्गलों के बारे में बड़े विस्तार से जानकारी दी। इस पर आश्चर्य-चकित हो घोटमुख ने कहा कि मैं आयुष्मान उदेन की शरण जाता हूं, और धर्म तथा संघ की भी। पर आयुष्मान उदेन ने उसे अपनी बजाय भगवान की शरण जाने के लिये प्रेरित किया।

घोटमुख ब्राह्मण ने पाटलिपुत्त में संघ के लिये उपस्थान-शाला भी बनवाई, जो 'घोटमुखी' कहलाई।

५. चङ्कीसुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ कोसल में चारिका करते हुए ओपासाद नाम के ब्राह्मण-ग्राम में जा पहुँचे। उस समय चङ्की नाम का ब्राह्मण कोसल-नरेश पसेनदि द्वारा प्रदत्त ओपासाद का स्वामी हो कर रहता था।

चङ्की ब्राह्मण का मन हुआ कि वह भी अन्य ब्राह्मणों के साथ भगवान के दर्शनार्थ जाए परंतु कुछ लोगों ने उसे वहां जाने के लिए हतोत्साहित किया और अनेक प्रकार की युक्तियां देते हुए कहा कि श्रमण गौतम को ही उसके दर्शनार्थ आना चाहिए। इस पर उसने उनकी सभी युक्तियों का खंडन करते हुए, भगवान के कितने ही अन्य गुणों का बखान करते हुए, कहा कि ओपासाद में आने के कारण वह हमारे अतिथि हैं। अतः मुझे ही उनके दर्शनार्थ जाना चाहिए।

तब वह अन्य ब्राह्मणों के साथ भगवान के विहार करने के स्थान पर जा पहुँचा। वहां कापटिक नाम के तरुण ब्राह्मण ने भगवान से अनेक प्रकार के प्रश्न किए जिनका उन्होंने समुचित समाधान किया। इसके पश्चात कापटिक कहने लगा –

"सत्य-अनुरक्षण को हमने आप गौतम से पूछा। आपने उसे हमें बतलाया। वह हमें रुचता है। हम उससे संतुष्ट हैं। ऐसे ही सत्य-अनुबोध, सत्य-प्राप्ति, सत्य-प्राप्ति के बहुकारी धर्म और अन्य बातों के बारे में भी जो कुछ हमने पूछा, वह सब आपने हमें बतलाया। वह हमें रुचता है। हम उससे संतुष्ट हैं।

"हे गौतम! पहले हम ऐसा जानते थे कि कहां नीच, काले, ब्रह्मा के पांव से उत्पन्न, मुंडक-श्रमण और कहां धर्म का ज्ञान! परंतु अब आप गौतम ने मुझ में श्रमणों के प्रति प्रेम, श्रद्धा एवं सम्मान का भाव पैदा कर दिया है।"

तत्पश्चात आश्चर्य-चकित हो कापटिक भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

६. एसुकारीसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां जाकर एसुकारी ब्राह्मण ने उनसे कहा कि ब्राह्मण लोग चारों वर्णों को लेकर चार प्रकार की परिचर्या प्रज्ञप्त करते हैं – इस बारे में आपका क्या कथन है?

भगवान ने उसी से पूछा कि क्या संसार के लोगों ने ब्राह्मणों को कोई ऐसा अधिकार दे रखा है कि वे दूसरों के लिये भी परिचर्या का प्रज्ञापन करें? फिर भी मैं उसे परिचर्या के योग्य मानता हूं जिसकी परिचर्या करने से श्रद्धा, शील-सदाचार, श्रुत, त्याग तथा प्रज्ञा में वृद्धि होती हो।

फिर एसुकारी ने उनसे पूछा कि ब्राह्मण लोग हर वर्ण के लिये किसी-न-किसी निजी संपत्ति का प्रज्ञापन करते हैं, जैसे ब्राह्मण के लिये भिक्षाचार, क्षत्रिय के लिये धनुष-कलाप, वैश्य के लिये कृषि एवं गोरक्षा, और शूद्र के लिये लकड़ी काटना, ढोना, आदि – इस बारे में आपका क्या कथन है?

भगवान ने फिर उसी से पूछा कि क्या संसार के लोगों ने ब्राह्मणों को अधिकृत कर रखा है कि वे दूसरों के लिये निजी संपत्ति का प्रज्ञापन करें! फिर भी मैं लोकोत्तर आर्य धर्म को पुरुष की निजी संपत्ति प्रज्ञप्त करता हूं। माता-पिता के पुराने कुल-वंश के कारण, जन्म लेने पर, कोई व्यक्ति क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य अथवा शूद्र कहलाता है, परंतु जब इनमें से कोई भी घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाता है और तथागत द्वारा स्वयं जाने गए धर्म-विनय को पाकर, शील-सदाचार में पुष्ट होकर, चित्त से राग-द्वेष को दूर कर, सम्यक दृष्टि वाला हो जाता है, तब वह न्याय पर आधारित कुशल धर्म का आराधक हो जाता है।

यह सुनकर आश्चर्य व्यक्त करते हुए, भावविभोर हो, एसुकारी ब्राह्मण भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

७. धनञ्जानिसुत्त

एक समय भगवान राजगह में वेळुवन कलन्दक निवापमें विहार करते थे। उस काल में आयुष्मान सारिपुत्त को यह पता चलने पर कि धनञ्जानि नाम का ब्राह्मण अब धर्म में प्रमाद करने लगा है, उन्होंने उससे इसका कारण जानना चाहा। धनञ्जानि ने बतलाया कि माता-पिता, पुत्र-भार्या, नौकर-चाकर आदि के पालन-पोषण में लगे रहने से ऐसा होने लगा है।

इस पर आयुष्मान सारिपुत्त ने उसे समझाया कि दूसरे भी धार्मिक कर्मांत होते हैं जिनसे इन सबका पालन-पोषण किया जा सकता है, किंतु पाप-कर्म को न करते हुए, अपनाना तो पुण्य-मार्ग को ही चाहिए।

कालांतर में धनञ्जानि बहुत बीमार हो गया और उसने आयुष्मान सारिपुत्त

को अपने घर बुलवा भेजा। उनके वहां पहुँचने पर धनञ्जानि ने उन्हें अपनी असह्य, मरणांतक वेदना से अवगत कराया।

यह जानकर आयुष्मान सारिपुत्त को लगा कि मैं क्यों न इसे ब्रह्माओं की सायुज्यता का मार्ग उपदेशूं, जैसा कि ब्राह्मण लोग ब्रह्मलोक के प्रति श्रद्धाभाव रखते हैं।

तदनंतर उन्होंने उसे इस मार्ग के बारे में बतलाया कि कैसे कोई भिक्षु मैत्री-भरे, विपुल, प्रमाद-रहित, वैर-रहित, द्वेष-रहित चित्त से एक-एक करके सभी दिशाओं को व्याप्त करके विहरता है, और फिर इसी प्रकार, क्रमशः, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा-भरे चित्त से विहरता है।

तत्पश्चात आयुष्मान सारिपुत्त धनञ्जानि ब्राह्मण को, स-करणीय होते हुए भी (जहां पहुँच कर आगे भी करने को कुछ शेष रहता है), हीन ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित कर वहां से चल दिए। इसके कुछ ही समय पश्चात ब्राह्मण ने अपने प्राण छोड़ दिए।

आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान के पास जाकर उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया। इस पर उन्होंने पूछा कि तुम स-करणीय होते हुए उसे हीन ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित कर वहां से क्यों चले आए? आयुष्मान सारिपुत्त ने उत्तर दिया कि ब्राह्मण लोग ब्रह्म-लोक के प्रति बहुत श्रद्धा-भाव रखते हैं, इसीलिए मैंने धनञ्जानि को ब्रह्माओं की सायुज्यता का मार्ग उपदेशित किया।

भगवान ने कहा कि धनञ्जानि मरकर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ है।

८. वासेट्ठसुत्त

एक समय भगवान इच्छानङ्गल के वनखंड में विहार करते थे। उस काल में वासेट्ठ और भारद्वाज माणवों ने उनके पास जाकर यह जानना चाहा कि कोई व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण होता है, अथवा कर्म से।

भगवान ने उन्हें समझाया कि जन्म से न ब्राह्मण होता है, न अ-ब्राह्मण। कर्म से ब्राह्मण होता है, और अ-ब्राह्मण भी। चलते हुए रथ के चक्के की मेख के समान प्राणी कर्म में बंधे हैं। तप, ब्रह्मचर्य, संयम और दम – इनसे ही ब्राह्मण होता है। जो पूर्वजन्म को जानता है, स्वर्ग और अपाय गति को जानता है, जिसका पुनर्जन्म क्षीण हो गया है – उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

यह सुनकर दोनों माणव भाव-विभोर हो, भगवान की शरण चले गये, और धर्म तथा संघ की भी।

९. सुभसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने तोदेय्य-पुत्र सुभ माणवक की इन भ्रांतियों को दूर किया कि –गृहस्थ ही न्याय-कुशल-धर्म (निर्वाण) का आराधक होता है, प्रव्रजित नहीं; घर में रह कर किया जाने वाला कर्म बड़ा फलप्रद होता है, प्रव्रज्या वाला नहीं।

तत्पश्चात सुभ माणवक ने बतलाया कि ब्राह्मण पुण्य करने तथा कुशल की आराधना के लिए इन पांच धर्मों का प्रज्ञापन करते हैं –

(१) सत्य,

(२) तप,

(३) ब्रह्मचर्य,

(४) अध्ययन, तथा

(५) त्याग।

परंतु भगवान द्वारा पूछे जाने पर उसने स्वीकार किया कि कोई भी ब्राह्मण, उनका आचार्य, आचार्य-प्राचार्य, मंत्रों के प्रवक्ता ऋषि ऐसे नहीं हैं जो यह कहते हों कि हम इन पांच धर्मों को स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, इनके विपाक को बतलाते हैं। इससे ब्राह्मणों का कथन अंध-वेणी-परंपरा-समान हो जाता है।

सुभ माणवक ने कहा कि पोक्खरसाति ब्राह्मण का कथन है कि जो कोई श्रमण-ब्राह्मण उत्तर-मनुष्यधर्म अलमार्यज्ञानदर्शन-विशेष की उपलब्धि का दम भरते हैं वह उपहासास्पद है, क्योंकि मनुष्य होकर कोई कैसे इसका साक्षात्कार कर सकता है? इस पर भगवान ने कहा कि पोक्खरसाति का यह दृष्टिकोण इसलिए है क्योंकि वह स्वयं पांच नीवरणों (राग, द्वेष, तन-मन का आलस्य, उद्धतपन-संकोच, तथा संशय) से ग्रस्त है।

तदुपरांत सुभ माणवक के चाहने पर भगवान ने उसे ब्रह्माओं की सलोकता के मार्ग का उपदेश दिया, जिसे सुन कर आश्चर्यचकित हो वह माणवक भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

१०. सङ्गारवसुत्त

एक समय भगवान एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ कोसल जनपद में चारिका करते हुए चञ्चलिकप्प ग्राम में पहुँचे। वहां सङ्गारव नाम के माणव ने उनसे पूछा – "भो गौतम! कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण आदि-ब्रह्मचर्य के बारे में यह दावा करते हैं कि उन्होंने इसी जन्म में निर्वाण का साक्षात्कार कर लिया है। इनमें आप कौन हैं?"

इस पर भगवान ने कहा –"भारद्वाज! कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण केवल सुनकर ही आदि-ब्रह्मचर्य का दावा करते हैं, जैसे त्रैविद्य ब्राह्मण; कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण श्रद्धा-मात्र से ऐसा दावा करते हैं, जैसे तार्किक-विमर्शी; और कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण पहले न सुने गए धर्मों में से धर्म को स्वयं जानकर ऐसा दावा करते हैं – मैं इनमें से हूं।"

तदनंतर भगवान ने बुद्ध बनने से पहले घर-बार छोड़ने से लेकर विमुक्त होने तक अपनी जीवनी का परिचय दिया। यह जानकर सङ्गारव माणव ने कहा – "आप गौतम का 'पधान' (प्रयास) श्रेष्ठ था, सत्पुरुष के अनुरूप था – अर्हंत, सम्यक संबुद्ध जैसा था।"

अंततः सङ्गारव माणव भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा संघ की भी।

मज्झिमनिकाय भाग - ३

१. देवदहवग्ग

१. देवदहसुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में देवदह नाम के निगम में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बतलाया कि निर्ग्रंथ इस मान्यता वाले हैं कि 'जो कुछ भी यह पुरुष-पुद्गल सुख, दुःख अथवा अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब पहले किये गये कर्मों के कारण होता है। पुराने कर्मों का तपस्या द्वारा अंत करने से, नये कर्मों के न करने से, भविष्य में विपाक नहीं होता। भविष्य में विपाक नहीं होने से कर्म-क्षय, कर्म-क्षय से दुःख-क्षय, दुःख-क्षय से वेदना-क्षय और वेदना-क्षय से सभी दुःख जीर्ण हो जाते हैं।'

उन्होंने कहा कि निर्ग्रंथों से पूछे जाने पर वे यह नहीं बतला पाते कि वे पहले थे भी या नहीं; उन्होंने पूर्व में पाप-कर्म किया भी है या नहीं; उन्होंने ऐसा-ऐसा पाप-कर्म कर रखा है; इतना दुःख नष्ट हो गया है, इतना अभी नष्ट करना है, इतना दुःख नष्ट होने पर सारा दुःख नष्ट हो जायेगा; इत्यादि। उनकी इस अनभिज्ञता से उनकी मान्यता संगत नहीं ठहरती।

फिर भगवान ने विस्तार से समझाया कि निर्ग्रंथों का उपक्रम, प्रयास क्योंकर निष्फल होता है, और वस्तुतः सफल उपक्रम, प्रयास क्या होता है।

सफल उपक्रम, प्रयास का विस्तृत विवरण देते हुए भगवान ने अंत में कहा कि जब कोई व्यक्ति तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म के प्रति श्रद्धावान होकर घर-बार छोड़ आर्य शील-स्कंध, आर्य इंद्रिय-संवर, आर्य स्मृति-संप्रज्ञान से युक्त हो, नीवरणों को चित्त से दूर कर प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहरने लगता है, तब उसका उपक्रम, प्रयास सफल होता है। ऐसे ही उसका उपक्रम, प्रयास तब सफल होता है जब वह, क्रमशः, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान वा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त

क र विहरने लगता है, अपने अनेक प्रक ार के पूर्व-निवासों क ा अनुस्मरण क रने लगता है, विशुद्ध दिव्य चक्षु से प्राणियों की च्युति एवं उत्पत्ति को जानने लगता है, और अंततः आस्रवों के क्षय से उसे यह बोध होता है –'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो क रना था सो क र लिया, इससे परे यहां आना नहीं है'।

२. पञ्चत्तयसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार क रते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित क रते हुए बतलाया कि कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण अपरांत दृष्टि वाले और कोई-कोईपूर्वांत दृष्टि वाले होते हैं। अपरांत दृष्टि वाले ऐसे मत प्रतिपादित क रते हैं जैसे कि 'मरने के बाद आत्मा संज्ञी (होश वाली) और नीरोग होती है'; 'मरने के बाद आत्मा अ-संज्ञी और नीरोग होती है'; 'मरने के बाद आत्मा न-संज्ञी-न-असंज्ञी और नीरोग होती है'; इत्यादि। पूर्वांत दृष्टि वाले ऐसे मतों क ा प्रतिपादन क रते हैं जैसे कि 'लोक और आत्मा शाश्वत हैं – यही सच है, बाकी सब झूठ है'; 'लोक और आत्मा अ-शाश्वत हैं –यही सच है, बाकी सब झूठ है'; 'लोक और आत्मा शाश्वत भी हैं और अ-शाश्वत भी – यही सच है, बाकी सब झूठ है; इत्यादि।

भगवान ने क हा कि तथागत इन सभी वादों, मतों को अभिज्ञा के स्तर पर जानते हैं। वे जानते हैं कि 'यह संस्कृ त (बने हुए) होने से स्थूल हैं और जो कु छ संस्कृ त है उसक ा निरोध होता ही है' –अतः इनसे निक लने क ा मार्ग देख क र, वह इनसे परे चले जाते हैं।

उन्होंने आगे क हा कि कोई-कोईश्रमण-ब्राह्मण अपरांत तथा पूर्वांत –दोनों प्रक ार की दृष्टियों को छोड़, क ाम-संयोजनों से परे हट, एक ांत ध्यान से होने वाली 'प्रीति', 'निरामिष सुख', 'अदुःखद-असुखद वेदना' की अवस्था को प्राप्त क र विहरते हैं, और कोई-कोईतो इससे भी आगे बढ़क र क हने लगते हैं – 'मैं शांत हूं, उपादान-रहित हूं, निर्वाण-प्राप्त हूं'। तथागत इन अवस्थाओं के बारे में भी जानते हैं कि 'ये संस्कृ त (बनी हुईं) होने से स्थूल हैं, और जो कु छ संस्कृ त है उसक ा निरोध होता ही है' –अतः इनसे निक लने क ा मार्ग देख क र, वह इनसे परे चले जाते हैं।

अंत में भगवान ने क हा कि तथागत ने अनुत्तर, श्रेष्ठ शांति-पद क ा ज्ञान प्राप्त

करलिया है, जो कि यह छः स्पर्शायतनों (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, कायाऔर मन तथा इनके विषयों) के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दुष्परिणाम और निस्सरण (बाहर निकलने के मार्ग) को जानकर, बिना उपादान किए, विमुक्ति (छुटकारा) है।

३. किन्तिसुत्त

एक समय भगवान कुसिनारा में बलिहरण वनखंड में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं से पूछा कि क्या श्रमण गौतम चीवर, पिंडपात, शयनासन अथवा अमुक भवाभव के लिए धर्मोपदेश करते हैं? भिक्षुओं ने कहा –'नहीं; वे अनुकंपक एवं हितैषी हैं, अनुकंपा कर धर्मोपदेश करते हैं।' इस पर भगवान ने कहा कि यदि ऐसा है, तो मेरे द्वारा जान कर उपदेश किए गए धर्मों का सभी एकजुट होकर, प्रसन्नचित्त से, बिना विवाद किये अभ्यास करो। ये धर्म हैं –चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रियां, पांच बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग।

भगवान ने आगे कहा कि बिना विवाद किये, मिल-जुल कर रहने पर भी भिक्षुओं में धर्म के विषय में किन्हीं आयुष्मानों के कथन को लेकर चार प्रकार के मत हो सकते हैं –'अर्थ में भिन्नता, शब्द में भी भिन्नता'; 'अर्थ में भिन्नता, शब्द में समानता'; 'अर्थ में समानता, व्यंजन में भिन्नता'; 'अर्थ में समानता, शब्द में भी समानता।' ऐसी दशा में सुवचतर भिक्षु को सारी बात बता कर दुर्गृहीत को दुर्गृहीत और सुगृहीत को सुगृहीत जान कर, धर्म और विनय को ही बोलना चाहिए।

तदुपरांत भगवान ने कहा कि यदि किसी भिक्षु से कोई अपराध हो जाए, तो उसके प्रति अभियोग लाने की जल्दी नहीं करनी चाहिये, बल्कि यह जांच करनी चाहिये कि क्या अभियोग लाने से –

(१) मुझे परेशानी होगी, उसको चोट पहुँचेगी;

(२) मुझे परेशानी नहीं होगी, पर उसको चोट पहुँचेगी;

(३) मुझे परेशानी होगी, पर उसको चोट नहीं पहुँचेगी;

(४) मुझे भी परेशानी होगी और उसको भी परेशानी होगी? यदि सचमुच

उस भिक्षु को बुराई से हटा कर भलाई में प्रतिष्ठित किया जा सकता हो, तो दोष कह देना चाहिए, अन्यथा उपेक्षा करनी चाहिए।

ऐसे ही कभी परस्पर वचन का अंतर पड़ जाए, अथवा चित्त में दुर्भावना, अविश्वास, असंतोष जाग जाए, तब भी सुवचतर भिक्षु के पास जाकर उसे यह बात बतानी चाहिए। वह यही कहेगा –'आवुसो! इस बात को छोड़े बिना निर्वाण का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता है।

४. सामगामसुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में सामगाम में विहार करते थे। वहां आयुष्मान आनन्द ने श्रामणेर चुन्द द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर उनसे कहा कि पावा में हाल ही में निर्ग्रंथ नातपुत्त के प्राण छोड़ने के पश्चात निर्ग्रंथों में विभाजन होकर उनमें आपस में कलह, वाद-विवाद होने लगा है। फिर उन्होंने आशंका व्यक्त की कि कहीं भगवान के महापरिनिर्वाण के बाद भी संघ में ऐसा कुछ न होने लगे, जो बहुतों के अहित, असुख के लिए होगा।

इस पर भगवान ने कहा –"आनन्द! मैंने साक्षात्कार कर जिन धर्मों का उपदेश किया है, वे हैं – चार स्मृति-प्रस्थान, चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रियां, पांच बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग। क्या इनके बारे में कोई दो भिक्षु अलग-अलग मत रखते हैं ?"

आयुष्मान आनन्द ने प्रत्युत्तर दिया – "नहीं। लेकिन जो भगवान के सहारे विहरते हैं, वे भगवान के न रहने पर, संघ में आजीविका अथवा भिक्षु-नियमों के बारे में विवाद खड़ा कर सकते हैं। यह विवाद बहुतों के अहित, असुख के लिये होगा।"

तब भगवान बोले – "संघ में आजीविका अथवा भिक्षु-नियमों के बारे में विवाद सामान्य बात है। मार्ग अथवा प्रतिपदा के बारे में यदि संघ में विवाद उठ खड़ा हो, तो वह बहुतों के अहित, असुख के लिए होगा।"

तत्पश्चात उन्होंने विवाद के छः कारणों पर प्रकाश डाला। फिर उन्होंने चार अधिकरण और सात अधिकरण-शमथ बतलाया। फिर यह समझाया कि समय-समय पर उत्पन्न होने वाले अधिकरणों (झगड़ों) को शांत करने के लिये अधिकरण-शमथ को कैसे काम में लेना चाहिए।

अंत में भगवान ने विवादरहित हो, एकजुट बने रहने के लिए याद रखने योग्य छः धर्म बतलाए।

५. सुनक्खत्तसुत्त

एक समय भगवान वेसाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे। उस समय बहुत से भिक्षुओं ने उनके सामने अपनी निर्वाण-प्राप्ति का इस प्रकार बखान किया –"हम प्रज्ञापूर्वक जान गए हैं कि जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।"

लिच्छवि-पुत्र सुनक्खत्त ने भगवान से यह जानना चाहा कि जिन भिक्षुओं ने अपनी निर्वाण-प्राप्ति का बखान किया है, वह ठीक बखान किया है, या किन्हीं-किन्हीं ने अभिमानवश ऐसा किया है?

भगवान ने बतलाया कि इनमें दोनों ही प्रकार के भिक्षु हैं –ठीक बखान करने वाले और अभिमानवश ऐसा करने वाले।

तदुपरांत भगवान ने कहा कि सांसारिक लाभ चाहने वाला व्यक्ति अपने जैसे व्यक्ति की ही संगति करता है, उसी से प्रीति करता है; आनेञ्ज (स्थिर) समाधि की बात करने पर उस पर कान नहीं देता, और न ऐसी बात कहने वाले की संगति करता है, न उससे प्रीति करता है। वह आनेञ्ज के संयोजन से वि-संयुक्त होता है। ऐसे ही आनेञ्ज का अनुरागी सांसारिक लाभ के संयोजन से, आकिंचन्यायतन का अनुरागी आनेञ्ज के संयोजन से, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का अनुरागी आकिंचन्यायतन के संयोजन से, सम्यक निर्वाण का अनुरागी नैवसंज्ञानासंज्ञायतन के संयोजन से वि-संयुक्त होता है।

भगवान ने आगे कहा कि यदि कोई भिक्षु यह समझे कि मैंने तृष्णा-रूपी शल्य को फेंक दिया है और अविद्या-रूपी विष-दोष को दूर कर दिया है, और इस प्रकार अपने आप को सम्यक निर्वाण का अनुरागी समझे, परंतु जो बातें ऐसे व्यक्ति के लिए अ-हितकर हों उनमें लगा रहे, तो उसका चित्त राग से ध्वस्त होगा, और वह ऐसे ही चित्त से मृत्यु अथवा मृत्यु-समान दुःख को प्राप्त होगा। परंतु यदि वह अ-हितकर बातों में न लगे तो उसका चित्त राग से ध्वस्त नहीं होगा, और वह ऐसे चित्त से न मृत्यु, न मृत्यु-समान दुःख को प्राप्त होगा।

भगवान ने और आगे कहा कि जो भिक्षु छः स्पर्शायतनों में संयमी हो, 'उपधि

(आसक्ति) दुःख का मूल है' –इसे जान उपधि-रहित हो, उपधि के क्षय से मुक्त हो गया हो, वह उपधि में काया को लगाए, या चित्त को दे –ऐसा नहीं हो सकता।

६. आनेञ्जसप्पायसुत्त

एक समय भगवान कुरुजनपद में कम्मासधम्म नाम के निगम में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि काम (विषय-भोग) अनित्य, तुच्छ, असत्य एवं नाशवान है। ऐहिक और पारलौकिक काम तथा काम-संज्ञाएं मार का फंदा हैं। यहां पापपूर्ण, अकुशल मन लोभ, द्वेष आदि के भाव को जगाता है जो अभ्यास करने वाले आर्य-श्रावक का अंतराय (विघ्न) होता है।

फिर भगवान ने कहा कि आर्य-श्रावक विपुल, विशाल चित्त से लोक को अभिभूत कर, मन से अधिष्ठित कर, विहरता है, जिससे उसकी मानसिक बुराइयां दूर हो, चित्त प्रसन्नता से भर जाता है, और वह आनेञ्ज (अचंचलता) को प्राप्त होता है, या प्रज्ञा द्वारा मुक्त होता है। इस बात की संभावना रहती है कि काया छोड़ने के पश्चात उसका विज्ञान आनेञ्ज को प्राप्त होवे। यह 'आनेञ्ज-सप्पाय' (अचंचलता के लिए लाभप्रद) प्रतिपदा कहलाती है, जो तीन प्रकार की होती है।

इसके पश्चात भगवान ने इससे प्रणीततर 'आकिंचन्यायतन-सप्पाय' की तीन प्रतिपदाओं, और फिर 'नैवसंज्ञानासंज्ञायतन' की तीन प्रतिपदाओं के बारे में बतलाया।

तदनंतर आयुष्मान आनन्द ने भगवान से पूछा कि यदि कोई भिक्षु ऐसे मार्गारूढ़ हो –'यह न होता, यह मेरा न होता; नहीं होगा, न मेरा होगा; जो है, जो हो गया है –उसे मैं प्रज्ञापूर्वक छोड़ता हूं' –इस प्रकार उपेक्षाभाव जगा ले, तो क्या वह परिनिर्वाण-लाभ कर पायेगा अथवा नहीं?

भगवान ने कहा कि जो कोई उपेक्षा-भाव का अभिनंदन कर, उससे चिपकाव कर लेगा, वह परिनिवृत्त नहीं होगा, और जो इसका अभिनंदन न कर, उससे चिपकाव पैदा नहीं करेगा, वह परिनिवृत्त होगा।

तत्पश्चात 'आर्य विमोक्ष' के बारे में पूछे जाने पर भगवान ने कहा कि ऐहिक

तथा पारलौकिक काम, काम-संज्ञा, रूप, रूप-संज्ञा, आनेञ्ज-संज्ञा, आकिंचन्यायतन-संज्ञा, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन-संज्ञा – यहां तक सत्काय होता है। इससे चिपकाव न कर जो चित्त का विमोक्ष (छूटना) है, वह अमृत (निर्वाण) है।

अंत में भगवान ने कहा –"आनन्द! जो कुछ अनुकंपा करके, अनुकंपक, हितचिंतक शास्ता को करना चाहिये, वह सब मैंने तुम्हारे लिये कर दिया है। अब ये रहे वृक्ष-मूल, ये रहे शून्यागार! इनमें बैठ कर ध्यान करो, मत प्रमाद करो, मत पीछे पछतावा करना – तुम्हारे लिये यह हमारी सीख है।"

७. गणक मोग्गल्लानसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में मिगारमाता के प्रासाद पुब्बाराम में विहार करते थे। वहां गणक मोग्गल्लान ने उनसे पूछा कि जैसे लोक में क्रमिक शिक्षा, क्रमिक क्रिया, क्रमिक प्रतिपदा का विधान देखने में आता है, क्या आपके धर्म-विनय में भी इसी प्रकार क्रमिक शिक्षा, क्रमिक क्रिया, क्रमिक प्रतिपदा बतलाई जा सकती है?

इस पर भगवान ने कहा –"जैसे कोई चतुर सारथी उत्तम घोड़े को पाकर उसे पहले मुँह में लगाम पकड़ाने की क्रिया सिखलाता है और फिर आगे की क्रिया बतलाता है, ऐसे ही तथागत संयत किए जाने योग्य पुरुष को पाकर पहले उसे शीलवान, प्रातिमोक्षसंवर-संवृत, आचारगोचर-संपन्न, अणुमात्र दोषों में भी भय देखने वाला, शिक्षापदों को ग्रहण कर उनका अभ्यासी होने के लिये विनीत करते हैं।"

"उसके इस प्रकार विनय-संपन्न हो जाने पर उसे आगे का विनय देते हैं – इंद्रियों का संयम; फिर भोजन में मात्रज्ञता; फिर जागरण में तत्परता; फिर स्मृति-संप्रज्ञान से युक्तता। तदुपरांत पांच नीवरणों से चित्त का शोधन होने पर, क्रमशः, प्रथम ध्यान से चतुर्थ ध्यान का विहार।"

फिर भगवान ने कहा कि मेरी यह शिक्षा शैक्ष्यों के लिये है, जो अभी निर्वाण को प्राप्त नहीं हुए हैं। क्षीणास्रव अर्हतों के लिये ये धर्म इसी शरीर में सुखपूर्वक विहार करने तथा स्मृति-संप्रज्ञान के लिये होते हैं।

इसके पश्चात गणक मोग्गल्लान ने भगवान से प्रश्न किया कि क्या आपके उपदेश सुनने पर सभी निर्वाणलाभ कर लेते हैं, या कोई-कोई नहीं कर पाते हैं?

भगवान ने उत्तर दिया कि कोई-कोई निर्वाण लाभ कर लेते हैं, और कोई-कोई नहीं कर पाते हैं। गणक मोग्गल्लान द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर भगवान ने एक उपमा देते हुए कहा –"मेरे द्वारा प्रेरित कुछ तो निर्वाण प्राप्ति में लग जाते हैं, कुछ नहीं लगते हैं, इसमें मैं क्या कर सकता हूं, मैं तो केवल मार्ग का आख्यान कर सकता हूं।"

८. गोपक मोग्गल्लानसुत्त

एक समय भगवान के परिनिर्वाण के थोड़े ही समय पश्चात, आयुष्मान आनन्द राजगह में वेळुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे। एक दिन प्रातः भिक्षाचार से पूर्व वे गोपक मोग्गल्लान ब्राह्मण के यहां चले गए। वहां ब्राह्मण ने उनसे पूछा कि क्या एक भी भिक्षु ऐसा है जो सारे के सारे, और सर्व प्रकार से, उन धर्मों से युक्त हो जिनसे गौतम अर्हत सम्यक संबुद्ध युक्त थे?

आयुष्मान आनन्द ने उत्तर दिया – "नहीं। ऐसा एक भी भिक्षु नहीं है। भगवान अनुत्पन्न मार्ग के उत्पादक, असंजात मार्ग के संज्ञापक, अनाख्यात मार्ग के आख्याता, मार्गज्ञ, मार्गविदू, मार्गकोविद थे; पीछे से आए इस समय के श्रावक उनके मार्ग पर चलने वाले हैं।"

इसी समय मगध का महामात्य वस्सकार ब्राह्मण भी वहां आ पहुँचा। उसने भी आयुष्मान आनन्द से कई प्रश्न पूछे जिनका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि –

*भगवान ने एक भी ऐसे भिक्षु स्थापित नहीं किये है जो उनके बाद हमारा प्रतिशरण हो।

*संघ-सम्मत एक भी भिक्षु ऐसा नहीं है जो भगवान के बाद हमारा प्रतिशरण हो।

*ऐसा होने पर भी हम प्रतिशरण-रहित नहीं हैं; हम धर्म-प्रतिशरण हैं।

* 'धर्म-प्रतिशरण' होने से तात्पर्य है उपोसथ के दिन एक स्थान पर एकत्रित हो, भगवान द्वारा उद्दिष्ट प्रातिमोक्ष का वाचन करते समय, दोष किए भिक्षु द्वारा उसका धर्मानुसार प्रतिकार करना।

* भगवान द्वारा कहे गए दस प्रसादनीय (श्रद्धोत्पादक) धर्मों के धारक भिक्षु का अन्य भिक्षु सत्कार, गुरुकार, मानन, पूजन करते हैं और उसके समीप विहरते हैं।

* भगवान राग, द्वेष, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य तथा संशय से युक्त ध्यान की प्रशंसा नहीं करते थे। वे प्रथम ध्यान से लेकर चतुर्थ ध्यान की प्रशंसा करते थे।

९. महापुण्णमसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में मिगारमाता के प्रासाद पुब्बाराम में विहार करते थे। एक पूर्णिमा की रात को वे भिक्षु-संघ से घिरे हुए खुले स्थान पर बैठे थे। उस समय उनकी अनुमति प्राप्त कर एक भिक्षु ने उनसे कई प्रश्न पूछे, जैसे –

* पांच उपादान-स्कंधों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) का क्या मूल है?

* उपादान और पांच उपादान-स्कंध एक ही हैं, या अलग-अलग?

* क्या पांच उपादान-स्कंधों में छंद, राग की विभिन्नता हो सकती है?

* स्कंधों में कितने तक का नाम 'स्कंध' होता है?

* उपादान-स्कंधों के प्रज्ञापन में क्या हेतु है?

* उपादान-स्कंधों के आस्वाद, आदीनव तथा निस्सरण क्या हैं?

* सत्काय-दृष्टि कैसे होती है? कैसे नहीं होती है?

भगवान ने इन प्रश्नों का यथोचित समाधान किया।

तभी एक भिक्षु के मन में ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ कि जब रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान – ये सभी अनात्म हैं, तो अनात्म के किये कर्म किस आत्मा में संयुक्त होंगे? इस संदर्भ में भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि जो कोई रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान, अतीत, अनागत अथवा प्रत्युत्पन्न, भीतरी अथवा बाहरी, स्थूल अथवा सूक्ष्म, निकृष्ट अथवा उत्कृष्ट, दूरस्थ अथवा निकटस्थ हों, वे सब – 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूं, यह मेरी आत्मा नहीं है' – इस प्रकार यथार्थतः सम्यक रूप से प्रज्ञापूर्वक देखना चाहिए। ऐसा करने से आर्यश्रावक रूपादि से निर्वेद को प्राप्त होता है, निर्वेद को प्राप्त हो विरक्त होता है, विराग के कारण विमुक्त होता है। विमुक्त होने पर 'मैं विमुक्त हो गया!' – यह ज्ञान जागता है और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है'।

इस प्रवचन के कहे जाते समय साठ भिक्षुओं के चित्त उपादान-रहित हो, आस्रवों से विमुक्त हो गये।

१०. चूळपुण्णमसुत्त

एक समय जब भगवान सावत्थी में मिगारमाता के प्रासाद पुब्बाराम में विहार कर रहे थे तब एक पूर्णिमा की रात को उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि इस बात की संभावना नहीं होती है कि कोई अ-सत्पुरुष अ-सत्पुरुष को जान सके –'यह आप अ-सत्पुरुष हैं', अथवा सत्पुरुष को जान सके –'यह आप सत्पुरुष हैं।' यह इसलिए होता है क्योंकि अ-सत्पुरुष असद्धर्म-युक्त, असत्पुरुष-भक्त, असत्पुरुष-चिंती, असत्पुरुष-मंत्री, असत्पुरुष-भाषी, असत्पुरुष-कर्मांत, असत्पुरुष-दृष्टि और असत्पुरुष-दानी होता है।

तदुपरांत भगवान ने समझाया कि अ-सत्पुरुष कैसे असद्धर्म-युक्त, असत्पुरुष-भक्त (असत्पुरुषों का भक्त), असत्पुरुष-चिंती, असत्पुरुष-मंत्री, असत्पुरुष-भाषी, असत्पुरुष-कर्मांत, असत्पुरुष-दृष्टि और असत्पुरुष-दानी (असत्पुरुषों को दान देने वाला) होता है, और यह भी बतलाया कि शरीर छोड़ने के पश्चात अ-सत्पुरुष नरक अथवा पशुयोनि को प्राप्त होते हैं।

फिर भगवान ने कहा कि इस बात की संभावना रहती है कि कोई सत्पुरुष सत्पुरुष को जान सके –'यह आप सत्पुरुष हैं', अथवा अ-सत्पुरुष को जान सके –'यह आप अ-सत्पुरुष हैं।' यह इसलिए होता है क्योंकि सत्पुरुष सद्धर्म-युक्त, सत्पुरुष-भक्त (सत्पुरुषों का भक्त), सत्पुरुष-चिंती, सत्पुरुष-मंत्री, सत्पुरुष-भाषी, सत्पुरुष-कर्मांत, सत्पुरुष-दृष्टि और सत्पुरुष-दानी (सत्पुरुषों को दान देने वाला) होता है।

तदनंतर भगवान ने समझाया कि सत्पुरुष कैसे सद्धर्म-युक्त, सत्पुरुष-भक्त, सत्पुरुष-चिंती, सत्पुरुष-मंत्री, सत्पुरुष-भाषी, सत्पुरुष-कर्मांत, सत्पुरुष-दृष्टि और सत्पुरुष-दानी होता है, और यह भी बतलाया कि शरीर छोड़ने के पश्चात सत्पुरुष देवता होकर अथवा श्रेष्ठ मनुष्य-कुल में जन्म पाते हैं।

२. अनुपदवग्ग

१. अनुपदसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए सारिपुत्त को पंडित, विविध प्रकार से प्रज्ञा-संपन्न और अर्ध-मास तक अनुपद-धर्म विपश्यना करने वाला बतलाया।

फिर उन्होंने यह भी बतलाया कि सारिपुत्त की अनुपद-धर्म विपश्यना क्या होती है। इसके अंतर्गत सारिपुत्त प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरते हैं। उस समय इसके प्रथम ध्यान के धर्म एक-के-पीछे-एकव्यवस्थित होते हैं। ये धर्म इनकी जानकारी में उत्पन्न होते हैं, इनकी जानकारी में विद्यमान रहते हैं, और इनकी जानकारी में लुप्त हो जाते हैं। वे इन धर्मों में आसक्त नहीं होते, और प्रज्ञापूर्वक जानते हैं – 'इससे आगे भी निस्सरण (निकलने का मार्ग) है'।

फिर वे इसी प्रकार, क्रमशः, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन तथा आकिंचन्यायतन को प्राप्त कर विहरते हैं। जब वे आकिंचन्यायतन का अतिक्रमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की अवस्था को प्राप्त कर विहरते हैं और इसकी समापत्ति लाभ कर स्मृति-सहित उठते हैं, तो पहले के निरुद्ध हुए धर्मों को सम्यक प्रकार से देखते हैं। वे इन धर्मों में आसक्त नहीं होते, और प्रज्ञापूर्वक जानते हैं – 'इससे आगे भी निस्सरण (निकलने का मार्ग) है'।

परंतु जब वे नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का अतिक्रमण कर संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था को प्राप्त कर विहरते हैं, तब प्रज्ञा से देख कर उनके आस्रव पूर्णतया क्षीण हो जाते हैं। जब वे इसकी समापत्ति लाभ कर स्मृति-सहित उठते हैं, तब पहले के निरुद्ध हुए धर्मों को सम्यक प्रकार से देखते हैं। वे इन धर्मों में आसक्त नहीं होते, और प्रज्ञापूर्वक जान लेते हैं – 'इससे आगे निस्सरण (निकलने का मार्ग) नहीं है।'

अंत में भगवान ने कहा कि सारिपुत्त तथागत द्वारा प्रवर्तित अद्वितीय धर्मचक्र को सम्यक रूप से अनु-प्रवर्तित कर रहे हैं।

२. छब्बिसोधनसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा – “यदि कोई भिक्षु अर्हत्पद-प्राप्ति का ऐसे बखान करे – ‘मैं प्रज्ञापूर्वक जानता हूं कि जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है’ – तो न तो इस कहे का अभिनंदन करना चाहिए, न खंडन, बल्कि यह प्रश्न पूछना चाहिए कि जाननहार, देखनहार, अर्हंत, सम्यक संबुद्ध भगवान ने जो चार व्यवहार अच्छी तरह बतलाये हैं, इनमें जानते, देखते, आपका चित्त कैसे आस्रव-रहित हो गया?

“उससे संतोषजनक उत्तर मिलने पर, ‘साधुकार’ कर, उससे अगला प्रश्न पूछना चाहिए – भगवान द्वारा प्रज्ञप्त पांच उपादान-स्कंधों से आपका चित्त कैसे आस्रव-रहित हुआ?

“संतोषप्रद उत्तर मिलने पर, ‘साधुकार’ कर, अगला प्रश्न पूछना चाहिए – भगवान द्वारा प्रज्ञप्त छः धातुओं से आपका चित्त कैसे आस्रव-रहित हुआ?

“ऐसे ही अगला प्रश्न – भगवान द्वारा प्रज्ञप्त छः भीतरी और बाहरी आयतनों से आपका चित्त कैसे आस्रव-रहित हुआ?

“फिर आगे का प्रश्न – विज्ञान से संयुक्त इस काया में और बाहर के सारे निमित्तों में जानते, देखते अहंकार, ममकार, मान, अनुशय कैसे सम्यक रूप से नष्ट हुए?

“इस प्रश्न का भी संतोषप्रद उत्तर मिलने पर, ‘साधुकार’ कर, उस भिक्षु को कहना चाहिये – ‘लाभ है हमें आवुस! सुलाभ मिला हमें आवुस! जो कि हम आप जैसे सब्रह्मचारी को प्रत्यक्ष देखते हैं।”

३. सप्पुरिसधम्मसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को सत्पुरुष-धर्म और असत्पुरुष-धर्म के बारे में उपदेश दिया।

उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति अपनी उच्चकुलीनता, प्रतिष्ठा, भौतिक उपलब्धियों, विद्वत्ता, रहन-सहन आदि के कारण अपने आप को ऊंचा और दूसरे को नीचा मानता है, वह असत्पुरुष होता है। सत्पुरुष समझता है कि उच्चकुलीनता, आदि के कारण राग, द्वेष, मोह नष्ट नहीं हुआ करते। जो सम्यक मार्ग पर आरूढ़ हो धर्माचरण करे, वही पूज्य, प्रशंसनीय होना चाहिये। अतः सत्पुरुष वह होता है जो यह समझदारी रखते हुए उच्चकुलीनता आदि के कारण अपने आप को ऊंचा और दूसरे को नीचा नहीं मानता है।

भगवान ने आगे कहा कि जो व्यक्ति प्रथम ध्यान से लेकर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तक किसी भी समापत्ति को प्राप्त कर विहरता है, और अपनी इस समापत्ति के कारण अपने आप को ऊंचा और दूसरे को नीचा मानता है, वह असत्पुरुष होता है। सत्पुरुष सोचता है कि भगवान ने इन समापत्तियों के उपरांत भी तृष्णा के नहीं होने की बात कही है। अतः सत्पुरुष वह होता है जो इस तृष्णा के नहीं होने की बात को दृष्टि में रखते हुए अपनी ध्यान-समापत्ति के कारण अपने आप को ऊंचा और दूसरे को नीचा नहीं मानता है।

अंत में भगवान ने कहा कि सत्पुरुष नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का सर्वथा अतिक्रमण कर संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था को प्राप्त कर विहरता है। प्रज्ञा से इसे देखकर उसके आस्रव पूर्णतया क्षीण हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति न कुछ मान करता है, न कहीं मान करता है, न किसी के साथ मान करता है।

४. सेवितब्बासेवितब्बसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को सेवनीय, असेवनीय धर्म-पर्याय की देशना दी।

भगवान ने कहा मैं इन्हें सेवनीय, असेवनीय – दो प्रकार का कहता हूं –

* कायिक आचरण। वाचिक आचरण। मानसिक आचरण। चित्त-उत्पाद। संज्ञा-लाभ । दृष्टि-लाभ। शरीर-लाभ।

* चक्षुर्विज्ञेय रूप। श्रोत्रविज्ञेय शब्द। घ्राणविज्ञेय गंध। जिह्वाविज्ञेय रस। कायविज्ञेय स्प्रष्टव्य। मनोविज्ञेय धर्म।

*चीवर। पिंडपात। शयनासन। ग्राम। निगम। नगर। जनपद। पुद्गल (व्यक्ति)।

आयुष्मान सारिपुत्त ने संक्षेप में की गई भगवान की देशना का विस्तार से अर्थ बतलाया । उनका कहना था कि जिसके सेवन से अकुशल धर्म बढ़ते हों, कुशल धर्म क्षीण होते हों उसका सेवन नहीं करना चाहिए, और जिसके सेवन से अकुशल धर्म क्षीण होते हों, कुशल धर्म बढ़ते हों उसका सेवन करना चाहिए।

भगवान ने इसका अनुमोदन किया और स्वयं भी उसके व्याख्यान को दोहराया। उन्होंने यह भी कहा कि मेरे संक्षिप्त भाषण का इस प्रकार विस्तार से किया गया अर्थ किसी भी वर्ण का व्यक्ति जान ले, तो वह दीर्घकाल तक उसके हित-सुख के लिए होगा।

५. बहुधातुक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि जो कोई भय, उपद्रव, उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं। अतः तुम्हें सीखना चाहिए –'हम पंडित, मीमांसक बनेंगे।'

तब आयुष्मान आनन्द द्वारा यह पूछे जाने पर कि कितने से भिक्षु को पंडित, मीमांसक कहा जा सकता है, भगवान ने कहा कि जब वह धातु-कुशल, आयतन-कुशल, प्रतीत्यसमुत्पाद-कुशल तथा स्थानास्थान-कुशल होता है, तब वह वैसा कहे जाने का अधिकारी होता है।

तत्पश्चात भगवान ने इनमें से एक-एक पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि 'धातुकुशल' वह होता है जो पर्यायानुसार धातुओं को जानता-देखता है; 'आयतनकुशल' वह होता है जो भीतर और बाहर के छह आयतनों को जानता-देखता है; 'प्रतीत्यसमुत्पाद-कुशल' वह होता है जो यह प्रज्ञापूर्वक जानता है –'इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है; इसके न होने से यह नहीं होता है, इसके निरोध से यह निरुद्ध हो जाता है'; और 'स्थानास्थान-कुशल' वह होता है जो युक्तायुक्त के बारे में प्रज्ञापूर्वक जानकारी रखता है।

भगवान ने यह भी बतलाया कि इस धर्म-पर्याय को 'बहुधातुक', 'चतुपरिवट्ट', 'धम्मादास', 'अमतदुन्दुभि', अथवा 'अनुत्तर सङ्गामविजय' भी जाना जा सकता है।

६. इसिगिलिसुत्त

एक समय भगवान राजगह में इसिगिलि पर्वत पर विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को बतलाया कि पूर्वकाल में इस पर्वत पर पांच सौ प्रत्येक बुद्ध लंबे समय से रह रहे थे। वे इस पर्वत में प्रवेश करते हुए तो दिखलाई दिये थे, पर प्रविष्ट हो जाने के पश्चात दिखलाई नहीं दिये। यह देख, लोग कहने लगे –"यह पर्वत इन ऋषियों को निगलता है।" इससे इसका नाम 'इसिगिलि' (ऋषियों को निगलने वाला) हो गया।

तत्पश्चात भगवान ने प्रत्येक बुद्धों के नाम बतलाए और भिक्षुओं से कहा कि परिनिर्वाण-प्राप्त महर्षियों की वंदना करो।

७. महाचत्तारीसक सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को प्रत्यय-सहित, परिष्कार-सहित आर्य सम्यक समाधि का उपदेश दिया। उन्होंने कहा इसका आशय होता है सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम तथा सम्यक स्मृति –इन सात अंगों से चित्त की एकाग्रता का परिष्कृत होना।

तत्पश्चात उन्होंने समझाया कि पूर्व-वर्णित अंगों में 'सम्यक दृष्टि' पूर्वगामी होती है क्योंकि कोई इसी से 'मिथ्या दृष्टि' को 'मिथ्या दृष्टि', 'सम्यक दृष्टि' को 'सम्यक दृष्टि'; 'मिथ्या संकल्प' को 'मिथ्या संकल्प', 'सम्यक संकल्प' को 'सम्यक संकल्प'; 'मिथ्या वचन' को 'मिथ्या वचन', 'सम्यक वचन' को 'सम्यक वचन'; 'मिथ्या कर्मांत' को 'मिथ्या कर्मांत', 'सम्यक कर्मांत' को 'सम्यक कर्मांत'; और 'मिथ्या आजीविका' को 'मिथ्या आजीविका', 'सम्यक आजीविका' को 'सम्यक आजीविका' – इस प्रकार प्रज्ञापूर्वक जान पाता है।

'सम्यक दृष्टि' इसलिये भी पूर्वगामी होती है क्योंकि सम्यक दृष्टि वाले को सम्यक संकल्प होता है, सम्यक संकल्प वाले को सम्यक वचन, सम्यक वचन वाले को सम्यक कर्मांत, सम्यक कर्मांत वाले को सम्यक आजीविका, सम्यक आजीविका वाले को सम्यक व्यायाम, सम्यक व्यायाम वाले को सम्यक स्मृति, सम्यक स्मृति वाले को सम्यक समाधि, सम्यक समाधि वाले को सम्यक ज्ञान

और सम्यक ज्ञान वाले को सम्यक विमुक्ति होती है। शैक्ष्य (निर्वाण-पथ पर आरूढ़ व्यक्ति) आठ अंगों से युक्त होता है, और अर्हंत दस अंगों से।

'सम्यक दृष्टि' इसलिए भी पूर्वगामी होती है क्योंकि इससे मिथ्या दृष्टि ह्रास को प्राप्त होती है, जिससे मिथ्या दृष्टि के कारण होने वाले अनेक अकुशल धर्म नष्ट हो जाते हैं, और सम्यक दृष्टि के कारण अनेक कुशल धर्म भावना की परिपूर्णता को प्राप्त होते हैं। ऐसे ही सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि, सम्यक ज्ञान तथा सम्यक विमुक्ति अपने-अपने क्षेत्र में प्रभावी होते हैं।

अंत में भगवान ने कहा कि इस प्रकार कुशलपक्ष के बीस और अकुशलपक्ष के बीस (दोनों मिला कर चालीस धर्मों वाले) 'महाचत्तारीसक' धर्म-पर्याय का प्रवर्तन किया गया है जिसका कोई भी श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या लोक में अन्य कोई अ-प्रवर्तन नहीं कर सकता।

८. आनापानसतिसुत्त

एक समय भगवान ने सावत्थी में मिगारमाता के प्रासाद पुब्बाराम में विहार करते हुए भिक्षुओं को कहा कि आनापानसति की भावना करने से वह महाफलप्रद, महालाभप्रद होती है। इसकी भावना से चार स्मृति-प्रस्थान परिपूर्ण होते हैं, चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना से सात बोध्यंग परिपूर्ण होते हैं, सात बोध्यंगों की भावना से विद्या और विमुक्ति परिपूर्ण होती हैं।

इसके पश्चात उन्होंने सर्वप्रथम यह बतलाया कि किस प्रकार आनापानसति की भावना करने से वह महाफलप्रद, महालाभप्रद होती है। इसके लिये भिक्षु एकांत स्थान में पालथी मार, शरीर को सीधा रख, मुख के इर्द-गिर्द स्मृतिमान हो, नैसर्गिक तौर पर आने-जाने वाले श्वास-प्रश्वास को प्रज्ञापूर्वक जानने से काम प्रारम्भ करता है और शनैः-शनैः उस अवस्था पर जा पहुँचता है जहां वह अनित्यता, विराग, निरोध, प्रतिनिसर्ग का अनुपश्यी होकर श्वास-प्रश्वास को जानने लगता है।

आनापानसति की भावना चार स्मृति-प्रस्थानों को तब परिपूर्ण करती है जब भिक्षु आनापानसति का अभ्यास करता हुआ लोक में अभिध्या (लोभ) और दौर्मनस्य को दूर कर, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी होकर, काया में कायानुपश्यना,

वेदना में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करने लगता है।

फिर भगवान ने यह भी बतलाया कि चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना से सात बोध्यंग, और सात बोध्यंगों की भावना से विद्या और विमुक्ति कैसे परिपूर्ण होती हैं।

९. कायगतासतिसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को समझाया कि कैसे भावित किये जाने पर कायगता स्मृति बहुत फलप्रद, बहुत लाभप्रद होती है।

सर्वप्रथम भगवान ने यह बतलाया कि कायगता स्मृति को कैसे भावित किया जाता है। इसके लिये अप्रमत्त एवं संयमशील हो आनापान (श्वास-प्रश्वास), ईर्यापथ (अंग-संचालन), शरीर के भीतर की बत्तीस प्रकार की गंदगी, चार धातुओं, अथवा कच्चे श्मशान में छोड़े हुए मृत शरीर के प्रति जागरूक रहने का दृढ़ अभ्यास करना होता है। इससे साधक की सांसारिक स्मृतियाँ और महत्त्वाकांक्षाएं (संकल्प) नष्ट हो जाती हैं और चित्त एकाग्र होकर सिमट जाता है। ऐसा ही प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान अथवा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरने पर भी होता है।

भगवान ने आगे कहा कि जो कायगता स्मृति को भावित कर लेता है, उसके भीतर सभी विद्याभागीय कुशल धर्म समा जाते हैं। जो इसे भावित नहीं करता है, उस पर मार छा जाता है।

कायगता स्मृति को भावित किए व्यक्ति को ये दस लाभ होने चाहिएं –

(१) अ-रति और रति के प्रति सहनशीलता;

(२) भय-भैरव के प्रति सहनशीलता;

(३) सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, डंक, दुर्वचन आदि तथा दुःखद से दुःखद शारीरिक वेदनाओं के प्रति सहनशीलता;

(४) चारों ध्यानों को इच्छानुसार आसानी से प्राप्त करने का सामर्थ्य;

(५) अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव;

(६) दिव्य श्रोत्र;

(७) पर-चित्त-ज्ञान;

(८) पूर्व-निवासों की अनुस्मृति;

(९) दिव्य चक्षु;

(१०) आस्रवों के क्षय हो जाने से जो आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति है, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति है, उसे इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरना।

१०. सङ्खारुपपत्तिसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संस्कार-उत्पत्ति के बारे में उपदेश दिया।

उन्होंने कहा –"कोई भिक्षु श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग एवं प्रज्ञा से युक्त होता है। उसको ऐसा होता है – 'अहो! शरीर छोड़ने पर मैं महाधनी क्षत्रियों के बीच जन्म लूं।' वह इस पर मन लगाता है, ठहराता है, भावित करता है। उसके वे संस्कार तथा विहार इस प्रकार भावित, बहुलीकृत होकर उसकी वहां उत्पत्ति के लिये ही होते हैं। वहां उत्पन्न होने के लिये यह मार्ग है।

महाधनी ब्राह्मणों, वैश्यों, विभिन्न देवलोकों में उत्पन्न होने के लिये भी यही मार्ग है; केवल वैसा-वैसा संकल्प कर उस पर मन लगाना, ठहराना, भावित करना अभीष्ट होता है।

"यदि किसी को ऐसा होता है – 'अहो! मैं आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा की विमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरूं', तो वह वैसे ही विहरता है, और कहीं उत्पन्न नहीं होता।"

३. सुञ्ञतवग्ग

१. चूळसुञ्ञतसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में मिगारमाता के प्रासाद पुब्बाराम में विहार करते थे। वहां उन्होंने आयुष्मान आनन्द को बतलाया कि मैं पहले भी अधिकतर शून्यता-विहार से विहरता था, और अब भी ऐसे ही विहरता हूं। फिर उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि कैसे, क्रमशः, स्थूल संज्ञाओं को मन में न लाने से वे शून्य होती जाती हैं और उनकी पीड़ाएं समाप्त होती जाती हैं, और अपेक्षाकृत सूक्ष्म संज्ञाओं को मन में लाने से मन वहां-वहां टिकने लगता है और केवल उन्हीं की पीड़ाएं शेष रहती जाती हैं। इस प्रकार भिक्षु का यथार्थ एवं परिशुद्ध शून्यता में प्रवेश होता है।

भगवान ने कहा कि जब आकिंचन्यायतन संज्ञा को, और नैवसंज्ञानासंज्ञायतन संज्ञा को भी, मन में न लाकर, केवल अनिमित्त चेतःसमाधि को लेकर मन में अभ्यास किया जाता है, तब भिक्षु का चित्त अनिमित्त चेतःसमाधि में ठहरता है। वह ऐसा जानता है कि यह चेतःसमाधि अभिसंस्कृत है, और अभिसंस्कृत होने से अनित्य है। इस प्रकार जानते-देखते उसका चित्त कामास्रवों, भवास्रवों, अविद्यास्रवों से मुक्त हो जाता है। 'मैं मुक्त हो गया!' – उसमें यह ज्ञान जागता है। वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है।' ऐसी अवस्था में कामास्रवों, भवास्रवों, अविद्यास्रवों को लेकर होने वाली पीड़ाएं नहीं रहती हैं, परंतु जीवन के कारण, इस छह आयतन वाली काया को लेकर तो पीड़ाएं रहती ही हैं। ऐसी अवस्था में भिक्षु यथार्थ, परिशुद्ध एवं परम अनुत्तर शून्यता में प्रविष्ट होता है।

अंत में भगवान ने कहा कि तीनों कालों में श्रमणों अथवा ब्राह्मणों के लिए यही परम अनुत्तर शून्यता-विहार है, अतः 'परिशुद्ध, परम अनुत्तर शून्यता को प्राप्त कर विहरूंगा' – यह सीखना चाहिए।

२. महासुञ्ञतसुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में कपिलवत्थु के निग्रोधाराम में

विहार करते थे । एक बार वे दिवा-विहार के लिए कालखेमकशाक्य के विहार में चले गए, जहां उन्होंने बहुत से शयनासन लगे हुए देखे। इससे उन्हें ज्ञात हुआ कि वहां बहुत से भिक्षु विहरते होंगे।

सायंकाल वे घटाय शाक्य के विहार में गए जहां आयुष्मान आनन्द भिक्षुओं के साथ चीवरकर्म कर रहे थे। वहां आयुष्मान आनन्द ने इस बात की पुष्टि की कि कालखेमक शाक्य के विहार में बहुत से भिक्षु विहरते हैं।

यह जान कर भगवान ने आयुष्मान आनन्द को कहा कि जमातबंदी में रहता हुआ भिक्षु शोभा नहीं देता। ऐसा भिक्षु नैष्क्रम्य, एकांत, उपशम, संबोधि तथा चित्त की एकाग्रता से होने वाले सुख का इच्छानुसार लाभी हो सके –इसकी संभावना नहीं होती है। न ही इस बात की संभावना होती है कि वह किसी प्रकार की चित्त की विमुक्ति प्राप्त कर सकेगा।

भगवान ने आगे कहा कि तथागत ने सभी निमित्तों को मन में न ला कर भीतरी शून्यता को प्राप्त कर विहरने की संबोधि प्राप्त की थी। अतः यदि कोई भिक्षु चाहे कि मैं भीतरी शून्यता को प्राप्त कर विहरूं, तो उसे भीतर ही अपने चित्त को संस्थापित करना चाहिए। ऐसा करते समय वह चाहे कैसी भी परिस्थिति में से गुजरे, संप्रज्ञान बना ही रहना चाहिए।

अंत में भगवान ने कहा कि हितैषी शास्ता अनुकंपा करके श्रावकों को धर्मोपदेश करते हैं –'यह तुम्हारे हित के लिए है, यह तुम्हारे सुख के लिए है।' परंतु कोई-कोई श्रावक उसे सुनना नहीं चाहते, उस पर ध्यान नहीं देते और उपदेश का उल्लंघन करते हैं। इस प्रकार वे शास्ता को शत्रुवत मानते हैं, मित्रवत नहीं। पर कोई-कोई श्रावक धर्मोपदेश को सुनना चाहते हैं, उस पर ध्यान देते हैं और उसका उल्लंघन नहीं करते। ऐसे श्रावक शास्ता को मित्रवत मानते हैं, शत्रुवत नहीं। तुम्हें मुझे भी मित्रवत बनाना चाहिये, शत्रुवत नहीं। यह दीर्घ काल तक तुम्हारे हित-सुख के लिए होगा।

३. अच्छरियअब्भुतसुत्त

एक समय भगवान अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां आयुष्मान आनन्द ने भगवान के सम्मुख तथागत के आश्चर्य, अद्भुत धर्म का बखान किया।

उन्होंने कहा कि भगवान के मुख से इन्हें सुनकर मैं इन्हें धारण किये हुये हूं, जैसे कि बोधिसत्त्व स्मृति और संप्रज्ञान के साथ तुसित लोक में उत्पन्न हुए थे; स्मृति और संप्रज्ञान के साथ वहां रहे; आयु-पर्यंत तुसित लोक में रहे; तुसित लोक से च्युत होकर स्मृति और संप्रज्ञान के साथ माता की कोख में प्रविष्ट हुए; इत्यादि।

अंत में भगवान ने कहा कि तुम इसे भी तथागत का आश्चर्य, अद्भुतधर्म जानो – "तथागत की जानकारी में वेदनाएं उत्पन्न होती हैं, जानकारी में स्थित रहती हैं और जानकारी में अस्त हो जाती हैं। ऐसे ही संज्ञाएं, और ऐसे ही वितर्क भी!"

४. बाकुलसुत्त

एक समय आयुष्मान बाकुल राजगह में वेळुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे। वहां उन्होंने अचेल कस्सप के पूछने पर उसे बतलाया कि मुझे प्रव्रजित हुए अस्सी वर्ष हो गए हैं और इस काल में 'मुझे काम-संज्ञा का उत्पन्न होना' मैं नहीं जानता। (आयुष्मान बाकुल का आश्चर्य-अद्भुतधर्म!)

इसी प्रकार आयुष्मान बाकुल ने इन अस्सी वर्षों में व्यापाद-संज्ञा, विहिंसा-संज्ञा; काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्क; आदि उत्पन्न होने की भी अनभिज्ञता प्रकट की। (आयुष्मान बाकुल का आश्चर्य-अद्भुतधर्म!)

अंत में आयुष्मान बाकुल ने बतलाया कि मैंने सात दिन ही स-रण (चित्तमल-युक्त) हो राष्ट्र का अन्न खाया, फिर आठवें दिन अर्हत्व की प्राप्ति की। (आयुष्मान बाकुल का आश्चर्य-अद्भुतधर्म!)

फिर अचेल कस्सप ने इस धर्म-विनय में प्रव्रज्या, उपसंपदा पाने की कामना व्यक्त की और इन्हें पाकर थोड़े ही समय बाद वे अर्हंत हो गए।

एक दिन आयुष्मान बाकुल ने घोषणा की कि आज मेरा परिनिर्वाण होगा। (आयुष्मान बाकुल का आश्चर्य-अद्भुतधर्म!) आयुष्मान बाकुल भिक्षु-संघ के बीच बैठे-बैठे परिनिर्वाण को प्राप्त हुये! (आयुष्मान का आश्चर्य-अद्भुतधर्म!)

५. दन्तभूमिसुत्त

एक समय जब भगवान राजगह में वेळुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे,

उस समय अचिरवत नाम का श्रामणेर अरण्य-कुटी में विहरता था। उस समय जयसेन राजकुमार ने श्रामणेर के पास जा उसे इस विषय पर धर्मोपदेश देने के लिये कहा कि भिक्षु प्रमादरहित, उद्योगी, संयमी हो विहरते चित्त की एकाग्रता को कैसे प्राप्त होता है। श्रामणेर ने धर्मोपदेश दिया, परंतु राजकुमार 'ऐसा नहीं हो सकता' – यह कह कर वहां से चला गया।

तब श्रामणेर ने भगवान के पास जाकर उन्हें यह बात बतलाई। इस पर उन्होंने कहा कि जो नैष्क्रम्य से ज्ञातव्य, द्रष्टव्य, प्राप्तव्य और साक्षात्कार के योग्य है, उसे कामभोगों के मध्य बसता, कामों को भोगता, काम-वितर्कों से खाया जाता हुआ, काम-दाह से जलाया जाता हुआ, कामों की खोज के लिये उत्सुक राजकुमार जान पाये, देख पाये – ऐसा नहीं हो सकता।

फिर भगवान ने हस्ति-दमक द्वारा राजा के कहने पर जंगली हाथी को दान्त, विनीत बनाए जाने की उपमा देते हुए यह बतलाया कि कैसे पांच काम-गुणों में आसक्त व्यक्ति को तथागत दान्त, विनीत बनाते हैं जिससे वह शनैः-शनैः उस अवस्था पर जा पहुँचता है जहां उसे यह ज्ञान जागता है –'मैं मुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक यह जान लेता है –"जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है ।"

भगवान ने आगे कहा कि किसी भी उम्र का हाथी अ-दान्त हो मरे, तो यही कहा जाता है –'हाथी अ-दान्त ही मरा'; और यदि वह दान्त हो मरे, तो कहा जाता है –'हाथी दान्त हो मरा।' ऐसे ही किसी भी उम्र का भिक्षु क्षीणास्रव (अर्हत) हुये बिना मरे, तो यही कहा जाता है –'भिक्षु ने अ-दान्त हो मृत्यु पाई'; और यदि वह क्षीणास्रव होकर प्राण छोड़े, तो कहा जाता है –"भिक्षु ने दान्त हो प्राण छोड़े।"

६. भूमिजसुत्त

एक समय भगवान राजगह में वेळुवन कलन्दक निवापमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान भूमिज जयसेन राजकुमार के घर गए। वहां राजकुमार ने आयुष्मान भूमिज से कहा –"कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण यह मानते हैं कि यदि कोई आशा करके ,अथवा अनाशा करके ,अथवा आशा-अनाशा करके ,अथवा न-आशा-न-अनाशा करके ब्रह्मचर्यवास करता है, तो भी वह फल पाने के अयोग्य होता है। इस बारे में आपके शास्ता का क्या कहना है?"

इस पर आयुष्मान भूमिज ने कहा –"मैंने भगवान के मुख से यह नहीं सुना, पर यह संभव है कि वह ऐसे व्याख्यान करें कि आशा करके ,अथवा अनाशा करके ,अथवा आशा-अनाशा करके ,अथवा न-आशा-न-अनाशा करके भी यदि कोई अ-योनिशः (कार्य-कारण का मन में ध्यान न रखते हुए) ब्रह्मचर्यवास करता है, तो वह फल पाने के अयोग्य होता है। पर यदि योनिशः ब्रह्मचर्यवास करता है, तो वह फल पाने के योग्य हो जाता है।"

यह सुनकर जयसेन राजकुमार कहने लगे – "यदि आपके शास्ता का यह आख्यान है, तो वह सभी श्रमणों-ब्राह्मणों को मात देने वाला है।"

बाद में आयुष्मान भूमिज ने भगवान को यह सारा वृत्तांत कह सुनाया और पूछा कि क्या वैसा उत्तर देकर मैंने भगवान पर असत्य कहने का आरोप तो नहीं लगाया?

भगवान ने उनके कथन को युक्त ठहराया और यह भी कहा कि जो श्रमण-ब्राह्मण मिथ्या दृष्टि, मिथ्या संकल्प, मिथ्या वचन, मिथ्या कर्मांत, मिथ्या आजीव, मिथ्या व्यायाम, मिथ्या स्मृति, मिथ्या समाधि वाले हैं वे आशा करके, अथवा अनाशा करके ,अथवा आशा-अनाशा करके ,अथवा न-आशा-न-अनाशा करके यदि ब्रह्मचर्यवास करते हैं, तो भी वे फल पाने के अयोग्य होते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह फल प्राप्त करने की विधि नहीं है।

अपने कहे का आशय स्पष्ट करने के लिये भगवान ने चार सुंदर उपमाएं भी सुनाईं।

७. अनुरुद्धसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय पञ्चङ्ग स्थपति ने आयुष्मान अनुरुद्ध को अपने यहां आमंत्रित कर उनसे 'अप्रमाणा चेतोविमुक्ति' तथा 'महद्गता चेतोविमुक्ति' के बारे में यह जानना चाहा कि ये दो धर्म भिन्न अर्थ वाले, भिन्न व्यंजन वाले हैं, या एक अर्थ वाले हैं और केवल व्यंजन ही नाना हैं।

इस पर आयुष्मान अनुरुद्ध ने कहा कि ये दोनों धर्म नाना अर्थ वाले और नाना व्यंजन वाले हैं। 'अप्रमाणा चेतोविमुक्ति' तब होती है जब कोई भिक्षु मैत्रीयुक्त चित्त से एक-एक करके सारी दिशाओं को परिपूर्ण कर, विपुल,

प्रमाण-रहित, वैर-रहित, द्वेष-रहित चित्त से सारे लोक को व्याप्त कर विहरता है, और फिर ऐसे ही, क्रमशः, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा युक्त चित्त से विहरता है। 'महद्गता चेतोविमुक्ति' तब होती है जब भिक्षु एक वृक्षमूल के बराबर महद्गत को व्याप्त कर, अधिमुक्त होकर विहरता है, और फिर ऐसे ही दो या तीन वृक्षमूल, अथवा एक ग्रामक्षेत्र, अथवा दो या तीन ग्रामक्षेत्र, अथवा एक साम्राज्य, अथवा दो या तीन साम्राज्य, अथवा समुद्रपर्यंत पृथ्वी के बराबर महद्गत को व्याप्त कर, अधिमुक्त होकर विहरता है। इस पर्याय से भी समझना चाहिए कि ये धर्म नानार्थ भी हैं और नाना-व्यंजन भी।

इसके पश्चात आयुष्मान अनुरुद्ध ने स्थपति को चार भव-उपपत्तियों के बारे में बतलाया कि कोई व्यक्ति कैसे शरीर छोड़ने पर परित्त (अल्प), अप्रमाण, संक्लिष्ट अथवा परिशुद्ध आभा वाले देवताओं के बीच जा उत्पन्न होता है।

ऐसा कहे जाने पर आयुष्मान सभिय कच्चान ने इससे आगे के प्रश्न भी पूछे जिनका आयुष्मान अनुरुद्ध ने यथोचित उत्तर दिया, और यह भी प्रकट किया कि मैं जान कर ऐसा कहता हूं क्योंकि मैं दीर्घकाल तक देवताओं के साथ रहा हूं, उनसे मैंने संलाप किया है, और उनका साक्षात्कार किया है।

८. उपक्किलेससुत्त

एक समय भगवान कोसम्बी के घोसिताराम में विहार करते थे। उस समय कोसम्बी में भिक्षु आपस में कलह एवं विवाद करते थे। भगवान ने उन्हें ऐसा न करने की सीख दी, परंतु यह बात उनकी समझ में नहीं आई। इस पर भगवान कोसम्बी से बालकलोणकार ग्राम होते हुए पाचीनवंसदाय चले गए, जहां आयुष्मान अनुरुद्ध, आयुष्मान नन्दिय और आयुष्मान किमिल विहार करते थे।

वहां भगवान द्वारा आयुष्मानों का कुशलक्षेम आदि पूछे जाने पर उन्होंने बतलाया कि हमारा निर्वाह भली प्रकार हो रहा है। हम एकजुट होकर, मोद-भरे चित्त से, बिना विवाद किए, दूध-पानी के मिश्रण के समान, एक-दूसरे को प्यार-भरी दृष्टि से देखते हुए विहार करते हैं। हमारे शरीर अलग-अलग हैं, पर चित्त एक है।

तत्पश्चात आयुष्मानों ने भगवान से यह जानना चाहा कि हमें ध्यान करते

समय अवभास और रूपों के दर्शन होते हैं, परंतु ये जल्दी ही अंतर्धान हो जाते हैं – इसका क्या कारण है?

इस पर भगवान ने कहा कि संबोधि प्राप्त करने से पहले मुझे भी ऐसा ही होता था, परंतु इसका कारण खोजने पर मुझे मालूम हुआ कि इसके हेतु हैं – (१) विचिकित्सा; (२) अमनसिकार; (३) स्त्यानमृद्ध; (४) स्तंभितत्त्व (भय से जड़ीभूत होना); (५) उत्पीड़ा; (६) दु:स्थौल्य (फूहड़पना); (७) अत्यधिक अभ्यास; (८) अत्यल्प अभ्यास; (९) अभिजल्प; (१०) नानात्व-संज्ञा; तथा (११) अतिनिध्यायितत्त्व (अत्यधिक ध्यान लगाना)। तब मैंने इन्हें चित्त के उपक्लेश जान कर इनको छोड़ दिया। इसके बाद प्रमादरहित, निरालस, संयमी हो विहार करने पर मैं अवभास को जानता, और रूपों को नहीं देखता था; रूपों को देखता, और अवभास को नहीं पहचानता था कि केवल रात है, या केवल दिन, या केवल रात-दिन। फिर मैंने इसका भी कारण खोज लिया।

भगवान ने आगे कहा कि मेरे चित्त के उपक्लेश छूट जाने पर मैं जिस प्रकार से समाधि भावना करने लगा उससे मुझे ज्ञान-दर्शन हुआ, और मेरी चित्त की विमुक्ति अचल हो गई – "यह अंतिम जन्म है, अब कोई नया भव नहीं है"।

९. बालपण्डितसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को मूर्ख के तीन लक्षण बतलाए –(१) दुष्चिंतित की चिंता करने वाला, (२) दुर्भाषित को बोलने वाला, (३) दुष्कृत कर्म को करने वाला। फिर यह बतलाया कि वह इसी जन्म में कितने प्रकार के दु:ख-दौर्मनस्य अनुभव करता है, और शरीर छोड़ने पर नरक में उत्पन्न होता है। नरक में जितना दु:ख है उसकी उपमा देना आसान नहीं है।

गंदगी में ही जन्मने, बूढ़े होने और मरने वाले तिर्यग्योनि के प्राणियों की चर्चा करते समय भगवान ने कहा कि यदि एक छेद वाले जुए को महासमुद्र में फेंक दिया जाए और उसे पवन अलग-अलग दिशाओं में बहाती रहे, और वहां एक काना कछुवा हो जो सौ-सौ वर्ष बाद उतराता हो, तो वह शायद कभी किसी समय दीर्घकाल के पश्चात उस छेद वाले जुए में अपनी गर्दन घुसा सके। इसमें जितना समय लगता हो, उससे कहीं अधिक समय एक बार पतित हुए मूर्ख को फिर मनुष्यत्व की प्राप्ति में लगेगा। कारण? –तिर्यग्योनि में धर्मचर्या, समचर्या,

कुशलक्रिया,पुण्यक्रिया का अभाव रहता है। यहां एक दूसरे के भक्षक ही रहते हैं। फिर भी इस योनि का प्राणी जब कभी मनुष्यत्व-लाभ करता है, तब नीच कुल में ही, दुर्वर्ण, दुर्दर्शन, विपन्नता-ग्रस्त हो उत्पन्न होता है।

इसके पश्चात भगवान ने पंडित के तीन लक्षण बतलाए –

(१) सुचिंतित की चिंता करने वाला,

(२) सुभाषित को बोलने वाला,

(३) सुकृत कर्म का करने वाला।

फिर यह बतलाया कि वह इसी जन्म में कितने प्रकार के सुख-सौमनस्य का अनुभव करता है, और शरीर छोड़ने पर स्वर्ग में उत्पन्न होता है। और स्वर्ग में जितना सुख है उसकी उपमा देना आसान नहीं है। ऐसा व्यक्ति जब मनुष्य-योनि में आता है, तब उच्चकुल में ही, वर्णवान, दर्शनीय, वैभव-संपन्न हो, उत्पन्न होता है।

१०. देवदूतसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बतलाया कि मैं अमानुष, विशुद्ध, दिव्यचक्षु से अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगति वाले, दुर्गति वाले प्राणियों को मरते-जन्मते जानता हूं। इनमें से काया, वाणी तथा मन से दुराचार करने वाले, आर्यों के निंदक, मिथ्या-दृष्टि वाले नरक में उत्पन्न होते हैं।

तदुपरांत भगवान ने कहा कि नरक में उत्पन्न हुए को यमराज बारी-बारी से इन पांच देवदूतों के बारे में पूछते हैं – (१) उत्तान सोने वाला, मल-मूत्र में लिपटा, अबोध छोटा बालक; (२) डंडे के सहारे चलता हुआ, कंपायमान, गत-यौवन, टूटे दांत एवं सफेद बालों वाला जीर्ण व्यक्ति; (३) दूसरों द्वारा सेवा किया जाता अत्यंत रुग्ण व्यक्ति; (४) अनाचार के कारण शासक द्वारा दंडित किया जाता व्यक्ति; और (५) फूला हुआ, विवर्ण, पीब से भरा मृत व्यक्ति। जब वह व्यक्ति इनकी जानकारी होना अंगीकार करता है, तब यमराज उसे कहते हैं कि इन्हें देख कर तो तुम्हें होश जागना चाहिए था कि मैं भी जातिधर्मा, जराधर्मा, व्याधिधर्मा, दुष्कर्मों के कारण दंड भोगने वाला और मरणधर्मा हूं, और मैं काया, वाणी तथा मन से अच्छा काम करूं।जब वह व्यक्ति अपनी भूल

स्वीकार करता है, तब यमराज उसे कहते हैं कि पाप-कर्म तूने ही किया है, किसी दूसरे ने नहीं, अतः इसका फल तुझे ही भुगतना होगा।

तत्पश्चात यमदूत उस व्यक्ति को पंचविधबंधन नाम की यातना देते हैं, जिससे उसे अति-दुःखद वेदना अनुभव होती है। फिर नरक और नारकीय यातनाओं का विशद वर्णन मिलता है।

अंत में भगवान ने अपनी स्वयं की जानकारी के आधार पर कहा कि पूर्वकाल में यमराज को ऐसा हुआ था कि संसार में अकुशल कर्म करने वाले इस प्रकार की यातनाएं पाते हैं। अहो ! मैं मनुष्यत्व को प्राप्त होऊं और लोक में तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध उत्पन्न होवें, मैं उनकी पर्युपासना करूं, वह मुझे धर्म सिखाएं और मैं धर्म को भली प्रकार समझूं।

इसके उपरांत भगवान ने यह भी कहा कि देवदूत से प्रेरित होकर भी जो लोग प्रमाद करते हैं, वे नीची योनि प्राप्त कर लंबे समय तक शोक करते हैं, और जो आर्य-धर्म में कभी प्रमाद नहीं करते, वे जन्म-मरण के क्षय से उपादान-रहित हो विमुक्त हो जाते हैं।

---

४. विभङ्गवग्ग

१. भद्देक रत्तसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –"अतीत के पीछे न पड़े, भविष्य की चिंता न करे। अतीत तो नष्ट हो चुका है और भविष्य अभी आया नहीं है। जो प्रत्युत्पन्न (इस समय प्रकट हुआ) धर्म है, उसे जहां-तहां विचय (टुकड़े-टुकड़े) करते हुए देखें। जो अविनाशी, अचल है उसका बढ़ावा करें"।

"आज ही से उद्योग आरंभ कर देना चाहिए, कौन जाने कल मरना हो जाए! बड़ी सेना वाले मृत्युराज के साथ हमारा कोई इकरार नहीं है। रात-दिन, बिना आलस किए, उद्योगी हो, इस प्रकार विहार करने वाले को शांत मुनि-जन 'भद्रैकरत' कहते हैं।"

इसके बाद भगवान ने समझाया कि कोई व्यक्ति कैसे अतीत के पीछे पड़ता है और कैसे इसके पीछे नहीं पड़ता है; कैसे भविष्य की चिंता करता है और कैसे चिंता नहीं करता है; कैसे प्रत्युत्पन्न धर्मों में आसक्त होता है और कैसे आसक्त नहीं होता है।

२. आनन्दभद्देक रत्तसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस काल में आयुष्मान आनन्द ने भिक्षुओं को भद्देकरत्त के उद्देश और विभंग को कहा। भगवान ने इसका न केवल अनुमोदन ही किया, बल्कि स्वयं भी इसको दोहराया।

३. महाकच्चानभद्देक रत्तसुत्त

एक समय भगवान राजगह में तपोदाराम में विहार करते थे। वहां आयुष्मान समिद्धि ने एक देवता से प्रेरणा पाकर उन्हें भद्देकरत्त के उद्देश और विभंग का उपदेश करने के लिए निवेदन किया।

इस पर भगवान ने यह उपदेश किया (देखिए 'भद्देकरत्तसुत्त' – सुत्त सं. १३१) और इसके बाद विहार में चले गए।

उनके चले जाने के थोड़े ही समय पश्चात भिक्षुओं को हुआ कि भगवान संक्षेप से उद्देश कहकर, बिना विस्तार से विभाग किए, विहार में चले गए हैं। अतः उन्होंने शास्ता से प्रशंसित, और विज्ञ सब्रह्मचारियों से संभावित (सत्कृत), आयुष्मान महाकच्चान को भगवान के कहे को विस्तार से अर्थ-विभाग करने के लिए अनुरोध किया।

आयुष्मान महाकच्चान ने भिक्षुओं को समझाया कि कोई कैसे अतीत का अनुगमन करता है, कैसे अनुगमन नहीं करता है; कैसे अनागत की चिंता करता है, कैसे चिंता नहीं करता है; कैसे प्रत्युत्पन्न धर्मों में आसक्त होता है, कैसे आसक्त नहीं होता है।

आयुष्मान महाकच्चान ने कहा कि भगवान के संक्षेप में कहे भाषण का अर्थ मैं इस प्रकार विस्तार से जानता हूं। यदि आप चाहो तो भगवान से भी इस बारे में पूछ लो, और जैसा वे कहें वैसा धारण करो।

वे भिक्षु भगवान के पास गए और उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया। भगवान ने उन्हें कहा कि महाकच्चान पंडित है, महाप्रज्ञावान है। यदि तुम मुझसे यही बात पूछते, तो मैं भी इसका इसी प्रकार व्याख्यान करता, जैसा कि महाकच्चान ने किया है। यही इसका अर्थ है, इसे इसी प्रकार धारण करो।

४. लोमसकङ्गियभद्देकरत्तसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने आयुष्मान लोमसकङ्गिय के अनुरोध पर उन्हें भद्देकरत्त के उद्देश और विभंग को कहा।

५. चूळकम्मविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां तोदेय्य-पुत्र सुभ नाम के तरुण ने उनसे यह जानना चाहा कि किस कारणसे मनुष्यों में अल्पायु, दीर्घायु; बहुरोगी, अल्परोगी; दुर्वर्ण, वर्णवान;

अल्प-सामर्थ्यवान, महा-सामर्थ्यवान; अल्पभोग वाले, महाभोग वाले; नीच कुल वाले, ऊंचे कुल वाले; दुष्प्रज्ञ, प्रज्ञावान होते हैं।

भगवान ने कहा कि प्राणी कर्म-स्वक (कर्म ही धन है जिनका), कर्म-दायाद, कर्म-योनि, कर्म-बंधु, कर्म-प्रतिशरण होते हैं। कर्म ही प्राणियों को इस हीनता-प्रणीतता में विभक्त करता है ।

फिर उन्होंने विस्तार से यह भी समझाया कि कैसे-कैसे कर्मों से मनुष्यों में हीनता अथवा प्रणीतता आती है।

६. महाकम्मविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान राजगह में वेळुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे। वहां उन्होंने आयुष्मान आनन्द को महाकर्मविभंग का विभाजन करके सुनाया।

उन्होंने कहा कि संसार में चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं –

(१) दुःशील, लोभी, द्वेषयुक्त चित्त एवं मिथ्या दृष्टि वाला, जो शरीर छोड़ने पर नरक में उत्पन्न होता है;

(२) ऐसा ही, जो शरीर छोड़ने पर स्वर्ग में उत्पन्न होता है;

(३) शीलवान, निर्लोभी, द्वेषरहित चित्त एवं सम्यक दृष्टि वाला, जो शरीर छोड़ने पर स्वर्ग में उत्पन्न होता है; और

(४) ऐसा ही, जो शरीर छोड़ने पर नरक में उत्पन्न होता है।

जो कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण अपनी समाधि के बल पर दिव्य चक्षु से दुःशील व्यक्ति को नरक में जन्मा देखते हैं, उन्हें लगता है कि पाप कर्म होता है और उसका फल भी होता है; ऐसे व्यक्ति को स्वर्ग में जन्मा देख कर उन्हें लगता है कि कोई पाप-कर्म नहीं होता, न इसका फल होता है। शीलवान व्यक्ति को स्वर्ग में जन्मा देख कर उन्हें लगता है कि पुण्य कर्म होता है और उसका फल भी होता है; पर ऐसे व्यक्ति को नरक में जन्मा देख कर उन्हें लगता है कि कोई पुण्य कर्म नहीं होता, न इसका फल ही होता है।

भगवान ने कहा –

* पहले प्रकार का व्यक्ति दुःखवेदनीय पाप कर्म को पहले ही कर लिया होता है, या पीछे कर लिया होता है, या उसने मृत्यु के समय मिथ्या दृष्टि ग्रहण की

होती है। वह यहां अपने किये का फल या तो इसी जन्म में भोग लेता है, या उत्पन्न होकर दूसरी बार।

* दूसरे प्रकार का व्यक्ति सुखवेदनीय पुण्य कर्म को पहले ही कर लिया होता है, या पीछे कर लिया होता है; या उसने मृत्यु के समय सम्यक दृष्टि ग्रहण की होती है। वह यहां अपने किये का फल या तो इसी जन्म में भोग लेता है, या उत्पन्न होकर दूसरी बार।

* तीसरे प्रकार का व्यक्ति पुण्य कर्म को पहले ही कर लिया होता है, या पीछे कर लिया होता है, या उसने मृत्यु के समय सम्यक दृष्टि ग्रहण की होती है। वह यहां अपने किए का फल या तो इसी जन्म में भोगता है, या उत्पन्न होकर दूसरी बार।

* चौथे प्रकार का व्यक्ति पाप कर्म को पहले ही कर लिया होता है, या पीछे कर लिया होता है, या उसने मृत्यु के समय मिथ्या दृष्टि ग्रहण की होती है। वह यहां अपने किए का फल या तो इसी जन्म में भोग लेता है, या उत्पन्न होकर दूसरी बार।

इस प्रकार अभव्य प्रतीत होने वाले अभव्य कर्म होते हैं; भव्य प्रतीत होने वाले अभव्य कर्म होते हैं; भव्य प्रतीत होने वाले भव्य कर्म भी होते हैं; और अभव्य प्रतीत होने वाले भव्य कर्म भी होते हैं।

७. सळायतनविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को सळायतनविभङ्ग का उपदेश देते हुए कहा – "इन-इन को जानना चाहिए –छः भीतर के आयतन, छः बाहर के आयतन, छः विज्ञान-काय, छः स्पर्श-काय, अठारह मनोपविचार तथा छत्तीस सत्त्वपद। वहां (करना होता है) –'इसके द्वारा इसे छोड़ो'। तीन स्मृति-प्रस्थान हैं, जिन्हें आर्य सेवन करते हैं। इन्हें सेवन करने वाला आर्य शास्ता, गण (अनुयायी-वर्ग) का अनुशासन कर सकता है। ऐसा शास्ता प्रशिक्षण देने वाले आचार्यों में अनुपम पुरुष-दम्य-सारथी (पुरुषों को विनय सिखलाने वाला चाबुक-सवार) कहलाता है।"

तदुपरांत भगवान ने समझाया –

* छः भीतर के आयतन हैं – चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया, मन।

* छः बाहर के आयतन हैं – रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म।

* छः विज्ञान-काय हैं – चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान, मनोविज्ञान।

* छः स्पर्श-काय हैं – चक्षु:संस्पर्श, श्रोत्रसंस्पर्श, घ्राणसंस्पर्श, जिह्वासंस्पर्श, कायसंस्पर्श, मन:संस्पर्श।

* अठारह मनोपविचार हैं – छः भीतर के आयतनों द्वारा अपने से संबद्ध बाहर के आयतनों को ग्रहण करने से सौमनस्य, दौर्मनस्य अथवा उपेक्षाभाव का उप-विचार आना।

* छत्तीस सत्त्वपद हैं – छः गेध (लोभ) संबंधी सौमनस्य, छः नैष्क्रम्य-संबंधी सौमनस्य, छः गेध-संबंधी दौर्मनस्य, छः नैष्क्रम्य-संबंधी दौर्मनस्य, छः गेध-संबंधी उपेक्षाभाव, छः नैष्क्रम्य-संबंधी उपेक्षाभाव।

* 'इसके द्वारा इसे छोड़ो' – इससे तात्पर्य है नैष्क्रम्य से संबद्ध सौमनस्य, दौर्मनस्य अथवा उपेक्षा का आश्रय लेकर, क्रमशः, गेध (लोभ) से संबद्ध सौमनस्य, दौर्मनस्य, अथवा उपेक्षा को छोड़ देना; और इसी प्रकार नैष्क्रम्य से संबद्ध सौमनस्य अथवा उपेक्षा का आश्रय लेकर, क्रमशः, नैष्क्रम्य से संबद्ध दौर्मनस्य अथवा सौमनस्य को छोड़ देना।

* 'तीन स्मृति-प्रस्थान जिनके सेवन से आर्य शास्ता, गण (अनुयायीवर्ग) का अनुशासन कर सकता है' – इसका आशय है कि हितैषी शास्ता द्वारा श्रावकों को धर्मोपदेश करने पर यदि श्रावक ध्यान न दें, अथवा कोई-कोई ध्यान दें और कोई-कोई ध्यान न दें, अथवा सभी ध्यान दें, तो तथागत पहली दो परिस्थितियों में न तो असंतुष्ट होते हैं, न संतुष्ट; और केवल तीसरी परिस्थिति में संतोष अनुभव करते हैं; पर तीनों परिस्थितियों में उपेक्षाभाव बनाए हुए स्मृति और संप्रज्ञान के साथ विहरते हैं। ये ही हैं तीन स्मृति-प्रस्थान।

* 'अनुपम पुरुष-दम्य-सारथी' – इसका आशय है कि अपने-अपने प्रशिक्षकों द्वारा दान्त (विनीत) किए हुए हाथी, घोड़े, बैल एक ही दिशा में भागते हैं, परंतु तथागत पुरुषों को दान्त करने वाले ऐसे सारथी हैं जिनके द्वारा विनीत किया हुआ आठों दिशाओं में भागता है। (भगवान ने एक-एक करके इन आठों दिशाओं का वर्णन करते हुए समझाया कि जब कोई नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का

सर्वथा अतिक्रमण कर संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था को प्राप्त कर विहरता है, तब वह होती है आठवीं दिशा।)

८. उद्देसविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को उद्देस-विभंग का उपदेश देते हुए कहा –"भिक्षु को वैसे-वैसे उपपरीक्षण करना चाहिये जिससे उसका विज्ञान (चित्त) बाहर अ-विक्षिप्त रहे, और भीतर भी अ-संस्थित हो, उपादान न करने के कारण, उत्तेजना को प्राप्त न हो। ऐसा होने से आगे के लिये जन्म-जरा-मरण रूपी दुःख पैदा होने की संभावना नहीं रह जाती है।"

यह कहकर भगवान आसन से उठ कर विहार में चले गए। उनके चले जाने के पश्चात भिक्षुओं को लगा कि भगवान संक्षेप में उपदेश देकर, बिना विस्तार से अर्थ का विभाजन किए, विहार में चले गए हैं। अतः उन्होंने शास्ता से प्रशंसित, और विज्ञ सब्रह्मचारियों द्वारा संभावित (सत्कृत), आयुष्मान महाकच्चान को भगवान के कहे का विस्तार से अर्थ-विभाग करने के लिए अनुरोध किया।

आयुष्मान महाकच्चान ने भिक्षुओं को विस्तार से समझाया कि कैसे विज्ञान को बाहर विक्षिप्त अथवा अ-विक्षिप्त, और भीतर संस्थित अथवा अ-संस्थित कहा जाता है, और कैसे उपादान न करने से उत्तेजना होती है अथवा नहीं होती है।

आयुष्मान महाकच्चान ने कहा कि भगवान के संक्षेप में कहे भाषण का अर्थ मैं इस प्रकार विस्तार से जानता हूं। यदि आप चाहो तो भगवान से भी इस बारे में पूछ लो, और जैसा वे कहें वैसा धारण करो।

वे भिक्षु भगवान के पास गए और उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया। भगवान ने उन्हें कहा कि महाकच्चान पंडित है, महाप्रज्ञावान है। यदि तुम मुझसे यही बात पूछते, तो मैं भी इसका इसी प्रकार व्याख्यान करता, जैसा कि महाकच्चान ने किया है। यही इसका अर्थ है, इसे इसी प्रकार धारण करो।

९. अरणविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा –

(१) न तो हीन, गंवारु, पृथग्जनों द्वारा सेवित, अनार्य, अनर्थयुक्त कामके सुख में लगना चाहिये, और न ही अपने आप को कष्ट देने वाले दु:खपूर्ण, अनार्य, अनर्थयुक्त अभ्यास में।

(२) इन दोनों अतियों को छोड़, तथागत ने मध्यम मार्ग का प्रज्ञापन किया है, जो उपशम-अभिज्ञा-संबोधि-निर्वाण के लिए है।

(३) उस्सादन (प्रसन्न करने) को भी जाने, अपसादन (अप्रसन्न, नाराज करने) को भी जाने। इन दोनों को जानकर न प्रसन्न करे, न नाराज; धर्म का ही उपदेश करे।

(४) सुखविनिश्चय को जाने, और इसे जान कर आंतरिक सुख में मग्न हो।

(५) रहस्यमय ढंग से बात न करे, मुंह सामने घटिया बात न बोले।

(६) धीरे-धीरे बोले, जल्दी-जल्दी नहीं।

(७) जनपद की निरुक्ति बीच में न डाले, समञ्ञा के पीछे अतिधावन न करे।

– यह अरण-विभंग का उद्देश है।"

तदुपरांत भगवान ने अपने कहे को विस्तार से समझाया और यह भी बतलाया कि इनमें से कौन से धर्म उपघात-उपायास-परिदाह से युक्त होने के कारण 'स-रण', और कौन से धर्म उपघात-उपायास-परिदाह से रहित होने के कारण 'अ-रण' हैं। धर्मों का 'स-रण' होना मिथ्या मार्ग है, और धर्मों का 'अ-रण' होना सम्यक मार्ग।

अंत में भगवान ने कहा –"भिक्षुओ! 'स-रण' और 'अ-रण' धर्मों को जानो। 'स-रण' धर्म को जान कर, 'अ-रण' धर्म को जान कर, 'हम अ-रण (दु:ख-रहित) मार्ग पर चलेंगे' – इस प्रकार तुम्हें सीखना चाहिए।"

१०. धातुविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान मगध देश में चारिका करते हुए राजगह जा पहुँचे और वहां रात्रि-निवास करने के लिए भार्गव कुंभकार के घर रुक गए। वहां पहले से ही पुक्कुसाति नाम का कुलपुत्र ठहरा हुआ था जो भगवान के ही नाम पर घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ था।

आयुष्मान पुक्कुसाति ने भगवान को पहले कभी देखा नहीं था, अतः उन्हें पहचान नहीं पाया।

भगवान को हुआ कि यह कुलपुत्र मेरे ही नाम पर प्रव्रजित हुआ है, अतः क्यों न मैं इसे धर्मोपदेश करूं? तब उन्होंने उसे यह उपदेश दिया – "भिक्षु! यह पुरुष छः धातुओं, छः स्पर्शायतनों, अठारह मनोपविचारों, चार अधिष्ठानों वाला है, जहां स्थित इसके मान प्रवृत्त नहीं होते। मान प्रवृत्त न होने पर मुनि 'शांत' कहलाता है। प्रज्ञा के सम्बन्ध में प्रमाद न करे, सत्य की रक्षा करे, त्याग को बढ़ाए, उपशम का ही अभ्यास करे। – यह धातुविभंग का उद्देश है।"

इसके बाद भगवान ने इसका आगे विवेचन करते हुए भिक्षु को इसे धारण करने के लिए कहा।

तब आयुष्मान पुक्कुसाति बोल उठे – "अहो! मुझे शास्ता मिल गए, सुगत मिल गए, सम्यक संबुद्ध मिल गए।" फिर उन्होंने भगवान के पास उपसंपदा पाने के लिए उनसे याचना की और इस प्रयोजन के लिए पात्र, चीवर की तलाश में निकल गए। उस काल में किसी पागल गाय ने उन्हें मार डाला।

तब बहुत से भिक्षु भगवान के पास गए और उन्हें यह समाचार कह सुनाया, और यह भी पूछ लिया कि उस भिक्षु की क्या गति होगी। इस पर भगवान ने कहा –"भिक्षुओ! पुक्कुसाति कुलपुत्र पंडित, सत्यवादी, गहराईयों तक धर्म का आचरण करने वाला था, उसने मुझे धर्म के विषय में कोई कष्ट नहीं दिया। वह पांचों अवरभागीय संयोजनों के क्षय से औपपातिक हो, वहां देवलोक में निर्वाण पाने वाला है, उस लोक से लौटने वाला नहीं है।"

११. सच्चविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान बाराणसी में इसिपतन-मिगदाय में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा कि तथागत ने इसी स्थान पर चार आर्य सत्यों की देशना-रूपी धर्मचक्र को प्रवर्तित किया था जो श्रमण, देव, मार, ब्रह्मा, अथवा लोक में किसी से भी अ-प्रवर्तित नहीं किया जा सकता। चार आर्य सत्य हैं – दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध तथा दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा।

फिर उन्होंने कहा कि सारिपुत्त तथा मोग्गल्लान की संगति करो। ये पंडित हैं और स-ब्रह्मचारियों पर अनुग्रह करने वाले हैं। सारिपुत्त जन्म-दाता के समान है

और मोग्गल्लान जन्मे हुए की देखभाल करनेवाले के समान। सारिपुत्त सोतापत्ति का फल प्राप्त कराता है और मोग्गल्लान उत्तम-अर्थ (निर्वाण) तक ले जाता है। सारिपुत्त चार आर्य सत्यों की विस्तारपूर्वक देशना करने में समर्थ है।

भगवान के चले जाने के उपरांत आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को चार आर्य सत्यों के बारे में विस्तार से समझाया।

१२. दक्खिणाविभङ्गसुत्त

एक समय भगवान सक्क (शाक्य) जनपद में कपिलवत्थु के निग्रोधाराम में विहार करते थे। वहां महापजापति गोतमी ने उन्हें अपने द्वारा काता, बुना एक नया धुस्सा-जोड़ा स्वीकार करने के लिये निवेदन किया, परंतु उन्होंने कहा – "गोतमी! इसे संघ को दे दे, संघ को देने से मैं भी पूजित होऊँगा और संघ भी।"

तब आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा कि आपकी मौसी महापजापति गोतमी आपकी क्षीर-दायिका रही हैं, और आपका भी इन पर बड़ा उपकार रहा है, जैसा कि आपके कारण ही यह दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध तथा दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा के विषय में संशय-रहित हुई हैं। अतः आप इनकी भेंट स्वीकार कर लें।

इस पर भगवान ने कहा –"आनन्द! कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति के सहारे बुद्ध, धर्म, संघ का शरणागत होता है। परंतु आदर-सत्कार, भेंट-सेवा, कदाचार से विरत होना, आर्य सत्यों के विषय में संशय-रहित होना एक व्यक्ति का दूसरे के प्रति प्रत्युपकार नहीं कहलाता।"

तदुपरांत भगवान ने चौदह प्रकार की व्यक्तिगत दक्षिणाओं (दान) और सात प्रकार की संघ-गत दक्षिणाओं के बारे में बतलाया। उन्होंने चार प्रकार की दक्षिणा-विशुद्धियों की जानकारी भी दी।

५. सळायतनवग्ग

१. अनाथपिण्डिकोवादसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति बहुत बीमार और दुःखी था। उसने यह सूचना भगवान को भिजवाई और आयुष्मान सारिपुत्त को भी सूचित करते हुए अपने यहां आने के लिए कहला भेजा ।

आयुष्मान सारिपुत्त आयुष्मान आनन्द को अनुगामी बना अनाथपिण्डिक के घर गए और उसका कुशलक्षेम पूछा। इस पर अनाथपिण्डिक ने कहा –"मुझे ठीक नहीं है, बड़ी दुःखमय वेदनाएं आ रही हैं जो जाने का नाम नहीं लेतीं, सिर में जोरों की पीड़ा है, तेज वायु पेट को काट रही है और शरीर खूब जल रहा है।"

यह सुन कर आयुष्मान सारिपुत्त ने अनाथपिण्डिक को चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया एवं मन – इन छः इंद्रियों, इनके विषयों, इनके विज्ञान, इनके संस्पर्श, इनके संस्पर्श से होने वाली वेदनाओं; (आकाश-धातु एवं विज्ञान-धातु सहित) छः धातुओं; पांच स्कंधों; आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन; इहलोक, परलोक; दृष्ट, श्रुत, घ्राण, जिह्वा तथा स्पर्शेन्द्रिय द्वारा अनुभूत, विज्ञात, प्राप्त, पर्येषित, अनुपर्येषित तथा मन द्वारा अनुविचारित के प्रति उपादान न करने और इनमें विज्ञान (चित्त) को न ठहराने का अभ्यास करने के लिए कहा।

ऐसा कहे जाने पर अनाथपिण्डिक रो पड़ा और कहने लगा कि मैंने ऐसी धार्मिक कथा पहले कभी नहीं सुनी।

आयुष्मान सारिपुत्त तथा आयुष्मान आनन्द के चले जाने के थोड़े ही समय के बाद अनाथपिण्डिक गृहपति ने शरीर छोड़ दिया और वह तुसित देवलोक में उत्पन्न हुआ।

२. छन्नोवादसुत्त

एक समय भगवान राजगह में वेळुवन कलन्दक निवापमें विहार करते थे। तब

आयुष्मान सारिपुत्त, आयुष्मान महाचुन्द तथा आयुष्मान छन्न गिज्झकूट पर्वत पर विहरते थे। उस समय आयुष्मान छन्न बहुत बीमार और दुःखी थे।

आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महाचुन्द आयुष्मान छन्न का कुशलक्षेम पूछने के लिए गए। वहां आयुष्मान छन्न ने कहा –"मुझे ठीक नहीं है, बड़ी दुःखमय वेदनाएं आ रही हैं जो जाने का नाम नहीं लेतीं, सिर में जोरों की पीड़ा है, तेज वायु पेट को काट रही है और शरीर खूब जल रहा है। मैं अपने आप को शस्त्र मार लूंगा, मैं जीना नहीं चाहता।"

यह सुनकर आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान छन्न को अपने आप को शस्त्र न मारने के लिए कहा, परंतु आयुष्मान छन्न बोले – "छन्न भिक्षु निर्दोष (पुनर्जन्म-रहित) शस्त्रघात करेंगे – आप इसे ऐसे धारण करें।"

तत्पश्चात आयुष्मान सारिपुत्त द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में आयुष्मान छन्न ने कहा –"मैं चक्षु, चक्षुर्विज्ञान और चक्षुर्विज्ञान द्वारा जानने योग्य धर्मों को – 'यह मेरा नहीं है', 'यह मैं नहीं हूं,''यह मेरी आत्मा नहीं है' –ऐसा समझता हूं। और ऐसे ही श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया और मन, इनके अपने-अपने विज्ञानों और इन विज्ञानों द्वारा जानने योग्य धर्मों के बारे में भी।

"और ऐसा समझने का कारण यह है कि मैं इन इन्द्रियों, इनके अपने-अपने विज्ञानों और इन विज्ञानों द्वारा जानने योग्य धर्मों में निरोध को देखता हूं।"

तदनंतर आयुष्मान महाचुन्द ने आयुष्मान छन्न को भगवान के उस सनातन उपदेश को भी मन में करने के लिए कहा जिसमें बतलाया गया है कि दुःख का अंत क्या और कैसे होता है। फिर आयुष्मान सारिपुत्त एवं आयुष्मान महाचुन्द वहां से चले आए। इसके थोड़े ही समय पश्चात आयुष्मान छन्न ने अपने आप को शस्त्र मार लिया।

आयुष्मान सारिपुत्त द्वारा भगवान से आयुष्मान छन्न की गति के बारे में पूछे जाने पर उन्होंने कहा –"जो इस काया को छोड़ दूसरी काया को ग्रहण करता है, उसे मैं 'स-उपवर्ज्य' कहता हूं। वह छन्न भिक्षु को नहीं था। 'अन-उपवर्ज्य (पुनर्जन्म-रहित) हो छन्न भिक्षु ने अपने आप को शस्त्र मारा' –इस प्रकार इसे धारण करो।"

३. पुण्णोवादसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां आयुष्मान पुण्ण ने उनसे प्रार्थना की कि मुझे संक्षेप में धर्मोपदेश करें जिसे सुन कर मैं एकाकी, एकांत-सेवी, अप्रमादी, उद्योगी, संयमी होकर विहार करूं।

इस पर भगवान ने उन्हें कहा कि इंद्रियों से जानने योग्य विषयों का अभिनंदन करने से नंदी (तृष्णा) उत्पन्न होती है। नंदी के समुदय से दुःख का समुदय होता है। इंद्रियों से जानने योग्य विषयों का अभिनंदन न करने से नंदी निरुद्ध हो जाती है। नंदी के निरोध से दुःख का निरोध हो जाता है।

फिर भगवान ने उनसे पूछा कि मेरे इस संक्षिप्त धर्मोपदेश को सुन कर कौनसे जनपद में विहार करोगे? आयुष्मान पुण्ण ने सुनापरांत जनपद का नाम लिया।

भगवान ने जतलाया कि वहां के लोग तो बहुत चंड स्वभाव के होते हैं। परंतु जब आयुष्मान पुण्ण ने अपनी सहिष्णुता की पराकाष्ठा का परिचय दिया, तब भगवान ने उन्हें उपरोक्त जनपद में वास करने के योग्य बतलाया।

सुनापरांत जनपद में विहार करते हुए आयुष्मान पुण्ण ने तीनों विद्याओं का साक्षात्कार किया और बाद में परिनिर्वाण-लाभ किया।

४. नन्दकोवादसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय स्थविर भिक्षु बारी-बारी से पांच सौ भिक्षुणियों को उपदेश दिया करते थे।

अपनी बारी आने पर आयुष्मान नन्दक ने राजकाराम जा कर भिक्षुणियों को प्रश्नोत्तर के माध्यम से उपदेश दिया। उन्होंने भीतर-बाहर के छः-छः आयतनों तथा छः प्रकार की विज्ञानकाया की अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता के बारे में चर्चा की। उन्होंने यह भी बतलाया कि सात बोध्यंगों की भावना करने से भिक्षु इसी जन्म में आस्रवों के क्षय से आस्रव-रहित चेतो-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरता है।

भगवान ने आयुष्मान नन्दक को अगले दिन भी भिक्षुणियों को उपदेश देने के लिए कहा । इस पर उन्होंने वैसा ही किया।

बाद में भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि नन्दक के धर्मोपदेश से भिक्षुणियां संतुष्ट हुई हैं, और परिपूर्ण-संकल्प भी। उन्होंने यह भी व्यक्त किया कि उन पांच सौ भिक्षुणियों में जो सबसे पीछे हैं वे भी सोतापन्न हैं; मुक्ति के मार्ग पर अडिग और निश्चित रूप से संबोधि प्राप्त करने वाली हैं।

५. चूळराहुलोवादसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने राहुल को आस्रवों के क्षय की ओर ले चलने को सोच, उसे दिवाविहार के लिये अन्धवन चलने के लिए कहा।

'आज भगवान आयुष्मान राहुल को आस्रवों के क्षय की ओर ले चलेंगे' –यह सोच, कई लाख देवता भी भगवान के पीछे-पीछे हो लिये।

अन्धवन में भगवान ने राहुल को इंद्रियों, उनके विषयों, उनके अपने-अपने विज्ञानों, उनके संस्पर्शों, इन संस्पर्शों के कारण उत्पन्न वेदना-संज्ञा-संस्कार-विज्ञान-विषयक ज्ञान की अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता के बारे में समझाया। फिर यह कहा कि इस प्रकार देखते श्रुतवान आर्य-श्रावक इन सभी से निर्वेद को प्राप्त होता है। निर्वेद को प्राप्त हो विरक्त होता है। विराग होने से विमुक्त होता है। विमुक्त होने पर 'विमुक्त हूं!' –यह ज्ञान होता है। फिर यह जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे आना नहीं है।'

तभी आयुष्मान राहुल का चित्त उपादान न कर, आस्रवों से मुक्त हो गया। और उन कई लाख देवताओं को विरज, विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ –'जो कुछ उत्पत्ति स्वभाव वाला है, वह सब निरोध स्वभाव वाला भी है'।

६. छछक्क सुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को छः छक्कों का उपदेश दिया –(१) छः भीतरी

आयतन, (२) छः बाहरी आयतन, (३) छः विज्ञान-काय, (४) छः स्पर्श-काय, (५) छः वेदना-काय, (६) तृष्णा-काय।

फिर भगवान ने इनमें से प्रत्येक का विवरण दिया –

* भीतरी आयतन हैं – चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया तथा मन।

* बाहरी आयतन हैं – रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।

* विज्ञान-काय हैं – चक्षु द्वारा रूप में उत्पन्न होने वाला चक्षुर्विज्ञान; और फिर इसी प्रकार श्रोत्रविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान तथा मनोविज्ञान।

* स्पर्श-काय हैं – चक्षु, रूप और चक्षुर्विज्ञान की संगति से होने वाला स्पर्श; और फिर इसी प्रकार अन्य आयतनों तथा तत्संबंधी विज्ञानों की संगति से होने वाले स्पर्श।

* वेदना-काय हैं – उक्त प्रकार से जनित स्पर्श के कारण होने वाली वेदनाएं।

* तृष्णा-काय हैं – उक्त प्रकार से जनित वेदनाओं के कारण जागने वाली तृष्णाएं। तत्पश्चात भगवान ने बतलाया कि इन सभी छक्कों का उदयव्यय मालूम होने से ये हैं। जब कभी कोई इनको 'मैं', 'मेरे' और 'आत्म-भाव' से जानता है, तब वह सत्काय के समुदय की ओर ले जाने वाली प्रतिपदा होती है। जब कोई इनको इस भाव से नहीं जानता है, तब वह सत्काय के निरोध की ओर ले जाने वाली प्रतिपदा होती है।

तदनंतर भगवान ने समझाया कि सुखद वेदनाओं का अभिनंदन करने, उनमें आसक्त होने से राग-अनुशय चिपटता है; दुःखद वेदनाओं से संयुक्त हो क्रंदन करने से प्रतिघ-अनुशय चिपटता है। ऐसा व्यक्ति इन वेदनाओं के समुदय, अवसान, आस्वाद, दुष्परिणाम, निस्सरण को यथार्थतः नहीं जानता है, जिससे उसमें अविद्या-अनुशय चिपटता है। इन अनुशयों को दूर किए बिना और विद्या को जगाए बिना, इसी जन्म में कोई अपने दुःखों का अंत कर सके, यह संभव नहीं है। परंतु सुखद वेदनाओं का अभिनंदन न करने, इनमें आसक्त न होने से राग-अनुशय नहीं चिपटता है; दुःखद वेदनाओं से संयुक्त हो क्रंदन न करने से प्रतिघ-अनुशय नहीं चिपटता है। ऐसा व्यक्ति इन वेदनाओं के समुदय, आस्वाद, दुष्परिणाम, निस्सरण को यथार्थतः जानता है, जिससे उसमें अविद्या-अनुशय

नहीं चिपटता है। इन अनुशयों को छोड़ और विद्या को जगा, इसी जन्म में कोई अपने दुःखों का अंत कर सके, यह संभव है।

अंत में भगवान ने कहा कि इस प्रकार देखते हुए श्रुतवान आर्यश्रावक छहों छक्कों में विराग को प्राप्त होता है। उसे यह बोध होने लगता है –'मैं विमुक्त हो गया!' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है'।

इस प्रवचन के कहे जाते समय साठ भिक्षुओं का चित्त आस्रवों से उपादान-रहित हो विमुक्त हो गया।

७. महासळायतनसुत्त

एक समय भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने भिक्षुओं को बतलाया कि इंद्रियों, उनके विषयों, उनके अपने-अपने विज्ञानों, उनके संस्पर्शों और तज्जनित वेदनाओं को यथार्थतः न जानने, न देखने से इनमें आसक्ति हो जाती है, आसक्ति-प्राप्त के लिये भविष्य में पांच उपादान-स्कंध संचित हो जाते हैं। इससे नया जन्म देने वाली तृष्णा बढ़ती है और कायिक एवं चैतसिक पीड़ा, संताप, परिदाह बढ़ने लगते हैं और वह व्यक्ति कायिक एवं चैतसिक दुःख अनुभव करता है।

भगवान ने आगे बतलाया कि इंद्रियों, उनके विषयों, उनके अपने-अपने विज्ञानों, उनके संस्पर्शों और तज्जनित वेदनाओं को यथार्थतः जानने, देखने से इनमें आसक्ति नहीं होती है, आसक्ति-रहित के लिए भविष्य में पांच उपादान-स्कंध अपचय (विघटन) को प्राप्त होते हैं। इससे नया जन्म देने वाली तृष्णा नष्ट होती है और कायिक एवं चैतसिक पीड़ा, संताप, परिदाह जाने लगते हैं और वह व्यक्ति कायिक एवं चैतसिक सुख अनुभव करता है।

भगवान ने आगे कहा कि ऐसे व्यक्ति के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग भावना के स्तर पर परिपूर्ण हो जाता है। इससे चारों स्मृतिप्रस्थान, चारों सम्यक प्रधान, चारों ऋद्धिपाद, पांचों इंद्रियां, पांचों बल तथा सातों बोध्यंग भी भावना के स्तर पर परिपूर्णता को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति के दोनों धर्म – शमथ और विपश्यना – जुड़े रहते हैं। यह व्यक्ति अभिज्ञा द्वारा जानने योग्य धर्मों को

जानता, छोड़ने योग्य धर्मों को छोड़ता, भावना योग्य धर्मों को भावित करता और साक्षात्कार करने योग्य धर्मों का साक्षात्कार करता है।

८. नगरविन्देय्यसुत्त

एक समय भगवान कोसल जनपद में चारिका करते हुए नगरविन्द नाम के ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचे। वहां के ग्रामवासी भगवान की मंगल-कीर्ति से खिंचे हुए उनके पास चले आए।

वहां भगवान ने उन्हें समझाया कि किन श्रमण-ब्राह्मणों का सत्कार नहीं करना चाहिए और किनका करना चाहिए। सत्कार न करने योग्य श्रमण-ब्राह्मण वे होते हैं जो इंद्रियों द्वारा विज्ञेय विषयों में अ-वीतराग, अ-वीतद्वेष, अ-वीतमोह होते हैं, जिनका चित्त भीतर से शांत नहीं होता है और जो काया, वाणी तथा मन से सम-विषम आचरण करते हैं। सत्कार करने योग्य श्रमण-ब्राह्मण वे होते हैं जो इंद्रियों द्वारा विज्ञेय विषयों में वीत-राग, वीत-द्वेष, वीत-मोह होते हैं, जिनका चित्त भीतर से शांत होता है और जो काया, वाणी तथा मन से समचर्या करते हैं।

भगवान ने श्रमण-ब्राह्मणों का सत्कार न करने अथवा करने के कारणों पर भी प्रकाश डाला।

९. पिण्डपातपारिसुद्धिसुत्त

एक समय भगवान राजगह में वेळुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे। वहां उन्होंने आयुष्मान सारिपुत्त की इंद्रियों को अत्यंत निर्मल और उनकी छवि को नितांत शुभ्र देख कर पूछा कि आजकल अधिकतर वे कौन से विहार से विहरते हैं? उन्होंने उत्तर दिया – शून्यता-विहार से।

इस पर भगवान ने कहा कि शून्यता-विहार महापुरुष-विहार होता है, और फिर समझाया कि जो भिक्षु इस विहार से अधिकतर विहरना चाहे, उसे इस प्रकार सोचना चाहिए –"जिस मार्ग से मैं भिक्षा के लिए गांव में प्रविष्ट हुआ, जिस प्रदेश में भिक्षा के लिए घूमा, और जिस मार्ग से भिक्षा लेकर गांव से बाहर निकला –क्या वहां इंद्रियों द्वारा विज्ञेय विषयों में मेरे मन में छंद, राग, द्वेष, मोह अथवा प्रतिहिंसा का भाव जागा? यदि अपने को परखने पर मालूम हो कि ऐसा है, तो उन अकुशल धर्मों को दूर करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यदि मालूम

हो कि ऐसा नहीं है, तो उस भिक्षु को उसी प्रीति, प्रमोद के साथ, रात-दिन, कुशल धर्मों का परिशीलन करते, विहार करना चाहिए।"

तदनंतर भगवान ने ऐसी ही प्रक्रिया पांच कामगुणों, पांच नीवरणों, पांच उपादान-स्कंधों, इत्यादि के बारे में भी सुझाई।

अंत में भगवान ने कहा कि श्रमण-ब्राह्मण अतीत काल में ऐसे ही पिंडपात (भिक्षान्न) को परिशुद्ध करते थे, अब भी ऐसे ही करते हैं, और भविष्य में भी ऐसे ही करेंगे।

१०. इन्द्रियभावनासुत्त

एक समय भगवान गजङ्गला में सुवेळुवन में विहार करते थे। वहां उन्होंने आयुष्मान आनन्द को बतलाया कि आर्य-विनय में अनुत्तर इंद्रिय-भावना कैसी होती है। उन्होंने कहा –

"इंद्रियों द्वारा अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने से भिक्षु को प्रिय, अप्रिय, प्रिय-अप्रिय उत्पन्न होता है। तब वह प्रज्ञापूर्वक जानता है – "मुझे यह प्रिय, अप्रिय, प्रिय-अप्रिय उत्पन्न हुआ है। यह संस्कृत, स्थूल तथा प्रतीत्य-समुत्पन्न (कारण से उत्पन्न हुआ) है। उत्तम तो यही है जो विषयों के प्रति उपेक्षाभाव है।' तब उसको उत्पन्न हुआ प्रिय, अप्रिय, प्रिय-अप्रिय निरुद्ध हो जाता है, और उपेक्षाभाव टिका रहता है।"

फिर भगवान ने शैक्ष्य (जिसे अभी सीखना है, जो अभी अर्हंत नहीं हुआ) – प्रतिपदा की जानकारी दी। इसमें शैक्ष्य इंद्रियों द्वारा अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने से उत्पन्न होने वाले प्रिय, अप्रिय, प्रिय-अप्रिय से दुःखी होता है, घबराता है, घृणा करता है।

तदनंतर भगवान ने बतलाया कि कोई आर्य (अर्हंत) कैसे भावितेंद्रिय होता है। ऐसा व्यक्ति अपनी इच्छानुसार प्रतिकूल में अ-प्रतिकूल-संज्ञी, अ-प्रतिकूल में प्रतिकूल-संज्ञी, प्रतिकूल एवं अ-प्रतिकूल में अ-प्रतिकूल-संज्ञी, अ-प्रतिकूल एवं प्रतिकूल में प्रतिकूल-संज्ञी, और प्रतिकूल एवं अ-प्रतिकूल दोनों को छोड़ स्मृतिमान तथा संप्रज्ञानी होकर, उपेक्षावान हो विहार करता है।

अंत में भगवान ने कहा –"शास्ता ने अनुकंपा करके इस धर्मोपदेश द्वारा

श्रावकोंके हित के लिए जो करना था, सो कर दिया है। अब ये रहे वृक्ष-मूल, ये रहे शून्यागार! ध्यान करो, आनन्द! मत प्रमाद करो; मत पीछे पछताने वाले होओ; तुम्हारे लिये यह हमारी सीख है।"

विषय-सूची

सुत्तसार-२

भूमिक ा

संयुत्तनिक ाय-१ **१**

सगाथावग्ग **१**

१. देवतासंयुत्त १

१. नळ-वग्ग १

२. नन्दन-वग्ग..१

३. सत्ति-वग्ग २

४. सतुल्लपक ायिक -वग्ग....................................३

५. आदित्त-वग्ग ४

६. जरा-वग्ग..५

७. अद्ध-वग्ग ५

८. छेत्वा-वग्ग..६

२. देवपुत्तसंयुत्त ७

१. पठम-वग्ग..७

२. अनाथपिण्डिक -वग्ग....................................८

३. नानातित्थिय-वग्ग ८

३. क ोसलसंयुत्त..१०

१. पठम-वग्ग..१०

२. दुतिय-वग्ग..११

३. ततिय-वग्ग १२

४. मारसंयुत्त १४

१. पठम-वग्ग १४

२. दुतिय-वग्ग १५

३. ततिय-वग्ग १५

५. भिक्खुनीसंयुत्त १७

६. ब्रह्मसंयुत्त १९

१. पठम-वग्ग १९

२. दुतिय-वग्ग २१

७. ब्राह्मणसंयुत्त २२

१. अरहन्त-वग्ग २२

२. उपासक -वग्ग २३

८. वङ्गीससंयुत्त २६

९. वनसंयुत्त २७

१०. यक्खसंयुत्त २९

११. सक्क संयुत्त ३१

१. पठम-वग्ग ३१

२. दुतिय-वग्ग ३२

३. ततिय-वग्ग ३३

निदानवग्ग ३५

१. निदानसंयुत्त ३५

१. बुद्ध-वग्गो ३५

२. आहार-वग्गो ३६

३. दसबल-वग्गो ३७

४. क ळारखत्तिय-वग्गो ३९

५. गहपति-वग्गो ४०

६. दुक्ख-वग्गो ४१

७. महावग्गो ४२

८. समणब्राह्मण-वग्गो ४४

९. अन्तरपेय्याल ४५

२. अभिसमयसंयुत्त ४६

३. धातुसंयुत्त ४७

१. नानत्त-वग्गो ४७

२. दुतिय-वग्गो ४७

३. क म्मपथ-वग्गो ४८

४. चतुत्थ-वग्गो ४९

४. अनमतग्गसंयुत्त ५१

१. पठम-वग्गो ५१

२. दुतिय-वग्गो ५२

५. क स्सपसंयुत्त ५३

६. लाभसक्क रसंयुत्त ५६

१. पठम-वग्गो ५६

२. दुतिय-वग्गो ५६

३. ततिय-वग्गो ५७

४. चतुत्थ-वग्गो ५७

७. राहुलसंयुत्त ५९

१. पठम-वग्गो ५९

२. दुतिय-वग्गो ६०

८. लक्खणसंयुत्त ६१

१. पठम-वग्गो ६१

२. दुतिय-वग्गो ६१

९. ओपम्मसंयुत्त ६२

१०. भिक्खुसंयुत्त ६३

संयुत्तनिकाय-२ ६५

खन्धवग्ग ६५

१. खन्धसंयुत्त.......६५

१. नकुलपितु-वग्ग.......६५

२. अनिच्च-वग्ग.......६६

३. भार-वग्ग.......६७

४. नतुम्हाकं-वग्ग.......६८

५. अत्तदीप-वग्ग.......६९

६. उपय-वग्ग.......७०

७. अरहन्त-वग्ग.......७२

८. खज्जनीय-वग्ग.......७२

९. थेर-वग्ग.......७४

१०. पुप्फ-वग्ग.......७७

११. अन्त-वग्ग.......७८

१२. धम्मकथिक-वग्ग.......७९

१३. अविज्जा-वग्ग.......८०

१४. कुक्कुळ-वग्ग.......८१

१५. दिट्ठि-वग्ग.......८१

२. राधसंयुत्त.......८३

१. पठम-वग्ग.......८३

२. दुतिय-वग्ग.......८३

३. आयाचन-वग्ग.......८४

४. उपनिसिन्न-वग्ग.......८४

३. दिट्ठिसंयुत्त.......८५

१. सोतापत्ति-वग्ग.......८५

२. दुतियगमन-वग्ग.......८५

३. ततियगमन-वग्ग.......८६

४. चतुत्थगमन-वग्ग ८६
४. ओक्क न्तसंयुत्त ८७
५. उप्पादसंयुत्त ८८
६. कि लेससंयुत्त ८९
७. सारिपुत्तसंयुत्त ९०
८. नागसंयुत्त ९१
९. सुपण्णसंयुत्त ९२
१०. गन्धब्बक ायसंयुत्त ९३
११. वलाहक संयुत्त ९४
१२. वच्छगोत्तसंयुत्त ९५
१३. झानसंयुत्त ९६
सळायतनवग्ग ९८
१. सळायतनसंयुत्त ९८
१. अनिच्च-वग्ग ९८
२. यमक -वग्ग ९९
३. सब्ब-वग्ग ९९
४. जातिधम्म-वग्ग १००
५. सब्बअनिच्च-वग्ग १००
६. अविज्जा-वग्ग १०१
७. मिगजाल-वग्ग १०१
८. गिलान-वग्ग १०२
९. छन्न-वग्ग १०३
१०. सळ-वग्ग १०५
११. योगक्खेमि-वग्ग १०६
१२. लोक क ामगुण-वग्ग १०७
१३. गहपति-वग्ग १०९
१४. देवदह-वग्ग ११०

१५. नवपुराण-वग्ग १११
१६. नन्दिक्खय-वग्ग १११
१७. सट्ठि-पेय्याल..११२
१८. समुद्द-वग्ग ११३
१९. आसीविस-वग्ग ११४
२. वेदनासंयुत्त ११७
१. सगाथा-वग्ग ११७
२. रहोगत-वग्ग ११८
३. अट्ठसतपरियाय-वग्ग ११९
३. मातुगामसंयुत्त १२१
१. पठमपेय्याल-वग्ग १२१
२. दुतियपेय्याल-वग्ग १२१
३. बल-वग्ग १२१
४. जम्बुखादक संयुत्त..१२३
५. सामण्डक संयुत्त..१२४
६. मोग्गल्लानसंयुत्त १२५
७. चित्तसंयुत्त १२७
८. गामणिसंयुत्त..१२९
९. असङ्खतसंयुत्त १३२
(१) पठम-वग्ग १३२
(२) दुतिय-वग्ग १३२
१०. अब्याक तसंयुत्त..१३३
संयुत्तनिक ाय-३ १३४
महावग्ग १३४
१. मग्गसंयुत्त १३४
(१) अविज्जा-वग्ग..१३४
(२) विहार-वग्ग १३५

(३) मिच्छत्त-वग्ग १३५
(४) पटिपत्ति-वग्ग १३६
(५) अप्पमाद-वग्ग १३८
(६) बलक रणीय-वग्ग..१३९
(७) एसना-वग्ग १४०
(८) ओघ-वग्ग १४०
२. बोज्झङ्गसंयुत्त..१४१
(१) पब्बत-वग्ग १४१
(२) गिलान-वग्ग १४२
(३) उदायि-वग्ग १४३
(४) नीवरण-वग्ग १४४
(५) चक्क वत्ति-वग्ग..१४४
(६) साक च्छ-वग्ग..१४५
(७) आनापान-वग्ग १४६
(८) निरोध-वग्ग १४६
(९) गङ्गापेय्याल-वग्ग १४६
३. सतिपट्ठानसंयुत्त १४८
(१) अम्बपालि-वग्ग..१४८
(२) नालन्द-वग्ग १४९
(३) सीलट्ठिति-वग्ग १५१
(४) अननुस्सुत-वग्ग १५१
(५) अमत-वग्ग १५२
४. इंद्रियसंयुत्त १५४
(१) सुद्धिक -वग्ग..१५४
(२) मुदुतर-वग्ग..१५४
(३) छळिंद्रिय-वग्ग १५५
(४) सुखिंद्रिय-वग्ग..१५६

(५) जरा-वग्ग १५७
(६) सूक रखत-वग्ग......................................१५८
(७) बोधिपक्खिय-वग्ग १५९
(८/१-१७) गङ्गापेय्यालादि-वग्ग १५९
५. सम्मप्पधानसंयुत्त १६०
(१) गङ्गापेय्याल-वग्ग १६०
(२/१-५) अप्पमादादि-वग्ग १६०
६. बलसंयुत्त १६१
(१) गङ्गापेय्याल-वग्ग १६१
(२-१) अप्पमादादि-वग्ग १६१
७. इद्धिपादसंयुत्त १६२
(१) चापाल-वग्ग १६२
(२) पासादक म्पन-वग्ग..................................१६३
(३) अयोगुळ वग्ग..१६४
(४/१-८) गङ्गापेय्यालादि-वग्ग १६५
८. अनुरुद्धसंयुत्त १६६
(१) रहोगत-वग्ग १६६
(२) दुतिय-वग्ग १६६
९. झानसंयुत्त १६८
(१) गङ्गापेय्याल-वग्ग १६८
(२/१-५) अप्पमादादि-वग्ग १६८
१०. आनापानसंयुत्त...१६९
(१) एक धम्म-वग्ग.......................................१६९
(२) दुतिय-वग्ग १७०
११. सोतापत्तिसंयुत्त...१७२
(१) वेळुद्वार-वग्ग १७२
(२) राजक राम-वग्ग.....................................१७४

(३) सरणानि-वग्ग १७४
(४) पुञ्ञाभिसन्द-वग्ग १७६
(५) सगाथक पुञ्ञाभिसन्द-वग्ग..........................१७६
(६) सप्पञ्ञ-वग्ग १७७
(७) महापञ्ञ-वग्ग..१७८
१२. सच्चसंयुत्त १७९
(१) समाधि-वग्ग..१७९
(२) धम्मचक्क प्पवत्तन-वग्ग.............................१८०
(३) कोटिगाम-वग्ग.......................................१८१
(४) सीसपावन-वग्ग १८२
(५) पपात-वग्ग १८३
(६) अभिसमय-वग्ग १८४
(७) पठमआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग.......................१८४
(८) दुतियआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग......................१८५
(९) ततियआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग......................१८५
(१०) चतुत्थआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग...................१८५
(११) पञ्चगतिपेय्याल-वग्ग १८६

भूमिका

'सुत्तसार' में 'सुत्त पिटक' के सुत्तों का सार है।

भगवान बुद्ध की वाणी तीन पिटकों में सुरक्षित है – विनय पिटक, सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक। 'विनय पिटक' में अधिकतर भिक्षुओं-भिक्षुणिओं के लिए विनय का विधान है, 'सुत्त पिटक' में सामान्य साधकों के लिए दिये गये उपदेशों का संग्रह है और 'अभिधम्म पिटक' में विपश्यना साधना में खूब पके हुए साधकों के लिए गूढ़ धर्मोपदेश हैं।

बुद्ध-वाणी में 'सुत्त पिटक' का विशेष महत्त्व है क्योंकि सबसे अधिक सामग्री इसी पिटक में है और हर किसी के लिए उपयोगी भी। विपश्यना साधना सिखाते समय विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्काजी भी इसी पिटक के उद्धरण दे-देकर धर्म समझाते हैं। अभिधम्म पिटक समझने के लिए भी सुत्त पिटक को जानने की जरूरत होती है जैसे छत पर जाने के लिए सीढ़ी की।

सम्यक संबुद्ध की वाणी का एक-एक शब्द सारगर्भित होता है। उसमें से सार निकालना अपने आपको धोखा देना है। अतः किसी भी पाठक के मन में यह भाव कदापि नहीं जागना चाहिए कि सार की बातें छांट-छांट कर यहां प्रस्तुत कर दी गयी हैं और बाकी सब कुछ निःसार है।

यह 'सुत्तसार' सुत्तों का सार इस मायने में है कि सुत्त पिटक में जो कुछ वर्णित है उसका यह स्थूल रूप में अविकल (बिना अपनी ओर से कुछ जोड़े-तोड़े) प्रस्तुतीकरण है। इस सार की तुलना उस बयार से की जा सकती है जो रंग-बिरंगे, सुगंधित पुष्पों के बीच में से लांघ कर मात्र उनकी सुगंध अपने साथ हर ले जाती है। यह 'सुत्तसार' भी भगवान के चित्र-विचित्र, निर्वाण की गंध से सुवासित उपदेशों का एक हल्का-सा **परिचयमात्र** है।

वस्तुतः यह ग्रंथ कोई नयी कृति नहीं है। विपश्यना विशोधन विन्यास द्वारा मूल रूप में प्रकाशित 'सुत्त पिटक' के हर ग्रंथ के साथ उसमें सम्मिलित सुत्तों का सार उनमें दिया गया है। आचार्य श्री सत्यनाराणजी गोयन्का के आदेशानुसार

यह सार इसलिए तैयार किया गया था कि साधक पहले इन्हें पढ़ कर फिर सुत्तों को पढ़ें, तो इससे सुत्त और अधिक अच्छी तरह समझ में आने लगेंगे।

अब आचार्यश्री सत्यनारायणजी गोयन्का ने यह उचित समझा है कि यदि ये सभी सुत्तसार स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिये जायँ तो एक अतिरिक्त लाभ यह होगा कि साधक गण जनभाषा के माध्यम से बुद्ध-वाणी को टुकड़ों-टुकड़ोंमें ही नहीं, बल्कि समग्र रूप से भी सुगमतापूर्वक समझने लगेंगे। आचार्यश्री के इसी चिंतन के फलस्वरूप यह कृति प्रस्तुत की जा रही है।

वर्तमान ग्रंथत्रय केवल सुत्तपिटक के सुत्तों का सार हैं जो कि पाठकों की सुविधा के लिए तीन भागों में प्रकाशित हो रहे हैं। इसके पहले भाग में दीघ एवं मज्झिम निकायों का, दूसरे में संयुत्त निकाय का और तीसरे में अंगुत्तर एवं खुद्दक निकायों का समावेश है।

जब सुत्तसार तैयार किये जा रहे थे, तब विपश्यना विशोधन विन्यास के उद्भट विद्वान डॉ. अंगराज चौधरी ने इनका निरूपण कर इनमें समुचित सुधार किये थे। इसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूं।

हमें विश्वास है कि इस कृति से विपश्यी साधकों को धर्म के अनेक अनजाने पक्षों की जानकारी मिलने के अतिरिक्त बुद्ध-वाणी को मूल रूप में पढ़ने की प्रेरणा भी मिलेगी।

सभी साधक गण के प्रति मंगल भावों सहित,

स. ना. टंडन

संयुत्तनिक ाय-१

सगाथावग्ग

१. देवतासंयुत्त

यह संयुत्त आठ वर्गों में विभाजित है, जिनके अंतर्गत इक्यासी सुत्त हैं।

१. नळ-वग्ग

[सुत्त – ओघतरण, निमोक्ख, उपनीय, अच्चेन्ति, क तिछिन्द,
जागर, अप्पटिविदित, सुसम्मुट्ठ, मानक ाम, अरञ्ञ।]

प्रथम सुत्त के अनुसार भगवान ने एक देवता के पूछने पर उसे बताया कि मैंने बिना रुके, बिना क ोशिश कि ये (क ामभोग, भव-तृष्णा, मिथ्या-दृष्टि तथा अविद्या रूपी) बाढ़ क ो पार कि या, क्योंकि यदि क हीं रुक ता तो डूब जाता और क ोशिश क रता तो बह जाता। इस प्रक ार उन्होंने दोनों अंतों क ो छोड़ क र मध्यम मार्ग क ो अपनाते हुए उसे अपनी बुद्धत्व-प्राप्ति के बारे में बताया।

भगवान ने मोक्ष की चर्चा क रते हुए बतलाया कि तृष्णामूलक क र्म-बंधन के नष्ट हो जाने से, संज्ञा और विज्ञान के भी मिट जाने से, वेदनाओं क ा जो निरुद्ध और शांत हो जाना है, यही मोक्ष, प्रमोक्ष या विवेक क हलाता है।

उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि शांति चाहने वाला व्यक्ति सांसारिक भोगविलास त्याग दे।

२. नन्दन-वग्ग

[सुत्त – नन्दन, नन्दति, नत्थिपुत्तसम, खत्तिय, सणमान,
निद्दातन्दी, दुक्क र, हिरी, कु टिक ा, समिद्धि।]

प्रथम सुत्त के अंतर्गत एक देवता नंदन वन के 'सुख' की दुहाई देता है, जबकि एक अन्य देवता इसके लिए उसकी प्रताड़ना क रता है – "अरहंतों के

अनुसार सारे संस्कार अनित्य हैं; उत्पन्न होना और नष्ट हो जाना उनका स्वभाव है; वे उत्पन्न हो-होकर नष्ट हो जाते हैं; उनका बिल्कुल शांत हो जाना ही 'सुख' कहलाता है।"

अनेक सुत्तों में भगवान भी देवताओं के गलत चिंतन को सुधारते हैं, यथा –

"जिसके पास कुछ नहीं, उसे आनंद भी नहीं।"

"जिसके पास कुछ नहीं, उसे चिंता भी नहीं।"

"सूर्य-समान कोई प्रकाश नहीं।"

"प्रज्ञा-समान कोई प्रकाश नहीं।"

"मनुष्यों में क्षत्रिय श्रेष्ठ है।"

"मनुष्यों में संबुद्ध श्रेष्ठ है," इत्यादि।

एक देवता ने पहेली के रूप में भगवान से पूछा – क्या आपकी कोई झोंपड़ी नहीं? घोंसला नहीं? संतान नहीं? क्या आप बंधन से छूटे हुए हैं?

भगवान ने कहा कि मेरी कोई झोंपड़ी नहीं, घोंसला नहीं, संतान नहीं; मैं बंधन से छूटा हुआ हूं। फिर उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि झोंपड़ी से अभिप्राय माता से है, घोंसले से अभिप्राय पत्नी से है और संतान से अभिप्राय पुत्रों से है। बंधन से अभिप्राय तृष्णा से है।

एक देवता ने आयुष्मान समिद्धि के माध्यम से भगवान से सीधा संपर्क साधकर अपनी जिज्ञासा शांत की और अंत में यह समझ कर वहां से निवृत्त हुआ – "संसार में शरीर, वाणी तथा मन से कोई पाप-कर्म न करे। कामभोगों को छोड़ स्मृतिमान एवं संप्रज्ञानी बना रहकर अनर्थ-कारक दुःखों का सेवन न करे।"

३. सत्ति-वग्ग

[सुत्त – सत्ति, फुसति, जटा, मनोनिवारण, अरहन्त, पज्जोत, सर, महद्धन, चतुचक्क, एणिजङ्घ।]

एक देवता ने भगवान से पूछा कि भीतर, बाहर जटा ही जटा होने से सभी जीव जटा में बुरी तरह उलझ रहे हैं, इस जटा को कौन सुलझा सकता है?

भगवान ने कहा कि शील, समाधि और प्रज्ञा की भावना करनेवाला ही इस जटा को सुलझा सकता है। जहां नाम और रूप, प्रतिघ और रूप-संज्ञा, सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं, वहां यह जटा कट जाती है।

उन्होंने और भी अनेक प्रकारसे मार्गदर्शन किया, यथा सत्कायदृष्टिके प्रहाण के लिए स्मृतिमान हो विचरण करना चाहिए; शुद्ध, निष्पाप पुरुष पर दोष नहीं लगाना चाहिए; सभी जगह से मन को हटाना आवश्यक नहीं है, इसे केवल वहीं से हटाना चाहिए जहां पाप हो; 'मैं कहता हूं', 'मुझे कहते हैं' – ऐसा कथन केवल व्यवहारमात्र के लिए ही होना चाहिए; क्षीणास्रव भिक्षु ही संसार में उत्सुकता-रहित होते हैं, इत्यादि।

अंत में उन्होंने कहा कि पांच कामगुण और छठा मन –इनमें उत्पन्न होने वाली इच्छाओं को दूर करने से ही दुःख से छुटकारा होता है।

४. सतुल्लपकायिक-वग्ग

[सुत्त – सब्भि, मच्छरि, साधु, नसन्ति, उज्झानसञ्ञि, सद्धा, समय, सकलिक, पठमपज्जुन्नधीतु, दुतियपज्जुन्नधीतु।]

एक बार भगवान के समक्ष सतुल्लपकायिक देवताओं ने सत्पुरुषों के बारे में कुछ गाथाएं कहीं। भगवान ने इनका अनुमोदन किया, और अपनी ओर से कहा –"सत्पुरुषों के साथ बैठे, उनके साथ मेल-जोल करे, उनके सद्धर्म को जान लेने से कोई भी व्यक्ति सारे दुःखों से मुक्त हो जाता है।"

अन्य अवसरों पर भगवान ने उन्हें दान की उत्तमता के बारे में बतलाया। उन्होंने कहा कि मार-काट करते हुए और दूसरों को सताकर विषम चित्त से जो दान दिया जाता है वह दान शांति से दिये गये दान की बराबरी नहीं कर सकता। श्रद्धा से दिया गया दान बहुत प्रकार से प्रशंसनीय है, परंतु दान देने से भी बढ़कर है धर्म का जानना, जैसा कि पूर्व-काल में संत लोग प्रज्ञा से निर्वाण तक पा लेते थे।

एक उज्झानसंज्ञी देवता को भगवान ने समझाया कि तथागत सभी जीवों पर अनुकंपा करते हैं, उनमें कोई बुराई नहीं होती, न उनसे कोई भूल होती है, वे कभी विमूढ़ता को प्राप्त नहीं होते, वे बुद्धिमान सदा स्मृतिमान बने रहते हैं।

एक बार भगवान तथा उनके भिक्षुसंघ के दर्शनार्थ दसों लोकधातुओं के बहुत से देवता एकत्रित हो गये। तभी शुद्धावास के चार देवता भी वहां आ पहुँचे और भगवान के समक्ष अपनी अपनी गाथा कहने लगे। अंतिम देवता ने कहा कि जो लोग बुद्ध की शरण में आ गये हैं, उनकी दुर्गति नहीं हो सकती।

पज्जुन्न की बेटी चूलकोकनदा ने अपनी बुद्धि के अनुसार बुद्ध धर्म का सार

इस प्रकार बखान किया –"संसार में शरीर, वाणी तथा मन से कोई पाप-कर्म न करे। कामभोगों को छोड़ स्मृतिमान एवं संप्रज्ञानी बना रहकर अनर्थकारक दु:खों का सेवन न करे।"

५. आदित्त-वग्ग

[सुत्त – आदित्त, किंदद, अन्न, एकमूल, अनोम, अच्छरा, वनरोप, जेतवन, मच्छरि, घटीकार।]

एक देवता भगवान के समक्ष अपनी गाथा कहता है कि घर में आग लग जाने पर जो सामान बाहर निकाल लिया जाता है वह भलाई के लिए होता है, अन्यथा वह जल जाता। ऐसे ही संसार में भी आग लगी हुई है –बुढ़ापे की आग, मृत्यु की आग। इसे दान देकर बाहर निकाले, दान दिया हुआ खूब सुरक्षित रहता है।

कुछ प्रश्नों के उत्तर में भगवान ने कहा कि कृपण लोग और दूसरों को दान देते देख, उन्हें बहकाने वाले अधोगति को प्राप्त होते हैं; और यदि वे मनुष्य योनि पाते भी हैं तो किसी दरिद्र कुल में जन्म लेकर बड़ी तंगी का जीवन बिताते हैं। परंतु यदि मनुष्य योनि में जन्म लेने वाले बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान रखने वाले होते हैं, तो वे स्वर्ग में शोभायमान होते हैं; और मनुष्य योनि में आने पर किसी बड़े धनाढ्य कुल में जन्म पाते हैं जहां उन्हें किसी प्रकार की तंगी नहीं होती।

'अच्छरा सुत्त' में देवताओं का करुण क्रंदन है कि अप्सराओं की चहल-पहल वाले, पिशाचगण से सेवित, लुभावने नंदन वन के होते हुए मुक्ति कैसे मिलेगी? इस पर भगवान ने कहा –"मार्ग बड़ा सीधा है, दिशा भयरहित है, बिना आवाज करने वाला रथ है, जिसमें धर्म के पहिए लगे हैं। विवेक उसे रोकने का यंत्र है, स्मृति उसका आवरण है, धर्म उसका सारथि है और सम्यक दृष्टि आगे दौड़ने वाला सवार है। जिस किसी पुरुष अथवा नारी के पास इस प्रकार की सवारी है, वह उस पर चढ़कर निर्वाण तक पहुँच जाता है।

'घटीकार सुत्त' के अनुसार भगवान कस्सप के जीवनकाल में उनका उपासक रहा हुआ कुम्हार, और अब देवता पद पर आरूढ़, घटीकार भवसागर से पार हुए सात भिक्षुओं के बारे में बतलाता है। भगवान ने कहा कि यह बात तो सच है, परंतु वे किसके धर्म को जानकर भव-बंधन तोड़ने में समर्थ हुए? इस पर उस देवता ने कहा कि जहां नाम और रूप दोनों पूर्णतया निरुद्ध हो जाते हैं, आपके उस धर्म को यहां जानकर, वे भव-बंधन को तोड़ने में समर्थ हुए।

६. जरा-वग्ग

[सुत्त – जरा, अजरसा, मित्त, वत्थु, पठमजन, दुतियजन, ततियजन, उप्पथ, दुतिय, कवि।]

इस वर्ग के सुत्तों में मुख्य रूप से बतलाया गया है कि –

* प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है।
* पुण्य चोरों से नहीं चुराया जा सकता।
* अपने किये हुए पुण्य-कर्म परलोक में मित्र होते हैं।
* तृष्णा मनुष्य को पैदा करती है, दु:ख उसका सबसे बड़ा भय है।
* आयु रात-दिन क्षय होती रहती है।
* स्त्री ब्रह्मचर्य का मल है।
* तप और ब्रह्मचर्य बिना पानी का स्नान है।
* निर्वाण में अभिरत मनुष्य सारे दु:खों से मुक्त हो जाता है।

७. अद्ध-वग्ग

[सुत्त – नाम, चित्त, तण्हा, संयोजन, बन्धन, अत्तहत, उड्डित, पिहित, इच्छा, लोक ।]

इस वर्ग के अधिकांश सुत्तों में "लोक" संबंधी प्रश्न उठाये गये हैं, यथा – लोक किससे नियंत्रित होता है, यह किस बंधन में बँधा है, यह किससे सताया जा रहा है, यह किसमें प्रतिष्ठित है, इत्यादि।

इन प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार दिये गये हैं – लोक चित्त (अथवा तृष्णा) से नियंत्रित होता है, 'स्वाद लेना'- यही लोक का बंधन है, यह मृत्यु से सताया जा रहा है, यह दु:ख में प्रतिष्ठित है।

अंतिम सुत्त में कहा गया है कि छः के होने से लोक उत्पन्न होता है, छः में साथ रहता है, छः को ही लेकर होता है, और छः के कारण दु:खी होता है। (जिन छः का संकेत किया गया है वे हैं छः आध्यात्मिक आयतन – आंख, कान, नाक, जीभ, काया तथा मन।)

८. छेत्वा-वग्ग

[सुत्त – छेत्वा, रथ, वित्त, वुट्ठि, भीता, नजीरति, इस्सरिय, काम, पाथेय्य, पज्जोत, अरण।]

लोक में छः छिद्र बताये गये हैं जहां चित्त स्थिर नहीं होता। ये हैं –आलस्य, प्रमाद, उत्साह का न होना, संयम का अभाव, निद्रा और तंद्रा।

यह भी कहा गया है कि संसार में पुरुष का सबसे श्रेष्ठ धन श्रद्धा है, अच्छी तरह अभ्यास पर उतरा हुआ धर्म सुख देता है, रसों में सबसे स्वादिष्ट सत्य है और प्रज्ञा का जीवन श्रेष्ठ जीवन कहलाता है।

श्रमण कभी किसी के दास नहीं होते और सब उनका अभिवादन करते हैं।

२. देवपुत्तसंयुत्त

यह संयुत्त तीन वर्गों में विभाजित है, जिनके अंतर्गत तीस सुत्त हैं।

१. पठम-वग्ग

[सुत्त - पठमकस्सप, दुतियकस्सप, माघ, मागध, दामलि, कामद, पञ्चालचण्ड, तायन, चन्दिम, सूरिय।]

इस वर्ग के प्रथम सुत्त में देवपुत्र कस्सप ने भगवान से कहा कि मेरी समझ के अनुसार भिक्षु का अनुशासन ऐसा होना चाहिए कि वह -सदुपदेश ग्रहण करना, श्रमणों का सत्संग करना, एकांतवास और चित्त को शांत करना सीखे। भगवान ने इसका अनुमोदन किया।

अन्यान्य देवपुत्रों ने भी भगवान के समक्ष अपनी-अपनी बात रखी और अपना-अपना समाधान प्राप्त किया, जैसे -

* देवपुत्र माघ ने जान लिया कि कोई व्यक्ति क्रोध का नाश करने से सुखपूर्वक सोता है और शोक नहीं करता।

* देवपुत्र मागध ने जाना कि संसार में चार प्रकार के प्रकाश होते हैं: दिन में सूर्य तपता है, रात में चंद्रमा शोभता है, दिन हो या रात अग्नि जहां तहां प्रकाश देती है परंतु सभी तपने वालों में संबुद्ध श्रेष्ठ होता है, उसकी आभा अलौकिक होती है।

* देवपुत्र दामलि ने जाना कि क्षीणास्रव ब्राह्मण को कुछ करना शेष नहीं रह जाता, जैसे नदी तैरकर जमीन पर आ लगे मनुष्य को पूर्ववत उद्यम करना आवश्यक नहीं रह जाता।

* देवपुत्र कामद ने जाना कि विषम मार्ग पर अनार्य लोग सिर के बल गिर पड़ते हैं, परंतु आर्य जन के लिए तो वह विषम मार्ग भी समतल-सा ही होता है क्योंकि वे विषम परिस्थिति में समता बनाये रखने के अभ्यासी होते हैं।

* देवपुत्र पञ्चालचण्ड ने जाना कि जिन्होंने स्मृति-लाभ कर लिया हो, वे सु-समाहित हो, निर्वाण की प्राप्ति के लिए धर्म का साक्षात्कार कर लेते हैं।

पूर्वजन्म में तीर्थंकर रहे देवपुत्र तायन ने भगवान के समक्ष दृढ़ पराक्रम करने,

कामोंको दूर करने, कोई भी काम अच्छी तरह से करने के बारे में गाथाएं कहीं। उसने यह भी कहा कि शिथिल कर्म, दूषित व्रत, दिखावटी ब्रह्मचर्य से कोई बड़ा फलप्राप्त नहीं होता। देवपुत्र के अंतर्धान हो जाने के बाद भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि तायन ने जो कुछ कहा है वे ब्रह्मचर्य की मूल बातें हैं।

२. अनाथपिण्डिक-वग्ग

[सुत्त – चन्दिमस, वेण्डु, दीघलट्ठि, नन्दन, चन्दन, वासुदत्त, सुब्रह्म, ककुध, उत्तर, अनाथपिण्डिक।]

देवपुत्र नन्दन को भगवान ने बतलाया कि जो कोई शीलवान, प्रज्ञावान, भावितात्म, समाहित, ध्यानरत, स्मृतिमान, क्षीणास्रव, अंतिम शरीरधारी हो और जिसके सारे शोक मिट गये हों, वैसे व्यक्ति को ही लोग शीलवान कहते हैं और प्रज्ञावान भी। वैसा व्यक्ति दुःखों के परे चला जाता है और देवता भी उसकी पूजा करते हैं।

देवपुत्र चन्दन को उन्होंने बतलाया कि सदा शील का पालन करने वाला, प्रज्ञावान, सु-समाहित, पराक्रमी एवं संयमशील व्यक्ति दुस्तर बाढ़ को तैरकर पार निकल जाता है।

देवपुत्र सुब्रह्म ने भगवान से कहा कि मेरा चित्त सदा घबराया रहता है। क्या इस घबराहट से बचने का कोई उपाय है? इसपर उन्होंने कहा कि इसका उपाय है – बोध्यंग का अभ्यास, इंद्रिय-संवर और संसार से विरक्त होना।

देवपुत्र ककुधको उन्होंने समझाया कि चिंता करने वाले को ही आनंद होता है और आनंद मनाने वाले को ही चिंता होती है। भिक्षु को न चिंता होती है, न आनंद।

एक बार देवपुत्र अनाथपिण्डिक ने भगवान के समक्ष प्रकट होकर ऋषियों से सेवित, धर्मराज (बुद्ध) द्वारा अध्युषित जेतवन के प्रति बड़ी श्रद्धा व्यक्त की और सारिपुत्त की भी प्रशंसा की। उसके अंतर्धान हो जाने के पश्चात अगले दिन भगवान ने यह सारा वृत्तांत भिक्षुओं को सुनाया और स्पष्ट किया कि अनाथपिण्डिक देवपुत्र हुआ है।

३. नानातित्थिय-वग्ग

[सुत्त – सिव, खेम, सेरी, घटीकार, जन्तु, रोहितस्स, नन्द, नन्दिविसाल, सुसिम, नानातित्थियसावक।]

देवपुत्र सिव ने भगवान के समक्ष सत्पुरुषों के साथ संगति करने के नाना प्रकार के लाभ गिनाये। भगवान ने भी कहा कि संतों के सद्धर्म को जानकर व्यक्ति सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।

देवपुत्र सेरी ने अपने किसी पूर्वजन्म में श्रमणों, ब्राह्मणों, गरीबों, राहियों, लाचारों और भिखमंगों को खूब दान दिया था। अपने इस कार्य से उसने असीम पुण्य अर्जित किया और लंबे समय के लिए स्वर्ग-लाभी हुआ। इसे दृष्टिगत करते हुए भगवान ने कहा कि कंजूसी को त्याग, खूब दान देना चाहिए। पुण्य ही परलोक में प्राणियों का आधार होता है।

देवपुत्र रोहितस्स ने अपने किसी पूर्वजन्म में यह निर्णय किया कि मैं चलते-चलते लोक के अंत तक जा पहुँचूंगा, परंतु सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहकर बराबर चलते रहने पर भी वह लोक के अंत को पाये बिना बीच ही में मर गया। अब उसे भगवान समझाते हैं कि यह सही है कि लोक का अंत पाये बिना दुःख से छुटकारा नहीं होता, परंतु चलते रहने से कभी भी लोक का अंत हाथ नहीं आता। वस्तुतः इस साढ़े तीन हाथ की काया में ही लोक, लोक की उत्पत्ति, लोक का अवसान और लोक के अवसान का मार्ग – ये सभी मौजूद रहते हैं।

'सुसिम सुत्त' में आयुष्मान सारिपुत्त की पैनी प्रज्ञा और उनके अन्य सद्गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है।

'नानातित्थिय सुत्त' में पूरण कस्सप, मक्खलि गोसाल आदि नाना तीर्थों (आचार्यों) के श्रावक देवपुत्रों ने भगवान के समक्ष अपने-अपने आचार्यों का गुणगान किया। इसी बीच में पापी मार के आ धमकने और यह राय देने पर कि रूप के प्रति आसक्त और देवलोक में आनंद मनाने वाले ही परलोक बनाने का अच्छा उपदेश देते हैं, देवपुत्र माणवगामिय ने भगवान के परिप्रेक्ष्य में यह घोषणा की कि जैसे जलाशयों में समुद्र और नक्षत्रों में चंद्रमा श्रेष्ठ होता है, वैसे ही देवों सहित समग्र लोक में बुद्ध ही अग्रणी कहलाते हैं।

३. कोसलसंयुत्त

यह संयुत्त तीन वर्गों में विभाजित है, जिनके अंतर्गत पच्चीस सुत्त हैं।

१. पठम-वग्ग

[सुत्त – दहर, पुरिस, जरामरण, पिय, अत्तरक्खित, अप्पक,
अड्डकरण, मल्लिका, यञ्ञ, बन्धन।]

कोसल-नरेश पसेनदि की एक जिज्ञासा शांत करते हुए भगवान ने उसे कहा कि चार चीजों को 'छोटा' समझ, उनकी अवज्ञा करना उचित नहीं होता। ये चार हैं – (१) क्षत्रिय, (२) सर्प, (३) अग्नि, तथा (४) भिक्षु।

अन्यान्य अवसरों पर भगवान ने उसे और भी कई प्रकार की सीख दी, जैसे कि –

* लोभ, द्वेष और मोह पापपूर्ण चित्त वाले पुरुष को उसी के भीतर उत्पन्न होकर नष्ट कर देते हैं।

* संत पुरुषों का धर्म कभी पुराना नहीं पड़ता।

* अपने किये हुए पुण्य ही परलोक में प्राणियों का आधार होते हैं।

* काया का संयम अच्छा होता है; ऐसे ही वाणी का, मन का, सब जगह का। सब जगह संयम रखने वाला लज्जाशील व्यक्ति 'रक्षित' कहलाता है।

* कामभोगों में अनुरक्त, कामों में मदहोश यह नहीं जानते कि हम सीमा से बाहर चले गये हैं। क्योंकि इसका फल पापपूर्ण होता है, अतः बाद में कड़ुवाहट उनके सामने आती है।

* कोई भी अपने आप से अधिक प्यारा नहीं होता, अतः ऐसा ही हर एक के बारे में सोचकर अपनी भलाई चाहने वाला किसी दूसरे को मत सताये।

* जिस यज्ञ में भांति-भांति के भेड़, बकरे या गाएं मारी जाती हैं, सन्मार्ग पर चलने वाले महर्षि उसका समर्थन नहीं करते।

* पंडित जन लोहे, लकड़ी या रस्सी के बंधन को 'दृढ़ बंधन' नहीं कहते। 'दृढ़ बंधन' तो वह कहलाता है जो मणि और कुंडलों में अनुरक्त हो जाना, अथवा पुत्रों और भार्या के प्रति अपेक्षा का बना रहना है।

२. दुतिय-वग्ग

[सुत्त – सत्तजटिल, पञ्चराज, दोणपाक, पठमसङ्गाम, दुतियसङ्गाम, मल्लिका, अप्पमाद, कल्याणमित्त, पठमअपुत्तक, दुतियअपुत्तक ।]

एक समय कोसल-नरेश पसेनदि भगवान के पास बैठा हुआ था जब कि सात जटिल, सात निर्ग्रंथ, सात नागे, सात एकशाटिक और सात परिव्राजक विविध प्रकार का सामान लिए उनके पास से गुज़रे। राजा ने भगवान से कहा कि लोक में जो अरहंत हैं अथवा अरहंत-मार्ग पर आरूढ़ हैं, ये उन लोगों में से हैं। जब भगवान ने कहा कि ये तो गृहस्थ, कामभोगी और रुपए-पैसे बटोरने वाले हैं, तब राजा ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए स्वीकार किया कि ये वस्तुतः उसके गुप्तचर थे। इस पर भगवान ने उसे कहा कि केवल ऊपरी रंग-रूप से मनुष्य की पहचान नहीं होती, कितने ही लोग छद्मवेष धारण किये घूमते-फिरते हैं – भीतर से मैले और बाहर से दमकते हुए!

एक अन्य अवसर पर पसेनदि-सहित पांच राजा यह नहीं तय कर पाये कि पांच कामभोगों में से सबसे बढ़िया कौन-सा है – रूप, शब्द, गंध, रस अथवा स्प्रष्टव्य? जब वे निर्णय के लिए भगवान के पास गये, तब उन्होंने कहा कि पांच कामगुणों में से जिसको जो अच्छा लगे वही बढ़िया होता है।

राजा पसेनदि ने भगवान की इस शिक्षा को जीवन में उतार लिया – "सदा स्मृतिमान रहने वाले, प्राप्त हुए भोजन में मात्रा जानने वाले मनुष्य की वेदनाएं कम होती हैं और (वह भोजन) आयु को पालता हुआ धीरे-धीरे हजम करता है।" इस शिक्षा को अपनाने से उसकी खुराक कम हुई, पर शरीर सुडौल और गठीला हो गया।

कोसल-नरेश पसेनदि और मगध-नरेश अजातसत्तु के दो आपसी युद्धों का भी उल्लेख हुआ है। इनमें से एक में कोसलनरेश हारा, दूसरे में मगध-नरेश। इन प्रसंगों की जानकारी मिलने पर भगवान ने अपने उद्गार व्यक्त किये –

"जीत होने पर वैमनस्य बढ़ता है, हारा हुआ दुःखी होता है; शांत हुआ व्यक्ति हार-जीत को हटाकर सुख से रहता है।

"मारने वाले को मारने वाला मिलता है, जीतने वाले को जीतने वाला; ऐसे ही, अपने किये कर्म के फेर में पड़कर लूटने वाला लूट लिया जाता है।"

भगवान ने स्त्रियों के गुणों और अप्रमाद के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है, और कृपणता छोड़ पुण्य करने पर भी बल दिया है। परलोक में पुण्य ही प्राणियों का आधार होता है।

३. ततिय-वग्ग

[सुत्त – पुग्गल, अय्यिका, लोक, इस्सत्त, पब्बतूपम।]

भगवान ने कोसल-नरेश पसेनदि को बतलाया कि संसार में चार प्रकार के लोग होते हैं –

(१) अंधेरे से अंधेरे की ओर जाने वाले, (२) अंधेरे से उजाले की ओर जाने वाले, (३) उजाले से अंधेरे की ओर जाने वाले, और (४) उजाले से उजाले की ओर जाने वाले।

तदुपरांत उन्होंने यह भी समझाया कि –

* पहले प्रकार का व्यक्ति वह होता है जो नीच कुल में पैदा हुआ दुर्वर्ण, तंगी का जीवन जीता हुआ भी काया, वाणी और मन से दुराचार ही करता है; वह अभी भी दु:खी और मरणोपरांत भी दु:खी रहता है क्योंकि वह अपाय गति को प्राप्त करता है।

* दूसरे प्रकार का व्यक्ति पहले प्रकार जैसा होते हुए भी काया, वाणी और मन से सदाचार करता है; वह अभी दु:खी परंतु मरणोपरांत सुखी होता है क्योंकि सुगति को प्राप्त होता है।

* तीसरे प्रकार का व्यक्ति वह होता है जो ऊंचे कुल में पैदा हुआ, सुंदर-वर्ण, समृद्धि का जीवन जीता हुआ भी काया, वाणी और मन से दुराचार ही करता है; वह अभी सुखी परंतु मरणोपरांत दु:खी होता है क्योंकि वह अपाय गति को प्राप्त करता है।

* चौथे प्रकार का व्यक्ति तीसरे प्रकार जैसा हो काया, वाणी और मन से भी सदाचार ही करता है; वह अभी भी सुखी और मरणोपरांत भी सुखी ही होता है क्योंकि वह सुगति को प्राप्त होता है।

अपनी प्यारी दादी के गुजर जाने पर भावावेश में आये हुए कोसल-नरेश को भगवान ने समझाया कि कुम्हार के कच्चे-पक्के सभी घड़ों का एक-न-एक दिन फूटना अवश्यंभावी होता है; ठीक ऐसे ही सभी जीव मरणशील हैं, एक-न-एक

दिन उनका मरण अवश्य होता है। इसे दृष्टि में रखते हुए प्राणी पुण्य-कर्म करे जिससे परलोक सुधरे।

भगवान ने उसे यह भी समझाया कि दान उसे देना चाहिए जिसके लिए मन में श्रद्धा हो और दान का महाफल तब होता है जब शीलवान को दिया जाये, दुःशील को नहीं। उन्होंने उसे इस बात के लिए भी सचेत किया कि बुढ़ापा और मृत्यु हर किसी पर चढ़ते चले आ रहे हैं। इन्हें न हाथियों से, न रथों से, न पैदल, और न मंत्रों से, न धन से, अर्थात किसी भी प्रकार, जीता नहीं जा सकता। अतः समझदार व्यक्ति को चाहिए कि अपनी भलाई को देखते हुए बुद्ध, धर्म, संघ के प्रति सश्रद्ध हो।

४. मारसंयुत्त

यह संयुत्त तीन वर्गों में विभाजित है, जिनके अंतर्गत पच्चीस सुत्त हैं।

१. पठम-वग्ग

[सुत्त – तपोकम्म, हत्थिराजवण्ण, सुभ, पठममारपास, दुतियमारपास, सप्प, सुपति, नन्दति, पठमआयु, दुतियआयु।]

पापी मार नाना प्रकार से भगवान को उल्टी मति देने का प्रयास करता है, परंतु उसे हर बार मुँह की खानी पड़ती है। उदाहरणतया, वह उन्हें तप-कर्म से विरत होने के कारण शुद्धि के मार्ग से गिरा हुआ बतलाता है, जिसपर भगवान उसे बतलाते हैं कि मुक्ति-लाभ के लिए सभी कठोर तपश्चरण बेकार होते हैं और मैंने शील, समाधि और प्रज्ञा को भावित कर परम शुद्धि को प्राप्त कर लिया है।

पापी मार बड़े विकराल रूप धारण करके भगवान को प्रभावित करने की चेष्टा करता है, परंतु हर बार उसका पर्दा फाश हो जाता है। एक अवसर पर भगवान उसे कहते हैं कि जो शरीर, वचन और मन से संयत रहते हैं, वे तुम्हारे चक्कर में नहीं आते। अन्य अवसर पर कहते हैं कि चाहे आकाश फट जाये, धरती चलायमान हो जाये, सभी प्राणी भयभीत हो उठें, कोई छाती में भाला घोंप दे, तो भी बुद्ध सांसारिक वस्तुओं में अपना बचाव नहीं खोजते।

एक बार भगवान भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे कि मनुष्यों की आयु कम होने से शीघ्र परलोक जाना होगा, अतः कुशल कर्म करना चाहिए, ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इस पर पापी मार बोल उठा कि मनुष्यों की आयु लंबी है, सत्पुरुष इस बात से चिंतित न हो, वह दुधमुँहे बच्चे की तरह रहे, मृत्यु अभी नहीं आ रही है। भगवान ने इसका प्रतिकार करते हुए कहा कि मनुष्यों की आयु कम है, सत्पुरुष इस बात का खूब ध्यान रखे, वह ऐसे आचरण करे मानो सिर पर आग लगी हो, ऐसा नहीं है कि मृत्यु न आ रही हो।

ऐसे ही एक अन्य अवसर पर भगवान ने कहा कि मनुष्यों की आयु वैसे ही क्षीण होती जा रही है जैसे छोटी-छोटी नदियों का चढ़ा हुआ पानी।

२. दुतिय-वग्ग

[सुत्त – पासाण, किन्नुसीह, सकलिक, पतिरूप, मानस, पत्त,
छफस्सायतन, पिण्ड, कस्सक, रज्ज।]

एक समय भगवान राजगह में गिज्झकूटपर्वत पर विहार करते थे। तब उन्हें विचलित करने के लिए पापी मार उनके पास ही बड़े-बड़े पत्थरों को लुढ़काने लगा। भगवान ने उसे पहचान लिया और कहा कि तू चाहे सारे गिज्झकूटपर्वत को ही क्यों न लुढ़का दे, सम्यक रूप से विमुक्त हुए बुद्धों में कोई चंचलता पैदा नहीं हो सकती।यह सुनकर पापी मार खिन्नमनस्क हो वहीं अंतर्धान हो गया।

मार ने और भी अनेक प्रकार से स्वयं भगवान की अथवा उनसे उपदेश ग्रहण करते हुए लोगों की मति फेरने का प्रयास किया परंतु उसका कोई भी उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। कभी कभी वह भगवान को ललकारता –"आकाश में छा जाने वाले जाल के समान जो यह मन की उड़ान है, मैं तुम्हें उसमें फँसा लूंगा। श्रमण! मुझसे तेरा छुटकारा नहीं है।" भगवान ने यह कहकर उसे निरुत्तर कर दिया –"मन को लुभाने वाले रूप, शब्द, गंध, रस और स्प्रष्टव्य – इनके प्रति मेरी इच्छाएं जाती रही हैं। अंतक! तुम मारे गये हो।"

एक बार पापी मार ने ऐसा प्रपंच रचा जिससे भगवान को बिना भिक्षा प्राप्त हुए खाली-हाथ वापस लौट आना पड़ा। तब भगवान को चिढ़ाने की गरज से उसने उनसे पूछा – "श्रमण! क्या भिक्षा मिली?" इस पर भगवान ने कहा – "जिनका अपना कुछ नहीं है, ऐसे हम सुखपूर्वक जीते हैं। हम (समाधि-जन्य) प्रीति को अपना भक्ष्य बनाएंगे, जैसे कि आभास्वर देव करते हैं।"

३. ततिय-वग्ग

[सुत्त – सम्बहुल, समिद्धि, गोधिक, सत्तवस्सानुबन्ध, मारधीतु।]

पापी मार ने भगवान के पास अप्रमत्त हो विहार करते कुछ भिक्षुओं को पुनः भोग-विलास का जीवन जीने के लिए उकसाया, परंतु इस कार्य में विफल रहा। ऐसे ही आयुष्मान समिद्धि के पास आकर बड़ा भयानक शब्द कर उन्हें विचलित करने लगा, परंतु यहां भी उसे असफलता ही हाथ लगी।

एक समय आयुष्मान गोधिक ने इसिगिलि के पास काळसिला पर अप्रमत्त हो विहार करते हुए अनेक बार चित्त-विमुक्ति को प्राप्त किया परंतु वह हर बार टूटती चली गयी, अंततः उन्होंने अपने आपको शस्त्र मार लेने की सोची। उनके

मन की बात जानकर पापी मार भगवान पर कटाक्ष करने लगा कि आपके शासन में रत कोई श्रावक बिना निर्वाण प्राप्त किये कैसे मृत्यु को प्राप्त हो जायगा? इसी बीच में आयुष्मान गोधिक ने शस्त्रघात कर लिया। भगवान ने मार से कहा कि गोधिक तृष्णा को जड़ से उखाड़ कर परिनिवृत्त हुए हैं।

पापी मार ने आयुष्मान गोधिक के विज्ञान की सभी दिशाओं-अनुदिशाओं में खोज की, पर वह कहीं भी नहीं मिला। तब वह भी मान गया कि सदा ध्यान-रत, धृति-संपन्न भिक्षु जीवन की इच्छा न करते हुए, उसकी सेना को जीत, पुनर्जन्म न ग्रहण कर, तृष्णा को जड़ से उखाड़ परिनिवृत्त हुआ है।

ऐसे ही एक अन्य अवसर पर मार ने मुँह की खायी और करुण स्वर में स्वयं की तुलना पत्थर पर झपटने वाले कौए से करते हुए भगवान को छोड़ भाग जाने की कामना की।

मार को चिंतित देख उसकी पुत्रियों –तण्हा, अरति तथा रगा –ने भी भगवान को लुभाने की भरसक चेष्टा की, परंतु वे भी पूर्णतया विफल रहीं। भगवान ने इन कन्याओं को ऐसे तितर-बितर कर दिया जैसे हवा रुई के फाहे को तितर-बितर कर देती है।

५. भिक्खुनीसंयुत्त

इस संयुत्त में दस सुत्त हैं, जिनके नाम हैं –आळविका, सोमा, किसागोतमी, विजया, उप्पलवण्णा, चाला, उपचाला, सीसुपचाला, सेला एवं वजिरा।

इस संयुत्त की सभी घटनाएं उस काल की हैं जब भगवान सावत्थी में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे। उस समय जब आळविका, सोमा आदि भिक्षुणियां अन्धवन में दिवाविहार के लिए जातीं, तब पापी मार उन्हें अपने मार्ग से डिगाने के लिए तरह-तरह के प्रलोभन देता अथवा डराता-धमकाता, परंतु हर बार अपने उद्देश्य में असफल रह जाने के कारण उसे खिन्नमनस्क होकर वहां से सरक जाना पड़ता।

उदाहरणतया –

पापी मार किसागोतमी को कहता है – "पुत्र की मृत्यु से शोकाकुल-सी, एकाकिनी, रोनी सूरत लिए, वन में अकेली पैठकर क्या किसी पुरुष की खोज में हो?"

किसागोतमी –"मैं पुत्र-मृत्यु के शोक से उबर चुकी हूं, पुरुष की खोज भी समाप्त हो चुकी है, न मैं शोक करती हूं, न रोती हूं, न ही मैं तुमसे डरती हूं।"

"संसार में स्वाद लेना छूट चुका है, अज्ञान का अंधकार विदीर्ण हो चुका है, मृत्यु की सेना को जीतकर अब मैं आस्रव-रहित हो विहार करती हूं।"

ऐसे ही पापी मार विजया भिक्षुणी को कहता है –"तुम नव-यौवना सुंदरी हो और मैं चढ़ती ऊम्रवाला युवा। आओ, हम पांच अंग वाले साज के साथ रमण करें।"

विजया भिक्षुणी –"हे मार! मैं लुभावने रूप, शब्द, गंध, रस और स्प्रष्टव्य तुम्हारे लिए छोड़ती हूं। मुझे अब इनसे कोई सरोकार नहीं है।"

"इस गंदगी से भरी हुई, टूटने वाली, अतीव भंगुर कायासे मेरा मन हटा हुआ है, मैं इससे घृणा करती हूं, मेरी काम-तृष्णा जड़ से उखड़ चुकी है।"

सेला भिक्षुणी को मार डराता है –"किसने इस पुतले को खड़ा किया है? कौन है इसका सृजनहार? कहां से है इसकी उत्पत्ति, और कहां है इसका निरोध?"

सेला भिक्षुणी –"न तो यह पुतला अपने आप खड़ा हो गया है; न इस जंजाल

को किसी दूसरे ने खड़ा किया है। हेतु के होने से यह हो गया है, हेतु का निरोध हो जाने से इसका निरोध हो जाता है।"

"जैसे कोई बीज खेत में बोने पर, वह पृथ्वी का रस और चिकनाई –इन दोनों को पाकर उग आता है, वैसे ही स्कंध, धातु और छः आयतनों का हेतु होने से यह अस्तित्व में आ गया है और हेतु के प्रणाश हो जाने पर इसका निरोध हो जाता है।"

वजिरा भिक्षुणी भी मार को दुत्कारती हुई कहती है – "'प्राणी!' – यह क्या कह रहे हो? तुम्हें गलतफ़हमी हो रही है। यह तो संस्कारों का पुंज-मात्र है। वस्तुतः 'प्राणी' कोई नहीं है।"

"जैसे अवयवों को मिला देने से 'रथ' शब्द जाना जाता है, वैसे ही पांच स्कंधों के मिलने से कोई 'प्राणी' समझ लिया जाता है।"

"दुःख ही उत्पन्न होता है, दुःख ही रहता है और चला जाता है, दुःख को छोड़ और कुछ पैदा नहीं होता, और दुःख को छोड़ और किसी का निरोध भी नहीं होता है।"

६. ब्रह्मसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित है, जिनके अंतर्गत पंद्रह सुत्त हैं।

१. पठम-वग्ग

[सुत्त – ब्रह्मायाचन, गारव, ब्रह्मदेव, बक ब्रह्म, अञ्ञतरब्रह्म, ब्रह्मलोक , कोकालिक , कतमोदकतिस्स, तुरूब्रह्म, कोकालिक ।]

प्रथम सुत्त में बतलाया गया है कि बुद्धत्व लाभ करने के पश्चात भगवान के मन में यह वितर्क उठा कि मैंने तो गंभीर, दुर्दर्श, दुर्ज्ञेय, शांत, प्रणीत, तर्क से अप्राप्य, निपुण तथा पंडितों द्वारा जानने योग्य धर्म को पा लिया है, परंतु कामभोगों में रत जनता द्वारा इसे ग्रहण कर पाना संभव नहीं हो पायगा। इस प्रकार उनका चित्त धर्म-देशना की बजाय अल्पोत्सुकता की ओर झुक गया। तब सहम्पति ब्रह्मा ने उनके मन की बात जानकर उन्हें यह कहकर धर्म-देशना के लिए प्रेरित किया कि संसार में अल्प मल वाले प्राणी भी हैं जो धर्म को न सुनने से नष्ट हो जायेंगे। भगवान ने भी बुद्ध-नेत्र से लोक को निहारा और इसे सही पाया। फिर उन्होंने ब्रह्मा से कहा –"कानवालों के लिए अमृत का द्वार खुल गया है। वे अपनी-अपनी श्रद्धा जगायें।

ऐसे ही भगवान के मन में यह भाव भी जागा कि मैं किस श्रमण अथवा ब्राह्मण को ज्येष्ठ मान, उसका मान-सत्कार करता हुआ विहार करूं? तब उन्हें लगा कि अपरिपूर्ण शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति अथवा विमुक्ति-ज्ञानदर्शन की पूर्ति के लिए ही ऐसा करना होता है, परंतु किसी भी लोक में शील आदि में मुझसे अधिक संपन्न कोई प्राणी नहीं है। अतः उन्होंने यही उचित समझा कि मैं अपने द्वारा अभिसंबुद्ध धर्म को ही ज्येष्ठ मान उसी का मान-सत्कार करता हुआ विहार करूं। तभी सहम्पति ब्रह्मा ने भी प्रकट होकर कहा कि पहले भी सकसंबुद्ध धर्म को ही ज्येष्ठ मानकर विहार करते थे, वे आगे भी ऐसा ही करेंगे, आप भी ऐसा ही करें।

एक अन्य अवसर पर सहम्पति ब्रह्मा ने यह कहकर एक ब्राह्मणी के मन में संवेग उत्पन्न किया कि तुम ब्रह्म-मार्ग को जाने बिना मुझे प्रतिदिन आहुति क्यों देती रहती हो? यह आहुति तो तुम्हें अपने प्रब्रजित पुत्र को देनी चाहिए जो कि अरहंत अवस्था प्राप्त कर, देवताओं से भी बढ़ा-चढ़ा, भिक्षा पाने के लिए तुम्हारे द्वार पर आया है।

बक नामक ब्रह्मा को यह पाप-दृष्टि उत्पन्न हुई कि यह ब्रह्मा का जीवन नित्य, ध्रुव, शाश्वत, केवल, अच्यवनधर्मा है; न यहां कुछ पैदा होता है, न मरता है, इत्यादि; और न इससे परे निकलने का कोई रास्ता है। भगवान ने अपने चित्त से उसके वितर्क को जानकर उसे समझाया कि तुम अविद्या में पड़े हो जो अनित्य को नित्य, अध्रुव को ध्रुव, अशाश्वत को शाश्वत और ऐसे ही आगे से आगे मिथ्या धारणा का पोषण किये जा रहे हो। मैं जन्म, मृत्यु और शोक का अतिक्रमण किये हुए अनंतदर्शी हूं और तुम्हारी आयु को भी जानता हूं। तत्पश्चात बक ब्रह्मा के पूछने पर उन्होंने उसे उसके पहले के शील-व्रतों के बारे में भी बतलाया।

ऐसे ही एक अन्य ब्रह्मा को यह पाप-दृष्टि उत्पन्न हुई कि ऐसा कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण नहीं है जो वहां तक पहुँच पाये। परंतु जब न केवल भगवान बुद्ध, बल्कि एक-एक करके उनके श्रावक महामोग्गल्लान, महाकस्सप, महाकप्पिन और अनुरुद्ध भी, अग्निधातु का आश्रय लेकर उस ब्रह्मलोक में प्रकट हो पालथी मार कर बैठ गये, तब उस ब्रह्मा की पाप-दृष्टि विखंडित हुई। बाद में उसे पता चला कि भगवान के बहुत से अरहंत-अवस्था-प्राप्त श्रावक हैं, जो इसी प्रकार ऋद्धि-संपन्न हैं।

सुब्रह्मा और सुद्धावास नाम के दो प्रत्येक ब्रह्मा किसी ब्रह्मलोक के ब्रह्मा को प्रमादी जान उसे संवेग दिलाने की दृष्टि से उस ब्रह्मलोक में जा प्रकट हुए। वहां सुब्रह्मा ने उस ब्रह्मा के ऋद्धिबल से भी ऊंचा ऋद्धिबल प्रदर्शित कर उसका मान-मर्दन किया। फिर उसे यह भी बतलाया कि हम और आप से भगवान ऋद्धि और प्रताप में कहीं बढ़-चढ़ कर हैं। किसी अन्य काल में यही ब्रह्मा भगवान की सेवा में गया।

अन्य अवसरों पर सुब्रह्मा प्रत्येक ब्रह्मा ने किन्हीं भिक्षुओं को दृष्टि में रखते हुए इस आशय की गाथाएं कहीं कि जिसे मापा नहीं जा सकता, उसे मापने वाले को मैं पृथग्जन कहता हूं।

एक बार कोकालिक नाम का भिक्षु भगवान के समक्ष आयुष्मान सारिपुत्त और महामोग्गल्लान को पापेच्छ बतलाने लगा। इस पर भगवान ने उसे कहा कि वे दोनों बहुत अच्छे हैं, उनके प्रति मन में श्रद्धा जगाओ। परंतु बार-बार समझाने पर भी वह नहीं माना और वहां से चला गया। उसके कुछ समय पश्चात उसके शरीर पर फफोले उठने लगे जो आकार में बढ़ते चले गये। अंततः ये फूट गये

और इसी से उसकी मृत्यु हो गयी। आयुष्मान सारिपुत्त और महामोग्गल्लान के प्रति मन में दुर्भावना लाने से वह पद्म नाम के नरक में उत्पन्न हुआ। भगवान ने कहा कि पुरुष के जन्म के साथ ही उसके मुख में कुल्हाड़ी भी पैदा होती है जिससे बुरे वचन बोलता हुआ मूर्ख अपने आप को ही काटा करता है। सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि कोई बुद्धों के प्रति मन में मैल जगाये।

२. दुतिय-वग्ग

[सुत्त - सनङ्कुमार, देवदत्त, अन्धकविन्द, अरुणवती, परिनिब्बान।]

ब्रह्मा सनङ्कुमार ने भगवान के सान्निध्य में कहा -"गोत्र का विचार करनेवालों के लिए मनुष्यों में क्षत्रिय श्रेष्ठ होता है, और देवों तथा मनुष्यों में विद्या और आचरण से संपन्न (बुद्ध) श्रेष्ठ होता है।"

सहम्पति ब्रह्मा ने देवदत्त के विषय में कहा -"केले का अपना ही फल केले के वृक्ष को नष्ट कर देता है, वेणु को भी, नरकट को भी।"

इसी ब्रह्मा ने दूर, एकांत स्थान में वास करते हुए बंधन-मुक्त जीवन बिताने के बारे में गाथा भी कही।

भगवान ने भिक्षुओं को सम्यक संबुद्ध सिखी के समय की एक घटना सुनायी जिसके अनुसार उनके अग्र-श्रावक अभिभू ने उनके साथ एक ब्रह्मलोक में जाकर वहां के ब्रह्मा और ब्रह्मपार्षदों को धर्मोपदेश कर खूब संवेग दिलाया। उनका यह नाद उसी ब्रह्मलोक में नहीं, बल्कि सहस्र लोकों में गुंजायमान हुआ - "उत्साह करो, घर छोड़कर बाहर निकलो, बुद्ध की शिक्षा में लग जाओ। मृत्यु की सेना को वैसे ही तितर-बितर कर दो जैसे हाथी फूस की झोंपड़ी को।जो इस धर्मविनय में अप्रमत्त होकर विहार करेगा, वह संसार के आवागमन को छोड़ अपने दुःखों का अंत कर लेगा।"

अंतिम सुत्त में भगवान के परिनिर्वाण के समय उनके द्वारा भिक्षुओं को दिये गये उनके अंतिम उपदेश का उल्लेख है -"सभी संस्कार अनित्य हैं। प्रमादरहित होकर इस सच्चाई का संपादन करो।" तदनंतर उनके परिनिर्वाण और परिनिवृत्त होने पर सहम्पति ब्रह्मा, देवेंद्र सक्क (शक्र) आदि द्वारा कही गयी गाथाओं का उल्लेख है। आयुष्मान अनुरुद्ध ने कहा कि जैसे मशाल बुझ जाती है वैसे ही उनके चित्त की विमुक्ति हो गयी है।

७. ब्राह्मणसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित हैं, जिनके अंतर्गत बाईस सुत्त हैं।

१. अरहन्त-वग्ग

[सुत्त – धनञ्जानी, अक्कोस, असुरिन्दक, बिलङ्गिक, अहिंसक, जटा, सुद्धिक, अग्गिक, सुन्दरिक, बहुधीतर।]

एक समय धनञ्जानी नाम की ब्राह्मणी ने भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण के लिए भोजन परोसते हुए तीन बार उदान के ये शब्द कहे –"उन अर्हत-अवस्था-प्राप्त सम्यकसंबुद्ध भगवान को नमस्कार हो!"

ब्राह्मण को यह वचन अच्छे नहीं लगे, परंतु ब्राह्मणी के कहने पर वह भगवान से मिलने चला गया। वहां पहुँच कर उसने उनसे पूछा –"किसका नाश कर कोई सुख से सोता है? किसका नाश कर शोक नहीं करता है? किस एक वस्तु का वध करना आपको अच्छा लगता है?"

भगवान ने कहा –"क्रोध का नाश कर सुख से सोता है, क्रोध का नाश कर शोक नहीं करता है, विष-मूलक क्रोध का वध करना आर्यों द्वारा प्रशंसित है।"

भगवान के वचन सुनकर ब्राह्मण भावविभोर होकर उनकी शरण चला गया, और धर्म तथा भिक्षुसंघ की भी। फिर उनके पास प्रव्रज्या, उपसंपदा पाकर और अप्रमत्त हो ध्यान करते हुए वह अरहंत अवस्था को प्राप्त हुआ।

भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण के भगवान के पास प्रब्रजित होने की बात सुनकर अक्कोसक, असुरिन्दक तथा बिलङ्गिक-भारद्वाज ब्राह्मण भी कुपित होकर भगवान के पास जा पहुँचे, परंतु वहां उनकी आर्य-वाणी सुनकर उन्हीं की शरण चले गये, और धर्म तथा भिक्षुसंघ की भी। समय आने पर इन तीनों ने भी अरहंत अवस्था प्राप्त की।

ऐसे और भी अनेक अवसर आये जबकि इस वर्ग के लोग भगवान के संपर्क में आकर, अप्रमत्त हो ध्यान करते हुए, अरहंत अवस्था को प्राप्त हुए।

भगवान द्वारा इन्हें दिये गये धर्मोपदेशों के कुछ अंश –

–जो काया, वाणी और चित्त से हिंसा नहीं करता, वही 'अहिंसक' होता है।

–शील में प्रतिष्ठित, प्रज्ञावान पुरुष ही, समाधि और प्रज्ञा की भावना करते हुए सब प्राणियों को उलझाए रखने वाली इस अंदर-बाहर की जटा को सुलझा सकता है।

–अध्यवसायी, संयमी, नित्य दृढ पराक्रम करनेवाला क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल अथवा पुक्कुस परम शुद्धि को प्राप्त कर लेता है।

–विशिष्ट-ज्ञान-प्राप्त मुनि द्वारा पूर्वजन्मों को जानना, स्वर्ग और अपाय को देखना, और जन्म का क्षय प्राप्तकर लेना – इन तीन विद्याओं से कोई ब्राह्मण 'त्रैविद्य' होता है।

–हे ब्राह्मण! मैं लकड़ियां जलाना छोड़ अपने भीतर ज्योति जलाता हूं। मेरी आग सदा जलती रहती है। मैं नित्य-समाहित, ब्रह्मचारी और अरहंत हूं।

अंतिम सुत्त में बतलाया गया है कि चौदह बैल गुम हो जाने से उनकी तलाश करता हुआ कोई भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण जंगल में आ निकला। वहां उसने भगवान को पालथी मार, शरीर सीधा किये हुए, स्मृतिमान हो सुखपूर्वक बैठे देखा। तब उसने अनुमान लगाया कि यह व्यक्ति क्यों सुखी होगा। इसके लिए उसने गाथाएं कहीं। भगवान ने उन गाथाओं का अनुमोदन किया।

२. उपासक-वग्ग

[सुत्त – कसिभारद्वाज, उदय, देवहित, महासाल, मानत्थद्ध,
पच्चनीक, नवकम्मिक, कट्ठहार, मातुपोसक, भिक्खक, सङ्गारव,
खोमदुस्स।]

एक समय भगवान भिक्षा के लिए कसिभारद्वाज ब्राह्मण के घर पहुँचे। उन्हें देखकर वह बोला – "श्रमण! मैं जोत-बोकर खाता हूं। तुम भी जोत-बोकर खाओ।" इस पर भगवान ने कहा –"ब्राह्मण! मैं भी जोत-बोकर खाता हूं।" जब कसिभारद्वाज ने कहा कि मुझे तो आपकी खेती दिखायी नहीं देती, तब उन्होंने उसे बतलाया कि मैं अमृत उपजाने वाली खेती करता हूं जिसमें श्रद्धा बीज, तप वर्षा, प्रज्ञा हल और इसी प्रकार के अन्य खेती के साधन होते हैं। इस खेती को करने से कोई भी सारे दुःखों से छूट जाता है।

यह सुनकर कसिभारद्वाज ने भगवान को भोजन करने के लिए कहा, परंतु उन्होंने प्रत्युत्तर दिया कि धर्मोपदेश करने के फलस्वरूप प्राप्त होने वाला भोजन मैं स्वीकार नहीं करता। अन्न-पान से किसी दूसरे क्षीणास्रव महर्षि की सेवा करो और पुण्य कमाओ।

ऐसा कहे जाने पर भाव-विभोर हो कसिभारद्वाज भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा भिक्षुसंघ की भी।

ऐसे ही अन्य अनेक प्रकरण हैं जिनमें भगवान के संपर्क में आने वाले ब्राह्मण उनके वचनों से प्रभावित होकर उनकी, तथा धर्म और भिक्षुसंघ की भी, शरण चले गये।

ऐसे व्यक्तियों को भगवान द्वारा कहे गये वचनों के कुछ अंश –

* ये काम बार-बार होते हैं, जैसे बीज बोना, वर्षा होना, खेत जोतना, उपज होना, दान मांगना, दान देना, दान देने से स्वर्ग-लाभ करना, मूर्ख का गर्भ में पड़ना, जन्मना, मरना, श्मशान ले जाया जाना, इत्यादि; परंतु पुनर्भव प्राप्त न कराने वाला मार्ग पाकर महाप्रज्ञावान बार-बार जन्म ग्रहण नहीं करता।

* दान देने वाला ऐसे व्यक्ति को दान दे जो पूर्वजन्मों का जानकार, स्वर्ग तथा अपाय का देखनहार और जन्म का क्षय प्राप्त किये हुए हो। उसे दिया हुआ दान बड़ा फलप्रद होता है।

* माता, पिता, ज्येष्ठ भ्राता और आचार्य के प्रति अभिमान न करे। इनके प्रति गौरव-भाव रखे, इनका सम्मान करे, इनकी पूजा करना अच्छा है।

* जो धर्मपूर्वक भिक्षाटन कर माता-पिता का पोषण करता है, वह बहुत पुण्य कमाता है। इससे वह यहां भी प्रशंसित होता है और मरणोपरांत स्वर्ग में प्रमुदित होता है।

* भिक्षा मांगने मात्र से कोई भिक्षु नहीं हो जाता। जो इस संसार के पुण्य और पाप बहाकर ज्ञानपूर्वक सच्चे ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वही वास्तव में 'भिक्षु' कहलाता है।

* 'धर्म' जलाशय है, और निर्मल, सज्जनों द्वारा प्रशस्त 'शील' उसका घाट। वेदनाओं के जानकार इसमें स्नान करके पवित्र गात्र वाले होकर तैरकर पार चले जाते हैं।

* वह सभा नहीं होती जिसमें संत न हों; वे संत नहीं होते जो धर्म की बात न बोलें; राग, द्वेष और मोह को त्यागकर धर्म की बात बोलने वाले ही संत होते हैं।

इन सुत्तों में एक ऐसा प्रकरण भी है जिसमें एक बूढ़े ब्राह्मण को उसके पुत्रों ने घर से बाहर निकाल दिया था। भगवान से संपर्क होने पर उन्होंने उसे कुछ गाथाएं बतलाईं और कहा कि बहुत लोगों के जमा होने पर पुत्रों के वहां होते हुए

वह इन्हें पढ़े। इन गाथाओं में घर से निकाले गये और दर-दर भीख मांगते बूढ़े बाप का बड़ा ही करुण चित्रण है। इसमें नालायक बेटों की अपेक्षा बूढ़े बाप के डंडे को ही कहीं अच्छा बतलाया गया है जो भड़के बैल को भगा देता है और खूंखार कुत्ते को भी, अंधकार में आगे-आगे चलता है, गहराई की थाह लगाता है और फिसल जाने पर गिरने से बचाता है।

वृद्ध ब्राह्मण ने यही किया जिस पर उसके पुत्रों ने उसे घर ले जाकर, स्नान करवा, प्रत्येक ने उसे कपड़ों का जोड़ा भेंट किया।

८. वङ्गीससंयुत्त

इस संयुत्त में बारह सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – निक्खन्त, अरति, पेसल, आनन्द, सुभासित, सारिपुत्त, पवारणा, परोसहस्स, कोण्डञ्ञ, मोग्गल्लान, गग्गरा एवं वङ्गीस।

इन सुत्तों में आयुष्मान वङ्गीस के क्रिया-कलापों को निबद्ध किया गया है। कुछ अवसरों पर चित्त में जोरों से राग जागने पर वह इसे स्वयं के प्रयासों से शांत करने में सफल हुए। एक अवसर पर उन्होंने इसके लिए आयुष्मान आनन्द से उपाय पूछा। कुछ अवसरों पर उन्होंने उचित प्रसंग देखकर भगवान बुद्ध तथा आयुष्मान सारिपुत्त, अञ्ञाकोण्डञ्ञ तथा महामोग्गल्लान की स्तुति की।

आयुष्मान वङ्गीस की गाथाओं के कुछ अंश निम्न प्रकार से हैं –

* मैंने अपने कानों से बुद्ध को बताते सुना है कि निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग क्या है, मेरा मन अब वहीं बँध गया है।

* जो पृथग्जनों की साठ मिथ्या धारणाओं में नहीं पड़ता और न फूहड़पने की बातें करता है, वही भिक्षु है।

* उसी वाणी को बोले जिससे न अपने को संताप हो, न दूसरे को कष्ट –यही वाणी 'सुभाषित' होती है।

* जैसे मेघरहित आकाश में चंद्रमा अपने निर्मल प्रकाश से शोभायमान होता है, हे बुद्ध! आप महामुनि भी उसी प्रकार अपने यश से सारे लोक में अत्यंत शोभायमान हो रहे हैं।

अंतिम सुत्त में आयुष्मान वङ्गीस की उन गाथाओं को निबद्ध किया गया है जबकि वह थोड़े ही समय पूर्व अरहत्वपद प्राप्त कर विमुक्ति का सुख अनुभव कर रहे थे। इन गाथाओं में उन्होंने व्यक्त किया है कि मैं पहले कविता करते हुए गांव-गांव, नगर-नगर घूमता-फिरता था, परंतु बुद्ध का धर्मोपदेश सुनकर मैं घर से बेघर हो प्रब्रजित हो गया और अरहत्व-लाभ किया।मुझे बुद्ध से तीन विद्याएं प्राप्त हुई हैं –पूर्वजन्मों का ज्ञान, विशुद्ध दिव्य चक्षु और परचित्तज्ञान। मैंने बुद्ध की शिक्षा को पूरा कर लिया है।

९. वनसंयुत्त

इस संयुत्त में चौदह सुत्त हैं जिनके नाम हैं – विवेक, उपट्ठान, कस्सपगोत्त, सम्बहुल, आनन्द, अनुरुद्ध, नागदत्त, कुलघरणी, वज्जिपुत्त, सज्झाय, अकुसलवितक्क, मज्झन्हिक, पाकतिंद्रिय एवं गन्धत्थेन।

इन सुत्तों में भिक्षुओं को कोसल अथवा वेसाली के वनखंडों में विहार करते हुए बतलाया गया है। इसमें से कई भिक्षुओं की किसी-न-किसी प्रकार की शिथिलता को देखकर वनदेवता उन्हें अपने कर्तव्य के प्रति सचेत करते हैं। जैसे –

* पापपूर्ण अकुशल वितर्कों को मन में लाते हुए भिक्षु को देखकर वनदेवता उसे यह कहकर सचेत करता है कि तुम स्मृतिमान हो, मन के मोह को छोड़ो।

* दिन में सोते हुए भिक्षु को देखकर वनदेवता उसे यह कहकर सजग बनाता है कि तुम्हें सोने से क्या मतलब? बाण लगने से छटपटाते हुए बेचैन व्यक्ति को भला नींद कैसी?

* एक निपट-मूर्ख को धर्मोपदेश देते हुए भिक्षु को देखकर वनदेवता उसे यह कहकर सावधान करता है कि इसे तो दस मशाल दिकायें तो भी यह रूपों को नहीं देख सकता, क्योंकि इसके पास आँख नहीं है।

* गृहस्थों से घिरे रहने वाले भिक्षु को देखकर वनदेवता उसे यह कहकर होश में लाता है कि तुम ध्यान करो, इस चहल-पहल से तुम्हें क्या मिलने वाला है?

* पुष्करिणी में पैठकर एक कमल को चोरी-चोरी सूंघते हुए भिक्षु को देखकर वनदेवता उसे 'गंध-चोर' की संज्ञा देकर सचेत करता है।

इसके विपरीत कुछ प्रसंग ऐसे भी हैं जिनमें भिक्षु लोग देवताओं के मति-विभ्रम को दूर करते हैं। जैसे –

* एक देवता द्वारा त्रयस्त्रिंश देवलोक की सुख-समृद्धि का बखान किये जाने पर भिक्षु उसका ध्यान अरहंतों के कथन की ओर दिलाता है – "सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पाद और व्यय स्वभाव वाले हैं, ये उत्पन्न हो-होकर निरुद्ध होते जाते हैं। इस प्रकार इनका पूरी तरह उपशमन हो जाना ही (वास्तविक) सुख होता है।"

* एक वनदेवता भिक्षु के पास आकर कहता है –"इस भरी दोपहर में जब पक्षी घोंसलों में घुस गये हैं और यह महारण्य सांय-सांय कर रहा है, मुझे डर लगता है।" भिक्षु से उसे प्रत्युत्तर मिला –"इस भरी दोपहर में जब पक्षी घोंसलों में घुस गये हैं और यह महारण्य सांय-सांय कर रहा है, मुझे आनंद आता है ।"

१०. यक्खसंयुत्त

इस संयुत्त में बारह सुत्त हैं जिनके नाम हैं – इन्दक, सक्कनाम, सूचिलोम, मणिभद्द, सानु, पियङ्कर, पुनब्बसु, सुदत्त, पठमसुक्का, दुतियसुक्का, चीरा एवं आळवक।

इन सुत्तों में यक्षों यक्षिणियों के विविध प्रसंग हैं –

कोई-कोई यक्ष भगवान से तरह-तरह के प्रश्न पूछकर उनका समाधान प्राप्त करते हैं, यथा –

रूप जीव नहीं है, तो यह शरीर कैसे पाता है?

यह अस्थिपिंड कहां से आता है?

राग और द्वेष कैसे पैदा होते हैं?

अरुचि, रुचि और भय से रोंगटे खड़े हो जाना – इनका क्या कारण है?

पुरुष का सर्वश्रेष्ठ धन क्या है?

कोई व्यक्ति कैसे परिशुद्ध हो जाता है? इत्यादि।

एक यक्ष भगवान से कहता है कि विमुक्ति-प्राप्त श्रमण के लिए दूसरों को उपदेश देना उचित नहीं है। भगवान ने कहा कि वह अनुकंपावश ऐसा करता है। ऐसा करना उसके लिए बंधनकारक नहीं होता।

एक यक्ष अर्हतों से सुनी हुई बात दोहराता है कि उपोसथ व्रत रखने वालों और ब्रह्मचर्य पालने वालों के साथ यक्ष लोग छेड़छाड़ नहीं करते।

कुछ यक्षिणियां अपने पुत्रों को चुप कराती हुई बतलायी गयी हैं जिससे कि वे धर्म को सुन सकें। एक यक्षिणी की भावाभिव्यक्ति है कि संसार में अपना पुत्र प्यारा होता है, अपना पति प्यारा होता है, परंतु मुझे इस धर्म की खोज उससे भी बढ़कर प्यारी लगती है।

अनाथपिण्डिक गृहपति द्वारा भगवान के प्रथम दर्शन के लिए जाते समय जब जब वह घबराता है, तब-तब सिवक नामक यक्ष उसको यह कहकर प्रोत्साहित करता है, "आगे बढ़ो, गृहपति! तुम्हारा आगे बढ़ना ही श्रेयस्कर है, पीछे हटना नहीं।"

एक समय सुक्का भिक्षुणी राजगह में एक बड़ी सभा में धर्मोपदेश कर रही थी, तब एक यक्ष उसके उपदेश से अत्यंत संतुष्ट हो सड़क-सड़क, चौराहा-चौराहा घूमकर लोगों को यह गाथा बोलते बतलाया गया है –"राजगह के लोगो! क्या तुम मद्य पीकर सो रहे हो जो अमृत-पद का बखान करने वाली सुक्का का उपदेश नहीं सुन रहे हो?"

११. सक्क संयुत्त

यह संयुत्त तीन वर्गों में विभाजित है, जिनमें पच्चीस सुत हैं।

१. पठम-वग्ग

[सुत्त – सुवीर, सुसीम, धजग्ग, वेपचित्ति, सुभासितजय,
कुलावक, नदुब्भिय, वेरोचनअसुरिन्द, अरञ्ञायतनइसि,
समुद्दक ।]

इन सुत्तों में अधिकांश प्रकरण देवासुर संग्राम से संबंधित हैं। दो प्रकरणों में सुवीर और सुसीम नाम के देवपुत्रों के समक्ष देवेंद्र सक्क (शक्र) निर्वाण के मार्ग की प्रशंसा करता है। भगवान भी भिक्षुओं को इससे प्रेरणा पाकर अप्राप्त की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होने के लिए कहते हैं।

त्रयस्त्रिंश लोक के देवों को देवेंद्र ने परामर्श दिया कि यदि तुम्हें रणभूमि में भय लगने लगे तो मेरे, अथवा प्रजापति, अथवा वरुण, अथवा ईशान के ध्वजाग्र का अवलोकन करो, इससे तुम्हारा भय जाता रहेगा। भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि इससे कइयों का भय जा भी सकता था और कइयों का नहीं भी, क्योंकि देवेंद्र सक्क स्वयं अवीतराग, अवीतद्वेष, अवीतमोह, भीरु, स्तब्ध हो जाने वाला और घबड़ाकर भाग जाने वाला था। परंतु यदि ध्यान करते समय तुम्हें कभी भय लगे तो तुम बुद्ध, धर्म, अथवा संघ का स्मरण करो। इससे तुम्हारा सारा भय चला जायगा, क्योंकि तथागत वीतराग, वीतद्वेष, वीतमोह, अभीरु, स्तब्ध न होने वाले और घबड़ाकर पलायन न करने वाले होते हैं।

एक बार देवासुर संग्राम में असुरों के पराजित हो जाने पर देवों द्वारा असुरेंद्र वेपचित्ति को बांधकर सुधर्मा सभा में देवेंद्र सक्क के पास ले जाया गया। उस समय वह बड़े असभ्य और कठोर वचन बोल रहा था, परंतु देवेंद्र सक्क ने शांत बने रहकर अपनी अपूर्व सहिष्णुता का परिचय दिया। भगवान ने भिक्षुओं को भी सहिष्णुता और विनम्रता का अभ्यासी होने के लिए कहा।

एक अन्य अवसर पर असुरेंद्र वेपचित्ति और देवेंद्र सक्क के मध्य 'सुभाषित' बोलने की होड़ लगी। इसके लिए निर्णायक भी चुने गये। दोनों ओर से गाथाएं

कही जाने पर निर्णायकों ने निर्णय दिया कि असुरेंद्र द्वारा कही गयी गाथाएं लड़ाई, झगड़ा या फसाद बढ़ाने वाली हैं, जबकि देवेंद्र द्वारा कही गयी गाथाएं इसके विपरीत हैं, अतः सुभाषित कहने के कारण देवेंद्र विजयी हैं। भगवान ने भी भिक्षुओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया।

एक समय कुछ शीलवंत और कल्याणधर्मा ऋषि असुरों से भय की आशंका देखकर असुरेंद्र सम्बर से अभय-दक्षिणा मांगने के लिए गये, परंतु उसने उनको दक्षिणा में भय ही दिया। इस पर ऋषियों ने उसे भी शाप दिया कि तुम्हारा भय भी कभी न मिटे। तुम जैसा बीज बो रहे हो, वैसा ही फल पाओगे।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि उन ऋषियों के शाप से असुरेंद्र सम्बर रात में तीन बार चिहुँक उठता है।

२. दुतिय-वग्ग

[सुत्त – वतपद, सक्कनाम, महालि, दलिद्द, रामणेय्यक, यजमान, बुद्धवन्दना, गहट्ठवन्दना, सत्थारवन्दना, सङ्घवन्दना।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि देवेंद्र सक्क अपने मनुष्य-जीवन में किन सात व्रतों का पालन किया करता था, जिनके कारण वह इंद्र-पद पर आरूढ़ हुआ। उन्होंने उनको यह भी बतलाया कि उसके 'मघवा', 'पुरिन्दद', 'सक्क' आदि नाम कैसे पड़े।

पूर्वकाल में राजगह के एक नीच कुल का दरिद्र व्यक्ति तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म में श्रद्धावान होकर शील, विद्या, त्याग और प्रज्ञा का अभ्यास कर मरणोपरांत त्रयस्त्रिंश देवलोक में उत्पन्न हुआ। चूंकि वह अन्य देवों से वर्ण और यश में बढ़ा-चढ़ा था, अतः वहां के देव उससे कुढ़ते थे। यह देख देवेंद्र सक्क ने उन देवों को समझाया कि जिसकी तथागत में अचल श्रद्धा हो, शील शुभ हो, संघ के प्रति गौरव का भाव हो, और समझ सीधी हो, उसे दरिद्र नहीं कह सकते। वह सार्थक जीवन वाला होता है।

एक बार देवेंद्र सक्क ने भगवान से यह जानना चाहा कि कौन-सा स्थान रमणीय होता है। इस पर उन्होंने कहा कि गांव हो या जंगल, स्थल नीचा हो या समतल, जहां अरहंत विहार करते हैं वही स्थान रमणीय होता है। उन्होंने यह भी समझाया कि बुद्ध की वंदना कैसे करनी चाहिए।

इन सुत्तों में तीन प्रकरण ऐसे हैं जिनमें देवेंद्र सक्क को अपने वेजयन्त प्रासाद

से उतरते हुए या तो सभी दिशाओं को, अथवा भगवान बुद्ध को, अथवा भिक्षुसंघ को नमस्कार करते हुए बतलाया गया है। इस बारे में सारथि मातलि द्वारा पूछे जाने पर वह कहता है –

* मैं उनको नमस्कार करता हूं जो शीलसंपन्न हैं, चिरकाल से समाहित हैं, सम्यक रूप से प्रव्रजित हैं, ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, पुण्य कार्यों में लगे हुए गृहस्थ हैं, शीलवंत उपासक हैं और धर्मपूर्वक भार्या का पोषण करते हैं।

* मैं नमस्कार करता हूं इस समय के सम्यक संबुद्ध अनोम नामक शास्ता को; राग, द्वेष एवं अविद्या रहित क्षीणास्रव अरहंतों को; और राग, द्वेष को दूर कर, अविद्या का अतिक्रमण कर, प्रमादरहित हो निर्वाण पथ की ओर अग्रसर शैक्ष्यों को।

* मैं नमस्कार करता हूं उन प्रव्रजितों को जो कुछ संग्रह करके नहीं रखते, जो कुछ दूसरों से मिल जाये उसी से गुजारा करते हैं, अच्छी मंत्रणा करते हैं और धैर्यवान, शांत, समतापूर्ण आचरण वाले, विरोधियों के अविरोधी, हिंसा त्यागे हुए तथा अनपेक्षी होते हैं।

३. ततिय-वग्ग

[सुत्त – छेत्वा, दुब्बण्णिय, सम्बरिमाया, अच्चय, अक्कोध।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि पूर्वकाल में कोई बदरूप यक्ष देवेंद्र सक्क के आसन पर जा बैठा। यह देख त्रयस्त्रिंश लोक के देव कुढ़ने लगे। जितना वे कुढ़ते, उतना ही वह सुंदर होता जाता।

देवों ने यह बात देवेंद्र को बतायी और जानना चाहा कि क्या यह कोई क्रोध-भक्ष यक्ष है?

तब देवेंद्र सक्क ने उस यक्ष के समीप जाकर अपने दाहिने घुटने को पृथ्वी पर टेक और उसकी ओर हाथ जोड़कर तीन बार अपना नाम कह सुनाया। जैसे-जैसे सक्क अपना नाम सुनाता गया वैसे-वैसे यक्ष बदरूप होता चला गया और अंततः अंतर्धान हो गया।

तब देवेंद्र ने अपने आसन पर बैठकर देवगण से कहा –"मुझे क्रोध किये बहुत समय हो गया है। मुझमें अब क्रोध टिका हुआ नहीं है।"

एक बार भगवान ने भिक्षुओं को समझाया –

"मूर्ख दो प्रकार के होते हैं –

(१) जो अपने अपराध को अपराध के तौर पर नहीं देखते, और (२) जो दूसरे द्वारा अपराध स्वीकार कर लिए जाने पर उसे क्षमा नहीं करते।

ऐसे ही पंडित भी दो प्रकार के होते हैं –

(१) जो अपने अपराध को अपराध के तौर पर देख लेते हैं, और (२) जो दूसरे द्वारा अपराध स्वीकार कर लिए जाने पर उसे क्षमा कर देते हैं।"

अंतिम सुत्त में देवेंद्र सक्क द्वारा कही गयी एक गाथा का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार क्रोध करने वाले पर क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध पापी व्यक्ति को पर्वत के समान चूर-चूर कर देता है।

निदानवग्ग

१. निदानसंयुत्त

यह संयुत्त नौ वर्गों में विभाजित है जिनमें एक सौ तीन सुत्त हैं।

१. बुद्ध-वग्गो

[सुत्त – पटिच्चसमुप्पाद, विभङ्ग, पटिपदा, विपस्सी, सिखी,
वेस्सभू, ककुसन्ध, कोणागमन, कस्सप, गोतम।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि 'पटिच्चसमुप्पाद' (प्रतीत्यसमुत्पाद) क्या होता है? अविद्या के कारण संस्कार, संस्कार के कारण विज्ञान, विज्ञान के कारण नाम-रूप, नाम-रूप के कारण छः इंद्रियां, छः इंद्रियों के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जन्म और जन्म से कारण बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते हैं। इस प्रकार 'समस्त दुःखसमूह' की उत्पत्ति होती है । यही होता है –'प्रतीत्यसमुत्पाद'।

फिर कहा कि अविद्या के निरोध से संस्कार, संस्कार के निरोध से विज्ञान, विज्ञान के निरोध से नाम-रूप, नाम-रूप के निरोध से छः इंद्रियां, छः इंद्रियों के निरोध से स्पर्श, स्पर्श के निरोध से वेदना, वेदना के निरोध से तृष्णा, तृष्णा के निरोध से उपादान, उपादान के निरोध से भव, भव के निरोध से जन्म और जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक ,विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास –सभी निरुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार समस्त दुःखों का निरोध हो जाता है।

भगवान ने 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का विभाग करके भी समझाया कि अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम-रूप आदि से क्या आशय लिया जाता है। उन्होंने यह भी बतलाया कि जिस पूर्व-वर्णित क्रम से 'समस्त दुःखसमूह' की उत्पत्ति होती है, वह 'मिथ्या मार्ग' कहलाता है, और जिस क्रम से समस्त दुःखों का निरोध हो जाता है, उसे 'सम्यक मार्ग' कहते हैं।

उन्होंने इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला कि उनके पूर्ववर्ती सम्यक संबुद्धों – विपस्सी, सिखी, वेस्सभू, ककुसन्ध, कोणागमन तथा कस्सप –और उन्हें स्वयं भी 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का ज्ञान किस प्रकार प्राप्त हुआ।

२. आहार-वग्गो

[सुत्त – आहार, मोळियफग्गुन, समणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, कच्चानगोत्त, धम्मकथिक, अचेलकस्सप, तिम्बरुक, बालपण्डित, पच्चय।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि आहार चार प्रकार का होता है –१. कौर वाला (स्थूल या सूक्ष्म), २. स्पर्श, ३. मन की चेतना, और ४. विज्ञान। इन आहारों का निदान है तृष्णा, और तृष्णा का वेदना, वेदना का स्पर्श, स्पर्श का छः इंद्रियां, छः इंद्रियों का नामरूप, नामरूप का विज्ञान, विज्ञान का संस्कार, संस्कार का अविद्या। इस प्रकार अविद्या 'समस्त दुःख-समूह' का मूल कारण है और इसके अशेष निरोध से सारे दुःखों का निरोध हो जाता है।

आयुष्मान मोळियफग्गुन ने भगवान से पूछा कि कौन विज्ञान का आहार करता है, कौन स्पर्श करता है, कौन वेदना का अनुभव करता है, कौन तृष्णा करता है, कौन उपादान करता है? भगवान ने कहा कि ये प्रश्न असंगत हैं, मैं ऐसा नहीं कहता हूं। संगत प्रश्न तो ये हो सकते हैं –विज्ञान आहार से क्या होता है, क्या होने से स्पर्श होता है, किसके होने से वेदना होती है, किसके होने से तृष्णा होती है, किसके होने से उपादान होता है। फिर उन्होंने इन प्रश्नों के यथोचित उत्तर भी दिये।

उन्होंने यह भी कहा कि जो श्रमण अथवा ब्राह्मण प्रतीत्यसमुत्पाद की कड़ियों, उनके समुदय, उनके निरोध और उनका निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग को नहीं जानते हैं, वे 'श्रमण' अथवा 'ब्राह्मण' कहलाने योग्य नहीं होते और वे इस जन्म में स्वयं अभिज्ञा से श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य को साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार नहीं कर पाते हैं।

उन्होंने आयुष्मान कच्चान-गोत्र को 'सम्यक दृष्टि' के बारे में समझाते हुए उन्हें 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का दिग्दर्शन कराया। फिर एक भिक्षु को समझाया कि इस नियम की विभिन्न कड़ियों के निरोध का उपदेश करने वाले को कह सकते हैं –'धर्मकथिक', निरोध के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति को 'धर्मानुधर्मप्रतिपन्न' और जरा-मरण का निरोध हो जाने से विमुक्त हुए व्यक्ति को 'इसी जन्म में निर्वाण प्राप्त किया हुआ भिक्षु'।

भगवान ने अचेल कस्सप की 'दुःख' और तिम्बरुक परिब्राजक की 'सुख-दुःख' के बारे में भ्रांतियों का निराकरण किया। इसके परिणामस्वरूप ये

दोनों भावविभोर होकर भगवान की शरण चले गये, और धर्म तथा भिक्षुसंघ की भी । कालांतर में भगवान के पास प्रव्रज्या, उपसंपदा पाकर और तत्पश्चात अप्रमत्त, आतापी एवं दृढसंकल्प होकर विहार करते हुए अचेल कस्सप ने अरहंत अवस्था प्राप्त की, और तिम्बरुक परिब्राजक जन्म भर के लिए भगवान का शरणागत उपासक हुआ ।

भगवान ने 'मूर्ख' और 'पंडित' का भेद भी समझाया। उन्होंने कहा कि मूर्ख व्यक्ति अविद्या और तृष्णा का पूरी तरह क्षय करने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता, इसलिए शरीर-रूपी नया-नया चोला धारण करता रहता है, या यों कहा जाय कि दुःख-विमुक्त नहीं होता है। 'पंडित' का आचरण इसके सर्वथा विपरीत होता है, इससे वह नया चोला धारण न कर सर्वथा दुःख-विमुक्त हो जाता है।

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का नियम शाश्वत है। कोई बुद्ध हो या न हो, यह नियम तो अपना काम करता ही रहता है। कभी कोई बुद्ध उत्पन्न होता है, तो इस नियम का साक्षात्कार कर इसे दूसरों को समझाता है ।

३. दसबल-वग्गो

[सुत्त – दसबल, दुतियदसबल, उपनिस, अञ्ञतित्थिय, भूमिज,
उपवाण, पच्चय, भिक्खु, समणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण।]

भगवान ने भिक्षुओं को प्रकट किया कि तथागत दस बलों और चार वैशारद्यों से युक्त हो सर्वोत्तम कहलाने के अधिकारी हैं, परिषदों में सिंहनाद करते हैं और ब्रह्मचक्र को प्रवर्तित करते हैं – यह रूप है, यह इसका समुदय है, यह इसका निरोध हो जाना है; ऐसे ही वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के बारे में भी कहते हैं। इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है; इसके नहीं होने से यह नहीं होता, इसके निरोध से यह निरुद्ध हो जाता है। अविद्या से आरंभ हो कर प्रतीत्यसमुत्पाद की एक-एक कड़ी से कैसे अगली-से-अगली कड़ी तैयार होकर 'समस्त दुःख-समूह' की उत्पत्ति होती है, और इसी क्रम से एक-एक का निरोध होने से कैसे सारे दुःख का निरोध हो जाता है-उन्हों ने बताया।

उन्होंने भिक्षुओं को खूब परिश्रम करते हुए अपनी अपनी प्रव्रज्या सफल बनाने का आह्वान किया, जिससे वे अप्राप्त को प्राप्त कर सकें, साक्षात्कार न किये हुए का साक्षात्कार कर सकें ।

उन्होंने भिक्षुओं को कहा कि मैं यह उपदेश करता हूँ कि जानने तथा देखनेवाले का ही आस्रवक्षय होता है, न जिनने न देखने वाला का नहीं। फिर उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि इन्हें जान कर और देख कर आस्रवों का क्षय होता है – यह रूप है, यह इसका समुदय है, यह इसका निरोध हो जाना है, इत्यादि। उन्होंने यह भी कहा कि आस्रवों के क्षय हो जाने पर जो एतद्विषयक ज्ञान होता है, उसे भी मैं सहेतुक बतलाता हूं, अहेतुक नहीं। ऐसे ही विमुक्ति, वैराग्य, निर्वेद, यथार्थज्ञान-दर्शन, समाधि, सुख आदि को भी मैं सहेतुक बतलाता हूं, अहेतुक नहीं।

एक अवसर पर अन्यतैर्थिक परिब्राजकों ने आयुष्मान सारिपुत्त से कहा कि कुछ श्रमण अथवा ब्राह्मण कर्मवादी हैं जो दु:ख को अपना स्वयं किया हुआ बतलाते हैं, कुछ इसे दूसरे का किया हुआ बतलाते हैं, कुछ इसे दोनों प्रकार से किया हुआ बतलाते हैं और कुछ इसे न अपना स्वयं किया हुआ और न दूसरे का किया हुआ, बल्कि अकारण घटित हुआ बतलाते हैं। इस बारे में श्रमण गौतम का क्या कहना है ? एक अन्य अवसर पर आयुष्मान भूमिज ने भी आयुष्मान सारिपुत्त से यही प्रश्न किया।

आयुष्मान सारिपुत्त ने उत्तर दिया कि भगवान ने दु:ख को प्रतीत्यसमुत्पन्न बतलाया है। यह स्पर्श के प्रत्यय (कारण) से होता है। जो कर्मवादी श्रमण अथवा ब्राह्मण दु:ख के बारे में उक्त प्रकार से अपने-अपने मंतव्य प्रकट करते हैं, उनका भी आधार स्पर्श ही होता है।

आयुष्मान आनन्द द्वारा यह कथासंलाप भगवान के ध्यान में लाये जाने पर उन्होंने आयुष्मान सारिपुत्त के कथन को एकदम सही बतलाया। उन्होंने कहा कि अविद्या के पूर्णतया निरोध से वह कर्म नहीं होता, जिससे सुख-दु:ख उत्पन्न हों।

एक समय आयुष्मान उपवाण ने स्वयं भी भगवान के समक्ष उपस्थित होकर यही जिज्ञासा प्रकट की। उन्होंने उसका भी समाधान इसी प्रकार किया।

भगवान ने भिक्षुओं को प्रतीत्यसमुत्पाद का व्याख्यान करते हुए कहा कि जो आर्यश्रावक इसके प्रत्ययों, उनके समुदय, निरोध तथा निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग को जानता है, वह कहलाता है – दृष्टिसंपन्न, दर्शनसंपन्न, सद्धर्म को प्राप्त, शैक्ष्य ज्ञान से युक्त, शैक्ष्य विद्या से युक्त, धर्म के स्रोत में आया हुआ, बींधती हुई प्रज्ञा वाला आर्य, अथवा अमृत के द्वार पर अवस्थित।

४. कळारखत्तिय-वग्गो

[सुत्त – भूत, कळार, ञाणवत्थु, दुतियञाणवत्थु, अविज्जापच्चय, दुतियअविज्जापच्चय, नतुम्ह, चेतना, दुतियचेतना, ततियचेतना।]

भगवान के आह्वान पर आयुष्मान सारिपुत्त ने धर्म के ज्ञाता और शैक्ष्य – इनके ज्ञान और आचार को लेकर इनका विस्तार से अर्थ कहा। भगवान ने इसका अनुमोदन किया।

एक अन्य अवसर पर आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान को स्पष्ट किया कि जिस कारणसे जन्म होता है, उस कारणके क्षय को जान कर ही मैं कहता हूं कि जन्म का भी क्षय हुआ। तभी मैं कहता हूं –'जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्य पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।' जन्म का कारण होता है भव, भव का उपादान, उपादान का तृष्णा, तृष्णा का वेदना। वेदनाएं अनित्य होती हैं। 'जो अनित्य है, वह दुःख है' –ऐसा जान लेने, देख लेने से, मैं वेदनाओं के प्रति आसक्त नहीं होता हूं।

भगवान ने भिक्षुओं को ज्ञान के ४४ विषयों का उपदेश दिया। ये विषय हैं – जरा-मरण, इसके समुदय, निरोध तथा निरोध प्राप्त कराने वाले उपाय का ज्ञान; और इसी भांति जन्म, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, छः इंद्रियों, नामरूप, विज्ञान तथा संस्कारों में से प्रत्येक के बारे में चार प्रकार का ज्ञान।

उन्होंने भिक्षुओं को ज्ञान के ७७ विषयों के बारे में भी उपदेश किया। ये विषय हैं –जन्म होने से जरा-मरण का ज्ञान, जन्म न होने से जरा-मरण न होने का ज्ञान, अतीत कालमें भी जन्म होने से जरा-मरण हुआ करता था इसका ज्ञान, अतीत कालमें भी जन्म न होने से जरा-मरण नहीं होता था इसका ज्ञान, भविष्य में भी जन्म होने से जरा-मरण होगा इसका ज्ञान, भविष्य में भी जन्म न होने से जरा-मरण नहीं होगा इसका ज्ञान, जिन धर्मों की स्थिति का ज्ञान है, वे भी क्षय होने वाले, व्यय होने वाले, दूर होने वाले और निरुद्ध होने वाले हैं इसका ज्ञान; और इसी भांति जन्म, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, छः इंद्रियों, नामरूप, विज्ञान तथा संस्कारों में से प्रत्येक के बारे में सात प्रकार का ज्ञान। संस्कारों का प्रभव अविद्या से होता है।

भगवान ने कहा कि जो लोग ऐसी मिथ्या दृष्टि रखते हैं कि जो जीव है वही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है और शरीर दूसरा, उनका ब्रह्मचर्यवास फलीभूत नहीं हो सकता।अतः इस प्रकारके प्रश्न अनर्गल हैं –जरा-मरण क्या है, और

किसको होता है? मैं दोनों अंतों को छोड़ मध्य से धर्मोपदेश करता हूं कि जन्म के हेतु से जरा-मरण होता है, भव के हेतु से जन्म, उपादान के हेतु से भव, तृष्णा के हेतु से उपादान. . . अविद्या के हेतु से संस्कार। अविद्या के पूर्णतः निरुद्ध हो जाने से लोगों की मिथ्या-दृष्टि प्रणष्ट हो जाती है।

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि यह काया न तो तुम्हारी अपनी है और न किसी दूसरे की। इसे पूर्व में किये गये कर्मों के कारण अभिसंस्कृत और चेतना तथा वेदना से संयुक्त जानना चाहिए।

उन्होंने भिक्षुओं को यह भी समझाया कि जो विचार करता है, योजना बनाता है, काम में जुट जाता है, वह विज्ञान की स्थिति का आलंबन होता है। विज्ञान के बने रहने, बढ़ते रहने से भविष्य में नया-नया भव प्राप्त होता रहता है, नामरूप उगता रहता है, नति होती है जिससे भविष्य में गति होती है। इसके फलस्वरूप प्रतीत्यसमुत्पाद का सारा प्रपंच क्रियाशील हो उठता है और 'समस्त दुःख-समूह' की उत्पत्ति होती है। ऐसा न होने से सारे दुःखों का निरोध हो जाता है।

५. गहपति-वग्गो

[सुत्त – पञ्चवेरभय, दुतियपञ्चवेरभय, दुक्ख, लोक, ञातिक, अञ्ञतरब्राह्मण, जाणुस्सोणि, लोकायतिक, अरियसावक, दुतियअरियसावक।]

भगवान ने अनाथपिण्डिक गृहपति को कहा कि जब आर्यश्रावक के पांच वैर-भय शांत हो जाते हैं, वह स्रोतापत्ति के चार अंगों से युक्त हो जाता है, आर्य-ज्ञान प्रज्ञा से अच्छी तरह देखा और समझ लिया गया होता है, तब वह चाहे तो अपने आप को ऐसा कह सकता है – "मेरा नरक, पशुयोनि, प्रेतयोनि, अपाय और दुर्गति में पड़ना – ये सब क्षीण हो गये हैं। मैं स्रोतापन्न हो गया हूं, जो धर्म से पतित नहीं हो सकता और जिसका संबोधि प्राप्त कर लेना निश्चित है।"

फिर उन्होंने समझाया कि पांच वैर-भय हैं, पांच शीलों का पालन न करके इसी जन्म या परलोक में वैर-भय को बढ़ाना और इस प्रकार चैतसिक दुःख, दौर्मनस्य में बढ़ोतरी करना। स्रोतापत्ति के चार अंग हैं – बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति अचल श्रद्धा का भाव और आर्य-जनों के प्रिय शीलों से युक्त होना। प्रज्ञा से अच्छी तरह देखा वा समझ लिया गया आर्य-ज्ञान होता है – प्रतीत्यसमुत्पाद का सही चिंतन – 'इसके होने से यह होता है, इसके नहीं होने से यह नहीं होता।

इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है, इसका निरोध होने से यह निरुद्ध हो जाता है।'

भगवान ने भिक्षुओं को दुःख के समुदय और अवसान के बारे में भी उपदेश दिया। उन्होंने समझाया कि इंद्रियों और उनके अपने-अपने विषयों के होने से उनका अपना-अपना विज्ञान उत्पन्न होता है। इन तीनों का मेल है स्पर्श। स्पर्श से जागती है वेदना और वेदना से तृष्णा। इस प्रकार दुःख का समुदय होता है। परंतु तृष्णा के पूरी तरह निरोध से उपादान, उपादान के निरोध से भव, भव के निरोध से जन्म और जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य तथा उपायास का निरोध हो जाता है। इस प्रकार सारे दुःखों का निरोध हो जाता है। यही दुःख का अवसान होता है। उन्होंने इसी प्रकार लोक के समुदय और अवसान के बारे में भी समझाया।

एक समय एक ब्राह्मण ने भगवान से यह जानना चाहा कि क्या जो करता है, वही भोगता है; अथवा करता कोई और है और भोगता कोई और? भगवान ने कहा कि मैं इन दोनों अंतों को छोड़ कर मध्य से धर्म का उपदेश करता हूं कि कैसे अविद्यादि प्रत्ययों के कारण 'समस्त दुःख-समूह' की उत्पत्ति होती है और कैसे इनके निरुद्ध होने से सारे दुःखों का निरोध हो जाता है।

एक अन्य अवसर पर जाणुस्सोणि ब्राह्मण ने भगवान से जानना चाहा कि क्या सब कुछ है, अथवा सब कुछ नहीं है। उन्होंने इसे भी कहा कि मैं इन दोनों अंतों को छोड़ कर मध्य से धर्म का उपदेश करता हूं।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि आर्यश्रावक को प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम के बारे में कोई संशय नहीं होता है। लोक के समुदय और निरोध को यथाभूत जानने के कारण वह दृष्टिसंपन्न, दर्शनसंपन्न, इत्यादि कहलाता है।

६. दुक्ख-वग्गो

[सुत्त – परिवीमंसन, उपादान, संयोजन, दुतियसंयोजन, महारुक्ख, दुतियमहारुक्ख, तरुणरुक्ख, नामरूप, विञ्ञाण, निदान।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि कैसे सर्वशः दुःख के समूल विनाश के लिए विमर्श किया जाना चाहिए।

उन्होंने कहा कि जो जरामरणादि, इनके समुदय, निरोध और निरोध प्राप्त कराने वाले उचित मार्ग को प्रज्ञापूर्वक जानता है, और वैसे प्रतिपन्न हुआ

धर्माचरण करता है, वह सर्वशः जरामरणादि के निरोध, दु:ख के समूल विनाश के लिए प्रतिपन्न होता है। जब उसकी अविद्या प्रहीण होकर विद्या जागती है तब वह किसी भी प्रकार का संस्कार बनने नहीं देता, और सर्वथा अनासक्त हुआ परिनिवृत्त हो जाता है। तब वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।' यही दु:खों का अंत है ।

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि आसक्ति पैदा करने वाले धर्मों में स्वाद देखने से तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा से उपादान, उपादान से भव, भव से जन्म और जन्म से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक ,विलाप, दु:ख, दौर्मनस्य और उपायास होते हैं। इस प्रकार 'समस्त दु:ख-समूह' की उत्पत्ति होती है। परंतु आसक्ति पैदा करने वाले धर्मों में दुष्परिणाम देखने से तृष्णा निरुद्ध हो जाती है। तृष्णा के निरोध से उपादान, उपादान के निरोध से भव, भव के निरोध से जन्म और जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक ,विलाप, दु:ख, दौर्मनस्य और उपायास निरुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार सारे दु:खों का निरोध हो जाता है।

भगवान ने आसक्ति पैदा करने वाले धर्मों को बंधनकारक धर्मों के रूप में लेते हुए भी उक्त प्रकार से ही धर्म को समझाया। इस गूढ़ विषय को सु-स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अनेक प्रकार के उदाहरण भी दिये, जैसे –

* आग के ढेर में रह-रह कर लकड़ियां और सूखी घास डाल कर इसको निरंतर जलाये रखना, अथवा इन्हें आग में न डाल कर उसे शांत होने देना ।

*तेल-प्रदीप में रह-रह कर तेल डाल और बत्ती को उसका कर इसको देर तक जलाये रखना, अथवा ऐसा न करते हुए इसे बुझ जाने देना।

*जड़ों से रस का आहरण कर महावृक्ष का पनपना, अथवा जड़ों के पूर्ण उच्छेद एवं प्रणाश से उसका सदा के लिए उन्मूलन हो जाना।

७. महावग्गो

[सुत्त – अस्सुतवा, दुतियअस्सुतवा, पुत्तमंसूपम, अत्थिराग, नगर, सम्मस, नळकलापी, कोसम्बि, उपयन्ति, सुसिम।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि अज्ञ, पृथग्जन भी चार महाभूतों से बने हुए शरीर से ऊब कर इससे छुटकारा पाने की कामना करने लगता है क्योंकि वह इसका चय, अपचय, आदान, प्रक्षेपण अपनी आंखों से देखता है, परंतु वह चित्त

(मन, विज्ञान) के बारे में ऐसी कामना नहीं करता क्योंकि वह चिरकाल से इसके प्रति ऐसी आसक्ति संजोये रहता है –'यह मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरी आत्मा है'।

ज्ञानी आर्यश्रावक प्रतीत्यसमुत्पाद को भली प्रकार समझता है –'इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है; इसके नहीं होने से यह नहीं होता है, इसके निरोध से यह निरुद्ध हो जाता है।' उसके ऐसा जानने से वह स्पर्श, वेदना, संज्ञा, संस्कारों तथा विज्ञान से निर्वेद पा लेता है, निर्वेद पाने से विरक्त हो जाता है, विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है और उसमें यह ज्ञान जागता है –'मैं विमुक्त हो गया!' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।'

भगवान ने भिक्षुओं को चार प्रकार के आहार बतलाये –१. कौर वाला (स्थूल या सूक्ष्म), २. स्पर्श, ३. मन की चेतना, और ४. विज्ञान। फिर उन्होंने यह भी समझाया कि इन भिन्न-भिन्न प्रकार के आहारों को किस रूप में समझना चाहिए। यदि इन आहारों से राग, अनुराग, तृष्णा जागने लगे तो विज्ञान ठहरने और बढ़ने लगता है। इससे नाम-रूप, नाम-रूप से संस्कार, संस्कारों से भविष्य में नया भव, नये भव से जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु होते हैं। ये शोक, दुःख और परेशानी लाते हैं। यदि आहारों से राग, अनुराग, तृष्णा न जागे तो विज्ञान के न ठहरने, न बढ़ने से आगे का सारा क्रम रुक जाता है।

भगवान ने भिक्षुओं को यह भी बतलाया कि मुझ में किस प्रकार प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान जागा। मेरे द्वारा प्रतिपादित मार्ग वही है जिस पर मेरे पूर्ववर्ती सम्यक संबुद्ध चला करते थे। और वह मार्ग यही है, जो 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' कहलाता है।

एक अवसर पर भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि तुम अपने भीतर ही भीतर खूब मनन करो। फिर यह भी समझाया कि इसके लिए खूब जानो कि जरामरणादि नाना प्रकार के दुःखों का निदान, उत्पत्ति, प्रभव क्या है? किसके होने से जरा-मरण होता है, किसके नहीं होने से यह नहीं होता है? ऐसे ही उपधि (आसक्ति) एवं तृष्णा के बारे में भी जानकारी करो।

एक समय आयुष्मान महाकोट्ठिक ने आयुष्मान सारिपुत्त से पूछा कि क्या जरामरणादि अपने स्वयं के किये हुए होते हैं, या दूसरे के किये हुए, या अपने स्वयं के और दूसरे के भी किये हुए, या न अपने स्वयं के और न दूसरे के किये हुए बल्कि अकारण उत्पन्न हुए होते हैं? आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा कि इनमें से

एक भी बात सही नहीं है। ये प्रत्ययों के कारण अस्तित्व में आते हैं और प्रत्ययों के निरोध से निरुद्ध हो जाते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम का प्रख्यापन किया।

आयुष्मान नारद ने यह स्वीकारोक्ति की है कि भले ही मुझे यह यथार्थ ज्ञान हो गया है कि 'भव का निरोध निर्वाण होता है', तो भी मैं क्षीणास्रव अरहंत नहीं हूं। ऐसे व्यक्ति की तुलना उससे की जा सकती है जो कुंवें में झांक कर यह तो जान ले कि इसमें पानी है परंतु उसे शरीर से छू न पाये।

एक समय सुसिम नाम के परिब्राजक ने भगवान के पास जाकर इस उद्देश्य से प्रव्रज्या और उपसंपदा पायी कि उनके भिक्षुसंघ के समान ही उसका भी आदर-सत्कार हो और उसे चीवर, पिंडपात आदि प्राप्त हों। वहां उसे पता चला कि कई भिक्षु बिना ऋद्धियां प्राप्त किये ही परम विमुक्त अवस्था का साक्षात्कार कर लेते हैं, और ये अपने आप को 'प्रज्ञाविमुक्त' कहते हैं।

इसका निदान प्राप्त करने के लिए सुसिम भगवान के पास गया। जब उन्होंने उसी से प्रश्न पूछ-पूछ कर यह बात उसे स्पष्ट कर दी कि कैसे ऋद्धियां प्राप्त किये बिना भी परम विमुक्त अवस्था का साक्षात्कार हो जाता है, तब वह उनके चरणों पर गिरकर अपने इस अपराध के लिए उनसे क्षमा मांगने लगा कि मैंने आपके सु-आख्यात धर्मविनय में चोर के समान प्रव्रज्या ग्रहण की है, परंतु साथ ही अपना यह संकल्प भी बतलाया कि मैं भविष्य में ऐसा न होने दूंगा।

इस पर भगवान ने उसे क्षमा करते हुए कहा कि यदि कोई व्यक्ति अपने अपराध का धर्मानुकूल प्रायश्चित कर भविष्य में वैसा न करने का संकल्प करता है, तो वह आर्य विनय में उत्कर्ष ही माना जाता है।

८. समणब्राह्मण-वग्गो

[सुत्त – जरा-मरण, जातिसुत्तादिदसक, भव, उपादान, तण्हा, वेदना, फस्स, सळायतन, नाम-रूप, विञ्ञाण, सङ्खार।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि जो श्रमण अथवा ब्राह्मण जरा-मरण, जन्म, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, छः इंद्रियों, नाम-रूप, विज्ञान तथा संस्कारों, और उनके समुदय, निरोध एवं निरोध प्राप्त कराने वाले उपाय को प्रज्ञापूर्वक नहीं जानते हैं वे इसी जीवन में श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य को स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार नहीं कर पाते हैं। परंतु जो इन्हें

प्रज्ञापूर्वक जानते हैं, वे इसी जीवन में श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य को स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करने लगते है।

९. अन्तरपेय्याल

[सुत्त – सत्थु, दुतियसत्थुसुत्तादिदसक, सिक्खा, योग, छन्द,
उस्सोळ्हि, अप्पटिवानी, आतप्प,विरिय, सातच्च, सति,
सम्पजञ्ञ, अप्पमाद।]

इन सुत्तों में भिक्षुओं को समझाया गया है कि जरामरणादि को न जानते हुए, न देखते हुए उनके यथार्थ ज्ञान के लिए बुद्ध की खोज की जानी चाहिए। ऐसे ही इनके समुदय, निरोध और निरोध प्राप्त करानेवाले मार्ग के यथार्थ ज्ञान के लिए भी । इनके यथार्थ ज्ञान के लिए जिन-जिन का आश्रय लेना चाहिए, वे हैं – शिक्षा, योग, छंद, उत्साह, अप्रत्यावर्तन, उद्योग, वीर्य, सातत्य, सजगता, संप्रज्ञान और अप्रमाद।

२. अभिसमयसंयुत्त

इस संयुत्त में ग्यारह सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – नखसिखा, पोक्खरणी, सम्भेज्जउदक, दुतियसम्भेज्जउदक, पथवी, दुतियपथवी, समुद्द, दुतियसमुद्द, पब्बत, दुतियपब्बत, ततियपब्बत।

एक समय भगवान ने अपने नखाग्र पर एक बालू का कण रख भिक्षुओं से पूछा कि कौन बड़ा है – मेरे नखाग्र पर रखा हुआ बालू का कण या यह महापृथ्वी?

भिक्षुओं ने उत्तर दिया – यह महापृथ्वी ही बहुत बड़ी है। बालू का कण तो बहुत छोटा है। यह महापृथ्वी का लाखवां भाग भी नहीं है।

इस पर भगवान ने उन्हें कहा कि इसी प्रकार दृष्टिसंपन्न ज्ञानी आर्यश्रावक का वह दुःख बहुत बड़ा है जो क्षीण हो गया है, जो बचा है वह बहुत कम है। पूर्व में क्षीण हुए दुःख-स्कंध के सामने बचा हुआ दुःख अधिक से अधिक सात जन्मों तक रह सकता है। यह उसका लाखवां भाग भी नहीं है। इस प्रकार धर्म का ज्ञान, धर्मचक्षु प्राप्त हो जाना बड़ा कल्याणकारी होता है।

भगवान ने अन्य भी अनेक उपमाओं के माध्यम से भिक्षुओं को सुस्पष्ट किया कि स्रोतापन्न व्यक्ति के बचे हुए दुःख उसके क्षीण हुए दुःखों की तुलना में अत्यल्प होते हैं।

३. धातुसंयुत्त

यह संयुत्त चार वर्गों में विभाजित है, जिनमें उनतालीस सुत्त हैं।

१. नानत्त-वग्गो

[सुत्त – धातुनानत्त, फस्सनानत्त, नोफस्सनानत्त, वेदनानानत्त, दुतियवेदनानानत्त, बाहिरधातुनानत्त, सञ्ञानानत्त, नोपरियेसनानानत्त, बाहिरफस्सनानत्त, दुतियबाहिरफस्सनानत्त।]

भगवान ने भिक्षुओं को धातुओं का नानात्व इस प्रकार बतलाया – चक्षुधातु, रूपधातु, चक्षुविज्ञानधातु; और इसी प्रकार श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया तथा मन से संबंधित तीन-तीन का धातुसमूह।

भगवान ने धातुनानात्व अन्य प्रकार से भी कहा – चक्षुधातु, श्रोत्रधातु, घ्राणधातु, जिह्वाधातु, कायधातु, मनोधातु। यह धातुनानात्व स्पर्शनानात्व का कारण बनता है – चक्षुधातु से चक्षुसंस्पर्श, श्रोत्रधातु से श्रोत्रसंस्पर्श, इत्यादि। स्पर्शनानात्व वेदनानानात्व का कारण बनता है – चक्षु-संस्पर्श से चक्षुसंस्पर्शजा वेदना, श्रोत्र-संस्पर्श से श्रोत्रसंस्पर्शजा वेदना, इत्यादि।

भगवान ने एक अन्य प्रकार से भी धातुनानात्व कहा – रूपधातु, शब्दधातु, गंधधातु, रसधातु, स्प्रष्टव्यधातु, धर्मधातु। इस धातुनानात्व से, क्रमशः, संज्ञानानात्व, संकल्पनानात्व, छंदनानात्व, तरह-तरह की लगन और तरह-तरह के यत्न होते हैं।

भगवान ने यह भी समझाया कि तरह-तरह के यत्न होने से रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म के तरह-तरह के लाभ कैसे होते हैं। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि ऊपर कही गयी सभी बातें अनुलोम क्रम से ठीक बैठती हैं, प्रतिलोम क्रम से नहीं।

२. दुतिय-वग्गो

[सुत्त – सत्तधातु, सनिदान, गिञ्जकावसथ, हीनाधिमुत्तिक, चङ्कम, सगाथा, अस्सद्धसंसन्दन, अस्सद्धमूलक, अहिरिकमूलक, अनोत्तप्पमूलक, अप्पस्सुतमूलक, कुसीतमूलक।]

भगवान ने भिक्षुओं को सात धातुएं गिनायीं – आभाधातु, शुभधातु,

आकाशानंत्यायतनधातु, विज्ञानानंत्यायतनधातु, आकिंचन्यायतनधातु, नैवसंज्ञानासंज्ञायतनधातु तथा संज्ञावेदयितनिरोधधातु। फिर उन्होंने यह भी बतलाया कि ये धातु किस-किस प्रत्यय से जाने जाते हैं और इनकी प्राप्ति कैसे-कैसे होती है ?

उन्होंने कहा कि कामवितर्क, व्यापादवितर्क तथा विहिंसावितर्क, और इसी प्रकार नैष्क्रम्यवितर्क, अव्यापादवितर्क, तथा अविहिंसावितर्क किसी-न-किसी निदान से उत्पन्न होते हैं, बिना निदान के नहीं; और ऐसा होता भी किस प्रकार से है ?

एक अवसर पर भगवान ने बतलाया कि धातु के प्रत्यय से उत्पन्न होते हैं संज्ञा, दृष्टि व वितर्क। अविद्या धातु एक बड़ी धातु है। यदि धातु हीन, मध्यम अथवा उत्तम हो तो संज्ञा, दृष्टि, वितर्क, चेतना, अभिलाषा, प्रणिधि, पुरुष व वचन भी उन्हीं के अनुरूप हीन, मध्यम अथवा उत्तम प्रकार के उत्पन्न होते हैं। धातुओं के अनुसार ही सत्त्व संगठित होते वा चलते हैं – हीन प्रवृत्ति वाले हीन प्रवृत्ति वालों के साथ, अच्छी प्रवृत्ति वाले अच्छी प्रवृत्ति वालों के साथ। अतीत काल में भी ऐसे ही होता था, भविष्य में भी ऐसे ही होगा और अभी भी ऐसे ही होता है।

भगवान ने कहा कि यह ऐसे ही है जैसे गूथ गूथ के साथ, मूत्र मूत्र के साथ, थूक थूक के साथ, पीब पीब के साथ, लहू लहू के साथ संगठित होता वा चलता है और दूध दूध के साथ, तेल तेल के साथ, घी घी के साथ, मधु मधु के साथ और गुड़ गुड़ के साथ संगठित होता व चलता है।

भगवान ने चंक्रमण करते हुए कुछ भिक्षुओं को देखकर भी बतलाया कि प्रज्ञावान भिक्षु प्रज्ञावानों के साथ, ऋद्धिमान भिक्षु ऋद्धिमानों के साथ, धुतांगधारी धुतांगधारियों के साथ, दिव्य चक्षु वाले दिव्य चक्षु वालों के साथ, धर्मकथिक धर्मकथिकों के साथ, पापेच्छ पापेच्छों के साथ चंक्रमण कर रहे हैं।

भगवान ने सीख दी कि एकांतवासी आर्यों, दृढ़-संकल्प ध्यानियों और नित्य उत्साही पंडितों का साथ करना चाहिए।

३. कम्मपथ-वग्गो

[सुत्त – असमाहित, दुस्सील, पञ्चसिक्खापद, सत्तकम्मपथ, दसकम्मपथ, अट्ठङ्गिक, दसङ्ग।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि सत्त्व धातुवश संगठित होते व चलते हैं, जैसे श्रद्धारहित श्रद्धारहितों के साथ, निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, अविचारी अविचारियों के साथ, असमाहित असमाहितों के साथ, दु:शील दु:शीलों के साथ, दुष्प्रज्ञ दुष्प्रज्ञों के साथ, इत्यादि। ऐसे ही श्रद्धालु श्रद्धालुओं के साथ, लज्जावान लज्जावानों के साथ, विचारवान विचारवानों के साथ, समाहित समाहितों के साथ, शीलवंत शीलवंतों के साथ, प्रज्ञावान प्रज्ञावानों के साथ, इत्यादि।

इसी प्रकार हिंसक, चोर, छिनाल, झूठे, चुगलखोर, रूखा बोलने वाले, गप्पी, लोभी, व्यापन्नचित्त और मिथ्या दृष्टि वाले भी धातुवश संगठित होते व चलते हैं; और ऐसे ही इनसे विपरीत आचरण करने वाले।

इसी प्रकार मिथ्या दृष्टि, मिथ्या संकल्प, मिथ्या वाणी, मिथ्या कर्मांत, मिथ्या आजीविका, मिथ्या व्यायाम, मिथ्या स्मृति, मिथ्या समाधि, मिथ्या ज्ञान एवं मिथ्या विमुक्ति वाले भी धातुवश संगठित होते व चलते हैं; और ऐसे ही इनसे विपरीत स्थिति वाले।

४. चतुत्थ-वग्गो

[सुत्त – चतुधातु, पुब्बेसम्बोध, अचरिं, नोचेदं, एकन्तदुक्ख, अभिनन्द, उप्पाद, समणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, ततियसमणब्राह्मण।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि धातु चार होते हैं – पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु। बुद्ध बनने से पहले मुझे जिज्ञासा हुई कि इन धातुओं का क्या आस्वाद है, इनमें क्या आदीनव (दोष) है और इनसे निःसरण (मुक्ति) क्या होती है? तब मुझे लगा कि इनसे जो सुख-चैन मिलता है वह इनका आस्वाद है; जो इनमें अनित्य, दु:खात्मक और परिवर्तनशील धर्म हैं, वह इनका आदीनव है; और जो इनके प्रति छंद-राग को दूर करना, हटाना है, वही इनसे निःसरण है। जब तक मुझे इनके आस्वाद, आदीनव और निःसरण का यथार्थ ज्ञान नहीं हुआ, तब तक मैंने अपने सम्यक संबुद्ध होने का दावा नहीं किया।

उन्होंने और भी कहा कि जो कोई इन धातुओं का अभिनंदन करता है, वह दु:ख का अभिनंदन करता है। जो दु:ख का अभिनंदन करता है, वह दु:ख-मुक्त नहीं होता है। जो इनका अभिनंदन नहीं करता है, वह दु:ख का अभिनंदन नहीं करता है। जो दु:ख का अभिनंदन नहीं करता है, वह दु:ख-मुक्त हो जाता है।

जो श्रमण या ब्राह्मण इन धातुओं के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, आदीनव,

निःसरण को यथार्थतः जानते हैं, अथवा इनके समुदय, निरोध और इनका निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग को प्रज्ञापूर्वक जानते हैं, वही इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य को साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करने लगते हैं, दूसरे नहीं।

४. अनमतग्गसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित है, जिनमें बीस सुत्त हैं।

१. पटम-वग्गो

[सुत्त – तिणकट्ठ, पथवी, अस्सु, खीर, पब्बत, सासप, सावक, गङ्गा, दण्ड, पुग्गल।]

एक समय भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि इस संसार का प्रारंभ जाना नहीं जा सकता। इसमें संसरण करने वाले अविद्या-ग्रस्त लोगों की पूर्वकोटि भी जानी नहीं जा सकती।

इस बात को उन्होंने उपमा देकर समझाया। जैसे कोई पुरुष इस जंबुद्वीप के घास, लकड़ी, डाल, पात तोड़कर एक स्थान पर इकट्ठे कर दे और फिर चार-चार अंगुल भर इनके टुकड़े करके इन्हें फेंकता चला जाय – 'यह मेरी माता हुई, यह मेरी माता की माता हुई' – तब भी यह माता का सिलसिला समाप्त नहीं होगा, भले ही जंबुद्वीप के घास, लकड़ी, डाल, पात सब समाप्त हो जायँ।

उन्होंने आगे कहा कि संसार में चिरकाल से दुःख और पीड़ा का बोलबाला है, और श्मशान भरता जा रहा है। अतः सभी संस्कारों से निर्वेद पाना, राग न करना और विमुक्त हो जाना ही अभिप्रेत है।

इसी आशय को सुस्पष्ट करने के लिए उन्होंने अन्य भी अनेक उपमाएं कहीं। फिर उन्होंने भिक्षुओं के इन प्रश्नों का उत्तर दिया कि कल्प कितना बड़ा होता है और अभी तक कितने कल्प बीत चुके हैं। उन्होंने कहा कि कल्प बहुत बड़ा होता है, उसकी इस प्रकार गणना कर पाना सहल नहीं है कि इतने वर्ष, या इतने सौ वर्ष, या इतने हज़ार वर्ष, या इतने लाख वर्ष। ऐसे ही, बहुत से कल्प बीत चुके हैं, जिनकी भी इस प्रकार गणना कर पाना सहल नहीं है कि इतने कल्प, या इतने सौ कल्प, या इतने हजार कल्प, या इतने लाख कल्प। अतः चिरकाल से व्याप्त दुःख और पीड़ा को देखते हुए सभी संस्कारों से निर्वेद पाना, राग न करना और विमुक्त हो जाना ही अभिप्रेत है।

अंत में भगवान ने कहा कि जो दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध और आर्य अष्टांगिक मार्ग – इन चार आर्य सत्यों को सम्यक प्रकार से प्रज्ञापूर्वक देख लेता

है, वह अधिक से अधिक सात बार जन्म लेकर सारे बंधनों को क्षीण कर दुःख का अंतकर हो जाता है।

२. दुतिय-वग्गो

[सुत्त – दुग्गत, सुखित, तिंसमत्त, मातु, पितु, भातु, भगिनि, पुत्त, धीतु, वेपुल्लपब्बत।]

प्रथम वर्ग के अनेक सुत्तों के समान इस वर्ग के भी अनेक सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि इस संसार का प्रारंभ जाना नहीं जा सकता। इसमें संसरण करनेवाले अविद्या-ग्रस्त लोगों की पूर्वकोटि भी जानी नहीं जा सकती।

उन्होंने अनेक उदाहरण देकर उन्हें समझाया है कि यदि तुम किसी व्यक्ति को दुर्गति में पड़ा हुआ देखो तो यह सोचो कि इस दीर्घकाल में हमने भी कभी-न-कभी इस अवस्था को प्राप्त किया होगा। ऐसे ही सुखी व्यक्ति को देख कर भी सोचो। वह यह भी कहते हैं कि ऐसा सत्त्व मिलना सुकर नहीं है जो इस दीर्घ काल में कभी-न-कभी तुम्हारी माता, पिता, भाई, बहिन, बेटा अथवा बेटी न रहा हो। चिरकाल से व्याप्त दुःख एवं पीड़ा को दृष्टिगत करते हुए सभी संस्कारों से निर्वेद पाना, राग न करना और विमुक्त हो जाना ही अभिप्रेत है।

अंत में भगवान ने वेपुल्ल नाम के पर्वत का उदाहरण देते हुए बतलाया है कि समय समय पर इसके नाम बदलते रहे हैं, मनुष्यों के नाम बदलते रहे हैं, उनके आयु-प्रमाण बदलते रहे हैं, उस उस काल के सम्यक संबुद्ध बदलते रहे हैं, उनके अग्रश्रावक बदलते रहे हैं। समय आने पर इस पर्वत का वर्तमान नाम भी लुप्त हो जायगा, ये मनुष्य भी मर जायँगे, मैं भी परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाऊंगा। संस्कार इतने अनित्य, नश्वर और भरोसा न दिलाने वाले हैं कि इनसे निर्विण्ण, विरक्त, विमुक्त हो जाना ही उचित है। सारे संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न होना और नष्ट हो जाना इनका स्वभाव है। जब ये उत्पन्न हो-होकर पूर्णतया निरुद्ध हो जाते हैं और इस प्रकार इनका पूरी तरह से उपशमन हो जाता है, वही वास्तविक 'सुख' होता है ।

५. कस्सपसंयुत्त

इस संयुत्त में तेरह सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – सन्तुट्ठ, अनोत्तप्पी, चन्दूपम, कुलूपक ,जिण्ण, ओवाद, दुतियओवाद, ततियओवाद, झानाभिञ्ञ, उपस्सय, चीवर, परम्मरण, सद्धम्मप्पतिरूपक ।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि कस्सप चीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय (रोगी का पथ्य), भैषज्य और परिष्कार (आवश्यक वस्तुओं) के मामलों में बिना लोभ जगाये, इनके आदीनव (दोष) को देखते हुए, मुक्ति की प्रज्ञा के साथ इनका भोग करता है, और तुम्हें भी ऐसा ही करना चाहिए।

आयुष्मान महाकस्सप ने आयुष्मान सारिपुत्त को बतलाया कि अनातापी और अनुत्तापी संबोधि, निर्वाण, अनुत्तर योगक्षेम को क्यों नहीं पा सकता, और आतापी तथा उत्तापी ही इन्हें क्यों पा सकता है।

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि कुलों में कैसे जाना चाहिए – चांद की तरह; शरीर और चित्त को समेटे, नित्य नये, अप्रगल्भ होकर। कुलों में जाना उन्हें चाहिए जिनका चित्त वहां जाकर बँध न जाये, जैसे आकाश में हाथ फेरने पर वह इसमें बँध नहीं जाता। इसके अतिरिक्त उनके मन में ऐसे भाव नहीं आने चाहिए कि कुलवाला मुझे ही दे, बहुत दे, बढ़िया ही दे, शीघ्र दे, सत्कारपूर्वक दे। कस्सप ऐसे ही करता है और सम्यक प्रकार से कुलों में जाता है। तुम्हें भी ऐसे ही करना चाहिए।

भगवान ने कस्सप के ही उदाहरण से भिक्षुओं को समझाया कि किस भिक्षु की धर्मदेशना परिशुद्ध होती है। ऐसा भिक्षु मन-ही-मन ऐसा सोच कर धर्मदेशना करता है – "भगवान का धर्म सु-आख्यात, सांदृष्टिक, सद्यःफलप्रद, 'आओ-देखो' का भाव जगाने वाला, निर्वाण की ओर ले जाने वाला, विज्ञों द्वारा स्वयं जानने के योग्य है। अहो! लोग मेरी धर्मदेशना को सुनें, सुन कर धर्म को जानें, जानकर उसका अभ्यास करें।" इस प्रकार वह दूसरों के प्रति करुणा,दया, अनुकंपा का भाव जगाकर धर्मदेशना करता है।

एक अवसर पर आयुष्मान महाकस्सप ने भगवान के समक्ष प्रकट किया, "मैं लंबे समय से आरण्यक हूं और आरण्यक होने की प्रशंसा करता हूं। मैं पंसुकूलिक ,तीन चीवर धारण करने वाला, अल्पेच्छ, संतुष्ट, एकांतवासी,

असंसृष्ट और आरब्धवीर्य हूं, और इनकी प्रशंसा करने वाला हूं।" उन्होंने इसके दो कारण बतलाये – प्रथम तो इसी जन्म में अपने सुखविहार के लिए, और दूसरे, आने वाले लोगों पर अनुकंपा करते हुए कि वे भी इसका अनुकरण करें, जिससे चिरकाल तक उनका हित, सुख हो।

तीन पृथक-पृथक अवसरों पर भगवान ने आयुष्मान महाकस्सप से भिक्षुओं को धर्मोपदेश देने के लिए कहा। उन्होंने यह भी संकेत किया कि चाहे मैं उपदेश करूं या आप। आयुष्मान महाकस्सप ने तीनों बार भगवान से कहा कि इस समय भिक्षु उपदेश ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं, अतः उन्हें उपदेश देना ठीक नहीं है। उन्होंने हर बार इसका कारण भी बताया।

भगवान ने भिक्षुओं को जानकारी दी कि मैं स्वेच्छा से प्रथम से लेकर चतुर्थ ध्यान को, और तत्पश्चात आकाशानंत्यायतन, विज्ञानानंत्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन और संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था प्राप्तकर विहार करता हूं, अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता हूं और आस्रवों के क्षीण हो जाने से आस्रवरहित चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्तकर विहार करता हूं। कस्सप को भी यह सारी सक्षमता प्राप्त है ।

तदनंतर आयुष्मान महाकस्सप के बारे में अशोभनीय वचन कहने के कारण थुल्लतिस्सा नाम की भिक्षुणी के ब्रह्मचर्य से च्युत होने का उल्लेख हुआ है। एक अवसर पर उसने आयुष्मान आनन्द की उपस्थिति में आयुष्मान महाकस्सप द्वारा भिक्षुणियों को धर्मोपदेश करने पर यह कह दिया कि जैसे कोई सुई बेचने वाला किसी सुई बनाने वाले के पास सुई बेचने को जाये, वैसे ही आर्य महाकस्सप ने आर्य आनन्द के सामने धर्मोपदेश करने का साहस किया है। अन्य अवसर पर उसने इस बात पर आपत्ति की कि आर्य महाकस्सप ने आर्य आनन्द को 'कुमार' कहकर क्यों भर्त्सित किया है।

आयुष्मान सारिपुत्त के प्रश्नों के उत्तर में आयुष्मान महाकस्सप ने उन्हें बतलाया कि मरणोपरांत जीव की स्थिति के बारे में भगवान ने इसलिए नहीं बतलाया कि यह न तो अर्थपूर्ण है, न आदिब्रह्मचर्य के लिए उपयुक्त और न ही निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि अथवा निर्वाण के लिए उपयोगी है । अर्थपूर्ण, उपयुक्त एवं उपयोगी हैं चार आर्य सत्य, जिनको भगवान ने व्याकृत किया है।

अंत में भगवान ने आयुष्मान कस्सप को बतलाया कि यदि भिक्षु, भिक्षुणियां,

उपासक, उपासिकाएं बुद्ध, धर्म, संघ, शिक्षा एवं समाधि के प्रति गौरव तथा सजगता नहीं बनाए रखते तो सद्धर्म का लोप हो जाता है, और यदि ये इन्हें बनाए रखते हैं तो सद्धर्म लुप्त नहीं होता है।

६. लाभसक्कारसंयुत्त

यह संयुत्त चार वर्गों में विभाजित है, जिनमें तेंतालीस सुत्त हैं।

१. पठम-वग्गो

[सुत्त – दारुण, बळिस, कुम्म, दीघलोमिक, मीळ्हक, असनि, दिद्ध, सिङ्गाल, वेरम्भ, सगाथक।]

इन सुत्तों में भगवान भिक्षुओं को समझाते हैं कि अनुत्तर योगक्षेम (निर्वाण) के मार्ग में लाभ, सत्कार, प्रशंसा, कठोर, कटु, और रूक्ष विघ्नकारक होते हैं। अतः तुम्हें यह सीखना चाहिए –"हम उत्पन्न हुए लाभ, सत्कार, प्रशंसा को छोड़ देंगे; उत्पन्न होने पर ये हमारे चित्त में ठहर नहीं पायेंगे।"

इस बात को समझाने के लिए भगवान ने अनेक प्रकार की उपमाएं कहीं। इनके माध्यम से उन्होंने भिक्षुओं को सचेत किया कि कैसे-कैसे हथकंडे अपनाकर पापी मार लोगों को लाभ, सत्कार, प्रशंसा के जाल में फांस लेता है, जो चिरकाल तक उनके अहित और दुःख का कारण होता है।

भगवान ने यह भी कहा कि सत्कार अथवा असत्कार पाने वाले जिस अप्रमाणविहारी की समाधि चलायमान नहीं होती है, उस अनवरत ध्यानी और सूक्ष्म दृष्टि वाले विपश्यी को सत्पुरुष 'उपादान (आसक्ति) क्षीण होकर रमण करने वाला' कहते हैं।

२. दुतिय-वग्गो

[सुत्त – सुवण्णपाति, रूपियपाति, सुवण्णनिक्खसुत्तादिअट्ठक।]

इन सुत्तों में समझाया गया है कि कई लोग सोना, चांदी, अन्य सांसारिक पदार्थों, इत्यादि के लिए जानबूझकर झूठ नहीं बोलते, पर लाभ, सत्कार, प्रशंसा पाने के लिए ऐसा कर लेते हैं। निर्वाण के पथ पर लाभ, सत्कार, प्रशंसा से होने वाले विघ्न को ध्यान में रखते हुए भिक्षुओं को सीखना चाहिए –"हम उत्पन्न हुए लाभ, सत्कार, प्रशंसा को छोड़ देंगे; उत्पन्न होने पर ये हमारे चित्त में ठहर नहीं पायेंगे।"

३. ततिय-वग्गो

[सुत्त – मातुगाम, कल्याणी, एकपुत्तक, एकधीतु, समणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, ततियसमणब्राह्मण, छवि, रज्जु, भिक्खु।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि एकांत में कोई अकेली सुंदर स्त्री भले ही किसी के चित्त को न लुभा पाये, परंतु लाभ, सत्कार, प्रशंसा उसके चित्त को फांस लेते हैं।

उन्होंने कहा कि गृही बालकों को चित्त गृहपति तथा आळवक हत्थक का आदर्श अपनाना चाहिए और गृही बालिकाओं को खुज्जुत्तरा तथा वेळुकण्डकिया नन्दमाता का। यदि ये गृह त्याग दें तो बालक और बालिकाएं, क्रमशः, सारिपुत्त तथा मोग्गल्लान अथवा खेमा तथा उप्पलवण्णा का आदर्श अपनायें।

उन्होंने यह भी कहा कि वही श्रमण अथवा ब्राह्मण इस संसार में अपनी अभिज्ञा से श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य का साक्षात्कार कर विहार करते हैं जो लाभ, सत्कार, प्रशंसा के आस्वाद, आदीनव तथा निःसरण को; अथवा इनके समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, आदीनव तथा निःसरण को; अथवा इनके समुदय, निरोध तथा निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग को यथार्थतः जानते हैं।

अंत में उन्होंने यहां तक कह डाला कि जिस व्यक्ति की चेतो-विमुक्ति अचल हो गयी हो उसे छोड़कर, यदि कोई व्यक्ति अप्रमत्त, आतापी एवं दृढ़ संकल्प वाला होकर इसी जीवन में सुखविहार ही क्यों न करता हो उसके लिए भी लाभ, सत्कार, प्रशंसा विघ्नकारक ही होते हैं। अतः भिक्षुओं को सीखना चाहिए –"हम उत्पन्न हुए लाभ, सत्कार, प्रशंसा को छोड़ देंगे; उत्पन्न होने पर ये हमारे चित्त में ठहर नहीं पायेंगे।"

४. चतुत्थ-वग्गो

[सुत्त – भिन्दि, कुसलमूल, कुसलधम्म, सुक्कधम्म, अचिरपक्कन्त, पञ्चरथसत, मातु, पितुसुत्तादिछक्क।]

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि लाभ, सत्कार, प्रशंसा से अभिभूत हुए देवदत्त ने संघ को फोड़ दिया। इससे उसके पुण्य के मूल, कुशलधर्म और शुक्ल धर्म कट गये। उसके लाभ, सत्कार, प्रशंसा उसके अपने विनाश, पराभव के लिए हुए, जैसे केले वा बांस के वृक्षों के फल उनके अपने ही विनाश एवं परिहानि के लिए होते हैं।

उन्होंने यह भी बतलाया कि कई लोग माता, पिता, भाई, बहिन, पुत्र, पुत्री अथवा स्त्री के लिए जानबूझ कर झूठ नहीं बोलते, पर लाभ, सत्कार, प्रशंसा पाने के लिए ऐसा कर लेते हैं। निर्वाण के पथ पर लाभ, सत्कार, प्रशंसा से होने वाले विघ्न को दृष्टिगत करते हुए भिक्षुओं को सीखना चाहिए –"हम उत्पन्न हुए लाभ, सत्कार, प्रशंसा को छोड़ देंगे; उत्पन्न होने पर ये हमारे चित्त में ठहर नहीं पायेंगे।"

७. राहुलसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित है, जिसमें बाईस सुत्त हैं।

१. पठम-वग्गो

[सुत्त – चक्खु, रूप, विञ्ञाण, सम्फस्स, वेदना, सञ्ञा, सञ्चेतना, तण्हा, धातु, खन्ध।]

आयुष्मान राहुल ने भगवान से कहा कि मुझे संक्षेप में ऐसा उपदेश दें जिसे सुनकर मैं एकांत में अकेला अप्रमत्त, आतापी और दृढ़-संकल्प होकर विहार करूं।

इस पर भगवान ने उन्हें एक-एक करके अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता के बारे में समझाया –

– चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया, मन।

– रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म।

– चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मनो।

– चक्षुसंस्पर्श, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मनः।

– चक्षुसंस्पर्श से होने वाली वेदना, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मनः।

– रूपसंज्ञा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म।

– रूपसंचेतना, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म।

– रूपतृष्णा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म।

– पृथ्वीधातु, आपो, तेजो, वायु, आकाश, विज्ञान।

– रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान।

फिर उन्होंने यह कहा कि इनकी अनित्यता, दुःखता एवं अनात्मता को देखकर (अनुभूति से जान कर) आर्यश्रावक चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया एवं मन से निर्वेद पा लेता है, निर्वेद पाने से विरक्त हो जाता है और विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है। तब उसमें यह ज्ञान जागता है –'मैं विमुक्त हो गया!' और

वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं'।

२. दुतिय-वग्गो

[सुत्त – चक्खु, रूप, विञ्ञाण, सम्फस्स, वेदना, सञ्ञा,
सञ्चेतना, तण्हा, धातु, खन्ध, अनुसय, अपगत।]

इस वर्ग के पहले दस सुत्तों में वही बात कही गयी है, जिसका उल्लेख प्रथम वर्ग के सुत्तों में हुआ है।

अंतिम दो सुत्तों में आयुष्मान राहुल ने भगवान से पूछा कि क्या जानने, देखने से विज्ञान-सहित इस शरीर में तथा बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार, ममकार, मानानुशय नहीं होते हैं, अथवा इनके हट जाने से चित्त शांत और सु-विमुक्त हो जाता है।

इस पर भगवान ने कहा कि भूत, भविष्य या वर्तमान के, भीतर या बाहर के, स्थूल या सूक्ष्म, हीन या प्रणीत, दूरस्थ अथवा निकटस्थ जितने रूप हैं उन्हें जो यथार्थतः सम्यक प्रज्ञा से इस प्रकार देखता है – 'न यह मेरे हैं, न यह मैं हूं, न यह मेरा आत्मा है', उसके अहंकार, ममकार वा मानानुशय नहीं होते हैं; और जो कोई इन्हें इस प्रकार जान उपादानरहित विमुक्ति पा लेता है, उसका चित्त शांत और सु-विमुक्त हो जाता है।

८. लक्खणसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित है, जिनमें इक्कीस सुत्त हैं।

१. पठम-वग्गो

[सुत्त – अट्ठि, पेसि, पिण्ड, निच्छवि, असिलोम, सत्ति, उसुलोम, सूचिलोम, दुतियसूचिलोम, कुम्भण्ड।]

एक समय आयुष्मान महामोग्गल्लान ने भगवान के समक्ष प्रकट किया कि मैंने आयुष्मान लक्खण के साथ गिज्झकूट पर्वत से नीचे उतरते समय एक अस्थिकंकाल को आकाश मार्ग से जाते हुए देखा था। उसे गीध, कौए, चील झपट-झपट कर नोच रहे थे और वह बुरी तरह से चीख रहा था। तब मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि क्या ऐसे भी सत्त्व होते हैं!

यह सुनकर भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि मैंने भी उस सत्त्व को देखा था, परंतु औरों को इसलिए नहीं कहा कि वे शायद इस पर विश्वास न करते। यह सत्त्व गौ-हत्या करने वाला था। इस पाप के फलस्वरूप लंबे समय तक नरक भोगने के पश्चात उसने यह शरीर ग्रहण किया है।

इस वर्ग के दूसरे सुत्तों में भी आयुष्मान महामोग्गल्लान के इसी प्रकार के अनेक अन्य अनुभवों और उनके बारे में भगवान की व्याख्या को सामने लाया गया है।

२. दुतिय-वग्गो

[सुत्त – ससीसक, गूथखाद, निच्छवित्थि, मङ्गुलित्थि, ओकिलिनी, असीसक, पापभिक्खु, पापभिक्खुनी, पापसिक्खमान, पापसामणेर, पापसामणेरी।]

इस वर्ग के सुत्तों में भी मनुष्य-जीवन में घृणित कार्य करने के कारण लोगों को अत्यंत दुःखद योनियों में से गुजरते हुए दर्शाया गया है। उदाहरणस्वरूप – परस्त्रीगमन करने वाले को गूथ के कूप में डूबे हुए, छिनाल स्त्री को खाल उतारी हुई स्त्री के रूप में, अपनी सौत पर जलते हुए अंगारे फेंकने वाली राजा की पटरानी को एक बदहवास स्त्री के रूप में, एक डाकू को बिना सिर वाले धड़ के रूप में जिसकी छाती में ही आंखें वा मुँह थे, इत्यादि।

९. ओपम्मसंयुत्त

इस संयुत्त में बारह सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – कूट, नखसिख, कुल, ओक्खा, सत्ति, धनुग्गह, आणि, कलिङ्गर, नाग, बिळार, सिङ्गाल, दुतियसिङ्गाल।

इन सुत्तों में भगवान ने विविध प्रकार के प्रकरणों का हवाला देते हुए भिक्षुओं को निम्नांकित बातें सीखने के लिए कहा है –

*अप्रमत्त होकर विहार करना।

*मैत्री चित्त विमुक्ति को भावित करना।

*लकड़ी के तख्त पर सोना, और अपने उद्योग में आतापी और अप्रमत्त होकर विहार करना।

*बिना लोभ जगाये, बिना होश गँवाए, आदीनव और निस्सरण को ध्यान में रख भिक्षा का सेवन करना।

*शरीर, वचन और मन से रक्षित, स्मृतिमान हो, संयमशील इंद्रियों से ग्राम अथवा निगम में भिक्षाटन के लिए पैठना।

*कृतज्ञ होना, अपने प्रति किये गये थोड़े से भी उपकार को न भूलना।

*बुद्ध द्वारा कहे गये गंभीर, लोकोत्तर, शून्यता-प्रतिसंयुक्त सुत्तों को सुनने-समझने के लिए लालायित होना वा प्रयास करना।

१०. भिक्खुसंयुत्त

इस संयुत्त में बारह सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – कोलित, उपतिस्स, घट, नव, सुजात, लकुण्डक भद्दिय, विसाख, नन्द, तिस्स, थेरनामक, महाकप्पिन, सहायक।

आयुष्मान मोग्गल्लान ने भिक्षुओं को बतलाया कि एकांत में ध्यान करते समय मुझे ऐसा लगा कि जब वितर्क और विचार शांत हो जाने पर द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूं, वही 'आर्य मौन' कहलाता है। भगवान ने भी ऋद्धि-बलसे मेरे पास आकर मुझे कहा था कि इसमें प्रमाद मत करो, इसमें चित्त को लगाये रखो।

आयुष्मान सारिपुत्त ने बतलाया कि संसार में ऐसा कुछ नहीं है, जिसको विपरिणत होते जान मुझे दुःख, दौर्मनस्य आदि हों, भले ही वह भगवान बुद्ध हों। उनके लिए मेरे मन में यह होगा कि ऐसे प्रतापी, ऋद्धिमान, महानुभाव अंतर्धान मत हों। यदि वह चिरकालतक रहें, तो यह बहुतों के हित-सुख के लिए होगा।

एक अवसर पर भगवान ने आयुष्मान महामोग्गल्लान को 'आरब्धवीर्य' का तात्पर्य समझाया। उन्होंने कहा कि जब कोई भिक्षु यह सोचकर विहार करता है कि चाहे मेरी चमड़ी, नसें और हड्डी ही बचें, शरीर में मांस और लहू सूख जायँ, किंतु पुरुष के उत्साह, वीर्य और पराक्रमसे जो कुछ पाया जा सकता है, उसे पाये बिना मैं चैन नहीं लूंगा, तब वह 'आरब्धवीर्य' होता है।

एक नया भिक्षु विहार में अल्पोत्सुक हो चुपचाप बैठा रहता था। वह चीवर-कार्य में अन्य भिक्षुओं की सहायता नहीं करता था। जब इन भिक्षुओं ने भगवान तक यह बात पहुँचायी, तब वह बोले कि तुम उस भिक्षु से असंतुष्ट मत हो। वह इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस परम फल को अपनी अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्तकर विहार करता है, जिसके लिए कुलपुत्र घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं। वह तरुण भिक्षु मार को उसकी सेना सहित जीत कर अंतिम देह धारण किये हुए है।

भगवान ने आयुष्मान सुजात और लकुण्डक भद्दियको भी ब्रह्मचर्य के परम फलको प्राप्त करनेवाला बतलाया। उन्होंने आयुष्मान विसाख पञ्चालपुत्र की इसलिए प्रशंसा की कि उन्होंने उपस्थानशाला में भिक्षुओं को धर्मोपदेश देकर उन्हें समुत्तेजित, संप्रहर्षित किया। उन्होंने सजने-धजने की प्रवृत्ति वाले

आयुष्मान नन्द को अरण्यवास के लिए प्रेरित किया जिसके फलस्वरूप वह कामनाओं से विरत हो अरण्य में विहरने लगे। उन्होंने आयुष्मान तिस्स को समझाया कि दूसरों द्वारा चिढ़ाये जाने पर मत चिढ़ो। क्रोध, मान आदि को दूर करने के लिए ही ब्रह्मचर्य का आचरण किया जाता है।

भगवान ने थेर नाम के अकेले रहने वाले भिक्षु का मार्गदर्शन किया कि यथार्थ में अकेले रहना उसे कहते हैं जब कोई अतीत को नष्ट और अनागत को परित्यक्त मानने वाला और वर्तमान के छंद-राग को विजित करने वाला हो जाय।

अंत में भगवान ने आयुष्मान महाकप्पिन और उनके दो सहायक भिक्षुओं की भी इस बात के लिए सराहना की कि वे इसी जन्म में ब्रह्मचर्य के उस परम फल को प्राप्त किये हुए हैं, जिसके लिए कुलपुत्र घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाया करते हैं।

संयुत्तनिक ाय-२

खन्धवग्ग

१. खन्धसंयुत्त

यह संयुत्त पंद्रह वर्गों में विभाजित है जिसमें एक सौ उनसठ सुत्त हैं।

१. नकु लपितु-वग्ग

[सुत्त – नकु लपितु, देवदह, हालिद्दिक ानि, दुतियहालिद्दिक ानि, समाधि, पटिसल्लाण, उपादापरितस्सना, दुतियउपादापरितस्सना, क ालत्तयअनिच्च, क ालत्तयदुक्ख, क ालत्तयअनत्त।]

एक अवसर पर भगवान ने वयोवृद्ध गृहपति नकु लपिता को यह सीख दी कि भले ही तुम्हारा शरीर आतुर हो जाय, पर चित्त को आतुर मत होने दो। इसी बात को आयुष्मान सारिपुत्त ने आगे समझाया कि कैसे शरीर के आतुर होने पर चित्त आतुर होता है, और कैसे आतुर नहीं होता है। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्क ार तथा विज्ञान को अपना समझने से चित्त में आतुरता आती है, क्योंकि ये बदल जाते हैं जिससे दुःख होता है। रूप-वेदनादि को अपना न समझने से चित्त में आतुरता नहीं आती, क्योंकि इनके प्रति अपनत्व का भाव न होने से इनके बदलाव से चित्त प्रभावित नहीं होता।

आयुष्मान सारिपुत्त ने पश्चिम देश में प्रवास क रने के इच्छुक भिक्षुओं को सचेत कि या कि लोग आपसे भगवान की शिक्षा के बारे में तरह-तरह के प्रश्न पूछ सक ते हैं, अतः उनकी शिक्षा के अनुरूप ही उत्तर देने के लिए आपकी तैयारी होनी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है धर्म का भली प्रक ार श्रवण, ग्रहण, उपधारण तथा प्रज्ञा द्वारा प्रतिवेधन।

आयुष्मान महाक च्चान ने गृहपति हालिद्दिक ानि को अलग-अलग अवसरों पर कि ये गये भगवान के निम्न भाषितों का आशय सु-स्पष्ट कि या –

'घर को छोड़, बेघर घूमने वाला मुनि गांव में मेल-मिलाप न करते हुए, कामों से रहित हुआ, कहीं अपनापन न जोड़ते हुए, किसी से लड़ाई-झगड़ा मोल नहीं लेता है।'

'तृष्णा के क्षय से विमुक्त हुए, अत्यंत श्रद्धावान, अत्यंत योगक्षेम प्राप्त किये हुए, अत्यंत ब्रह्मचारी, उच्चतम स्थान प्राप्त किये हुए श्रमण अथवा ब्राह्मण देवों तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ होते हैं।'

एक समय भगवान ने भिक्षुओं को उपदेश दिया कि समाधि की भावना करो; समाहित हुआ भिक्षु यथार्थ को प्रज्ञापूर्वक जान लेता है; और यह यथार्थ ज्ञान है रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान का उत्पन्न होना तथा नष्ट हो जाना। फिर उन्होंने यह भी समझाया कि इनकी उत्पत्ति एवं विनाश से क्या आशय लेना होता है ।

एक अन्य अवसर पर उन्होंने भिक्षुओं को एकांत में ध्यान करने के अभ्यास में जुटने के लिए कहा। उनका कथन था कि ऐसा भिक्षु भी यथार्थ को प्रज्ञापूर्वक जान लेता है।

भगवान ने भिक्षुओं को 'उपादान' तथा 'परितस्सना' और 'अनुपादान' तथा 'अपरितस्सना' के बारे में समझाते हुए कहा कि वह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान में से किसी को भी 'यह मेरा है', 'यह मैं हूं', 'यह मेरी आत्मा है' – ऐसा मान लेना 'उपादान' एवं 'परितस्सना' का कारण बनता है; और ऐसा न मानना 'अनुपादान' तथा 'अपरितस्सना' का।

अंतिम तीन सुत्तों में भगवान ने भूत, भविष्य एवं वर्तमान –इन तीनों कालों में रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान की अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता के बारे में चर्चा करते हुए कहा कि आर्य श्रावक इनकी भूतकालिक स्थिति के बारे में कोई अपेक्षा नहीं करता, न भविष्य की स्थिति का अभिनंदन करता है, और इनकी वर्तमान स्थिति के निर्वेद, विराग एवं निरोध के लिए तत्पर रहता है।

२. अनिच्च-वग्ग

[सुत्त – अनिच्च, दुक्ख, अनत्त, यदनिच्च, यंदुक्ख, यदनत्ता, सहेतुअनिच्च, सहेतुदुक्ख, सहेतुअनत्त, आनन्द।]

इन सुत्तों में भगवान ने रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान की

अनित्यता, दु:खता तथा अनात्मता के बारे में समझाया है, और यह भी समझाया है कि जो अनित्य है वह दु:ख है, जो दु:ख है वह अनात्म है और जो अनात्म है वह न तो मेरा, न मैं, न मेरी आत्मा है। इनके प्रत्यय और हेतु भी अनित्य, दु:ख एवं अनात्म होते हैं, अतः ये स्वयं नित्य, सुख एवं आत्मा नहीं हो सकते। इन सच्चाइयों को जानकर आर्य श्रावक रूप-वेदनादि से निर्वेद प्राप्त कर लेता है; निर्वेद से विरक्ति और विरक्ति से विमुक्ति पा लेता है। विमुक्त होने पर उसे भान होता है –'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, पुनः यहाँ आना नहीं है।'

अंतिम सुत्त में भगवान ने आयुष्मान आनन्द के एक प्रश्न के उत्तर में उन्हें बतलाया कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान अनित्य, संस्कृत (निर्मित), प्रतीत्यसमुत्पन्न, क्षयधर्मा, व्ययधर्मा तथा निरोधधर्मा हैं। इनके निरोध को दृष्टिगत करते हुए ही 'निरोध', 'निरोध' – ऐसा कहा जाता है।

३. भार-वग्ग

[सुत्त – भार, परिञ्ञ, अभिजान, छन्दराग, अस्साद, दुतियअस्साद, ततियअस्साद, अभिनन्दन, उप्पाद, अघमूल, पभङ्गु।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि 'भार', 'भारहार', 'भार का उठाना' तथा 'भार का उतार देना' – इनसे क्या तात्पर्य होता है?

रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के पांच उपादानस्कंध 'भार' कहलाते हैं; पुद्गल 'भारहार' कहलाता है; काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा को बनाए रखना 'भार का उठाना' कहलाता है और इसी तृष्णा का सर्वथा निरोध कहलाता है 'भार का उतार देना'।

भगवान ने गाथा के रूप में कहा कि ये पांच स्कंध भार हैं, पुद्गल है भारहार। लोक में भार का उठाना दु:ख है, और उसे उतार फेंकना सुख। भार के बोझ को उतार कर और कोई अन्य भार न सहेज कर, तृष्णा को जड़ से उखाड़ कर दु:खमुक्त निर्वाण पा लेता है।

उन्होंने रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को 'परिज्ञेय' धर्म बतलाया और राग, द्वेष तथा मोह के क्षय को 'परिज्ञा' की संज्ञा दी। उन्होंने यह भी कहा कि पांच उपादानस्कंधों से विरक्त हुए बिना कोई व्यक्ति अपने दु:खों का विनाश

नहीं कर सकता।इन उपादानस्कंधोंमें विद्यमान छंदराग का परित्याग कर देने पर ये प्रहीण हो जाते हैं और कटी हुई जड़ वाले ताड़वृक्ष के समान होकर पुनः पनपने योग्य नहीं रहते।

भगवान ने पांच उपादानस्कंधोंकी आगे चर्चा करतेहुए कहा कि इनके प्रत्यय से होने वाला सुख ही इनका आस्वाद है, इनका बदलने वाला स्वभाव ही इनका दोष है, और इनके प्रति होने वाले छंदराग को दबा देना ही इनसे छुटकारा पा लेना है। मैंने जब तक इन उपादानस्कंधोंके आस्वाद को आस्वाद के तौर पर, दोष को दोष के तौर पर, और छुटकारे को छुटकारे के तौर पर यथार्थतः नहीं जान लिया, तब तक इस लोक में अनुत्तर सम्यक संबुद्ध होने का दावा नहीं किया।उस समय मुझे यह ज्ञान हुआ –'मेरी विमुक्ति अचल हो गई है, यह मेरा अंतिम जन्म है, अब कोई पुनर्जन्म नहीं है।'

भगवान ने समय-समय पर यह भी समझाया कि –

* पांच स्कंधोंका अभिनंदन करना दुःख का अभिनंदन करना है। दुःख का अभिनंदन करने वाला दुःख-मुक्त नहीं होता।

* पांच स्कंधों की उत्पत्ति, स्थिति, अभिनिवृत्ति और प्रादुर्भाव दुःख की उत्पत्ति, रोगों की स्थिति और जरामरण का प्रादुर्भाव होता है।

* पांच स्कंध दुःख हैं। काम-तृष्णा, भव-तृष्णा तथा विभव-तृष्णा दुःख के मूल हैं।

* पांच स्कंध भंगुर हैं, और इनका निरोध अ-भंगुर।

४. नतुम्हाकं-वग्ग

[सुत्त – नतुम्हाकं, दुतियनतुम्हाकं, अञ्ञतरभिक्खु, दुतियअञ्ञतरभिक्खु, आनन्द, दुतियआनन्द, अनुधम्म, दुतियअनुधम्म, ततियअनुधम्म, चतुत्थअनुधम्म।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि –

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान तुम्हारे नहीं हैं, इन्हें छोड़ दो। इनका प्रहीण हो जाना तुम्हारे हित, सुख के लिए होगा।

* जिसका जैसा अनुशय रहता है, वह वैसा ही समझा जाता है; जैसा अनुशय नहीं रहता है, वैसा नहीं समझा जाता है।

* जिसका जैसा अनुशय रहता है, वह वैसा ही मापता है; जो जैसा मापता है, वह वैसा ही समझा जाता है।

दो भिक्षुओं ने अनुशय-संबंधी उपदेश को भली प्रकार समझ लिया कि इसका संबंध रूप-वेदनादि के अनुशयों से है। एकांत में अकेले, अप्रमत्त, संयमशील तथा प्रहितात्म हो विहार करते हुए इन भिक्षुओं ने अरहंत अवस्था प्राप्त की।

भगवान के एक प्रश्न के उत्तर में आयुष्मान आनन्द ने कहा कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान का उत्पाद जाना जाता है, व्यय जाना जाता है, और स्थित हुओं का अन्यथात्व जाना जाता है।

अंतिम चार सुत्तों में भगवान ने धर्मानुधर्मप्रतिपन्न भिक्षुओं से अपेक्षा की है कि वे रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के प्रति विरक्त होकर और इन्हें अनित्य, दुःख एवं अनात्म समझ कर विहार करें। ऐसा करने से वे रूप-वेदनादि तथा जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य तथा उपायास से मुक्त हो सकते हैं, या यों कहें दुःख-मुक्त हो सकते हैं।

५. अत्तदीप-वग्ग

[सुत्त – अत्तदीप, पटिपदा, अनिच्च, दुतियअनिच्च, समनुपस्सना, खन्ध, सोण, दुतियसोण, नन्दिक्खय, दुतियनन्दिक्खय।]

भगवान ने भिक्षुओं को उपदेश दिया कि वे स्वयं को अपना द्वीप, अपनी शरण बना कर और किसी अन्य का शरणागत न बन; और ऐसे ही धर्म को द्वीप, शरण बनाकर और किसी अन्य का शरणागत न बनकर विहार करें। और इस प्रकार विहार करते हुए यह जानो कि शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते क्यों हैं? फिर कहा कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से तादात्म्य स्थापित कर लेने से ऐसा होता है।

इसी तादात्म्य से सत्काय की भी उत्पत्ति होती है, और तादात्म्य स्थापित न करने से इसका निरोध हो जाता है।

भगवान ने भिक्षुओं को रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान की अनित्यता, दुःखता एवं अनात्मता को प्रज्ञापूर्वक जानने का उपदेश दिया और यह संकेत किया कि ऐसा करने से चित्त उपादानरहित हो आस्रवों से विरक्त और विमुक्त हो जाता है, और भीतर-ही-भीतर निर्वाण पा लेता है। ऐसा व्यक्ति पूर्वांत, अपरांत की मिथ्या दृष्टियों में नहीं पड़ता।

भगवान ने इन विषयों पर भी प्रकाश डाला –

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से तादात्म्य स्थापित करने से 'अस्मि' की अविद्या होती है, जिससे चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा और काय, इन पांच इंद्रियों का अवक्रमण होता है। आर्यश्रावक की अविद्या यहीं प्रहीण होती है।

* अतीत, अनागत, वर्तमान, भीतर, बाहरी, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूरस्थ वा निकटस्थ रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान पांच स्कंध कहलाते हैं, ओर इनका आस्रवों सहित उपादान होने पर इन्हें कहते हैं – पांच उपादान-स्कंध।

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेने से कि इनमें से कोई भी न मेरा है, न यह मैं हूं, और न यह मेरी आत्मा है, आर्यश्रावक इनसे निर्वेद पा लेता है; निर्वेद पाने से विरक्ति और विरक्ति से विमुक्ति पा लेता है। उसे भान हो जाता है – 'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहाँ आना नहीं है।'

* रूप-वेदनादि, इनके समुदय, निरोध तथा निरोध प्राप्त करानेवाले मार्ग को नहीं जानने वाले न तो श्रमणों में श्रमण समझे जाते हैं, और न ब्राह्मणों में ब्राह्मण। वे इसी जीवन में श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य को स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्तकर विहार नहीं कर पाते हैं।

* रूप-वेदनादि को अनित्यता की दृष्टि से देखना सम्यक दृष्टि कहलाती है। यह चित्त को नितांत विमुक्त करने का मार्ग प्रशस्त करती है।

६. उपय-वग्ग

[सुत्त – उपय, बीज, उदान, उपादानपरिवत्त, सत्तट्ठान,
सम्मासम्बुद्ध, अनत्तलक्खण, महालि, आदित्त, निरुत्तिपथ।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि आसक्त अविमुक्त, और अनासक्त विमुक्त होता है। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान में से किसी में भी आसक्त होने से विज्ञान बना रहता है, जो बढ़ता रहता है। यदि रूपधातु, वेदनाधातु, संज्ञाधातु, संस्कारधातु तथा विज्ञानधातु से राग प्रहीण हो जाता है, तो विज्ञान का आधार समाप्त हो जाता है जिससे निर्वाण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

उन्होंने भिक्षुओं को यह भी समझाया कि जो आर्यश्रावक रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान में तादात्म्य स्थापित नहीं करता और इनकी अनित्यता, दुःखता, अनात्मता, संस्कृतता एवं न होने को यथार्थतः जानता है, और ऐसा कहता है कि 'यदि यह न हो, तो मेरा न हो; यदि यह नहीं होगा, तो मेरा नहीं होगा', तो वह अवरभागीय बंधनों को उच्छिन्न कर लेता है।

भगवान ने कहा कि पांच उपादानस्कंध हैं – रूपोपादान-स्कंध, वेदनोपादान-स्कंध, संज्ञोपादान-स्कंध, संस्कारोपादान-स्कंध तथा विज्ञानोपादान-स्कंध।जब तक मैंने इन्हें चार प्रकार से यथार्थतः नहीं जान लिया, तब तक मैंने सम्यक संबुद्ध होने का दावा नहीं किया। (चार प्रकार से जानना, अर्थात रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को तथा इनके समुदय, निरोध और निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग को जानना।)

भगवान ने यह भी बतलाया कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से क्या अभिप्राय लेना होता है, और यह भी कि इन्हें चार प्रकार से जानकर इनसे निर्वेद, वैराग्य, निरोध प्राप्त करने में लगे हुए सु-प्रतिपन्न हो, इस धर्म-विनय में प्रतिष्ठित होते हैं। जो इस प्रकार उपादान-रहित विमुक्ति पा लेते हैं, वही वास्तव में सु-विमुक्त होते हैं। जो सु-विमुक्त होते हैं, वे केवली होते हैं। जो केवली होते हैं उनके लिए जन्म-मरण का चक्कर नहीं होता है।

उन्होंने यह भी कहा कि जो भिक्षु सात स्थानों में कुशल और तीन प्रकार से परीक्षा करने वाला होता है, उसे इस धर्म-विनय में केवली, सफल ब्रह्मचर्य वाला और उत्तम पुरुष कहते हैं। फिर यह भी स्पष्ट किया कि सात स्थानों में कुशलता और तीन प्रकार से परीक्षा करने से क्या आशय लेना होता है।

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि सम्यक संबुद्ध और प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु में क्या अंतर होता है? जबकि सम्यक संबुद्ध अनुत्पन्न मार्ग के उत्पन्न करने वाले, मार्गविदु और मार्गकोविद होते हैं, प्रज्ञाविमुक्त भिक्षु के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता है।

उन्होंने पूरण-कस्सप की इस मान्यता को असंगत ठहराया और बतलाया कि सत्त्वों के संक्लेश के लिए कोई हेतु, प्रत्यय नहीं होता; बिना हेतु, प्रत्यय के सत्त्व संक्लेश में पड़ते हैं; सत्त्वों की विशुद्धि के लिए कोई हेतु, प्रत्यय नहीं होता; बिना हेतु, प्रत्यय के सब विशुद्ध होते हैं। उन्होंने अपने कथन का स्पष्टीकरण भी किया।

उन्होंने यह भी प्रकट किया कि तीन निरुक्ति-पथ न बदले हैं, न बदले थे और न बदलेंगे। कौनसे तीन? रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान में से किसी के भी विद्यमान होने पर 'है' –ऐसी संज्ञा होना; और 'था', 'होगा' –ऐसी संज्ञा न होना। इसके निरुद्ध होने पर 'था' –ऐसी संज्ञा होना; और 'है', 'होगा' –ऐसी संज्ञा न होना। इसके अभी उत्पन्न न होने पर 'होगा' –ऐसी संज्ञा होना; और 'है', 'था' – ऐसी संज्ञा न होना।

७. अरहन्त-वग्ग

[सुत्त – उपादियमान, मञ्ञमान, अभिनन्दमान, अनिच्च, दुक्ख, अनत्त, अनत्तनिय, रजनीयसण्ठित, राध, सुराध।]

समय-समय पर भगवान के समक्ष उपस्थित होकर किसी-किसी भिक्षु ने उन्हें संक्षेप में ऐसा धर्मोपदेश देने के लिए कहा जिसे सुनकर वे एकांत में, अकेले अप्रमत्त, आतापी और दृढ संकल्प वाले होकर विहार कर सकें।

भगवान ने उन्हें इस प्रकार के उपदेश दिये, जैसे कि उपादान करता हुआ मार के बंधन में बँधा रहता है, उपादान न करता हुआ उस पापी से बचा रहता है; मान्यता मानने वाला उसके बंधन में बँधा रहता है, मान्यता न मानने वाला उससे बचा रहता है; अभिनंदन करने वाला भी बँधा, और अभिनंदन न करने वाला छूटा रहता है; अनित्य, दुःख, अनात्म के प्रति छंद को त्याग देना चाहिए; इत्यादि।

इन धर्मोपदेशों का सही आशय समझते हुए और एकांत में, अकेले अप्रमत्त, आतापी और दृढ़ संकल्प वाले होकर विहार करते हुए वे सभी भिक्षु अरहंत हुए।

भगवान ने आयुष्मान राध को बतलाया कि क्या जानकर, देखकर इस विज्ञानयुक्त शरीर में तथा बाहर सभी निमित्तों में अहंकार, ममकार तथा मानानुशय नहीं होते, और आयुष्मान सुराध को बतलाया कि कैसे सभी निमित्तों में अहंकार, ममकार और मान से रहित हो चित्त विमुक्त हो जाता है। ये दोनों आयुष्मान भी समय आने पर अरहंत अवस्था को प्राप्त हुए।

८. खज्जनीय-वग्ग

[सुत्त – अस्साद, समुदय, दुतियसमुदय, अरहन्त, दुतियअरहन्त, सीह, खज्जनीय, पिण्डोल्य, पालिलेय्य, पुण्णम।]

भगवान ने समय-समय पर किये गये अपने इन उपदेशों को फिर दोहराया है कि –

अज्ञानी व्यक्ति रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, आदीनव (दोष) तथा इनसे निःसरण (छुटकारे) को, यथार्थतः, प्रज्ञापूर्वक नहीं जानता है। ज्ञानी व्यक्ति इन्हें, यथार्थतः, प्रज्ञापूर्वक जानता है।

रूप अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है। जो दुःख है वह अनात्म है । जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूं, न मेरी आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जानना चाहिए।

आर्यश्रावक रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से निर्वेद प्राप्त कर लेता है। निर्वेद प्राप्त करने से विरक्त, और विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है। तब उसे भान होता है –'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था हो कर लिया, इससे परे यहाँ आना नहीं है'।

भगवान ने कहा कि जितने सत्त्वावास, भवाग्र हैं, उनमें अरहंत ही सर्वश्रेष्ठ और अग्रणी होते हैं। पांच स्कंधों के उदय-व्यय से संबंधित मेरे धर्मोपदेश को सुनकर देवगण भी भयभीत हो जाते हैं कि अरे! हम अ-नित्य, अ-ध्रुव, अ-शाश्वत होते हुए भी अपने आप को नित्य, ध्रुव और शाश्वत माने बैठे हैं और सत्काय के फेर में पड़े हैं।

उन्होंने कहा कि जो श्रमण अथवा ब्राह्मण अपने अनेक पूर्वजन्मों को स्मरण करते हैं, वे वस्तुतः सभी पांच उपादान-स्कंधों को या इनमें से किसी एक को स्मरण करते हैं। 'पूर्व-काल में मैं ऐसे रूप वाला था' – यह स्मरण करता हुआ कोई रूप को ही स्मरण करता है; और यही वेदना, संज्ञा, संस्कारों तथा विज्ञान के बारे में भी होता है। फिर उन्होंने यह भी समझाया कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को ऐसा क्यों कहते हैं।

एक अवसर पर भगवान भिक्षुसंघ को अपने पास से हटाकर भिक्षाटन के उपरांत अपने ध्यान में लग गये। परंतु फिर यह सोचकर कि मुझे न देखकर कहीं नव-प्रव्रजित भिक्षुओं के मन में कोई अन्यथाभाव न आ जाय, उन्होंने भिक्षुसंघ को अपने सामने बैठा कर कहा –

* सभी वृत्तियों में हीन है भिक्षा-वृत्ति, परंतु आप लोग सारे दुःखों से छुटकारा पाने के उद्देश्य से अपना स्वाभिमान त्याग कर इसे अपनाये हुए हैं।

* लोभी, विलासी, दुष्ट संकल्पवाला, भ्रांतचित्त, मूढ़-स्मृति, असंप्रज्ञ कुलपुत्र दोहरी मार सहता है –वह गृहस्थ के भोगों से भी वंचित रहता है और श्रमणभाव को भी पूरा नहीं कर पाता।

* तीन अकुशल वितर्क हैं– काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क तथा विहिंसा-वितर्क। ये तीनों वितर्क चार स्मृति-प्रस्थानों में सुप्रतिष्ठापित चित्त के साथ विहार करने वाले अथवा अनिमित्त समाधि की भावना करने वाले में पूर्णतया निरुद्ध हो जाते हैं।

* अनिमित्त समाधि की भावना करना बड़ा फलप्रद होता है; इत्यादि।

एक अन्य अवसर पर भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि मैंने स्पष्ट रूप से बतलाया है कि धर्म क्या होता है; चार स्मृति-प्रस्थान, चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रियां, पांच बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या होते हैं। फिर भी एक भिक्षु के मन में ऐसा वितर्क उठा है कि कैसे जानने वाले के, देखने वाले के आस्रवों का क्षय होता है?

भगवान ने स्पष्ट किया कि कोई अज्ञानी व्यक्ति कैसे अपनी मिथ्या धारणाओं के फलस्वरूप तरह-तरह के संस्कार बनाता है। इन संस्कारों का निदान है अविद्यापूर्वक संस्पर्श से होने वाली वेदना, जिससे अज्ञानी को तृष्णा, और उससे संस्कार, उत्पन्न होता है। यह तृष्णा भी अनित्य, संस्कृत और कारण से उत्पन्न होती है। वेदना, संस्पर्श और अविद्या भी अनित्य, संस्कृत और कारण से उत्पन्न होते हैं। इन्हें इस प्रकार जानने वाले के, देखने वाले के आस्रवों का क्षय होता है।

एक उपोसथ के अवसर पर भगवान ने एक भिक्षु के अनेक प्रश्नों का समाधान किया, यथा –पांच उपादान-स्कंधों का मूल क्या है; क्या उपादान और पांच उपादानस्कंध एक ही होते हैं या अलग-अलग; स्कंधों को 'स्कंध' क्यों कहते हैं; विभिन्न स्कंधों की प्रज्ञप्ति का क्या हेतु, प्रत्यय है; सत्कायदृष्टि कैसे होती है; इत्यादि ।

९. थेर-वग्ग

[सुत्त – आनन्द, तिस्स, यमक, अनुराध, वक्कलि, अस्सजि, खेमक, छन्न, राहुल, दुतियराहुल।]

आयुष्मान आनन्द ने भिक्षुओं को बतलाया कि आयुष्मान मन्ताणि-पुत्र हम नये भिक्षुओं का बड़ा उपकार करते हैं। वे उपदेश देते हैं कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के उपादान के कारण 'अस्मि' होता है, अनुपादान के कारण नहीं। उनके इस उपदेश से मैं स्रोतापन्न हो गया।

एक समय भगवान के चचेरे भाई आयुष्मान तिस्स स्त्यान-मृद्ध (तन-मन के आलस) से अभिभूत हो, बे-मन से ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, धर्म के प्रति संशयालु हो गये। उस समय भगवान ने एक सुंदर उपमा देते हुए उनमें पुनः धर्म के प्रति श्रद्धा जगायी।

एक अन्य समय यमक नाम के भिक्षु को यह मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न हुई कि मैं भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म को इस प्रकार जानता हूं कि क्षीणास्रव भिक्षु शरीर छूटने पर विनष्ट हो जाते हैं, रहते नहीं हैं। आयुष्मान सारिपुत्त ने उसकी इस मिथ्या-दृष्टि को दूर किया। इससे उसकी समझ में आया कि यदि कोई यह जानना चाहे कि क्षीणास्रव अरहंत भिक्षु के मरने के बाद क्या होता है, तो उसे यह उत्तर देना चाहिए –'रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान अनित्य है। जो अनित्य है, वह दुःख है; जो दुःख है वह निरुद्ध, अस्त हो गया।' आयुष्मान सारिपुत्र ने एक उपमा कह कर इसे और भी सु-स्पष्ट कर दिया।

भगवान ने भी आयुष्मान अनुराध की इस गलत धारणा को दूर किया कि परम पुरुष तथागत मरने के पश्चात, तथागत की इनमें से एक-न-एक स्थिति को प्रज्ञप्त करते हैं –रहता है; नहीं रहता है; रहता भी है और नहीं भी रहता; और न रहता है, न नहीं रहता है। उन्होंने कहा कि मैं दुःख और दुःख के निरोध को ही प्रज्ञप्त किया करता हूं।

एक बार अत्यंत रुग्ण आयुष्मान वक्कलि के अनुरोध पर भगवान उनके पास गये। जब आयुष्मान वक्कलि ने कहा कि आपके दर्शन करने की मेरी बड़ी इच्छा थी परंतु शारीरिक असमर्थता के कारण ऐसा नहीं कर पाया तब भगवान ने उन्हें कहा कि इस गंदगी से भरे शरीर के दर्शन से क्या लाभ? वस्तुतः धर्म का दर्शन मेरा दर्शन और मेरा दर्शन धर्म का दर्शन होता है। फिर वे उन्हें रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान की अनित्यता के बारे में उपदेश देकर वहां से चले गये।

भगवान के चले जाने के पश्चात आयुष्मान वक्कलि के कहने पर उनकी सेवा करने वाले उन्हें खाट सहित इसिगिलि के पास काळसिला पर ले गये। वहां उन्होंने विमोक्ष में चित्त लगाया और भगवान को संदेश भिजवाया कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान की अनित्यता के बारे में मुझे कोई संशय नहीं है; जो

अनित्य है वह दु:ख है, इस बारे में मुझे कोई संशय नहीं है; अनित्य, दु:ख और विपरिणामधर्मा के प्रति मुझे छंद, राग, प्रेम नहीं है, इसमें भी मुझे कोई संशय नहीं है। तत्पश्चात उन्होंने अपने आप को शस्त्र मार कर प्राणोत्सर्ग कर दिया।

भगवान भिक्षुओं के साथ इसिगिलि काळसिला के पास गये। वहां उन्होंने उनको दिखलाया कि कुछ धुंआती छाया सभी दिशाओं में उड़ रही है। उन्होंने स्पष्ट किया कि यह पापी मार है जो कुलपुत्र वक्कलि के विज्ञान को खोज रहा है, जबकि वे परिनिर्वाण पा चुके हैं और उनका विज्ञान कहीं प्रतिष्ठित नहीं है।

एक अन्य अवसर पर अत्यंत रुग्ण आयुष्मान अस्सजि के अनुरोध पर भी भगवान उनके पास गये। वहां पर उन्होंने रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान की अनित्यता और सुखद, दु:खद तथा अदु:खद-असुखद वेदनाओं को अनासक्त भाव से अनुभव करने के बारे में बतलाया। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसा भिक्षु कायपर्यंत वेदना को अनुभव करता हुआ यह प्रज्ञापूर्वक जानता है – 'मैं कायपर्यंत वेदना अनुभव कर रहा हूं'; जीवनपर्यंत वेदना को अनुभव करता हुआ प्रज्ञापूर्वक जानता है –'मैं जीवनपर्यंत वेदना को अनुभव कर रहा हूं'; और यह भी प्रज्ञापूर्वक जानता है कि शरीर छूटने पर सभी वेदनाएं शांत हो जाने वाली हैं और इनके प्रति कोई आसक्ति रहने वाली नहीं है।

रुग्ण भिक्षु आयुष्मान खेमक ने प्रकट किया कि मैं रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से संबंधित उपादान-स्कंधों में से किसी को भी आत्मा या आत्मीय करके नहीं देखता हूं, परंतु फिर भी मैं क्षीणास्रव अरहंत नहीं हूं। मुझे इन पांच उपादान-स्कंधों में 'अस्मि' ('मैं हूं') की बुद्धि है, भले ही मैं नहीं देखता कि 'यह मैं हूं'। इस पर स्थविर भिक्षुओं ने इन्हें समझाया कि आर्यश्रावक के नीचे के पांच बंधन कट जाने पर भी उसे पांच उपादान-स्कंधों के साथ होने वाले 'मैं हूं' का मान, छंद और अनुशय लगा ही रहता है। जब आगे चलकर वह इन उपादान-स्कंधों में उदय और व्यय को देखते हुए विहार करने लगता है, तभी इनके साथ होने वाले 'मैं हूं' का भाव छूटता है।

आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान छन्न को समझाया कि 'सभी कुछ है' और 'कुछ नहीं है' –इन दो अंतों में न जाकर भगवान ने प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम का अनुलोम-प्रतिलोम प्रतिपादन करते हुए बीच से धर्म का उपदेश किया है।

भगवान ने आयुष्मान राहुल को समझाया कि कैसे जानते, देखते वाले मनुष्य को विज्ञान वाले इस शरीर में और बाहर के सभी निमित्तों में अहंकार, ममकार,

मान और अनुशय नहीं होते और कैसे इस अवस्था पर पहुँचा हुआ व्यक्ति द्वंद्व के परे शांत और सुविमुक्त हो जाता है।

१०. पुप्फ-वग्ग

[सुत्त – नदी, पुप्फ, फेणपिण्डूपम, गोमयपिण्ड, नखसिखा, सुद्धिक, गद्दुलबद्ध, दुतियगद्दुलबद्ध, वासिजट, अनिच्चसञ्ञा।]

भगवान ने कहा कि 'यदि किसी वेगवती नदी के स्रोत में बहता हुआ व्यक्ति नदी के तीर पर उगे हुए कास, कुश, वृक्षादि को पकड़ले और वे उखड़ जायँ, तो वह व्यक्ति बहुत बड़े खतरे में पड़ जाता है। ऐसे ही जब कोई अज्ञानी व्यक्ति रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान में से किसी को भी आत्मा करके जानता है, या इनमें आत्मा को जानता है, और यह उखड़ जाता है, तो उससे वह विपत्ति में पड़ जाता है। जो इन पांच स्कंधों की अनित्यता को जान, देख लेता है, वह विमुक्त हो जाता है और प्रज्ञापूर्वक जान लेता है कि जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहाँ आना नहीं है।'

उन्होंने यह भी कहा कि जैसे कमल जल में उत्पन्न होता है और जल में ही बढ़ता है, तो भी जल से अनुपलिप्त ही रहता है। इसी प्रकार बुद्ध भी संसार में रहते हुए संसार को जीत, संसार से अनुपलिप्त रहते हैं।

उन्होंने शरीर की असारता को उपमाओं के माध्यम से प्रकट किया –रूप झाग के पिंड के समान है, वेदना पानी के बुलबुले-समान, संज्ञा मरीचिका-समान, संस्कार कदलीवृक्ष-समान और विज्ञान माया-समान। उन्होंने कहा कि उत्साही भिक्षु इन पांच स्कंधों को निःसार जान दिन और रात स्मृतिमान तथा संप्रज्ञानी बना रहे। वह सभी संयोजनों को छोड़, अपनी शरण आप बने, और मानों सिर में आग लग गयी है ऐसा सोचते हुए निर्वाण की खोज करे।

एक भिक्षु ने भगवान से पूछा कि क्या कोई रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार अथवा विज्ञान ऐसा है जो नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अविपरिणाम-धर्मा हो? भगवान ने कहा –नहीं। फिर उन्होंने कहा कि पूर्वकाल में मैं एक मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा था। मैं चौरासी हजार नगरों में प्रमुख कुसावती नाम की राजधानी में निवास करता था। उस समय मेरे वैभव का कोई ठिकाना न था। परंतु वह सब कुछ अतीत, निरुद्ध, विपरिणत हो गया है। संस्कार ऐसे ही अनित्य, अध्रुव, विपरिणाम-धर्मा तथा आश्वासन-रहित होते हैं। अतः सभी संस्कारों से निर्वेद पा लेना, विरक्त हो जाना ही उचित है।

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि अविद्या के अंधकार में पड़े हुए, तृष्णा के बंधन में बँधे हुए और संसार में संधावन करने वाले प्राणियों के दु:ख का अंत नहीं होता। जैसे मजबूती से गड़े हुए खूंटे में बँधा हुआ कुत्ता उसी खूंटे के इर्दगिर्द चलता, ठहरता, बैठता अथवा लेटता है, वैसे ही वह अज्ञानी व्यक्ति जो रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कारों तथा विज्ञान में से किसी को भी ऐसा समझता है कि 'यह मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरी आत्मा है', वह इन्हीं पांच उपादान-स्कंधों के इर्दगिर्द चलता, ठहरता, बैठता अथवा लेटता है। अतः बार-बार आत्म-चिंतन करना चाहिए कि लंबे समय से यह चित्त राग, द्वेष और मोह से मलिन है। चित्त की मलिनता से प्राणी मैले और चित्त की निर्मलता से निर्मल होते हैं।

भगवान ने भिक्षुओं को चार स्मृति-प्रस्थानों, चार सम्यक प्रधानों, चार ऋद्धिपादों, पांच इंद्रियों, पांच बलों, सात बोध्यंगों तथा आर्य अष्टांगिक मार्ग के अभ्यास को सुदृढ़ करने पर बल दिया। उन्होंने व्यक्त किया कि भावनारत भिक्षु के संयोजन विशेष कठिनाई झेले बिना नष्ट हो जाते हैं।

उन्होंने यह भी व्यक्त किया कि अनित्य-संज्ञा की भावना करने से सभी कामराग, रूपराग, भवराग और अविद्या दूर हो जाते हैं, और सारी अस्मिता जड़ से उखड़ जाती है। उन्होंने यह भी समझाया कि अनित्य-संज्ञा की भावना इस प्रकार करनी चाहिए – 'यह रूप, संज्ञा, वेदना, संस्कार अथवा विज्ञान है, यह इसका समुदय और यह इसका अस्त हो जाना है'।

११. अन्त-वग्ग

[सुत्त – अन्त, दुक्ख, सक्काय, परिञ्ञेय्य, समण, दुतियसमण, सोतापन्न, अरहन्त, छन्दप्पहान, दुतियछन्दप्पहान।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को जिन विषयों के बारे में उपदेश दिया है, वे हैं –

* चार अंत (सत्काय-अंत, सत्कायसमुदय-अंत, सत्कायनिरोध-अंत तथा सत्कायनिरोधगामिनी प्रतिपदा-अंत)।

* दु:ख, दु:खसमुदय, दु:खनिरोध तथा दु:खनिरोधगामिनी प्रतिपदा।

* परिज्ञेय धर्म, परिज्ञा तथा परिज्ञाता पुद्गल।

* पांच उपादान-स्कंध, इनका समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष और इनसे निःसरण (छुटकारा)।

इनमें 'सत्काय-अंत' है पांच उपादान-स्कंध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान), 'सत्कायसमुदय-अंत' है पुनर्जन्म दिलाने वाली तृष्णा (काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा), 'सत्कायनिरोध-अंत' है इस तृष्णा का परित्याग, और 'सत्कायनिरोधगामिनी प्रतिपदा' है आर्य अष्टांगिक मार्ग। 'दुःख', 'दुःखसमुदय', 'दुःखनिरोध' तथा 'दुःखनिरोधगामिनी' को भी इसी प्रकार समझना चाहिए। 'परिज्ञेय धर्म' भी हैं यही पांच उपादान-स्कंध, 'परिज्ञा' राग द्वेष तथा मोह का क्षय; 'परिज्ञाता पुद्गल' अरहंत। इन पांच उपादान-स्कंधों के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष और इनसे निःसरण (छुटकारे) को यथार्थतः जानने वाला व्यक्ति 'स्रोतापन्न' हो जाता है। जो इन्हें यथार्थतः जान उपादानरहित हो जाता है, वह क्षीणास्रव अरहंत कहलाता है।

भगवान ने भिक्षुओं को पांच उपादान-स्कंधों के प्रति तृष्णा, उपादान, अभिनिवेश एवं अनुशय छोड़ देने के लिए कहा है। इससे ये कटी हुई जड़ वाले ताड़वृक्ष के समान पुनः पनपने योग्य नहीं रहते।

१२. धम्मकथिक-वग्ग

[सुत्त – अविज्जा, विज्जा, धम्मकथिक, दुतियधम्मकथिक, बन्धन, परिपुच्छित, दुतियपरिपुच्छित, संयोजनिय, उपादानिय, सीलवन्त, सुतवन्त, कप्प, दुतियकप्प।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि –

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान और इनके समुदय, निरोध एवं निरोध कराने वाले मार्ग को प्रज्ञापूर्वक न जानने को 'अविद्या' कहते हैं। इनको प्रज्ञापूर्वक जान लेना 'विद्या' कहलाती है।

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से विरक्त होने और उनके निरोध के बारे में धर्मोपदेश करने वाले को 'धर्मकथिक' कहते हैं। विरक्ति एवं निरोध के लिए यत्नशील व्यक्ति को 'धर्मानुधर्मप्रतिपन्न', और इस प्रकार उपादानरहित होकर विमुक्त हुए व्यक्ति को कह सकते हैं 'इसी जीवन में निर्वाण-प्राप्त भिक्षु'।

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से तादात्म्य स्थापित करने वाला व्यक्ति इनके बंधन में बँधा हुआ, गांठ-गठीला, ओर-छोर को न देखने वाला, बँधा हुआ उत्पन्न होता है, बँधा हुआ मरता है और बँधा हुआ ही इस लोक से परलोक को जाता है। तादात्म्य स्थापित न करने वाला व्याक्ति इससे विपरीत स्थिति वाला होकर पूरी तरह से दुःखविमुक्त हो जाता है।

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान में से किसी को भी 'यह मेरा अथवा मेरी है, यह मैं हूं, यह मेरी आत्मा है', ऐसा नहीं समझना चाहिए। इन्हें इस प्रकार यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक समझ लेने से नया जन्म नहीं होता।

* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान 'संयोजनीय धर्म' कहलाते हैं, और इनके प्रति होने वाला छंदराग कहलाता है 'संयोजन'। रूपादि को 'उपादानीय धर्म' भी कहते हैं, और इनके प्रति होने वाले छंदराग को 'उपादान'।

आयुष्मान महाकोट्ठिक के प्रश्नों के उत्तर में आयुष्मान सारिपुत्त ने उन्हें बतलाया कि शीलवान अथवा श्रुतवान भिक्षुओं को पांच उपादान-स्कंधों को अनित्य, दुःख, रोग, व्रण, शल्य, पाप, अंतराय, पराया, झूठा, शून्य एवं अनात्म समझना चाहिए। हो सकता है कि ऐसा करते रहने से भिक्षु स्रोतापन्न हो जाए, स्रोतापन्न सकृदागामी, सकृदागामी अनागामी और अनागामी अरहंत बन जाए। अरहंत को भी उपादान-स्कंधों को ऐसे ही समझना चाहिए, भले ही उसका यह अभ्यास इस जीवन में सुखविहार करने और स्मृतिमान तथा संप्रज्ञानी बने रहने के लिए ही होगा।

भगवान ने आयुष्मान कप्प को समझाया कि कैसे जानने वाले और और देखने वाले को इस विज्ञानयुक्त काया के भीतर वा बाहर सभी निमित्तों में अहंकार, ममकार, मान तथा अनुशय नहीं होते हैं और कैसे मन द्वंद्व से परे हो, शांत और विमुक्त हो जाता है।

१३. अविज्जा-वग्ग

[सुत्त – समुदयधम्म, दुतियसमुदयधम्म, ततियसमुदयधम्म, अस्साद, दुतियअस्साद, समुदय, दुतियसमुदय, कोट्ठिक, दुतियकोट्ठिक, ततियकोट्ठिक।]

इन सुत्तों में बतलाया गया है कि 'अविद्या' क्या होती है और कोई अविद्या में कैसे पड़ता है? और इसके विपरीत, 'विद्या' क्या होती है और क्या होने से कोई विद्या-प्राप्त कहलाता है?

'अविद्या' है रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के –

* समुदय एवं व्यय के स्वभाव को यथार्थतः न जानना;

* आस्वाद, दोष तथा निःसरण को यथार्थतः न जानना;

* समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष, निःसरण को यथार्थतः न जानना;

* अस्तित्व, समुदय, निरोध एवं इनका निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग को यथार्थतः न जानना।

ऐसा होने से कोई अविद्या में पड़ता है।

यदि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के बारे में उक्त प्रकार की जानकारी यथार्थतः हो जाती है, तो वह 'विद्या' कहलाती है। ऐसा होने से कोई व्यक्ति विद्या-प्राप्त कहलाता है।

१४. कुक्कुळ-वग्ग

[सुत्त – कुक्कुळ, अनिच्च, दुतियअनिच्च, ततियअनिच्च, दुक्ख, दुतियदुक्ख, ततियदुक्ख, अनत्त, दुतियअनत्त, ततियअनत्त, निब्बिदाबहुल, अनिच्चानुपस्सी, दुक्खानुपस्सी, अनत्तानुपस्सी।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि –

रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को धधकता हुआ जानो। इन्हें इस प्रकार जानने से आर्यश्रावक इनसे निर्वेद पा लेता है, जिससे विरक्त हो जाता है, और विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है। तब उसे भान होता है –'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञा से जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं है'।

रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान अनित्य हैं। जो अनित्य है, उससे छंद, राग एवं छंद-राग को दूर करना चाहिए।

दुःख से छंद, राग एवं छंद-राग को दूर करना चाहिए।

अनात्म से छंद, राग एवं छंद-राग को दूर करना चाहिए।

पांच उपादान-स्कंधों के प्रति वैराग्य, अनित्यता तथा अनात्मता का भाव रखते हुए विहार करे। ऐसा करने से वह इन सभी से मुक्त हो, जन्म-मरण के बंधन से मुक्त होकर, दुःख-मुक्त हो जाता है।

१५. दिट्ठि-वग्ग

[सुत्त – अज्झत्त, एतंमम, सोअत्ता, नोचमेसिया, मिच्छादिट्ठि, सक्कायदिट्ठि, अत्तानुदिट्ठि, अभिनिवेस, दुतियअभिनिवेस, आनन्द।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के होने से, इनके उपादान से भीतर सुख-दुःख होता है; कोई समझता है –'यह मेरे हैं, यह मैं हूं, ये मेरी आत्मा हैं'; अनेक प्रकार की मिथ्या दृष्टियां होती हैं; संयोजन, अभिनिवेश, विनिबंध, अध्यवसान होते हैं। जो इन्हें इस प्रकार प्रज्ञापूर्वक जान लेते हैं, वे विमुक्ति को प्रात हो, समझ जाते हैं कि अब पुनः उन्हें यहाँ आना नहीं है।'

२. राधसंयुत्त

यह संयुत्त चार वर्गों में विभाजित है जिनमें छियालीस सुत्त हैं।

१. पठम-वग्ग

[सुत्त – मार, सत्त, भवनेत्ति, परिञ्ञेय्य, समण, दुतियसमण,
सोतापन्न, अरहन्त, छन्दराग, दुतियछन्दराग।]

भगवान ने आयुष्मान राध को समझाया कि जिसे लोग 'मार, मार' कहते हैं वह क्या होता है? रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान में से किसी के भी होने से मार होता है, या मारने वाला, या वह जो मरता है। अतः इनको मार, रोग, व्रण, शल्य, दुःख के रूप में देखना चाहिए। इन्हें इस प्रकार देखना ही इनका सम्यक दर्शन करना है। सम्यक दर्शन से निर्वेद होता है, निर्वेद से वैराग्य, वैराग्य से विमुक्ति और विमुक्ति से निर्वाण। ब्रह्मचर्य का अंतिम उद्देश्य निर्वाण ही होता है।

अलग-अलग अवसरों पर भगवान ने आयुष्मान राध को यह भी समझाया कि कोई व्यक्ति सक्त (आसक्त) कैसे होता है; भवनेत्री और भवनेत्रीनिरोध क्या होता है; परिज्ञेय धर्म, परिज्ञा और परिज्ञाता पुद्गल से क्या आशय लिया जाता है; इत्यादि।

२. दुतिय-वग्ग

[सुत्त – मार, मारधम्म, अनिच्च, अनिच्चधम्म, दुक्ख, दुक्खधम्म,
अनत्त, अनत्तधम्म, खयधम्म, वयधम्म, समुदयधम्म,
निरोधधम्म।]

इन सुत्तों में भगवान ने समझाया है कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को मार, मारधर्मा, अनित्य, अनित्यधर्मा, दुःख, दुःखधर्मा, अनात्म, अनात्मधर्मा, क्षयधर्मा, व्ययधर्मा, समुदयधर्मा अथवा निरोधधर्मा मानकर आर्यश्रावक इनसे निर्वेद प्राप्त कर लेता है, निर्वेद प्राप्त कर विरक्त हो जाता है, विरक्त हो विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर उसे भान होता है –'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –"जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।"

३. आयाचन-वग्ग

[सुत्त – मारादिसुत्तएकादसक, निरोधधम्म।]

आयुष्मान राध ने भगवान से कहा कि मुझे ऐसे धर्म का उपदेश करें जिसे सुनकर मैं अकेला, एकांतसेवी हो, अप्रमत्त बना रहकर, प्रयत्नपूर्वक तप करता हुआ, आत्मसंयमी हो विहार करूं। इस पर उन्होंने इन्हें इन-इन के प्रति छंद, राग एवं छंद-राग का प्रहाण करने के लिए कहा –मार, मारधर्म, अनित्य, अनित्यधर्म, दुःख, दुःखधर्म, अनात्म, अनात्मधर्म, क्षयधर्म, व्ययधर्म, समुदयधर्म एवं निरोधधर्म।

४. उपनिसिन्न-वग्ग

[सुत्त – मारादिसुत्तएकादसक, निरोधधम्म।]

इन सुत्तों में भगवान ने आयुष्मान राध को बतलाया कि इन-इन के प्रति छंद, राग एवं छंद-राग को हटाना चाहिए –मार, मारधर्म, अनित्य, अनित्यधर्म, दुःख, दुःखधर्म, अनात्म, अनात्मधर्म, क्षयधर्म, व्ययधर्म, समुदयधर्म और निरोधधर्म।

३. दिट्ठिसंयुत्त

यह संयुत्त चार वर्गों में विभाजित है जिनमें छियानवे सुत्त हैं।

१. सोतापत्ति-वग्ग

[सुत्त – वात, एतंमम, सोअत्ता, नोचमेसिया, नत्थिदिन्न, करोतो,
हेतु, महादिट्ठि, सस्सतदिट्ठि, असस्सतदिट्ठि,अन्तवा, अनन्तवा,
तंजीवंतंसरीरं, अञ्ञंजीवंअञ्ञंसरीरं, होतितथागतो,
नहोतितथागतो, होतिचनचहोतितथागतो,
नेवहोतिनहोतितथागतो।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को समझाया है कि किसके होने से, किसके उपादान से, किसके अभिनिवेश से इस प्रकार की मिथ्या दृष्टियां उत्पन्न होती हैं, यथा हवाएं नहीं चलती हैं, नदियां नहीं बहती हैं, यह मैं हूं, यह मेरी आत्मा है, जो आत्मा है सो लोक है, अच्छे या बुरे कर्मों का कोई फल नहीं होता, यह लोक शाश्वत है, अशाश्वत है, अंतवान है, अनंत है, इत्यादि।

उन्होंने बतलाया कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के होने से, इनके उपादान से, इनके अभिनिवेश से ऐसा होता है। इनकी अनित्यता, दुःखता तथा परिवर्तनशीलता को जान लेने से ये मिथ्या दृष्टियां नहीं होती हैं। जिस आर्यश्रावक की इनके तथा दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध तथा दुःखनिरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग के प्रति शंका दूर हुई रहती है वह 'स्रोतापन्न' कहलाता है। वह धर्म से च्युत न होने वाला और निश्चित रूप से संबोधि प्राप्त करने वाला होता है।

२. दुतियगमन-वग्ग

[सुत्त –वात....। नेवहोतिनहोति, रूपीअत्ता, अरूपीअत्ता,
रूपीचअरूपीचअत्ता, नेवरूपीनारूपीअत्ता,एकन्तसुखी,
एकन्तदुक्खी, सुखदुक्खी, अदुक्खमसुखी।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को समझाया है कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के होने से, इनके उपादान से, इनके अभिनिवेश से अनेक प्रकार की पूर्व-वर्णित मिथ्या दृष्टियों के अतिरिक्त इस प्रकार की मिथ्या दृष्टियां भी होती हैं, जैसे मरने के उपरांत आत्मा रूप वाला अरोग हो जाता है, बिना रूप

वाला अरोग हो जाता है, रूप वाला और बिना रूप वाला अरोग हो जाता है, न रूप वाला और न बिना रूप वाला अरोग हो जाता है, इत्यादि। परंतु रूप, वेदनादि की अनित्यता, दुःखता तथा परिवर्तनशीलता को जान लेने से ये मिथ्या दृष्टियां नहीं होती हैं। इस तरह दुःख के होने से, दुःख के उपादान से, दुःख के अभिनिवेश से ऐसी मिथ्या दृष्टियां उत्पन्न होती हैं।

३. ततियगमन-वग्ग

[सुत्त – नवात. . . अदुक्खमसुखी।]

इन सुत्तों में भी पूर्ववत मिथ्या दृष्टियों की उत्पत्ति के बारे में समझाते हुए कहा गया है कि जो अनित्य है वह दुःख है; उसके होने से, उसके उपादान से ये दृष्टियां उत्पन्न होती हैं।

४. चतुत्थगमन-वग्ग

[सुत्त – नवात. . . अदुक्खमसुखी।]

इन सुत्तों में भी मिथ्या दृष्टियों के बारे में पहले के समान चर्चा करने के पश्चात भगवान द्वारा समझाया गया है कि अतीत, अनागत वा वर्तमान के, भीतरी वा बाहरी, स्थूल वा सूक्ष्म, निकृष्ट वा उत्कृष्ट, दूरस्थ अवथा निकटस्थ सर्व प्रकार के रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को इस प्रकार यथार्थतः जानना चाहिए –'न यह मेरे हैं, न मैं यह हूं, न यह मेरी आत्मा हैं।' ऐसा देख लेने से आर्य-श्रावक रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान से निर्वेद प्राप्त करता है, निर्वेद प्राप्त करने से विरक्त होता है, विरक्त होने से विमुक्त होता है। तब उसे यह ज्ञान होता है –'मैं विमुक्त हो गया।' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं ।'

४. ओक्क न्तसंयुत्त

इस संयुत्त में दस सुत्त हैं जिनके नाम हैं – चक्खु, रूप, विञ्ञाण, सम्फ स्स, सम्फ स्सजा, रूपसञ्ञा, रूपसञ्चेतना, रूपतण्हा, पथवीधातु, खन्ध।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन अनित्य, परिवर्तनशील और अन्यथाभाव वाले होते हैं। जो इन धर्मों के प्रति इस प्रकार श्रद्धावान वा आश्वस्त होता है, वह श्रद्धानुसारी कहलाता है और वह ऐसा कोई काम नहीं कर सकता जिससे वह निचली योनि को प्राप्त करे और स्रोतापत्ति का फल पाये बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाये।

निम्नांकित के बारे में भी ऐसे ही समझना चाहिए –

* रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।
* चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, तथा मनो।
* चक्षुसंस्पर्श, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, तथा मनः।
* चक्षुसंस्पर्शजा वेदना, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मनः।
* रूपसंज्ञा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।
* रूपसंचेतना, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।
* रूपतृष्णा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।
* पृथ्वीधातु, जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा विज्ञान।
* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान।

५. उप्पादसंयुत्त

इस संयुत्त में दस सुत्त हैं जिनके नाम हैं –चक्खु, रूप, विञ्ञाण, सम्फस्स, सम्फस्सज, सञ्ञा, सञ्चेतना, तण्हा, धातु, खन्ध।

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि चक्षु की उत्पत्ति, स्थिति वा प्रादुर्भाव दुःख की उत्पत्ति, रोगों की स्थिति और जरामरण का प्रादुर्भाव है। यही बात श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन पर भी चरितार्थ होती है।

चक्षु का निरोध, उपशम वा अवसान दुःख का निरोध, रोगों का उपशम और जरामरण का अवसान है। यही बात श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन पर भी चरितार्थ होती है।

निम्नांकित के बारे में भी ऐसे ही समझना चाहिए: –

–रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।

–चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मनो।

–चक्षुसंस्पर्श, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मनः।

–चक्षुसंस्पर्शजा वेदना, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मनः।

–रूपसंज्ञा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।

–रूपसंचेतना, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।

–रूपतृष्णा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।

–पृथ्वीधातु, जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा विज्ञान।

–रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान।

६. किलेससंयुत्त

इस संयुत्त में दस सुत्त हैं जिनके नाम हैं – चक्खु, रूप, विञ्ञाण, सम्फस्स, सम्फस्सज, सञ्ञा, सञ्चेतना, तण्हा, धातु, खन्ध।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन में होने वाला छंद-राग चित्त का उपक्लेश होता है, जब इन छः स्थानों में चित्त उपक्लेश-रहित होता है, तब वह नैष्क्रम्य की ओर झुका होता है, नैष्क्रम्य में परिभावित चित्त अभिज्ञा से साक्षात्कार किये जाने योग्य धर्मों में लगता है।

यही स्थिति निम्नांकित के बारे में भी है : –

* रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।* चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मनो।* चक्षुसंस्पर्श, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मनः।* चक्षुसंस्पर्शजा वेदना, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मनः ।* रूपसंज्ञा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।* रूपसंचेतना, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।* रूपतृष्णा, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म।* पृथ्वीधातु, जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा विज्ञान।* रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान।

७. सारिपुत्तसंयुत्त

इस संयुत्त में दस सुत्त हैं जिनके नाम हैं – विवेकज, अवितक्क, पीति, उपेक्खा, आकासानञ्चायतन, विञ्ञाणञ्चायतन, आकिञ्चञ्ञायतन, नेवसञ्ञानासञ्ञायतन, निरोधसमापत्ति, सूचिमुखी।

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त को ध्यान से उठकर आते हुए देख आयुष्मान आनन्द ने उनसे कहा कि आपकी इंद्रियां अत्यंत प्रसन्न और मुख की कांति परिशुद्ध है; आज आप कैसे विहार कर रहे थे?

आयुष्मान सारिपुत्त ने उत्तर दिया कि मैं प्रथम ध्यान का लाभ कर विहार करता था। तब मुझे यह नहीं जान पड़ता था कि मैं प्रथम ध्यान को प्राप्त कर रहा हूं, अथवा इसे प्राप्त कर लिया है, अथवा इससे उठ रहा हूं।

वस्तुतः उनके अहंकार, ममंकार, मान के अनुशय क्लेश बहुत पहले ही पूर्णतया नष्ट हो जाने से उन्हें यह जान नहीं पड़ता था। और यह केवल प्रथम ध्यान के समय ही नहीं, अपितु द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ ध्यान, तथा आकाशानंत्यायतन, विज्ञानंत्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तथा संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्थाओं में भी होता था।

एक अवसर पर आयुष्मान सारिपुत्त ने सूचिमुखी परिव्राजिका को स्पष्ट किया कि कोई कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण वास्तुविद्या, नक्षत्रविद्या, अंगविद्या, संदेशवाहन जैसी मिथ्या आजीविका को अपना कर अपना भरण-पोषण करते हैं, परंतु मैं धर्मपूर्वक भिक्षाटन कर उदर-पोषण करता हूं। यह जान कर वह परिव्राजिका जगह-जगह जाकर लोगों से कहने लगी कि शाक्यपुत्र श्रमण धर्मपूर्वक, अनिंद्य आहार ग्रहण करते हैं; उन्हें भिक्षा दो।

८. नागसंयुत्त

इस संयुत्त में पचास सुत्त हैं जिनके नाम हैं – सुद्धिक , पणीततर, उपोसथ, दुतियउपोसथ, ततियउपोसथ, चतुत्थउपोसथ, सुत, दुतियसुत, ततियसुत, चतुत्थसुत, अण्डजदानूपक ार(सुत्तदसक), जलाबुजादिदानूपक ार(सुत्ततिंसक)।

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि –

* नाग-योनियां चार हैं –

१. अंडज,

२. जलाबुज,

३. संस्वेदज, और

४. औपपातिक । ये, उत्तरोत्तर, एक -दूसरे से प्रणीत हैं।

* कुछ नागों के मन में होता है कि हम पहले काय, वाणी और मन से पुण्य और पाप, दोनों प्रकार के कर्म किया करते थे, जिससे हम मरणोपरांत अमुक नाग-योनि में उत्पन्न हुए हैं। अब हम काय, वाणी और मन से अच्छा आचरण करें जिससे मृत्यु के उपरांत स्वर्ग में उत्पन्न होकर सुगति को प्राप्त हों। इसी कारणवश कुछ नाग उपोसथ रखते हैं और अच्छे शरीर वाले हो जाते हैं।

* यदि काय, वाणी और मन से दोनों प्रकार के कर्म करने वाला व्यक्ति नागों की लंबी आयु, अभिरूपता और सुखबहुलता के बारे में सुनकर यह कामना करे कि मृत्यु के उपरांत मैं भी अमुक योनि वाले नागों के बीच उत्पन्न होऊं, तो ऐसा हो जाता है।

* उक्त प्रकार का व्यक्ति मरणोपरांत जिस नाग-योनि के नागों के बीच उत्पन्न होने की कामना करता हुआ अन्न, पान, वस्त्रादि का दान देता है, वह उसी नाग-योनि के नागों के बीच उत्पन्न होता है; जैसे मरणोपरांत अंडज योनि के नागों के बीच उत्पन्न होने की कामना करने वाला व्यक्ति उक्त प्रकार का दान देता हुआ इन्हीं नागों के बीच उत्पन्न होता है।

९. सुपण्णसंयुत्त

इस संयुत्त में छियालीस सुत्त हैं जिनके नाम हैं –सुद्धिक ,हरन्ति, द्वयकारी, दुतियादिद्वयकारी (सुत्तत्तिक), अण्डजदानूपकार (सुत्तदसक), जलाबुजादिदानूपकार (सुत्तत्तिंसक)।

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि –

* चार सुपर्ण-योनियां हैं –

१. अंडज,

२. जलाबुज,

३. संस्वेदज और

४. औपपातिक।

* इनमें से अंडज सुपर्ण अंडज नागों को, जलाबुज सुपर्ण अंडज और जलाबुज नागों को, संस्वेदज सुपर्ण अंडज, जलाबुज और संस्वेदज नागों को, और औपपातिक सुपर्ण सभी नागों को हर ले जाते हैं।

* यदि काय, वाणी और मन से पाप एवं पुण्य –दोनों प्रकार के कर्म करने वाला व्यक्ति सुपर्णों की लंबी आयु, अभिरूपता और सुख बहुलता के बारे में सुनकर यह कामना करे कि मृत्यु के उपरांत मैं भी अमुक योनि वाले सुपर्णों के बीच उत्पन्न होऊं, तो ऐसा हो जाता है।

* उक्त प्रकार का व्यक्ति मरणोपरांत जिस किसी योनि के सुपर्णों के बीच उत्पन्न होने की कामना करता हुआ अन्न, पान, वस्त्रादि का दान देता है, वह उसी योनि के सुपर्णों के बीच उत्पन्न होता है; जैसे मरणोपरांत अंडज सुपर्णों के बीच उत्पन्न होने की कामना करने वाला व्यक्ति उक्त प्रकार का दान देता हुआ इन्हीं सुपर्णों के बीच उत्पन्न होता है।

१०. गन्धब्बकायसंयुत्त

इस संयुत्त में एक सौ बारह सुत्त हैं जिनके नाम हैं – सुद्धिक, सुचरित, मूलगन्धदाता, सारगन्धादिदाता(सुत्तनवक), मूलगन्धदानूपकार(सुत्तदसक), सारगन्धादिदानूपकार(सुत्तनवुतिक)।

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि –

* मूल, सार, फल्गु, त्वचा, पपड़ी, पत्र, पुष्प, फल, रस वा गंध की गंध में अधिवास करने वाले देव 'गंधर्वकायिक देव' कहलाते हैं।

* यदि काय, वाणी और मन से अच्छा आचरण करने वाला व्यक्ति गंधर्वकायिक देवों की लंबी आयु, अभिरूपता और सुख बहुलता के बारे में सुनकर यह कामना करे कि मृत्यु के उपरांत मैं भी इन देवों के बीच उत्पन्न होऊं, तो ऐसा हो जाता है।

* उक्त प्रकार का व्यक्ति जिस-जिस प्रकार की गंधों का दान करता है, वह मरणोपरांत उस-उस गंध में अधिवास करने वाले देवों के बीच उत्पन्न होता है; जैसे मूलगंधों का दान करने वाला व्यक्ति मूलगंध में अधिवास करने वाले देवों के बीच।

* यही बात अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला, गंध, विलेपन, शय्या, आवास तथा प्रदीप के दान पर भी लागू होती है। जिस कामना के साथ इन वस्तुओं का दान किया जाता है, मरणोपरांत तदनुरूप गंधर्वकायिक देवों के बीच उत्पत्ति होती है।

११. वलाहक संयुत्त

इस संयुत्त में सत्तावन सुत्त हैं जिनके नाम हैं – सुद्धिक, सुचरित, सीतवलाहक दानूपकार (सुत्तदसक), उण्हवलाहक दानूपकार (सुत्तचालीसक), सीतवलाहक, उण्हवलाहक, अब्भवलाहक, वातवलाहक, वस्सवलाहक।

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि –

* शीतवलाहक, उष्णवलाहक, अभ्रवलाहक, वातवलाहक तथा वर्षावलाहक देव 'वलाहककायिक देव' कहलाते हैं,

* यदि काय, वाणी और मन से अच्छा आचरण करने वाला व्यक्ति वलाहककायिकदेवों की लंबी आयु, अभिरूपता और सुखबहुलता के बारे में सुनकर यह कामना करे कि मृत्यु के उपरांत मैं भी इन देवों के बीच उत्पन्न होऊं, तो ऐसा हो जाता है।

* उक्त प्रकार का व्यक्ति मरणोपरांत जिन-किन्हीं वलाहककायिकदेवों के बीच उत्पन्न होने की कामना करता हुआ अन्न, पान, वस्त्रादि का दान देता है, वह उन-उन देवों के बीच उत्पन्न होता है; जैसे मरणोपरांत शीतवलाहक देवों के बीच उत्पन्न होने की कामना करने वाला व्यक्ति उक्त प्रकार का दान देता हुआ इन्हीं देवों के बीच उत्पन्न होता है।

* जब किन्हीं देवों को ऐसा होता है कि हम अपनी रति से रमण करें, तब उनके चित्त के विनिश्चय के अनुसार वैसी ही स्थिति बन जाती है; जैसे शीतवलाहक देवों को ऐसा होने पर कि हम अपनी रति से रमण करें, उनके चित्त की प्रणिधि के अनुसार शीत हो जाता है।

१२. वच्छगोत्तसंयुत्त

इस संयुत्त में पचपन सुत्त हैं जिनके नाम हैं – रूपअञ्ञाण, वेदनाअञ्ञाण, सञ्ञाअञ्ञाण, सङ्खारअञ्ञाण, विञ्ञाणअञ्ञाण, रूपअदस्सनादि (सुत्तपञ्चक), रूपअनभिसमयादि (सुत्तपञ्चक), रूपअननुबोधादि (सुत्तपञ्चक), रूपअप्पटिवेधादि (सुत्तपञ्चक), रूपअसल्लक्खणादि (सुत्तपञ्चक), रूपअनुपलक्खणादि (सुत्तपञ्चक), रूपअप्पच्चुपलक्खणादि (सुत्तपञ्चक), रूपअसमपेक्खणादि (सुत्तपञ्चक), रूपअप्पच्चुपेक्खणादि (सुत्तपञ्चक), रूपअप्पच्चक्खक म्मादि (सुत्तचतुक्क), विञ्ञाण – अप्पच्चक्खक म्मसुत्तं।

वच्छगोत्त परिव्राजक ने भगवान से यह जानना चाहा कि संसार में लोक ,जीव वा तथागत को लेक र जो अनेक प्रक ार की धारणाएं प्रचलित हैं, उनक ा क्या क ारण है?

भगवान ने क हा कि इनक ा क ारण होता है रूप, वेदना, संज्ञा, संस्क ार तथा विज्ञान, और इनके समुदय, निरोध तथा निरोध प्राप्त क राने वाले उपाय क ा अज्ञान । और ऐसे ही इनक ा अदर्शन, अनभिसमय (स्पष्ट ज्ञान क ा अभाव), अननुबोध, अप्रतिवेध, असल्लक्षण(अविवेक), अनुपलक्षण, अप्रत्युपलक्षण, असमप्रेक्षण, अप्रत्युपप्रेक्षण और अप्रत्यक्ष क र्म।

१३. झानसंयुत्त

इस संयुत्त में पचपन सुत्त हैं जिनके नाम हैं –समाधिमूलक –समापत्ति, ठिति, वुट्ठान, कल्लित, आरम्मण, गोचर, अभिनीहार,सक्कच्चकारी, सातच्चकारी, सप्पायकारी।

समापत्तिमूलक –ठिति, वुट्ठान, कल्लित, आरम्मण, गोचर, अभिनीहार, सक्कच्च,सातच्च, सप्पाय।

ठितिमूलक – वुट्ठानसुत्तादिअट्ठक ।

वुट्ठानमूलक – कल्लितसुत्तादिसत्तक ।

कल्लितमूलक – आरम्मणसुत्तादिछक्क ।

आरम्मणमूलक – गोचरसुत्तादिपञ्चक ।

गोचरमूलक – अभिनीहारसुत्तादिचतुक्क ।

अभिनीहारमूलक – सक्कच्चसुत्तादितिक ।

सक्कच्चमूलक – सातच्चकारीसुत्तादिदुक ।

सातच्चमूलक – सप्पायकारी।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि समाधि के क्षेत्र में चार प्रकार के ध्यानी होते हैं –

१. समाधि-कुशल, पर समापत्ति-कुशल नहीं;

२. समापत्ति-कुशल, पर समाधि-कुशल नहीं;

३. न समाधि-कुशल, न समापत्ति-कुशल; और

४. समाधि-कुशल भी, समापत्ति-कुशल भी।

इनमें अंतिम प्रकार का ध्यानी अग्र, श्रेष्ठ, उत्तम प्रकार का होता है।

भगवान ने इसी प्रकार से समाधि के क्षेत्र में ध्यानियों की भिन्न-भिन्न प्रकार की कुशलताओं, क्रियाशीलताओं की तुलना करते हुए निम्नांकित को अग्र, श्रेष्ठ, उत्तम प्रकार का होना बतलाया –

* समाधिकुशल तथा स्थितिकुशल, अथवा उत्थानकुशल, अथवा कल्यकुशल,

अथवा आलंबनकुशल, अथवा गोचरकुशल, अथवा अधिष्ठानकुशल, अथवा सावधानी बरतने वाला, अथवा सततकारी, अथवा सम्प्रेयकारी (उचितकारी)।

* समापत्तिकुशल तथा स्थितिकुशल, अथवा व्युत्थानकुशल (शेष पूर्ववत)।

* स्थितिकुशल तथा व्युत्थानकुशल, अथवा कल्यकुशल (शेष पूर्ववत)।

* व्युत्थानकुशल तथा कल्यकुशल, अथवा आलंबनकुशल (शेष पूर्ववत)।

* कल्यकुशल तथा आलंबनकुशल, अथवा गोचरकुशल (शेष पूर्ववत)।

* आलंबनकुशल तथा गोचरकुशल, अथवा अभिनीहारकुशल (शेष पूर्ववत)।

* गोचरकुशल तथा अभिनीहारकुशल, अथवा सत्कृत्यकारी (शेष पूर्ववत)।

* अभिनीहारकुशल तथा सत्कृत्यकारी, अथवा सातत्यकारी (शेष पूर्ववत)।

* सत्कृत्यकारी तथा सातत्यकारी, अथवा सप्रायकारी।

* सातत्यकारी तथा सप्रायकारी।

इन ध्यानियों की अग्रता, श्रेष्ठता, उत्तमता उसी प्रकार से है जैसे गाय से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी और घी से भी उसके मांड की अग्रता, श्रेष्ठता, उत्तमत्ता होती है।

सळायतनवग्ग

१. सळायतनसंयुत्त

यह संयुत्त उन्नीस वर्गों में विभाजित है जिनमें दो सौ अड़तालीस सुत्त हैं।

१. अनिच्च-वग्ग

[सुत्त – अज्झत्तानिच्च, अज्झत्तदुक्ख, अज्झत्तानत्त, बाहिरानिच्च, बाहिरदुक्ख, बाहिरानत्त, अज्झत्तानिच्चातीतानागत, अज्झत्तदुक्खातीतानागत, अज्झत्तानत्तातीतानागत, बाहिरानिच्चातीतानागत, बाहिरदुक्खातीतानागत, बाहिरानत्तातीतानागत।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को भीतरी आयतनों (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन) तथा बाहरी आयतनों (रूप, शब्द, गंध, रस, स्पृष्टव्य तथा धर्म) की अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता के बारे में उपदेश दिए हैं। इनमें से कोई भी आयतन 'न मेरा है, न मैं हूं, न मेरी आत्मा है' –यह यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जान लेना चाहिए। ऐसा करता हुआ आर्यश्रावक इनसे निर्वेद पा लेता है, निर्वेद पाने से विरक्त हो जाता है, विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है, और विमुक्त होने पर उसे ऐसा ज्ञान होता है –'मैं विमुक्त हो गया!' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।'

उन्होंने यह भी कहा कि अतीत काल और अनागत काल के ये सभी आयतन अनित्य, दुःख एवं अनात्म हैं; वर्तमान काल के आयतनों का तो कहना ही क्या है ? इन्हें ऐसा देख आर्यश्रावक अतीतकालीन आयतनों के प्रति अनपेक्ष होता है, अनागतकालीन आयतनों का अभिनंदन नहीं करता और वर्तमान आयतनों के निर्वेद, विराग और निरोध के लिए यत्नशील होता है।

२. यमक-वग्ग

[सुत्त – पठमपुब्बेसम्बोध, दुतियपुब्बेसम्बोध, पठमअस्सादपरियेसन, दुतियअस्सादपरियेसन, पठमनोचेअस्साद, दुतियनोचेअस्साद, पठमाभिनन्द, दुतियाभिनन्द, पठमदुक्खुप्पाद, दुतियदुक्खुप्पाद।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि मैंने भीतरी तथा बाहरी आयतनों के आस्वाद को आस्वाद के तौर पर, दोष को दोष के तौर पर और इनसे निःसरण (छुटकारे) को निःसरण के तौर पर यथार्थतः जान लेने के पश्चात ही अपने सम्यक संबुद्ध होने का दावा किया।

उन्होंने बतलाया कि यदि इन आयतनों में आस्वाद न होता, तो प्राणी इनमें अनुरक्त नहीं होते; यदि इनमें दोष नहीं होता, तो वे इनसे निर्वेद न पाते; और यदि इनसे निःसरण न होता, तो वे इनसे निःसृत न होते।

उन्होंने यह भी बतलाया कि आयतनों के प्रत्यय से उत्पन्न होने वाला सुख-सौमनस्य इनका आस्वाद होता है; इनकी अनित्यता, दुःखता तथा विपरिणामधर्मता इनका दोष होता है; और इनके प्रति होने वाले छंद-राग का प्रहाण इनसे होने वाला निःसरण (छुटकारा) है।

उनका यह भी कथन था कि आयतनों का अभिनंदन करना दुःख का ही अभिनंदन करना है। दुःख का अभिनंदन करना दुःख से मुक्त न होना है। आयतनों की उत्पत्ति, स्थिति, अभिनिवृत्ति, प्रादुर्भाव से ही दुःख की उत्पत्ति, रोगों की स्थिति तथा जरा-मरण का प्रादुर्भाव होता है। इनका निरोध, उपशमन, अस्तगमन दुःख का निरोध, रोगों का उपशमन तथा जरा-मरण का अस्तगमन होता है।

३. सब्ब-वग्ग

[सुत्त – सब्ब, पहान, अभिञ्ञापरिञ्ञापहान, पठमअपरिजानन, दुतियअपरिजानन, आदित्त, अद्धभूत, समुग्घातसारुप्प, पठमसमुग्घातसप्पाय, दुतियसमुग्घातसप्पाय।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि 'सर्व' होता है – चक्षु और रूप, श्रोत्र और शब्द, घ्राण और गंध, जिह्वा और रस, काय और स्प्रष्टव्य तथा मन और धर्म ।

उन्होंने यह भी बतलाया कि सर्व-प्रहाण के योग्य धर्म होते हैं – चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श, चक्षुसंस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना; और इसी प्रकार श्रोत्र, शब्द; घ्राण, गंध; जिह्वा, रस; काय, स्प्रष्टव्य; तथा मन, धर्म से आरंभ कर इनके आगे के धर्म।

भगवान ने कहा कि 'सर्व' को पूरी तरह से जाने-बूझे बिना, इससे विरक्त हुए बिना और बिना इसे छोड़े दु:खों से छुटकारा पा लेना संभव नहीं है। पर इसे पूरी तरह से जानने-बूझने, इससे विरक्त हो जाने और इसको छोड़ देने से दु:खों से छुटकारा पा लेना संभव होता है।

उन्होंने यह भी कहा कि 'सर्व' जल रहा है, 'सर्व' अंधा है। फिर यह भी समझाया कि क्या जल रहा है, क्या अंधा है और किससे जल रहा है, किससे अंधा है? इनसे निर्वेद प्राप्त कर आर्यश्रावक विरक्त हो जाता है, विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है, और विमुक्त होने पर उसे ऐसा ज्ञान होता है – 'मैं विमुक्त हो गया!' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं'।

इसी संदर्भ में भगवान ने सारी मान्यताओं पर कुठाराघात करने वाले मार्ग को भी प्रज्ञप्त किया।

४. जातिधम्म-वग्ग

[सुत्त – जातिधम्म, जराधम्म, व्याधिधम्म, मरणधम्म, सोकधम्म, सङ्किलेसिकधम्म, खयधम्म, वयधम्म, समुदयधम्म, निरोधधम्म।]

इन सुत्तों में भगवान ने चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श और चक्षुसंस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना को जातिधर्मा, जराधर्मा, व्याधिधर्मा, मरणधर्मा, शोकधर्मा, संक्लेशिकधर्मा, क्षयधर्मा, व्ययधर्मा, समुदयधर्मा तथा निरोधधर्मा बतलाया है; और ऐसे ही श्रोत्र, शब्द, श्रोत्रविज्ञानादि को भी। उन्होंने यह भी कहा है कि इन्हें इस प्रकार देखने वाला आर्यश्रावक विमुक्त हो जाता है और प्रज्ञापूर्वक यह जान लेता है कि यह मेरा अंतिम जन्म है।

५. सब्बअनिच्च-वग्ग

[सुत्त – अनिच्च, दुक्ख, अनत्त, अभिञ्ञेय्य, परिञ्ञेय, पहातब्ब, सच्छिकातब्ब,अभिञ्ञापरिञ्ञेय्य, उपद्दुत, उपस्सट्ठ।]

इन सुत्तों में भगवान ने चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श और चक्षुसंस्पर्श से

उत्पन्न होने वाली वेदना को अनित्य, दुःख, अनात्म, अभिज्ञेय, परिज्ञेय, प्रहातव्य, साक्षात्करणीय, अभिज्ञा से परिज्ञेय, उपद्रुत और दमित बतलाया है; और ऐसे ही श्रोत्र, शब्द, श्रोत्रविज्ञानादि को भी। उन्होंने यह भी कहा है कि इन्हें इस प्रकार देखने वाला आर्यश्रावक विमुक्त हो जाता है और प्रज्ञापूर्वक यह जान लेता है कि यह मेरा अंतिम जन्म है।

६. अविज्जा-वग्ग

[सुत्त – अविज्जापहान, संयोजनपहान, संयोजनसमुग्घात,
आसवपहान, आसवसमुग्घात, अनुसयपहान, अनुसयसमुग्घात,
सब्बुपादानपरिञ्ञा, पठमसब्बुपादानपरियादान,
दुतियसब्बुपादानपरियादान।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श और चक्षुसंस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना को अनित्य जान, देख लेने से अविद्या दूर होती है और विद्या उत्पन्न होती है। यही बात श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन और इनके आगे के धर्मों को लेकर भी होती है। इसी अनित्यता को जानने, देखने से संयोजन दूर होते हैं। इनकी अनात्मता को जानने, देखने से संयोजन उखड़ जाते हैं। आस्रव और अनुशय भी इसी प्रकार इनकी अनित्यता, अनात्मता को जानने, देखने से दूर होते, उखड़ते हैं।

भगवान ने उन्हें सभी उपादानों की परिज्ञा और पर्यादान के बारे में भी उपदेश दिया।

७. मिगजाल-वग्ग

[सुत्त – पठममिगजाल, दुतियमिगजाल, पठमसमिद्धिमारपञ्हा,
समिद्धिसत्तपञ्हा, समिद्धिदुक्खपञ्हा, समिद्धिलोकपञ्हा,
उपसेनआसीविस, उपवाणसन्दिट्ठिक, पठमछफस्सायतन,
दुतियछफस्सायतन, ततियछफस्सायतन।]

भगवान ने आयुष्मान मिगजाल को बतलाया कि तृष्णा के जाल में फँसा हुआ भिक्षु 'सद्वितीयविहारी' कहलाता है और तृष्णा तथा संयोजन से मुक्त हुआ 'एकविहारी'। नगर से दूर किसी शांत वन में रहने पर भी पहले प्रकार का भिक्षु 'सद्वितीयविहारी' ही कहलाता है, क्योंकि द्वितीय के समान तृष्णा उसके साथ लगी रहती है। जनाकीर्ण ग्राम के मध्य रहने पर भी दूसरे प्रकार का भिक्षु 'एकविहारी' ही कहलाता है, क्योंकि द्वितीय के समान उसके साथ रहने वाली

तृष्णा प्रहीण हो चुकी होती है। भगवान ने उन्हें यह भी समझाया कि तृष्णा के समुदय से दुःख का समुदय और इसके निरोध से दुःख का निरोध हो जाता है। उनके उपदेश के अनुरूप एकांत में, अकेले, अप्रमत्त हो, प्रयत्नपूर्वक ध्यानाभ्यास में लगे रहकर आयुष्मान मिगजाल ने शीघ्र ही अरहंत अवस्था का साक्षात्कार कर लिया।

आयुष्मान समिद्धि ने भगवान से यह जानना चाहा कि 'मार', 'सत्त्व', 'दुःख', 'लोक' से क्या अभिप्राय होता है? इस पर उन्होंने कहा कि जहां चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुर्विज्ञान से जानने योग्य धर्म होते हैं, वहीं ये होते हैं; और इसी प्रकार जहां श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन को लेकर ऐसे ही आगे के धर्म होते हैं, वहां ये होते हैं।

आयुष्मान उपवाण ने भगवान से जानना चाहा कि 'सांदृष्टिक धर्म' से क्या तात्पर्य होता है? इस पर उन्होंने समझाया कि यदि भीतरी आयतनों से बाहरी आयतनों को ग्रहण कर, बाहरी आयतन और उसके प्रति भीतर-ही-भीतर राग का होना प्रज्ञा से पता चलता हो, अथवा प्रज्ञा से यह पता चलता हो कि बाहरी आयतन तो है परंतु भीतर-ही-भीतर इसके प्रति राग नहीं है, तो इससे धर्म 'सांदृष्टिक' हो जाता है।

एक प्रकरण में बतलाया गया है कि आयुष्मान उपसेन ने लंबे समय से अपने अहंकार, ममकार, अभिमान को इस सीमा तक जड़ से उखाड़ दिया था कि उन्हें ऐसा लगता ही न था कि अमुक इंद्रिय मैं हूं, या मेरी है। इसीलिए सांप से डँसे जाने के पश्चात प्राणांत होते ही उनका शरीर मुट्ठी-भर भूसे के समान बिखर गया।

अंतिम तीन सुत्तों में किसी न किसी भिक्षु ने यह स्वीकारोक्ति की है कि मैं छः स्पर्शायतनों के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष तथा इनसे निःसरण (छुटकारे) को यथार्थतः नहीं जानता हूं। इस पर भगवान ने इन भिक्षुओं का समुचित मार्गदर्शन किया।

८. गिलान-वग्ग

[सुत्त – पठमगिलान, दुतियगिलान, राधअनिच्च, राधदुक्ख, राधअनत्त, पठमअविज्जापहान, दुतियअविज्जापहान, सम्बहुलभिक्खु, लोकपञ्हा, फग्गुनपञ्हा।]

भगवान ने एक भिक्षु के इस कथन को सत्य ठहराया कि उन्होंने राग से

छुटकारा पाने के लिए धर्मोपदेश किया है। उन्होंने एक अन्य भिक्षु के इस कथन को भी सत्य बतलाया कि उनका धर्मोपदेश उपादानरहित निर्वाण की प्राप्ति के लिए है।

उन्होंने आयुष्मान राध को बतलाया कि चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श और इस संस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना अनित्य, दु:ख एवं अनात्म है। ऐसे ही अनित्य, दु:ख एवं अनात्म हैं श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन और इनके आगे के, इनसे संबंधित, इसी प्रकार के धर्म। अनित्य, दु:ख और अनात्म के प्रति लगी हुई इच्छा को हटाना चाहिए।

उन्होंने यह भी बतलाया कि ऊपर उल्लेख-प्राप्त धर्मों की अनित्यता जान, देख लेने वाले की अविद्या नष्ट होती है और विद्या उत्पन्न होती है। सब धर्मों को अभिज्ञात, परिज्ञात कर और सब निमित्तों तथा उपरोक्त धर्मों को ज्ञानपूर्वक देख लेने से भी अविद्या नष्ट और विद्या उत्पन्न होती है।

भगवान ने इस कथन को उचित बतलाया कि दु:ख को ठीक से समझ लेने के लिए मेरे शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। और यह दु:ख है – चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श और इस संस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना, और ऐसे ही श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन और इनके आगे के, इनसे संबंधित, इसी प्रकार के धर्म।

भगवान ने 'लोक' शब्द का निर्वचन किया – 'जो लुज्जित होता, अर्थात उखड़ता-पखड़ता है'। ऊपर उल्लेख-प्राप्त धर्म लुज्जित होते हैं, अत: 'लोक' हैं। उन्होंने यह भी प्रज्ञप्त किया कि ऐसा कोई भीतरी आयतन नहीं है जिससे अतीतकाल में परिनिर्वाण-लाभ किये छिन्नप्रपंच बुद्ध को जाना जा सके।

९. छन्न-वग्ग

[सुत्त – पलोकधम्म, सुञ्ञतलोक, सङ्खित्तधम्म, छन्न, पुण्ण,
बाहिय, पठमएजा, दुतियएजा, पठमद्वय, दुतियद्वय।]

भगवान ने आयुष्मान आनन्द को बतलाया कि प्रलोकधर्मा (नाशवान) को आर्यविनय में 'लोक' कहा जाता है। प्रलोकधर्मा हैं चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श, इस संस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना; और ऐसे ही श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन और इनसे आगे के, इनसे संबंधित, इसी प्रकार के धर्म। चूंकि ये सभी धर्म आत्मा या आत्मीय से शून्य होते हैं, इस कारणवश लोक 'शून्य' कहलाता है।

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महाचुन्द रोगपीड़ित आयुष्मान छन्न का कुशल-क्षेम पूछने के लिए उनके पास गये। आयुष्मान छन्न ने अत्यंत दुःखद वेदनाओं का होना बतलाया और कहा कि मैं अपने आप को शस्त्र मार लूंगा, मैं जीना नहीं चाहता। यह सुनकर आयुष्मान सारिपुत्त ने उन्हें शस्त्रघात न करने के लिए कहा, परंतु वे बोले –"छन्न भिक्षु निर्दोष (पुनर्जन्म-रहित) शस्त्रघात करेंगे – आप इसे ऐसे धारण करें।"

तत्पश्चात आयुष्मान सारिपुत्त द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में आयुष्मान छन्न ने कहा –"मैं चक्षु, चक्षुर्विज्ञान और चक्षुर्विज्ञान द्वारा जानने योग्य धर्मों को – 'यह मेरा नहीं है', 'यह मैं नहीं हूं', 'यह मेरी आत्मा नहीं है' –ऐसा समझता हूं। और ऐसे ही श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन, इनके अपने-अपने विज्ञानों और इन विज्ञानों द्वारा जानने योग्य धर्मों के बारे में भी।

"और ऐसा समझने का कारण यह है कि मैं इन इंद्रियों, इनके अपने-अपने विज्ञानों और इन विज्ञानों द्वारा जानने योग्य धर्मों में निरोध को देखता हूं।"

आयुष्मान सारिपुत्त और आयुष्मान महाचुन्द के वहां से चले जाने के थोड़े ही समय पश्चात आयुष्मान छन्न ने शस्त्रघात कर लिया। भगवान से उनकी गति के बारे में पूछे जाने पर उन्होंने कहा –"अनुपवर्ज्य हो, अर्थात निर्दोष रह कर ही, छन्न भिक्षु ने अपने आप को शस्त्र मारा – इस प्रकार इसे धारण करो।"

एक बार आयुष्मान पुण्ण ने भगवान से प्रार्थना की कि मुझे संक्षेप में धर्मोपदेश करें जिसे सुनकर मैं एकाकी, एकांत-सेवी, अप्रमादी, उद्योगी, संयमी होकर विहार करूं। इस पर उन्होंने कहा कि इंद्रियों से जानने योग्य विषयों का अभिनंदन करने से नंदी (तृष्णा) उत्पन्न होती है। नंदी के समुदय से दुःख का समुदय होता है। इंद्रियों से जानने योग्य विषयों का अभिनंदन न करने से नंदी निरुद्ध हो जाती है। नंदी के निरोध से दुःख का निरोध हो जाता है।

फिर भगवान ने उनसे पूछ लिया कि मेरे इस संक्षिप्त धर्मोपदेश को सुनकर कौन से जनपद में विहार करोगे? इस पर उन्होंने सुनापरान्त जनपद का नाम लिया।

भगवान ने बतलाया कि वहां के लोग तो बहुत चंड स्वभाव के होते हैं। परंतु जब आयुष्मान पुण्ण ने अपनी सहिष्णुता की पराकाष्ठा का परिचय दिया, तब भगवान ने उन्हें उपरोक्त जनपद में वास करने के योग्य बतलाया। वहां विहार करते हुए समय पकने पर उन्होंने परिनिर्वाण-लाभ किया।

आयुष्मान बाहिय ने भी भगवान से संक्षिप्त धर्मोपदेश सुन और एकाकी, एकांत-सेवी, अप्रमादी, उद्योगी, संयमी हो देशनानुसार विहार करते हुए अरहंत अवस्था का साक्षात्कार कर लिया।

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि एज (चित्त का स्पंदन) रोग, दुर्गंध, कांटा है। तथागत अनेज (निष्कंटक) हो विहरते हैं। यदि तुम भी चाहो, तो ऐसा कर सकते हो। इसके लिए उन्होंने लोक में कुछ भी उपादान न करने पर बल दिया।

उन्होंने भिक्षुओं को 'दो' का उपदेश दिया। 'दो' क्या? चक्षु एवं रूप; श्रोत्र एवं शब्द; घ्राण एवं गंध; जिह्वा एवं रस; काय एवं स्पर्श; और मन एवं धर्म। उन्होंने यह भी बतलाया कि 'दो' के प्रत्यय से 'विज्ञान' कैसे उत्पन्न होता है।

१०. सळ-वग्ग

[सुत्त – अदन्तअगुत्त, मालुक्यपुत्त, परिहानधम्म, पमादविहारी, संवर, समाधि, पटिसल्लान, पठमनतुम्हाक, दुतियनतुम्हाक, उदक।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि ये छः स्पर्शायतन अदान्त रहने पर दुःख देते हैं – चक्षुस्पर्शायतन, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन। और सुदान्त होने पर यही छः सुख देते हैं। जब मन इन छः में सुभावित होता है, तब कहीं भी स्पर्श होने से कंपायमान नहीं होता है।

उन्होंने आयुष्मान मालुक्यपुत्र को संक्षेप में उपदेश दिया कि जब देखे, सुने, सूंघे, चखे, छुए और जाने जाने योग्य धर्मों में देखने पर देखना-मात्र रहता है, सुनने पर सुनना-मात्र, सूंघने पर सूंघना-मात्र, चखने पर चखना-मात्र, छूने पर छूना-मात्र और जानने पर जानना-मात्र, तब उनमें कोई सक्त नहीं होता, सक्त नहीं होने से उसके पीछे नहीं पड़ता, और उनके पीछे नहीं पड़ने से न तो इहलोक में, न परलोक में और न कहीं बीच में ठहरता है। यही दुःख का अंत होता है। आयुष्मान मालुक्य ने इसका विस्तार से अर्थ कहा, जिसे भगवान ने ठीक बतलाया। तदुपरांत उन्होंने एकाकी, एकांत-सेवी, अप्रमादी, उद्योगी, संयमी हो – भगवान की देशनानुसार विहार करते हुए अरहंत अवस्था का साक्षात्कार कर लिया।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि –

* परिहानधर्म कैसे होता है, और अपरिहानधर्म कैसे?

* छः अभिभावित आयतन कौन से हैं?

* प्रमादविहारी कैसे होता है, और अप्रमादविहारी कैसे?

* असंवर कैसे होता है, और संवर कैसे?

उन्होंने उनको समाधि तथा प्रतिसंलयन का अभ्यास करने के लिए कहा, क्योंकि इनसे चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान, चक्षुसंस्पर्श और इस संस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदना की अनित्यता का यथार्थ ज्ञान होता है, और ऐसे ही श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन और इनके आगे के, इनसे संबंधित, इसी प्रकार के धर्मों की अनित्यता का भी।

भगवान ने भिक्षुओं को सीख दी कि ऊपर उल्लेख-प्राप्त धर्म तुम्हारे नहीं हैं, अतः उनको छोड़ दो। उनको छोड़ देना हित-सुख का कारण होता है।

उन्होंने बतलाया कि उद्दक रामपुत्त कहा करता था कि मैं वेदगू सर्वजित हूं, मैंने दुःख के मूल को खोद दिया है, जबकि वह न तो वेदगू (वेदनाओं का जानकार) था, न सर्वजित और दुःखमूल उससे चिपटे ही हुए थे। वस्तुतः कोई भिक्षु ही कह सकता है कि मैं वेदगू, सर्वजित हूं, मैंने दुःख के मूल को खोद दिया है। फिर उन्होंने समझाया कि छः स्पर्शायतनों के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष तथा इनसे निःसरण को यथार्थतः जानने वाला वेदगू कहलाता है, इन्हें इस प्रकार जानकर उपादानरहित हो विमुक्त हो जाने वाला सर्वजित कहलाता है, चार महाभूतों से बना हुआ शरीर दुःख है और तृष्णा दुःख-मूल है। जब भिक्षु की तृष्णा प्रहीण हो जाती है – उच्छिन्नमूल, सिर-कटे ताड़ के समान – तब यह कहा जा सकता है कि उसने दुःख के मूल को खोद दिया है।

११. योगक्खेमि-वग्ग

[सुत्त – योगक्खेमि, उपादाय, दुक्खसमुदय, लोकसमुदय, सेय्योहमस्मि, संयोजनिय, उपादानिय, अज्झतिकायतनपरिजानन, बाहिरायतनपरिजानन, उपस्सुति।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन द्वारा विज्ञेय रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म बड़े लुभावने होते हैं। तथागत ने उनके प्रहाण के लिए योग किया जिसके फलस्वरूप ये उच्छिन्नमूल, सिर-कटे ताड़ के समान, फिर उगने के अयोग्य हो गये। इस प्रकार का योग करने के कारण तथागत 'योगक्षेमी' कहलाते हैं।

उन्होंने यह भी बतलाया कि चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन के होने से, इनके प्रति उपादान करने से भीतरी सुख-दुःख होता है। इनके प्रति अभिनिवेश करने से बड़ा, छोटा या बराबर होने का भाव भी जागने लगता है। पर चक्षु, श्रोत्रादि की अनित्यता, दुःखता या अनात्मता देख लेने से आर्यश्रावक इनसे निर्वेद पा लेता है, निर्वेद पाने से विरक्त हो जाता है, विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है और विमुक्त होने से उसे ज्ञान होता है – 'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।

भगवान ने बतलाया कि दुःख की उत्पत्ति और विनाश क्या होते हैं? दुःख की उत्पत्ति तब होती है जब चक्षु तथा रूप, श्रोत्र तथा शब्द, घ्राण तथा गंध, जिह्वा तथा रस, काय तथा स्प्रष्टव्य, और मन तथा धर्म के प्रत्ययों से चक्षु, श्रोत्रादि का अपना-अपना विज्ञान उत्पन्न होता है; तीनों का मिलना स्पर्श होता है; स्पर्श के प्रत्यय से वेदना और वेदना के प्रत्यय से तृष्णा होती है। जब इस तृष्णा का पूर्णतया निरोध हो जाता है तब जन्म, मरणादि सारे दुःख-समूह का विनाश हो जाता है। इसी को उन्होंने लोक की उत्पत्ति और विनाश भी कहा।

भगवान ने संयोजनीय धर्मों तथा संयोजन, और उपादानीय धर्मों तथा उपादान पर भी प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि चक्षु, श्रोत्रादि संयोजनीय अथवा उपादानीय धर्म हैं, और इनके प्रति होने वाला छंद-राग संयोजन अथवा उपादान।

उन्होंने यह भी व्यक्त किया कि चक्षु, श्रोत्रादि भीतरी आयतनों और रूप, शब्दादि बाहरी आयतनों को बिना जाने, बिना समझे, उनके प्रति राग को दूर किये बिना और उन्हें छोड़े बिना दुःखों का क्षय कर पाना संभव नहीं है।

१२. लोककामगुण-वग्ग

[सुत्त – पठममारपास, दुतियमारपास, लोकन्तगमन, कामगुण, सक्कपञ्ह, पञ्चसिख, सारिपुत्तसद्धिविहारिक, राहुलोवाद, संयोजनियधम्म, उपादानियधम्म।]

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन द्वारा विज्ञेय रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म लुभावने होते हैं। इनका अभिनंदन करने वाला भिक्षु मार के फंदे में फँस जाता है। इनका अभिनंदन न करने वाला मार के फंदे से बचा रहता है।

एक समय भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि मैं यह नहीं कहता कि कोई चल-चल कर लोक के अंत को जान, देख अथवा पा सकता है। मैं ऐसा भी नहीं कहता कि बिना लोक का अंत पाए दुःख का अंत हो सकता है। इतना भर कह कर वे आसन से उठकर विहार के भीतर चले गये। भिक्षुओं के अनुरोध पर आयुष्मान आनन्द ने इस संक्षिप्त उपदेश का आशय स्पष्ट किया, जिसे बाद में भगवान ने संगत बतलाया।

ऐसे ही एक अन्य अवसर पर भी आयुष्मान आनन्द ने भगवान द्वारा भिक्षुओं को किये गये एक संक्षिप्त उपदेश का तात्पर्य उन्हें समझाया। भगवान ने उन्हें कहा था कि पूर्वकाल में अनुभव किये गये पांच कामगुणों के निरुद्ध हो जाने पर भी वहां तुम्हारा चित्त बहुत जाता होगा, अतः उनके प्रति अप्रमत्त और स्मृतिमान हो अपने चित्त की रक्षा करो। उन आयतनों को भी जानो जहां भीतरी आयतन निरुद्ध हो जाते हैं और बाहरी आयतनों की संज्ञा भी रहती नहीं है।

एक समय देवेंद्र सक्क (शक्र) तथा अन्य समय गंधर्वपुत्र पञ्चसिख ने भगवान से इसका कारण जानना चाहा कि कुछ लोग इसी जन्म में परिनिर्वाण-लाभ कर लेते हैं, जबकि अन्य लोग ऐसा नहीं कर पाते हैं। भगवान ने कहा कि चक्षु, श्रोत्रादि भीतरी आयतनों द्वारा विज्ञेय लुभावने रूप, शब्दादि बाहरी आयतनों का अभिनंदन करने से उनमें ठहरा हुआ विज्ञान उपादानकारक हो जाता है। ऐसा होने पर परिनिर्वाण-लाभ नहीं होता है। अभिनंदन न करने से विज्ञान उपादानरहित होता है, जो परिनिर्वाण-लाभ का कारण बनता है।

आयुष्मान सारिपुत्त ने एक भिक्षु को समझाया कि कोई इंद्रियों में संयत, भोजन का मात्रज्ञ और जागरणशील कैसे होता है।

भगवान ने आयुष्मान राहुल को इंद्रियों, उनके विषयों, उनके अपने-अपने विज्ञानों, उनके संस्पर्शों, इन संस्पर्शों के कारण उत्पन्न वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान विषयक ज्ञान की अनित्यता, दुःखता तथा अनात्मता के बारे में समझाया। फिर यह कहा कि इस प्रकार देखने से आर्यश्रावक इन सभी से निर्वेद पा लेता है। निर्वेद पाने से विरक्त हो जाता है, विरक्त होने से विमुक्त और विमुक्त होने पर उसे ज्ञान होता है – 'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।'

तभी आयुष्मान राहुल का चित्त उपादान न कर, आस्रवों से मुक्त हो गया। उस समय वहां पर विद्यमान कई लाख देवताओं को विरज, विमल धर्मचक्षु –

'जो कुछ उत्पत्ति स्वभाव वाला है, वह सब निरोध स्वभाव वाला भी है' – उत्पन्न हुआ।

१३. गहपति-वग्ग

[सुत्त – वेसाली, वज्जी, नाळन्द, भारद्वाज, सोण, घोसित, हालिद्दिकानि, नकुलपितु, लोहिच्च, वेरहच्चानि।]

इस वर्ग के पांच सुत्तों में गृहपतियों को भगवान ने बतलाया है कि किस कारणवश कुछ लोग इसी जन्म में परिनिर्वाण-लाभ कर लेते हैं, जबकि अन्य लोग ऐसा नहीं कर पाते हैं।

आयुष्मान पिण्डोल भारद्वाज ने राजा उदेन को बतलाया कि किस कारणवश नयी उम्र वाले भिक्षु सांसारिक दुःखों का परित्याग कर जीवनपर्यंत परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और इस लंबी राह पर आ जाते हैं।

आयुष्मान आनन्द ने गृहपति घोसित को बतलाया कि भगवान ने धातुनानात्व का कथन किस प्रकार किया है। आयुष्मान महाकच्चान ने गृहपति हालिद्दिकानि को स्पष्ट किया कि कैसे धातुनानात्व के प्रत्यय से स्पर्शनानात्व, और स्पर्शनानात्व के प्रत्यय से वेदनानानात्व, उत्पन्न होता है।

आयुष्मान महाकच्चान ने लोहिच्च ब्राह्मण को समझाया कि कोई व्यक्ति इंद्रियों में कैसे संयत और कैसे अ-संयत होता है। इंद्रियों में संयत रहने वाला व्यक्ति इंद्रियों से अपने-अपने विषयों को ग्रहण कर उनके प्रति न तो लगाव करता है, न दुराव। वह जागरूक रह, अप्रामाण्य चित्त वाला होकर विहार करता है। वह चेतोविमुक्ति और प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः जानता है। इससे उत्पन्न हुए पापमय अकुशल धर्म पूर्णतया निरुद्ध हो जाते हैं। इंद्रियों में अ-संयत रहने वाले व्यक्ति के बारे में इससे सब कुछ उल्टा ही होता है।

आयुष्मान उदायी से वेरहच्चानि गोत्र की ब्राह्मणी ने यह जानना चाहा कि किसके होने से अर्हत लोग सुख-दुःख का होना बतलाते हैं, और किसके नहीं होने से सुख-दुःख का नहीं होना बतलाते हैं। इस पर उन्होंने उसे बतलाया कि चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन के होने से वे सुख-दुःख का होना बतलाते हैं, और इनके नहीं होने से सुख-दुःख का नहीं होना बतलाते हैं। यह सुनकर भावविभोर हो वह ब्राह्मणी भगवान की शरण में चली गयी, और धर्म तथा भिक्षुसंघ की भी।

१४. देवदह-वग्ग

[सुत्त – देवदह, खण, पठमरूपाराम, दुतियरूपाराम, पठमनतुम्हाक , दुतियनतुम्हाक , अज्झत्तानिच्चहेतु, अज्झत्तदुक्खहेतु, अज्झत्तानत्तहेतु, बाहिरानिच्चहेतु, बाहिरदुक्खहेतु, बाहिरानत्तहेतु।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि अरहंत-अवस्था-प्राप्त व्यक्तियों को मैं छः स्पर्शायतनों में अप्रमाद करने के लिए नहीं कहता, क्योंकि अप्रमाद को जीत लेने के कारण वे आगे प्रमाद नहीं कर सकते। छः स्पर्शायतनों में अप्रमाद करने के लिए मेरा उपदेश शैक्ष्यों के लिए होता है, क्योंकि वे अभी निर्वाण की खोज में लगे होते हैं।

उन्होंने छः स्पर्शायतनिक नाम के नरक की चर्चा करते हुए कहा कि वहां जो कोई भीतरी आयतनों से बाहरी आयतनों को ग्रहण करता है, वह अनिष्ट ही ग्रहण करता है। छः स्पर्शायतनिक नाम के स्वर्ग की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि वहां जो कोई भीतरी आयतनों से बाहरी आयतनों को ग्रहण करता है, वह इष्ट ही ग्रहण करता है। उन्होंने व्यक्त किया कि ब्रह्मचर्यवास का अवसर मिलना भिक्षुओं के लिए बड़ा हितप्रद होता है।

भगवान ने कहा कि देवता और मनुष्य रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य तथा धर्म में रत हो इनमें प्रमुदित रहते हैं। जब ये बदलते वा नष्ट होते हैं, तब वे दुःखी होते हैं। तथागत इनके समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष और इनसे निःसरण (छूटने के उपाय) को यथार्थतः जानकर इनमें रत नहीं होते हैं। इसके फलस्वरूप जब ये बदलते वा नष्ट होते हैं, तब भी वे सुखपूर्वक विहार करते रहते हैं। वस्तुतः, जिसे दूसरे लोग सुख कहते हैं, आर्यजन उसे दुःख कहते हैं, और जिसे दूसरे लोग दुःख कहते हैं, आर्यजन उसे सुख कहते हैं।

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि जो तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ दो। उसे छोड़ देना तुम्हारे हित, सुख के लिए होगा। जो तुम्हारे नहीं हैं, वे हैं – चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन।

भगवान ने भिक्षुओं को यह भी बतलाया कि चाहे भीतरी आयतन हों या बाहरी, उनकी उत्पत्ति का हेतु अनित्य, दुःख और अनात्म ही होता है। ऐसी दशा में ये आयतन कैसे नित्य, सुख और आत्म हो सकते हैं? जो इन्हें इस प्रकार देख लेता है, वह इनसे निर्वेद पा लेता है, निर्वेद पाने से विरक्त हो जाता है, विरक्त

होने से विमुक्त हो जाता है, और विमुक्त होने पर उसे ऐसा ज्ञान होता है –'मैं विमुक्त हो गया!' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं'।

१५. नवपुराण-वग्ग

[सुत्त – कम्मनिरोध, अनिच्चनिब्बानसप्पाय, दुक्खनिब्बानसप्पाय, अनत्तनिब्बानसप्पाय, निब्बानसप्पायपटिपदा, अन्तेवासिक, किमत्थियब्रह्मचरिय, अत्थिनुखोपरियाय, इंद्रियसम्पन्न, धम्मकथिक पुच्छा।]

भगवान ने भिक्षुओं को नये-पुराने कर्मों, कर्म-निरोध और कर्म-निरोध कराने वाले मार्ग का उपदेश दिया। उन्होंने उन्हें निर्वाण-प्राप्ति के मार्ग को भी उपदेशा।

उन्होंने भिक्षुओं को यह भी बतलाया कि ब्रह्मचर्य का पालन 'बिना अंतेवासी' और 'बिना आचार्य के' किया जाता है। उन्होंने इसका आशय भी स्पष्ट किया कि भीतरी आयतनों से बाहरी आयतनों के संपर्क में आकर यदि किसी को बंधनकारक पापपूर्ण, अकुशल धर्म उत्पन्न नहीं होते हैं, तो ये अकुशल धर्म उसके अंतःकरण में जाकर नहीं बसते हैं, जिससे वह व्यक्ति 'बिना अंतेवासी' कहलाता है। चूंकि ये पापपूर्ण अकुशल धर्म उसके साथ समुदाचरण नहीं करते हैं, अतः वह 'बिना आचार्य वाला' कहलाता है। ऐसा व्यक्ति सुखपूर्वक विहार करता है।

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि यदि अन्य मतावलंबी यह जानना चाहें कि किस उद्देश्य से श्रमण गौतम के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है, तो उन्हें कहना चाहिए कि दुःख की परिज्ञा के लिए ऐसा किया जाता है। फिर यह भी समझाया कि वह कौनसा दुःख है जिसकी परिज्ञा के लिए ऐसा करते हैं।

भगवान ने यह भी समझाया कि कोई व्यक्ति 'इंद्रिय-संपन्न' कैसे होता है, और 'धर्मकथिक' कैसे?

१६. नन्दिक्खय-वग्ग

[सुत्त – अज्झत्तनन्दिक्खय, बाहिरनन्दिक्खय, अज्झत्तअनिच्चनन्दिक्खय, बाहिरअनिच्चनन्दिक्खय, जीवकम्बवनसमाधि, जीवकम्बवनपटिसल्लान, कोट्ठिकअनिच्च, कोट्ठिकदुक्ख, कोट्ठिकअनत्त, मिच्छादिट्ठिपहान, सक्कायदिट्ठिपहान, अत्तानुदिट्ठिपहान।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि भीतरी तथा बाहरी आयतन अनित्य हैं और इन्हें अनित्य के तौर पर ग्रहण करना 'सम्यक दृष्टि' कहलाता है। कोई व्यक्ति सम्यक दृष्टि होने से निर्वेद उत्पन्न होता है। तृष्णा के क्षय से राग का क्षय और राग के क्षय से तृष्णा का क्षय होता है। तृष्णा और राग के क्षय से चित्त विमुक्त हो जाता है।

उन्होंने भीतरी तथा बाहरी आयतनों का ठीक से चिंतन करने और इनके अनित्य स्वभाव को यथार्थतः जानने पर भी बल दिया।

एक समय भगवान ने भिक्षुओं को समाधि की भावना करने के लिए कहा, क्योंकि इससे भीतरी और बाहरी आयतनों की अनित्यता का यथार्थ ज्ञान हो जाता है । और ऐसे ही भीतरी आयतनों के विज्ञान, उनके संस्पर्श और उनके संस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदनाओं की अनित्यता का भी। एकांत-चिंतन में लगे हुए भिक्षु को भी ऐसा ज्ञान हो जाता है।

भगवान ने आयुष्मान महाकोट्ठिक को उपदेश दिया कि जो कुछ अनित्य, दुःख वा अनात्म है उससे अपनी इच्छा हटाओ। फिर यह भी समझाया कि अनित्य, दुःख वा अनात्म हैं भीतरी एवं बाहरी आयतन, भीतरी आयतनों के विज्ञान, उनके संस्पर्श और उनके संस्पर्श से उत्पन्न होने वाली वेदनाएं। इनकी अनित्यता को जानने, देखने से मिथ्यादृष्टि दूर होती है। इनकी दुःखता को जानने, देखने से सत्कायदृष्टि नष्ट होती है। इनकी अनात्मता को जानने, देखने से आत्मानुदृष्टि जाती रहती है।

१७. सट्ठि-पेय्याल

[सुत्त – अज्झत्तअनिच्चछन्द, अज्झत्तअनिच्चराग, अज्झत्तअनिच्चछन्दराग, दुक्खछन्दादि, अनत्तछन्दादि, बाहिरानिच्चछन्दादि, बाहिरदुक्खछन्दादि, बाहिरानत्तछन्दादि, अज्झत्तातीतानिच्च, अज्झत्तानागतानिच्च, अज्झत्तपच्चुप्पन्नानिच्च, अज्झत्तातीतादिदुक्ख, अज्झत्तातीतादिअनत्त, बाहिरातीतादिअनिच्च, बाहिरातीतादिदुक्ख, बाहिरातीतादिअनत्त, अज्झत्तातीतयदनिच्च, अज्झत्तानागतयदनिच्च, अज्झत्तपच्चुपन्नयदनिच्च, अज्झत्तातीतादियंदुक्ख, अज्झत्तातीतादियदनत्त, बाहिरातीतादियदनिच्च, बाहिरातीतादियंदुक्ख, बाहिरातीतादियदनत्त, अज्झत्तायतनअनिच्च, अज्झत्तायतनदुक्ख, अज्झत्तायतनअनत्त, बाहिरायतनअनिच्च, बाहिरायतनदुक्ख, बाहिरायतनअनत्त।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया है कि –

अनित्य, दु:ख एवं अनात्म के प्रति छंद (इच्छा), राग तथा छंदराग को दूर करना चाहिए। अनित्य, दु:ख और अनात्म हैं – भीतरी और बाहरी आयतन।

अतीतकालीन, अनागत तथा वर्तमान के भीतरी अथवा बाहरी आयतन अनित्य, दु:ख एवं अनात्म हैं। इन्हें ऐसा जानकर आर्यश्रावक इनसे निर्वेद पा लेता है, निर्वेद के उत्पन्न होने से विरक्त हो जाता है, विरक्त होने से विमुक्त हो जाता है, और विमुक्त होने पर उसे ऐसा ज्ञान होता है –'मैं विमुक्त हो गया!' वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं'।

जो अनित्य है वह दु:ख है, जो दु:ख है वह अनात्म है, जो अनात्म है वह न मेरा है, न मैं हूं, न मेरी आत्मा है। इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जानना चाहिए।

१८. समुद्द-वग्ग

[सुत्त – पठमसमुद्द, दुतियसमुद्द, बाळिसिकोपम, खीररुक्खोपम, कोट्ठिक, कामभू, उदायी,आदित्तपरियाय, पठमहत्थपादोपम, दुतियहत्थपादोपम।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि आर्यविनय में 'समुद्र' किसे कहते हैं। पुरुष की हर इंद्रिय समुद्र है, जिसका वेग उसके विषय हैं। जो इन वेगों को सहन कर लेता है, वह इन खतरनाक समुद्रों को पार कर, निष्पाप हो, धरती पर जा खड़ा होता है। इंद्रियों से विज्ञेय उनके विषय बड़े लुभावने होते हैं। इसे भी 'समुद्र' कहते हैं। इसी में देव, मार और ब्रह्मा के साथ यह लोक, और श्रमणों-ब्राह्मणों के साथ यह प्रजा, देव, मनुष्य सभी डूबे रहते हैं, और बार-बार दुर्गति को प्राप्त हो संसार से छूट नहीं पाते हैं। जिनके राग, द्वेष और अविद्या छूट जाते हैं, वे ही इस दुस्तर समुद्र को पार कर पाते हैं।

भगवान ने कहा जिसके राग, द्वेष और मोह प्रहीण नहीं हुए होते, उसकी इंद्रियों का अपने विषयों से संपर्क होते ही वह तुरंत उनमें आसक्त हो जाता है। यह ऐसे ही है जैसे दूधिया रस से भरे पीपल, बड़, पाकड़ या गूलर के नये कोमल वृक्ष में कहीं भी तेज़ कुल्हाड़ी मारी जाय, तो वहीं से दूधिया रस फूट पड़े।

आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान महाकोट्ठिक को बतलाया कि न तो भीतरी आयतन बाहरी आयतनों के बंधन हैं, और न बाहरी आयतन भीतरी आयतनों के।दोनों के प्रत्यय से जहां छंदराग उत्पन्न होता है, वहां वही बंधन होता है। यह

ऐसे ही है जैसे एक ही रस्सी से बँधा हुआ काला बैल और सफेद बैल एक दूसरे का बंधन नहीं होता, बल्कि वह रस्सी ही वहां बंधन होती है।

आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान उदायी का मार्गदर्शन किया कि भगवान ने 'विज्ञान' को किस प्रकार अनात्म बतलाया है। भिक्षु छः स्पर्शायतनों में न आत्मा और न आत्मीय देखता है। उपादान नहीं करने से उसे त्रास नहीं होता, और त्रास नहीं होने से वह भीतर-ही-भीतर परिनिर्वाण पा लेता है। वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।'

भगवान ने भिक्षुओं को आदीप्त वाली बात का उपदेश देते हुए कहा कि इंद्रियों को आदीप्त (जलती हुई) वस्तुओं से झुलसा देना अच्छा है, किंतु उनके द्वारा विज्ञेय विषयों में लालच करना और स्वाद देखना अच्छा नहीं है। लालच करते, स्वाद देखते मनुष्य की मृत्यु होने पर उसकी दो ही गतियां होती हैं – या तो वह नरक में जाता है, या पशुयोनि में। इस बुरी गति को दृष्टिगत करते हुए इंद्रियों, उनके विषयों, उनके विज्ञानों, संस्पर्शों और तज्जनित वेदनाओं की अनित्यता का ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से आर्यश्रावक इनसे निर्वेद पा लेता है, विरक्त और विमुक्त हो जाता है और प्रज्ञापूर्वक जान लेता है कि अब आगे कुछ करने को नहीं रहा है।

भगवान ने एक उपमा के द्वारा यह समझाया कि आध्यात्मिक सुख-दुःख किससे होते हैं, और किससे नहीं होते हैं। जैसे हाथ के होने से लेना-देना, पैर के होने से आना-जाना, पर्व (जोड़) के होने से समेटना-पसारना और पेट के होने से भूख-प्यास होती है, वैसे ही इंद्रियों के होने से उनके संस्पर्श के प्रत्यय से भीतरी सुख-दुःख होते हैं। चूंकि हाथ, पैर, पर्व और पेट के न होने से आना-जाना, आदि व्यापार संभव नहीं होते हैं, अतः इंद्रियों के न होने से उनके संस्पर्श के प्रत्यय से भीतरी सुख-दुःख भी नहीं होते हैं।

१९. आसीविस-वग्ग

[सुत्त – आसीविसोपम, रथोपम, कुम्मोपम, पठमदारुक्खन्धोपम, दुतियदारुक्खन्धोपम, अवस्सुतपरियाय, दुक्खधम्म, किंसुकोपम, वीणोपम, छप्पाणकोपम, यवकलापि।]

भगवान ने भिक्षुओं को एक उपमा के द्वारा यह समझाया कि अरहंत अवस्था प्राप्त करने वाले व्यक्ति को किस-किस प्रकार की बाधाओं को पार करना पड़ता

है। उन्होंने यह भी बतलाया कि किन तीन धर्मों से युक्त होने पर आस्रवों का क्षय होने लगता है। ये धर्म हैं – (१) इंद्रियों में संयत होना, (२) भोजन का मात्रज्ञ होना, और (३) जागरणशील होना। उन्होंने इन धर्मों का आशय भी समझाया।

भगवान ने भिक्षुओं को कछुए का उदाहरण देते हुए कहा कि जैसे वह अपने अंगों को अपनी खोपड़ी में समेट कर अपने आप को निरापद कर लेता है, वैसे ही तुम्हें भी अपने वितर्कों को अपने भीतर दबाकर अपने आप को सुरक्षित कर लेना चाहिए।

उन्होंने एक अन्य उपमा द्वारा समझाया कि यदि गंगा नदी में बहता हुआ कोई बड़ा लकड़ी का कुंदा न तो नदी के इस पार लगे, न उस पार, न बीच में डूब जाय, न जमीन पर चढ़ जाय, न किसी मनुष्य अथवा अमनुष्य द्वारा छान लिया जाय, न किसी भंवर में पड़ जाय, और न कहीं बीच में रुक जाय, तो वह समुद्र में ही जा गिरेगा क्योंकि गंगा नदी की धारा समुद्र तक जाती है, ऐसे ही तुम भी यदि न तो इस पार लगो, न उस पार, न बीच में डूब जाओ, न जमीन पर चढ़ जाओ, न किसी मनुष्य अथवा अमनुष्य द्वारा छान लिये जाओ, न किसी भँवर में पड़ जाओ, और न कहीं बीच में ही सड़ जाओ, तो तुम निर्वाण में ही जा लगोगे, क्योंकि सम्यक दृष्टि निर्वाण तक ले जाती है। उन्होंने इस उपमा का आशय भी स्पष्ट किया।

कपिलवत्थु में शाक्यों के निमंत्रण पर भगवान ने उनके नव-निर्मित संस्थागार में भिक्षुसंघ के साथ प्रवेश कर बहुत रात तक शाक्यों को धर्मोपदेश दिया। उनके चले जाने के पश्चात भगवान ने आयुष्मान मोग्गल्लान को भिक्षुसंघ को उपदेश देने के लिए कहा, और वे स्वयं विश्राम करने के लिए चले गये। आयुष्मान मोग्गल्लान ने भिक्षुओं को 'अवश्रुत' और 'अनवश्रुत' के बारे में उपदेश दिया।

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि कोई व्यक्ति कैसे असंयत होता है, और कैसे संयत। किसी भिक्षुविशेष के प्रश्न के उत्तर में उसे समझाया कि किसी भिक्षु का दर्शन कैसे शुद्ध होता है।

उन्होंने भिक्षुओं को समझाया कि जब किसी व्यक्ति का चित्त छः स्पर्शायतनों में सीधा हो जाता है, तब वह अध्यात्म में टिकने लगता है। उन्होंने वीणा की उपमा देकर रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान के पीछे मुग्ध होने की निरर्थकता को प्रज्ञप्त किया। उन्होंने कायगता स्मृति को सुभावित करने पर भी

बल दिया, जिससे मन प्रिय-अप्रिय के चक्कर में नहीं पड़ता और समता में स्थित होने लगता है।

अंत में भगवान ने भिक्षुओं को इस प्रकार के चिंतन से अपने आप को बचाए रखने के लिए कहा –'मैं हूं', 'यह मैं हूं', 'मैं होऊंगा', 'मैं नहीं होऊंगा', 'मैं रूप वाला होऊंगा', 'मैं बिना रूप वाला होऊंगा', 'मैं संज्ञा वाला होऊंगा', 'मैं बिना संज्ञा वाला होऊंगा', 'मैं न संज्ञा वाला, न बिना संज्ञा वाला होऊंगा'। इस प्रकार का चिंतन कोरी मान्यता है, मात्र मन की चंचलता, झूठा फंदा, प्रपंच, अभिमान।

२. वेदनासंयुत्त

१. सगाथा-वग्ग

[सुत्त – समाधि, सुख, पहान, पाताल, दट्ठब्ब, सल्ल, पठमगेलञ्ञ, दुतियगेलञ्ञ, अनिच्च, फस्समूलक।]

इन सुत्तों में भगवान ने भिक्षुओं को वेदनाओं के बारे में बतलाया है कि –

वेदनाएं तीन प्रकार की होती हैं – सुखद, दुःखद और अदुःखद-असुखद।

ये अनित्य, संस्कृत, कारण से उत्पन्न, क्षयधर्मा, व्ययधर्मा, विरागधर्मा और निरोधधर्मा होती हैं।

ये स्पर्श से उत्पन्न होती हैं, यही इनका प्रत्यय है। सुखवेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से सुखद वेदना उत्पन्न होती है, और उस स्पर्श के निरोध से यह वेदना निरुद्ध हो जाती है। दुःखवेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से दुःखद वेदना उत्पन्न होती है, और उस स्पर्श के निरोध से यह वेदना निरुद्ध हो जाती है। ऐसे ही अदुःखद-असुखद स्पर्श के प्रत्यय से अदुःखद-असुखद वेदना उत्पन्न होती है, और उस स्पर्श के निरोध से यह वेदना निरुद्ध हो जाती है।

सुखद वेदना को दुःख के तौर पर, दुःखद वेदना को घाव के तौर पर और अदुःखद-असुखद वेदना को अनित्य के तौर पर जानना चाहिए। जो इन्हें इस प्रकार जान लेता है, वह सम्यग्दर्शी कहलाता है और तृष्णा को काट, संयोजनों को दूर कर, अपने दुःख का अंत कर लेता है।

अज्ञानी लोग कहते हैं – 'महासमुद्र में पाताल (जिसका तल न हो) है।' वस्तुतः ऐसा कुछ नहीं है। पाताल से अभिप्राय शरीर पर होने वाली दुःखद वेदना से है। अज्ञानी व्यक्ति शरीर की दुःखद वेदना से पीड़ित हो शोक करता है, क्रंदन करता है और सम्मोह को प्राप्त होता है। इसी को कहते हैं कि अज्ञानी व्यक्ति पाताल में चला गया, उसे थाह नहीं मिला। इसके विपरीत ज्ञानी आर्यश्रावक शरीर की दुःखद वेदना से अभिभूत नहीं होता है और वह थाह पा लेता है।

चाहे कोई अज्ञानी हो या ज्ञानी – ये दोनों ही तीनों प्रकार की वेदनाओं को अनुभव करते हैं। फिर इन दोनों में क्या भेद हुआ? अज्ञानी व्यक्ति दुःखद वेदना से पीड़ित हो शोक वा क्रंदन करता हुआ सम्मोह को प्राप्त होता है, इससे वह दो

प्रकार की वेदनाएं अनुभव करता है – शारीरिक और मानसिक। ज्ञानी व्यक्ति दुःखद वेदना से अभिभूत नहीं होने से एक ही प्रकार की वेदना अनुभव करता है – शारीरिक, मानसिक नहीं। यही दोनों में भेद है।

सुखद वेदना के राग को, दुःखद वेदना की खिन्नता को, और अदुःखद-असुखद वेदना की अविद्या को दूर करना चाहिए। जो ऐसा कर लेता है, वह सम्यग्दर्शी कहलाता है और तृष्णा को काट, संयोजनों को दूर कर, अपने दुःख का अंत कर लेता है।

जो समाहित, स्मृतिमान, संप्रज्ञानी बुद्ध-श्रावक वेदना, वेदना की उत्पत्ति, जहां ये निरुद्ध हो जाती हैं उसे, और क्षयगामी मार्ग को प्रज्ञापूर्वक जान लेता है, वह वेदनाओं के क्षय होने से वितृष्ण हो परिनिर्वाण-लाभ कर लेता है।

भिक्षु स्मृतिमान और संप्रज्ञानी हो अपने समय की प्रतीक्षा करे। यही मेरी शिक्षा है। (उन्होंने यह भी समझाया कि कोई व्यक्ति कैसे स्मृतिमान होता है, और कैसे संप्रज्ञानी।)

२. रहोगत-वग्ग

[सुत्त – रहोगत, पठमआकास, दुतियआकास, अगार, पठमआनन्द, दुतियआनन्द, पठमसम्बहुल, दुतियसम्बहुल, पञ्चकङ्ग, भिक्खु।]

इन सुत्तों में वेदनाओं के बारे में भगवान की देशना इस प्रकार है –

सभी वेदनाओं को दुःखद ही समझना चाहिए। संस्कारों के क्षय, व्यय, विराग, निरोध और विपरिणमित होने के स्वभाव को ध्यान में रख कर ऐसा कहा है।

शरीर में विविध प्रकार की वेदनाएं उत्पन्न होती रहती हैं, जैसे आकाश में विविध प्रकार की वायु बहती रहती है – कभी पूर्वी, कभी पश्चिमी, कभी उत्तरी, कभी दक्षिणी, कभी धूल-भरी, कभी धूल-रहित, कभी ठंडी, कभी गर्म, कभी धीमी, कभी तेज।

शरीर में विविध प्रकार की वेदनाएं उत्पन्न होती रहती हैं, जैसे किसी धर्मशाला में आकर लोग रह जाते हैं – पूर्व के भी, पश्चिम के भी, उत्तर के भी, दक्षिण के भी, क्षत्रिय भी, ब्राह्मण भी, वैश्य भी, शूद्र भी।

वेदनाएं तीन प्रकार की हैं – सुखद, दुःखद और अदुःखद-असुखद। स्पर्श के

समुदय से वेदना का समुदय और स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध होता है । आर्य अष्टांगिक मार्ग वेदना का निरोध कराने वाला मार्ग है।

वेदना के प्रत्यय से होने वाला सुख-सौमनस्य वेदना का आस्वाद होता है। वेदना का अनित्य, दुःख और परिवर्तनशील होना वेदना का दोष होता है। जो वेदना के प्रति छंद-राग को दूर करना, इसका प्रहाण करना है, वह वेदना का निस्सरण (इससे छुटकारा) है।

वेदनाओं को अलग-अलग दृष्टिकोण से समझाया गया है। वेदनाएं दो भी बतलायी गयी हैं, तीन भी, छः भी, अठारह भी, छत्तीस भी, और एक सौ आठ भी । इस बात को ठीक से नहीं समझने से आपस में विवाद होता है, जैसा कि पञ्चकङ्ग स्थपति और आयुष्मान उदायी के बीच हुआ।

भगवान ने संस्कारों के निरोध की चर्चा करते हुए बतलाया कि प्रथम ध्यान पाये हुए की वाणी निरुद्ध हो जाती है, द्वितीय ध्यान पाये हुए के वितर्क और विचार, तृतीय ध्यान पाये हुए की प्रीति, चतुर्थ ध्यान पाये हुए के आश्वास-प्रश्वास, आकाशानंत्यायतन पाये हुए की रूप-संज्ञा, विज्ञानंत्यायतन पाये हुए की आकाशानंत्यायतन-संज्ञा, आकिंचन्यायतन पाये हुए की विज्ञानंत्यायतन-संज्ञा, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन पाये हुए की आकिंचन्यायतन-संज्ञा और संज्ञावेदयितनिरोध पाये हुए की संज्ञा और वेदना निरुद्ध हो जाती हैं। क्षीणास्रव भिक्षु के राग, द्वेष और मोह निरुद्ध हो जाते हैं।

३. अट्ठसतपरियाय-वग्ग

[सुत्त – सीवक, अट्ठसत, अञ्ञतरभिक्खु, पुब्ब, ञाण,
सम्बहुलभिक्खु, पठमसमणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण,
ततियसमणब्राह्मण, सुद्धिक, निरामिस।]

भगवान ने मोळियसीवक परिव्राजक को समझाया कि सभी वेदनाएं पूर्व-कृत कर्मों के कारण ही नहीं होती हैं। इनके अनेक कारण होते हैं : पित्त, श्लेष्मा, वायु का प्रकोप, सन्निपात, ऋतुएं, उल्टा-सुल्टा खा लेना, कायक्लेश की साधना और कर्मों के विपाक ।

भगवान ने भिक्षुओं को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से वेदनाओं की संख्या का प्रज्ञापन किया –दो का भी, तीन का भी, पांच का भी, और ऐसे ही छः, अठारह, छत्तीस और एक सौ आठ का भी। इसे उन्होंने एक सौ आठ बातों का धर्मोपदेश कहा।

उन्होंने कई सुत्तों में वेदना, इसके समुदय और समुदय कराने वाले मार्ग, इसके निरोध और निरोध कराने वाले मार्ग, इसके आस्वाद, दोष और इससे निःसरण (छुटकारा पाने) के बारे में चर्चा की और कहा कि जो श्रमण अथवा ब्राह्मण इन बातों को यथार्थतः नहीं जानते, वे श्रमण अथवा ब्राह्मण कहलाने के अधिकारी नहीं होते। ये लोग इसी जीवन में श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य को अपनी अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर, विहार नहीं करते हैं। जो लोग इन बातों को यथार्थतः जान लेते हैं, वे ही श्रमण अथवा ब्राह्मण कहलाने के अधिकारी होते हैं, और वे ही इसी जीवन में श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य को अपनी अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर, विहार करते हैं।

भगवान ने भिक्षुओं को निम्नांकित के बारे में विस्तार से समझाया –

* सामिष (सकाम) प्रीति, निरामिष (निष्काम) प्रीति, और निरामिष से निरामिषतर प्रीति,
* सामिष सुख, निरामिष सुख, और निरामिष से निरामिषतर सुख,
* सामिष उपेक्षा, निरामिष उपेक्षा, और निरामिष से निरामिषतर उपेक्षा,
* सामिष विमोक्ष, निरामिष विमोक्ष, और निरामिष से निरामिषतर विमोक्ष ।

३. मातुगामसंयुत्त

यह संयुत्त तीन वर्गों में विभाजित है जिनमें चौंतीस सुत्त हैं।

१. पठमपेय्याल-वग्ग

[सुत्त – मातुगाम, पुरिस, आवेणिकदुक्ख, तीहिधम्मेहि, कोधन, उपनाही, इस्सुकी, मच्छरी, अतिचारी, दुस्सील, अप्पस्सुत, कुसीत, मुट्ठस्सति, पञ्चवेर।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि किन बातों के होने से स्त्री पुरुष को बिल्कुल लुभाने वाली नहीं होती, और किन बातों के होने से उसे अत्यंत लुभाने वाली होती है। ऐसे ही किन बातों के होने से पुरुष स्त्री को बिल्कुल लुभाने वाला नहीं होता, और किन बातों के होने से उसे अत्यंत लुभाने वाला होता है। उन्होंने यह भी बतलाया कि स्त्री को अपने पांच दुःख होते हैं जिन्हें वही अनुभव कर सकती है, पुरुष नहीं।

भगवान ने आयुष्मान अनुरुद्ध द्वारा जिज्ञासा प्रकट किये जाने पर उन्हें उन धर्मों की जानकारी दी जिनके होने पर स्त्री मरणोपरांत दुर्गति को प्राप्त होती है।

२. दुतियपेय्याल-वग्ग

[सुत्त – अक्कोधन, अनुपनाही, अनिस्सुकी, अमच्छरी, अनतिचारी, सुसील, बहुस्सुत, आरद्धविरिय, उपट्ठितस्सति, पञ्चसील।]

इन सुत्तों में भगवान ने आयुष्मान अनुरुद्ध के अनुरोध पर उन्हें उन धर्मों की जानकारी दी जिनके होने पर स्त्री मरणोपरांत सुगति को प्राप्त होती है।

३. बल-वग्ग

[सुत्त – विसारद, पसय्ह, अभिभुय्य, एक, अङ्ग, नासेन्ति, हेतु, ठान, पञ्चसीलविसारद, वड्ढी।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि –

स्त्री के पांच बल होते हैं – रूप-बल, धन-बल, ज्ञाति-बल, पुत्र-बल और शील-बल।

इन पांच बलों से युक्त स्त्री अपने स्वामी को वश में रख अपने घर में प्रसन्नतापूर्वक रहती है।

यदि कोई स्त्री अन्य सभी बलों से युक्त हो, परंतु शील-बल से नहीं, तो लोग उसे कुल से हटा देते हैं, वापस नहीं बुलाते हैं।

शील-बल से युक्त स्त्री मरणोपरांत सुगति को प्राप्त होती है।

इन पांच बातों से आर्यश्राविका खूब प्रगति करती है – श्रद्धा, शील, विद्या, त्याग तथा प्रज्ञा।

४. जम्बुखादक संयुत्त

इस संयुत्त में सोलह सुत्त हैं जिनके नाम हैं : निब्बानपञ्हा, अरहत्तपञ्हा, धम्मवादीपञ्हा, किमत्थिय, अस्सासप्पत्त, परमस्सासप्पत्त, वेदनापञ्हा, आसवपञ्हा, अविज्जापञ्हा, तण्हापञ्हा, ओघपञ्हा, उपादानपञ्हा, भवपञ्हा, दुक्खपञ्हा, सक्कायपञ्हा, दुक्करपञ्हा।

इन सुत्तों में जम्बुखादक परिव्राजक ने आयुष्मान सारिपुत्त से अनेक प्रकार के प्रश्न कर इनका समाधान प्राप्त किया। ये प्रश्न हैं –

'निर्वाण' क्या है? 'अरहत्व' क्या है?

संसार में 'धर्मवादी', 'सुप्रतिपन्न', 'सुगत' कौन होते हैं?

श्रमण गौतम के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किसलिए किया जाता है?

'आश्वासन पाया हुआ' कैसा होता है?

'परम आश्वासन पाया हुआ' कैसा होता है?

'वेदना' किसे कहते हैं?'आस्रव' क्या होते हैं?

'अविद्या' किसे कहते हैं?'तृष्णा' किसे कहते हैं?

'ओघ (बाढ़)' क्या है? 'उपादान' क्या है?

'भव' क्या है? 'दुःख' क्या है?

'सत्काय' क्या है? इस धर्मविनय में 'दुष्कर' क्या है?

इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए आयुष्मान सारिपुत्त ने यह भी स्पष्ट किया कि निर्वाण, अरहत्व आदि के साक्षात्कार; वेदना, सत्काय आदि की पहचान; और अविद्या, तृष्णा आदि के प्रहाण के लिए जो मार्ग है वह यही है जिसे 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' कहते हैं, अर्थात सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि। उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि यह मार्ग वास्तव में बड़ा सुंदर मार्ग है, और इस पर चलने में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

५. सामण्डक संयुत्त

इस संयुत्त में भी 'जम्बुखादक संयुत्त' के समान ही सोलह सुत्त हैं। अंतर केवल इतना ही है कि इन सुत्तों में आयुष्मान सारिपुत्त से प्रश्न पूछने वाला है सामण्डक परिव्राजक, न कि जम्बुखादक परिव्राजक।

६. मोग्गल्लानसंयुत्त

इस संयुत्त में ग्यारह सुत्त हैं जिनके नाम हैं – पठमझानपञ्हा, दुतियझानपञ्हा, ततियझानपञ्हा, चतुत्थझानपञ्हा, आकासानञ्चायतनपञ्हा, विञ्ञाणञ्चायतनपञ्हा, आकिञ्चञ्ञायतनपञ्हा, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनपञ्हा, अनिमित्तपञ्हा, सक्क, चन्दन।

आयुष्मान महामोग्गल्लान ने भिक्षुओं को बतलाया कि मैंने भगवान के निर्देशों के अनुरूप किस प्रकार समाधि का अभ्यास किया –

काम और अकुशल धर्मों से हट, वितर्क और विचार वाले, विवेक से उत्पन्न प्रीति, सुख वाले प्रथम ध्यान का।

वितर्क और विचार के शांत हो जाने पर, आध्यात्मिक संतुष्टि वाले, चित्त की एकाग्रता वाले, वितर्क और विचार से रहित, समाधि से उत्पन्न प्रीति, सुख वाले द्वितीय ध्यान का।

प्रीति से विरक्त हो, उपेक्षावान हो, स्मृतिमान तथा संप्रज्ञानी बन, शरीर से ऐसे सुख का अनुभव करते हुए जिसे आर्यजन कहते हैं – 'उपेक्षावान, स्मृतिमान, सुखपूर्वक विहार करने वाला', ऐसे तृतीय ध्यान का।

सुख और दुःख प्रहीण हो जाने पर, और सौमनस्य तथा दौर्मनस्य के पहले से ही अस्त हो जाने से, उपेक्षा और स्मृति की परिशुद्धि वाले चतुर्थ ध्यान का।

रूपसंज्ञाओं का सर्वथा अतिक्रमण कर, प्रतिघ-संज्ञा के अस्त हो जाने से, नानात्व-संज्ञा के मन में न लाने से 'आकाश अनंत है', ऐसे आकाशानंत्यायतन का।

आकाशानंत्यायतन का सर्वथा अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनंत है', ऐसे विज्ञानंत्यायतन का।

विज्ञानंत्यायतन का सर्वथा अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है', ऐसे आकिंचन्यायतन का।

आकिंचन्यायतन का सर्वथा अतिक्रमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का।

सभी निमित्तों को मन से हटाकर अनिमित्त चेतःसमाधि का।

एक समय आयुष्मान महामोग्गल्लान ने अंतर्धान हो त्रयस्त्रिंश देवों के बीच प्रकट हो देवेंद्र सक्क (शक्र) से कहा कि –

* बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ग्रहण करना अच्छा है। इससे कितने ही लोग मरणोपरांत स्वर्गलोक, सुगति को प्राप्त होते हैं।

* बुद्ध, धर्म और संघ के अभिप्राय को अच्छी तरह समझकर इनमें दृढ़ श्रद्धा का होना बहुत अच्छा है। इससे कितने ही लोग मरणोपरांत स्वर्गलोक, सुगति को प्राप्त होते हैं।

* आर्यों द्वारा प्रशंसित शीलों से युक्त होना अच्छा है। इससे कितने ही लोग मरणोपरांत स्वर्गलोक, सुगति को प्राप्त होते हैं।

* बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ग्रहण कर मरणोपरांत स्वर्गलोक, सुगति को प्राप्त हुए लोग दूसरे देवों से दस बातों में बढ़-चढ़ कर होते हैं। ये बातें हैं –दिव्य आयु, दिव्य वर्ण, दिव्य सुख, दिव्य यश, दिव्य आधिपत्य, दिव्य रूप, दिव्य शब्द, दिव्य गंध, दिव्य रस और दिव्य स्प्रष्टव्य।

७. चित्तसंयुत्त

इस संयुत्त में दस सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – संयोजन, पठमइसिदत्त, दुतियइसिदत्त, महकपाटिहारिय, पठमकामभू, दुतियकामभू, गोदत्त, निगण्ठनाटपुत्त, अचेलकस्सप, गिलानदस्सन।

गृहपति चित्त ने स्थविर भिक्षुओं को समझाया कि चक्षु रूपों का, श्रोत्र शब्दों का, घ्राण गंधों का, जिह्वा रसों का, काया स्प्रष्टव्यों का और मन धर्मों का संयोजन नहीं होता, बल्कि जहां इनके प्रत्यय से छंद-राग उत्पन्न होता है वही वहां बंधन होता है। जैसे एक ही रस्सी से बँधे काले और सफेद बैल एक दूसरे के बंधन नहीं होते, बल्कि वे जो एक रस्सी से बँधे होते हैं, वही वहां बंधन होता है।

आयुष्मान इसिदत्त ने बतलाया कि भगवान की देशनानुसार धातु-नानात्व से अभिप्राय होता है – चक्षुधातु, रूपधातु, चक्षुर्विज्ञानधातु; श्रोत्रधातु, शब्दधातु, श्रोत्रविज्ञानधातु; घ्राणधातु, गंधधातु, घ्राणविज्ञानधातु; जिह्वाधातु, रसधातु, जिह्वाविज्ञानधातु; कायधातु, स्प्रष्टव्यधातु, कायविज्ञानधातु; मनोधातु, धर्मधातु, मनोविज्ञानधातु। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि संसार में प्रचलित नाना प्रकार की मिथ्या दृष्टियां सत्कायदृष्टि के होने से होती हैं, और सत्कायदृष्टि के नहीं होने से नहीं होतीं। फिर यह भी स्पष्ट किया कि सत्कायदृष्टि होती कैसे है, और यह कैसे नहीं होती।

एक सुत्तविशेष में आयुष्मान महक द्वारा किये गये ऋद्धि-प्रदर्शन का उल्लेख है।

गृहपति चित्त के प्रश्नों के उत्तर में आयुष्मान कामभू ने उसे बतलाया कि संस्कार तीन प्रकार के होते हैं – काय-संस्कार, वाणी-संस्कार तथा चित्त-संस्कार। काय-संस्कार हैं आश्वास-प्रश्वास, वाणी-संस्कार हैं वितर्क-विचार और चित्त-संस्कार हैं संज्ञा तथा वेदना। फिर इसका निदान भी प्रस्तुत किया। तदनंतर संज्ञावेदयितनिरोध समापत्ति से संबंधित अनेक प्रश्नों के उत्तर दिए। इन्हीं के अंतर्गत यह भी स्पष्ट किया कि मृत व्यक्ति और संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था प्राप्त किये हुए व्यक्ति में क्या अंतर होता है।

गृहपति चित्त ने आयुष्मान गोदत्त को समझाया कि अप्रमाण चेतोविमुक्ति, आकिंचन्य चेतोविमुक्ति, शून्यता चेतोविमुक्ति और अनिमित्त चेतोविमुक्ति से

क्या अभिप्राय होता है, और यह भी स्पष्ट किया कि किस दृष्टिकोण से ये धर्म भिन्न-भिन्न अर्थ और भिन्न-भिन्न शब्द वाले होते हैं, और किस दृष्टिकोण से ये एक ही अर्थ को बताने वाले भिन्न-भिन्न शब्द होते हैं।

गृहपति चित्त ने निगंठ नाटपुत्त को इन प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए चुनौती दी – एक प्रश्न, एक उद्देश्य, एक उत्तर; दो प्रश्न, दो उद्देश्य, दो उत्तर; तीन प्रश्न, तीन उद्देश्य, तीन उत्तर; चार प्रश्न, चार उद्देश्य, चार उत्तर; पांच प्रश्न, पांच उद्देश्य, पांच उत्तर; छः प्रश्न, छः उद्देश्य, छः उत्तर; सात प्रश्न, सात उद्देश्य, सात उत्तर; आठ प्रश्न, आठ उद्देश्य, आठ उत्तर; नौ प्रश्न, नौ उद्देश्य, नौ उत्तर; दस प्रश्न, दस उद्देश्य, दस उत्तर।

गृहपति चित्त की अचेल कस्सप से भेंट होने पर अचेल कस्सप ने कहा कि मुझे प्रव्रजित हुए तीस वर्ष हो गये हैं परंतु मुझे किसी अलौकिक श्रेष्ठज्ञान की अनुभूति नहीं हुई है। गृहपति चित्त ने कहा कि मुझे भी उपासक हुए तीस वर्ष हो गये हैं, पर मैं जब चाहता हूं तब प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान अथवा चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूं। और यदि मैं भगवान के जीवनकाल में शरीर छोड़ दूं, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होगा, यदि वह मेरे बारे में ऐसा कहें कि ऐसा कोई संयोजन नहीं है जिससे गृहपति चित्त को फिर इस संसार में आना पड़े।

यह सुनकर अचेल कस्सप को धर्म की सु-आख्यातता पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि कैसे कोई गृहस्थ भी इस प्रकार अलौकिक श्रेष्ठज्ञान को अनुभूति पर उतार लेता है। तत्पश्चात उसने स्थविर भिक्षुओं से प्रव्रज्या और उपसंपदा पा एकांत में, अकेले, अप्रमत्त रह विहार करते हुए मुक्त अवस्था का साक्षात्कार कर यह जान लिया –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।'

गृहपति चित्त की रुग्णावस्था में कुछ देवताओं ने उसके पास आकर कहा – "गृहपति! जीवित रहें, आगे चल कर आप चक्रवर्ती राजा होंगे।" इस पर गृहपति ने उनसे कहा –"यह भी अनित्य है, अध्रुव है, त्याज्य है।" अंततः गृहपति अपने मित्रों और बंधु-बांधवों को बुद्ध, धर्म और संघ में श्रद्धालु होने तथा दानशील होने की प्रेरणा देकर शरीर छोड़ गया।

८. गामणिसंयुत्त

इस संयुत्त में तेरह सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – चण्ड, तालपुट, योधाजीव, हत्थारोह, अस्सारोह, असिबन्धकपुत्त, खेत्तूपम, सङ्खधम, कुल, मणिचूळक, भद्रक, रासिय, पाटलिय।

चण्ड ग्रामणी की जिज्ञासा शांत करने के लिए भगवान ने उसे बतलाया कि जिनके राग, द्वेष, मोह प्रहीण नहीं होते, और इनके प्रहीण नहीं होने से वे दूसरों पर कोप करने लगते हैं, वे 'चंड' कहलाते हैं। जिनके राग, द्वेष, मोह प्रहीण हो जाते हैं, और इनके प्रहीण हो जाने से वे दूसरों पर कोप नहीं करते, वे 'सुरत' (विनम्र) कहलाते हैं।

भगवान ने तालपुट नटग्रामणी को बतलाया कि यह मिथ्यादृष्टि है कि दूसरों को सच या झूठ बोलकर हंसाने, बहलाने वाले नट मरणोपरांत प्रहास देवों के बीच उत्पन्न होते हैं। वस्तुतः मिथ्या दृष्टि वालों की दो ही गतियां हो सकती हैं – नरक या पशुयोनि।

भगवान ने योधाजीव ग्रामणी, हत्थारोह ग्रामणी तथा अस्सारोह ग्रामणी को भी स्पष्ट किया कि यह भी मिथ्यादृष्टि है कि युद्ध लड़ने वाले योद्धा, हाथीसवार तथा घुड़सवार मरणोपरांत किन्हीं देवों के बीच उत्पन्न होते हैं। उनकी भी दो ही गतियां हो सकती हैं – नरक या पशुयोनि।

असिबंधकपुत्र ग्रामणी ने भगवान से कहा कि कई ब्राह्मण मरे हुए को बुलाते हैं, चलाते हैं, स्वर्ग में भेज देते हैं। भगवान अर्हत, सम्यक संबुद्ध हैं। वे भी ऐसा कर सकते हैं कि सारा लोक मरणोपरांत स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त हो!

भगवान ने उसे समझाया कि जैसे गहरे जलाशय में छोड़ा हुआ बड़ा पत्थर इसके पेंदे से जा लगता है और इसमें छोड़ा हुआ घी या तेल पानी पर उतराने लगता है, और लोगों की प्रार्थना पर न तो वह पत्थर उतराने लगता है और न वह घी या तेल पेंदे से जा लगता है, वैसे ही शील भंग करने वाला और मिथ्यादृष्टिक किसी के चाहने मात्र से स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त नहीं हो सकता है, और न ही शील पालन करने वाला और सम्यक दृष्टिक नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार हर किसी की सुगति-दुर्गति अपने अपने कर्मों पर निर्भर करती है।

असिबंधक पुत्र ग्रामणी ने भगवान से यह जानना चाहा कि वह किसी को बड़े प्रेम से धर्मोपदेश करते हैं, और किसी को उतने प्रेम से नहीं – इसका क्या कारण है?

भगवान ने उसी से पूछ लिया कि यदि किसी कृषक के तीन खेत हों – उत्तम, मध्यम और बंजर – तो वह पहले-पहल किस खेत में बीज बोना चाहेगा? उसने कहा कि वह सर्वप्रथम पहले खेत में बीज बोयेगा, फिर मध्यम खेत में और अंततः बंजर खेत में (जिससे कि इसमें से कम से कम गाय-बैल की सानी तो निकल ही आये)।

इस पर भगवान ने कहा कि धर्मोपदेश के प्रयोजन से कृषक के पहले खेत के समान हैं मेरे भिक्षु-भिक्षुणियां। मध्यम खेत के समान हैं मेरे उपासक-उपासिकाएं।ये सभी मेरी ही शरण में अपना त्राण समझ कर विहार करते हैं। बंजर खेत के समान हैं अन्य मतावलंबी श्रमण, ब्राह्मण तथा परिव्राजक।इन्हें भी पहले वालों के समान ही धर्मोपदेश करता हूं जो होता है आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अंत में कल्याणकारी।इन्हें धर्मोपदेश देने का कारण यह होता है कि यदि वे कहीं एक बात भी समझ पाएं तो यह दीर्घकाल तक उनके हित और सुख के लिए हो।

भगवान ने निगंठ नाटपुत्त की इस शिक्षा को उचित नहीं बतलाया कि "जो-जो बहुलता से करता है, वैसी ही उसकी गति होती है।" उन्होंने कहा कि शील भंग करने वाले का अधिक समय शील भंग करने की अपेक्षा शील भंग न करने में बीतता है। उदाहरणतया, जीवहिंसा करने के समय की अपेक्षा जीवहिंसा न करने का समय अधिक होता है। यही तर्क चोरी करने, व्यभिचार करने, झूठ बोलने, आदि के समय पर भी लागू होता है। ऐसा होने से कोई भी व्यक्ति नरक में नहीं जा सकता, जिससे यह शिक्षा – "जो-जो बहुलता से करता है, वैसी ही उसकी गति होती है" – दोषपूर्ण हो जाती है।

भगवान ने असिबंधक पुत्र ग्रामणी को कुलों के विनाश के आठ हेतु बतलाये – (१) राजा, (२) चोर, (३) अग्नि, (४) जल, (५) छिपे कोष की अप्राप्ति, (६) अकर्मण्यता, (७) कुलांगार की उत्पत्ति (जो सारी संपत्ति फूंक दे), और (८) अनित्यता।

भगवान ने मणिचूळक ग्रामणी को स्पष्ट किया कि मैं किसी भी सूरत में शाक्यपुत्रीय श्रमणों द्वारा सोना-चांदी स्वीकार किये जाने का उपदेश नहीं देता। श्रमण शाक्यपुत्र तो यह सब कुछ त्याग चुके हैं।

भद्रक नाम के ग्रामणी की अभ्यर्थना पर भगवान ने उसे दुःख के समुदय और अवसान का उपदेश दिया। उन्होंने उदाहरण दे-देकर उसे समझाया कि तीनों कालों में दुःखों की उत्पत्ति का एक ही कारण रहता है, और वह है 'छंद' (इच्छा, तृष्णा) ।

भगवान ने रासिय ग्रामणी की इस भ्रांति को दूर किया कि वह सभी तपश्चर्याओं की निंदा करते हैं, और सभी तपश्चर्याओं में भी रूक्षाजीव की सबसे अधिक ।उन्होंने कहा कि प्रव्रजित दो अंतों का आचरण न करे,अर्थात न तो कामसुखों में डूब जाए और न ही देह को दंडित करने में जुट जाए। ये दोनों ही अनर्थ करने वाले हैं। इन दोनों अंतों को छोड़कर बुद्ध को मध्यम मार्ग का परम ज्ञान प्राप्त हुआ जो निर्वाण के लिए है। और यह मध्यम मार्ग वही है जिसे कहते हैं 'आर्य अष्टांगिक मार्ग'।

भगवान ने पाटलिय ग्रामणी को स्पष्ट किया कि मैं 'माया' को जानता हूं, पर 'मायावी' नहीं हूं। मायावी मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को प्राप्त होता है। मिथ्या दृष्टि वाले की भी यही दशा होती है।

भगवान ने 'धर्मसमाधि' के बारे में भी विस्तार से बतलाया और कहा कि भिन्न-भिन्न मतों की बात सुनने से मन में जो शंका जागती है उसका निवारण 'धर्मसमाधि' से होता है।

९. असङ्खतसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित है जिनमें चौवालीस सुत्त हैं।

(१) पठम-वग्ग

[सुत्त - कायगतासति, समथविपस्सना, सवितक्कसविचार, सुञ्ञतसमाधि, सतिपट्ठान, सम्मप्पधान, इद्धिपाद, इंद्रिय, बल, बोज्झङ्ग, मग्गङ्ग।]

भगवान ने भिक्षुओं को 'असंस्कृत' (अकृत, अर्थात निर्वाण) और 'असंस्कृतगामीमार्ग' का उपदेश किया। उन्होंने बतलाया कि 'असंस्कृत' होता है राग का क्षय, द्वेष का क्षय तथा मोह का क्षय; और 'असंस्कृतगामीमार्ग' होता है कायगता स्मृति, शमथ और विपश्यना, चार स्मृतिप्रस्थान, सात बोध्यंग, आर्य अष्टांगिक मार्ग इत्यादि।

(२) दुतिय-वग्ग

[सुत्त - असङ्खत, अनत, अनासवादि, परायन।]

भगवान ने भिक्षुओं को पुनः 'असंस्कृत' और 'असंस्कृतगामी मार्ग' की विस्तारपूर्वक व्याख्या करने के पश्चात दूसरे-दूसरे नामों से भी इसी प्रसंग को समझाया। जैसे 'असंस्कृत' को 'अनत', 'अनास्रव', 'सत्य', 'पार', 'अजर्जर', 'ध्रुव', 'निर्वाण', 'मुक्ति' आदि नामों से प्रज्ञप्त किया और 'असंस्कृतगामीमार्ग' को 'अनतगामी मार्ग', 'अनास्रवगामी मार्ग', 'सत्यगामी मार्ग', 'पारगामी मार्ग', 'अजर्जरगामी मार्ग', 'ध्रुवगामी मार्ग', 'निर्वाणगामी मार्ग', 'मुक्तिगामी मार्ग' से, क्रमशः, प्रख्यापित किया और सारी बात ज्यों-की-त्यों समझायी।

१०. अब्याकतसंयुत्त

इस संयुत्त में ग्यारह सुत्त हैं, जिनके नाम हैं – खेमा, अनुराध, पठमसारिपुत्तकोट्ठिक, दुतियसारिपुत्तकोट्ठिक, ततियसारिपुत्तकोट्ठिक, चतुत्थसारिपुत्तकोट्ठिक, मोग्गल्लान, वच्छगोत्त, कुतूहलसाला, आनन्द, सभियकच्चान।

इनमें से अधिकांश सुत्तों में उन धर्मों की चर्चा हुई है जिन्हें भगवान तथागत ने 'अव्याकृत' कहा है, अर्थात जिनका उत्तर 'हां' या 'न' में नहीं दिया जा सकता है। ये धर्म हैं –

* क्या तथागत मरने के बाद रहते हैं?

* क्या तथागत मरने के बाद नहीं रहते हैं?

* क्या तथागत मरने के बाद रहते भी हैं और नहीं भी?

* क्या तथागत मरने के बाद न रहते हैं और न नहीं रहते हैं?

* क्या लोक शाश्वत है?

* क्या लोक अशाश्वत है?

* क्या लोक अंतवान है?

* क्या लोक अनन्त है?

* क्या जीव और शरीर एक ही हैं?

* क्या जीव अन्य है और शरीर अन्य?

साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि दूसरे लोग इन धर्मों को अव्याकृत क्यों नहीं मानते हैं, और तथागत ऐसा क्यों मानते हैं।

इसके अतिरिक्त निम्नांकित के बारे में भगवान की अभिव्यक्ति है –

* मैं सदा दुःख और दुःख के निरोध का ही उपदेश करता हूं।

* मैं उसी की उत्पत्ति के बारे में बतलाता हूं जिसका उपादान अभी छूटा न हो, उपादान से मुक्त हुए के बारे में नहीं।

* इस शरीर को छोड़ दूसरा शरीर पाने के बीच सत्त्व का उपादान होता है – 'तृष्णा'।

संयुत्तनिकाय-३

महावग्ग

१. मग्गसंयुत्त

यह संयुत्त आठ वर्गों में विभाजित है, जिनमें एक सौ इक्यासी सुत्त हैं।

(१) अविज्जा-वग्ग

[सुत्त – अविज्जा, उपड्ढ, सारिपुत्त, जाणुस्सोणिब्राह्मण, किमत्थिय, पठमअञ्ञतरभिक्खु, दुतियअञ्ञतरभिक्खु, विभङ्ग, सूक, नन्दिय।]

इन सुत्तों में भगवान ने बतलाया है कि –

* अविद्या के प्रथमतर होने से अकुशल धर्मों की उत्पत्ति होती है, और विद्या के प्रथमतर होने से कुशल धर्मों की।

* कल्याणमित्र का मिल जाना ब्रह्मचर्य का नितांत सफल हो जाना ही होता है, क्योंकि विश्वास होता है कि कल्याणमित्र से समागम किया हुआ भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग को सुभावित करेगा ही।

* आर्य अष्टांगिक मार्ग को 'ब्रह्मयान' भी कहते हैं, 'धर्मयान' भी और 'अनुत्तर संग्रामविजय' भी।

* अन्य लोगों द्वारा पूछे जाने पर उन्हें स्पष्ट करना चाहिए कि श्रमण गौतम के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन दुःख की पहचान के लिए किया जाता है, और इसके लिए मार्ग वही है जिसे 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' कहते हैं।

* 'ब्रह्मचर्य' से अभिप्राय आर्य अष्टांगिक मार्ग से ही लेना होता है। इसका अंतिम उद्देश्य होता है राग-क्षय, द्वेष-क्षय तथा मोह-क्षय।

* 'अमृत' से अभिप्राय होता है राग-क्षय, द्वेष-क्षय तथा मोह-क्षय। और अमृतगामी मार्ग है – यही आर्य अष्टांगिक मार्ग।

* 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' है –सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि। (भगवान ने प्रत्येक का आशय भी समझाया।)

* सम्यक दृष्टि से युक्त हो, मार्ग को सम्यक प्रकार से भावित कर भिक्षु अविद्या को काट, विद्या को उत्पन्न कर, निर्वाण का साक्षात्कार कर लेता है।

* आठ धर्मों की भावना और बहुलीकरण से निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है। ये आठ धर्म हैं – सम्यक दृष्टि से लेकर सम्यक समाधि पर्यंत।

(२) **विहार-वग्ग**

[सुत्त – पठमविहार, दुतियविहार, सेक्ख, पठमउप्पाद, दुतियउप्पाद, पठमपरिसुद्ध, दुतियपरिसुद्ध, पठमकुक्कुटाराम, दुतियकुक्कुटाराम, ततियकुक्कुटाराम।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि किन-किनके प्रत्यय से वेदना होती है, कोई शैक्ष्य कैसे होता है, तथागत की उत्पत्ति के बिना सम्यक दृष्टि से सम्यक समाधि पर्यंत आठ धर्मों की भावना वा बहुलीकरण नहीं होता है, ऐसे ही बुद्ध के विनय के अभाव में इन आठ धर्मों की भावना वा बहुलीकरण नहीं होता है, इत्यादि ।

आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान भद्द को बतलाया कि अष्टांगिक मिथ्या-मार्ग 'अब्रह्मचर्य' कहलाता है, अर्थात मिथ्या दृष्टि, मिथ्या संकल्प, मिथ्या वचन, मिथ्या कर्मांत, मिथ्या आजीविका, मिथ्या व्यायाम, मिथ्या स्मृति तथा मिथ्या समाधि। इन्हीं आठों का सम्यक स्वरूप 'ब्रह्मचर्य' कहलाता है, जिसका अंतिम उद्देश्य होता है राग-क्षय, द्वेष-क्षय तथा मोह-क्षय। आर्य अष्टांगिक मार्ग पर चलने वाला कहलाता है –'ब्रह्मचारी'।

(३) **मिच्छत्त-वग्ग**

[सुत्त – मिच्छत्त, अकुसलधम्म, पठमपटिपदा, दुतियपटिपदा, पठमअसप्पुरिस, दुतियअसप्पुरिस, कुम्भ, समाधि, वेदना, उत्तिय।]

भगवान ने मिथ्या दृष्टि से लेकर मिथ्या समाधि पर्यंत आठ धर्मों को जिन नामों से अभिहित किया है वे हैं –'मिथ्या स्वभाव', 'मिथ्या मार्ग', 'अकुशल धर्म' । ऐसे ही सम्यक दृष्टि से लेकर सम्यक समाधि पर्यंत आठ धर्मों को जिन

नामों से अभिहित किया है वे हैं – 'सम्यक स्वभाव', 'सम्यक मार्ग', 'कुशल धर्म'। उन्होंने कहा कि चाहे कोई गृहस्थ हो अथवा प्रव्रजित, वह सम्यक मार्ग पर आरूढ़ होकर न्यायिक और कुशल धर्मों का लाभ कर लेता है।

भगवान ने 'असत्पुरुष' तथा 'सत्पुरुष' और 'असत्पुरुष' तथा 'महाअसत्पुरुष' का पारस्परिक भेद भी बतलाया।

उन्होंने आर्य अष्टांगिक मार्ग को चित्त में स्थिरता लाने वाला आधार बतलाया। सम्यक दृष्टि से लेकर सम्यक स्मृति तक सात धर्मों पर आधारित चित्त की एकाग्रता को बतलाया –'आर्य सम्यक समाधि'।

उन्होंने कहा वेदनाएं तीन प्रकार की होती हैं – सुखद, दुःखद और अदुःखद-असुखद। इन तीनों की परिज्ञा के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करना चाहिए। पांच कामगुणों के प्रहाण के लिए भी इसी मार्ग का अभ्यास करना चाहिए।

(४) **पटिपत्ति-वग्ग**

[सुत्त – पठमपटिपत्ति, दुतियपटिपत्ति, विरद्ध, पारङ्गम, पठमसामञ्ञ, दुतियसामञ्ञ, पठमब्रह्मञ्ञ, दुतियब्रह्मञ्ञ, पठमब्रह्मचरिय, दुतियब्रह्मचरिय।]

इन सुत्तों में भगवान ने आर्य अष्टांगिक मार्ग का भिन्न-भिन्न प्रकार से विवेचन किया है –यही 'सम्यक प्रतिपत्ति' है और इस मार्ग पर आरूढ़ व्यक्ति कहलाता है 'सम्यक प्रतिपन्न'; जिनका यह मार्ग आरंभ होता है उनका सम्यक दुःखक्षयगामी आर्य मार्ग आरंभ हो जाता है, और जिनका अवरुद्ध हो जाता है उनका सम्यक दुःखक्षयगामी आर्य मार्ग भी अवरुद्ध हो जाता है; इसकी भावना करने और इसको बढ़ाने से कोई भी व्यक्ति अपार को पार कर जाता है; इसी मार्ग को कहते हैं 'श्रामण्य' अथवा 'ब्राह्मण्य' अथवा 'ब्रह्मचर्य'; इन्हीं के फल होते हैं स्रोतापत्ति, सकृदागामिता, अनागामिता तथा अरहत्व, और इनका अर्थ होता है राग-क्षय, द्वेष-क्षय तथा मोह-क्षय।

- **अञ्ञतित्थियपेय्याल-वग्ग**

[सुत्त – रागविराग, संयोजनप्पहानादि-सुत्तछक्क, अनुपादापरिनिब्बान।]

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि यदि अन्यतैर्थिक परिव्राजक आप लोगों से

पूछें कि श्रमण गौतम के शासन में किसलिए ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है, तो उनको कहना चाहिए – राग जीतने के लिए, बंधन दूर करने के लिए, अनुशय के समूल नाश के लिए, मार्ग का अंत जानने के लिए, आस्रवों के क्षय के लिए, विद्या के विमुक्तिफल का साक्षात्कार करने के लिए, ज्ञान-दर्शन के लिए अथवा उपादान से रहित हो निर्वाण पाने के लिए।

इन सब का उपाय यही है जिसे 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' कहते हैं।

- **सुरियपेय्याल-वग्ग**

[सुत्त – कल्याणमित्त, सीलसम्पदादि-सुत्तपञ्चक, योनिसोमनसिकारसम्पदा, कल्याणमित्त, सीलसम्पदादि-सुत्तपञ्चक, योनिसोमनसिकारसम्पदा।]

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि जैसे आकाश में ललाई का छा जाना सूर्योदय का पूर्व-लक्षण होता है, वैसे ही कल्याणमित्र का मिलना आर्य अष्टांगिक मार्ग के लाभ का पूर्व-लक्षण जानना चाहिए। ऐसे ही अन्य पूर्व-लक्षण हैं – शील-संपदा, छंद-संपदा, आत्म-संपदा, (सम्यक) दृष्टि-संपदा, अप्रमाद-संपदा तथा भली प्रकार चिंतन-मनन करने रूपी संपदा। कल्याणमित्र के संपर्क में आया हुआ व्यक्ति विवेक, विराग तथा निरोध का आश्रय लेकर आर्य अष्टांगिक मार्ग के विभिन्न अंगों को भावित करता और बढ़ाता ही है। इससे उसके राग, द्वेष और मोह सर्वथा दूर हो जाते हैं।

- **एक धम्मपेय्याल-वग्ग**

[सुत्त – कल्याणमित्त, सीलसम्पदादि-सुत्तपञ्चक, योनिसोमनसिकारसम्पदा, कल्याणमित्त, सीलसम्पदादि-सुत्तपञ्चक, योनिसोमनसिकारसम्पदा।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि आर्य अष्टांगिक मार्ग के लाभ के लिए एक धर्म बहुत उपकार करने वाला है, और वह है 'कल्याणमित्रता'। ऐसे ही अन्य धर्म हैं – शील-संपदा, छंद-संपदा, आत्म-संपदा, (सम्यक) दृष्टि-संपदा, अप्रमाद-संपदा तथा भली प्रकार चिंतन-मनन करने रूपी संपदा। इन संपदाओं से युक्त हुआ व्यक्ति आर्य अष्टांगिक मार्ग को भावित करेगा और बढ़ायेगा ही – ऐसी आशा रखनी चाहिए। इससे राग, द्वेष और मोह सर्वथा दूर हो जाते हैं।

• **दुतियएक धम्मपेय्याल-वग्ग**

[सुत्त – कल्याणमित्त, सीलसम्पदादि-सुत्तपञ्चक,
योनिसोमनसिकारसम्पदा, कल्याणमित्त,सीलसम्पदादि-सुत्तपञ्चक,
योनिसोमनसिकारसम्पदा।]

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि मैं किसी दूसरे ऐसे एक धर्म को भी नहीं देखता हूं जिससे न पाये गये आर्य अष्टांगिक मार्ग का लाभ हो जाय, या लाभ कर लिया गया मार्ग पूर्ण रूप से भावित हो जाय, जैसे कि यह 'कल्याणमित्रता'। शेष पूर्वानुसार।

• **गङ्गापेय्याल-वग्ग**

[सुत्त – पठमपाचीननिन्न, दुतियादिपाचीननिन्न-सुत्तचतुक्क,
छट्ठपाचीननिन्न, पठमसमुद्दनिन्न, दुतियादिसमुद्दनिन्न-सुत्तपञ्चक।]

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि जैसे गङ्गा, यमुना, अचिरवती, सरभू, मही जैसी नदियां पूर्व की ओर बहती हैं अथवा समुद्र की ओर बहती हैं, वैसे ही आर्य अष्टांगिक मार्ग को भावित करता और बढ़ाता हुआ भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वह भिक्षु विवेक,विराग और निरोध का आश्रय लेकर इस मार्ग के विभिन्न अंगों को भावित करता और बढ़ाता है।

• **दुतियगङ्गापेय्याल-वग्ग**

[सुत्त – पठमपाचीननिन्न, दुतियादिपाचीननिन्न-सुत्तपञ्चक, पठमसमुद्दनिन्न,
दुतियादिसमुद्दनिन्न-सुत्तपञ्चक, पठमपाचीननिन्न, दुतियादिपाचीननिन्न-सुत्तपञ्चक,
पठमसमुद्दनिन्न, दुतियादिसमुद्दनिन्न-सुत्तपञ्चक, पठमपाचीननिन्न,
दुतियादिपाचीननिन्न-सुत्तपञ्चक, पठमसमुद्दनिन्न, दुतियादिसमुद्दनिन्न-सुत्तपञ्चक।]

पूर्ववत। भगवान ने बतलाया कि कोई भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग को भावित करते और बढ़ाते हुए कैसे निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। यह होता है सम्यक दृष्टि, आदि इस मार्ग के विभिन्न अंगों को भावित करने और बढ़ाने से।

(५) अप्पमाद-वग्ग

[सुत्त – तथागत, पद, कूटादि-सुत्तपञ्चक, चन्दिमादि-सुत्ततिक।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि सभी प्राणियों में 'तथागत' अग्र (श्रेष्ठ) जाने जाते हैं, ऐसे ही सभी कुशल धर्मों में 'अप्रमाद' अग्र जाना जाता है। ऐसी आशा की जाती है कि अप्रमत्त भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग को भावित करेगा और इसे बढ़ायेगा ही।

भगवान ने अनेकानेक अन्य उपमाओं के द्वारा भी 'अप्रमाद' की अग्रता (श्रेष्ठता) को प्रतिपादित किया। उन्होंने कहा कि यह ऐसे ही है जैसे हाथी के पैर में सभी प्राणियों के पैर समा जाने से वह सभी पैरों में अग्र समझा जाता है; कूटागार के सभी धरण कूट की ओर झुके होने के कारण कूट उनमें अग्र समझा जाता है; छोटे-मोटे राजा चक्रवर्ती राजा के अधीन होने के कारण चक्रवर्ती राजा उनमें अग्र समझा जाता है; तारागण की प्रभा चंद्रमा की प्रभा की सोलहवीं कला के बराबर भी न होने से चंद्रमा उनमें अग्र समझा जाता है; सभी बुने गये कपड़ों में काशी का बना कपड़ा अग्र समझा जाता है; इत्यादि। ऐसे ही कुशल धर्मों में अग्र है 'अप्रमाद'।

(६) बलकरणीय-वग्ग

[सुत्त – बल, बीज, नाग, रुक्ख, कुम्भ, सूक, आकास, पठममेघ, दुतियमेघ, नावा, आगन्तुक, नदी।]

भगवान ने भिक्षुओं को कहा कि जितने भी कर्म बल से किये जाते हैं वे सभी पृथ्वी को आधार बना कर, पृथ्वी पर खड़े होकर किये जाते हैं, ऐसे ही शील को आधार बना कर, शील में प्रतिष्ठित होकर आर्य अष्टांगिक मार्ग को भावित किया जाता और बढ़ाया जाता है। ऐसा करने वाला व्यक्ति विवेक, विराग, निरोध का आश्रय लेकर निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। जैसे घड़े को उलट देने से वह सारा पानी बहा देता है, कुछ रोक नहीं रखता, वैसे ही ऐसा व्यक्ति सभी पापपूर्ण अकुशल धर्मों को छोड़ देता है, कुछ बचा नहीं रखता। ऐसे व्यक्ति में पूर्णता को प्राप्त होते हैं – चारों स्मृति-प्रस्थान, चारों सम्यक प्रधान, चारों ऋद्धियां, पांचों इंद्रियां, पांचों बल और सातों बोध्यंग।

भगवान ने यह भी कहा कि ऐसा व्यक्ति ज्ञानपूर्वक जानने योग्य धर्मों को ज्ञानपूर्वक जानता है, ज्ञानपूर्वक त्यागने योग्य धर्मों को ज्ञानपूर्वक त्यागता है, ज्ञानपूर्वक साक्षात्कार करने योग्य धर्मों का ज्ञानपूर्वक साक्षात्कार करता है और ज्ञानपूर्वक भावित किये जाने योग्य धर्मों को भावित करता है।

तदनंतर यह भी कहा कि ज्ञानपूर्वक जानने योग्य धर्म हैं – पांच

उपादानस्कंध; ज्ञानपूर्वक त्यागने योग्य धर्म हैं – अविद्या और भवतृष्णा; ज्ञानपूर्वक साक्षात्कार करने योग्य धर्म हैं –विद्या और विमुक्ति; और ज्ञानपूर्वक भावित करने योग्य धर्म हैं – शमथ और विपश्यना।

उन्होंने यह भी कहा कि यह संभव नहीं है कि इस प्रकार का कोई भिक्षु किसी भी प्रलोभन में पड़कर इस शिक्षा को छोड़ गृहस्थ बन जाय।

(७) **एसना-वग्ग**

[सुत्त – एसना, विधा, आसव, भव, दुक्खता, खिल, मल, नीघ, वेदना, तण्हा, तसिना।]

भगवान ने तीन एषणाओं (काम-एषणा, भव-एषणा, ब्रह्मचर्य-एषणा।), तीन अहंकारों ('मैं बड़ा हूं', 'मैं बराबर हूं', 'मैं छोटा हूं'), तीन आस्रवों (कामास्रव, भवास्रव, अविद्यास्रव), तीन भवों (कामभव, रूपभव, अरूपभव), तीन दुःखताओं (दुःख-दुःखता, संस्कार-दुःखता, विपरिणाम-दुःखता), तीन मलों (राग, द्वेष, मोह), तीन वेदनाओं (सुखद, दुःखद, अदुःखद-असुखद), इत्यादि की चर्चा करते हुए भिक्षुओं को बतलाया कि इन्हें जानने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग को भावित करना चाहिए। फिर यह भी बतलाया कि यह मार्ग क्या होता है।

(८) **ओघ-वग्ग**

[सुत्त – ओघ, योग, उपादान, गन्थ, अनुसय, कामगुण, नीवरण, उपादानक्खन्ध, ओरम्भागिय, उद्धम्भागिय।]

भगवान ने चार बाढ़ों (काम-बाढ़, भव-बाढ़, मिथ्यादृष्टि-बाढ़, अविद्या-बाढ़), चार योगों (काम-योग, भव-योग, मिथ्यादृष्टि-योग, अविद्या-योग), चार उपादानों (काम-उपादान, मिथ्यादृष्टि-उपादान, शीलव्रत-उपादान, आत्मवाद-उपादान), सात अनुशयों (कामराग, हिंसाभाव, मिथ्यादृष्टि, विचिकित्सा, मान, भवराग, अविद्या), पांच नीवरणों (कामच्छंद, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य, विचिकित्सा), इत्यादि की चर्चा करते हुए भिक्षुओं को बतलाया कि इन्हें जानने, इनकी परिज्ञा, क्षय और प्रहाण के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग को भावित करना चाहिए। फिर यह भी बतलाया कि यह मार्ग क्या होता है।

२. बोज्झङ्गसंयुत्त

यह संयुत्त अठारह वर्गों में विभाजित है, जिनमें एक सौ उन्यासी सुत्त हैं।

(१) पब्बत-वग्ग

[सुत्त – हिमवन्त, काय, सील, वत्थ, भिक्खु, कुण्डलिय, कूटागार, उपवान, पठमउप्पन्न, दुतियउप्पन्न।]

भगवान ने कहा कि भिक्षु शील के आधार पर प्रतिष्ठित हो, सात बोध्यंगों को भावित करते हुए, इन्हें बढ़ाते हुए धर्मों में महानता, विपुलता प्राप्त कर लेता है। यह इसलिए होता है क्योंकि वह विवेक, विराग, निरोध का आश्रय लेकर संबोधि के अंगों (स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि तथा उपेक्षा) का अभ्यास करता है, जिससे मुक्ति होती है।

उन्होंने यह भी कहा कि जैसे शरीर आहार मिलने पर ही खड़ा रहता है, आहार नहीं मिलने पर खड़ा नहीं रह सकता, वैसे ही सात बोध्यंग भी आहार मिलने पर ही खड़े होते हैं, आहार नहीं मिलने पर खड़े नहीं रह पाते। फिर यह भी बतलाया कि वे कौनसे आहार हैं जिनसे संबोधि का प्रत्येक अंग भावित और पूर्ण होता है। उन्होंने पांच नीवरणों के बारे में भी बतलाया कि वे कौनसे आहार पाकर उत्पन्न होते और वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि जो भिक्षु शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति और विमुक्ति-ज्ञानदर्शन से संपन्न होते हैं, उनका दर्शन भी उपकारक होता है, उनके उपदेशों को सुनना भी, उनके पास जाना भी, उनका सत्संग करना भी, उनसे शिक्षा लेना भी, उनसे प्रव्रजित हो जाना भी।

उन्होंने बतलाया कि संबोधि का प्रत्येक अंग कैसे, एक-के-बाद-एक भावित वा पूर्ण होता जाता है, और सातों अंगों के भावित और परिपूर्ण हो जाने पर कौन से सात अच्छे परिणामों की आशा रखनी चाहिए। ये अच्छे परिणाम हैं – अपने देखते-देखते निर्वाण-लाभ, अथवा मृत्यु के समय निर्वाण-लाभ, अथवा पांच नीचे वाले संयोजनों के क्षीण हो जाने से अपने भीतर निर्वाण की अनुभूति, अथवा इन संयोजनों के क्षीण हो जाने से आगे चल कर निर्वाण की अनुभूति, अथवा असंस्कार-परिनिर्वाण की प्राप्ति, अथवा ससंस्कार परिनिर्वाण की प्राप्ति, अथवा ऊर्ध्वस्रोत हो श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाला हो जाना।

एक समय आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को सात बोध्यंगों की जानकारी देते हुए बतलाया कि मैं जिस-जिस काल में जिस-जिस बोध्यंग से विहार करना चाहता हूं उस-उस काल में उसी-उसी बोध्यंग से विहरता हूं और उस समय वह प्रमाणरहित और पूरा-पूरा होता है। उसके उपस्थित रहते मुझे विदित रहता है कि 'यह उपस्थित है', और उसके च्युत होने पर विदित होता है कि 'यह च्युत हो रहा है'।

किसी भिक्षु की जिज्ञासा शांत करने के लिए भगवान ने उसे समझाया कि 'बोध' (ज्ञान) के लिए होने से 'बोध्यंग' इस नाम से पुकारे जाते हैं। विवेक, विराग, निरोध का आश्रय लेते हुए इन अंगों को भावित करनेसे काम, भव तथा अविद्या रूपी आस्रव चित्त को छोड़ देते हैं, और इनसे विमुक्त हुए को यह ज्ञान होता है – 'मैं विमुक्त हो गया!' और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेता है – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं।'

एक समय कुण्डलिय परिव्राजक ने भगवान से कहा कि बहुत से श्रमण-ब्राह्मण इस बारे में वाद-विवाद करते रहते हैं कि क्या श्रमण गौतम क्षीणास्रव होकर विहार करते हैं? इस पर भगवान ने उसे स्पष्ट किया कि विद्या और विमुक्ति के फल से युक्त हो बुद्ध विहार करते हैं। तत्पश्चात परिव्राजक के अनेकानेक प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने उसे सात बोध्यंगों, चार स्मृति-प्रस्थानों, सुचरितों, इंद्रिय-संवर आदि के बारे में बतलाया। इससे वह इतना आश्चर्यचकित एवं भावविभोर हुआ कि वह भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा भिक्षुसंघ की भी।

किन्हीं सुत्तों में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि जैसे कूटागार के सभी धरण कूट की ओर ही झुके होते हैं, वैसे ही सात बोध्यंगों को भावित करने, बढ़ाने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर झुका हुआ होता है; सात बोध्यंग सिद्ध हो जाने पर यह लक्षित होने लगता है कि इनसे सुखविहार संभव हो गया है; सम्यक संबुद्ध की उत्पत्ति के बिना सात अनुत्पन्न बोध्यंग नहीं होते, जिसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि बुद्ध के विनय के अभाव में ये नहीं होते।

(२) गिलान-वग्ग

[सुत्त – पाण, पठमसूरियूपम, दुतियसूरियूपम, पठमगिलान, दुतियगिलान, ततियगिलान, पारङ्गम, विरद्ध, अरिय, निब्बिदा।]

इन सुत्तों में मुख्यतया इन विषयों की चर्चा है –

* शील के आधार पर प्रतिष्ठित होकर ही सात बोध्यंगों का अभ्यास किया जाता है।

* कल्याणमित्र से समागम होना अथवा सही प्रकार का चिंतन-मनन आरंभ होना इन बोध्यंगों की उत्पत्ति का पूर्वलक्षण होता है।

* भगवान ने इन बोध्यंगों को भावित करने और इन्हें बढ़ाने के बारे में सम्यक रूप से बतलाया है, इससे निर्वाण की प्राप्ति होती है।

* बोध्यंगों को भावित करने तथा बढ़ाने का काम आरंभ करने के साथ ही सम्यक दु:खक्षयगामी मार्ग आरंभ हो जाता है और यह काम रुकते ही यह मार्ग भी रुक जाता है।

(३) उदायि-वग्ग

[सुत्त – बोधाय, बोज्झङ्गदेसना, ठानिय, अयोनिसोमनसिकार, अपरिहानिय, तण्हक्खय, तण्हानिरोध, निब्बेधभागिय, एकधम्म, उदायि।]

इन सुत्तों में मुख्य रूप से यह बतलाया गया है कि –

* 'बोध' (ज्ञान) कराने के कारण बोध्यंग' इस नाम से पुकारे जाते हैं।

* नीवरणों (कामराग, हिंसाभाव, आलस्य, औद्धत्य-कौकृत्य तथा विचिकित्सा) को स्थान देने वाले धर्मों का मनन करने से अनुत्पन्न नीवरण उत्पन्न हो जाते हैं, और उत्पन्न हुए और बढ़ जाते हैं। बोध्यंगों को स्थान देने वाले धर्मों का मनन करने से वे भी अनुत्पन्न होने पर उत्पन्न हो जाते हैं, और उत्पन्न हुए और बढ़ जाते हैं।

* सात क्षय न होने वाले धर्म हैं – यही सात बोध्यंग।

* तृष्णा के क्षय (अथवा निरोध, अथवा निर्वेधन) का मार्ग है – यही सात बोध्यंग।

* सात बोध्यंगों को छोड़ एक भी ऐसा धर्म नहीं है जिसको भावित करने और बढ़ाने से संयोजनीय (बंधनकारक) धर्मों का प्रहाण संभव होता हो।

अंतिम सुत्त में भगवान ने आयुष्मान उदायी को आश्वस्त किया है कि उसने सात बोध्यंगों को भावित करने और बढ़ाने का जो मार्ग पा लिया है उसमें विहार

करते हुए उसे परमार्थ मिल जायगा, और वह प्रज्ञापूर्वक जान लेगा – 'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं ।'

(४) नीवरण-वग्ग

[सुत्त – पठमकुसल, दुतियकुसल, उपक्किलेस, अनुपक्किलेस, अयोनिसोमनसिकार, योनिसोमनसिकार, वुद्धि, आवरणनीवरण, रुक्ख, नीवरण।]

ऐसे पांच नीवरण हैं जो अंधा बना देते हैं, ज्ञान हर लेते हैं, प्रज्ञा उत्पन्न नहीं होने देते, परेशानी में डाल देते हैं और निर्वाण तक पहुँचने नहीं देते। ये नीवरण हैं – कामराग, हिंसाभाव, आलस्य, औद्धत्य-कौकृत्य तथा विचिकित्सा।

सात बोध्यंग हैं जो चक्षु देने वाले, ज्ञानकारक प्रज्ञा बढ़ाने वाले, परेशानी से बचाने वाले और निर्वाण तक पहुँचाने वाले हैं। ये बोध्यंग हैं – स्मृति-संबोध्यंग, धर्मविचय-संबोध्यंग, वीर्य-संबोध्यंग, प्रीति-संबोध्यंग, प्रश्रब्धि-संबोध्यंग, समाधि-संबोध्यंग तथा उपेक्षा-संबोध्यंग।

अप्रमत्त भिक्षु इन सात बोध्यंगों को भावित करता और बढ़ाता ही है। ऐसा करने से विद्या और विमुक्ति के फल का साक्षात्कार होता है।

(५) चक्कवत्ति-वग्ग

[सुत्त – विधा, चक्कवत्ति, मार, दुप्पञ्ञ, पञ्ञवन्त, दलिद्द, अदलिद्द, आदिच्च, अज्झत्तिक, बाहिरङ्ग।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि –

जैसे चक्रवर्ती राजा के होने पर सात रत्न प्रकट होते हैं, वैसे ही तथागत के होने पर सात बोध्यंग प्रकट होते हैं।

मार की सेना को खदेड़ने का उपाय है – यही सात बोध्यंग।

किसी भी काल में अभिमान को छोड़ा जा सकता है, तो केवल सात बोध्यंगों को भावित करके वा बढ़ा कर ही।

जो इन बोध्यंगों को भावित करते वा बढ़ाते हैं, वे कहलाते हैं – 'प्रज्ञावान निर्भीक' अथवा 'अदरिद्र'। जो ऐसा नहीं करते हैं, वे कहलाते हैं – 'दुष्प्रज्ञ, बहरे-गूंगे' अथवा 'दरिद्र'।

(६) साक च्छ-वग्ग

[सुत्त – आहार, परियाय, अग्गि, मेत्तासहगत, सङ्गारव, अभय।]

भगवान ने भिक्षुओं को पांच नीवरणों और सात बोध्यंगों के 'आहार' और 'अनाहार' का उपदेश दिया।

उन्होंने उनको यह भी बतलाया कि जब अन्यतैर्थिक पारिव्राजक उन्हें यह कहें कि हम भी पांच नीवरणों और सात बोध्यंगों के बारे में अपने श्रावकों को वैसा ही उपदेश देते हैं जैसा कि श्रमण गौतम, तो उन्हें कहना चाहिए कि एक ऐसा भी दृष्टिकोण है जिसके अनुसार 'पांच' नीवरण 'दस', और 'सात' बोध्यंग 'चौदह' हो जाते हैं। वे परिव्राजक इस बात को समझा नहीं पायेंगे।

ऐसे ही उन परिव्राजकों से यह भी पूछना चाहिए कि जिस समय चित्त संकोची होता है, उस समय किन बोध्यंगों को भावित करना चाहिए और किन्हें नहीं ? और जब चित्त चंचल होता है, तब किन्हें भावित करना चाहिए और किन्हें नहीं? वे परिव्राजक इसे भी नहीं समझा पायेंगे।

तत्पश्चात भगवान ने स्वयं इस सारे प्रकरण पर विस्तार से प्रकाश डाला।

ऐसे ही चार ब्रह्मविहारों को लेकर यदि अन्यतैर्थिक परिव्राजक यह कहें कि हम भी अपने श्रावकों को वैसा ही धर्मोपदेश करते हैं जैसा कि श्रमण गौतम, तो उनसे पूछना चाहिए कि किस प्रकार भावना किये गये किस ब्रह्मविहार से चित्त की विमुक्ति के क्या परिणाम होते हैं? वे परिव्राजक इसे नहीं समझा पायेंगे।

भगवान ने इस प्रकरण को भी स्पष्ट किया।

उन्होंने सङ्गारव ब्राह्मण के इस प्रश्न का भी अनेक उपमाएं देते हुए समाधान किया कि कभी-कभी लंबे समय तक स्वाध्याय किये हुए मंत्र भी नहीं सूझते, और कभी-कभी लंबे समय तक स्वाध्याय न किये हुए मंत्र भी झट सूझ जाते हैं। उन्होंने कहा कि चित्त के नीवरणों द्वारा अभिभूत होने अथवा न होने से, क्रमशः, ये दो प्रकार की स्थितियां पैदा होती हैं। सात आवरणरहित बोध्यंगों को भावित करने और बढ़ाने से विद्या और विमुक्ति के फल का साक्षात्कार होता है। यह सुनकर वह ब्राह्मण आश्चर्यचकित एवं भावविभोर हो भगवान की शरण चला गया, और धर्म तथा भिक्षुसंघ की भी।

भगवान ने राजकुमार अभय को भी स्पष्ट किया कि परम ज्ञान का अ-दर्शन

अथवा दर्शन स-कारण ही होता है, अ-कारण नहीं। इस संदर्भ में उन्होंने उसे पांच नीवरणों और सात बोध्यंगों की जानकारी दी।

(७) आनापान-वग्ग

[सुत्त – अट्ठिकमहप्फल, अञ्ञतरफल, महत्थ, योगक्खेम, संवेग, फासुविहार, पुळवक, विनीलक, विच्छिद्दक, उद्धुमातक, मेत्ता, करुणा, मुदिता, उपेक्खा, आनापान।]

इन सुत्तों में निम्नांकित को भावित करने और बढ़ाने से महान फल प्राप्त होना बतलाया गया है –

अस्थिक संज्ञा, पुळवक संज्ञा, विनीलक संज्ञा, विच्छिद्रक संज्ञा, उद्धमातक संज्ञा, मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा तथा आनापान।

इनको भावित करने और बढ़ाने से दो में से एक फल अवश्य प्राप्त होता है – इसी जीवन में निर्वाण-लाभ, अथवा कुछ उपादान शेष रह जाने पर अनागामिता।

इस प्रकार महार्थ की सिद्धि, महा-योगक्षेम, महा-संवेग और सुख-विहार होता है।

(८) निरोध-वग्ग

[सुत्त – असुभ, मरण, आहारेपटिकूल, अनभिरति, अनिच्च, दुक्ख, अनत्त, पहान, विराग, निरोध।]

पिछले वर्ग के सुत्तों के समान निम्नांकित को भी भावित करने और बढ़ाने से वैसा ही फल प्राप्त होना बतलाया गया है –

अशुभसंज्ञा, मरणसंज्ञा, प्रतिकूलसंज्ञा, सारे लोक में अनभिरतिसंज्ञा, अनित्यसंज्ञा, दुःखसंज्ञा, अनात्मसंज्ञा, प्रहाणसंज्ञा, विरागसंज्ञा तथा निरोधसंज्ञा।

(९) गङ्गापेय्याल-वग्ग

[सुत्त – गङ्गानदीआदि-सुत्तद्वादसक]

इन सुत्तों में बतलाया गया है कि जैसे गङ्गा आदि नदियां पूर्व की ओर बहती हैं, वैसे ही सात बोध्यंगों को भावित करने और बढ़ाने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

(१०) **अप्पमाद-वग्ग** [सुत्त -तथागतादि-सुत्तदसक]

(११) **बलक रणीय-वग्ग** [सुत्त -बलादि-सुत्तद्वादसक]

(१२) **एसना-वग्ग** [सुत्त -एसनादि-सुत्तनवक]

(१३) **ओघ-वग्ग** [सुत्त -ओघादि-सुत्तदसक]

(१४) **पुनगङ्गपेय्याल-वग्ग** [सुत्त -पुनगङ्गानदीआदि-सुत्तद्वादस]

(१५) **पुनअप्पमाद-वग्ग** [सुत्त -तथागतादि-सुत्तदसक]

(१६) **पुनबलक रणीय-वग्ग** [सुत्त -पुनबलादि-सुत्तद्वादसक]

(१७) **पुनएसना-वग्ग** [सुत्त -पुनएसनादि-सुत्तएक ादसक]

(१८) **पुनओघ-वग्ग** [सुत्त -पुनओघादि-सुत्तदसक]

इन वर्गों के सुत्तों क ा सार पहले आये हुए सुत्तों के अनुसार ही बोध्यंगों के संदर्भ में ज्ञातव्य है।

३. सतिपट्ठानसंयुत्त

यह संयुत्त दस वर्गों में विभाजित है, जिनमें एक सौ दस सुत्त हैं।

(१) अम्बपालि-वग्ग

[सुत्त - अम्बपालि, सति, भिक्खु, साल, अकुसलरासि, सकुणग्घि, मक्कट, सूद, गिलान, भिक्खुनुपस्सय।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि जीवों की विशुद्धि, शोक और विलाप के अतिक्रमण, दुःख और दौर्मनस्य के अस्तगमन, सत्य की प्राप्ति और निर्वाण के साक्षात्कार के लिए एक ही मार्ग है - और वह है चार स्मृतिप्रस्थान।

चार स्मृतिप्रस्थान हैं -उद्योगशील, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बने रह कर काय में कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करना।

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि तुम्हारे लिए मेरी यही शिक्षा है कि तुम स्मृतिमान और संप्रज्ञानी होकर विहार करो। फिर यह भी समझाया कि कोई स्मृतिमान कैसे होता है और संप्रज्ञानी कैसे?

कोई स्मृतिमान होता है काय में कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करने से। कोई संप्रज्ञानी होता है शरीर की हर परिस्थिति में (वेदनाओं के स्तर पर) अपने बारे में संपूर्ण जानकारी बनाये रखने से।

स्मृति-प्रस्थान के परिप्रेक्ष्य में भगवान ने यह भी कहा -

* इसको भावित करने से रात-दिन कुशल धर्मों में वृद्धि ही होती है, हानि नहीं।

* निर्वाण-लाभ किये हुए और निर्वाण की खोज में लगे हुए भिक्षु भी इसका अभ्यास करते हैं, और नये प्रव्रजित हुए भिक्षुओं को भी बतलाना चाहिए कि इसका भली प्रकार अभ्यास कर इसमें प्रतिष्ठित हो जायँ।

* पांच नीवरणों को 'अकुशलराशि' (पाप का ढेर) और चार स्मृतिप्रस्थानों को 'कुशलराशि' (पुण्य का ढेर) कहना समीचीन ही है।

* भिक्षु के लिए यही अपना बपौती ठांव है, वह इसी को अपनी गोचरभूमि बनाये, इससे परे न जाये। ऐसा करने से वह 'मार' की मार से बचा रहता है।

भगवान ने आयुष्मान आनन्द को स्पष्ट किया कि मैंने पूरी तरह खोलकर धर्म को समझा दिया है। मेरी कोई आचार्यमुष्टि नहीं है। अतः किसी का यह सोचना कि मैं भिक्षुसंघ का संचालन करूंगा, अथवा भिक्षुसंघ मेरे उद्देश्य से है, उचित नहीं है। सब अपने आपको अपना द्वीप (शरण-स्थल) बनायें, आत्मनिर्भर हों, किसी दूसरे के भरोसे न रहें। धर्म को अपना द्वीप बनायें, धर्म की शरण ग्रहण करें, किसी अन्य की नहीं। फिर यह भी समझाया कि ऐसा होता कैसे है? ऐसा होता है काय में कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करने से।

भगवान ने आयुष्मान आनन्द को स्मृति-प्रस्थान की प्रणिहित और अप्रणिहित भावना के बारे में भी मार्गदर्शन किया।

(२) नालन्द-वग्ग

[सुत्त – महापुरिस, नालन्द, चुन्द, उक्कचेल, बाहिय, उत्तिय, अरिय, ब्रह्म, सेदक, जनपदकल्याणी।]

भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त के एक प्रश्न के उत्तर में उन्हें बतलाया कि चित्त के विमुक्त होने से कोई महापुरुष होता है, और चित्त के विमुक्त नहीं होने से महापुरुष नहीं होता है। चित्त की विमुक्ति होती है काय में कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करने से। ऐसा करने से चित्त रागरहित हो जाता है, और उपादान-रहित हो आस्रवों से मुक्त हो जाता है।

आयुष्मान सारिपुत्त ने भगवान के समक्ष यह स्वीकारोक्ति की कि मुझे सभी बुद्धों का चेतःपरिज्ञान नहीं है, किंतु सभी की धर्म-समानता मुझे विदित है। अतीत काल के बुद्धों ने पांचों नीवरणों को दूर कर, प्रज्ञा द्वारा चित्त के मैल हटा, चारों स्मृति-प्रस्थानों में चित्त को सु-प्रतिष्ठित कर, सात बोध्यंगों की यथार्थ से भावना कर, सर्वश्रेष्ठ सम्यक संबोधि को प्राप्त किया था। भविष्यकाल में भी बुद्ध ऐसे ही सम्यक संबोधि प्राप्त करेंगे। और आप भगवान ने भी इसे इसी तरह प्राप्त किया है।

भगवान को आयुष्मान सारिपुत्त के परिनिर्वाण का समाचार देते हुए आयुष्मान आनन्द शोक-विह्वल हो उठे। इस पर भगवान ने उनका ध्यान अपने

उपदेश की ओर दिलाया कि सभी प्रियों से वियोग होता ही रहता है। जो कुछ उत्पन्न हुआ है वह विनाश को प्राप्त न हो – ऐसा नहीं हो सकता। अतः अपने आप को अपना द्वीप बनाओ, आत्मनिर्भर होओ, किसी दूसरे के भरोसे मत रहो। धर्म को अपना द्वीप बनाओ, धर्म की शरण ग्रहण करो, किसी अन्य की नहीं।

सारिपुत्त और मोग्गल्लान के परिनिर्वाण के कुछ ही दिन बाद भगवान ने शांत बैठे भिक्षुसंघ को संबोधित करते हुए कहा कि इन दोनों के परिनिवृत्त हो जाने से यह परिषद सूनी-सी लग रही है। जहां ये विहार किया करते, वह स्थान भरा-भरा लगा करता था। अस्तु, जो सम्यक संबुद्ध अतीत काल में हुए, उनके भी ऐसे ही दो अग्रश्रावक होते थे। जो भविष्यकाल में होंगे, उनके भी ऐसे ही दो अग्रश्रावक होंगे। इन दो अग्रश्रावकों के परिनिवृत्त हो जाने पर बुद्ध को कोई शोक अथवा विलाप नहीं है। जो कुछ उत्पन्न हुआ है, वह विनाश को प्राप्त न हो – ऐसा नहीं हो सकता। अतः अपने आप को अपना द्वीप बनाओ।

भगवान ने आयुष्मान बाहिय को बतलाया कि यदि तुम्हारा शील विशुद्ध और दृष्टि ऋजु हो जाय, तो तुम शील के आधार पर प्रतिष्ठित हो, चारों स्मृति-प्रस्थान भावित कर लोगे। इससे रात-दिन तुम्हारी वृद्धि ही होगी, हानि नहीं। तदनुसार साधना-रत हो, आयुष्मान बाहिय ने निर्वाण का साक्षात्कार कर लिया। एक अन्य व्यक्ति –आयुष्मान उत्तिय –भी इसी प्रकार निर्वाण का साक्षात्कार करने में सफल हुआ।

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि चारों स्मृति-प्रस्थानों को भावित करने और बढ़ाने से दुःख का पूरी तरह से क्षय हो जाता है। एक अवसर पर ब्रह्मा सहम्पति ने भी कहा कि इसी मार्ग से पहले लोग तर चुके हैं, और जो बाढ़ को तैर रहे हैं वे इसे तर जायेंगे।

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि अपनी रक्षा करने वाला दूसरे की रक्षा करता है, और दूसरे की रक्षा करने वाला अपनी रक्षा करता है। अतः 'अपनी रक्षा करूंगा' – ऐसे स्मृति-प्रस्थान का अभ्यास करो; 'दूसरे की रक्षा करूंगा' – ऐसे स्मृति-प्रस्थान का अभ्यास करो। फिर यह भी समझाया कि यह रक्षा किस प्रकार होती है।

उन्होंने जनपदकल्याणी की उपमा देते हुए भिक्षुओं को कायगता स्मृति को भावित करने के बारे में भी समझाया।

(३) सीलट्ठिति-वग्ग

[सुत्त – सील, चिरट्ठिति, परिहान, सुद्ध, अञ्ञतरब्राह्मण, पदेस, समत्त, लोक , सिरिवड्ढ, मानदिन्न।]

इन सुत्तों में मुख्य रूप से बतलाया गया है कि –

* भगवान ने कु शल शीलों का प्रतिपादन चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना के लिए कि या।

* चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना क रने और इसे बढ़ाते रहने से बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात धर्म चिरका ल तक बना रहता है।

* चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना क रने और इसे बढ़ाते रहने से सद्धर्म की परिहानि नहीं होती।

* चार स्मृति-प्रस्थानों की कु छ भी भावना क र लेने से 'शैक्ष्य' और पूरी-पूरी भावना क र लेने से 'अशैक्ष्य' होता है।

* चार स्मृति-प्रस्थानों को भावित क रने और बढ़ाने से आयुष्मान अनुरुद्ध को सहस्र लोगों का महाभिज्ञान हुआ।

* गृहपति सिरिवड्ढ और मानदिन्न ने यह क हक र अनागामी फ लप्राप्त होने की बात क ही कि भगवान ने जो नीचे के पांच संयोजन (बंधन) बतलाये, उनमें से हम अपने में कु छ भी अप्रहीण हुआ नहीं देखते।

(४) अननुस्सुत-वग्ग

[सुत्त – अननुस्सुत, विराग, विरद्ध, भावित, सति, अञ्ञा, छन्द, परिञ्ञात, भावना, विभङ्ग।]

इन सुत्तों में मुख्यतया प्रतिपादित कि या गया है कि –

* भगवान को 'का य में का यानुपश्यना', 'वेदनाओं में वेदनानुपश्यना', 'चित्त में चित्तानुपश्यना' और 'धर्मों में धर्मानुपश्यना' – इन पहले क भी नहीं सुने गये धर्मों में चक्षु उत्पन्न हुआ, ज्ञान जागा, प्रज्ञा जागी, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। उन्होंने इन धर्मों को भावित क र लिया।

* इन चार स्मृति-प्रस्थानों को भावित क रने और बढ़ाने से सिद्ध होते हैं – एका ंत निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि और निर्वाण।

* जिन किन्हींके चार स्मृति-प्रस्थान रुक जाते हैं, उनका सम्यक दु:खक्षयगामी मार्ग रुक जाता है। जिन किन्हीं के ये चार स्मृति-प्रस्थान आरंभ हो जाते हैं, उनका सम्यक दु:खक्षयगामी मार्ग भी आरंभ हो जाता है।

* इन चार स्मृति-प्रस्थानों को भावित कर और बढ़ा कर कोई अपार को भी पार कर जाता है।

* भगवान की यही शिक्षा है कि स्मृतिमान और संप्रज्ञानी होकर विहार करे।

* स्मृति-प्रस्थानों को भावित करने और बढ़ाने से दो में से एक फल प्राप्त होने की आशा करनी चाहिए – इसी जीवन में निर्वाण-लाभ अथवा उपादान के कुछ शेष रह जाने पर अनागामिता।

* चार स्मृति-प्रस्थानों का अभ्यास करने से तृष्णा जाती रहती है, जिससे निर्वाण का साक्षात्कार हो जाता है।

* स्मृति-प्रस्थानों की भावना से तात्पर्य होता है काय, वेदनाओं, चित्त तथा धर्मों में इनके उत्पाद, व्यय और उत्पाद-व्यय को देखते हुए विहार करना। स्मृति-प्रस्थानों का भावनागामी मार्ग है – यही आर्य अष्टांगिक मार्ग।

(५) अमत-वग्ग

[सुत्त – अमत, समुदय, मग्ग, सति, कुसलरासि, पातिमोक्खसंवर, दुच्चरित, मित्त, वेदना, आसव।]

इन सुत्तों में भगवान ने प्रज्ञप्त किया है कि –

चार स्मृति-प्रस्थानों में चित्त को भली प्रकार प्रतिष्ठित करने से निर्वाण सन्निकट आ जाता है।

आहार से काय का समुदय और इसके निरोध से काय का निरोध; स्पर्श से वेदना का समुदय और इसके निरोध से वेदना का निरोध; नाम-रूप से चित्त का समुदय और इसके निरोध से चित्त का निरोध; और मनन करने से धर्मों का समुदय और इसके निरोध से धर्मों का निरोध हो जाता है।

जीवों की विशुद्धि, शोक और विलाप के अतिक्रमण, दु:ख और दौर्मनस्य के अस्तगमन, सत्य की प्राप्ति और निर्वाण के साक्षात्कार के लिए एक ही मार्ग है – और वह है चार स्मृति-प्रस्थान।

भिक्षु स्मृतिमान होकर विहार करे – यही मेरी शिक्षा है।

चार स्मृति-प्रस्थान केवल पुण्य का ढेर है।

भिक्षु प्रातिमोक्ष-संवर से संवृत हो विहार करें –आचार-विचार से संपन्न हो, थोड़ी-सी भी बुराई में भय देखने वाले होकर और शिक्षापदों को मानते हुए। इस प्रकार शील में प्रतिष्ठित होकर वे चार स्मृति-प्रस्थानों को भावित करने योग्य हो जाते हैं।

कायिक ,वाचिक और मानसिक दुश्चरित्र को छोड़कर कायिक ,वाचिक और मानसिक सुचरित्र को भावित करना चाहिए। ऐसा करने से, शील में प्रतिष्ठित हो, चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करना संभव हो जाता है।

अपने अभिन्न मित्रों वा बंधु-बांधवों को चार स्मृति-प्रस्थानों के बारे में बतलाकर इनमें प्रतिष्ठित करना चाहिए।

तीन प्रकार की वेदनाएं हैं – सुखद, दु:खद और अदु:खद-असुखद। इन वेदनाओं के परिज्ञान के लिए चार स्मृति-प्रस्थानों को भावित करना चाहिए।

तीन आस्रव हैं –कामास्रव, भवास्रव तथा अविद्यास्रव। इन आस्रवों के प्रहाण के लिए चार स्मृति-प्रस्थानों को भावित करना चाहिए।

(६) **गङ्गापेय्याल-वग्ग** [सुत्त –गङ्गानदीआदि-सुत्तद्वादसक]

(७) **अप्पमाद-वग्ग** [सुत्त –तथागतादि-सुत्तदसक]

(८) **बलकरणीय-वग्ग** [सुत्त –बलादि-सुत्तद्वादसक]

(९) **एसना-वग्ग** [सुत्त –एसनादि-सुत्तएकादसक]

(१०) **ओघ-वग्ग** [सुत्त –उद्धम्भागियादि-सुत्तदसक]

इन वर्गों के सुत्तों में इन्हीं शीर्षकों के साथ पहले आये हुए सुत्तों के समान चार स्मृति-प्रस्थानों को लेकर धर्म समझाया गया है।

४. इंद्रियसंयुत्त

यह संयुत्त सत्रह वर्गों में विभाजित है, जिनमें एक सौ अस्सी सुत्त हैं।

(१) सुद्धिक-वग्ग

[सुत्त – सुद्धिक, पठमसोतापन्न, दुतियसोतापन्न, पठमअरहन्त, दुतियअरहन्त, पठमसमणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, दट्ठब्ब, पठमविभङ्ग, दुतियविभङ्ग ।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि इंद्रियां पांच होती हैं – श्रद्धा-इंद्रिय, वीर्य-इंद्रिय, स्मृति-इंद्रिय, समाधि-इंद्रिय और प्रज्ञा-इंद्रिय। इन पांच इंद्रियों के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष और इनसे निःसरण (छुटकारे) को यथार्थतः जानने से आर्यश्रावक 'स्रोतापन्न' कहलाने लगता है और ऐसा यथार्थतः जानकर उपादान-रहित हो विमुक्त हो जाये, तो 'अर्हत' कहलाता है। जो श्रमण अथवा ब्राह्मण ऐसा यथार्थतः नहीं जानते, वे इस जीवन में श्रमणत्व अथवा ब्राह्मणत्व का स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर विहार नहीं कर पाते हैं।

भगवान ने यह भी बतलाया कि किस इंद्रिय को कहां देखा जाता है? श्रद्धा-इंद्रिय को देखा जाता है चार स्रोतापत्ति अंगों में, वीर्य-इंद्रिय को चार सम्यक प्रधानों में, स्मृति-इंद्रिय को चार स्मृति-प्रस्थानों में, समाधि-इंद्रिय को चार ध्यानों में, और प्रज्ञा-इंद्रिय को चार आर्य सत्यों में। फिर उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि ये इंद्रियां क्या होती हैं।

(२) मुदुतर-वग्ग

[सुत्त – पटिलाभ, पठमसङ्खित्त, दुतियसङ्खित्त, ततियसङ्खित्त, पठमवित्थार, दुतियवित्थार, ततियवित्थार, पटिपन्न, सम्पन्न, आसवक्खय।]

भगवान ने पांच इंद्रियों के बारे में बतलाया कि ये क्या होती हैं? बुद्ध के बुद्धत्व में श्रद्धा कहलाती है 'श्रद्धा-इंद्रिय'; चार सम्यक प्रधानों को लेकर वीर्य का लाभ 'वीर्य-इंद्रिय'; चार स्मृति-प्रस्थानों को लेकर स्मृति का लाभ 'स्मृति-इंद्रिय'; आर्यश्रावक द्वारा निर्वाण को आलंबन कर समाधि, चित्त की एकाग्रता का लाभ 'समाधि-इंद्रिय'; और आर्यश्रावक द्वारा धर्मों के उत्पाद-व्यय

के स्वभाव को प्रज्ञापूर्वक जानने से बंधनों का कट जाना और दु:खों का बिल्कुल क्षय हो जाना 'प्रज्ञा-इंद्रिय' ।

इन इंद्रियों के परिपूर्ण हो जाने से कोई व्यक्ति 'अर्हत' हो जाता है, कुछ कमी रह जाने पर 'अनागामी', और कमी रहने पर 'सकृदागामी', और इसी प्रकार अधिकाधिक कमी रहने पर उतरते क्रम से 'स्रोतापन्न', 'धर्मानुसारी' तथा 'श्रद्धानुसारी'। इसका कारण होता है – इंद्रियों की, फल की, बल की और पुरुषों की भिन्नता। जिस किसी की ये पांच इंद्रियां सर्वथा न के बराबर होती हैं, उसे 'बाहर का, अज्ञ' कहा जाता है।

भगवान ने सभी इंद्रियों के परिपूर्ण हो जाने से किसी व्यक्ति का 'अर्हत' हो जाना तो बतलाया ही, पर थोड़ी-थोड़ी कमी रह जाने पर उतरते क्रम से मुमुक्षुओं को इन संज्ञाओं से भी अभिहित किया – 'अन्तरा परिनिर्वायी', 'उपहत्य परिनिर्वायी', 'असंस्कार परिनिर्वायी', 'ससंस्कार परिनिर्वायी', 'ऊर्ध्वस्रोत-अकनिष्ठगामी', 'सकृदागामी', 'धर्मानुसारी' तथा 'श्रद्धानुसारी'।

भगवान ने स्पष्ट किया कि कोई 'इंद्रिय-संपन्न' कैसे कहलाता है, और यह भी बतलाया कि पांच इंद्रियों के भावित होने और बहुलीकरण से भिक्षु आस्रवों के क्षीण हो जाने से अनास्रव चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगता है।

(३) छळिंद्रिय-वग्ग

[सुत्त – पुनब्भव, जीवितिंद्रिय, अञ्ञिंद्रिय, एकबीजी, सुद्धक, सोतापन्न, अरहन्त, सम्बुद्ध, पठमसमणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण।]

भगवान ने पूर्व-वर्णित पांच इंद्रियों के अतिरिक्त छः इंद्रियों की बात भी कही है। ये छः इंद्रियां हैं – चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय तथा मन। उन्होंने बतलाया कि जब तक मैंने इन पांच अथवा छः इंद्रियों के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष और इनसे नि:सरण को यथार्थत: नहीं जान लिया तब तक मैंने अपने सम्यक संबुद्ध होने का दावा नहीं किया।

भगवान ने तीन इंद्रियों का होना भी बतलाया – स्त्री-इंद्रिय, पुरुष-इंद्रिय, जीवित-इंद्रिय; अथवा 'अज्ञात को जानूंगा'-इंद्रिय, 'ज्ञान-इंद्रिय' तथा 'परमज्ञान-इंद्रिय'।

(४) सुखिंद्रिय-वग्ग

[सुत्त – सुद्धिक, सोतापन्न, अरहन्त, पठमसमणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, पठमविभङ्ग, दुतियविभङ्ग, ततियविभङ्ग, कट्ठोपम, उप्पटिपाटिक।]

भगवान ने पांच इंद्रियों का होना बतलाया – सुख-इंद्रिय, दु:ख-इंद्रिय, सौमनस्य-इंद्रिय, दौर्मनस्य-इंद्रिय और उपेक्षा-इंद्रिय। इन पांच इंद्रियों के समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, दोष और इनसे निःसरण (छुटकारे) को यथार्थतः जानने से आर्यश्रावक 'स्रोतापन्न' कहलाने लगता है और ऐसा यथार्थतः जानकर उपादान-रहित हो विमुक्त हो जाय, तो 'अरहंत' कहलाता है। जो श्रमण अथवा ब्राह्मण ऐसा यथार्थतः नहीं जानते, वे इस जीवन में श्रमणत्व अथवा ब्राह्मणत्व को स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर विहार नहीं कर पाते हैं।

काय-संस्पर्श से होने वाली सुखद वेदना कहलाती है 'सुख-इंद्रिय'; काय-संस्पर्शसे होने वाली दु:खद वेदना 'दु:ख-इंद्रिय'; मनः-संस्पर्श से होने वाली सुखद अनुभूति 'सौमनस्य-इंद्रिय'; मनः-संस्पर्श से होने वाली दु:खद अनुभूति 'दौर्मनस्य-इंद्रिय'; और कायिक अथवा मानसिक सुख या दु:ख का न होना 'उपेक्षा-इंद्रिय'।

'सुख-इंद्रिय' और 'सौमनस्य-इंद्रिय' की वेदना सुखद जाननी चाहिए; 'दु:ख-इंद्रिय' और 'दौर्मनस्य-इंद्रिय' की वेदना दु:खद; और 'उपेक्षा-इंद्रिय' की वेदना अदु:खद-असुखद।

इस प्रकार ये पांच इंद्रियां पांच होकर भी तीन (सुख, दु:ख और उपेक्षा) हो जाती हैं, और एक दृष्टिकोण से तीन होकर पांच हो जाती हैं।

भगवान ने इन इंद्रियों की उत्पत्ति और निरोध पर भी प्रकाश डाला। सुख-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से उत्पन्न होती है 'सुख-इंद्रिय'; दु:ख-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से 'दु:ख-इंद्रिय'; सौमनस्य-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से 'सौमनस्य-इंद्रिय'; दौर्मनस्य-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से 'दौर्मनस्य-इंद्रिय'; और उपेक्षा-वेदनीय स्पर्श के प्रत्यय से 'उपेक्षा-इंद्रिय'। 'दु:ख-इंद्रिय' पूर्णतया निरुद्ध हो जाती है प्रथम ध्यान में; 'दौर्मनस्य-इंद्रिय' द्वितीय ध्यान में; 'सुख-इंद्रिय' तृतीय ध्यान में; 'सौमनस्य-इंद्रिय' चतुर्थ ध्यान में; और 'उपेक्षा-इंद्रिय' संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था प्राप्त हो जाने पर।

(५) जरा-वग्ग

[सुत्त – जराधम्म, उण्णाभब्राह्मण, साकेत, पुब्बकोट्ठक, पठमपुब्बाराम, दुतियपुब्बाराम, ततियपुब्बाराम,चतुत्थपुब्बाराम, पिण्डोलभारद्वाज, आपण।]

भगवान ने आयुष्मान आनन्द से कहा कि यौवन में बुढ़ापा, आरोग्य में व्याधि और जीवन में मृत्यु छिपी रहती है। मृत्यु किसी को नहीं छोड़ती, सबको पीस देती है।

उन्होंने उण्णाभ ब्राह्मण को बतलाया कि पांच इंद्रियों (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा तथा काय) का प्रतिशरण होता है मन, क्योंकि मन ही इंद्रियों के अपने-अपने विषयों का अनुभव करता है। मन का प्रतिशरण होती है स्मृति, स्मृति का विमुक्ति, विमुक्ति का निर्वाण। ब्रह्मचर्य का अंतिम लक्ष्य निर्वाण ही होता है।

उन्होंने भिक्षुओं को समझाया कि कैसे पांच इंद्रियों से पांच बल हो जाते हैं, और पांच बलों से पांच इंद्रियां। यह ऐसे ही है जैसे पूर्व की ओर बहने वाली नदी के बीच एक द्वीप होने से एक दृष्टिकोण से नदी की धारा एक कहलाती है, और दूसरे दृष्टिकोण से दो।

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि कितनी इंद्रियों के भावित करने और बढ़ाने से कोई क्षीणास्रव हो परम ज्ञान की घोषणा करता है –'जन्म समाप्त हुआ, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहां आना नहीं'। यह इंद्रिय एक भी हो सकती है (प्रज्ञा-इंद्रिय), दो भी (समाधि-इंद्रिय तथा प्रज्ञा-इंद्रिय), चार भी (वीर्य-इंद्रिय, स्मृति-इंद्रिय, समाधि-इंद्रिय तथा प्रज्ञा-इंद्रिय), और पांच भी (श्रद्धा-इंद्रिय, वीर्य-इंद्रिय, स्मृति-इंद्रिय, समाधि-इंद्रिय तथा प्रज्ञा-इंद्रिय) ।

उन्होंने यह भी बतलाया कि भिक्षु पिण्डोल भारद्वाज ने स्मृति-इंद्रिय, समाधि-इंद्रिय और प्रज्ञा-इंद्रिय को भावित कर और बढ़ाकर परम ज्ञान प्राप्त होने की घोषणा की थी। इन तीन इंद्रियों का अंत हो जाता है जन्म, जरा और मृत्यु के क्षय में।

भगवान ने आयुष्मान सारिपुत्त से पूछा कि जो आर्यश्रावक बुद्ध के प्रति अत्यंत श्रद्धावान हो, क्या वह बुद्ध या बुद्ध की शिक्षा के बारे में शंकालु हो

सकता है? आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा –नहीं भंते! और तदुपरांत इसका निदान प्रस्तुत किया, जिसका भगवान ने अनुमोदन किया।

(६) सूकरखत-वग्ग

[सुत्त – साल, मल्लिक, सेख, पद, सार, पतिट्ठित, सहम्पतिब्रह्म, सूकरखत, पठमउप्पाद, दुतियउप्पाद।]

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि जैसे सभी प्राणियों में शक्ति, वेग और वीरता के कारण मृगराज सिंह अग्र माना जाता है, वैसे ही सभी बोधिपक्षीय धर्मों में प्रज्ञा-इंद्रिय अग्र मानी जाती है।

उन्होंने यह भी कहा कि –

* जब आर्यश्रावक को आर्य-ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तभी उसकी चार इंद्रियां (श्रद्धा-इंद्रिय, वीर्य-इंद्रिय, स्मृति-इंद्रिय तथा समाधि-इंद्रिय) सम्यक रूप से प्रतिष्ठित होती हैं।

* ऐसे कई दृष्टिकोण हैं जिनके आधार पर कोई शैक्ष्य (निर्वाण-पथ पर अग्रसर) भिक्षु शैक्ष्य-भूमि पर स्थित हो, 'मैं शैक्ष्य हूं' ऐसा जान लेता है।

* ऐसे ही कई दृष्टिकोण हैं जिनके आधार पर कोई अशैक्ष्य (निर्वाण-प्राप्त) भिक्षु अशैक्ष्य-भूमि पर स्थित हो, 'मैं अशैक्ष्य हूं' ऐसा जान लेता है ।

* जैसे हाथी के पैर में सभी प्राणियों के पैर समा जाने से उसका पैर सभी पैरों में अग्र माना जाता है, वैसे ही बोधि को बताने वाले सभी पदों में 'प्रज्ञा-इंद्रिय' पद अग्र समझा जाता है।

* एक ऐसा भी धर्म है जिसमें प्रतिष्ठित होने से भिक्षु की पांचों इंद्रियां सु-भावित हो जाती हैं। यह धर्म है – अप्रमाद।

* इन पांच इंद्रियों के भावित होने और बढ़ने से निर्वाण की उपलब्धि होती है।

* तथागत के प्रादुर्भाव के बिना, न उत्पन्न हुयीं, भावित और बहुलीकृत पांच इंद्रियां उत्पन्न नहीं होतीं।

* ऐसे ही बिना बुद्ध के विनय के ,न उत्पन्न हुयीं, भावित और बहुलीकृत पांच इंद्रियां उत्पन्न नहीं होतीं।

भगवान द्वारा पूछे जाने पर आयुष्मान सारिपुत्त ने बतलाया कि किस उद्देश्य

से क्षीणास्रव भिक्षु बुद्ध या बुद्ध के शासन पर माथा नवाते हैं। भगवान ने उनके कहे का अनुमोदन किया।

(७) बोधिपक्खिय-वग्ग

[सुत्त – संयोजन, अनुसय, परिञ्ञा, आसवक्खय, पठमफल, दुतियफल, पठमरुक्ख,दुतियरुक्ख, ततियरुक्ख, चतुत्थरुक्ख।]

इन सुत्तों में प्रतिपादित किया गया है कि भावित और बहुलीकृत इंद्रियां संयोजनों के प्रहाण, अनुशय के उन्मूलन, मार्ग के परिज्ञान और आस्रवों के क्षय के लिए होती हैं। इनसे दो में से एक फलप्राप्त होने की आशा रखनी चाहिए – इसी जीवन में निर्वाण-लाभ, अथवा कुछ उपादान शेष रह जाने पर अनागामिता।

भावित और बहुलीकृत इंद्रियों से सात फलों का शुभ परिणाम भी बतलाया गया है। ये सात फल हैं: इसी जीवन में निर्वाण-लाभ, अथवा मृत्यु के समय निर्वाण-लाभ, अथवा पांच अवरभागीय संयोजनों का क्षय होने से अंतरा-परिनिर्वाण, अथवा उपहत्य-परिनिर्वाण, अथवा असंस्कार-परिनिर्वाण, अथवा ससंस्कार परिनिर्वाण, अथवा ऊर्ध्वस्रोत-अकनिष्ठगामिता।

सारे बोधिपक्षीय धर्मों में ज्ञान की प्राप्ति करानेवाली प्रज्ञा-इंद्रिय की श्रेष्ठता भी बतलायी गयी है, जैसे अन्य वृक्षों की तुलना में जंबूद्वीप में जंबू वृक्ष, त्रयस्त्रिंश देवलोक में पारिच्छत्रक वृक्ष, असुर लोक में चित्रपाटलि वृक्ष और सुपर्ण लोक में कूटशल्मली वृक्ष की श्रेष्ठता जानी जाती है।

(८/१-१७) गङ्गापेय्यालादि-वग्ग

[कुल एक सौ दस सुत्त]

इन वर्गों के सुत्तों में इन्हीं शीर्षकों के साथ पहले आये हुए सुत्तों के समान पांच इंद्रियों को लेकर धर्म समझाया गया है।

५. सम्मप्पधानसंयुत्त

यह संयुत्त पांच वर्गों में विभाजित है, जिनमें पचपन सुत्त हैं।

(१) गङ्गापेय्याल-वग्ग

[सुत्त – पाचीनादि-सुत्तद्वादसक]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि सम्यक प्रधान चार होते हैं – अनुत्पन्न पापपूर्ण अकुशल धर्म उत्पन्न न हों – इसके लिए मानस बनाना और प्रयत्न करना; उत्पन्न हुए पापपूर्ण अकुशल धर्म विदा हो जायँ – इसके लिए मानस बनाना और प्रयत्न करना; अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न हों – इसके लिए मानस बनाना और प्रयत्न करना; और उत्पन्न हुए कुशल धर्म बने रहें और उनकी बढ़ोतरी हो – इसके लिए मानस बनाना और प्रयत्न करना।

उन्होंने यह भी कहा कि जैसे गङ्गा आदि नदियां पूर्व की ओर बहती हैं, अथवा समुद्र की ओर प्रवाहित होती हैं, वैसे ही इन चार सम्यक प्रधानों को भावित करने वा बढ़ाने वाला भिक्षु भी निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

(२/१-५) अप्पमादादि-वग्ग

[कुल तेंतालीस सुत्त]

इन वर्गों के सुत्तों में इन्हीं शीर्षकों के साथ पहले आये हुए सुत्तों के समान सम्यक प्रधानों को लेकर धर्म समझाया गया है।

६. बलसंयुत्त

यह संयुत्त दस वर्गों में विभाजित है, जिनमें एक सौ दस सुत्त हैं।

(१) गङ्गापेय्याल-वग्ग

[सुत्त - बलादि-सुत्तद्वादसक]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि बल पांच होते हैं -श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि तथा प्रज्ञा। जैसे गङ्गा आदि नदियां पूर्व की ओर बहती हैं, अथवा समुद्र की ओर प्रवाहित होती हैं, वैसे ही इन पांच बलों को भावित करने वा बढ़ाने वाला भिक्षु निर्वाण की ओर अग्रसर होता है।

(२-१) अप्पमादादि-वग्ग

[कुल अट्ठानवे सुत्त]

इन वर्गों के सुत्तों में इन्हीं शीर्षकों के साथ पहले आये हुए सुत्तों के समान पांच बलों को लेकर धर्म समझाया गया है।

७. इद्धिपादसंयुत्त

यह संयुत्त आठ वर्गों में विभाजित है, जिनमें नवासी सुत्त हैं।

(१) चापाल-वग्ग

[सुत्त – अपार, विरद्ध, अरिय, निब्बिदा, इद्धिपदेस, समत्त, भिक्खु, बुद्ध, ञाण, चेतिय।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि चार ऋद्धिपाद भावित और बहुलीकृत होने पर अपार से पार ले जाते हैं। ये चार ऋद्धिपाद हैं – छंद-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद, वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद, चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद, और मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद।

उन्होंने यह भी कहा कि –

* जिन किन्हीं के ये चार ऋद्धिपाद रुक जाते हैं उनका सम्यक दुःखक्षयगामी मार्ग रुक जाता है। जिन किन्हीं के ये ऋद्धिपाद शुरू हो जाते हैं उनका सम्यक दुःखक्षयगामी मार्ग भी शुरू हो जाता है।

* इन चार ऋद्धिपादों को भावित करने और बढ़ाने से दुःख का पूरी तरह से क्षय हो जाता है।

* ये एकांत निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि और निर्वाण के लिए होते हैं।

* किसी भी काल में ऋद्धि का पूरा-पूरा अथवा आंशिक अभिनिष्पादन तभी होता है जब चारों ऋद्धिपादों को भावित किया वा बढ़ाया जाये।

* किसी भी काल में जब कोई आस्रवों का क्षय होने से अनास्रव चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति उसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगता है तो यह तभी संभव हो पाता है जब चारों ऋद्धिपादों को भावित किया और बढ़ा लिया जाय।

* चारों ऋद्धिपादों को भावित करने और बढ़ा लेने से ही तथागत 'अर्हत, सम्यक संबुद्ध' कहलाते हैं।

अंतिम सुत्त में इस बात का उल्लेख है कि भगवान ने वेसाली के चापाल चैत्य में जाकर एक दिन यह घोषणा की कि तब से तीन माह बाद तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे। इसके साथ ही उन्होंने स्मृति और संप्रज्ञान के साथ अपना आयु-संस्कार छोड़ दिया। उस समय उन्होंने यह उदान कहा कि अध्यात्म-रत और समाहित हो, मैंने आत्म-संभव (पुनर्जन्म) को कवच के ऐसा काट डाला है।

(२) पासादकम्पन-वग्ग

[सुत्त – पुब्ब, महप्फल, छन्दसमाधि, मोग्गल्लान, उण्णाभब्राह्मण, पठमसमणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, भिक्खु, इद्धादिदेसना, विभङ्ग।]

भगवान ने कहा कि मेरे बुद्धत्व-लाभ करने के पहले, मेरे बोधिसत्व रहते, मेरे मन में यह हुआ कि ऋद्धिपाद की भावना का हेतु, प्रत्यय क्या है? फिर उन्होंने इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए बतलाया कि कैसे चार ऋद्धिपादों के भावित और बहुलीकृत होने से अनेक प्रकार की ऋद्धियों का लाभ होता है, यहां तक कि कोई व्यक्ति आस्रवों का क्षय हो जाने से आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगता है। इस प्रकार इनसे बहुत बड़े एवं कल्याणकारी परिणाम प्राप्त होते हैं।

भगवान ने इन पदों का आशय समझाया –

* छंद-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद;

* वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद;

* चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद; और

* मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद।

एक समय भगवान के कहने पर आयुष्मान महामोग्गल्लान ने कतिपय उद्धत, चपल, वाचाल, विभ्रांतचित्त, असमाहित, स्मृति-संप्रज्ञान-विहीन भिक्षुओं को अपने पैर के अंगूठे से मिगारमाता के दृढ़ प्रासाद को दोलायमान कर संविग्न कर दिया। इन आश्चर्यचकित भिक्षुओं को भगवान ने बतलाया कि चार ऋद्धिपादों को भावित करने और बढ़ाने से मोग्गल्लान भिक्षु इतना बड़ा ऋद्धिशाली और महानुभाव हुआ है, यहां तक कि वह आस्रवों का क्षय हो जाने से आस्रव-रहित

चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरता है। तुम्हें भी ऐसे ही विहार करना चाहिए।

उण्णाभ ब्राह्मण की जिज्ञासा पर आयुष्मान आनन्द ने उसे बतलाया कि छंद (इच्छा) का प्रहाण करने के लिए भगवान के शासन में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। उन्होंने उसे इस मार्ग की जानकारी भी दी, अर्थात – छंद-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करना, वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करना, चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करना, और मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना करना।

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि किसी भी काल में यदि कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण बड़ी ऋद्धि वाला, महानुभाव होता है तो चार ऋद्धिपादों को भावित करने और बढ़ाने से ही। उन्होंने उनको इन पदों का आशय भी समझाया –

* ऋद्धि – अनेक प्रकार की सिद्धि।

* ऋद्धिपाद – ऋद्धियां सिद्ध करने का मार्ग।

* ऋद्धिपादभावना – छंद-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना, वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना, चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना, और मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार से युक्त ऋद्धिपाद की भावना।

* ऋद्धिपादभावनागामी मार्ग – आर्य अष्टांगिक मार्ग।

भगवान ने बड़े विस्तार से यह भी बतलाया कि चार ऋद्धिपादों के कैसे भावित होने और बढ़ने से बड़ा एवं कल्याणकारी परिणाम प्राप्त होता है।

(३) अयोगुळ वग्ग

[सुत्त – मग्ग, अयोगुळ, भिक्खु, सुद्धिक, पठमफल, दुतियफल, पठमआनन्द, दुतियआनन्द, पठमभिक्खु, दुतियभिक्खु, मोग्गल्लान, तथागत।]

आयुष्मान आनन्द की जिज्ञासा शांत करने के लिए भगवान ने उन्हें बतलाया कि मैं ऋद्धि द्वारा मनोमय शरीर से, और चार महाभूतों से बने इस शरीर से भी, ब्रह्मलोक तक जा सकता हूं। उन्होंने यह भी बतलाया कि यह कैसे होता है।

उन्होंने इन बातों पर भी प्रकाश डाला – ऋद्धि, ऋद्धिपाद, ऋद्धिपादभावना तथा ऋद्धिपादभावनामार्ग क्या होते हैं; चार ऋद्धिपाद कौन-कौनसे होते हैं; इनको भावित करने और बढ़ाने से क्या फल प्राप्त हो सकते हैं, इत्यादि।

उन्होंने यह भी बतलाया कि मोग्गल्लान भिक्षु चार ऋद्धिपादों को भावित करने और बढ़ाने से इतना बड़ा ऋद्धिशाली और महानुभाव हुआ है। तथागत भी इसी प्रकार इतने बड़े ऋद्धिशाली और महानुभाव हुए हैं।

(४/१-८) **गङ्गापेय्यालादि-वग्ग**

[कुल पचपन सुत्त]

इन वर्गों के सुत्तों में इन्हीं शीर्षकों के साथ पहले आये हुए सुत्तों के समान चार ऋद्धिपादों को लेकर धर्म समझाया गया है।

८. अनुरुद्धसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित है, जिनमें चौबीस सुत्त हैं।

(१) रहोगत-वग्ग

[सुत्त – पठमरहोगत, दुतियरहोगत, सुतनु, पठमकण्डकी, दुतियकण्डकी, ततियकण्डकी, तण्हक्खय, सलळागार, अम्बपालिवन, बाळ्हगिलान।]

आयुष्मान अनुरुद्ध को पूछे गये कतिपय प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने इन विषयों को स्पष्ट किया –

* भिक्षु के चार स्मृतिप्रस्थान कैसे पूर्ण होते हैं?

* शैक्ष्य भिक्षु को कितने धर्मों को प्राप्त कर विहार करना चाहिए?

* अ-शैक्ष्य भिक्षु को कितने धर्मों को प्राप्त कर विहरना चाहिए?

* उन्होंने स्वयं किन धर्मों की भावना करने और उन्हें बढ़ाने से महा-अभिज्ञाओं को प्राप्त किया? वे प्रायःकर किस विहार से विहरते हैं? और किस विहार से विहरते हुए उत्पन्न हुई शारीरिक दुःख-वेदना चित्त से नहीं चिपटती है?

आयुष्मान अनुरुद्ध ने इन विषयों को प्रज्ञप्त किया –

* चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और उन्हें बढ़ाने से तृष्णा का क्षय होता है।

* चार स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और उन्हें बढ़ाने में लगे हुए भिक्षु को कोई व्यक्ति सांसारिक प्रलोभनों से गृहस्थ नहीं बना सकता।

(२) दुतिय-वग्ग

[सुत्त – कप्पसहस्स, इद्धिविध, दिब्बसोत, चेतोपरिय, ठान, कम्मसमादान, सब्बत्थगामिनि, नानाधातु, नानाधिमुत्ति, इंद्रियपरोपरियत्त, झानादि, पुब्बेनिवास, दिब्बचक्खु, आसवक्खय।]

इन सुत्तों में आयुष्मान अनुरुद्ध ने भिक्षुओं को बतलाया है कि मैं चार

स्मृति-प्रस्थानों की भावना करने और इन्हें बढ़ाते रहने से सहस्र कल्पों का अनुस्मरण कर सकता हूं। इसी से मैं अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता हूं; कारण को कारण के रूप में और अ-कारण को अ-कारण के रूप में यथार्थतः जानता हूं; भूत, भविष्य और वर्तमान के कर्मों के विपाक को स्थान और हेतु के अनुसार यथार्थतः जानता हूं; सर्वत्रगामी प्रतिपद को यथार्थतः जानता हूं; इत्यादि। और स्मृति-प्रस्थानों की भावना और बहुलीकरण से ही मैं इन तीन विद्याओं में निष्णात हूं – पूर्व-जन्मों का स्मरण, दिव्य चक्षु और आस्रवरहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान।

९. ज्ञानसंयुत्त

यह संयुत्त पांच वर्गों में विभाजित है, जिनमें पचपन सुत्त हैं।

(१) गङ्गापेय्याल-वग्ग

[सुत्त - ज्ञानादि-सुत्तद्वादसक]

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि जैसे गङ्गा आदि नदियां पूर्व की ओर, समुद्र की ओर बहती हैं, वैसे ही भिक्षु चार ध्यानों को भावित करते वा बढ़ाते हुए निर्वाण की ओर अग्रसर होता है। ये चार ध्यान हैं -

१. कामों को छोड़, अकुशल धर्मों को छोड़, स-वितर्क, स-विचार और विवेक से उत्पन्न प्रीति सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहरना;

२. वितर्क और विचार के शांत हो जाने से, भीतरी प्रसाद वा चित्त की एकाग्रता से युक्त, किंतु वितर्क और विचार से रहित, समाधि से उत्पन्न प्रीति सुख वाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहरना;

३. प्रीति से विरक्त हो, स्मृति एवं संप्रज्ञान के साथ, उपेक्षा भाव से शरीर से ऐसे सुख की अनुभूति करना जिसके लिए आर्य कहते हैं, 'उपेक्षक, स्मृतिमान, सुखविहार करने वाला' - ऐसे तृतीय ध्यान को प्राप्त कर विहरना; और

४. सुख और दुःख को छोड़, और सौमनस्य तथा दौर्मनस्य के पहले ही जाते रहने से, न-दुःख-न-सुख वाले, तथा स्मृति और उपेक्षा से परिशुद्ध, चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरना।

(२/१-५) अप्पमादादि-वग्ग

[कुल तैतालीस सुत्त]

इन वर्गों के सुत्तों में इन्हीं शीर्षकों के साथ पहले आये हुए सुत्तों के समान चार ध्यानों को लेकर धर्म समझाया गया है।

१०. आनापानसंयुत्त

यह संयुत्त दो वर्गों में विभाजित है, जिनमें बीस सुत्त हैं।

(१) एक धम्म-वग्ग

[सुत्त – एकधम्म, बोज्झङ्ग, सुद्धिक, पठमफल, दुतियफल, अरिट्ठ, महाकप्पिन, पदीपोपम, वेसाली, किमिल।]

भगवान ने भिक्षुओं को समझाया कि आनापान-स्मृति एक ऐसा धर्म है जिसको भावित करने और बढ़ाने से बड़ा कल्याणकारी फल प्राप्त होता है। फिर यह भी बतलाया कि यह कैसे होता है?

उन्होंने भिक्षुओं को आश्वस्त किया कि इसे भावित करने और बढ़ाने से दो में से एक फल की आशा रखी जा सकती है –इसी जीवन में निर्वाण-लाभ, अथवा कुछ उपादान शेष रह जाने पर अनागामिता।

उन्होंने इसे भावित करने और बढ़ाने से ये सात फल सिद्ध होना भी बतलाया –इसी जीवन में निर्वाण-लाभ, अथवा मृत्यु के समय निर्वाण-लाभ, अथवा पांच अवरभागीय संयोजनों का क्षय होने से अंतरा-परिनिर्वाण, अथवा उपहत्य-परिनिर्वाण, अथवा असंस्कार-परिनिर्वाण, अथवा ससंस्कार-परिनिर्वाण, अथवा ऊर्ध्वस्रोत-अकनिष्ठगामिता।

आयुष्मान अरिट्ठ ने भगवान को बतलाया कि मैं किस प्रकार आनापान-स्मृति की भावना करता हूं। उसकी बात सुनकर भगवान ने कहा कि यही आनापान-स्मृति है, फिर भी यह जानना चाहिए कि आनापान-स्मृति विस्तार से कैसे परिपूर्ण होती है। तत्पश्चात उन्होंने उसे विस्तारपूर्वक सारी बात समझायी।

भगवान ने भिक्षुओं को आयुष्मान महाकप्पिन का उदाहरण देते हुए बतलाया कि आनापान-स्मृति रूपी समाधि को भावित करने और बढ़ाने से काय तथा मन में हलन-चलन नहीं होती। इसके अतिरिक्त यदि कोई भिक्षु यह चाहे कि न तो मेरा शरीर थके और न आंखें, और मेरा चित्त उपादानरहित हो आस्रवों से मुक्त हो जाय, तो उसे इस समाधि को अच्छी तरह मन में लाना चाहिए।

इस समाधि के भावित और पुष्ट हो जाने से जब भिक्षु को सुखद, दुःखद अथवा अदुःखद-असुखद वेदना होती है तब वह प्रज्ञा से जानता है कि ये अनित्य

हैं और इनमें आसक्त नहीं होना चाहिए। अतः वह अनासक्त होकर इनकी अनुभूति करता है। वह काय-पर्यंत वेदना की अनुभूति करता हुआ प्रज्ञा से जानता है कि मैं काय-पर्यंत वेदना का अनुभव कर रहा हूं; वह जीवित-पर्यंत वेदना की अनुभूति करता हुआ प्रज्ञा से जानता है कि मैं जीवित-पर्यंत वेदना का अनुभव कर रहा हूं; शरीर छूटने पर सारी वेदनाएं यहीं ठंडी हो जायेंगी, यह भी प्रज्ञा से जानता है। यह ऐसे ही है जैसे तेल और बत्ती के प्रत्यय से प्रदीप जलता है और इनके न रहने पर बुझ जाता है।

एक समय भगवान ने भिक्षुओं के समक्ष अनेक प्रकार से अशुभ भावना की बड़ाई की।इस पर अनेक भिक्षु अशुभ भावना के अभ्यास में जुट गये। उनमें से बहुतों को अपने शरीर से इतनी घृणा हो उठी कि वे शरीर का अंत करने के लिए वधक की खोज करने लगे। इस प्रकार कितनों ने ही अपने शरीर का अंत कर डाला।

तब भगवान ने सभी स्थानीय भिक्षुओं को सभागृह में एकत्रित कर यह समझाया कि आनापान-स्मृति रूपी समाधि को भावित और पुष्ट करने से शांत, सुंदर, सुखविहार होता है। इससे उत्पन्न होने वाले पापपूर्ण अकुशलधर्म दब जाते हैं, जैसे गर्मियों के पिछले मास में उड़ती हुई धूल अचानक खूब पानी पड़ जाने से दब जाती है।

भगवान ने आयुष्मान आनन्द से कहा कि यदि किसी चौराहे पर धूल का बड़ा ढेर हो, तो चारों दिशाओं से आने-जाने वाली गाड़ियों के वहां से गुजरने पर वह धूल शनैः शनैः छँटती जाती है, वैसे ही काय में कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करते हुए पापपूर्ण अकुशल धर्म कुछ-न-कुछ छँटते रहते हैं।

(२) **दुतिय-वग्ग**

[सुत्त – इच्छानङ्गल, कङ्खेय्य, पठमआनन्द, दुतियआनन्द, पठमभिक्खु, दुतियभिक्खु, संयोजनप्पहान, अनुसयसमुग्घात, अद्धानपरिञ्ञा, आसवक्खय।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि आनापान-स्मृति रूपी समाधि को भावित करने और बढ़ाने से शैक्ष्य भिक्षु के आस्रवों का क्षय होता है। इस समाधि को आर्यविहार, ब्रह्मविहार अथवा तथागतविहार भी कहा जा सकता है, परंतु शैक्ष्यविहार दूसरा ही होता है।

उन्होंने व्यक्त किया कि आनापान-स्मृति रूपी समाधि के भावित एवं पुष्ट होने से चार स्मृति-प्रस्थान पूरे हो जाते हैं, चार स्मृति-प्रस्थान भावित एवं पुष्ट होने से सात बोध्यंग पूरे हो जाते हैं, और सात बोध्यंगों के भावित एवं पुष्ट होने से विद्याजनित विमुक्ति पूरी हो जाती है। उन्होंने विस्तार से यह भी बतलाया कि यह सब कैसे होता है।

उन्होंने यह भी कहा कि इस समाधि के भावित एवं पुष्ट होने से संयोजनों का प्रहाण होता है, अनुशय मूल से उखड़ जाते हैं, मार्ग की पूरी-पूरी जानकारी होती है और आस्रवों का क्षय हो जाता है।

११. सोतापत्तिसंयुत्त

यह संयुत्त सात वर्गों में विभाजित है, जिनमें चौहत्तर सुत्त हैं।

(१) वेळुद्वार-वग्ग

[सुत्त – चक्कवत्तिराज, ब्रह्मचरियोगध, दीघावुउपासक, पठमसारिपुत्त, दुतियसारिपुत्त, थपति, वेळुद्वारेय्य, पठमगिञ्जकावसथ, दुतियगिञ्जकावसथ, ततियगिञ्जकावसथ।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि किसी चक्रवर्ती राजा को चार द्वीपों का प्रतिलाभ किसी आर्यश्रावक के चार धर्मों के प्रतिलाभ की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं होता। ये चार धर्म हैं –

१. बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा (अर्थात वह भगवान, अर्हत, सम्यक-संबुद्ध, विद्याचरणसंपन्न, अच्छी गति वाले, लोकों के जानकार, सर्वश्रेष्ठ, लोगों को राह पर लाने वाले सारथि, देवों और मनुष्यों के शास्ता, बुद्ध भगवान हैं।)

२. धर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धा (अर्थात वह धर्म सु-आख्यात, सांदृष्टिक, सद्यःफलप्रद, 'आओ, देखो' का भाव जगाने वाला, निर्वाण के समीप ले जाने वाला, प्रत्येक के लिए हितकारी तथा विज्ञों द्वारा ज्ञेय है।)

३. संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा (अर्थात वह श्रावक-संघ जो सन्मार्ग, ऋजु मार्ग, न्याय मार्ग, उचित मार्ग पर आरूढ़ है। जो पुरुषों के ये चार जोड़े, आठ पुरुष, हैं यही भगवान का श्रावक-संघ है, जो है – स्वागत करने योग्य, सत्कार करने योग्य, पूजा करने योग्य, प्रणाम करने योग्य, संसार का अलौकिक पुण्य-क्षेत्र!)

४. आर्यों को प्रिय शीलों से युक्त होना (अर्थात ऐसे शीलों से, जो हों – अखंड, अछिद्र, निर्मल, शुद्ध, निर्बाध, विज्ञों द्वारा प्रशंसा-प्राप्त, मिश्रण-रहित, समाधि के लिए प्रेरक।) इन चार धर्मों से युक्त आर्यश्रावक स्रोतापन्न हो जाता है। फिर वह धर्ममार्ग से च्युत नहीं हो सकता, और उसका संबोधि प्राप्त कर लेना सुनिश्चित होता है।

रुग्णावस्था-प्राप्त दीघावु उपासक ने भगवान के समक्ष प्रकट किया कि मैं आप द्वारा उपदिष्ट स्रोतापत्ति के चार अंगों में प्रतिष्ठित हो चुका हूं, और छः विद्याभागीय धर्मों में भी। इसके कुछ ही समय पश्चात उपासक की मृत्यु हो

गयी। कुछ भिक्षुओं द्वारा भगवान से उसकी गति के बारे में पूछे जाने पर उन्होंने कहा कि वह पंडित था और धर्म-मार्ग पर आरूढ़ रहा। वह पांच अवरभागीय संयोजनों का पूरी तरह क्षय हो जाने से औपपातिक हुआ है। वह उस लोक से लौटे बिना वहीं परिनिर्वाण पा लेगा।

भगवान द्वारा पूछे जाने पर आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा कि 'स्रोतापत्ति-अंग' से अभिप्राय होता है – सत्पुरुष का सहवास, सद्धर्म का श्रवण, ठीक प्रकार का चिंतन-मनन, स्थूल धर्म से आरंभ कर सूक्ष्म धर्म तक का प्रतिपादन। 'स्रोत' से अभिप्राय होता है – आर्य अष्टांगिक मार्ग। भगवान ने इसका अनुमोदन किया।

भगवान ने इसिदत्तपुराण को कहा कि घर में रहना झंझटों से भरा होता है। यह धूल-भरा मार्ग है। प्रव्रज्या खुले आकाश के समान होती है। तुम्हें प्रमादरहित हो जाना चाहिए।

वेळुद्वार के ब्राह्मण गृहपतियों ने भगवान से याचना की कि हमें ऐसा धर्मोपदेश करें जिससे हम मरणोपरांत स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त हों। इस पर भगवान ने उन्हें आत्मोपनायिक धर्म का उपदेश दिया। इसके अंतर्गत उन्होंने सात ऐसी बातें बतलायीं जो कोई भी व्यक्ति अपने साथ होने नहीं देना चाहता, और इस आधार पर वह स्वयं भी दूसरों के प्रति इन्हें व्यवहार में लाने से अपने आप को विरत रखता है। ये सात बातें हैं – जीवहिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ बोलना, चुगली करना, कठोर भाषण वा व्यर्थ का प्रलाप। ऐसा व्यक्ति बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा वाला होता है, और आर्यों के प्रिय शीलों से युक्त होता है।

भगवान ने कहा कि जो आर्यश्रावक इन सात सद्धर्मों और इन चार स्पृहणीय स्थानों से युक्त होता है, वह अपने बारे में कह सकता है कि मेरा नरक में पड़ दुर्गति को प्राप्त होना क्षीण हो गया है, अब मैं स्रोतापन्न हूं और मेरा संबोधि प्राप्त करना सुनिश्चित है।

भगवान ने इसे उचित नहीं बतलाया कि मनुष्यों के मरने पर तथागत के पास आ आकर पूछा जाये कि उनकी क्या क्या गति हुई है। इसके लिए उन्होंने धर्मादर्श नामक धर्म का उपदेश दिया, जिससे युक्त हो आर्यश्रावक अपने बारे में कह सकता है कि मेरा नरक में पड़ दुर्गति को प्राप्त होना क्षीण हो गया है, अब मैं स्रोतापन्न हूं और मेरा संबोधि प्राप्त करना सुनिश्चित है। धर्मादर्श नामक उपदेश यही है – बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा, और आर्यों के प्रिय शीलों से युक्त होना।

(२) राजकाराम-वग्ग

[सुत्त – सहस्सभिक्खुनिसङ्घ, ब्राह्मण, आनन्दत्थेर, दुग्गतिभय,
दुग्गतिविनिपातभय, पठममित्तामच्च, दुतियमित्तामच्च,
पठमदेवचारिक, दुतियदेवचारिक, ततियदेवचारिक।]

भगवान ने सहस्र-भिक्षुणी-संघ को बतलाया कि चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक स्रोतापन्न हो जाता है। ये चार धर्म हैं –बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा और आर्यों के प्रिय शीलों से युक्त होना। आर्य-विनय का यह उदयगामी मार्ग निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि और निर्वाण के लिए होता है। इन धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक सारी दुर्गतियों के भय से पार चला जाता है।

भगवान ने भिक्षुओं को परामर्श दिया कि जिन पर तुम्हारी कृपा हो, और जो कोई मित्र, अमात्य अथवा बंधु-बांधव तुम्हारी बात सुनने को तैयार हों, उन्हें स्रोतापत्ति के चार अंगों के बारे में शिक्षित करो और इनमें प्रतिष्ठित करो।

त्रयस्त्रिंश लोक के कुछ देवताओं ने भी इस बात को स्वीकार किया कि पूर्व-वर्णित चार धर्मों से युक्त होने से कितने ही प्राणी मरणोपरांत स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होते हैं। भगवान ने देवताओं से कहा कि इन धर्मों से युक्त होने से लोग स्रोतापन्न हो जाते हैं, जो धर्ममार्ग से च्युत नहीं हो सकते और जिनका संबोधि प्राप्त कर लेना सुनिश्चित रहता है।

(३) सरणानि-वग्ग

[सुत्त – पठममहानाम, दुतियमहानाम, गोधसक्क,
पठमसरणानिसक्क, दुतियसरणानिसक्क, पठमअनाथपिण्डिक,
दुतियअनाथपिण्डिक, पठमभयवेरूपसन्त, दुतियभयवेरूपसन्त,
नन्दकलिच्छवि।]

भगवान ने महानाम शाक्य से कहा कि जो व्यक्ति चिरकाल तक अपने चित्त को श्रद्धा, शील, श्रुतज्ञान, त्याग तथा प्रज्ञा में चरम सीमा तक भावित किये रखता है वह शरीर छूटने पर ऊर्ध्वगामी, विशेष गति वाला होता है। तुम मत डरो, तुम्हारी मृत्यु भी निष्पाप होगी।

एक अन्य अवसर पर भगवान ने उनको यह भी बतलाया कि चार धर्मों से युक्त हुआ आर्यश्रावक निर्वाणोन्मुख होता है, जैसे कि पूर्वोन्मुख पेड़ जड़ कट

जाने पर पूर्व की ओर ही जा गिरता है। चार धर्म हैं – बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा और आर्यों के प्रिय शीलों से युक्त होना।

सरणानि शाक्य की मृत्यु हो जाने पर भगवान द्वारा उसके स्रोतापन्न होने की बात कह देने से कुछ भिक्षुओं को आश्चर्य हुआ, क्योंकि उनके विचार में वह धर्म का पालन करने में शिथिल था। भगवान के कानों में यह बात पहुँचने पर उन्होंने महानाम शाक्य को स्पष्ट किया कि किस प्रकार के व्यक्ति नरक, पशुयोनि, प्रेतयोनि अथवा अपाय गति से पूर्णतया मुक्त हो चुके होते हैं, और कौनसे व्यक्ति इनमें न जाने वाले होते हैं। जहां तक सरणानि शाक्य का प्रश्न है, उसने मृत्यु के समय शिक्षा को सर्वथा पूर्ण कर लिया था।

रुग्णावस्था-प्राप्त अनाथपिण्डिक गृहपति को आयुष्मान सारिपुत्त ने कहा कि बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा, आर्यों के प्रिय शीलों से युक्तता, सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि को अपने आप में सम्यक प्रकार से देखते हुए अपनी वेदनाओं को शांत करो। गृहपति ने ऐसा ही किया जिससे उसकी वेदनाएं शांत हो गईं।

एक ऐसे ही अन्य अवसर पर इस गृहपति को आयुष्मान आनन्द ने कहा कि इन चार धर्मों को अपने आप में सम्यक प्रकार से देखने वाले को घबराहट, कँपकँपी अथवा मृत्यु से भय नहीं होते हैं – बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा तथा आर्यों के प्रिय शीलों से युक्तता। यह सुन कर गृहपति ने आयुष्मान आनन्द से कहा कि मुझे कोई डर नहीं है। मेरी बुद्ध, धर्म तथा संघ में दृढ़ श्रद्धा है, और भगवान द्वारा गृहस्थों के लिए उचित बतलाये गये शिक्षापदों में से किसी को भी मैं अपने आप में खंडित हुआ नहीं देखता हूं। इस पर आयुष्मान आनन्द बोले – गृहपति! यह कहते हुए तुमने स्रोतापत्ति-फल की बात कही है।

भगवान ने अनाथपिण्डिक गृहपति से कहा कि आर्यश्रावक के पांच भय, वैर शांत हो जाते हैं, वह स्रोतापत्ति के चार अंगों से युक्त होता है, वह आर्यज्ञान को प्रज्ञा से खूब अच्छी तरह बींधकर देख लेता है, और यदि वह चाहे तो अपने बारे में कह सकता है कि मेरी नरक, पशुयोनि, प्रेतयोनि और अपाय गति क्षीण हो चुकी हैं, मैं स्रोतापन्न हूं और धर्मपथ से च्युत न होते हुए मेरा संबोधि प्राप्त कर लेना सुनिश्चित है।

भगवान ने लिच्छवियों के महामात्य नन्दक को भी उन चार धर्मों के बारे में बतलाया जिनसे युक्त हुआ आर्यश्रावक स्रोतापन्न हो जाता है। उन्होंने यह भी

कहा कि ऐसा व्यक्ति दिव्य और मानुष आयु, वर्ण, सुख और आधिपत्य वाला होता है। और मैं यह कोई सुनी-सुनायी बात नहीं कह रहा हूं। मैं वही कह रहा हूं जिसे मैंने स्वयं जाना, देखा और अनुभव किया है।

नन्दक ने भगवान के प्रति श्रद्धा का होना भीतर का स्नान बतलाया।

(४) पुञ्ञाभिसन्द-वग्ग

[सुत्त – पठमपुञ्ञाभिसन्द, दुतियपुञ्ञाभिसन्द, ततियपुञ्ञाभिसन्द, पठमदेवपद, दुतियदेवपद, देवसभाग, महानाम, वस्स, काळिगोध, नन्दियसक्क ।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि पुण्य, कुशल की चार धाराएं सुख प्राप्त कराने वाली होती हैं। ये धाराएं हैं – बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा और आर्यों के प्रिय शीलों से युक्त होना। उन्होंने चौथी धारा के दो वैकल्पिक रूप भी बतलाये – आर्यश्रावक का खूब दानशील हो, मल-मात्सर्य-रहित चित्त से घर में निवास करना; अथवा उदय-अस्त का बोध कराने वाली, सम्यक रूप से दुःखों का क्षय कराने वाली आर्य-प्रज्ञा से युक्त होना।

भगवान ने इसी संदर्भ में भिक्षुओं को चार देवपदों और चार धर्मों से युक्त पुरुष का देवताओं द्वारा स्वागत किये जाने के बारे में भी बतलाया। उन्होंने महानाम शाक्य की जिज्ञासा पर उसे स्पष्ट किया कि कोई व्यक्ति उपासक कैसे होता है, और वह शीलसंपन्न, श्रद्धासंपन्न, त्यागसंपन्न तथा प्रज्ञासंपन्न कैसे-कैसे होता है।

भगवान ने काळिगोधा शाक्यानी को स्रोतापत्ति के चार अंग बतलाये – बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धावान और खूब दानशील हो, मल-मात्सर्य-रहित चित्त से घर में निवास करना। काळिगोधा ने कहा कि ये धर्म तो मुझमें हैं। इस पर भगवान बोले – गोधे! यह कहकर तुमने स्रोतापत्ति-फल की बात कही है।

भगवान ने नन्दिय शाक्य को स्पष्ट किया कि कोई आर्यश्रावक कैसे प्रमाद-विहारी होता है, और कैसे अप्रमाद-विहारी।

(५) सगाथक पुञ्ञाभिसन्द-वग्ग

[सुत्त – पठमअभिसन्द, दुतियअभिसन्द, ततियअभिसन्द, पठममहद्धन, दुतियमहद्धन, सुद्धक, नन्दिय, भद्दिय, महानाम, अङ्ग।]

भगवान ने भिक्षुओं को सुख प्राप्त कराने वाली पुण्य, कुशल की चार धाराओं के बारे में बतलाते हुए कहा कि इन धाराओं से युक्त आर्यश्रावक के लिए यह कहना कठिन होता है कि इनके पुण्य, कुशल, सुख की उपलब्धि कितनी होती है। अतः वह असंख्येय, अप्रमेय, महापुण्यस्कंध नाम पाता है।

उन्होंने चार धर्मों – बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा, और आर्यों के प्रिय शीलों से युक्त होना – की चर्चा करते हुए कहा कि इनसे युक्त हुआ आर्यश्रावक धनाढ्य, वैभवशाली, महायशस्वी कहलाता है। वह स्रोतापन्न होता है। स्रोतापत्ति के चार अंग होते हैं – सत्पुरुष का सेवन, सद्धर्म का श्रवण, ठीक प्रकार का चिंतन-मनन और स्थूल धर्म से आरंभ कर सूक्ष्म धर्म तक का प्रतिपादन।

(६) सप्पञ्ञ-वग्ग

[सुत्त – सगाथक, वस्संवुत्थ, धम्मदिन्न, गिलान, सोतापत्तिफल, सकदागामिफल, अनागामिफल, अरहत्तफल, पञ्ञापटिलाभ, पञ्ञावुद्धि, पञ्ञावेपुल्ल।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि किन चार धर्मों से युक्त होने से आर्यश्रावक स्रोतापन्न होता है।

सावत्थी में वर्षावास पूरा कर आये हुए एक भिक्षु ने कपिलवत्थु के शाक्यों को भगवान के मुख से सुनी हुई यह बात कही कि ऐसे लोग कम ही होते हैं जो आस्रवों के क्षय हो जाने से आस्रवरहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं की अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरते हैं। इनसे अधिक होते हैं पांच अवरभागीय संयोजनों के क्षय हो जाने से औपपातिक हुए (अनागामी)। इनसे अधिक होते हैं तीन संयोजनों के क्षय हो जाने से और अत्यंत दुर्बल हुए राग-द्वेष-मोह वाले सकृदागामी, और इनसे अधिक होते हैं तीन संयोजनों के क्षय होने से स्रोतापन्न बने हुए, जिनका धर्म-मार्ग से च्युत हुए बिना संबोधि प्राप्त करना सुनिश्चित होता है।

पांच सौ उपासकों के साथ आये हुए धम्मदिन्न उपासक की याचना पर भगवान ने उन्हें यह सीख दी कि बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति दृढ़ श्रद्धा अपनाओ और आर्यों के प्रिय शीलों से युक्त होओ।

भगवान ने महानाम शाक्य को बतलाया कि यदि कोई उपासक सत्काय के

निरोध के लिए चित्त लगा देता है, तो उसका आस्रवों से विमुक्त चित्त वाले भिक्षु से कोई अंतर नहीं होता है, क्योंकि विमुक्ति तो एक ही होती है।

उन्होंने यह भी प्रज्ञप्त किया कि ये चार धर्म भावित किये जाने और बढ़ाने से स्रोतापत्ति-फल के साक्षात्कार के लिए होते हैं – सत्पुरुष का सेवन, सद्धर्म का श्रवण, ठीक से चिंतन-मनन करना, और स्थूल धर्म से आरंभ कर सूक्ष्म धर्म तक का प्रतिपादन करना।

यही धर्म भावित किये और बढ़ाये जाने पर सकृदागामी-फल, अनागामी-फल, अर्हत-फल के साक्षात्कार के लिए भी होते हैं, और प्रज्ञा के प्रतिलाभ, प्रज्ञा की वृद्धि और प्रज्ञा की विपुलता के लिए भी।

(७) **महापञ्ञ-वग्ग**

[सुत्त – महापञ्ञा, पुथुपञ्ञा, विपुलपञ्ञा, गम्भीरपञ्ञा, अप्पमत्तपञ्ञा, भूरिपञ्ञा, पञ्ञाबाहुल्ल, सीघपञ्ञा, लहुपञ्ञा, हासपञ्ञा, जवनपञ्ञा, तिक्खपञ्ञा, निब्बेधिकपञ्ञा।]

इन सुत्तों में भगवान ने प्रज्ञप्त किया है कि सत्पुरुष का सेवन, सद्धर्म का श्रवण, ठीक तरह का चिंतन-मनन, और स्थूल धर्म से आरंभ कर सूक्ष्म धर्म तक की प्रतिपत्ति – इन चार धर्मों को भावित करना और बढ़ाना महाप्रज्ञता, पृथुल प्रज्ञता, विपुल प्रज्ञता, गंभीर प्रज्ञता आदि के लिए होता है।

१२. सच्चसंयुत्त

यह संयुत्त ग्यारह वर्गों में विभाजित है, जिनमें एक सौ सैंतीस सुत्त हैं।

(१) समाधि-वग्ग

[सुत्त – समाधि, पटिसल्लान, पठमकुलपुत्त, दुतियकुलपुत्त, पठमसमणब्राह्मण, दुतियसमणब्राह्मण, वितक्क, चिन्त, विग्गाहिककथा, तिरच्छानकथा।]

भगवान ने भिक्षुओं को उपदेश दिया कि तुम समाधि की भावना करो। समाहित हुआ भिक्षु इन बातों को यथार्थतः जान लेता है –

* यह दुःख है;
* यह दुःख का समुदय है;
* यह दुःख का निरोध है; और
* यह दुःख का निरोध कराने वाला मार्ग है।

इन्हीं चार आर्य सत्यों को लेकर भगवान ने यह भी कहा कि आत्मचिंतन में लगा हुआ भिक्षु भी इन्हें यथार्थतः जान लेता है, और किसी भी काल में कुलपुत्रों का सम्यक रूप से घर से बेघर हो प्रव्रजित होना, और श्रमण-ब्राह्मणों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना इसी प्रयोजन के लिए हुआ करता है।

भगवान ने भिक्षुओं को सचेत किया कि तुम इन पापपूर्ण अकुशल वितर्कों को मन में मत आने दो – काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क तथा विहिंसा-वितर्क। इन वितर्कों से न तो कोई अर्थ सिद्ध होता है और न ही ये आदि-ब्रह्मचर्य, निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि अथवा निर्वाण के लिए उपयोगी होते हैं। यदि वितर्कों में पड़ना ही हो, तो वे वितर्क पूर्व-वर्णित चार आर्यसत्यों के बारे में हों, क्योंकि ऐसे वितर्क अर्थ सिद्ध करने वाले और आदि-ब्रह्मचर्य, निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि अथवा निर्वाण के लिए उपयोगी होते हैं।

भगवान ने इसी प्रकार पापपूर्ण अकुशल चिंतन, लड़ाई-झगड़े की बातों और अनेक प्रकार की निरर्थक कथाओं को भी सर्वथा अनर्थपूर्ण एवं अनुपयोगी बतलाया, और इनसे बचने के लिए कहा।

(२) धम्मचक्क प्पवत्तन-वग्ग

[सुत्त – धम्मचक्क प्पवत्तन, तथागत, खन्ध, अज्झत्तिक ायतन, पठमधारण, दुतियधारण, अविज्जा, विज्जा, सङ्कासन, तथ।]

भगवान ने सम्यक संबोधि प्राप्त क रने के पश्चात बाराणसी के इसिपतन मिगदाय में विहार क रते हुए पंचवर्गीय भिक्षुओं को अपना प्रथम उपदेश दिया। उन्होंने क हा –

* प्रव्रजित को इन दो अंतों का सेवन नहीं क रना चाहिए – का मों के सुख के पीछे पड़ जाना, और अपने आप को घोर यातना पहुँचाना। ये दोनों ही अनर्थक ारक हैं।

* तथागत ने इन दोनों अंतों को छोड़ 'मध्यम मार्ग' क ा ज्ञान प्राप्त कि या है जो चक्षु देने वाला, ज्ञान पैदा क रने वाला और उपशम, अभिज्ञा, संबोधि तथा निर्वाण प्राप्त क राने वाला है।

* यह 'मध्यम मार्ग' आर्य अष्टांगिक मार्ग ही है, अर्थात सम्यक दृष्टि, सम्यक संक ल्प, सम्यक वाणी, सम्यक क र्मांत, सम्यक आजीविक ा, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि।

* चार आर्य सत्य हैं – दु:ख है, दु:ख क ा समुदय है, दु:ख क ा निरोध है, और दु:ख क ा निरोध क राने वाला मार्ग है।

* संक्षेप में पांच उपादान-स्कं ध दु:ख हैं; तृष्णा है दु:ख-समुदय, तृष्णा क ा अशेष निरोध है दु:ख-निरोध और दु:ख क ा निरोध क राने वाला मार्ग है यही आर्य अष्टांगिक मार्ग।

* पहले क भी नहीं सुने गये इन धर्मों (चार आर्यसत्यों) में मुझे चक्षु उत्पन्न हुआ, और उत्पन्न हुए – ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या, आलोक ।

* मैंने इन चार आर्य सत्यों क ा तीन प्रक ार से ज्ञानदर्शन विशुद्ध कि या –

दु:ख आर्यसत्य है, यह परिज्ञेय है, इसक ा परिज्ञान क र लिया है; दु:ख-समुदय आर्यसत्य है, यह प्रहाण के योग्य है, यह प्रहीण हो गया है; दु:ख-निरोध आर्यसत्य है, यह साक्षात्क ार कि ये जाने योग्य है, इसक ा साक्षात्क ार हो गया है; और दु:ख क ा निरोध प्राप्त क राने वाला मार्ग आर्यसत्य है, यह भावित कि ये जाने के योग्य है, यह भावित हो गया है।

* उक्त प्रकार से ज्ञानदर्शन विशुद्ध हो चुकने के पश्चात ही मैंने यह दावा किया कि 'मुझे अनुत्तर सम्यक संबोधि प्राप्त हो गयी है'।

* मुझे जो ज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ वह था – 'मेरी विमुक्ति अचल है, यह मेरा अंतिम जन्म है, अब मेरे लिए कोई नया भव नहीं है।'

इस उपदेश के विभंग से आयुष्मान कोण्डञ्ञ को विरज, विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ – 'जो कुछ समुदय धर्म वाला है, वह सब निरोध धर्म वाला भी है।'

तभी ब्रह्मलोक-पर्यंत सब लोकों में ये शब्द श्रवणगोचर हुए – "बाराणसी के पास इसिपतन मिगदाय में भगवान ने अनुत्तर धर्मचक्र का प्रवर्तन किया है, जिसे कोई पलट नहीं सकता – न श्रमण, न ब्राह्मण, न देव, न मार, न ब्रह्मा और न इस लोक में कोई अन्य।" उसी समय दस सहस्र लोक धातु भी कंपायमान हो उठे और प्रमाणरहित अवभास लोक में प्रकट हुआ।

अञ्ञा (परम पद का ज्ञान) प्राप्त करने वाला पहला शिष्य होने के कारण आयुष्मान कोण्डञ्ञ का नाम अञ्ञा कोण्डञ्ञ पड़ा।

भगवान ने अन्य अवसरों पर भिक्षुओं को पूर्व-वर्णित चार आर्यसत्यों के बारे में बतलाया। उन्होंने पंच उपादानों के अतिरिक्त छः भीतरी आयतनों को भी दुःख आर्यसत्य बतलाया। उन्होंने आर्यसत्यों को धारण करने पर बल दिया।

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध तथा दुःख का निरोध प्राप्त कराने वाले मार्ग का अज्ञान 'अविद्या' कहलाता है, और इसमें ग्रस्त व्यक्ति 'अविद्यागत'। इसके विपरीत इन चार आर्यसत्यों का ज्ञान कहलाता है 'विद्या', और इससे संपन्न हुआ व्यक्ति 'विद्यागत'।

उन्होंने यह भी कहा कि इन आर्यसत्यों को प्रकट करने के अनंत शब्द हैं, और ये चार तथ्य यथार्थ हैं, अन्यथा नहीं।

(३) कोटिगाम-वग्ग

[सुत्त – पठमकोटिगाम, दुतियकोटिगाम, सम्मासम्बुद्ध, अरहन्त, आसवक्खय, मित्त,तथ, लोक, परिञ्ञेय्य, गवम्पति।]

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि चार आर्यसत्यों के अज्ञान, अप्रतिवेध के कारण दीर्घ काल से मेरा और तुम्हारा इस संसार में संधावन, संसरण चल रहा है। इन्हीं के अनुबोध, प्रतिवेध से भवतृष्णा का उच्छेद हो जाता है, भव-रज्जु कट जाती है, और नया भव प्राप्त नहीं होता।

उन्होंने यह भी कहा कि –

* जो श्रमण अथवा ब्राह्मण इन आर्यसत्यों को यथार्थतः नहीं जानते हैं, वे इसी जीवन में श्रामण्य अथवा ब्राह्मण्य का स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर विहार नहीं कर पाते हैं।

* जिस किसी काल में अरहंत, सम्यक संबुद्ध यथार्थ का अवबोध करते हैं, वे इन्हीं चार आर्यसत्यों का ही अवबोध करते हैं।

* मैं इन चार आर्यसत्यों को जानते, देखते आस्रवों का क्षय होना बतलाता हूं; बिना जाने, देखे नहीं।

* जिन पर तुम्हारी अनुकंपा हो, और जिन्हें समझो कि वे तुम्हारी बात सुनेंगे, उन्हें तुम इन चार आर्यसत्यों के यथार्थ ज्ञान में शिक्षित एवं प्रतिष्ठित कर दो ।

* ये चार सत्य तथ्य, यथार्थ होने से 'आर्य सत्य' कहलाते हैं। तथागत के आर्य होने से भी ये 'आर्य सत्य' कहे जाते हैं।

* आर्यसत्यों में दुःख परिज्ञान के योग्य है, दुःखसमुदय प्रहाण के ,दुःखनिरोध साक्षात्कार के और दुःख का निरोध कराने वाला मार्ग भावना के ।

आयुष्मान गवम्पति ने कुछ स्थविर भिक्षुओं से कहा कि मैंने स्वयं भगवान के मुख से सुनकर यह सीखा है कि जो कोई चार आर्यसत्यों में से किसी एक को देख लेता है वह बाकी तीनों को भी देख लेता है।

(४) **सीसपावन-वग्ग**

[सुत्त – सीसपावन, खदिरपत्त, दण्ड, चेल, सत्तिसत, पाण,
पठमसूरिय, दुतियसूरिय, इन्दखील, वादत्थिक ।]

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि मैंने जान-बूझ कर बहुत कुछ नहीं कहा है, क्योंकि उससे न तो कोई अर्थ सिद्ध होता है और न ही वह आदि-ब्रह्मचर्य, निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि अथवा निर्वाण के लिए उपयोगी होता है। मैंने जो कहा है, वह बहुत कम है। मैंने कहा है – "यह दुःख है", "यह दुःख का समुदय है", "यह दुःख का निरोध है", "यह दुःख के निरोध का मार्ग है।" यह अर्थ सिद्ध करने वाला और आदि-ब्रह्मचर्य, निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि अथवा निर्वाण के लिए उपयोगी है।

उन्होंने यह भी कहा कि यदि कोई सोचे कि मैं इन आर्यसत्यों को यथार्थतः जाने बिना दुःखों का बिल्कुल अंत कर लूंगा, तो यह असंभव बात है। वस्तुतः

इन आर्यसत्यों को यथार्थतः जानने के लिए ऐसे ही उद्यम करना और तत्परता बरतनी चाहिए जैसे कपड़े या सिर में आग लग जाने पर उद्यम किया जाता और तत्परता बरती जाती है।

भगवान ने कहा कि सम्यक दृष्टि चार आर्यसत्यों के ज्ञान के लाभ-समान होती है, जैसे आकाश में ललाई का छा जाना सूर्योदय का पूर्व-लक्षण होता है। जब तक कोई तथागत उत्पन्न नहीं होते हैं, तब तक चार आर्यसत्यों की कोई बात तक नहीं करता और अंधेरा-सा छाया रहता है।

उन्होंने यह भी व्यक्त किया कि जिसने चार आर्यसत्यों का अच्छी तरह दर्शन कर लिया हो, उसे कोई भी वाद-विवाद करने वाला श्रमण अथवा ब्राह्मण धर्म से कंपायमान नहीं कर सकता, जैसे धरती में खूब अच्छी तरह गड़ा हुआ पत्थर तेज आंधी-पानी से चलायमान नहीं किया जा सकता।

(५) पपात-वग्ग

[सुत्त – लोकचिन्ता, पपात, महापरिळाह, कूटागार, वाल, अन्धकार, पठमछिग्गळयुग, दुतियछिग्गळयुग, पठमसिनेरुपब्बतराज, दुतियसिनेरुपब्बतराज।]

भगवान ने भिक्षुओं से कहा कि लोक का चिंतन मत करो कि यह शाश्वत है अथवा अशाश्वत, अन्तवान है अथवा अनंत, इत्यादि। इस प्रकार का चिंतन अर्थयुक्त नहीं होता, और न ही आदि-ब्रह्मचर्य, निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोध तथा निर्वाण के लिए होता है। यदि चिंतन करना ही हो, तो इन बातों का करना चाहिए –"यह दुःख है", "यह दुःख का समुदय है", "यह दुःख का निरोध है", "यह दुःख का निरोध कराने वाला मार्ग है।" यह अर्थयुक्त होता है, और आदि-ब्रह्मचर्य, निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोध तथा निर्वाण के लिए होता है।

भगवान ने अनेक उपमाओं के द्वारा यह प्रतिपादित किया कि जो चार आर्यसत्यों को यथार्थतः नहीं जानते, वे जन्म देने वाले, बुढ़ापा लाने वाले, मृत्यु देने वाले, शोक-विलाप-दुःख-दौर्मनस्य-उपायास लाने वाले संस्कारों में पड़े रहते हैं। वे दुःख से मुक्त नहीं होते। उनका दुःख किसी भयानक प्रपात, महापरिदाह नामक नरक अथवा घोर-से-घोर अंधकार से बढ़-चढ़ कर होता है।

भगवान ने यह भी कहा कि –

* यह संभव नहीं है कि कोई चार आर्यसत्यों को यथार्थतः जाने बिना दुःखों का पूर्णतया अंत कर सके।

* वही लोग सबसे कठिन लक्ष्य को बींधते हैं जो चार आर्यसत्यों को यथार्थतः जान लेते हैं।

* मूर्ख व्यक्ति एक बार अधम गति को प्राप्त कर जल्दी ही मनुष्यता को प्राप्त नहीं कर सकता।

* यह बड़े संयोग की बात होती है कि कोई प्राणी मनुष्यत्व का लाभ करता है। यह भी बड़े संयोग की बात होती है कि तथागत लोक में उत्पन्न होते हैं। यह भी बड़े संयोग की बात होती है कि उनके द्वारा प्रतिपादित धर्मविनय लोक में प्रकाशित होता है।

* चार आर्यसत्यों को यथार्थतः जानने वाले, सम्यक दृष्टिसंपन्न आर्यश्रावक के दुःख का वह अंश बड़ा होता है जो समाप्त हो चुका होता है, जो बचा हुआ होता है वह अपेक्षाकृत कम होता है।

(६) अभिसमय-वग्ग

[सुत्त – नखसिख, पोक्खरणी, पठमसम्भेज्ज, दुतियसम्भेज्ज, पठममहापथवी, दुतियमहापथवी, पठममहासमुद्द, दुतियमहासमुद्द, पठमपब्बतूपम, दुतियपब्बतूपम।]

इन सुत्तों में भगवान ने उपमाओं के द्वारा भिक्षुओं को समझाया है कि चार आर्यसत्यों को यथार्थतः जानने वाले, सम्यक दृष्टिसंपन्न आर्यश्रावक के दुःख का वह अंश बड़ा होता है जो समाप्त हो चुका होता है, जो बचा हुआ होता है वह अपेक्षाकृत कम होता है।

(७) पठमआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग

[सुत्त – अञ्ञत्र, पच्चन्त, पञ्ञा, सुरामेरय्य, ओदक, मत्तेय्य, पेत्तेय्य, सामञ्ञ, ब्रह्मञ्ञ, पचायिक।]

भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि मनुष्य योनि में जन्म लेने वाले जीव कम हैं, अन्यान्य योनियों में जन्म लेने वाले बहुत। सो क्यों? चार आर्यसत्यों का दर्शन न होने से।

उन्होंने कहा कि इसी कारणवश आर्य प्रज्ञा-चक्षु से युक्त लोग कम हैं, अविद्या

को प्राप्त हुए सम्मूढ़ बहुत; सुरा, मेरय, मद्यादि से विरत रहने वाले कम हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; इत्यादि।

(८) दुतियआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग

[सुत्त – पाणातिपात, अदिन्नादान, कामेसुमिच्छाचार, मुसावाद, पेसुञ्ञ, फरुसवाचा, सम्फप्पलाप, बीजगाम, विकालभोजन, गन्धविलेपन]

भगवान ने कहा कि चार आर्यसत्यों का दर्शन न होने से जीवहिंसा से विरत रहने वाले कम हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; चोरी से विरत रहने वाले कम हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; व्यभिचार से विरत रहने वाले कम हैं, इससे विरत न रहने वाले बहुत; इत्यादि।

(९) ततियआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग

[सुत्त – नच्चगीत, उच्चासयन, जातरूपरजत, आमकधञ्ञ, आमकमंस, कुमारिक, दासिदास, अजेळक, कुक्कुटसूकर, हत्थिगवस्स।]

भगवान ने कहा कि चार आर्यसत्यों का दर्शन न होने से नाच, गाने-बजाने और अश्लील हावभाव देखने से विरत रहने वाले कम होते हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; सोना-चांदी ग्रहण करने से विरत रहने वाले कम होते हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; कच्चा मांस ग्रहण करने से विरत रहने वाले कम होते हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; इत्यादि।

(१०) चतुत्थआमक धञ्ञपेय्याल-वग्ग

[सुत्त – खेत्तवत्थु, कयविक्कय, दूतेय्य, तुलाकूट, उक्कोटन, छेदनादि-सुत्तछक्क।]

ऐसे ही भगवान ने कहा कि क्षेत्र-वस्तु (खेत एवं खेत में उपजी वस्तु) ग्रहण करने से विरत रहने वाले कम होते हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; ठगने, धोखा देने, दगा देने से विरत रहने वाले कम होते हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; काटने-मारने-बांधने-चोरी-डकैती,क्रूर-कर्मसे विरत रहने वाले कम होते हैं, इनसे विरत न रहने वाले बहुत; इत्यादि।

(११) पञ्चगतिपेय्याल-वग्ग

[सुत्त – मनुस्सचुतिनिरय, मनुस्सचुतितिरच्छान,
मनुस्सचुतिपेत्तिविसय, मनुस्सचुतिदेवनिरयादि-सुत्तिक ,
देवचुतिनिरयादि-सुत्तिक , देवमनुस्सनिरयादि-सुत्तिक ,
निरयमनुस्सनिरयादि-सुत्तिक , निरयदेवनिरयादि-सुत्तिक ,
तिरच्छानमनुस्सनिरयादि-सुत्तिक , तिरच्छानदेवनिरयादि-सुत्तिक ,
पेत्तिमनुस्सनिरयादि-सुत्तिक , पेत्तिदेवनिरयादि-सुत्तदुक ,
पेत्तिदेवपेत्तिविसय।]

भगवान ने क हा कि ऐसे सत्त्व क म ही होते हैं जो मनुष्ययोनि से च्युत होक र मनुष्य अथवा देव योनि में, देवयोनि से च्युत होक र देव अथवा मनुष्य योनि में, नरक से च्युत होक र मनुष्य अथवा देव योनि में, पशुयोनि से च्युत होक र मनुष्य अथवा देव योनि में और प्रेतयोनि से च्युत होक र मनुष्य अथवा देव योनि में उत्पन्न होते हों, अन्यथा अधिक सत्त्व तो नरक , अथवा पशुयोनि, अथवा प्रेतयोनि में उत्पन्न होते हैं। सो क्यों? चार आर्यसत्यों के अज्ञानवश।

ये आर्यसत्य हैं –दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध तथा दुःख क ा निरोध प्राप्त क राने वाला मार्ग।

इन आर्यसत्यों क ा ज्ञान प्राप्त क रने के लिए यत्नशील होना चाहिए।

विषय-सूची

सुत्तसार-३

भूमिक ा

अङ्गुत्तरनिक ाय

पहला निपात · १
दूसरा निपात · ३
तीसरा निपात · ६
चौथा निपात · १२
पांचवां निपात · १८
छठा निपात · २३
सातवां निपात · २५
आठवां निपात · २९
नौवां निपात · ३२
दसवां निपात · ३४
ग्यारहवां निपात · · · · · · · · · · · · · · · · · · · ३७

खुद्दक निक ाय

खुद्दक पाठ · **४०**
धम्मपद · **४२**
उदान · **४६**
इतिवुत्तक · **५०**

पहला निपात ५०
दूसरा निपात ५०
तीसरा निपात ५१
चौथा निपात ५२
सुत्तनिपात **५४**
१. उरगवग्ग ५४
२. चूळवग्ग ५५
३. महावग्ग ५६
४. अट्ठक वग्ग ५७
५. पारायनवग्ग ५८
विमानवत्थु **६०**
पेतवत्थु **६२**
थेरगाथा **६५**
थेरीगाथा **६९**
अपदान **७३**
बुद्धवंस **७७**
चरियापिटक **८१**
जातक **८५**
जातक-अट्ठक था **८५**
प्रस्तुत ग्रंथ ८६
बालोपयोगी जातक कथाएं ८७
साधकोपयोगी जातक कथाएं ८९
सुभाषित ९०
अति ९१
अतीत-अनागत ९१
असत्पुरुष-सत्पुरुष ९१
असत्यभाषण ९१

आयु-क्षय · ९२
आर्य-अनार्य · · · · · · · · · · · · · · · · · · · ९२
आशा-निराशा · · · · · · · · · · · · · · · · · · · ९२
इच्छा-चक्र · ९२
उद्योग · ९२
एकता · ९२
एकाकी विचरण · · · · · · · · · · · · · · · · · · ९३
कच्चा-पक्का · · · · · · · · · · · · · · · · · · · ९३
कथनी-करनी · · · · · · · · · · · · · · · · · · · ९३
कर्म · ९३
क्रोध · ९४
गुह्य अर्थ · ९४
चिंतन · ९४
जन्मों का क्षय · · · · · · · · · · · · · · · · · · ९४
तृष्णा · ९४
त्राण · ९५
दान · ९५
दुर्बुद्धि · ९५
दुःख · ९५
देवता · ९५
धर्म · ९६
धर्माचरण · ९६
नरक · ९६
नारी · ९६
नेता · ९७
प्रज्ञावान · ९७
प्रमाद-अप्रमाद · · · · · · · · · · · · · · · · · · ९७
प्रशंसा-निंदा · · · · · · · · · · · · · · · · · · · ९७

प्रसन्न-अप्रसन्न ९७
प्रिय-अप्रिय ९८
पुरुष-स्त्री ९८
बीज-फल ९८
भोजन ९८
मन ९९
मनुष्य-जीवन ९९
मितभाषिता ९९
मित्रता ९९
मित्रद्रोह १००
मूर्ख १००
मूर्ख-पंडित १००
मृत्यु १००
मृत्युपरायणता १०१
याचक १०१
रुदन १०१
वाणी १०१
विशुद्धि १०१
विश्वास १०२
वैधव्य १०२
वैर १०२
शील १०२
श्रद्धा १०२
श्रमण १०३
श्रेष्ठता १०३
संकल्प १०३
संगत १०३
सज्जन १०३

संत · १०४
समझ · १०४
समाधि · १०४
सार· १०४
सुख -· १०४

महानिद्देस · १०५
अट्ठक वर्ग· १०५
(१) कामसुत्त · · · · · · · · · · · · · · · · · · · १०५
(२) गुहट्ठक सुत्त· · · · · · · · · · · · · · · · · · १०५
(३) दुट्ठट्ठक सुत्त· · · · · · · · · · · · · · · · · १०५
(४) सुद्धट्ठक सुत्त · · · · · · · · · · · · · · · · · १०६
(५) परमट्ठक सुत्त · · · · · · · · · · · · · · · · · १०६
(६) जरासुत्त · १०६
(७) तिस्समेत्तेय्यसुत्त· · · · · · · · · · · · · · · · १०६
(८) पसूरसुत्त · · · · · · · · · · · · · · · · · · · १०६
(९) मागण्डियसुत्त · · · · · · · · · · · · · · · · · १०६
(१०) पुराभेदसुत्त · · · · · · · · · · · · · · · · · १०७
(११) कलहविवादसुत्त· · · · · · · · · · · · · · · · १०७
(१२) चूळवियूहसुत्त · · · · · · · · · · · · · · · · १०७
(१३) महावियूहसुत्त · · · · · · · · · · · · · · · · १०७
(१४) तुवट्टक सुत्त· · · · · · · · · · · · · · · · · १०७
(१५) अत्तदण्डसुत्त · · · · · · · · · · · · · · · · १०७
(१६) सारिपुत्तसुत्त · · · · · · · · · · · · · · · · १०८
निद्देस · १०८
आगम से उद्धरण · · · · · · · · · · · · · · · · · · १०८
वैकल्पिक अर्थ एवं व्याख्याएं· · · · · · · · · · · · १०८
पर्यायवाची शब्द · · · · · · · · · · · · · · · · · · १०९

व्याख्या की पुनरावृत्ति एवं 'पेय्याल' १०९
प्रकार भेद १०९
निदान सहित व्याख्या ११०
सोदाहरण व्याख्या ११०
पद-निष्पत्ति ११०
साधना-पक्ष ११०
प्रकृत संदर्भों की आवृत्ति १११
चूळनिद्देस ११२
पारायन वर्ग ११२
खग्गविसाणसुत्त ११५
निद्देस ११६
आगम से उद्धरण ११६
वैकल्पिक अर्थ एवं व्याख्याएं ११७
पर्यायवाची शब्द ११७
व्याख्या की पुनरावृत्ति एवं 'पेय्याल' ११७
प्रकार भेद ११७
निदान सहित व्याख्या ११८
सोदाहरण व्याख्या ११८
पद-निष्पत्ति ११९
साधना-पक्ष ११९
प्रकृत संदर्भों की आवृत्ति ११९
अतिरिक्त विषयवस्तु ११९
पटिसम्भिदामग्ग १२१
१. महावग्ग १२१
(१) ञाणकथा १२१
(२) दिट्ठिकथा १२२
(३) आनापानस्सतिकथा १२२

(४) इंद्रियक था ·· १२२
(५) विमोक्खक था ····································· १२२
(६) गतिक था ·· १२३
(७) क म्मक था ·· १२३
(८) विपल्लासक था ···································· १२३
(९) मग्गक था ·· १२३
(१०) मण्डपेय्यक था ································· १२३

२. युगनद्धवग्ग · · · · · · · · · · · · · · · · · · १२४
(१) युगनद्धक था ····································· १२४
(२) सच्चक था ·· १२४
(३) बोज्झङ्गक था ····································· १२४
(४) मेत्ताक था ·· १२५
(५) विरागक था ·· १२५
(६) पटिसम्भिदाक था ································ १२५
(७) धम्मचक्क क था ·································· १२६
(८) लोकु त्तरक था ····································· १२६
(९) बलक था ·· १२६
(१०) सुञ्ञक था ······································· १२६

३. पञ्ञावग्ग · · · · · · · · · · · · · · · · · · १२७
(१) महापञ्ञाक था ···································· १२७
(२) इद्धिक था ·· १२७
(३) अभिसमयक था ··································· १२७
(४) विवेक क था ······································· १२७
(५) चरियाक था ······································· १२८
(६) पाटिहारियक था ································· १२८

(७) समसीसकथा··································१२८

(८) सतिपट्ठानकथा································१२८

(९) विपस्सनाकथा································१२८

(१०) मातिकाकथा································१२९

नेत्तिप्पकरण · · · · · · · · · · · · · · · · · · · **१३०**

प्रायोगिक पक्ष · · · · · · · · · · · · · · · · · · १३४

विशिष्ट पदों का विवेचन · · · · · · · · · · · · · १३९

पेटकोपदेस · **१४१**

मिलिन्दपञ्ह · · · · · · · · · · · · · · · · · · · **१४२**

(१) बाहिरकथा (पुब्बयोगादि) · · · · · · · · · · · १४२

(२) मिलिन्दपञ्ह (लक्खणपञ्ह) · · · · · · · · · · · १४२

(३) मिलिन्दपञ्ह (विमतिच्छेदनपञ्ह) · · · · · · · · · १४४

(४) मेण्डकपञ्ह · · · · · · · · · · · · · · · · · · १४५

(५) अनुमानपञ्ह · · · · · · · · · · · · · · · · · · १४८

(६) ओपम्मकथापञ्ह · · · · · · · · · · · · · · · · १४९

भूमिका

'सुत्तसार' में 'सुत्त पिटक' के सुत्तों का सार है।

भगवान बुद्ध की वाणी तीन पिटकों में सुरक्षित है –विनय पिटक ,सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक ।'विनय पिटक' में अधिकतर भिक्षुओं-भिक्षुणिओं के लिए विनय का विधान है, 'सुत्त पिटक' में सामान्य साधकों के लिए दिये गये उपदेशों का संग्रह है और 'अभिधम्म पिटक' में विपश्यना साधना में खूब पके हुए साधकों के लिए गूढ़ धर्मोपदेश हैं।

बुद्ध-वाणी में 'सुत्त पिटक' का विशेष महत्त्व है क्योंकि सबसे अधिक सामग्री इसी पिटक में है और हर किसी के लिए उपयोगी भी। विपश्यना साधना सिखाते समय विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्काजी भी इसी पिटक के उद्धरण दे-देकर धर्म समझाते हैं। अभिधम्म पिटक समझने के लिए भी सुत्त पिटक को जानने की जरूरत होती है जैसे छत पर जाने के लिए सीढ़ी की।

सम्यक संबुद्ध की वाणी का एक-एक शब्द सारगर्भित होता है। उसमें से सार निकालना अपने आपको धोखा देना है। अतः किसी भी पाठक के मन में यह भाव कदापि नहीं जागना चाहिए कि सार की बातें छांट-छांट कर यहां प्रस्तुत कर दी गयी हैं और बाकी सब कुछ निःसार है।

यह 'सुत्तसार' सुत्तों का सार इस मायने में है कि सुत्त पिटक में जो कुछ वर्णित है उसका यह स्थूल रूप में अविकल (बिना अपनी ओर से कुछ जोड़े-तोड़े) प्रस्तुतीकरण है। इस सार की तुलना उस बयार से की जा सकती है जो रंग-बिरंगे, सुगंधित पुष्पों के बीच में से लांघ कर मात्र उनकी सुगंध अपने साथ हर ले जाती है। यह 'सुत्तसार' भी भगवान के चित्र-विचित्र, निर्वाण की गंध से सुवासित उपदेशों का एक हल्का-सा **परिचयमात्र** है।

वस्तुतः यह ग्रंथ कोई नयी कृति नहीं है। विपश्यना विशोधन विन्यास द्वारा मूल रूप में प्रकाशित 'सुत्त पिटक' के हर ग्रंथ के साथ उसमें सम्मिलित सुत्तों का सार उनमें दिया गया है। आचार्य श्री सत्यनाराणजी गोयन्का के आदेशानुसार

यह सार इसलिए तैयार किया गया था कि साधक पहले इन्हें पढ़कर फिर सुत्तों को पढ़ें, तो इससे सुत्त और अधिक अच्छी तरह समझ में आने लगेंगे।

अब आचार्यश्री सत्यनारायणजी गोयन्का ने यह उचित समझा है कि यदि ये सभी सुत्तसार स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिये जायँ तो एक अतिरिक्त लाभ यह होगा कि साधकगण जनभाषा के माध्यम से बुद्ध-वाणी को टुकड़ों-टुकड़ोंमें ही नहीं, बल्कि समग्र रूप से भी सुगमतापूर्वक समझने लगेंगे। आचार्यश्री के इसी चिंतन के फलस्वरूप यह कृति प्रस्तुत की जा रही है।

वर्तमान ग्रंथत्रय केवल सुत्तपिटक के सुत्तों का सार हैं जो कि पाठकों की सुविधा के लिए तीन भागों में प्रकाशित हो रहे हैं। इसके पहले भाग में दीघ एवं मज्झिम निकायों का, दूसरे में संयुत्त निकाय का और तीसरे में अंगुत्तर एवं खुद्दक निकायों का समावेश है।

जब सुत्तसार तैयार किये जा रहे थे, तब विपश्यना विशोधन विन्यास के उद्भट विद्वान डॉ. अंगराज चौधरी ने इनका निरूपण कर इनमें समुचित सुधार किये थे। इसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूं।

हमें विश्वास है कि इस कृति से विपश्यी साधकों को धर्म के अनेक अनजाने पक्षों की जानकारी मिलने के अतिरिक्त बुद्ध-वाणी को मूल रूप में पढ़ने की प्रेरणा भी मिलेगी।

सभी साधकगण के प्रति मंगल भावों सहित,

स. ना. टंडन

अङ्गुत्तरनिकाय

पहला निपात

इस निपात में सावत्थी में अवस्थित अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में भगवान बुद्ध के विहार करते समय उनके द्वारा एक-एक धर्म (विषय) को लेकर भिक्षुओं को दिये गये उपदेशों का मुख्यतया संग्रह है। कुछ उपदेश भगवान के प्रमुख शिष्यों द्वारा भी दिये गये हैं।

यह निपात अठारह वर्गों और दो पालियों में विभक्त है, जिनमें अनेक धर्मों के बारे में कहा गया है।

इनमें भगवान ने प्रज्ञप्त किया है कि

* ऐसा कोई एक भी रूप, शब्द, गंध, रस अथवा स्प्रष्टव्य नहीं है जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध ले जैसे कि स्त्री का रूप, शब्द, गंध, रस अथवा स्प्रष्टव्य। इसके विपरीत स्त्री के लिए भी सर्वाधिक बंधनकारक है पुरुष का रूप, शब्द, गंध, रस अथवा स्प्रष्टव्य।

* ऐसा एक भी धर्म नहीं है जो असंयत रहने पर इतना अनर्थकारक हो जाता हो जैसा कि यह चित्त। इसके विपरीत ऐसा एक भी धर्म नहीं है जो संयत होने पर इतना अर्थ सिद्ध करता हो जैसा कि यह चित्त।

* ऐसा एक भी धर्म नहीं है जो इतनी जल्दी बदलता हो जैसा कि यह चित्त। इसकी तो उपमा देना भी सहज नहीं है।

* जितने भी अकुशल अथवा कुशल धर्म हैं, वे सभी मन के पीछे चलने वाले हैं। मन उनमें पहले उत्पन्न होता है, और ये बाद में।

* यह जो सगे-संबंधियों का न रहना, अथवा भोग-सामग्री की हानि होना है, यह कोई बड़ी हानि नहीं होती। प्रज्ञा की हानि ही सबसे बड़ी हानि होती है। इसके विपरीत सगे-संबंधियों की वृद्धि, अथवा भोग-सामग्री की वृद्धि, यह कोई बड़ी वृद्धि नहीं होती। प्रज्ञा की वृद्धि ही सबसे बड़ी वृद्धि होती है।

* ऐसा एक भी धर्म नहीं है जो इतना अनर्थ करने वाला हो, जैसा कि प्रमाद। इसके विपरीत ऐसा एक भी धर्म नहीं है जो इतना कल्याण करने वाला हो, जैसा कि अप्रमाद।

* बाहर की बातों में ऐसी एक भी बात नहीं है जो इतनी अनर्थकर हो, जैसी कि कुसंगति। इसके विपरीत ऐसी एक भी बात नहीं है जो इतनी हितकर हो, जैसी कि सत्संगति।

* एक व्यक्ति का लोक में प्रादुर्भाव दुर्लभ है। किस एक व्यक्ति का? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध का।

* इस बात की तनिक भी संभावना नहीं होती कि एक ही लोक-धातु में एक ही समय दो अर्हत सम्यक संबुद्ध एक साथ उत्पन्न हों। संभावना इसी बात की होती है कि एक लोक-धातु में एक समय एक ही अर्हत सम्यक संबुद्ध उत्पन्न हों।

* एक धर्म को भावित करना और बढ़ाना एकांत निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, संबोधि और निर्वाण के लिए होता है। कौन से एक धर्म को? बुद्धानुस्मृति, अथवा धर्मानुस्मृति, अथवा संघानुस्मृति, इत्यादि को।

* ऐसी कोई एक भी बात नहीं है जिससे अनुत्पन्न अकुशल धर्म उत्पन्न होते हों और उत्पन्न हुए अकुशल धर्मों में वृद्धि होती हो, जैसी कि मिथ्यादृष्टि। इसके विपरीत ऐसी भी कोई एक बात नहीं है जिससे अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न होते हों और उत्पन्न हुए कुशल धर्मों में वृद्धि होती हो, जैसी कि सम्यक दृष्टि।

* जैसे थोड़ा-सा भी गूह (विष्ठा) दुर्गंध ही देता है, वैसे ही थोड़ा-सा भी भव प्रशंसा के योग्य नहीं होता।

* मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करने वाले प्राणी अल्पसंख्यक होते हैं। मनुष्येतर योनियों में जन्म ग्रहण करने वाले प्राणियों की संख्या ही अधिक होती है।

* चुटकी बजाने के समय-भर ही चार ध्यानों में से कोई ध्यान, अथवा चार ब्रह्म-विहारों में से किसी पर भी आधारित चित्त-विमुक्ति, का अभ्यास करने वाला व्यक्ति ध्यानी कहलाने लगता है, शास्ता के अनुशासन में रहने वाला, उनके उपदेश के अनुसार आचरण करने वाला। वह व्यक्ति व्यर्थ ही राष्ट्रपिंड खाने वाला नहीं होता। जो व्यक्ति इनका अधिक अभ्यास करते हैं उनका तो कहना ही क्या है!

* 'कायगतास्मृति' एक ऐसा धर्म है जिसको भावित करने और बढ़ाने से इसमें सभी विद्यापक्षीय कुशलधर्म आ जाते हैं। यह अकेला धर्म महान संवेग, महान अर्थ, महान कल्याण, स्मृति-संप्रज्ञान, ज्ञान-दर्शन-प्रतिलाभ, इसी जीवन में सुखविहार और विद्या-विमुक्ति-फल का साक्षात्कार करने का कारण होता है।

भगवान ने यह भी प्रज्ञप्त किया है कि उनके श्रावकों-श्राविकाओं में कौन-कौन से विषय में कौन-कौन अग्र हैं। जैसे – श्रावक वर्ग में से महाप्राज्ञों में सारिपुत्त, ऋद्धिमानों में महामोग्गल्लान, दिव्य चक्षु वालों में अनुरुद्ध, बहुश्रुतों में आनन्द, इत्यादि। ऐसे ही श्राविकाओं में से महाप्रज्ञावतियों में खेमा, ऋद्धिमतियों में उप्पलवण्णा, दिव्य चक्षु वालियों में सकुला, बहुश्रुतों में खुज्जुत्तरा, इत्यादि।

दूसरा निपात

इस निपात में दो-दो धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो पन्द्रह वर्गों और चार पेय्यालों में विभाजित है।

इस निपात में प्रतिपादित विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण हैं

* दो प्रकार के दोष होते हैं – इहलोक-संबंधी तथा परलोक-संबंधी। किसी दुष्कर्म के कारण इहलोक में घोर दंड पाते हुए व्यक्ति को देख कर कोई भिक्षु ऐसे दुष्कर्म से डरता है और उससे बचता है। ऐसे ही कायिक, वाचिक तथा मानसिक दुष्कर्मों के कारण शरीर छूटने पर परलोक में भुगते जाने वाले बुरे फल से डरता है और उनसे बचता है। यह आशा रखनी चाहिए कि इन दोनों प्रकार के दोषों में भय देखने वाला भिक्षु सभी दोषों से मुक्त हो जायगा।

* दो कृष्ण-धर्म हैं और दो शुक्ल-धर्म। कृष्ण-धर्म हैं – निर्लज्जता तथा पापकर्म करने में निर्भयता। शुक्ल-धर्म है – लज्जा तथा पापभीरुता।

* तथागत की धर्म-देशना दो प्रकार की होती है – संक्षिप्त तथा विस्तृत।

* अकुशल को छोड़ना चाहिए, इसे छोड़ना संभव है। कुशल को भावित करना चाहिए, इसे भावित करना संभव है। अकुशल के प्रहाण और कुशल की भावना से हित-सुख होता है।

* दो बातें सद्धर्म के लोप और अंतर्धान का कारण बनती हैं – अव्यवस्थित पद तथा अनर्गल अर्थ। दो बातें सद्धर्म के कायम रहने और लुप्त न होने का कारण बनती हैं – व्यवस्थित पद और उनका सही-सही अर्थ।

* दो मूर्ख होते हैं, दो पंडित। मूर्ख – जो अपने दोष को दोष नहीं मानता और जो दोष मानने वाले को धर्मानुसार क्षमा नहीं करता। पंडित – जो अपने दोष को दोष मानता है और जो अपना दोष मानने वाले को धर्मानुसार क्षमा कर देता है।

* मिथ्या दृष्टि वाले को इन दो में से एक गति की आशा रखनी चाहिए – नरक या पशुयोनि। सम्यक दृष्टि वाले को इन दो में से एक गति की आशा रखनी चाहिए – देवयोनि या मनुष्ययोनि।

* दो विद्याभागीय धर्म हैं – शमथ तथा विपश्यना। शमथ की भावना से चित्त भावित होता है, विपश्यना की भावना से प्रज्ञा भावित होती है। चित्त भावित होने से राग का, और प्रज्ञा भावित होने से अविद्या का प्रहाण हो जाता है।

* माता तथा पिता – इन दो जनों का ऋण चुकाना सहज नहीं होता है, भले ही कोई सौ वर्ष तक उनकी उत्कृष्ट सेवा करता रहे। परंतु यदि कोई इनके अश्रद्धावान होने पर इन्हें श्रद्धा में, दुराचारी होने पर सदाचार में, कृपण होने पर त्याग में और दुष्प्रज्ञ होने पर प्रज्ञा में प्रतिष्ठित करवा दे, तो इतने से उनका उपकार भी होता है और उनका बदला भी चुक जाता है।

* गृहस्थ तथा प्रव्रजित – बुद्ध इन दोनों की मिथ्या-प्रतिपत्ति (मिथ्या आचरण) की सराहना नहीं करते, सम्यक-प्रतिपत्ति की करते हैं। कारण? ये मिथ्या-प्रतिपत्ति के कारण ज्ञेय कुशल-धर्म को प्राप्त नहीं कर सकते, सम्यक-प्रतिपत्ति के कारण कर सकते हैं।

* परिषद दो-दो प्रकार की होती हैं, यथा – उत्तान-गंभीर; गुटों में विभाजित – एकजुट; अनग्र-अग्र; अनार्य-आर्य; निःसार-सारवान; विषम-सम; अधार्मिक-धार्मिक; इत्यादि। (भगवान ने इनका आशय समझाने के साथ-साथ यह भी बतलाया है कि इनमें ये-ये परिषद श्रेष्ठ होती हैं – गंभीर, एकजुट, अग्र, आर्य, सारवान, सम तथा धार्मिक।)

* लोक में दो व्यक्ति बहुतों के हित, सुख के लिए उत्पन्न होते हैं – अर्हत सम्यक संबुद्ध तथागत तथा चक्रवर्ती नरेश। ये मानव आश्चर्यजनक होते हैं और इनकी मृत्यु बहुतों के अनुताप का कारण होती है। ये दोनों स्तूप बनवाये जाने के योग्य होते हैं।

* दो बुद्ध होते हैं – सम्यक संबुद्ध तथा प्रत्येक बुद्ध।

* ये दो बिजली के कड़कनेसे नहीं डरते – क्षीणास्रव भिक्षु तथा मृगराज सिंह।

* सुख दो-दो प्रकार के होते हैं – गृही-प्रव्रजित; काम-नैष्क्रम्य; उपधि-निरुपधि; सास्रव-अनास्रव; सामिष-निरामिष; आर्य-अनार्य; कायिक-चैतसिक प्रीतियुक्त-प्रीतिरहित; इत्यादि। (भगवान ने यह भी बतलाया है कि इनमें ये-ये सुख श्रेष्ठ होते हैं – प्रव्रजित नैष्क्रम्य, निरुपधि, अनास्रव, निरामिष, आर्य, चैतसिक तथा प्रीतिरहित।)

* कुछ दो-दो धर्म हैं – चित्तविमुक्ति-प्रज्ञाविमुक्ति; प्रग्रह-अविक्षेप(उत्साह एवं शांति); नाम-रूप; विद्या-विमुक्ति; भवदृष्टि-विभवदृष्टि; इत्यादि।

* इन दो के आस्रव बढ़ते हैं – जो अनुचित को उचित और उचित को अनुचित समझता है, अथवा अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म समझता है, अथवा अविनय को विनय और विनय को अविनय समझता है। इसके विपरीत इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते हैं; जो अनुचित को अनुचित और उचित को उचित, अथवा अधर्म को अधर्म और धर्म को धर्म, अथवा अविनय को अविनय और विनय को विनय समझता है।

* ये दो आशाएं आसानी से नहीं छोड़ी जा सकतीं – लाभ की आशा और जीवन की आशा।

* लोक में दो प्रकार के व्यक्ति दुर्लभ होते हैं – परोपकार करने वाला और परोपकार को स्मरण रखने वाला।

* श्रद्धावान भिक्षु की सम्यक कामना होनी चाहिए – मैं वैसा होऊं जैसे थे सारिपुत्त – मोग्गल्लान। श्रद्धायुक्त भिक्षुणी की सम्यक कामना होनी चाहिए – मैं वैसी होऊं जैसी थीं खेमा – उप्पलवण्णा।

* इन दो के प्रति अनुचित व्यवहार करने वाला मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष, अवगुणी, सावद्य, विज्ञों द्वारा निंदनीय और बहुत अपुण्य का हेतु होता है – माता तथा पिता, अथवा तथागत तथा तथागत के श्रावक। इन्हीं दो के प्रति उचित व्यवहार करने वाला होता है – पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष, गुणी, अनवद्य, विज्ञों द्वारा स्तुत्य और बहुत पुण्य का हेतु।

* दो प्रकार के दान हैं – आमिष-दान तथा धर्म-दान। इनमें धर्म-दान श्रेष्ठ होता है। ऐसे ही आमिष-यज्ञ और धर्म-यज्ञ में धर्म-यज्ञ, आमिष-त्याग और धर्म-त्याग में धर्म-त्याग, आमिष-भोग और धर्म-भोग में धर्म-भोग, आमिष-संविभाग और धर्म-संविभाग में धर्म-संविभाग, आमिष-अनुकंपा और धर्म-अनुकंपा में धर्म-अनुकंपा श्रेष्ठ होती है।

* कुछ अन्य दो-दो धर्म – ध्यान-समापत्ति की कुशलता और ध्यान से उठने की कुशलता; आर्जव तथा मार्दव; क्षान्ति तथा विनम्रता; इंद्रिय-संवर तथा भोजन की मात्रज्ञता; स्मृति-बल तथा समाधि-बल; शमथ तथा विपश्यना; शील-संपदा तथा दृष्टि-संपदा; स्मृति तथा संप्रज्ञान; इत्यादि।

* इन दो धर्मों से युक्त मानो नरक में डाल दिया गया होता है – क्रोध तथा वैर; ईर्ष्या तथा मात्सर्य; माया तथा शठता; इत्यादि। इसके विपरीत इन दो धर्मों से युक्त मानो स्वर्ग में डाल दिया गया होता है – अक्रोध तथा अवैर; अनीर्ष्या तथा अमात्सर्य; अमाया तथा अशठता; इत्यादि।

* इन दो बातों का लाभ देख कर तथागत ने श्रावकों के लिए शिक्षापदों की प्रज्ञप्ति की है –संघ की भलाई और संघ की सुकरता; गृहियों पर अनुकंपा और पापियों के पक्ष का नाश; सद्धर्म की स्थिति और विनय पर अनुग्रह; इत्यादि।

* द्वेष, मोह, क्रोध, वैर, म्रक्ष, प्रदाश, ईर्ष्या, मात्सर्य, माया, शठता, जड़ता, सारंभ, मान, अतिमान, मद तथा प्रमाद के यथार्थ ज्ञान, परिज्ञान, परिक्षय, प्रहाण, क्षय, व्यय, विराग, निरोध, त्याग तथा प्रतिनिसर्ग के लिए इन दो धर्मों की भावना करनी चाहिए – शमथ तथा विपश्यना।

तीसरा निपात

इस निपात में तीन-तीन धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो सोलह वर्गों तथा दो पेय्यालों में विभाजित है।

इस निपात में प्रतिपादित विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण हैं

* जो कोई भय, उपद्रव, उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं।

* मूर्ख के तीन लक्षण होते हैं – बुरा सोचने वाला; बुरा बोलने वाला;

बुरा करने वाला। पंडित के लक्षण होते हैं – भला सोचने वाला; भला बोलने वाला; भला करने वाला।

* भिक्षु को तीन बातें जन्म-भर याद रहती हैं – कहां केश-दाढ़ी मुँड़वा कर, काषायवस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ; कहां चार आर्य सत्यों का यथार्थ ज्ञान हुआ; कहां आस्रवों का क्षय कर, आस्रवरहित चित्तविमुक्ति तथा प्रज्ञा से विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगा।

* तीन बातों से अपना भी अहित होता है और दूसरों का भी – शरीर का दुराचरण; वाणी का दुराचरण; मन का दुराचरण। तीन बातों से न अपना अहित होता है और न दूसरों का –शरीर का सदाचरण; वाणी का सदाचरण; मन का सदाचरण।

* संसार में तीन प्रकार के लोग होते हैं – व्रण-समान चित्त वाले, विद्युत-समान चित्त वाले, वज्र-समान चित्त वाले; अथवा सेवा के अयोग्य, संगति के अयोग्य, परिचर्या के अयोग्य; अथवा मल-मुख, पुष्प-मुख, मधु-मुख; अथवा अंधे, काने, दोनों आंख वाले; औंधी खोपड़ी वाले, पल्ले जैसी प्रज्ञा वाले, बहुल-प्रज्ञ; इत्यादि। (भगवान ने इन पदों का आशय भी स्पष्ट किया।)

* कर्मों की उत्पत्ति के तीन हेतु होते हैं – लोभ, द्वेष, मोह; अथवा अ-लोभ, अ-द्वेष, अ-मोह।

* मद तीन प्रकार के होते हैं – यौवन-मद, आरोग्य-मद, जीवन-मद।

* तीन प्रकार के आधिपत्य होते हैं – आत्माधिपत्य, लोकाधिपत्य, धर्माधिपत्य।

* तीन बातों के होने से श्रद्धावान कुलपुत्र को बहुत पुण्य होता है – श्रद्धा होने से, दातव्य वस्तु होने से, दान देने योग्य व्यक्ति मिल जाने से।

* तीन बातों को पंडितों, सत्पुरुषों ने प्रज्ञापित किया है – दान, प्रव्रज्या, माता-पिता की सेवा।

* संस्कृत धर्मों के तीन लक्षण होते हैं – उत्पत्ति, विनाश, परिवर्तन। अ-संस्कृत धर्मों के लक्षण होते हैं – न उत्पत्ति, न विनाश, न परिवर्तन।

* तीन बातों के लिए प्रयत्न करना चाहिए – अनुत्पन्न पापपूर्ण, अकुशल

धर्मों की अनुत्पत्ति; अनुत्पन्न कुशल धर्मों की उत्पत्ति; दुःखद, तीव्र, कठोर, कटु, प्रतिकूल, बुरी, प्राणहर शारीरिक वेदनाओं के प्रति सहिष्णुता।

* आर्य-विनय में त्रैविद्य उसे कहते हैं जिसको ये तीन विद्याएं प्राप्त हो जाएं – पूर्वजन्मों की अनुस्मृति, दिव्य चक्षु तथा आस्रवों के क्षय का ज्ञान।

* तीन प्रकार के प्रातिहार्य हैं – ऋद्धि-प्रातिहार्य, देशना-प्रातिहार्य, अनुशासनी-प्रातिहार्य।

* तीन प्रकार की कथा-वस्तुएं होती हैं – भूतकाल-संबंधी, भविष्यकाल-संबंधी, वर्तमानकाल-संबंधी।

* तीन अकुशल-मूल हैं – लोभ, द्वेष, मोह। तीन कुशल-मूल हैं – अलोभ, अद्वेष, अमोह।

* उपोसथ तीन प्रकार के होते हैं – गोपाल-उपोसथ, निर्ग्रंथ-उपोसथ, आर्य-उपोसथ। (इनका आशय समझाते हुए भगवान ने कहा कि इन तीनों में आर्य-उपोसथ ही कल्याणकारी होता है, क्योंकि इसमें मैले चित्त को क्रमशः निर्मल किया जाता है। फिर बड़े विस्तार से यह भी समझाया कि चित्त को कैसे निर्मल किया जाता है।)

* जिन पर अनुकंपा करनी हो, और जो बात सुनने को तैयार हों, उन्हें तीन स्थानों पर लाना चाहिए – बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धा, धर्म के प्रति अचल श्रद्धा, संघ के प्रति अचल श्रद्धा।

* तीन शिक्षाएं ग्रहण करता हुआ भिक्षु शैक्ष कहलाता है – शील-संबंधी शिक्षा, चित्त-संबंधी शिक्षा, प्रज्ञा-संबंधी शिक्षा। आत्महित चाहने वाले कुलपुत्र जिन डेढ़ सौ 'अधिक' शिक्षापदों का हर पंद्रह दिन में पाठ करते हैं, वे सभी इन तीन शिक्षाओं में आ जाते हैं।

* परिषद तीन प्रकार की होती है – अग्र, व्यग्र, समग्र। (अग्र परिषद में स्थविर भिक्षु न तो अति-परिग्रही होते हैं, न शिथिल; वे अप्राप्त की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। व्यग्र परिषद में भिक्षु झगड़ा करते हैं और एक-दूसरे को मुख-रूपी शक्ति से बींधते रहते हैं। समग्र परिषद में भिक्षु एकजुट होकर, प्रमुदित मन से, बिना विवाद करते हुए, दूध व जल के मिश्रण के समान, एक-दूसरे को प्यार-भरी दृष्टि से देखते हुए विहार करते हैं।)

* जिन तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य, आतिथ्य करने

योग्य, दान-दक्षिणा देने योग्य, हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य, और लोक का पुण्य-क्षेत्र होता है, वे हैं – वर्ण, बल, गति। (भगवान ने यह भी समझाया कि कोई भिक्षु वर्णवान, बलवान तथा गतिमान कैसे होता है।)

* चित्त को एकाग्र करने की साधना में लगे हुए भिक्षु को समय- समय पर जिन तीन निमित्तों को मन में लाना चाहिए, वे हैं – समाधि-निमित्त, प्रग्रह-निमित्त, उपेक्षा-निमित्त। इससे भिक्षु का चित्त कोमल, कमनीय, प्रभास्वर तथा न टूटने वाला हो जाता है, और सम्यक रूप से आस्रवों के क्षय के लिए प्रयत्नशील हो उठता है।

* आर्य-विनय में गाना 'रोना' होता है, नाचना 'पागलपन' और देर तक दांत निकालकर हँसना 'बचपना'। धर्म में प्रमोद पाने वाले संत पुरुषों का तो मुस्कराना ही पर्याप्त होता है।

* संसार में इन तीन का प्रादुर्भाव दुर्लभ है – तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध, इनके द्वारा उपदिष्ट धर्म का उपदेश, अपने प्रति किये हुए उपकार को मानने वाला।

* तीन विपत्तियां हैं – शील-विपत्ति, चित्त-विपत्ति, दृष्टि-विपत्ति। तीन संपत्तियां हैं : शील-संपत्ति, चित्त-संपत्ति, दृष्टि-संपत्ति।

* तीन प्रकार की शुद्धि होती है – कायिक, वाचिक, मानसिक। मौन भी तीन प्रकार का होता है – कायिक, वाचिक, मानसिक।

* लोभ 'जूठन', क्रोध 'दुर्गंध' और पापपूर्ण अकुशल वितर्क 'मक्खियां' हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि कोई भिक्षु अपने आप को जूठा बनाए और उसमें से दुर्गंध न निकले और उस पर मक्खियां न बैठें, न मंडराएं।

* ये तीन छिपे-छिपे रहते हैं, खुले नहीं। कौन तीन? स्त्रियां, ब्राह्मणों के मंत्र, मिथ्या धारणाएं। ये तीन खुले चमकते हैं, ढँके नहीं। कौन तीन? चंद्रमंडल, सूर्यमंडल, तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म।

* संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं – पत्थर पर खिंची रेखा के समान, पृथ्वी पर खिंची रेखा के समान, पानी पर खिंची रेखा के समान। (पहले प्रकार का व्यक्ति प्रायः क्रुद्ध हो जाता है और उसका क्रोध भी चिरकाल तक बना रहता है। दूसरे प्रकार का व्यक्ति भी प्रायः क्रुद्ध हो जाता है पर उसका क्रोध

चिरकाल तक नहीं बना रहता है। तीसरे प्रकार का व्यक्ति कड़वा, कठोर बोला जाने पर भी अपने आप से जुड़ा रहता है, सदा प्रसन्न ही रहता है।)

* इन तीन अंगों से युक्त मित्र की संगति करनी चाहिए – जो कठिनाई से दी जाने योग्य वस्तु देता है, कठिनाई से किया जा सकने वाला कार्य करता है, कठिनाई से सहन की जा सकने वाली बात सहन करता है।

* चाहे तथागत उत्पन्न हों या न हों, यह धर्म की स्थिति, धर्म-नियामता ऐसी ही बनी रहती है – सारे संस्कार अनित्य हैं, सारे संस्कार दुःख हैं, सारे धर्म अनात्म हैं।

* तीनों कालों में अर्हत सम्यक संबुद्ध हुआ करते हैं – कर्मवादी, क्रियावादी, पराक्रमवादी।

* मार्ग तीन प्रकार के होते हैं – शिथिल, कठोर, मध्यम। (पहले मार्ग के अंतर्गत कोई व्यक्ति कामभोगों में दोष न मानते हुए इनमें जा पड़ता है। दूसरे के अंतर्गत वह शरीर को नाना प्रकार के कष्ट पहुँचाता हुआ विहार करता है। तीसरे के अंतर्गत वह लोक में लोभ और दौर्मनस्य को दूर कर, उद्योगशील हो, स्मृतिमान एवं संप्रज्ञानी बना रह, काया में कायानुपश्यी, वेदनाओं में वेदनानुपश्यी, चित्त में चित्तानुपश्यी और धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहरता है।)

इस निपात में भगवान ने गाथाओं के माध्यम से भी धर्म को अनेक प्रकार से प्रकाशित किया है, जैसे

अपने से हीन व्यक्ति की संगति करने वाला स्वयं हीन हो जाता है, समान की संगति करने वाला कभी ह्रास को प्राप्त नहीं होता, अपने से श्रेष्ठ की संगति करने वाला शीघ्र ही उन्नति को प्राप्त होता है। अतः अपने से श्रेष्ठ की ही संगति करनी चाहिए।

संतान के लिए माता-पिता ही 'ब्रह्मा', 'पूर्वाचार्य' कहलाते हैं। पुत्रों के लिए पूजनीय, वे संतान पर अनुकंपा करने वाले होते हैं। इसलिए बुद्धिमान संतान को चाहिए कि उन्हें नमस्कार करे, उनका सत्कार करे, और अन्न, पान, वस्त्र, शयनासन, मालिश, स्नान वा पाद-प्रक्षालन से उनकी परिचर्या करे।

श्रद्धावान उसे कहते हैं जो शीलवानों के दर्शन का इच्छुक हो, सद्धर्म सुनना चाहता हो, मात्सर्यरूपी मल को दूर किये हुए हो।

घर में आग लग जाने पर जो बर्तन उस आग में से बचा लिया जाता है, वही काम आता है। जो आग में जल जाता है, वह काम नहीं आता। ऐसे ही यह संसार जरा एवं मृत्यु से जल रहा है। इसमें से दान देकर जो निकाला जा सकता हो, उसे निकाल ले। दान का बड़ा फल होता है।

जो अभिनिवेश के वशीभूत होकर, अभिमानवश, विरोधी वार्तालाप करते हैं; जो अनार्य-गुण को प्राप्त कर परस्पर छिद्रान्वेषण करते रहते हैं; जो एक-दूसरे के दुर्भाषित, स्खलन, प्रमादवश बोले गए शब्दों तथा पराजय को लेकर प्रसन्न होते रहते हैं; ऐसे लोगों के साथ आर्यपुरुष बातचीत न करे।

प्राणी-हिंसा न करे, तस्करी न करे, असत्य न बोले, सुरापान न करे, अब्रह्मचर्य (मैथुन) से विरत रहे, रात्रि को विकाल-भोजन न करे, माला न पहने, सुगंधि न धारण करे, मंच पर या बिछी-भूमि पर रहे। बुद्ध ने दुःखों के अंतकर इस आठ अंगों वाले उपोसथ को प्रकाशित किया है।

फूल की सुगंध वायु के प्रतिकूल नहीं जाती, न चंदन की, न तगर की, न चमेली की।सत्पुरुषों की सुगंध वायु के प्रतिकूल भी जाती है। (वस्तुतः) सत्पुरुष की सुगंध सभी दिशाओं में खूब फैलती है।

ऋजुमार्ग पर चलने वाले शैक्ष को पहले दुःखों के क्षय का ज्ञान होता है और फिर इसके साथ-ही-साथ निर्वाण-लाभ। तब उस विमुक्तचित्त को यह पता चल जाता है कि नए भव देने वाले संयोजनों का क्षय हो गया है और अब मेरी विमुक्ति अचल हो गयी है।

जिसका शरीर मौन हो, वाणी मौन हो, चित्त मौन हो – ऐसे मौन-युक्त सर्वत्यागी अनास्रव व्यक्ति को 'मुनि' कहते हैं।

इसी निपात में सुप्रसिद्ध 'केसमुत्तिसुत्त' (३,७,५) का समावेश भी हुआ है। इसमें भगवान द्वारा केसमुत्तीय कालामों को दिया गया उपदेश निबद्ध है –"हे कालामो, आओ! तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार कर लो कि यह बात अनुश्रुत है, परंपरागत है, इसी तरह कही गयी है, हमारे धर्मग्रंथ के अनुसार है, तर्कसम्मत है, न्यायसम्मत है, इसका आकार-प्रकार सुंदर है, यह हमारे मत के अनुकूल है, इसे कहने वाले का व्यक्तित्व आकर्षक है, कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो! जब तुम अपने अनुभव से स्वयं जान लो कि ये बातें अकुशल हैं, सदोष हैं, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इनके अनुसार चलने से अहित होता है, दुःख होता है, तब तुम उन बातों को छोड़ दो।"

चौथा निपात

इस निपात में चार-चार धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो सत्ताईस वर्गों तथा एक पेय्याल में विभाजित है।

इस निपात में प्रतिपादित विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं

* भगवान ने भिक्षुओं को बतलाया कि आर्य-शील, आर्य-समाधि, आर्य-प्रज्ञा तथा आर्य-विमुक्ति –इन चार धर्मों का बोध न होने से संसार में मेरा और तुम्हारा दीर्घ कालसे संसरण होता आ रहा है। परंतु अब इन चारों का बोध हो जाने से भव-तृष्णा का उच्छेद हो गया है, भव-रज्जु कट गयी है और आगे नया जन्म नहीं है।

* माता, पिता, तथागत तथा उनका श्रावक –इन चार के प्रति अनुचित व्यवहार करने वाला बहुत अपुण्य कमाता है, और इनके प्रति उचित व्यवहार करने वाला बहुत पुण्य अर्जित करता है।

* चार प्रकार के योग हैं – कामयोग, भवयोग, दृष्टियोग तथा अविद्यायोग। ये आगे चलकर जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु का कारण बनते हैं। अतः इनसे युक्त हुआ व्यक्ति 'अयोगक्षेमी' कहलाता है और इनसे विसंयुक्त हुआ 'योगक्षेमी'।

* चार सम्यक प्रधान हैं –अनुत्पन्न, पापपूर्ण, अकुशल धर्मों को उत्पन्न न होने देने के लिए किया जाने वाला संकल्प वा प्रयास; उत्पन्न हुये पापपूर्ण, अकुशलधर्मों को दूर करने के लिए किया जाने वाला संकल्प वा प्रयास; अनुत्पन्न कुशल धर्मों को उत्पन्न करने के लिए किया जाने वाला संकल्प वा प्रयास; और उत्पन्न हुए कुशल धर्मों को बनाये रखने और बढ़ाने के लिए किया जाने वाला संकल्प वा प्रयास।

* चार धर्मपद हैं – अलोभ, अक्रोध, सम्यक स्मृति तथा सम्यक समाधि। ये अग्र हैं, दीर्घ कालसे चले आ रहे हैं, और किसी भी कालमें संकीर्ण नहीं होते।

* संग्रह करने योग्य चार वस्तुएं हैं – दान, प्रिय वचन, परोपकार तथा समानता का व्यवहार।

* महाप्रज्ञावान महापुरुष इन चार गुणों से युक्त होता है – बहुत लोगों के हित में लगा हुआ; संकल्प-विकल्पोंके विषय में चित्त का स्वामी; इसी जन्म में

सुख-विहार प्राप्त कराने वाले चारों चैतसिक ध्यानों को सहज भाव से प्राप्त करने में समर्थ; और आस्रवों का क्षय कर आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करने वाला।

* दोण ब्राह्मण के प्रश्नों के उत्तर में भगवान ने कहा कि मैं देवता, गंधर्व, यक्ष तथा मनुष्य – इन चारों में से कोई नहीं हूं। जिन आस्रवों के कारण मैं देव, गंधर्व, यक्ष अथवा मनुष्य होता, वे मुझमें नहीं हैं और न आगे चल कर उनके उत्पन्न होने की कोई संभावना ही रही है। मैं इस लोक में उत्पन्न हुआ हूं, बढ़ा हूं, किंतु इसे जीत कर इससे अलिप्त रह कर विहार करता हूं। मैं 'बुद्ध' हूं।

* इन चार बातों से युक्त भिक्षु पतन के अयोग्य हो जाता है – शीलवान, इंद्रियों में संवर किया हुआ, भोजन की मात्रा का जानकार तथा जागरणशील। ऐसे व्यक्ति को निर्वाण के समीप ही जानना चाहिए।

* समाधि-भावना चार प्रकार की होती है – जिसे भावित करने वा बढ़ाने से इसी जीवन में सुखविहार होता है, अथवा ज्ञानदर्शन का लाभ होता है, अथवा स्मृति-संप्रज्ञान जागता है, अथवा आस्रवों का क्षय होता है। स्मृति-संप्रज्ञान जगाने वाली समाधि-भावना के अंतर्गत साधक की जानकारी में वेदनाएं, संज्ञाएं तथा वितर्क उत्पन्न होते हैं, कुछ देर तक बने रहते हैं और फिर अंतर्धान हो जाते हैं। आस्रवों का क्षय कराने वाली समाधि-भावना के अंतर्गत साधक पांच उपादान-स्कंधों में उदय-व्यय की अनुभूति करता हुआ विहार करता है।

* प्रश्नों को निबटाने के चार ढंग होते हैं – जब प्रश्न का उत्तर 'हां' या 'नहीं में एकांशिक तौर पर दिया जाए, जब प्रश्न का विभाजन करके उत्तर दिया जाए, जब उल्टा प्रश्न पूछ कर उत्तर दिया जाए, और जब कोई उत्तर न दिया जाए।

* ये चार संज्ञा-विपर्यास, चित्त-विपर्यास अथवा दृष्टि-विपर्यास कहलाते हैं – अनित्य को नित्य मानना, दुःख को सुख मानना, अनात्मा को आत्मा मानना और अशुभ (असुंदर) को शुभ (सुंदर) मानना। इसके विपरीत अनित्य को अनित्य, दुःख को दुःख, अनात्मा को अनात्मा और अशुभ को अशुभ मानना संज्ञा-विपर्यास, चित्त-विपर्यास अथवा दृष्टि-विपर्यास नहीं कहलाते हैं।

* यदि किन्हीं पति-पत्नी की यह कामना हो कि हम जीवित रहते हुए भी

एक-दूसरे को देखें और मरणोपरांत भी, तो उन्हें चाहिए कि इन चार मामलों में समान हों – श्रद्धा, शील, त्याग तथा प्रज्ञा।

* सर्पदंशादि से परित्राण पाने के लिए भगवान ने भिक्षुओं को चार सर्पराजकुलों के प्रति निम्न प्रकार सेंमैत्री-भावना' करने की सीख दी

"विरूपाक्षों के प्रति मेरी मैत्री है, ऐरापथों के प्रति मेरी मैत्री है, छब्यापुत्रों के प्रति मेरी मैत्री है और कण्हागोतमकों के प्रति मेरी मैत्री है।

"बिना पैर वालों के प्रति मेरी मैत्री है, दो पैर वालों के प्रति मेरी मैत्री है, चार पैर वालों के प्रति मेरी मैत्री है, बहुत-से पैर वालों के प्रति मेरी मैत्री है।

"मुझे बिना पैर वाले कष्ट न पहुँचाएं, मुझे दो पैर वाले कष्ट न पहुँचाएं, मुझे चार पैर वाले कष्ट न पहुँचाएं, मुझे बहुत-से पैर वाले कष्ट न पहुँचाएं।

"जितने भी सत्त्व, प्राणी अथवा जंतु हैं, उन सबका कल्याण हो; कोई भी पाप का भागी न हो।

"असीम है बुद्ध, असीम है धर्म, असीम है संघ! ससीम हैं रेंगने वाले जंतु, सांप, बिच्छू, कनखजूरे, मकड़ी, छिपकली, चूहे।

"मैंने आरक्षा कर ली है, परित्राण पा लिया है। जंतु लौट जाएं। मैं भगवान तथा सात सम्यकसंबुद्धों को नमस्कार करता हूं।"

* प्रयत्न चार प्रकार के होते हैं – संवर-प्रयत्न, प्रहाण-प्रयत्न, भावना-प्रयत्न तथा अनुरक्षण-प्रयत्न। इन प्रयत्नों को करनेवाला व्यक्ति दु:ख के क्षय को प्राप्त कर सकता है।

* इन चार बातों का चिंतन नहीं करना चाहिए – बुद्धों का बुद्ध-विषय, ध्यानी का ध्यान-विषय, कर्म-विपाक तथा लोक की उत्पत्ति। इन विषयों का चिंतन करने से उन्माद अथवा चित्त का विघात हो सकता है।

* जिसमें ये चार बातें होती हैं, वह नरक में डाले गये के समान होता है –हिंसा करनेवाला, चोरी करनेवाला, कामभोग-संबंधी मिथ्याचार करनेवाला और झूठ बोलने वाला। इसके विपरीत, जिसमें ये चार बातें होती हैं, वह स्वर्ग में डाले गये के समान होता है – हिंसा करने से विरत, चोरी करने से विरत, कामभोग-संबंधी मिथ्याचार से विरत और झूठ बोलने से विरत।

* श्रद्धावान कुलपुत्र के लिए ये चार स्थान दर्शनीय होते हैं – जहां

तथागत उत्पन्न हुए, जहां उन्होंने सम्यक संबोधि प्राप्त की, जहां अनुपम धर्मचक्र प्रवर्तित किया, और जहां निरुपाधिशेष निर्वाण-धातु से परिनिर्वाण-लाभ किया। इन स्थानों के दर्शन से संवेग उत्पन्न होता है।

* ये चार भय हैं – जन्म-भय, जरा-भय, रोग-भय, मृत्यु-भय; अथवा अग्नि से भय, जल से भय, राजा से भय, चोर से भय; अथवा आत्म-निंदा का भय, दूसरों द्वारा निंदित होने का भय, दंड मिलने का भय, दुर्गति का भय।

* पानी में उतरने वाले के सामने चार भय होते हैं – लहरों का भय, मगरमच्छ का भय, भंवर का भय और महामच्छ का भय। इसी प्रकार श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हुए प्रव्रज्या-प्राप्त भिक्षु को भी यही चार भय होते हैं। (भगवान ने इन भयों का आशय भी समझाया।)

* आभा चार प्रकार की होती है – चंद्रमा की आभा, सूर्य की आभा, अग्नि की आभा और प्रज्ञा की आभा। इनमें प्रज्ञा की आभा ही अग्र (श्रेष्ठ) होती है।

* इंद्रियां चार हैं – श्रद्धा-इंद्रिय, वीर्य-इंद्रिय, स्मृति-इंद्रिय तथा समाधि-इंद्रिय। ऐसे ही, बल चार हैं – श्रद्धा-बल, वीर्य-बल, स्मृति-बल तथा समाधि-बल।

* सार चार प्रकार के होते हैं – शील-सार, समाधि-सार, प्रज्ञा-सार तथा विमुक्ति-सार।

* शय्याएं चार प्रकार की होती हैं – प्रेत-शय्या, कामभोगी-शय्या, सिंह-शय्या तथा तथागत-शय्या।

* भगवान ने अलग-अलग पर्याय को दृष्टि में रख लोक में चार-चार प्रकार के लोगों का होना बतलाया है, जैसे

* क्रोध को महत्त्व देने वाला, किंतु सद्धर्म को महत्त्व न देने वाला; दूसरे की अवमानना को महत्त्व देने वाला, किंतु सद्धर्म को महत्त्व न देने वाला; लाभ को महत्त्व देने वाला, किंतु सद्धर्म को महत्त्व न देने वाला; सत्कार को महत्त्व देने वाला, किंतु सद्धर्म को महत्त्व न देने वाला।

* सद्धर्म को महत्त्व देने वाला, किंतु क्रोध को महत्त्व न देने वाला; सद्धर्म को महत्त्व देने वाला, किंतु दूसरे की अवमानना को महत्त्व न देने वाला;

सद्धर्म को महत्त्व देने वाला, किंतु लाभ को महत्त्व न देने वाला; सद्धर्म को महत्त्व देने वाला, किंतु सत्कार को महत्त्व न देने वाला।

* अंधकार से अंधकार की ओर जाने वाला; अंधकार से प्रकाश की ओर जाने वाला; प्रकाश से अंधकार की ओर जाने वाला; प्रकाश से प्रकाश की ओर जाने वाला।

* नीचे से नीचे की ओर जाने वाला; नीचे से ऊपर की ओर जाने वाला; ऊपर से नीचे की ओर जाने वाला; ऊपर से ऊपर की ओर जाने वाला।

* अचल-श्रमण; पुंडरीक-श्रमण; पद्म-श्रमण; श्रमणों में सुकुमार श्रमण।

* आत्म-हित में लगा हुआ, किंतु पर-हित में नहीं; पर-हित में लगा हुआ, किंतु आत्म-हित में नहीं; न आत्म-हित में लगा हुआ, न पर-हित में; आत्म-हित तथा पर-हित, दोनों में लगा हुआ।

* प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहरने वाला; द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो विहरने वाला; तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहरने वाला; चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरने वाला।

* मैत्रीयुक्त चित्त से विहार करने वाला; करुणायुक्त चित्त से विहार करने वाला; मुदितायुक्त चित्त से विहार करने वाला; उपेक्षायुक्त चित्त से विहार करने वाला।

* सदोष, दोष-बहुल, अल्प-दोष, निर्दोष।

* अपरिपूर्ण शील, समाधि एवं प्रज्ञा वाला; परिपूर्ण शील, किंतु अपरिपूर्ण समाधि एवं प्रज्ञा वाला; परिपूर्ण शील एवं समाधि, किंतु अपरिपूर्ण प्रज्ञा वाला; परिपूर्ण शील, समाधि एवं प्रज्ञा वाला।

* अपने आपको संतप्त करने में लगा हुआ; दूसरे को संतप्त करने में लगा हुआ; अपने आपको संतप्त करने वाला और दूसरे को भी संतप्त करने वाला; न अपने आपको संतप्त करने वाला, न दूसरे को संतप्त करने वाला।

कई स्थलों पर चार प्रकार के लोगों की तुलना किन्हीं भौतिक पदार्थों अथवा अन्य जीवों से भी की गई है, जैसे

* बादल चार प्रकार के होते हैं – गरजने वाले, किंतु बरसने वाले नहीं; बरसने वाले, किंतु गरजने वाले नहीं; न गरजने वाले, न बरसने वाले; गरजने वाले

तथा बरसने वाले। पुरुष में भी इन बादलों से समानता रखने वाले चार प्रकार के लोग होते हैं।

घड़े चार प्रकार के होते हैं – खाली, किंतु ढके हुए; भरे हुए, किंतु खुले मुँह वाले; खाली, और खुले मुँह वाले; भरे हुए और ढके हुए। इस लोक में भी इन घड़ों से समानता रखने वाले चार प्रकार के लोग होते हैं।

* तालाब चार प्रकार के होते हैं – उथले, किंतु गहरा लगने वाले; गहरे, किंतु उथला लगने वाले; गहरे, और गहरा लगने वाले; उथले, और उथला लगने वाले। इस लोक में भी इन तालाबों से समानता रखने वाले चार प्रकार के लोग होते हैं।

* आम चार प्रकार के होते हैं – कच्चे, किंतु पके हुए लगने वाले; पके हुए, किंतु कच्चे लगने वाले; कच्चे, और कच्चे लगने वाले; पके हुए, और पके लगने वाले। इस लोक में भी इन आमों से समानता रखने वाले चार प्रकार के लोग होते हैं।

* चूहे चार प्रकार के होते हैं – बिल खोदने वाले, किंतु उसमें रहने वाले नहीं; बिल में रहने वाले, किंतु उसे खोदने वाले नहीं; न बिल खोदने वाले, न उसमें रहने वाले; बिल खोदने वाले, और उसमें रहने वाले। इस लोक में भी इन चूहों से समानता रखने वाले चार प्रकार के लोग होते हैं।

* सांड़ चार प्रकार के होते हैं – अपनी गौओं के प्रति चंड, किंतु परायी गौओं के प्रति नहीं; परायी गौओं के प्रति चंड, किंतु अपनी गौओं के प्रति नहीं; अपनी और परायी गौओं के प्रति चंड; न अपनी गौओं के प्रति चंड और न परायी गौओं के प्रति चंड। इस लोक में भी इन वृषभों से समानता रखने वाले चार प्रकार के लोग होते हैं।

भगवान ने प्रत्येक संदर्भ की आवश्यकतानुसार व्याख्या भी की है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि कोई भी बात किस आशय से कही गयी है।

इस निपात में और भी अनेक चतुष्कों की चर्चा की गयी है, जैसे

* तथागत के चार वैशारद्य;
* चार सूक्ष्मताएं;
* चार आर्य-वंश;

* चार अग्र;
* चार अवस्थाएं;
* चार प्रतिपदाएं;
* चार साक्षात्करणीय धर्म;
* सद्धर्म के लुप्त होने की कारणभूत चार बातें;
* सद्धर्म के लुप्त न होने की कारणभूत चार बातें; इत्यादि।

पांचवां निपात

इस निपात में पांच-पांच धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो छब्बीस वर्गों तथा तीन पेय्यालों में विभाजित है।

इसमें प्रतिपादित विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं

* पांच शैक्ष-बल हैं – श्रद्धा-बल, लज्जा-बल, (पाप-) भीरुता-बल, वीर्य-बल तथा प्रज्ञा-बल। भिक्षुओं को इनसे अपने आपको मुक्त करने की सीख लेनी चाहिए।

* पांच बल इस प्रकार हैं – श्रद्धा-बल, वीर्य-बल, स्मृति-बल, समाधि-बल तथा प्रज्ञा-बल। श्रद्धा-बल को देखना चाहिए चार स्रोतापत्ति अंगों में, वीर्य-बल को चार सम्यक प्रधानों में, स्मृति-बल को चार स्मृति-प्रस्थानों में, समाधि-बल को चार ध्यानों में और प्रज्ञा-बल को चार आर्य-सत्यों में।

* चित्त के पांच मैल हैं – कामच्छंद, व्यापाद, आलस्य, औद्धत्य-कौकृत्य तथा विचिकित्सा।इनसे मलिन हुआ चित्त आस्रवों के क्षय के लिए सम्यक रूप से समाहित नहीं हो पाता है।

* सम्यक दृष्टि-संपन्न सम्यक संबुद्ध का श्रावक इन पांच बातों को लेकर किसी कृपण व्यक्ति से आगे निकल जाता है – आयु, यश, वर्ण, सुख तथा आधिपत्य। मरणोपरांत वह स्वर्ग में आनंदित होता है।

* इन पांच गुणों से युक्त स्त्री शरीर छूटने पर मनापकायिक देवताओं के साथ जन्म ग्रहण करती है – पति का नित्य पोषण करने वाली, अपने स्वैरी-भाव से पति को रुष्ट न करने वाली, अपने पति के गौरव-भाजन व्यक्तियों का

सम्मान करने वाली, अप्रमादी एवं निरलसा, और पति की इच्छा के अनुरूप आचरण करने वाली।

* दान के पांच शुभ परिणाम होते हैं – (दाता) बहुत लोगों का प्रिय होता है, सत्पुरुषों की संगत होती है, कीर्ति फैलती है, गृहस्थ-धर्म का पालन चलता रहता है, और शरीर छूटने पर सद्गति, स्वर्ग-लाभ होता है।

* पांच समयोचित दान होते हैं – आने वाले अतिथि को दान, जाने वाले पथिक को दान, रोगी को दान, दुर्भिक्ष के समय दान, और नयी उपज वा नये फल आने पर उनकी सर्वप्रथम शीलवानों को भेंट।

* श्रद्धावान कुलपुत्र को पांच लाभ रहते हैं – सत्पुरुष अनुकंपा करते समय पहले श्रद्धावान पर अनुकंपा करते हैं, अश्रद्धावान पर नहीं; समीप आने पर पहले श्रद्धावान के समीप आते हैं, अश्रद्धावान के नहीं; स्वागत करते समय पहले श्रद्धावान का स्वागत करते हैं, अश्रद्धावान का नहीं; धर्मोपदेश देते समय पहले श्रद्धावान को उपदेश देते हैं, अश्रद्धावान को नहीं; और श्रद्धावान शरीर छोड़ने पर सुगति को प्राप्त होता है। जैसे किसी चौराहे पर सुभूमि पर स्थित महान वटवृक्ष चारों ओर से आने वाले पक्षियों का शरणस्थल होता है, वैसे ही श्रद्धावान कुलपुत्र बहुत लोगों का आश्रय होता है, भिक्षुओं का, भिक्षुणियों का, उपासकों का, उपासिकाओं का।

* पांच बातों को ध्यान में रख माता-पिता चाहते हैं कि उनके कुल में पुत्र उत्पन्न हो – वह पाला-पोसा जाकर हमारा पालन-पोषण करेगा; हमारा काम-काज करेगा; कुल-परंपरा चिरस्थायी होगी; उत्तराधिकारी होगा; और हमारे मर जाने पर दान-दक्षिणा देगा।

* ये पांच बातें अच्छी लगने वाली एवं सुंदर हैं किंतु इस लोक में दुर्लभ हैं – आयु, वर्ण, सुख, यश तथा स्वर्ग।

* ये पांच धन हैं – श्रद्धा-धन, शील-धन, श्रुत-धन, त्याग-धन तथा प्रज्ञा-धन।

* ये पांच बातें किसी भी श्रमण, ब्राह्मण, देवता, मार ब्रह्मा अथवा इस लोक में अन्य किसी को प्राप्य नहीं हैं – जराधर्मा जरा को प्राप्त न हो; व्याधिधर्मा व्याधि को प्राप्त न हो; मरणधर्मा मृत्यु को प्राप्त न हो; क्षयधर्मा क्षय को प्राप्त न हो; और नाशधर्मा नाश को प्राप्त न हो।

* इन पांच संज्ञाओं को भावित करने वा बढ़ाने से महान फल प्राप्त होता है – अशुभ-संज्ञा, मरण-संज्ञा, आदीनव-संज्ञा, आहार के विषय में प्रतिकूल-संज्ञा, और समस्त लोक के प्रति अनभिरति-संज्ञा।

* ये पांच संपत्तियां हैं – श्रद्धा-संपत्ति, शील-संपत्ति, श्रुत-संपत्ति, त्याग-संपत्ति तथा प्रज्ञा-संपत्ति। (अथवा) शील-संपत्ति, समाधि-संपत्ति, प्रज्ञा-संपत्ति, विमुक्ति-संपत्ति तथा विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-संपत्ति।

* ये पांच सुख-विहार हैं – प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करना, द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करना, तृतीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करना, चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करना, और आस्रवों का क्षय कर आस्रव-रहित चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा द्वारा विमुक्ति को इसी जीवन में अपनी अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करना।

जिस भिक्षु में ये पांच बातें होती हैं जैसे संतोष, अल्पाहारिता, जागरूकता, एकान्तवास, और चित्त विमुक्त होने पर उसका प्रत्यवेक्षण करने की शक्ति वह आनापान-स्मृति का अभ्यास करता हुआ अचिर काल में ही अरहंत अवस्था पा लेता है।

* पांच धर्मों से युक्त भिक्षु आह्वान करने योग्य होता है, पाहुना बनाने योग्य होता है, दक्षिणा देने योग्य होता है, हाथ जोड़ने योग्य होता है और लोगों के लिए अनुपम पुण्यक्षेत्र होता है। कौन से पांच धर्म? शील-युक्त होना, समाधि-युक्त होना, प्रज्ञा-युक्त होना, विमुक्ति-युक्त होना और विमुक्तिज्ञानदर्शन-युक्त होना।

* जिस भिक्षु में ये पांच बातें होती हैं, वह इस योग्य होता है कि सम्यक संबोधि प्राप्त कर विहार कर सके –रूपों के आकर्षण को सह सकने वाला, शब्दों के आकर्षण को सह सकने वाला, गंधों के आकर्षण को सह सकने वाला, रसों के आकर्षण को सह सकने वाला और स्प्रष्टव्यों के आकर्षण को सह सकने वाला।

* ये पांच बातें आयु घटाने वाली होती हैं – अपथ्य-सेवन, पथ्य की मात्रा न जानना, कच्चा-पक्का खाना, समय-असमय विचरना और अब्रह्मचारी होना। इसके विपरीत, आयु बढ़ाने वाली ये पांच बातें हैं –पथ्य-सेवन, पथ्य की

मात्रा जानना, अच्छी तरह पका हुआ खाना, समय देख कर विचरना, और ब्रह्मचारी होना।

* ये पांच अपाय-गामी होते हैं, इनका उद्धार नहीं हो सकता –माता की हत्या करनेवाला, पिता की हत्या करनेवाला, अरहंत की हत्या करनेवाला, दुष्ट चित्त से तथागत के शरीर से रक्त बहाने वाला, और संघ में फूट डालने वाला।

* ये पांच सत्पुरुष-दान हैं – श्रद्धापूर्वक दिया जाने वाला दान, सत्कारपूर्वक दिया जाने वाला दान, समय पर दिया जाने वाला दान, मुक्तहस्त होकर दिया जाने वाला दान, और बिना अपने आपको या किसी दूसरे को आघात पहुँचाये दिया जाने वाला दान।

* जिस व्यक्ति में ये पांच बातें होती हैं, वह धर्म सुनता हुआ भी इस योग्य नहीं होता कि कुशल धर्मों के पथ पर चलकर अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर सके। कौन सी पांच बातें? धर्म-कथा का उपहास करनेवाला, धर्म-कथिक का उपहास करनेवाला, अपना उपहास करनेवाला, जड़-मूर्ख दुष्ट-प्रज्ञ, न जानते हुए भी यह मानने वाला कि मैं जानता हूं।

* ये पांच बातें सद्धर्म के लोप का कारण बनती हैं – भिक्षु ध्यान देकर धर्म का श्रवण नहीं करते, ध्यान देकर धर्म का पाठ नहीं करते, ध्यान देकर धर्म को याद नहीं रखते, ध्यान देकर स्मृतिगत धर्मों के अर्थ पर विचार नहीं करते, और न ध्यान देकर उन धर्मों तथा उनके अर्थों को जान कर तदनुसार जीवन बिताते हैं।

* इसके विपरीत, ये पांच बातें सद्धर्म की स्थिति, लोप न होने का कारण बनती हैं –भिक्षु ध्यान देकर धर्म का श्रवण करते हैं, ध्यान देकर धर्म का पाठ करते हैं, ध्यान देकर धर्म को याद रखते हैं, ध्यान देकर स्मृतिगत धर्मों के अर्थ पर विचार करते हैं, और ध्यान देकर उन धर्मों तथा उनके अर्थों को जानकर तदनुसार जीवन बिताते हैं।

* इन पांच धर्मों से युक्त भिक्षु आसक्त हो उठता है – अश्रद्धा, दुराचार, अल्पश्रुतता, आलस तथा दुष्प्रज्ञता। इसके विपरीत, इन पांच धर्मों से युक्त भिक्षु विशारद हो जाता है –श्रद्धा, सदाचार, बहुश्रुतता, अप्रमाद तथा प्रज्ञा।

* इन पांच के उत्पन्न होने पर इन्हें रोकना बहुत कठिन हो जाता है – राग, क्रोध, मोह, प्रतिभा तथा गमिक चित्त।

* इन पांच बातों से युक्त उपासक मानो नरक में गया हुआ होता है – प्राणी-हिंसा करने वाला, चोरी करने वाला, कामभोगों के संबंध में मिथ्याचार करने वाला, झूठ बोलने वाला, और सुरा-मेरय आदि नशीले पदार्थों का सेवन करने वाला।

इसके विपरीत, इन पांच बातों से युक्त उपासक मानो स्वर्ग में गया हुआ होता है – प्राणी-हिंसा से विरत, चोरी से विरत, कामभोग-संबंधी मिथ्याचार से विरत, झूठ बोलने से विरत, और सुरा-मेरय आदि नशीले पदार्थों के सेवन से विरत।

* उपासक के लिए अकरणीय पांच व्यवसाय हैं – अस्त्र-शस्त्रों का व्यापार, प्राणियों का व्यापार, मांस का व्यापार, मद्य का व्यापार तथा विष का व्यापार।

* जिस वाणी में ये पांच बातें होती हैं, वह वाणी सुभाषित होती है – समय पर बोली गयी, सत्य, कोमल, सार्थक तथा मैत्रीपूर्ण चित्त से निकाली हुई।

* धर्म-श्रवण के पांच शुभ परिणाम होते हैं – पूर्व में न सुनी हुई बात सुनने को मिलती है, सुनी हुई बात स्पष्ट हो जाती है, संशय मिट जाता है, दृष्टि का मिथ्यात्व जाता रहता है, और चित्त प्रसन्न होता है।

इस निपात में और भी अनेक पंचकों की विस्तृत रूप से चर्चा की गयी है, जैसे

* पांच प्रकार के योद्धा

* पांच प्रकार के शास्ता

* पांच प्रकार के ब्राह्मण

* पांच भावी भय

* संबोधि प्राप्त करने से पूर्व तथागत के पांच महास्वप्न

* स्मृति व संप्रज्ञान के बिना सोने के दुष्परिणाम (और स्मृति व संप्रज्ञान से युक्त हो सोने के शुभ परिणाम)

* दातुन न करने के पांच दुष्परिणाम (और दातुन करने के पांच शुभ परिणाम)

* बहुत बोलने के पांच दुष्परिणाम (और थोड़ा बोलने के पांच शुभ परिणाम)

* अव्यवस्थित चारिका के पांच दुष्परिणाम (और व्यवस्थित चारिका के पांच शुभ परिणाम)

* दुश्चरित्रता के पांच दुष्परिणाम (और सच्चरित्रता के पांच शुभ परिणाम); इत्यादि।

छठा निपात

इस निपात में छः-छः धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो बारह वर्गों तथा एक रागपेय्याल में विभाजित है।

इसमें प्रतिपादित विषय-वस्तु के कतिपय उदाहरण निम्न प्रकार से हैं :

* जिस भिक्षु में ये छः बातें होती हैं, वह सत्कार के योग्य होता है, आतिथ्य के योग्य होता है, दक्षिणा के योग्य होता है, हाथ जोड़कर नमस्कार किये जाने योग्य होता है और लोगों के लिये अनुपम पुण्यक्षेत्र होता है। कौनसी छः बातें? जब वह आंख से किसी रूप को देखता है तब न तो वह प्रफुल्लित हो उठता है, न खिन्न ; बल्कि वह स्मृतिमान एवं संप्रज्ञानी बना रह कर उपेक्षाभाव से विहार करता है। ऐसे ही जब वह कान से कोई शब्द सुनता है, नाक से कोई गंध सूंघता है, जीभ से कोई रस चखता है, शरीर से किसी का स्पर्श करता है अथवा मन से किसी विषय को ग्रहण करता है तब न तो वह प्रफुल्लित हो उठता है, न खिन्न; बल्कि वह स्मृतिमान एवं संप्रज्ञानी बना रह कर उपेक्षा भाव से विहार करता है।

* ये छः अनुस्मृति स्थान हैं – बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, संघानुस्मृति, शीलानुस्मृति, त्यागानुस्मृति तथा देवतानुस्मृति।

* ये छः मोक्ष प्राप्त कराने वाली धातुएं हैं – मैत्री-चित्तविमुक्ति (द्वेष से), करुणा-चित्तविमुक्ति (खेद से), मुदिता-चित्तविमुक्ति (अरुचि से), उपेक्षा-चित्तविमुक्ति (राग से), अनिमित्त-चित्तविमुक्ति (सब निमित्तों से) और अहंकार का नाश (संदेह से)।

* भिक्षुओं की उन्नति-कारक ये छः बातें हैं – कार्य-बहुल न होना, वार्तालाप-बहुल न होना, निद्रा-बहुल न होना, मंडली-बहुल न होना, सुवचनीय होना और कल्याणमित्रता।

* ये छः अनुपम बातें हैं – अनुपम दर्शन, अनुपम श्रवण, अनुपम लाभ,

अनुपम शिक्षा, अनुपम परिचर्या तथा अनुपम अनुस्मरण। (भगवान ने प्रत्येक का आशय भी स्पष्ट किया।)

* ये छः बातें विद्यापक्षीय हैं – अनित्य-संज्ञा, अनित्य के प्रति दुःख-संज्ञा, दुःख के प्रति अनात्म-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, विराग-संज्ञा तथा निरोध-संज्ञा।

* ये बींधने वाले धर्म-पर्याय हैं – कामनाओं को जानना, कामनाओं के निदान(कारण) को जानना, कामनाओं के नाना स्वरूपों को जानना, कामनाओं के विपाक को जानना, कामनाओं के निरोध को जानना, और कामनाओं के निरोध की ओर ले जाने वाली प्रतिपदा को जानना।

और उसी प्रकार इन्हें भी जानना –वेदना, संज्ञा, आस्रव, कर्म तथा दुःख को।

भगवान ने यह भी स्पष्ट किया कि हर बात किस आशय से कही गयी है, जैसे:

वेदनाएं तीन प्रकार की होती हैं – सुखद, दुःखद एवं अदुःखद- असुखद। इनका निदान(कारण) होता है – 'स्पर्श'। इसके नाना स्वरूप होते हैं – सामिष सुखद, निरामिष सुखद, सामिष दुःखद, निरामिष दुःखद, सामिष अदुःखद-असुखद तथा निरामिष अदुःखद-असुखद। इनका विपाक इसमें होता है जब कोई व्यक्ति इनको भोगता हुआ पुण्य अथवा अपुण्य से प्राप्त होने वाले जन्म को ग्रहण करता है। 'स्पर्श' का निरोध ही वेदना का निरोध होता है। और वेदना का निरोध प्राप्त कराने वाली प्रतिपदा यही है जिसे कहते हैं आर्य अष्टांगिक मार्ग। जो व्यक्ति इन सब बातों को यथार्थतः जान लेता है, वही वेदना का निरोध प्राप्त करानेवाले निर्वेधिक ब्रह्मचर्य को प्रज्ञापूर्वक जानता है।

इस निपात में निम्नांकित विषयों के बारे में भी चर्चा हुई है।

–मरणानुस्मृति की भावना आस्रवों का क्षय करने के लिए, अप्रमत्त होकर किस प्रकार की जानी चाहिए।

–भय, दुःख, रोग, गंड (व्रण), संग तथा पंक –ये सारे शब्द कामनाओं के ही पर्याय हैं। पृथग्जन इनमें डूबे रहते हैं।

– कौन सी छः बातें विवादमूलक होती हैं।

–क्षत्रियों, ब्राह्मणों, गृहपतियों, स्त्रियों, तस्करों तथा श्रमणों के जीवन का क्या अभिप्राय होता है, उनका प्रधान विचार क्या होता है, और उनका दृढ़ निश्चय, अभिनिवेश तथा संतुष्टि किस-किस बात में निहित रहती है।

–समय समय पर धर्म-श्रवण करने और उनके अर्थों पर विचार करने के कौन से छः शुभ परिणाम होते हैं।

–'स्पर्श' एक अंत है और 'स्पर्श-समुदय' दूसरा, 'स्पर्श-निरोध' बीच में है। तृष्णा सियून(दर्जिन) है, क्योंकि यही जिस-किसी जन्म के साथ सी देती है। परंतु जो व्यक्ति इस बात को अभिज्ञा और परिज्ञा के स्तर पर जान लेता है, वह इसी जीवन में दुःखों का अंत कर लेता है।

–तथागत के कौनसे छः बल होते हैं जिनसे युक्त होने के कारण वे उच्च स्थान पाते हैं, परिषदों में सिंहनाद करते हैं और ब्रह्मचक्र को प्रवर्तित करते हैं।

–किन छः बातों को छोड़े बिना अनागामिता अथवा अरहत्व की प्राप्ति संभव अथवा असंभव होती है।

–किन छः बातों के होने से कोई व्यक्ति बलवान समाधि वाला होता है, और किन छः बातों के होने से दुर्बल समाधि वाला।

–किन छः बातों से कोई व्यक्ति इस लोक में दुःखी रहता है, और किन छः बातों से सुखी।

–किन छः बातों को छोड़े बिना अरहत्व का साक्षात्कार करना असंभव रहता है, और किन छः बातों को छोड़ देने से अरहत्व का साक्षात्कार कर पाना संभव हो जाता है।

–किन छः बातों के कारण कोई व्यक्ति नरक में डाले समान हो जाता है, और किन छः बातों के कारण स्वर्ग में डाले समान।

–सम्यक दृष्टि-प्राप्त व्यक्ति में कौनसी छः बातें प्रहीण हो गयी रहती हैं ।

– संसार में किन छः का प्रादुर्भाव दुर्लभ है।

सातवां निपात

इस निपात में सात-सात धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो दस वर्गों तथा एक रागपेय्याल में विभाजित है।

इसमें प्रतिपादित विषयवस्तु के कतिपय उदाहरण निम्न प्रकार से हैं

* जिस भिक्षु में ये सात बातें होती हैं, वह अपने स-ब्रह्मचारियों को अच्छा लगता है –लाभ की इच्छा न करने वाला, सत्कार की इच्छा न करने वाला, प्रसिद्धि की इच्छा न करने वाला, लज्जाशील, पापभीरु, अल्पेच्छ तथा सम्यक दृष्टिसंपन्न।

* ये सात बल हैं – श्रद्धा-बल, वीर्य-बल, लज्जा-बल, पापभीरुता-बल, स्मृति-बल, समाधि-बल तथा प्रज्ञा-बल। जो कोई इन बलों से बलवान होता है, वह सुख का जीवन जीता है।

* ये सात धन हैं – श्रद्धा-धन, शील-धन, लज्जा-धन, पापभीरुता-धन, श्रुत-धन, त्याग-धन तथा प्रज्ञा-धन। जिस किसी के पास ये धन हों, वह दरिद्र नहीं होता।

* ये सात अनुशय हैं – कामराग-अनुशय, प्रतिहिंसा-अनुशय, दृष्टि-अनुशय, विचिकित्सा-अनुशय, मान-अनुशय, भवराग-अनुशय तथा अविद्या-अनुशय। इन अनुशयों के पूर्ण रूप से उन्मूलन के लिए ब्रह्मचर्यवास किया जाता है।

* संसार में ये सात प्रकार के लोग पानी की उपमा के समान विद्यमान होते हैं – डूबा हुआ डूबा ही रहता है; ऊपर आकर फिर डूब जाता है; ऊपर आकर पानी पर स्थित रहता है; पानी के ऊपर आकर विशेष रूप से देखता है; पानी के ऊपर आकर तैरता है; पानी के ऊपर तैर कर स्थान-विशेष पर पहुँच कर रुक जाता है; और ऊपर आकर, तैर कर, पार जाकर स्थल पर जा खड़ा होता है। (भगवान ने इन कथनों का आशय भी स्पष्ट किया।)

* ये सात बातें भिक्षु की उन्नति के लिए होती हैं – शास्ता का गौरव, धर्म का गौरव, संघ का गौरव, शिक्षाओं का गौरव, समाधि का गौरव, अप्रमाद का गौरव तथा मैत्रीभाव का गौरव।

* संगति करने योग्य मित्र में ये सात गुण होते हैं – कठिनाई से दी जाने वाली वस्तु को देता है; दुष्कर कार्य करता है; असह्य दुरुक्त वचन भी सह लेता है; अपना रहस्य उस पर प्रकट कर देता है; उसका रहस्य छिपा कर रखता है; मुसीबत पड़ने पर साथ नहीं छोड़ता; और निर्धन हो जाने पर भी अवहेलना नहीं करता।

* जिस भिक्षु में ये सात बातें होती हैं, चित्त उसके वश में रहता है, वह चित्त के वश में नहीं रहता –समाधि-कुशलहोना, समाधि कीसमापत्ति में कुशल होना, समाधि की स्थिति में कुशल होना, समाधि से उठने में कुशल होना, समाधि कासुफलपाने में कुशलहोना, समाधि कीगोचरता में कुशलहोना, और समाधि के अभिनीहार (अधिष्ठान) में कुशल होना।

* बुद्धशासन में केवल वर्षगणना से ही किसी भिक्षु को विशिष्ट घोषित नहीं किया जाता। इन सात विशेषताओं के होने पर ही ऐसी घोषणा की जाती है –श्रद्धावान होना, लज्जाशील होना, पापभीरु होना, बहुश्रुत होना, प्रयत्नशील होना, स्मृतिमान होना, तथा प्रज्ञावान होना।

* ये सात प्रकार की अग्नियां हैं – राग-अग्नि, द्वेष-अग्नि, मोह-अग्नि, सत्कारभाजन-अग्नि, गृहपति-अग्नि, दक्षिणार्ह-अग्नि तथा काष्ठ-अग्नि।

* इन सात संज्ञाओं को भावित करने या बढ़ाने से महान फल प्राप्त होता है – अशुभ-संज्ञा, मरण-संज्ञा, भोजन के बारे में प्रतिकूल-संज्ञा, सभी लोकों के बारे में अनभिरति-संज्ञा, अनित्य-संज्ञा, अनित्य के प्रति दुःख-संज्ञा, और दुःख के प्रति अनात्म-संज्ञा।

* इन सात धर्मों से युक्त हुआ भिक्षु अचिरकाल में ही आस्रवों का क्षय कर आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति और प्रज्ञा से विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करने लगता है – श्रद्धावान होना, शीलवान होना, बहुश्रुत होना, ध्यानी होना, प्रयत्नशील होना, स्मृतिमान होना, और प्रज्ञावान होना।

* पुरुष की सात प्रकार की पत्नियां हो सकती हैं – वधक-जैसी, चोर-जैसी, मालकिन-जैसी, माता-जैसी, बहन-जैसी, सहेली-जैसी, और दासी-जैसी। (भगवान ने प्रत्येक का आशय भी स्पष्ट किया।)

* इन सात उपायों का आश्रय लेने से झगड़े-मुकद्दमे शांत हो जाते हैं – पक्षों की उपस्थिति में निर्णय देना, स्मृति के अनुसार निर्णय देना, अमूढ़ता के अनुसार निर्णय देना, प्रतिज्ञा (स्वीकारोक्ति) के अनुसार निर्णय देना, बहुमत के अनुसार निर्णय देना, उसके पाप-कर्म के अनुसार निर्णय देना और पक्षों की सहमति से मुकद्दमा समेट लेना।

* इन सात धर्मों के छिन्न-भिन्न हो जाने से कोई व्यक्ति 'भिक्षु' होता है

– सत्कायदृष्टि, विचिकित्सा, शील-व्रतों से गहरी आसक्ति, राग, द्वेष, मोह, और मान।

इन्हीं सात धर्मों के शांत हो जाने से कोई व्यक्ति 'श्रमण' और बाहर कर दिए जाने से 'ब्राह्मण' हो जाता है। इन्हीं धर्मों से स्नात होने से 'स्नातक', इन्हें (वेदनाओं के स्तर पर) विदित कर लेने से 'वेदगू' और इनसे दूर-परे चले जाने से 'आर्य' हो जाता है।

इस निपात में निम्नांकित के बारे में भी चर्चा हुई है

सात धर्म, जिनके अनुसार आचरण करने से भिक्षुओं की उन्नति ही होती है, अवनति नहीं।

सात बातें, जो किसी उपासक की उन्नति अथवा अवनति का कारण होती हैं।

विज्ञान (चित्त) की सात प्रकार की स्थितियां।

सात पुरुष-गतियां तथा प्रत्ययरहित परिनिर्वाण।

किन उपायों से तंद्रा का निवारण किया जा सकता है।

कौनसी बातें बैरियों को अच्छी लगती हैं और किसी के भी मन में क्रोध जगा देती हैं।

किन सात बातों से कोई भिक्षु 'विनयधर' होता है, और किन सात बातों से यह 'सुशोभित' होता है।

कौन से सात 'सद्धर्म' हैं, और कौन से सात 'असद्धर्म'।

इस निपात में 'क्रोध' के दुष्परिणामों का मार्मिक वर्णन भी मिलता है

क्रोध करने वाला दुर्वर्ण होता है, दुःखी होकर सोता है, और अनर्थ को प्राप्त होता है। क्रोध-रूपी मद से उन्मत्त हुए व्यक्ति का ऐश्वर्य जाता रहता है। उसके जातिभाई और मित्रजन उससे किनारा कर लेते हैं।

क्रोध अनर्थकारी होता है, इससे चित्त में कोप जागता है और भीतर-ही-भीतर भय उत्पन्न होता है। यह जिसके सिर पर सवार हो जाता है वह भला-बुरा नहीं समझता, धर्म को देख नहीं पाता और निपट अंधा हो जाता है। क्रोध उतर जाने पर वह आग से जलाये गये के समान अनुताप अनुभव करता रहता है।

क्रोधके वशीभूत व्यक्ति को न लज्जा होती है, न पाप-भीरुता। वह पिता की हत्या कर डालता है, माता की भी, श्रेष्ठ पुरुष की भी, अज्ञानी की भी।

क्रोधसे मूर्च्छित हुए व्यक्ति खड्ग से आत्मघात कर लेते हैं, विष खा लेते हैं, गले में फंदा डाल कर मर जाते हैं और गिरि-गह्वरों में गिर कर अपने प्राण गँवा देते हैं।

बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह इंद्रिय-संयम, प्रज्ञा, वीर्य तथा सम्यक दृष्टि से क्रोध-रूपी मृत्यु-पाश की जड़ काट दे।

आठवां निपात

इस निपात में आठ-आठ धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो दस वर्गों तथा एक रागपेय्याल में विभाजित है।

इसमें प्रतिपादित विषय-वस्तु के कतिपय उदाहरण निम्न प्रकार से हैं:

* जिस भिक्षु में ये आठ बातें होती हैं, वह अपने साथियों को अच्छा नहीं लगता है। कौन सी आठ बातें? – अप्रिय जनों की प्रशंसा करता है और प्रिय जनों की निंदा; लाभ की कामना करता है और सत्कार की भी; लज्जारहित होता है और पाप से भय नहीं खाता; बुरी इच्छाओं वाला होता है और मिथ्या दृष्टि वाला भी।

* यह विश्व इन आठ लोक-धर्मों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है – लाभ, अलाभ, यश, अपयश, निंदा, प्रशंसा, सुख तथा दुःख। स्मृति और मेधा से युक्त व्यक्ति इनके परिवर्तनशील स्वभाव को समझता है और इनसे प्रभावित नहीं होता है।

* ये आठ प्रकार के मैल हैं – पाठ न करना (वेद-) मंत्रों का मैल है, आलस्य गृहस्थ-जीवन का मैल है, तंद्रा शरीर के वर्ण का मैल है, प्रमाद रक्षक का मैल है, दुश्चरित्रता स्त्री का मैल है, लोभ दाता का मैल है, इहलोक तथा परलोक में जितने पाप-धर्म हैं वे सब मैल हैं, अविद्या सबसे बड़ा मैल है।

* जिस भिक्षु में ये आठ बातें हों, वह 'दूत' बना कर भेजे जाने के योग्य होता है – सुनने वाला हो, सुनाने वाला हो, सीखने वाला हो, धारण करने वाला हो, जानने वाला हो, जनाने वाला हो, समीचीन और असमीचीन की परख करने में कुशल हो और कलह करने वाला न हो।

* ये आठ प्रकार के बल हैं – रोना बच्चों का, क्रोध स्त्रियों का, शस्त्र चोरों का, ऐश्वर्य राजाओं का, क्षुब्ध होना मूर्खों का, ध्यान करना बुद्धिमानों का, मीमांसा करना बहुश्रुतों का और सहिष्णुता श्रमणों तथा ब्राह्मणों का।

* ये आठ महापुरुष-वितर्क हैं – यह धर्म अल्पेच्छ के लिए है, महेच्छ के लिए नहीं; संतुष्ट के लिए है, असंतुष्ट के लिए नहीं; एकांतप्रिय के लिए है, भीड़-भाड़ में रहने वाले के लिए नहीं; प्रयत्नशील के लिए है, तंद्रिल के लिए नहीं; उपस्थित-स्मृति (सावधान) के लिए है, मूढ़-स्मृति (असावधान) के लिए नहीं; एकाग्रचित्त के लिए है, विक्षिप्तचित्त के लिए नहीं; प्रज्ञावान के लिए है, दुष्प्रज्ञ के लिए नहीं। (भगवान ने इसका आशय भी समझाया।)

* ये आठ प्रकार के दान हैं – (प्रतिग्राहक के) आने पर दान देना; भय के मारे दान देना; 'मुझे दिया था' इसलिए दान देना; 'मुझे देगा', यह सोच कर दान देना; 'दान देना अच्छा है', इस विचार से दान देना; 'मैं (भोजन) पकाता हूं, ये नहीं पकाते, यह उचित नहीं कि पकानेवाला न पकानेवाले को दान न दे' यह सोचकर दान देना; 'यह दान देने से मेरा यश फैलेगा', इस भावना से दान देना; और चित्त को अलंकृत, परिष्कृत करने के लिए दान देना।

* ये आठ सत्पुरुष दान हैं – पवित्र वस्तु का दान; उत्तम वस्तु का दान; समय पर दिया गया दान; उचित वस्तु का दान; सोच-विचार कर दिया गया दान; सतत दान; दान देते समय चित्त की प्रसन्नता; और दान दे चुकने पर आत्मविभोरता।

* 'उपोसथ' के ये आठ अंग हैं – प्राणी-हिंसा न करना; चोरी न करना; झूठ न बोलना; मद्यपान न करना; अब्रह्मचर्य अथवा मैथुन-कर्म से विरत होना; रात्रि को विकाल-भोजन न करना; न माला पहनना, न सुगंधि का लेप करना; और (नीची) खाट अथवा धरती के बिछौने पर सोना। (भगवान ने यह भी बतलाया कि आठ अंगों वाले 'उपोसथ' व्रत का पालन करना महान फलदायी होता है, और यह भी बताया कि क्यों होता है।)

* जिस स्त्री में ये आठ बातें हों, वह धर्म में ठहरी हुई, सत्यभाषिणी, शीलवती नारी कहलाती है – अपने कर्मों की सम्यक व्यवस्थापिका, परिजनों का संग्रह करनेवाली, पति की इच्छानुसार आचरण करनेवाली, कमाये हुए की रक्षा करनेवाली, श्रद्धा-युक्त, शीलसंपन्न, उदारचेता तथा मात्सर्यरहित। ऐसी नारी हर समय परलोक-पथ को प्रशस्त करती रहती है।

* ये आठ व्यक्ति आदर करने योग्य, सत्कार करने योग्य, दक्षिणार्ह, हाथ जोड़ कर अभिवादन करने योग्य और लोगों के लिए अनुपम पुण्यक्षेत्र होते हैं – स्रोतापन्न, स्रोतापत्ति-फल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न, सकृदागामी, सकृदागामिता-फल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न, अनागामी, अनागामिता-फल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न, अर्हत तथा अरहत्व-फल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न।

इस निपात में निम्नांकित विषयों के बारे में भी चर्चा हुई है:

जितना भी सुभाषित है, वह सभी भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध का है । अन्य सभी लोग उसी में से ले-लेकर धर्मोपदेश देते हैं।

– एक दृष्टि से यह भी कहा जा सकता है कि श्रमण गौतम नीरस, भोगरहित, अक्रियावादी, उच्छेदवादी, घृणा करने वाला, दमन करने वाला, तपस्वी तथा अप्रगल्भ है। (भगवान ने ऐसा कहा जाने का कारण भी सुस्पष्ट किया।)

–निर्ग्रंथ श्रावक सिंह सेनापति को विरज, विमल धर्मचक्षु का प्राप्त होना ।

–अच्छे घोड़े की आठ बातें, और ऐसे ही सत्कार-योग्य, दक्षिणार्ह, लोगों के लिए पुण्य-क्षेत्र भिक्षु की आठ बातें।

–किन आठ उपायों से स्त्री पुरुष को और पुरुष स्त्री को अपने-अपने बंधन में बांध लेते हैं।

–महासमुद्र की, और इसी प्रकार धर्मविनय की, आठ-आठ आश्चर्यकारक, अद्भुत बातें।

– किन आठ बलों से क्षीणास्रव भिक्षु अपने आप को 'क्षीणास्रव' होना जतलाता है।

–कौनसी आठ बातों से कोई स्त्री प्राण छोड़ने पर 'मनापकायी देवियों' की संगति में उत्पन्न होती है।

–महापजापति गोतमी द्वारा भगवान की आठ गंभीर शर्तें स्वीकार कर लेने पर उसकी उपसंपदा।

– भोग के साधनों की प्राप्ति और विनाश के चार-चार रास्ते।

–बोधि प्राप्त करनेसे पूर्व भगवान बुद्ध कोआठ प्रकारसे देवताओं के बारे में ज्ञान-दर्शन।

–आठ अभिभूत आयतन, आठ विमोक्ष, आठ आर्य व्यवहार, आठ अनार्य व्यवहार, आठ परिषदें, भारी भूकंप के आठ हेतु, आठ संपदाएं, आठ उत्साह-वार्ताएं, इत्यादि।

भगवान ने भिक्षुओं को यह भी समझाया कि

* सभी धर्मों का मूल है 'छंद' (संकल्प);
* सभी धर्म मन से उत्पन्न होते हैं;
* सभी धर्मों का उदय स्पर्श से होता है;
* सभी धर्म वेदनाओं में आ मिलते हैं;
* सभी धर्मों में समाधि प्रमुख है;
* सभी धर्मों में स्मृति प्रधान है;
* सभी धर्मों में प्रज्ञा श्रेष्ठतम है;
* सभी धर्मों का सार है –'विमुक्ति'।

नौवां निपात

इस निपात में मुख्यतया नौ-नौ धर्मों कोलेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो नौ वर्गों तथा एक रागपेय्याल में विभाजित है।

इसमें प्रतिपादित विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से हैं

* क्षीणास्रव अर्हत के लिए ये नौ बातें कर पाना असंभव होता है – जान-बूझ कर किसी प्राणी की हत्या करना; चोरी करना; मैथुन-धर्म का सेवन करना; जान-बूझ कर झूठ बोलना; गृहस्थकाल के समान जोड़ने-बटोरने वाला होना; राग के वशीभूत होना; द्वेष के वशीभूत होना; मोह के वशीभूत होना; तथा भय के वशीभूत होना।

* इन नौ संज्ञाओं को भावित करने वा बढ़ाने से अमृत की प्राप्ति होती है –अशुभ-संज्ञा, मरण-संज्ञा, भोजन के बारे में प्रतिकूल संज्ञा, सभी लोकों के

बारे में अनभिरति-संज्ञा, अनित्य-संज्ञा, अनित्य के प्रति दु:ख-संज्ञा, दु:ख के प्रति अनात्म-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा तथा विराग-संज्ञा।

* जिस कुल में ये नौ बातें हों, वहां नहीं जाना चाहिए और जाना हो जाय तो वहां बैठना नहीं चाहिए – अच्छी तरह उठ कर स्वागत न करते हों; अच्छी तरह अभिवादन न करते हों, आदरपूर्वक आसन न देते हों; घर में होती हुई वस्तु को भी छिपाते हों; बहुत होने पर भी थोड़ा-सा देते हों; बढ़िया होने पर भी रूखा-सूखा देते हों; सत्कारपूर्वक नहीं, असत्कारपूर्वक देते हों; धर्म की बात सुनने के लिए न बैठते हों; और जो कहा जाय, उसे सुनते न हों।

* ऐसे नौ धर्म हैं जिनके मूल में तृष्णा होती है – तृष्णा के होने से खोज; खोज के होने से प्राप्ति; प्राप्ति के होने से विनिश्चय; विनिश्चय के होने से आसक्ति; आसक्ति के होने से ममत्व; ममत्व के होने से परिग्रह; परिग्रह के होने से मात्सर्य; मात्सर्य के होने से आरक्षण; और आरक्षण को लेकर दंडादंडी, शस्त्र-प्रयोग, कलह, विग्रह, विवाद, तू-तू-मैं-मैं, चुगलखोरी, झूठ बोलना और दूसरे भी अनेक पापपूर्ण, अकुशल धर्म।

* क्रमश: होने वाले नौ निरोध हैं – प्रथमध्यान-प्राप्त व्यक्ति की कामसंज्ञा का निरोध; द्वितीयध्यान-प्राप्त व्यक्ति के वितर्कों और विचारों का निरोध; तृतीयध्यान-प्राप्त व्यक्ति की प्रीति का निरोध; चतुर्थध्यान-प्राप्त व्यक्ति के आश्वास-प्रश्वास का निरोध; आकाशानंत्यायतन-प्राप्त व्यक्ति की रूपसंज्ञा का निरोध; विज्ञानानंत्यायतन-प्राप्त व्यक्ति की आकाशानंत्यायतन-संज्ञा का निरोध; आकिंचन्यायतन-प्राप्त व्यक्ति की विज्ञानानंत्यायतन-संज्ञा का निरोध; नैवसंज्ञानासंज्ञा-प्राप्त व्यक्ति की आकिंचन्यायतन-संज्ञा का निरोध; और संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था को प्राप्त हुए व्यक्ति की संज्ञा तथा वेदना का निरोध।

* क्रमश: होने वाले नौ विहार हैं – प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान, आकाशानंत्यायतन, विज्ञानानंत्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन तथा संज्ञावेदयितनिरोध। ये सभी आस्रवों के क्षय का कारण बनते हैं। (भगवान ने विस्तार से इसका निदान भी प्रस्तुत किया।)

* इन नौ धर्मों को छोड़े बिना अरहत्व का साक्षात्कार नहीं हो सकता – राग, द्वेष, मोह, क्रोध, वैर, दूसरे का अवमूल्यन, तिरस्कार, ईर्ष्या तथा मात्सर्य। पर इन्हें छोड़ देने से साक्षात्कार होने की संभावना हो जाती है।

इस निपात में निम्नांकित विषयों के बारे में भी चर्चा हुई है

समय-समय पर धर्म-श्रवण करने, धर्म के विषय में बातचीत करने के शुभ परिणाम।

संसार में नौ प्रकार के लोगों की विद्यमानता।

प्राणियों के नौ प्रकार के आवास।

चित्त में रोष उत्पन्न होने के नौ कारण और इसे दूर करने के भी नौ उपाय।

निर्वाण 'सुख' क्योंकर है?

भगवान ने 'सम्यक संबुद्ध' होने का दावा कब किया?

भिन्न-भिन्न प्रकार की बाधाएं और उनका निवारण।

शिक्षा-संबंधी दुर्बलताएं, नीवरण, कामगुण आदि, और इनके प्रहाण का उपाय।

इस निपात में निम्नांकित पदों की व्याख्या भी मिलती है

कायसाक्षी, प्रज्ञाविमुक्त, उभयतोभागविमुक्त, सांदृष्टिक धर्म, निर्वाण, परिनिर्वाण, तदंगनिर्वाण, दृष्टधर्मनिर्वाण, क्षेम, क्षेमप्राप्त, अमृत, अमृतप्राप्त, अभय, अभयप्राप्त, प्रश्रब्धि, निरोध, इत्यादि।

दसवां निपात

इस निपात में मुख्यतया दस-दस धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो बाईस वर्गों तथा एक रागपेय्याल में विभाजित है।

इसमें प्रतिपादित विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से हैं

* इन दस धर्मों से युक्त भिक्षु सभी को प्रसन्न करने वाला और सर्व प्रकार से परिपूर्ण होता है – श्रद्धा, शील, बहुश्रुतता, धर्मकथिकता, परिषदगोचरता, परिषद को धर्मदेशना देने में निपुणता, विनयधरता, आरण्यकता, चारों ध्यानों की स्वेच्छा एवं सुगमता से प्राप्ति, और आस्रवों का क्षय हो जाने से आस्रवरहित चित्त की विमुक्ति एवं प्रज्ञा से विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरना।

* ये दस संयोजन हैं – सत्कायदृष्टि, विचिकित्सा, शील-व्रतों से अत्यधिक चिपकाव, कामछंद, व्यापाद, रूपराग, अरूपराग, मान, उद्धतपन और अविद्या। इनमें से पहले पांच नीचे के संयोजन कहलाते हैं और पिछले पांच ऊपर के संयोजन।

* ये दस व्यक्ति भेंट देने योग्य, अतिथि बनाने योग्य, दक्षिणा देने योग्य, हाथ जोड़कर स्वागत करने योग्य और लोगों के लिए अनुपम पुण्यक्षेत्र होते हैं – सम्यकसंबुद्ध, प्रत्येकबुद्ध, दोनों ओर से विमुक्त, प्रज्ञाविमुक्त, कायसाक्षी, दृष्टिप्राप्त, श्रद्धाविमुक्त, श्रद्धानुसारी, धर्मानुसारी तथा गोत्रभू (आर्यजन)।

* ये दस तथागत के तथागत-बल होते हैं, जिनसे युक्त होकर वे अपने श्रेष्ठत्व की घोषणा करते, परिषदों में सिंहनाद करते और धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हैं – उचित को उचित और अनुचित को अनुचित यथार्थतः जानना; तीनों कालों के कर्मों का फल, सकारण, यथार्थतः जानना; सर्वत्रगामी प्रतिपदा को यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक जानना; नानाधातुक लोक को यथार्थतः जानना; प्राणियों की नाना प्रकार की प्रवृत्ति को यथार्थतः जानना; अन्य व्यक्तियों की श्रद्धा आदि इंद्रियों की कमी-बेशी को यथार्थतः जानना; ध्यानों, विमोक्षों, समाधियों के बाधक धर्मों, इनकी परिशुद्धि और उनसे उठने को यथार्थतः जानना; अनेक प्रकार के पूर्व-जन्मों का अनुस्मरण; विशुद्ध दिव्य चक्षु से प्राणियों को अपने-अपने कर्मों की गति के अनुसार मरते-जन्मते देखना; और आस्रवों का क्षय कर आस्रव-रहित चित्त की विमुक्ति, प्रज्ञा से विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं अभिज्ञा से साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरना।

* ये शरीर के दस धर्म हैं – सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, मल, मूत्र, शरीर का संयम, वाणी का संयम, आजीविका-संबंधी संयम, तथा पुनर्भव का हेतु भव-संस्कार।

* दस संज्ञाएं जिनके कारण आयुष्मान गिरिमानन्द का रोग जाता रहा – अनित्य-संज्ञा, अनात्म-संज्ञा, अशुभ-संज्ञा, आदीनव-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, विराग-संज्ञा, निरोध-संज्ञा, सब लोकों के प्रति अनभिरति संज्ञा, सभी संस्कारों के प्रति अनिच्छा-संज्ञा तथा आनापान-स्मृति।

* उचित प्रकार के दस कथा-प्रकरण हैं – अल्पेच्छ-कथा, संतुष्टि-कथा, प्रविवेक-कथा, असंसर्ग-कथा, वीर्यारंभ-कथा, शील-कथा, समाधि-कथा,

प्रज्ञा-कथा, विमुक्ति-कथा तथा विमुक्तिज्ञानदर्शन-कथा। इन्हीं कथा-प्रकरणों को आधार बनाकर बातचीत करना समीचीन रहता है।

* दस कांटे हैं – एकांत-प्रेमी के लिए मंडली में रहना; अशुभ निमित्त की भावना में लगे हुए के लिए शुभ निमित्त में लगना; इंद्रिय-निग्रह करने वाले के लिए खेल-तमाशे देखना; ब्रह्मचारी के लिए स्त्रियों की संगति में रहना; प्रथम ध्यान के लिए शब्द; द्वितीय ध्यान के लिए वितर्क और विचार; तृतीय ध्यान के लिए प्रीति; चतुर्थ ध्यान के लिए आश्वास-प्रश्वास; संज्ञावेदयितनिरोध की अवस्था के लिए संज्ञा तथा वेदना; और राग, द्वेष तथा मोह। (भगवान ने भिक्षुओं को बिना कांटे के, निष्कंटक होकर विहरने की सीख दी।)

* कौवे के दस दुर्गुण हैं – दु:साहस, प्रगल्भता, लोलुपता, पेटूपना, लालच, निर्दयता, दुर्बलता, घटिया प्रकार की रुचि, स्मृतिविमूढ़ता और नीचता। पापी भिक्षु भी यही दुर्गुण संजोये रहता है।

* ये दस झड़ जाने वाली वस्तुएं हैं – सम्यक दृष्टि वाले की मिथ्या दृष्टि, सम्यक संकल्प वाले के मिथ्या संकल्प, सम्यक वचन वाले के मिथ्या वचन, सम्यक कर्मांत वाले के मिथ्या कर्मांत, सम्यक आजीविका वाले की मिथ्या आजीविका, सम्यक व्यायाम वाले का मिथ्या व्यायाम, सम्यक स्मृति वाले की मिथ्या स्मृति, सम्यक समाधि वाले की मिथ्या समाधि, सम्यक ज्ञान वाले का मिथ्या ज्ञान और सम्यक विमुक्ति वाले की मिथ्या विमुक्ति। इनके झड़ जाने से इनके कारण होने वाले पाप कर्म भी झड़ जाते हैं।

* संगति करने योग्य व्यक्ति के दस धर्म – प्राणी-हिंसा न करना, चोरी न करना, कामभोग-संबंधी मिथ्याचार न करना, झूठ न बोलना, चुगली न खाना, कठोर वचन न बोलना, व्यर्थ प्रलाप न करना, लोभ न करना, क्रोध न करना और सम्यक दृष्टि वाला होना।

इस निपात में निम्नांकित विषयों की भी चर्चा हुई है

कुशल-कर्म, शील-पालन से आगे-से-आगे क्या लाभ होता है?

किन पांच बातों से मुक्त, और किन पांच बातों से युक्त, कोई भिक्षु 'केवली' कहलाने लगता है?

सभी कुशल कर्मों में 'अप्रमाद' अग्र (श्रेष्ठ) कहलाता है।

किन दस धर्मों के होने से कोई भिक्षु सनाथ' कहलाता है।

दस आर्यवास, जिनमें आर्य (श्रेष्ठ जन) आवास करते थे, करते हैं और किया करेंगे।

दस उद्देश्य, जिनकी पूर्ति के लिए शिक्षापद प्रज्ञप्त किये गये, और प्रातिमोक्ष के नियम बनाये गये।

दस विवादमूल (झगड़े के कारण)।

राजा के रनिवास में जाने के दस दुष्परिणाम।

शुभ अथवा अशुभ कार्यों में लगने के कारण।

इस धर्मविनय में 'सुख' और 'दुःख' क्या है?

दस प्रशंसनीय बातें।

दस प्रकार के कामभोगी।

'आर्य विरेचन' और 'आर्य वमन'।

दो पाटः इस ओर का और उस ओर का।

'आर्य प्रत्यवरोहण'

वे बातें जिनसे कोई व्यक्ति स्वर्ग में डाले समान हो जाता है, अथवा नरक में डाले समान; इत्यादि।

भगवान ने निम्नांकित के बारे में भी देशना की है – साधु-असाधु; कुशल-अकुशल;अर्थ-अनर्थ; धर्म-अधर्म; आर्य धर्म और अनार्य धर्म; सास्रव धर्म और अनास्रव धर्म; सदोष धर्म और निर्दोष धर्म; इत्यादि।

और इसी प्रकार

आर्य मार्ग और अनार्य मार्ग; कृष्ण मार्ग और शुक्ल मार्ग; असद्धर्म और सद्धर्म; अपनाने योग्य धर्म और न अपनाने योग्य धर्म; साक्षात करने योग्य धर्म और साक्षात न करने योग्य धर्म; इत्यादि।

ग्यारहवां निपात

इस निपात में मुख्यतया ग्यारह-ग्यारह धर्मों को लेकर दिये गये उपदेशों का संग्रह है, जो तीन वर्गों तथा एक रागपेय्याल में विभाजित है।

इसमें प्रतिपादित विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से हैं

* अपने सब्रह्मचारियों के प्रति आक्रोश करने वाले, उनकी खिल्ली उड़ाने वाले के बारे में यह संभावना रहती है कि उस पर इन ग्यारह विपत्तियों में से कोई भी विपत्ति आ पड़े : अ-प्राप्त को प्राप्त न कर पाये; प्राप्त हुआ नष्ट हो जाय; सद्धर्म स्पष्ट न हो; सद्धर्म के बारे में अहंकारी हो जाय; बेमन से ब्रह्मचर्य का पालन करने लगे; किसी गंभीर दोष का दोषी हो जाय; शिक्षा को छोड़ हीन-मार्ग (गृहस्थ) अपना ले; किसी बड़े रोग से आतंकित हो उठे; पागल हो जाय; बेहोशी की अवस्था में मरे; शरीर छोड़ने पर दुर्गति को प्राप्त हो।

* किसी भिक्षु के लिए ऐसी समाधि प्राप्त कर पाना संभव है, जबकि 'होश' होते हुए भी उसे इन ग्यारह के बारे में 'होश' न रहे –पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाशानंत्यायतन, विज्ञानानंत्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन, इहलोक, परलोक, तथा दृष्ट-श्रुत – नासिका-जिह्वा स्पर्शेन्द्रिय द्वारा अनुभूत-विज्ञात-प्राप्त-पर्येषित-मन से विचारित।

* जिस भिक्षु में ये तीन बातें होती हैं, वह होता है अत्यंत योगक्षेमी, देवताओं तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ। कौन सी तीन बातें? अशैक्ष शीलस्कंध से युक्त होना, अशैक्ष समाधिस्कंध से युक्त होना, और अशैक्ष प्रज्ञास्कंध से युक्त होना।

* जिस भिक्षु में ये दूसरी तीन बातें होती हैं, वह भी होता है अत्यंत योगक्षेमी, देवताओं तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ। कौन सी दूसरी तीन बातें? ऋद्धि-प्रातिहार्य, आदेशना-प्रातिहार्य, तथा अनुशासन-प्रातिहार्य।

* जिस भिक्षु में ये तीसरी तीन बातें होती हैं, वह भी होता है अत्यंत योगक्षेमी, देवताओं तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ। कौन सी तीसरी तीन बातें? सम्यक दृष्टि, सम्यक ज्ञान, तथा सम्यक विमुक्ति।

* जिस भिक्षु में ये दो बातें होती हैं, वह भी होता है अत्यंत योगक्षेमी, देवताओं तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ। कौन सी दो बातें? विद्या तथा आचरण। (सनङ्कुमार ब्रह्मा ने भी कहा था कि जो विद्या और आचरण से युक्त होता है, वह देवों तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है।)

* मैत्री-स्वरूप चित्त की विमुक्ति को भावित करने, बढ़ाने से ग्यारह शुभ परिणामों की आशा की जा सकती है –सुखपूर्वक सोना; सुखपूर्वक उठना; बुरे स्वप्न न देखना; मनुष्यों का प्रिय होना; अ-मनुष्यों का प्रिय होना; देवताओं द्वारा रक्षित होना; अग्नि, विष, शस्त्र का असर न होना; चित्त का शीघ्र ही

एकाग्र हो जाना; मुख-वर्ण प्रसन्न रहना; होश-हवास सहित मृत्यु को प्राप्त होना; और परे नहीं, तो ब्रह्म-लोक की प्राप्ति।

इस निपात में निम्नांकित विषयों की भी चर्चा हुई है

– श्रद्धावान के ग्यारह लक्षण।

– राग, द्वेष, मोह आदि की अभिज्ञा, परिज्ञा, परिक्षय, प्रहाण, क्षय, व्यय, विराग, निरोध, त्याग एवं प्रतिनिसर्ग (परित्याग) के लिए भावित किए जाने योग्य ग्यारह धर्म।

इस निपात में ग्वाले का दृष्टांत प्रस्तुत करते हुए यह भी समझाया गया है कि किन ग्यारह बातों के कारण कोई भिक्षु इस धर्मविनय में वृद्धि, उन्नति, विपुलता को प्राप्त हो सकता है, और किन ग्यारह बातों के कारण इसमें असमर्थ रहता है।

☸

खुद्दक निकाय

खुद्दक पाठ

परंपरागत मान्यता के अनुसार 'खुद्दक पाठ' खुद्दक निकायका प्रथम ग्रंथ है। इसका आकार बहुत ही छोटा है। इसमें मात्र नौ विषयों का प्रतिपादन हुआ है।

* 'सरणत्तय' के अंतर्गत बुद्ध, धम्म तथा सङ्घ की शरण ग्रहण करने का उल्लेख है।

* 'दससिक्खापद' के अंतर्गत दस शीलों को अपनाने का संकल्प उपलब्ध है।

* 'द्वत्तिंसाकार' के अंतर्गत शरीरगत बत्तीस प्रकार की गंदगियां गिनायी गयी हैं।

* 'कुमारपञ्हा' के अंतर्गत [सोपाक-नामक] कुमार को पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में उसने बतलाया है कि १ से लेकर १० तक के अंकों का क्या आशय होता है। उदाहरणतया, '२' से अभिप्राय नाम तथा रूप से, '३' से अभिप्राय तीन प्रकार की वेदनाओं से,'४' से अभिप्राय चार आर्य-सत्यों से है।

* 'मङ्गलसुत्त' के अंतर्गत अड़तीस प्रकार के मंगल-धर्म प्रकाशित किये गये हैं। प्रारंभिक मंगल-धर्म है – 'मूर्खों की संगति न करना' और अंतिम है 'लोकधर्मों (लाभ-अलाभ, यश-अपयश, प्रशंसा-निंदा, तथा सुख-दुःख) से अविचलित रह निःशोक, निर्मल तथा निर्भय बना रहना'। ये सभी मंगल-धर्म देवताओं तथा मनुष्यों का उत्तरोत्तर कल्याण करने वाले हैं।

* 'रतनसुत्त' में प्रज्ञप्त किया गया है कि बुद्ध, धम्म तथा सङ्घ में क्या-क्या उत्तम रत्न हैं, जैसे

लोक-परलोकमें जो भी धन हैं अथवा स्वर्गों में जो भी उत्तम रत्न हैं, उनमें से कोई भी बुद्ध के समान श्रेष्ठ नहीं है, यह बुद्ध में उत्तम रत्न है।

जिस उत्तम, अमृत, विराग-पद और सभी दोषों के क्षयकारक निर्वाण को शाक्यमुनि ने प्राप्त किया उस धम्म के समान कोई श्रेष्ठ नहीं है, यह धम्म में उत्तम रत्न है।

जैसे धरती में गहरी गड़ी हुई इंद्रकील [नगर-स्तंभ] चारों ओर की तेज हवाओं से भी प्रकंपित नहीं होती, वैसे ही चार आर्य-सत्यों का भली प्रकार साक्षात्कार करने वाला सत्पुरुष अविचल रहता है, यह सङ्घ में उत्तम रत्न है।

बुद्ध, धम्म तथा सङ्घ में जो-जो उत्तम रत्न हैं, उनकी सत्यता प्रज्ञप्त करते समय सबके लिए स्वस्ति-मंगल की कामना भी की गयी है।

* 'तिरोकुड्डसुत्त' में प्रेत-प्राणियों की दयनीय दशा का चित्रण किया गया है और उनके लिए दान-दक्षिणा देने का महत्त्व बतलाया गया है। संबंधियों का रोना-धोना उनके काम नहीं आता, परंतु उनके निमित्त दिया गया दान तत्काल भी, और भविष्य में भी, उनके हित के लिए होता है। इस लोक में दिया गया दान उन्हें ऐसे ही प्राप्त हो जाता है जैसे ऊंचे स्थान पर बरसा हुआ पानी निचले स्थान पर जा पहुँचता है, अथवा पानी से लदे हुए बादलों से सागर लबालब भर जाता है।

* 'निधिकण्डसुत्त' में भौतिक निधि की नश्वरता पर प्रकाश डालने के उपरांत पुण्य-रूपी निधि का माहात्म्य सामने लाया गया है। इस निधि को कोई चुरा नहीं सकता और इससे देवों तथा मनुष्यों की सारी कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं – सुंदर वर्ण पाने से लेकर संबोधि प्राप्त कर लेने तक।

* 'मेत्तसुत्त' में सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव बनाये रखने का उपदेश है। हर समय और हर स्थिति में यही भाव बना रहे, तो यही 'ब्रह्मविहार' कहलाता है। ऐसा व्यक्ति किसी मिथ्यादृष्टि में न पड़, शीलवान बना रह कर, विशुद्ध दर्शन से युक्त हो, काम-तृष्णा का नाश कर, पुनर्जन्म से छुटकारा पा लेता है।

☸

'धम्मपद' का बुद्धवचन में विशेष स्थान है। भारत के अनेक पड़ोसी देशों में यह ग्रंथ अत्यंत लोकप्रिय है। इसमें सुभाषित ही सुभाषित भरे पड़े हैं, जो विपश्यी साधकों के लिए अनमोल निधि के समान हैं।

इसमें चार सौ तेईस गाथाएं हैं, जो छब्बीस वर्गों में विभाजित हैं। प्रत्येक वर्ग में से किन्हीं-किन्हीं पदों की भावाभिव्यक्ति नीचे की गयी है

[१] यमक-वग्ग : –सारे धर्म पहले मन में ही उत्पन्न होते हैं, अतः मन ही श्रेष्ठ है। यदि कोई व्यक्ति दूषित मन से कोई वचन बोलता अथवा काम करता है, तो दुःख उसके पीछे ऐसे लग जाता है जैसे गाड़ी खींचने वाले बैलों के पैरों के पीछे गाड़ी का चक्का। यदि कोई निर्मल मन से वचन बोलता अथवा काम करता है, तो सुख उसके पीछे ऐसे लग जाता है जैसे कभी संग न छोड़ने वाली छाया।

[२] अप्पमाद-वग्ग : –जब कोई समझदार व्यक्ति प्रमाद को अप्रमाद से जीत लेता है, तब वह प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़ कर शोक रहित हो जाता है। ऐसा शोक रहित धीर व्यक्ति शोकग्रस्त विमूढ़ जनों को ऐसे ही [करुणाभाव से] देखता है, जैसे कि पर्वत पर खड़ा हुआ व्यक्ति जमीन पर खड़े हुए लोगों को देखता है।

[३] चित्त-वग्ग : –जितनी हानि शत्रु शत्रु की अथवा वैरी वैरी की करता है, उससे कहीं अधिक हानि गलत मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है। जितनी भलाई माता-पिता या दूसरे भाई-बंधु नहीं कर पाते हैं, उससे कहीं अधिक भलाई सही मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।

[४] पुप्फ-वग्ग : –जैसे किसी बड़ी सड़क के किनारे फेंके गये कूड़े-कचरे के ढेर पर कोई पवित्र गंध वाला सुंदर पद्म उत्पन्न हो जाय, ऐसे ही कूड़े-कचरे के समान अंधे पृथग्जनों में सम्यक संबुद्ध का श्रावक अपनी प्रज्ञा से अत्यधिक शोभित होता है।

[५] बाल-वग्ग : –जागते हुए के लिए रात लंबी होती है। थके हुए के लिए योजन लंबा होता है। सद्धर्म को न जानने वाले मूढ़ों के लिए संसार-चक्र लंबा होता है।

[६] पण्डित-वग्ग : –जैसे सघन शैल-पर्वत पवन से प्रकंपित नहीं होता, वैसे ही समझदार लोग निंदा और प्रशंसा से विचलित नहीं होते।

[७] अरहन्त-वग्ग : –जिसके आस्रव पूरी तरह से क्षीण हो गये हैं, जिसकी आहार में आसक्ति नहीं है, और शून्य तथा अनिमित्त विमोक्ष (निर्वाण) जिसकी गोचरभूमि है, उसकी गति, आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गति के समान, अनजानी रहती है।

[८] सहस्स-वग्ग : –जो संग्राम में हजारों मनुष्यों को जीत ले, उससे उत्तम संग्राम-विजयी वही होता है जो एक अपने आप को जीत लेता है।

[९] पाप-वग्ग : –जब तक पाप का फल नहीं मिलता है, तब तक पापी भी पाप को अच्छा ही समझता है। किंतु जब पाप का फल मिलता है, तब उसे पाप दिखाई देने लगते हैं।

[१०] दण्ड-वग्ग : –जैसे ग्वाला लाठी से गायों को चारागाह में हांक ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों की आयु को हर ले जाते हैं।

[११] जरा-वग्ग : –राजा के सुचित्रित रथ पुराने पड़ जाते हैं और यह शरीर भी, किंतु संतों का धर्म पुराना नहीं पड़ता है। संत लोग सत्पुरुषों से ऐसा ही कहते आए हैं।

[१२] अत्त-वग्ग : –अपना किया हुआ पापकर्म अपने को मैला कर देता है, न किया हुआ पापकर्म शुद्ध रखता है। शुद्धि-अशुद्धि हर एक की अपनी-अपनी होती है। कोई व्यक्ति किसी दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता।

[१३] लोक-वग्ग : –जो कोई इस लोक को बुलबुले की तरह और मरीचिका के समान देखता है, उसे यमराज नहीं देख पाता है।

[१४] बुद्ध-वग्ग : –सभी पाप-कर्मों से बचना, कुशल-कर्म करना, अपने चित्त को नितांत निर्मल करते रहना – यह बुद्धों की शिक्षा है।

[१५] सुख-वग्ग : –तृष्णा सब से बड़ा रोग है और (उसके कारण) जो संस्कार बनते हैं वे सबसे बड़े दुःख हैं। इसे (विपश्यना-साधना द्वारा) यथार्थतः जान कर जो निर्वाण (प्राप्त होता है), वह सबसे बड़ा सुख है।

[१६] पिय-वग्ग : –शीलसंपन्न, विपश्यना-संपन्न, धर्म-निष्ठ, सत्यवादी तथा कर्तव्यपरायण को लोग प्यार करते हैं।

[१७] कोध-वग्ग : –जो (सिर पर) चढ़े हुए क्रोधको भ्रांत हुए रथ के समान थाम लेता है, उसी को मैं सारथी कहता हूं; दूसरे तो केवल लगाम पकड़ने वाले होते हैं।

[१८] मल-वग्ग : –समझदार व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने मैल को क्रमशः थोड़ा-थोड़ा क्षण-प्रतिक्षण वैसे ही दूर करे, जैसे कि रजतकार (सुनार) चांदी के मैल को दूर करता है।

[१९] धम्मट्ठ-वग्ग : –जब तक धर्म की चर्चा ही चर्चा करता है, तब तक धर्मधारी नहीं है। परंतु जब धर्म (के गूढ़ रहस्य) को थोड़ा-भी सुनता है और (सुन समझकर इसे विपश्यना-साधना द्वारा) अपनी काया में स्वयं देखता है, तभी (सही माने में) धर्मधारी होता है। ऐसा व्यक्ति (सत्य-)धर्म दर्शन में प्रमाद नहीं करता।

[२०] मग्ग-वग्ग : –तथागत केवल (विशुद्धि का) मार्ग आख्यात करते हैं। परिश्रम तो तुम्हें ही करना होता है। जो उस मार्ग पर आरूढ़ हो जाते हैं, वे ध्यान-रत होकर मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाते हैं।

विशुद्धि का मार्ग है

* 'सभी संस्कार अनित्य हैं, इसे प्रज्ञापूर्वक जानना;
* 'सभी संस्कार दुःख हैं, इसे प्रज्ञापूर्वक जानना;
* 'सभी धर्म अनात्म हैं', इसे प्रज्ञापूर्वक जानना।

इन्हें इस प्रकार जान लेने से दुःख का निर्वेदन हो जाता है।

[२१] पकिण्णक-वग्ग : –जिनकी कायगता-स्मृति (काया में होने वाली वेदनाओं के प्रति जागरूकता) निरंतर उपस्थित रहती है, वे अकरणीय कार्य नहीं करते, सदा करणीय ही करते हैं। ऐसे स्मृतिमान एवं संप्रज्ञानी लोगों के आस्रव समाप्त हो जाते हैं।

[२२] निरय-वग्ग : –दुःशील और संयम-विहीन जीवन जीते हुए राष्ट्रपिंड (समाज का अन्न) खाने से तो आग की लपट के समान लाल हुए तप्त लोहे के गोले को खाना कहीं अच्छा है।

[२३] नाग-वग्ग : –जैसे युद्ध में हाथी धनुष से निकले बाण को सहन करता है, वैसे ही मैं अपशब्द सहन करूंगा, क्योंकि दुःशील लोग ही अधिक हैं।

[२४] तण्हा-वग्ग : –धर्म का दान सारे दानों से बढ़-चढ़ कर होता है, धर्म का रस सारे रसों से प्रबल होता है, धर्म में रति सब रतियों से उत्कृष्ट होती है, तृष्णा का क्षय सारे दुःखों को अभिभूत किये रहता है।

[२५] भिक्खु-वग्ग : –जब किसी शून्यागार में प्रवेश करके कोई शांत-चित्त भिक्षु सम्यक रूप से धर्मानुपश्यना करता है, तब उसे लोकोत्तर सुख प्राप्त होता है जो कि सामान्य मानवीय लोकीय सुखों से परे होता है।

वह जब-जब (शरीर और चित्त) स्कंधों की उदय-व्यय (-रूपी अनित्यता) की विपश्यनानुभूति करता है, तब-तब प्रीति-प्रमोद (-रूपी आध्यात्म-सुख) की उपलब्धि करता हुआ अमृत पद (निर्वाण) का साक्षात्कार कर लेता है।

[२६] ब्राह्मण-वग्ग : –अपने पापों को धोकर बहा देने वाला कहलाता है 'ब्राह्मण', समता का आचरण करनेवाला 'श्रमण', और अपने चित्त-मलों को दूर कर देने वाला 'प्रव्रजित'।

'ब्राह्मण' होता है ऋषभ (उत्तम), प्रवर (श्रेष्ठ), वीर, महर्षि, विजेता, अकंप्य, स्नातक ,**बुद्ध** !

किन्हीं घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में भगवान बुद्ध के मुख से निःसृत प्रीति-वाक्यों, उल्लास-वचनों अथवा हर्षोद्गारों का संग्रह इस ग्रंथ में मिलता है।

इसमें अस्सी सुत्त हैं, जो आठ वर्गों में विभाजित हैं।

कुछेक उदानों का परिचयात्मक विवरण नीचे दिया गया है

* संबोधि प्राप्त करने के पश्चात समाधि से उठ कर भगवान बुद्ध ने रात्रि के पहले, बिचले तथा पिछले यामों में तीन विधियों से प्रतीत्यसमुत्पाद का, भली प्रकार से मनन किया:

अनुलोमतः – इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न हो जाता है।

प्रतिलोमतः – इसके नहीं होने से यह नहीं होता है, इसके रुक जाने से यह रुक जाता है।

अनुलोमतः प्रतिलोमतः – इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न हो जाता है। इसके नहीं होने से यह नहीं होता है, इसके रुक जाने से यह रुक जाता है।

* उस समय उनके मुख से उदान के ये वचन निकले

“जब क्षीणास्रव तपस्वी, योगी के समक्ष धर्म प्रकट हो जाते हैं, तब उसकी सारी शंकाएं मिट जाती हैं; क्योंकि वह हेतु-सहित धर्म को प्रज्ञापूर्वक जान लेता है, प्रत्ययों के क्षय को जान लेता है और मार की सेना को वैसे ही छिन्न-भिन्न कर डालता है जैसे (अंधकार को विदीर्ण कर) आकाश में चमकने वाला सूर्य।”

* किसी सांप को लाठी से पीटते बालकों को देख कर भगवान के मुख से निःसृत उदान-वचन

“जो अपना सुख चाहने वाला सुख चाहने वाले (अन्य) प्राणियों को लाठी से मारता है, वह मरने पर सुख का लाभी नहीं होता। जो अपना सुख चाहने वाला सुख चाहने वाले (अन्य) प्राणियों को लाठी से नहीं मारता, वह मरने पर सुख का लाभी होता है।”

* अपने प्रिय इकलौते पुत्र के निधन पर शोक-विह्वल उपासक को देख कर निकले उदान-वचन

“जो देवता अथवा मनुष्य प्रिय रूपों का आस्वाद लेने में लगे रहते हैं, वे पाप और विनाश को प्राप्त हो मृत्युराज के वश में चले जाते हैं। परंतु जो दिन-रात अप्रमत्त रह कर प्रिय रूप को छोड़ देते हैं, वे पाप के मूल को खन डालते हैं, मुत्यु-पाश में नहीं फँसते हैं।”

* अपने पास ही जंगल में कुटी बना कर रहने वाले उद्धत, अभिमानी, चपल, वाचाल, मूढ़-स्मृति, संप्रज्ञान-रहित, असमाहित, भ्रांत-चित्त एवं इंद्रियों में असंयमी भिक्षुओं को देख कर भगवान के मुख से निकले उदान-वचन

“संयमविहीन, मिथ्यादृष्टिक और आलसी मार के वश में चला जाता है । संयमी, सम्यक संकल्प वाला, सम्यक दृष्टिक, (संस्कारों के) उदय-व्यय को जानने वाला, निरालस भिक्षु सारी दुर्गतियों को लात मारता है।”

* आयुष्मान आनन्द द्वारा यह कहे जाने पर कि बोधिसत्व की माताएं बोधिसत्व के जन्म लेने के एक सप्ताह पश्चात, अर्थात अल्पायु में ही, देह त्याग तुसित देवलोक में जा उत्पन्न होती हैं, भगवान के उदान-वचन

“जो कोई हुए हैं, या होंगे, सभी शरीर छोड़ कर चले जायेंगे। अतः समझदार व्यक्ति सब वस्तुओं के क्षय को जान कर डट कर ब्रह्मचर्य का पालन करे।”

* देवदत्त द्वारा संघ-भेद करने का समाचार मिलने पर उदानित उदानयित-वचन

“साधु साधुपना करे, यह आसान है। साधु पाप करे, यह कठिन है। पापी पाप करे, यह आसान है। आर्यजन का पाप करना कठिन होता है।”

* मिथ्या सिद्धांतों को लेकर आपस में झगड़ा करने वाले परिव्राजकों का प्रसंग ध्यान में लाये जाने पर उदानयित उदान-वचन

“कितने ही श्रमण वा ब्राह्मण इसी में जूझे रहते हैं। वे बिना अज्ञान का नाश किये बीच में ही नष्ट हो जाते हैं।”

* मल्लपुत्र आयुष्मान दब्ब द्वारा अग्निधातु का आश्रय लेकर परिनिर्वाण-लाभ करने पर भगवान का हर्षोद्गार

"काया का भेदन हुआ, संज्ञा निरुद्ध हुई, सारी वेदनाएं ठंडी पड़ गईं, संस्कारों का उपशमन हुआ, विज्ञान अस्त हुआ!"

इस ग्रंथ में ऐसे भी अनेक प्रसंग हैं जिनमें भगवान के श्रावक उनके समीप ही पालथी मार कर, शरीर को सीधा रख, स्मृतिमान बने रह कर साधनाभ्यास करते थे। उनकी भाव-भंगिमा एवं उपलब्धियों को जान कर भगवान के मुख से अनेक बार उल्लास-वचन प्रसृत हुए। विपश्यी साधकों के लिए ये वचन अत्यंत प्रेरणाजनक हैं।

उदाहरणतया

* किसी भिक्षुविशेष के संदर्भ में

"जिस भिक्षु ने अपने सारे (नये) कर्म करने छोड़ दिये हों और पुराने कर्मों के मैल को धुन-धुन कर दूर कर रहा हो, वह ऐसे धरातल पर खड़ा होता है जहां 'मेरा' कहने के लिए कुछ नहीं रह जाता। ऐसे व्यक्ति के पास 'लप-लप' करने के लिए कुछ नहीं बचता।"

* आयुष्मान सारिपुत्त के संदर्भ में

"(संस्कारों के) उपशमन से शांत-चित्त हुये, भव-रज्जु विच्छिन्न किये भिक्षु का जन्म लेने का सिलसिला विच्छिन्न हो जाता है। वह मार के बंधन से मुक्त हो जाता है।"

* आयुष्मान महामोग्गल्लान के संदर्भ में

"कायगता स्मृति उपस्थित हो, छहों स्पर्शायतन संवृत हों, भिक्षु सतत समाहित हो, तो वह अपने निर्वाण को जान ही लेता है।"

* आयुष्मान पिण्डोलभारद्वाज के संदर्भ में

"वाणी और शरीर से किसी को कष्ट न पहुँचाना, प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन करना, भोजन की मात्रा जानना, एकांत में निवास करना और चित्त [को सुधारने के बारे में] प्रयत्नशील होना – यह बुद्धों की शिक्षा है।"

* आयुष्मान कङ्खारेवत के संदर्भ में

"लोक या परलोक में, अपनी या परायी जितनी भी कांक्षाएं हों, ध्यानी उन सब को छोड़ देते हैं और प्रयत्नपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।"

* आयुष्मान चूळपन्थक के संदर्भ में

"स्थिर शरीर और स्थिर चित्त से खड़े, बैठे या सोये रह कर जो भिक्षु अपनी स्मृति (जागरूकता) बनाये रखता है, वह ऊंची से ऊंची अवस्थाओं को प्राप्त कर लेता है। ऊंची से ऊंची अवस्थाओं को प्राप्त कर वह मृत्युराज की दृष्टि में नहीं आता।"

* आयुष्मान अञ्ञासिकोण्डञ्ञ के संदर्भ में

"जिसके मूल में पृथ्वी (अर्थात, अविद्या को पनपाने वाले आस्रव, नीवरण आदि) नहीं हैं, और जिसमें पत्ते (अर्थात, मद, प्रमाद, माया, ठगी, आदि) नहीं हैं, उसमें भला (मान-रूपी) वल्लरी कहां से हो सकती है? (संस्कार-रूपी क्लेशों के) बंधन से मुक्त हुए ऐसे धीर पुरुष की कौन निंदा कर सकता है? उसकी तो देवता भी सराहना करते हैं और वह ब्रह्मा से भी प्रशंसित होता है।"

☸

इतिवुत्तक

'इतिवुत्तक' शब्द का अर्थ है –ऐसा कहा गया। इस ग्रंथ का यह नाम देने का संभवतः यह कारण है कि इसके प्रत्येक सुत्त का आरंभ इन शब्दों से होता है – 'वुत्तं हेतं भगवता' [अर्थात, 'भगवान द्वारा यह कहा गया', इत्यादि]।

इस ग्रंथ में एक सौ बारह सुत्त हैं, जो चार निपातों में विभक्त हैं।

प्रत्येक निपात में प्रतिपादित विषय-वस्तु की संक्षिप्त रूपरेखा निम्न प्रकार से है :-

पहला निपात

इसके सुत्तों में एक-एक बात को लेकर भगवान के उपदेश संगृहीत हैं। जैसे

'भिक्षुओ! एक बात छोड़ दो, मैं तुम्हारे अनागामी होने का जामिन बनता हूं। कौन सी एक बात? लोभ'।

'जिस लोभ से लुब्ध होकर प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं, उस लोभ को विपश्यना करनेवाले सम्यक प्रकार से जान कर छोड़ देते हैं और इसे छोड़ देने के बाद कभी इस संसार में लौट कर नहीं आते हैं'।

भगवान ने द्वेष, मोह, क्रोध, म्रक्ष एवं मान के संदर्भ में भी इसी प्रकार के वचन कहे हैं।

इस निपात में विवेचन किये गये कुछ अन्य एक-एक विषय हैं

अविद्या, तृष्णा, यथार्थ चिंतन, कल्याणमित्रता, संघ की फूट, संघ की एकता, दूषित चित्त, प्रसन्न चित्त, जान-बूझ कर झूठ बोलना, मैत्री चेतोविमुक्ति ।

दूसरा निपात

इसके सुत्तों में दो-दो बातों को लेकर दिये गये उपदेश संगृहीत हैं। जैसे

'भिक्षुओ! पर्याय से सम्यक संबुद्ध के उपदेश दो प्रकार के होते हैं। कौन से दो प्रकार? पहला –पाप को बुराई के तौर पर देखो। दूसरा –पाप को बुराई के तौर पर देख कर उससे निर्विण्ण, विरक्त, विमुक्त हो जाओ ।'

'इस प्रकार विरक्त-चित्त होकर तुम दुःख का अंत कर लोगे।

इस निपात में विवेचन किये गये कुछ अन्य दो-दो विषय हैं

इंद्रियों पर संयम न रखना तथा भोजन की मात्रा न जानना। इंद्रियों पर संयम रखना तथा भोजन की मात्रा जानना। 'मैंने भला काम नहीं किया' तथा 'मैंने बुरा काम किया'। 'मैंने भला काम किया' तथा 'मैंने बुरा काम नहीं किया'। बुरा शील एवं बुरी दृष्टि। भला शील एवं भली दृष्टि । सोपाधिशेष निर्वाणधातु तथा अनुपाधिशेष निर्वाणधातु।

तीसरा निपात

इसके सुत्तों में तीन-तीन बातों को लेकर दिये गये उपदेश संगृहीत हैं। जैसे

'भिक्षुओ! ये तीन वेदनाएं हैं। कौन सी तीन? सुखद, दुःखद तथा अदुःखद-असुखद।'

'समाहित हुआ, संप्रज्ञानी तथा स्मृतिमान बुद्ध का श्रावक वेदनाओं को जानता है, इनकी उत्पत्ति को जानता है और इनका क्षय कराने वाले मार्ग को, जहां ये निरुद्ध हो जाती हैं, जानता है। वेदनाओं का क्षय हो जाने से भिक्षु तृष्णारहित होकर परिनिर्वाण पा लेता है।'

इस निपात में विवेचन किये गये कुछ अन्य तीन-तीन विषय हैं

अकुशलमूल (लोभ, द्वेष, मोह);

धातु (रूपधातु, अरूपधातु, निरोधधातु);

आस्रव (कामास्रव, भवास्रव, अविद्यास्रव);

तृष्णाएं (कामतृष्णा, भवतृष्णा, विभवतृष्णा);

चक्षु (मांसचक्षु, दिव्यचक्षु, प्रज्ञाचक्षु);

काल (अतीत, अनागत, वर्तमान);

दुराचार (कायिक, वाचिक, मानसिक);

सदाचार (कायिक, वाचिक, मानसिक);

मौन (कायिक, वाचिक, मानसिक);

पुत्र (अतिजात, अनुजात, अवजात)।

चौथा निपात

इसके सुत्तों में चार-चार बातों को लेकर दिये गये उपदेश संगृहीत हैं। जैसे

'भिक्षुओ! जानने वाले देखने वाले के आश्रव क्षीण होते हैं, न जानने वाले, न देखने वाले के नहीं –ऐसा मैं कहता हूं। क्या जानने, देखने से आस्रवों का क्षय होता है? यह दु:ख है, यह दु:ख की उत्पत्ति है, यह दु:ख का निरोध है, यह दु:ख का निरोध कराने वाला मार्ग है –इन्हें जानने, देखने से आस्रवों का क्षय होता है'।

'ऋजु-मार्ग का अनुसरण करने वाले, अभ्यास में लगे हुए शैक्ष्य को अर्हत मार्ग में प्रथम ज्ञान होता है, तदनंतर अरहत्वज्ञान और तदुपरांत अरहत्वफल से (प्रज्ञा-)विमुक्ति का उत्कृष्ट ज्ञान। तब, 'सारे बंधन क्षीण हो गये' –उसमें इस प्रकार का क्लेशों के क्षय होने का ज्ञान उत्पन्न होता है। सारी ग्रंथियों का भेदन करने वाले निर्वाण को आलसी, मूर्ख तथा अबोध द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।'

इस निपात में विवेचन किये गये कुछ अन्य चार-चार विषय हैं

सुलभ वस्तुएं (पांशुकूल चीवर; भिक्षा का अन्न; वृक्षमूल; गोमूत्र),

तृष्णा की उत्पत्तियां (चीवर हेतु; पिंडपात हेतु; शयनासन हेतु; यह लोक मिले, यह न मिले – इस हेतु), तथागत को 'तथागत' कहने के चार कारण ।

'इतिवुत्तक' में स्मृति, संप्रज्ञान एवं विपश्यना से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष संबंध रखने वाले बहुत से पद हैं जिससे विपश्यना करने वालों के लिए यह ग्रंथ विशेष रूप से उपयोगी है।

कतिपय उदाहरण

* लोभ, द्वेष, मोह, क्रोध, म्रक्ष एवं मान को विपश्यना करने वाले सम्यक प्रकार से जान कर छोड़ देते हैं ('सम्मदञ्ञाय पजहन्ति विपस्सिनो') ।

* स्मृतिमान और संप्रज्ञानी क्रमशः सारे संयोजनों का क्षय कर डालता है। ('सम्पजानो पतिस्सतो पापुणे अनुपुब्बेन सब्बसंयोजनक्खयं')।

* जब आर्यसत्यों को सम्यक-प्रज्ञा से देखता है ('यतो च अरियसच्चानि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति')।

* संसार में बींधने वाली प्रज्ञा ही श्रेष्ठ है ('पञ्ञा हि सेट्ठा लोकस्मिं, यायं निब्बेधगामिनी')।

* स्मृतिमान, ध्यानी सम्यक प्रकार से धर्मों की विपश्यना करते हैं ('सतिमन्तो च झायिनो सम्मा धम्मं विपस्सन्ति')।

* बुद्ध का श्रावक समाहित, संप्रज्ञानी एवं स्मृतिमान होता है ('समाहितो सम्पजानो, सतो बुद्धस्स सावको')।

* उस सतत-ध्यानी, पैनी दृष्टि से विपश्यना करने वाले को ('तं झायिनं साततिकं, सुखुमं – दिट्ठिविपस्सकं')।

* धर्मों और पांच स्कंधों के उदय-व्यय को सम्यक प्रकार से देखने वाला ('समवेक्खिता च धम्मानं, खन्धानं उदयब्बयं')।

सुत्तनिपात

'सुत्तनिपात' से अभिप्राय है सुत्तों का संग्रह। इसके प्रथम चार वर्गों में चौवन सुत्त हैं, परंतु पांचवें वर्ग में तीन गाथाएं और सोलह माणवकों के प्रश्न हैं। थोड़े में ही भगवान बुद्ध की शिक्षा को समझने के लिए यह एक अद्वितीय ग्रंथ है।

इस ग्रंथ में प्रतिपादित विषय-वस्तु का वर्ग-वार संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

१. उरगवग्ग

इस वर्ग के 'उरगसुत्त' में निर्वाण-प्राप्त भिक्षुओं के गुणों का वर्णन करते हुए सर्प द्वारा केंचुली छोड़ने के समान उनके इहलोक तथा परलोक को त्यागने की बात कही गयी है।

'धनियसुत्त' में धनिय गोप के साथ संवाद के रूप में भगवान द्वारा उसे बड़े मार्मिक ढंग से सांसारिक आसक्तियां त्यागने का उपदेश दिया गया है।

'खग्गविसाणसुत्त' में गैंडे के सींग के समान अकेले विचरण करने का उपदेश है : 'यह विपत्ति है, फोड़ा है, उपद्रव है, रोग है, कांटा है, भय है –कामभोगों में यह भय देख कर गैंडे के सींग की भांति अकेला विचरण करे'।

'कसिभारद्वाजसुत्त' में भगवान ने स्वयं को कृषक बतलाया है। उनके कृषि-कार्य में श्रद्धा है बीज, तप वृष्टि, प्रज्ञा जुआठ और हल, लज्जा हल की फाल, मन नधना, स्मृति फाल और छेकुनी, वीर्य बैल और निर्वाण गाड़ी, जो आगे-से-आगे चलती जाती है। उनकी कृषि अमृतफलदायिनी होती है, जिसे करने से कोई भी व्यक्ति सारे दुःखों से मुक्त हो जाता है।

'चुन्दसुत्त' में चार प्रकार के श्रमणों की चर्चा है और 'पराभवसुत्त' में किसी भी पुरुष की अवनति के बारह कारणों पर प्रकाश डाला गया है। 'वसलसुत्त' में बतलाया गया है कि 'वृषल' (नीच) कौन होता है : 'कोई जाति से वृषल नहीं होता और न जाति से ब्राह्मण होता है। कर्म से ही कोई वृषल होता है और कर्म से ही ब्राह्मण।'

'मेत्तसुत्त' का विवेचन 'खुद्दकपाठ' के अंतर्गत किया जा चुका है।

'हेमवतसुत्त' और 'आळवकसुत्त' के अंतर्गत हेमवत तथा आळवक नाम के यक्षों द्वारा भगवान से अनेक सार्थक प्रश्न पूछे गये हैं, जिनका परम संतोषजनक उत्तर मिल जाने पर वे भावविभोर हो कहते हैं : 'अब हम गांव-गांव, पर्वत-पर्वत, नगर-नगर में सम्यक संबुद्ध और उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म की सुधर्मता को नमस्कार करते हुए विचरण करेंगे'।

'विजयसुत्त' में शरीर की गंदगियों और अनित्यता की ओर ध्यान आकर्षित करने के उपरांत भगवान ने अपने या दूसरे के शरीर के प्रति राग त्यागने की सीख दी है।

'मुनिसुत्त' में यह बतलाने के पश्चात कि मुनि कौन होता है, भगवान ने कहा है कि जैसे नीली गर्दन वाला मोर कभी भी उड़ान में हंस की बराबरी नहीं कर सकता, वैसे ही गृहस्थ भी भिक्षु की बराबरी नहीं कर सकता, जो मुनि हो, एकांत वन में ध्यान करता रहता है।

२. चूळवग्ग

'रतनसुत्त' तथा 'मङ्गलसुत्त' का विवेचन 'खुद्दक पाठ' के अंतर्गत किया जा चुका है।

'आमगन्धसुत्त' में कस्सप बुद्ध का कथन है कि जीवहिंसा, मार, काट, बंधन, चोरी, झूठ बोलना, छलकपट, ठगी, निरर्थक ग्रंथों का वाचन, परायी स्त्री का सेवन, इत्यादि आमगंध है, न कि मांस-भक्षण। 'हिरिसुत्त' में सच्चा मित्र उसे बतलाया गया है जो माता की गोद में सोये हुए पुत्र के समान विश्वास प्रदान करता है और दूसरों द्वारा फोड़ा नहीं जा सकता है। 'सूचिलोमसुत्त' में वासनाओं के मूल पर प्रकाश डाला गया है।

'धम्मचरियसुत्त' में दुराचारी भिक्षु को कचरा जान संघ से अलग करने की देशना की गयी है। 'ब्राह्मणधम्मिकसुत्त' के अंतर्गत प्राचीन ब्राह्मणों के धर्म बतलाये गये हैं और कहा गया है कि पहले तीन ही रोग होते थे – इच्छा, भूख और बुढ़ापा, किंतु पशुवध से वे अट्ठानवे हो गये हैं।

'नावासुत्त' में कहा गया है कि जिससे धर्म का ज्ञान प्राप्त हो, उसकी वैसे ही अर्चना करनी चाहिए जैसे कि देवता इंद्र की करते हैं। 'किंसीलसुत्त' में इस प्रश्न का उत्तर मिलता है कि किस शील, किस आचरण और किन कर्मों को सम्यक

रूप से करने में लगा हुआ व्यक्ति अरहत्व प्राप्त कर लेता है। 'उट्ठानसुत्त' प्रमाद में पड़े हुए व्यक्तियों को झकझोरने का काम करता है : 'उठो, बैठो, तुम्हें सोने से क्या मतलब? कांटा चुभने से व्यथित रोगियों को नींद कैसी?

'राहुलसुत्त' में वह उपदेश निबद्ध है जिसे आयुष्मान राहुल को भगवान नित्यप्रति दिया करते थे। 'निग्रोधकप्पसुत्त' में भगवान ने यह संशय मिटाया है कि आयुष्मान वङ्गीस के उपाध्याय कप्पायन ने आसक्ति के हेतु को जानकर अति दुस्तर मृत्यु के राज्य को पार कर लिया है।

'सम्मापरिब्बाजनीयसुत्त' में भिक्षुओं के आचरणीय धर्मों और 'धम्मिकसुत्त' में भिक्षुओं तथा गृहस्थों के धर्मों को उजागर किया गया है।

३. महावग्ग

'पब्बज्जासुत्त' में भगवान की प्रव्रज्या का वर्णन है। गृहस्थ जीवन को बाधाओं से भरा हुआ और प्रव्रज्या को खुले आकाश के समान जान कर वे प्रव्रजित हुए। 'पधानसुत्त' में मार की पराजय का उल्लेख है। इसमें मार की स्वीकारोक्ति है कि मैं सात वर्ष तक भगवान के पीछे लगा रहा, परंतु स्मृतिमान सम्यकसंबुद्ध ने मुझे कोई अवकाश नहीं दिया।

'सुभासितसुत्त' में सुभाषित के चार अंग बतलाये गये हैं : 'सुभाषित हो, दुर्भाषित नहीं; धर्म हो, अधर्म नहीं; प्रिय हो, अप्रिय नहीं; और सत्य हो, असत्य नहीं।'

'सुन्दरिकभारद्वाजसुत्त', 'माघसुत्त', 'सभियसुत्त' तथा 'सेलसुत्त' में सुन्दरिक भारद्वाज, माघ, सभिय तथा सेल नाम के ब्राह्मणों ने भगवान से अनेक प्रश्न करके अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त किया और उनकी वाणी से प्रभावित होकर बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण में चले गये। इनमें से माघ को छोड़ कर शेष तीन के प्रव्रजित होकर अरहत्व प्राप्त कर लेने का भी उल्लेख है।

'सल्लसुत्त' में जीवन की अनित्यता प्रज्ञप्त की गयी है : 'जैसे कुम्हार द्वारा बनाये गये मिट्टी के बर्तन सभी टूट जाने वाले हैं, ऐसा ही प्राणियों का जीवन है।''वासेट्ठसुत्त' में वर्ण-व्यवस्था का खंडन किया गया है : 'जन्म से न ब्राह्मण होता है, न अ-ब्राह्मण। कर्म से ही ब्राह्मण होता है, और अ-ब्राह्मण भी। कर्म से ही कृषक होता है, और शिल्पी भी। कर्म से ही बनिया होता है, और सेवक भी।

कर्मसे ही चोर होता है, और सैनिक भी। कर्मसे ही पुरोहित होता है, और राजा भी। प्रतीत्यसमुत्पाद को देखने वाले और कर्मों के विपाक को जानने में निपुण पंडित-जन कर्म को इस प्रकार यथार्थतः जानते हैं।

'कोकालिक सुत्तं में संत पुरुषों की निंदा करने वालों की दुर्गति होना दर्शाया गया है : 'जो दोषरहित, शुद्ध, निर्मल पुरुष को दोष लगाता है, उसका पाप उल्टी हवा में फेंकी गयी सूक्ष्म धूलि के समान उसी मूर्ख पर जा चिपटता है।. . . अतः पवित्र, सदाचारी साधुओं के प्रति अपनी वाणी और मन को सदा संयत रखे।'

'नाळक सुत्त' में असित ऋषि के भांजे नाळक को भगवान ने यह समझाया है कि बेघर होकर भिक्षा पर जीने वाला उत्तम पद को कैसे प्राप्त करे : 'तालु से जीभ सटा कर पेट के प्रति संयमी बने। आलस्य रहित चित्त वाला बने, बहुत चिंतन न करे,दुराचार से दूर रहे, अनासक्त हो और ब्रह्मचर्य का पालन करे।'

'द्वयतानुपस्सनासुत्त' में प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धांत के अनुसार दुःख की उत्पत्ति और निरोध पर प्रकाश डाला गया है।

४. अट्ठक वग्ग

'कामसुत्त' में कामभोगों के दुष्परिणामों और 'गुहट्ठक सुत्त' में संसार की असारता का बखान किया गया है। 'दुट्ठट्ठक सुत्त' में बतलाया गया है कि मुनि जन किसी दृष्टिविशेष के फेर में नहीं पड़ते हैं।

'सुद्धट्ठक सुत्त' के अनुसार अनासक्ति से ही मुक्ति संभव होती है, अन्यथा मनुष्य बंदर के समान एक शाखा छोड़ दूसरी शाखा पकड़कर चलता रहता है । 'परमट्ठक सुत्त' के अनुसार अरहंत किसी दार्शनिक विवाद में नहीं पड़ता है ।

'जरासुत्त' में जीवन की अल्पता, असारता और 'तिस्समेत्तेय्यसुत्त' में मैथुन त्यागने की चर्चा है। 'पसूरसुत्त' में यह उपदेश निहित है कि दृष्टि को लेकर किसी विवाद में नहीं पड़ना चाहिए। फिर भी यदि कोई विवाद के लिये आगे आये और कहे कि 'यही सच है', तो उसे कहना चाहिए कि यहां बहस करने के लिये कोई नहीं है। 'मागण्डियसुत्त' में भी भगवान ने दृष्टिवाद का खंडन कर निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग बतलाया है।

'पुराभेदसुत्त' के अंतर्गत स्पष्ट किया गया है कि जिसका लोक में अपना कुछ

नहीं है, जो अभाव के बारे में कुछ नहीं सोचता है और सिद्धांतों में नहीं पड़ता है, वह 'शांत' कहलाता है।

'कलह-विवादसुत्त' में कलह एवं विवाद के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। 'चूळब्यूहसुत्त' में प्रज्ञप्त किया गया है : 'सत्य तो एक ही है, दूसरा है ही नहीं, जिसके बारे में लोग परस्पर विवाद करें।परंतु नाना मत वाले श्रमण अपनी ओर से नाना सत्यों की घोषणा करते रहते हैं जिससे ये सब एक ही बात नहीं बोलते हैं।''महाब्यूहसुत्त' में भगवान का संदेश है कि सभी शील-व्रत तथा सदोष-निर्दोष कर्मों को छोड़ कर, और शुद्धि-अशुद्धि की कामना न करते हुए विरक्त होकर शांति के लिए विचरण करे।

'तुवटकसुत्त' में भिक्षुओं की चर्या पर प्रकाश डालने के बाद कहा गया है कि भिक्षु स्मृतिमान रह कर भगवान की शिक्षा का ससम्मान अभ्यास करे। 'अत्तदण्डसुत्त' में बुद्ध के घर छोड़ने का कारण प्रज्ञप्त किया गया है। 'सारिपुत्तसुत्त' के अंतर्गत सारिपुत्त ने बंधन में जकड़े हुए बहुत से प्राणियों की ओर से भगवान से अनेक प्रश्न किये जिनका उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर समाधान किया और अंततः भिक्षुओं को स्मृतिमान रह अंधकार का नाश करने के लिए आह्वान किया।

५. पारायनवग्ग

'कथावत्थु' में इस बात का उल्लेख है कि बावरी ब्राह्मण द्वारा महायज्ञ संपन्न किये जाने पर जब एक याचक द्वारा उससे पांच सौ कार्षापण मांगे गये तो वह इन्हें देने में असमर्थ रहा। इस पर याचक ने उसे कहा कि इन्हें नहीं देने पर सातवें दिन तुम्हारा सिर सात टुकड़ों में फट जायगा।

याचक के इन वचनों से भयभीत होकर बावरी ब्राह्मण ने वेदों में पारंगत अपने सोलह शिष्यों को भगवान के पास यह जानकारी करने के लिए भेजा कि 'सिर' क्या होता है और 'सिर का फटना' क्या? इस पर भगवान ने कहा कि 'अविद्या' को सिर जानो और 'श्रद्धा, स्मृति, समाधि, छंद तथा वीर्य से युक्त विद्या' को सिर का फटना।

तदनंतर अजित, तिस्समेत्तेय्य, पुण्णक आदि नाम वाले उन सोलह माणवकों ने एक एक करके भगवान से अनेक गंभीर प्रश्न किये, यथा-

–संसार किससे ढका हुआ है? किससे प्रकाशित नहीं होता? इसका क्या आलेप है? उसके लिए क्या महाभय है?

–सर्वत्र तृष्णा की धाराएं बहती हैं। इनका क्या निवारण है, और क्या संवर? ये धाराएं किससे बंद होती हैं?

– प्रज्ञा, स्मृति और नाम-रूप का कहां अंत होता है?

– इस संसार में कौन संतुष्ट है? किसमें चंचलताएं नहीं होतीं?

– ऋषियों, मुनियों, क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों ने देवताओं के लिए किस कारणवश इतने यज्ञ किए? क्या वे जन्म और बुढापे से पार हो गये?

–जिसमें न तो वासनाएं हों, न तृष्णा; और जो संदेह से परे चला गया हो, उसका विमोक्ष कैसा होता है?

–लोक का बंधन क्या है? उसकी खोज क्या है? किसके त्याग को निर्वाण कहा जाता है?

–संसार को किस रूप में देखने वाले को मृत्युराज नहीं देख पाता है ? इत्यादि।

भगवान ने सभी प्रश्नों का उत्तर दिया और सदा स्मृतिमान रह कर सर्व प्रकार की आसक्तियों को त्यागने पर बल दिया।

'पारायनत्थुतिगाथा' में यह बतलाया गया है कि माणवकों द्वारा भगवान को पूछे गये एक-एक प्रश्न के संदर्भ में उन्होंने जो उत्तर दिये हैं, उनके अर्थ और धर्म को जानकर इन पर आचरण करने से कोई भी व्यक्ति जन्म-मरण के पार जा सकता है। पार ले जाने वाले धर्मों की चर्चा होने के कारण इस धर्मोपदेश को 'पारायन' संज्ञा दी गयी है।

'पारायनानुगीतिगाथा' के अंतर्गत पिङ्गिय माणव की भावाभिव्यक्ति है : 'निर्वाण अजेय है, अविचल है। इसकी किसी से कोई तुलना नहीं है। मैं इसे अवश्य प्राप्त करूंगा। इस बारे में मुझे कोई संशय नहीं है'।

☸

विमानवत्थु

'विमानवत्थु' से आशय है विमानों अथवा देवभूमियों के प्रक रण।इस ग्रंथ के दो भाग हैं –इत्थिविमान तथा पुरिसविमान। पहले भाग में स्त्री और दूसरे भाग में पुरुष की देवभूमियों क ा वर्णन है।

'विमानवत्थु' में पचासी देवभूमियां वर्णित हैं जो सात वर्गों में विभाजित हैं। इनमें से पचास इत्थिविमान और पैंतीस पुरिसविमान के अंतर्गत हैं। इन सब में यही बतलाया गया है कि अमुक देवता अथवा देव द्वारा अपने मनुष्य-जीवन में कौनसा पुण्य-क र्म कि या गया था जिसके परिणामस्वरूप उसे देवभूमि प्राप्त हुई।

देवभूमियों के नामों, आक ारों और कु छेक आमोद-प्रमोदों को छोड़ क र इन सबकी वर्णना-शैली और मूल-भावना लगभग एक -सी है।

मनुष्य-जीवन में संपादित पुण्य-क र्मों के क तिपय उदाहरण इस प्रक ार से हैं

* अतिथियों को आसन देना, उनक ा हाथ जोड़ क र अभिवादन क रना और उन्हें उनके अनुरूप दान देना;

* भिक्षाटन पर निक ले भिक्षु को खीर, पुआ, क क ड़ी, मुट्ठी-भर साग अथवा छाता, जूते, पंखा इत्यादि देना;

* विपन्न होते हुए भी बूढ़े माता-पिता क ा भरण-पोषण;

* विहार में वृक्षारोपण, और भीषण ताप होने पर वृक्षों को पानी देना;

* प्रसन्न चित्त से अपने हाथों से भगवान के स्तूप पर माल्यार्पण;

* विद्या और आचरण से संपन्न, तृष्णा के क्षय को प्राप्त हुए, बहुश्रुत, यशस्वी, शीलवान श्रमणों को देख क र उन्हें प्रसन्न चित्त से सत्क ारपूर्वक जलपान क राना और खूब दान देना; इत्यादि।

शील-सदाचार क ा जीवन जीने और उक्त प्रक ार से दान देने से भी देवभूमियों क ा प्राप्त होना दर्शाया गया है, अर्थात प्राणि-हिंसा से विरत रहना, न दी गयी वस्तु को ग्रहण न क रना, नशा-पता न क रना, झूठ न बोलना, पति-पत्नी क ा परस्पर संतुष्ट रहना और (लोगों को) प्रसन्न चित्त से सत्क ारपूर्वक जलपान क राना और प्रचुर मात्रा में दान देना।

ऐसे ही प्रमुदित मन से उपोसथ रखने, अरहंत का सम्मान करने, संघ के उद्देश्य से दान देने, इत्यादि से भी देवयोनि प्राप्त होना बतलाया गया है।

'विमानवत्थु' में एक ऐसा देवता भी है जिसे लगता है कि देवभूमिविशेष प्राप्त कर लेने पर भी मेरे पुण्य-कर्म का पूरा परिपाक अभी नहीं हुआ है, और उसे आशा है कि संभवतः मैं 'सकदागामिनी' हो जाऊं (देखिए 'विसालक्खिविमानवत्थु')।

पेतवत्थु

'पेतवत्थु' से आशय है 'प्रेतों के प्रकरण'। इस ग्रंथ में ऐसे इक्यावन प्रकरण हैं, जो चार वर्गों में विभाजित हैं।

इन प्रकरणों में मुख्यतया यह बतलाया गया है कि अमुक प्रेत-प्राणी द्वारा अपने मनुष्य-जीवन में कौन सा दुष्कर्म किया गया था जिसके परिणामस्वरूप उसे प्रेत-योनि प्राप्त हुई है जहां घोर कष्ट उठाना पड़ रहा है।

मनुष्य-जीवन में संपादित दुष्कर्मों के कतिपय उदाहरण इस प्रकार से हैं

* वृक्ष-तले ध्यान करते हुए बुद्ध के मस्तक पर गुलेल से प्रहार करना;

* किसी ऋषि के भिक्षा-पात्र को जमीन पर पटक कर फोड़ डालना और उसका मजाक उड़ाना;

* स्त्री होते हुए अपनी सौत का गर्भ गिराना, और फिर झूठी शपथ खाना कि मैंने यह काम नहीं किया है;

* धनाढ्य होते हुए भी किसी को दान न देना, याचकों से छिप कर भोजन करना, और दानियों को दान देने से रोकना;

* दूसरों की हिंसा कर अपने हाथों को खून से रंगना;

* विविध प्रकार का असंयत आचरण, यथा झूठ बोलना, चुगली खाना, कठोर वचन बोलना, दूसरों की निंदा करना, ईर्ष्या करना, मात्सर्य-युक्त होना, इत्यादि।

प्रेत-प्राणियों का वर्णन बड़ा भयावह एवं लोमहर्षक है; नग्न, दुर्वर्ण, कृश, नसों के जाल से संछन्न, पसली-मात्र दिखाई देने वाले, लंबे केशों से ढके हुए, विकृत मुख वाले, सड़ांद बिखेरते हुए, भूख-प्यास से परेशान, बिना घर-घाट के, त्राण-रहित, पागल सा, दुःखद वेदनाओं को अनुभव करते हुए।

ये प्रेत जहां-कहीं जाते हैं, इनका दुर्भाग्य इनके साथ-साथ चलता प्रतीत होता है। तृषा से व्याकुल एक प्रेतनी नदी तक जा पहुँचती है, पर वह रीती मिलती है; गर्मी में छाया के पास जाती है, पर वहां धूप मिलती है; खाने की तलाश में अनेक योजन भटकने पर भी खाली हाथ लौटना पड़ता है। ऐसे ही तृषा से व्याकुल एक

अन्य प्रेतनी भी शीतल जल वाली गंगा के पास जा पहुँचती है, परंतु इसका सेवन उसके भाग्य में नहीं है – क्योंकि इसका जल उसके लिए लहू होता है।

लोगों का रोना-धोना अथवा अन्य किसी प्रकार से शोक करना इन प्रेत-प्राणियों के काम नहीं आता है। ये पास ही विद्यमान हों और इन्हें कुछ दिया जाय, तो भी ये इसे ग्रहण नहीं कर सकते। इनके निमित्त किसी को दान-दक्षिणा देने पर ही इनको उसका प्रतिफल प्राप्त होता है। उदाहरणतया, भिक्षु-संघ को अन्न, पान, चीवर इत्यादि से संतुष्ट करते हुए उस दान-दक्षिणा का प्रतिफल किसी प्रेत-प्राणी के निमित्त समर्पण किया जाय तभी उसे इसका लाभ प्राप्त होता है।

चिरकाल से भयंकर यातनाएं सहते हुए प्रेत-प्राणियों को भविष्य में दुष्कर्मों से बचने और सत्कर्मों को करने की सीख मिली प्रतीत होती है, जैसे कि उनके कथन हैं:

* प्रकट रूप से या प्रच्छन्न रूप से पाप-कर्म मत करो, अन्यथा दुःख से छुटकारा नहीं होगा।

* अब मनुष्य योनि मिलने पर मैं उदारचेता एवं शीलसंपन्न होकर बहुत से कुशल कर्म करूंगा।

'पेतवत्थु' में दान से संबंधित अनेक पद गृहस्थों के लिए बड़े प्रेरणाजनक हैं

* यदि देवताओं का राजा सक्क (शक्र) मुझे कोई वर देना चाहे, तो मैं उससे यह वर मांगूं: 'मेरे दान देते समय इसके पुण्य का क्षय न हो, दान देकर मुझे अनुताप न हो, और दान देते समय मेरा चित्त प्रसन्नता से भरा रहे।'

* भिखारी को देख कर जिसका चेहरा खिल उठता है और वह आत्मविभोर हो जाता है, उसके घर में सुख निवास करता है।

* जैसे बंजर खेत में बोये गये बहुत से बीज का भी प्रचुर फल नहीं होता है और न ही यह कृषक को संतुष्टि प्रदान करता है, वैसे ही दुःशीलों को दिये गये बहुत से दान का भी प्रचुर फल नहीं होता है और न ही यह दाता को संतुष्टि प्रदान करता है;

जैसे उत्तम खेत में बोया गया थोड़ा-सा भी बीज खूब बरसा होने पर भरपूर फसल देकर कृषक को संतुष्टि प्रदान करता है, वैसे ही गुण-संपन्न शीलवंतों के प्रति किया गया थोड़ा-सा भी सत्कृत्य महान पुण्य में बदल जाता है;

अतः सोच-विचार कर वहीं दान देना चाहिए जहां देने से महान फल प्राप्त होता हो। सोच-विचार कर दान देने वाले स्वर्ग-गामी होते हैं।

थेरगाथा

इस ग्रंथ में दो सौ चौसठ स्थविरों के उद्गार हैं, जो गाथाओं के रूप में हैं। गाथाओं की संख्या एक सहस्र दो सौ अठासी है, जो इक्कीस निपातों में विभक्त है। जिन स्थविरों की वाणी में एक-एक गाथा है उनका संग्रह 'एकक-निपात' में, जिनकी वाणी में दो-दो गाथाएं हैं उनका संग्रह 'दुक-निपात' में, और इसी प्रकार बढ़ते क्रम से साठ से अधिक गाथाएं 'महानिपात' के अंतर्गत हैं।

ये सभी स्थविर अपने-अपने आस्रवों का समूल नाश कर निर्वाणिक अवस्था प्राप्त किये हुए हैं। जीवन की चरम उपलब्धि कर लेने के कारण इनके उद्गार 'सिंहनाद' के समान हैं। इन्हीं में से भरत नाम का एक स्थविर नन्दक को आव्हान करके कहता भी है कि आओ चलें बुद्धश्रेष्ठ के पास, और वहां चल कर 'सिंहनाद' करें कि हमने सारे संयोजनों का क्षय कर लिया है ।

चूंकि विपश्यी साधक की भी यही मनोकामना रहती है कि सतत परिश्रम करके अपने सारे संयोजनों का क्षय कर ले और निर्वाणिक अवस्था का साक्षात्कार करे, अतः स्थविरों के ये 'सिंहनाद' उसके लिए प्रेरणा के अनुपम स्रोत हैं।

कुछेक प्रेरणाजनक संदर्भ इस प्रकार से हैं

* जो सारी रात सो कर दिन में मेल-मिलाप करने में लगा रहता है, वह कुबुद्धि कब अपने दुःखों का अंत करेगा? (नीतत्थेरगाथा)

* कातियान! उठ, बैठ। निद्राबहुल मत हो, सचेत हो। कहीं प्रमादियों का सखा मृत्युराज तुझ आलसी को धोखे से जीत न ले। (कातियानत्थेरगाथा)

* शुरू कर दो, निकल पड़ो, बुद्ध की शिक्षा में जुट जाओ। मृत्यु की सेना को वैसे ही हिला दो, जैसे सरकंडों के बने घर को कोई हाथी हिला देता है। (अभिभूतत्थेरगाथा)

* नहर खोदने वाले पानी को ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण को ठीक करते हैं, बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं और सुव्रती स्वयं का दमन करते हैं। (कुलत्थेरगाथा)

* जैसे भद्र, उत्तम जाति का बैल फिसल कर फिर उठ खड़ा होता है,

वैसे ही सम्यक संबुद्ध का दर्शनसंपन्न श्रावक भी (फिसल-फिसलकर फिर उठ खड़ा होता है)। (रमणीयविहारित्थेरगाथा)

* बर्छी से आहत हुए के समान, सिर में आग लगे हुए के समान, कामराग के विनाश के लिए भिक्षु स्मृतिमान हो, विचरण करे।(तिस्सत्थेरगाथा)

* मैं श्रद्धा से प्रव्रजित हुआ हूं। मैंने जंगल में कुटिया बना ली है । मैं अप्रमत्त हूं, उद्योगशील हूं, संप्रज्ञानी हूं, स्मृतिमान हूं। (कोसलविहारित्थेरगाथा)

* अब भिक्षु में ये बातें बिल्कुल नहीं रही हैं : राग, द्वेष, आलस्य, अभिमान और संशय। (सुयामनत्थेरगाथा)

* दो वर्षों में मैं एक ही शब्द बोला हूं। तीसरे वर्ष में मैंने अविद्या के आवरण को भेद डाला है। (गङ्गातीरियत्थेरगाथा)

* मैं स्वयं को (संसार-) सलिल से उठा कर (निर्वाण-) स्थली पर रख पाया हूं। (संसार के) पृथुल प्रवाह में बहा कर ले जाये जाते हुए मैंने चार आर्यसत्यों को बींध लिया था। (अज्जुनत्थेरगाथा)

* मुझे पांचों स्कंधों का परिज्ञान हो गया है, अब इनकी जड़ कट गयी है। मेरे आस्रवों का क्षय हो गया है, दुःखों का अवसान हो गया है। (इसिदत्तत्थेरगाथा)

* शील के नियमों में प्रतिष्ठित हो, स्मृति और प्रज्ञा की भावना कर मैं क्रमशः सभी बंधनों के क्षय को प्राप्त हुआ हूं। (काळिगोधापुत्तभद्दियत्थेरगाथा)

* मेरा सारा राग निकल गया है, द्वेष उखड़ गया है, मोह चला गया है। मैं शीतल हो गया हूं, निर्वाण-प्राप्त हूं। (रक्खितत्थेरगाथा)

* सम्यक संबुद्ध द्वारा उपदिष्ट निर्वाण सचमुच अपूर्व सुख देने वाला है। यह है शोक-रहित, रज-रहित, क्षेमयुक्त – जहां दुःख का निरोध हो जाता है। (बाकुलत्थेरगाथा)

* पहले मैं खून से रंगे हाथों वाला नामी चोर अङ्गुलिमाल था। मेरा (बुद्ध-)शरण-गमन देखो, मेरी (तृष्णा-रूपी) भव-रज्जु का समूल नाश हो गया है। (अङ्गुलिमालत्थेरगाथा)

* जन्म से सात वर्ष का होने पर मैंने उपसंपदा पायी। देखो धर्म की महिमा! आज मैं अंतिम देह धारण किये हुए हूं। (सोपाकत्थेरगाथा)

* नीच कुल में पैदा हुआ मैं मनुष्यों द्वारा घृणित, तिरस्कृत एवं निंदित था। कारुणिक शास्ता से उपसंपदा पा कर मैंने तंद्राविहीन रह कर अकेले जंगल में विहार करते हुए उन्होंने जैसा-जैसा कहा, वैसा-वैसा काम किया। अब रात के पहले प्रहर में मुझे पूर्वजन्मों का स्मरण हो आया है, बिचले प्रहर में दिव्य चक्षु विशुद्ध हुआ है और अंतिम प्रहर में अज्ञान का आवरण नष्ट हो गया है। (सुनीतत्थेरगाथा)

* मैं पहले था निंदित ब्राह्मण (ब्रह्मबंधु), अब हूं (यथार्थ) ब्राह्मण – त्रैविद्य, स्नातक, श्रोत्रिय, वेदगू (वेदनाओं का जानकार)! (अङ्गणिक भारद्वाजत्थेरगाथा)

* पचपन वर्षों से मैं लेटा नहीं हूं, पच्चीस वर्षों से आलस्य पूरी तरह से उन्मूलित है। (अनुरुद्धत्थेरगाथा)

* मैं पांच दिन पहले ही प्रव्रजित हुआ और विहार में प्रवेश करने पर मेरे मन में संकल्प जागा –'मैं न तो कुछ खाऊंगा, न पीऊंगा, न लेटूंगा, न विहार से बाहर आऊंगा, जब तक कि तृष्णा-रूपी शल्य को बाहर न निकाल दूं।' देखो, मेरा वीर्य और पराक्रम! मैंने तीनों विद्याओं को पा लिया है, बुद्ध की शिक्षा को पूरा कर लिया है। (पच्चयत्थेरगाथा)

* मैं पहले जटाधारी था और सिद्धि अत्यल्प थी। तब उसे छोड़ मैं बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो गया। अब मैंने राग, द्वेष और मोह का समूल नाश कर लिया है। अब मैं पूर्वजन्मों को जानता हूं, मेरा दिव्य चक्षु विशुद्ध है, मैं ऋद्धिमान हूं, दूसरों के चित्त को जान लेता हूं और दिव्य श्रोत्र प्राप्त किये हुए हूं। मैं जिस उद्देश्य से घर से बेघर होकर प्रव्रजित हुआ था, मैंने सारे संयोजनों का क्षय करके उस उद्देश्य की पूर्ति कर ली है। (उरुवेळकस्सपत्थेरगाथा)

* मुझे न तो मरने की चाह है, न जीते रहने की। मुक्त हुए भृत्य के समान मैं अपने समय की प्रतीक्षा करता हूं। (खदिरवनियरेवतत्थेरगाथा)

इनके अतिरिक्त कितने ही स्थविर ऐसे हैं जो भिन्न-भिन्न प्रकार से अपनी उपलब्धि का बखान करते हुए यह 'सिंहनाद' करते हैं –'नत्थि दानि पुनब्भवो' (अब नया जन्म नहीं है)

–मेरी सारी कामनाएं प्रहीण हो गयी हैं, सारे भव नष्ट हो गये हैं, जन्मों का सिलसिला छिन्न-भिन्न हो गया है, अब नया जन्म नहीं है। (स्थविर उत्तरपाल)

–मैंने जो थोड़ा या बहुत कर्म किया था, वह सब पूरी तरह से क्षीण हो गया है, अब नया जन्म नहीं है। (स्थविर उग्ग)

–स्कंध यथाभूत देख लिये गये हैं, सारे भव नष्ट हो गये हैं, जन्मों का सिलसिला छिन्न-भिन्न हो गया है, अब नया जन्म नहीं है। (स्थविर पविट्ठ)

–मैंने दुःख का अंत कर दिया है, यह आखिरी जमावड़ा है, जन्म-मरण का सिलसिला समाप्त हो गया है, अब नया जन्म नहीं है। (स्थविर वड्ढ)

–मेरा संकल्प परिपूर्ण हो जाने से मैं पंद्रहवीं के चांद के समान हूं, मेरे सारे आस्रव पूरी तरह क्षीण हो गये हैं, मेरा अब नया जन्म नहीं है । (स्थविर एकविहारिय) कुछ अन्य अविस्मरणीय उदान-वचन हैं

* 'अप्रमत्त होकर अपने लक्ष्य का संपादन करो' – यह मेरी शिक्षा है। (स्थविर सारिपुत्त)

* सचमुच सारे संस्कार अनित्य हैं, ये उत्पत्ति और विनाश स्वभाव वाले हैं। ये उत्पन्न हो-होकर निरुद्ध हो जाते हैं। इनका नितांत उपशमन ही वास्तविक 'सुख' है। (स्थविर महामोग्गल्लान)

* जिस प्रकार समीर से उठी हुई धूल मेघ से शांत हो जाती है, उसी प्रकार प्रज्ञा से देखने पर मन के संकल्प शांत हो जाते हैं। (स्थविर अञ्ञासिकोण्डञ्ञ)

* पांच अंगों वाले तूर्य-वाद्ययंत्र से भी वैसा आनंद नहीं प्राप्त होता है जैसा कि एकाग्रचित्त हुए सम्यक रूप से विपश्यना करने वाले व्यक्ति को! (स्थविर कुल्ल)

☸

थेरीगाथा

इस ग्रंथ में पांच सौ चौबीस गाथाएं हैं, जो मुख्यतया निर्वाण-प्राप्त स्थविराओं के उद्गार हैं। थेरगाथा के समान ही ये उद्गार भी निपातों में विभक्त हैं –'एकक निपात' से लेकर 'महानिपात' तक । निपातों की संख्या सोलह है।

कुछ गाथाएं स्थविराओं के सामूहिक उद्गार हैं। सामूहिक उद्गार करने वाली स्थविराओं की पृथक-पृथक गणना करने पर स्थविराओं की कुल संख्या सैंकड़ों में चली जाती है, अन्यथा इनकी संख्या तेहत्तर है।

स्थविरों के समान ही स्थविराओं के उद्गार भी उनकी उच्च आध्यात्मिक उपलब्धियों को प्रकाश में लाते हैं, जो साधकों-साधिकाओं के लिए प्रेरणा के अपूर्व स्रोत हैं।

कतिपय उदाहरण

* कड़ाही में पड़े हुए शुष्क साग के समान राग (दग्ध होकर) शांत हो गया है। (अञ्ञतरा)

* मेरा कांटा निकल गया है, मैंने अपना भार उतार फेंका है, मुझे जो करना था वह सब कर लिया है। (किसागोतमी)

* पुरुषार्थ में लगे हुए, आत्म-संयमी, नित्य दृढ़ पराक्रम करने वाले, एक-जुट हुए इन श्रावकों को देखो – यह है बुद्धों की वंदना! (महापजापतिगोतमी)

* घर-बार त्याग कर, प्रिय पुत्र और प्यारे पशु को तिलांजलि देकर, राग और द्वेष का विसर्जन कर और अविद्या को दूर कर, तृष्णा का समूल नाश कर मैं शांत हो गयी हूं और निर्वाण पाये हुए हूं। (सङ्घा)

* मैंने एक हाथी को जल में अवगाहन करने के पश्चात नदी किनारे बैठा देखा। तब एक अंकुशधारी पुरुष ने उसे आदेश दिया –'पांव पसार!' इस पर हाथी ने पांव पसारा और पुरुष उस पर चढ़ बैठा। अ-दान्त हाथी को दामित और मनुष्य के वशीभूत होते देख मैंने भी वन में प्रवेश कर चित्त को दान्त बना लिया। (दन्तिका)

* छोटे से विहार में बैठे हुए मुझ में संवेग जागा कि तृष्णा के वश में आ कर मैं गलत रास्ते में पड़ गयी हूं। मेरा आयु-काल समाप्त होने जा रहा है, बुढ़ापा और बीमारी मेरा मर्दन कर रहे हैं। इस देह के भंग हो जाने से पूर्व ही जो कुछ हो सकता हो, मुझे कर लेना चाहिए। अब प्रमाद करने का समय नहीं रहा है। मैंने तभी से स्कंधों की उत्पत्ति और विनाश का यथाभूत दर्शन करना आरंभ कर दिया और विमुक्त-चित्त होकर ही आसन छोड़ा। (मित्ताकाळी)

* चित्त को वश में न कर सकने के कारण मैंने भिक्षुणी (खेमा) से अपनी कठिनाई के बारे में पूछा। उसने मुझे परमार्थ की प्राप्ति के लिए धातु, आयतन, चार आर्य सत्य, इंद्रिय, बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया। मैंने इस उपदेश के अनुसार आचरण किया।इसके फलस्वरूप रात्रि के पहले प्रहर में मुझे पूर्वजन्मों का स्मरण हो आया, बिचले प्रहार में मैंने दिव्य चक्षुओं को विशोधित किया और अंतिम प्रहर में मैंने (अज्ञान-रूपी) अंधकार के पुंज को विदीर्ण कर डाला। (विजया)

अनेक स्थविराओं ने निर्वाण का साक्षात्कार कर न केवल अपना ही कल्याण किया, बल्कि दूसरों के परमार्थ में भी सहायक बनीं। ऐसी ही एक स्थविरा पटाचारा थी जिसके अनुशासन में रह कर सैंकड़ों भिक्षुणियों ने निर्वाण-लाभ किया।इन भिक्षुणियों ने पटाचारा के प्रति अपने उद्गार इस प्रकार से प्रकट किये हैं

– 'अहो, अमोघ था देवी का उपदेश! मैं आज आस्रव-रहित और तीनों विद्याओं की ज्ञाता हूं।' (चन्दा)

– 'हमने तुम्हारे अनुशासन को पूरा कर लिया है। अब हम सब हैं आस्रव-रहित और तीनों विद्याओं की ज्ञाता! जैसे तीसों देवता रण-विजेता देवेंद्र को आगे किये रहते हैं, वैसे ही हम भी तुम्हें आगे कर तुम्हारे नेतृत्व में विचरण करती रहेंगी।' (तीस भिक्षुणियां)

–'पुत्र-शोक रूपी सूक्ष्म शल्य, जो मुझ शोकापन्न के हृदय में बिंधा हुआ था, वह निकल गया है। आज मैं शल्य-रहित, तृप्त और परिनिवृत्त हूं ।' (पांच सौ भिक्षुणियां; इनकी पृथक-पृथक अभिव्यक्ति)

इन गाथाओं में ऐसे अनेक प्रसंग आये हैं जिनमें पापी मार ने स्थविराओं को मुक्ति के मार्ग से च्युत करने के लिए कुचेष्टाएं की हैं। जैसे-

–सेला को कहा: 'लोक में मुक्ति जैसी कोई चीज नहीं है, फिर एकांत-वास से तुझे क्या लाभ होगा? समय रहते कामभोगों का सेवन कर ले, कहीं पीछे पछताना न पड़े!'

–सोमा को कहा: 'जिस स्थान को ऋषियों द्वारा प्राप्त किया जाना भी दुष्कर है, उसे दो-अंगुल प्रज्ञा वाली स्त्री प्राप्त कर पाये, यह संभव नहीं है।'

–खेमा को कहा: 'तू रूपवती युवती है, मैं रूपवान युवक हूं। आओ! पांच अंगों से युक्त तूर्य-वाद्ययंत्र के साथ आनंद मनायें।'

–चाला को कहा: 'तूने किसलिए सिर मुंडवाया है? तू श्रमणी-सी दिखलायी दे रही है। तुझे मिथ्या-दृष्टि अपनाना उचित नहीं है।'

–उप्पलवण्णा को कहा: 'तू फूलों से लदे हुए इस साल-वृक्ष के तले अकेली बैठी है। यहां तेरे पास कोई दूसरा नहीं है। अरी नादान! तुझे धूर्तों से भय नहीं लगता क्या?'

इन स्थविराओं ने मार को ऐसे-ऐसे उत्तर दिये जिससे उसे मुँह की खानी पड़ी। उन्होंने कहा

–'कामभोग भाले की नोक के समान स्कंधों को छेदने वाले होते हैं। जिसे तू कामभोगों का आनंद कहता है, वह मेरे लिए घृणा की वस्तु है'।(सेला)

–'जब चित्त भली प्रकार समाहित हो और सम्यक प्रकार से धर्म की विपश्यना करने से ज्ञान में स्थित हो, भला उस अवस्था में किसी के स्त्री होने से क्या होता है?' (सोमा)

–'इस दुर्गंधयुक्त, रोगी और नश्वर शरीर से आनंद मनाने में मुझे लाज आती है। मैंने काम-तृष्णा की जड़ काट रखी है'।(खेमा)

–'मिथ्यादृष्टि-संपन्न लोगों से मेरा कोई सरोकार नहीं है। वे धर्म को नहीं जानते हैं। मैंने शाक्यकुलोत्पन्न अद्वितीय पुरुष बुद्ध से धर्म का ज्ञान प्राप्त किया है, जिससे मैं सारी दृष्टियों से परे चली गयी हूं।' (चाला)

–'तेरे जैसे एक लाख धूर्त्त भी आ जाएं तो मेरे एक रोएं को नहीं हिला सकते, न मुझे कंपायमान कर सकते हैं। तू अकेला मेरा क्या कर लेगा?' (उप्पलवण्णा)

इन स्थविराओं की इस उक्ति से मार का गर्व चूर-चूर हो गया:

'हमारी तृष्णा सर्वथा समाप्त हो गयी है, और (अज्ञान-रूपी) अंधकार का पुंज विदीर्ण हो गया है। तू ऐसा समझ ले कि दूसरों को मारने वाला तू ही आज मार डाला गया है।'

☸

अपदान

इस ग्रंथ के दो भाग हैं –'थेरापदान' तथा 'थेरीअपदान'।

'थेरापदान' में बुद्ध, पच्चेक बुद्ध और पुब्बक म्मपिलोतिक बुद्धके अपदानों के अतिरिक्त पांच सौ इक सठ स्थविरों के अपदान हैं, और 'थेरीअपदान' में चालीस स्थविराओं के। स्थविरों-स्थविराओं के अपदानों में उनके पूर्वजन्मों के गौरवपूर्ण क ार्यों क ा उल्लेख है। ये सभी लोग गौतम बुद्ध के समक ालीन हुए और इन्होंने उनकी शिक्षा को पूरा किया।

संपूर्ण ग्रंथ में गाथाएं-ही-गाथाएं हैं जिनक ा विभाजन वर्गों में कि या हुआ है । 'थेरापदान' में वर्गों की संख्या छप्पन है, और 'थेरीअपदान' में चार। 'थेरापदान' के छप्पनवें वर्ग को छोड़क र, जिसमें ग्यारह अपदान हैं, शेष सभी में दस-दस अपदान हैं।

इस ग्रंथ के तीन अपदान – बुद्ध, पच्चेक बुद्ध तथा पुब्बक म्मपिलोतिक बुद्ध – स्वयं बुद्ध द्वारा उदीरित हैं और अन्य सभी अपदान संबंधित स्थविरों-स्थविराओं की अपनी-अपनी वाणी में हैं, जैसा कि प्रत्येक अपदान के अंत में उल्लेख है – 'इत्थं सुदं आयस्मा. . . थेरो इमा गाथायो अभासित्था'ति अथवा 'इत्थं सुदं. . . भिक्खुनी इमा गाथायो अभासित्था'ति ।

'बुद्धअपदान' में आनन्द के पूछने पर बुद्ध भगवान ने बतलाया है कि मैंने पारमिताओं को पूरा क रके उत्तम संबोधि को प्राप्त कि या है। उन्होंने यह भी बतलाया है कि बुद्धों की शिक्षा क्या है, अर्थात

* आलस्य को भयक ारक ,और पराक्र म को क्षेमक ारक ,जानक र पराक्र म क रने में लग जाना;

* विवाद को भयक ारक ,और अ-विवाद को क्षेमक ारक ,जानक र सभी क ा एक -जुट हो जाना; और

* प्रमाद को भयक ारक , और अ-प्रमाद को क्षेमक ारक , जान क र अष्टांगिक मार्ग को भावित क र लेना।

'पच्चेक बुद्धअपदान' में आनन्द के पूछने पर भगवान ने बतलाया है कि पच्चेक बुद्ध बुद्धों के बिना ही खूब तीक्ष्ण प्रज्ञा वाले होते हैं और थोड़ा-सा

आलंबन मिलने पर भी बोधि प्राप्त कर लेते हैं। ये विशुद्ध शील वाले, सुविशुद्ध प्रज्ञा वाले, समाहित, जागरणशील, विपश्यना करने वाले और मार्गांगों तथा बोध्यंगों के विशेष जानकार होते हैं। ये सारे दुःखों को पार किये हुए, प्रसन्नचित्त, परमार्थद्रष्टा, सिंह-समान और गैंडे के सींग की तरह एकाकी विचरण करने वाले होते हैं।

'पुब्बकम्मपिलोतिक बुद्धअपदान' में बुद्ध भगवान ने अनोतत्त सरोवर के पास पत्थर की चट्टान पर बैठ कर भिक्षु-संघ के समक्ष अपने पूर्वजन्मों की कर्म-कोथली (पुब्बकम्मपिलोतिक) को खोल कर बतलाया है कि मेरे बुद्धत्व प्राप्त कर लेने पर भी कैसे मेरे पूर्व-कर्म आज भी अपना विपाक दिखला रहे हैं। उन्होंने बतलाया है कि किन पूर्व-कर्मों के कारण मेरे अंतिम जीवन में ऐसी घटनाएं घटी हैं, जैसे कि चिंचा द्वारा मुझे अपशब्द कहना, देवदत्त द्वारा मुझ पर पत्थर फेंकना, नाळागिरि हाथी का भ्रांत होकर मेरे पास आना, मेरी पीठ दुखना, अतिसार होना इत्यादि। उनका कहने का भाव यह था कि कर्म का कभी नाश नहीं होता है ('न हि कम्मं विनस्सति')।

अन्य अपदानों में कथावस्तु का आख्यान कई प्रकार से हुआ है, परंतु इसका मानक स्वरूप यह है कि सर्वप्रथम किसी स्थविर अथवा स्थविरा का गौतम बुद्ध से पूर्व के किसी बुद्ध से संपर्क हो जाता है। इस संपर्क के अंतर्गत संबंधित स्थविर अथवा स्थविरा अपनी विशुद्ध चेतना से उस पूर्व-बुद्ध के हितार्थ कोई सत्कर्म करते हैं। तदनंतर पूर्व-बुद्ध द्वारा यह भविष्यवाणी की जाती है कि ये किस प्रकार देवलोक अथवा मनुष्यलोक में संसरण करते हुए यश-लाभ करेंगे और बाद में किस आने वाले बुद्ध का धर्मोपदेश सुनेंगे। अंत में यह बतलाया जाता है कि यह भविष्यवाणी किस प्रकार सत्य सिद्ध होगी और किस प्रकार ये लोग अर्हत-पद प्राप्त करेंगे।

प्रत्येक स्थविर-स्थविरा ने यह उद्घोष किया है : 'मैंने चारों प्रतिसंभिदाओं, आठों विमोक्षों तथा छहों अभिज्ञाओं का साक्षात्कार कर लिया है। मैंने बुद्ध की शिक्षा को पूरा कर लिया है'।

इन अपदानों में वर्णित स्थविर-स्थविराएं अपने पूर्वजन्म में किसी पूर्व-बुद्ध के संपर्क में आने के समय अनिवार्यतः मनुष्य-योनि ग्रहण किये हुए नहीं थे, जैसा कि इनमें से कोई-कोई वानर, दानव, राक्षस, किन्नर अथवा किन्नरी, आदि भी थे।

इन्होंने तत्कालीन बुद्ध के हितार्थ जो भी गौरवपूर्ण कार्य किये थे, वे अत्यंत

भावविभोर होकर, मोद-भरे चित्त से और, यथासंभव, अपने हाथों से संपन्न किये थे। इसी कारणवश इन्हें आगे दुर्गति का मुँह नहीं देखना पड़ा, जैसा कि इनमें से कितनों ने ही इस बात की घोषणा भी की है : 'यह इस पुण्य-कर्म का ही फल है कि मुझे अपनी दुर्गति होने का भान नहीं होता है'।

कुछ गौरवपूर्ण कार्य इस प्रकार के रहे : भिक्षा-दान, वस्त्र-दान, धन-दान, दीप-दान, धूप-दान, मंच-दान, चौकी का दान, सेतु-दान, नई फसल का दान, चीवर सीने के लिए सुइयों का दान, पानी का मटका भर कर देना, नदी पार कराना, महल पर चढ़ने के लिए सीढ़ी बनाना, बोधि-वृक्ष के इर्द-गिर्द मुंडेर बनाना, इत्यादि।

कुछेक भविष्यवाणियां

* सुरुचि नाम के तपस्वी के लिए अनोमदस्सी भगवान ने भविष्यवाणी की कि यह अपने अंतिम जीवन में सारिया नाम की ब्राह्मणी की कोख से पैदा होकर सारिपुत्त नाम वाला होकर पैनी प्रज्ञा वाला होगा। यह उस समय ओक्काक (इक्ष्वाकु) कुल में उत्पन्न हुए गौतम गोत्र वाले शास्ता का स्वकीय, धर्म-निर्मित, धर्म-दायाद और उनका अग्रश्रावक होगा। यह अपने शास्ता द्वारा प्रवर्तित धर्मचक्र का अनुप्रवर्तन करेगा। (सारिपुत्तत्थेरअपदान)

* कोसिय नाम के जटाधारी के लिए पदुमुत्तर भगवान ने भविष्यवाणी की कि यह ओक्काक कुलोत्पन्न गौतम के शासनकाल में प्रव्रज्या प्राप्त कर उनका सुभूति नाम का श्रावक होगा। (सुभूतित्थेरअपदान)

* अनोम नामक तापस के लिए पियदस्सी भगवान ने भविष्यवाणी की कि चक्षुमान गौतम बुद्ध के शासन-काल में यह अभिरमण करता हुआ, उनके धर्म को सुन कर, अपने दुःखों का विनाश कर, सारे आस्रवों का परिज्ञान कर, अनास्रव होकर निर्वाण-लाभ करेगा। (हेमकत्थेरअपदान)

* हंसवती नगर के श्रेष्ठी कुलों में उत्पन्न हुई दो महिलाओं के लिए पदुमुत्तर भगवान ने पृथक-पृथक भविष्यवाणी की कि ये गौतम बुद्ध के शासन-काल में उनकी स्वकीय, धर्म-निर्मित, धर्म-दायाद शिष्याएं होंगी, जिनमें से एक का नाम होगा खेमा और दूसरी का पटाचारा। (खेमाथेरीअपदान तथा पटाचाराथेरीअपदान)

जन्म-मरण की शृंखला में अपना अंतिम जीवन बिताते हुए कुछेक स्थविरों-स्थविराओं के उद्घोष इस प्रकार के हैं

* शील, समाधि, प्रज्ञा और उत्कृष्ट विमुक्ति – इनमें ज्ञान जगा कर मैं सुखपूर्वक विहरता हूं। (पिलिन्दवच्छ)

* मैं एकांत-प्रेमी, शांत और आसक्ति-रहित हूं। मैं सारे आस्रवों का परिज्ञान कर, आस्रव-रहित होकर विहरता हूं। (गिरिमानन्द)

* मेरे राग, द्वेष, मोह, मान और म्रक्ष ध्वस्त हो गये हैं। मैं सारे आस्रवों का परिज्ञान कर, आस्रव-रहित होकर विहरता हूं। (काळुदायी)

* यह मेरा सबसे पिछला, अंतिम भव है। जय और पराजय को त्याग कर मैंने अविचल स्थान प्राप्त कर लिया है। (ओपवय्ह)

* मेरे पाप भस्म हो गए हैं, सारे भव जड़ से उखड़ गये हैं। जैसे हाथी बंधन तोड़ कर स्वतंत्र विचरण करता है, वैसे ही मैं भी आस्रव-रहित होकर विहार करता हूं। (सारिपुत्त)

* (माता की) कोख से निकलता हुआ मैं स्मृतिमान और संप्रज्ञानी था । मैं जन्म से पांच वर्ष का हूं और अर्हत-पद प्राप्त किये हुए हूं। (पदुम)

* स्कंधों को अनित्य, दुःख तथा अनात्म जान कर, सारे आस्रवों को परे फेंक कर, मैंने अर्हत-पद प्राप्त कर लिया है। (सोणा)

* जिस प्रयोजन के लिए मैं घर से बेघर हो प्रव्रजित हुई थी, मेरा वह प्रयोजन कि मेरे सारे संयोजनों का क्षय हो जाय, वह पूरा हो गया है। (उप्पलवण्णा)

* मैं ऋद्धियों की स्वामिनी हूं, दिव्य श्रोत्र प्राप्त किये हुए हूं और दूसरों के चित्त को जान लेती हूं। मैं शास्ता की शिक्षा पर चलती हूं। मैं पूर्वजन्मों को जानती हूं। मैंने दिव्य चक्षु विशुद्ध कर लिए हैं। मैं सारे आस्रवों को परे फेंक कर विशुद्ध एवं नितांत निर्मल हूं। (किसागोतमी)

बुद्धवंस

'बुद्धवंस' में गौतम बुद्ध और उनके पूर्ववर्ती चौबीस अन्य बुद्धों की जीवनियों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें कुल एक सहस्र इकहत्तर गाथाएं हैं, जो उनतीस परिच्छेदों में विभक्त हैं।

इन परिच्छेदों में प्रतिपादित विषय-वस्तु का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है

(१) रतनचङ्कमनकण्ड –सहम्पति ब्रह्मा की याचना पर लोगों पर अनुकंपा कर उन्हें धर्मोपदेश देने से पूर्व गौतम बुद्ध ने अपना उत्कृष्ट बुद्ध-बल प्रकट किया। उन्होंने आकाश में रत्न-खचित चंक्रमण-भूमि का निर्माण किया, जिसे देखकर सभी लोकधातुओं के प्राणी विस्मित एवं गद्गद हो गये। उस समय सारिपुत्त ने उनसे पूछा कि सम्यक संबुद्ध बनने के लिए आपका संकल्प कैसा था, आपने उत्तम बोधि प्राप्त करने की कामना कब की और पारमियों तथा उप-पारमियों को कैसे पूरा किया।

(२) सुमेधपत्थनाकथा –भगवान ने बतलाया कि चार असंख्य और एक लाख कल्प पूर्व अमरवती नामक नगर में मैं सुसंपन्न, ज्ञानवान, पारमि-प्राप्त सुमेध नाम का ब्राह्मण था। मैंने एक बार एकांत में बैठ कर चिंतन किया कि संसार में बार-बार जन्म लेना दुःख है। इससे मुक्ति पाने का मार्ग अवश्य होगा, मैं उसकी खोज करूंगा : 'गूह से लिपटा हुआ व्यक्ति भरे हुए तालाब को देखकर भी उसकी खोज न करे, तो यह तालाब का दोष नहीं माना जा सकता।' यह सोच, मैं अपनी सारी संपत्ति दूसरों को देकर हिमालय के एक निकटवर्ती पर्वत पर जाकर रहने लगा और अपने परिश्रम के बल-बूते पर अनेक अभिज्ञाओं का लाभी हुआ।

एक बार मैंने किसी स्थान पर तत्कालीन सम्यक संबुद्ध दीपङ्कर भगवान के स्वागत के लिए लोगों को रास्ता ठीक करते हुए देखा। 'बुद्ध' के आगमन की बात जानकर मेरे मन में प्रीति का संचार होने लगा और मैंने भी उस मार्ग का एक खंड ठीक करने के लिए अपने जिम्मे ले लिया। परंतु मेरा कार्य पूरा होने से पहले ही अपने क्षीणास्रव शिष्यों के साथ भगवान वहां पर आ पहुँचे।

यह देख, मैंने अपने लंबे बाल खोल दिये और वल्कल-चीर तथा कंथा को

कीचड़ पर बिछा कर औंधा लेट गया जिससे बुद्ध अपने शिष्यों सहित मेरे ऊपर से लांघ जायें और उन्हें कीचड़ में पांव न रखना पड़े। मुझे लगता था कि ऐसा करना मेरे हित में ही होगा।

तभी मुझमें यह विचार कौंधा कि यदि मैं चाहूं तो आज ही अपने सारे पाप जला सकता हूं। परंतु मुझ अकेले द्वारा धर्म का साक्षात्कार कर भवसागर को तर जाने से क्या लाभ होगा? मुझे तो सर्वज्ञता प्राप्त कर देवों सहित सभी के तैर जाने में सहायक बनना चाहिए।

तभी मेरे सिर के पास खड़े होकर लोकों के जानकार दीपङ्कर भगवान ने कहा: 'देखो इस कठोर तप करने वाले जटाधारी तापस को! आज से अपरिमित कल्पों के पश्चात यह संसार में बुद्ध होगा।' इसके अतिरिक्त, उन्होंने मेरे वर्तमान जीवन को लेकर भी कई प्रकार की भविष्यवाणी की।

मेरे कर्मों का प्रकीर्तन कर अपने शिष्यों सहित दीपङ्कर भगवान के चले जाने के पश्चात मैं उठ खड़ा हुआ और वहीं पालथी मार कर बैठ गया। तभी दस सहस्र लोकों के निवासी महानाद करते हुए कहने लगे : 'यह निश्चय ही बुद्ध होगा!' उस समय शुभ लक्षण और अनेक प्रकार के चमत्कार भी दिखलाई पड़ने लगे।

इस सारे परिप्रेक्ष्य में, विशेषकर यह मानते हुए कि बुद्धों की वाणी कभी निष्फल नहीं जाती, मुझे विश्वास हो गया कि मैं बुद्ध बनूंगा। तब गहन चिंतन के फलस्वरूप मुझे लगा कि बोधि प्राप्त करने के लिए दस पारमियों को पूरा करना आवश्यक है, जो हैं – दान, शील, नैष्क्रम्य, प्रज्ञा, वीर्य, क्षान्ति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री तथा उपेक्षा। तभी धर्म के प्रताप से दस सहस्र लोक कंपायमान हो उठे।

(३-२६) बुद्धवंस – इन परिच्छेदों में निम्नांकित चौबीस बुद्धों की जीवनियों पर प्रकाश डाला गया है

दीपङ्कर, कोण्डञ्ञ, मङ्गल, सुमन, रेवत, सोभित, अनोमदस्सी, पदुम, नारद, पदुमुत्तर, सुमेध, सुजात, पियदस्सी, अत्थदस्सी, धम्मदस्सी, सिद्धत्थ, तिस्स, फुस्स, विपस्सी, सिखी, वेस्सभू, ककुसन्ध, कोणागमन, कस्सप।

प्रत्येक बुद्ध के बारे में जिन तथ्यों की जानकारी दी गयी है वे, प्रायः कर, हैं:

* कल्प
* उनके काल के तीन अभिसमय
* उनके श्रावकों के तीन सन्निपात
* तत्कालीन बोधिसत्व का परिचय, और उसके द्वारा बुद्ध के लिए किया गया कुशल कर्म।
* बोधिसत्व के भविष्य में 'बुद्ध' बनने की घोषणा (आवश्यक विवरण सहित)
* बुद्ध के नगर, पिता तथा माता के नाम
* उनके गृहस्थ जीवन की अवधि
* उनके निवास के तीन महलों के नाम
* महलों की अलंकृत नारियों की संख्या
* बुद्ध की पत्नी और पुत्र के नाम
* अभिनिष्क्रमण का साधन
* बोधि-प्राप्ति के लिए किये गये प्रधान (परिश्रम) की अवधि
* (तदनंतर) धर्मचक्र प्रवर्त्तन
* अग्र-श्रावकों के नाम
* उपस्थाक का नाम
* अग्र-श्राविकाओं के नाम
* बोधिवृक्ष का नाम
* अग्र-उपासकों के नाम
* अग्र-उपासिकाओं के नाम
* काया-प्रमाण
* रश्मियां
* आयु-प्रमाण
* परिनिर्वाण का स्थान

अनेक बुद्धों के परिनिर्वाण का उल्लेख करने के पश्चात इस सच्चाई का प्रख्यापन किया गया है : 'ननु रित्ता सब्बसङ्खारा' (सचमुच, सभी संस्कार अनित्य हैं!)

(२७) गोतमबुद्धवंसो – इसमें गौतम बुद्ध की जीवनी से संबंधित निम्नांकित तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है

शाक्यकुलीन। प्रधान (परिश्रम) द्वारा उत्तम संबोधि की प्राप्ति। ब्रह्मा की याचना पर धर्मचक्र प्रवर्त्तन। तीन अभिसमय (पहला अठारह करोड़ का, दूसरा वा तीसरा अगण्य)। एक ही सन्निपात (१,२५० भिक्षुओं का)। नगर : कपिलवत्थु। पिता : राजा सुद्धोदन। माता : मायादेवी। गृहस्थ-जीवन : २९ वर्ष। तीन उत्तम प्रासाद : रम्म, सुरम्म, सुभक। अलंकृत नारियां : ४०,०००। पत्नी : भद्दकच्चना। पुत्र : राहुल। चार निमित्तों को देख, अश्व-यान द्वारा अभिनिष्क्रमण। संबोधि प्राप्त करने के लिए दुष्कर साधना करने का समय : छः वर्ष। धर्मचक्र प्रवर्त्तन का स्थान : बाराणसी के पास इसिपतन। अग्र-श्रावक : कोलित तथा उपतिस्स। उपस्थाक : आनन्द। अग्र-श्राविकाएं : खेमा तथा उप्पलवण्णा। अग्र-उपासक : चित्त तथा हत्थाळवक । अग्र-उपासिकाएं : नन्दमाता तथा उत्तरा। संबोधि प्राप्त करने का स्थल : अश्वत्थ-मूल। व्याम-प्रभा : सोलह हाथ ऊंची। वर्तमान समय में मनुष्य का जीवन-काल : सौ वर्ष।

अंत में भगवान ने व्यक्त किया है कि मैं भी शीघ्र ही श्रावक-संघ सहित परिनिवृत्त हो जाऊंगा, जैसे इंधन समाप्त हो जाने पर अग्नि निर्वापित हो जाती है।

(२८) बुद्धपकिण्णककण्ड इसमें भगवान गौतम बुद्ध ने बुद्धों की उत्पत्ति के क्रम और उनके बीच के अंतराल पर प्रकाश डाला है और यह भी बतलाया है कि किन-किन कल्पों में एक से अधिक बुद्धों का प्रादुर्भाव हुआ था । वर्तमान कल्प (भद्रकल्प) में पांच बुद्ध होने हैं, जिनमें से ककुसन्ध, कोणागमन तथा कस्सप – ये तीन हो चुके हैं, अभी मैं बुद्ध हूं ही और आगे चल कर होंगे – मेत्तेय्य।

(२९) धातुभाजनीयकथा – इसमें कुसिनार में भगवान गौतम बुद्ध के परिनिर्वाण के उपरांत उनकी धातुओं के विभाजन का विवरण अंकित है।

☸

चरियापिटक

'चरियापिटक' में गौतम बुद्ध के पूर्वजन्मों की पैंतीस चर्याओं का वर्णन है, जिनमें यह दर्शाया गया है कि उन्होंने किस प्रकार नाना पारमियों को पूरा किया था। दस पारमियों में से यहां केवल सात का ही उल्लेख है : दान, शील, नैष्क्रम्य, अधिष्ठान, सत्य, मैत्री तथा उपेक्षा।

ये चर्याएं तीन सौ छप्पन गाथाओं में निबद्ध हैं, जिन्हें भगवान ने स्वयं कहा है। इनका विभाजन तीन वर्गों में है।

इस ग्रंथ में प्रतिपादित विषय-वस्तु का, वर्ग-वार, संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है

(१) अकित्ति वर्ग (चरिया – अकित्ति, सङ्ख, कुरुराज, महासुदस्सन, महागोविन्द, निमिराज, चन्दकुमार, सिविराज, वेस्सन्तर, ससपण्डित।)

इन सभी चर्याओं का संबंध 'दान' पारमी से है। इनमें वर्णित महादान किसी भी व्यक्ति में दान के साथ-साथ वैराग्य की भावना जगाने के लिए भी अपूर्व प्रेरणा देते हैं।

उदाहरणतया:

* भगवान कहते हैं कि महासुदस्सन नामक चक्रवर्ती राजा के रूप में मैं दिन में तीन बार स्थान-स्थान पर घोषणा करवाता था कि कौन क्या चाहता है? किसकी क्या कामना है? किसे क्या धन दिया जाय? कौन भूखा है ? कौन प्यासा? किसे माला चाहिए? किसे विलेपन? कौन विवस्त्र रंगीन वस्त्र पहनेगा? कौन राहगीर छाता लेगा? कौन सुंदर, मुलायम जूते? याचकों को धन देने की व्यवस्था की गयी थी – दस स्थानों पर नहीं, न सौ स्थानों पर, बल्कि अनेक-सौ स्थानों पर। प्रयोजन? बदले में कुछ पाने के लिए नहीं, बल्कि अनासक्त रहकर संबोधि प्राप्त करने के लिए।

* मैंने सिवि नामक क्षत्रिय राजा के रूप में राज्य करते हुए अंधे याचक का रूप धारण कर आये हुए देवराट इंद्र (सक्क) की याचना पर अपनी दोनों आंखें निकलवा कर उसको भेंट कर दीं। मैंने ऐसा इसलिए नहीं किया कि मुझे

आंखें अच्छी नहीं लगती थीं, या मैं अपने आप को अच्छा नहीं लगता था, बल्कि इसलिए कि मुझे बुद्धत्व अच्छा लगता था।

* वेस्सन्तर राजा के रूप में राज्य से निकाल दिये जाने के पश्चात मैंने याचकों की मांग पर उन्हें अपने दोनों बच्चों और स्त्री को प्रसन्नचित्त से दानस्वरूप दे दिया। मैंने ऐसा इसलिए नहीं किया कि मुझे ये अप्रिय थे, बल्कि इसलिए कि मुझे बुद्धत्व प्रिय था।

(२) हत्थिनाग वर्ग (चरिया – मातुपोसक, भूरिदत्त, चम्पेय्यनाग, चूळबोधि, महिंसराज, रुरुराज, मातङ्ग, धम्मदेवपुत्त, अलीनसत्तु, सङ्खपाल।)

इन सभी चर्याओं का संबंध 'शील' पारमी से है।

इसके कतिपय उदाहरण हैं:

* उत्कृष्ट वन में अद्वितीय गुणों से संपन्न मातृपोषक हस्ती के रूप में रहते हुए मुझे पकड़ने के लिए राजा ने अपने महावत को भेजा। उस समय मैं पद्म-सरोवर में अपनी माता के निर्वाह के लिए कमल-नाल उखाड़ रहा था। तभी उसने मुझे 'आओ, पुत्र!' कहकर सूंड़ से पकड़ लिया। उस समय मेरे शरीर में आजकल के हजार हाथियों के बराबर बल था, और यदि मैं मुझे पकड़ने वालों पर क्रोध करता तो मैं राज्य भर के मनुष्यों को नष्ट कर डालता। पर मैंने अपने शील की रक्षा करते हुए, अपनी शील पारमी को पूरा करने के लिए अपने चित्त में कोई विकार नहीं जगने दिया।

* एक बार जब मैं विशालकाय, बलवान और भयावह जंगली भैंसा था, तब मेरे खड़े रहते और सोते समय एक अशिष्ट, पापी और चंचल बंदर बार-बार मेरे कंधे, ललाट और भौंह पर पेशाब और पाखाना किया करता था। परंतु मैंने अपना शील-भंग होने के भय से उस पर क्रोध नहीं किया।

* मैं पञ्चाल राष्ट्र के राजा जयद्दिस का श्रुतधर्मा, परिजनों की रक्षा करने वाला अलीनसत्तु नाम का पुत्र था। आखेट के लिए गये हुए मेरे पिता को एक नरभक्षी यक्ष ने पकड़ लिया और कहा –'तू मेरा भक्ष्य है, यहां से मत सरक!' परंतु उसके समक्ष वापस आने की प्रतिज्ञा कर मेरे पिता घर लौट आये। जब मेरे पिता ने मुझे राज्य सौंप कर यक्ष के पास लौटना चाहा, तब मैंने उन्हें यक्ष के पास जाने से रोक दिया और उनके स्थान पर मैं स्वयं निहत्था होकर उसके पास चला गया। वहां मैंने उसे कहा – 'हे पितामह! महाग्नि जलाओ, मैं उसमें

कूद दूंगा। फिर उचित समय जान मुझे खा लेना।' इस प्रकार मैंने अपने शील-व्रत के कारण अपने जीवन की रक्षा नहीं की, और मैंने उस यक्ष की जीव-हिंसा करने की प्रवृत्ति भी छुड़वा दी।

(३) युधञ्जय वर्ग –इसकी चर्याओं का संबंध नीचे दर्शायी गयी पारमियों से है

चरियापारमी

युधञ्जय, सोमनस्स, अयोघर, भीस, सोणपण्डित। – नैष्क्रम्य

तेमिय – अधिष्ठान

कपिराज, सच्चतापस, वट्टपोतक, मच्छराज, कण्हदीपायन, सुतसोम। –सत्य

सुवण्णसाम, एकराज। – मैत्री

महालोमहंस। – उपेक्षा

इनके कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से हैं:

* 'नैष्क्रम्य' पारमी : जब मैं अपरिमित यश वाला युधञ्जय नाम का राजपुत्र था, तब संवेग को प्राप्त हो राजा, रानी, निगम और राष्ट्र –सभी के विलाप करते हुए मैं अपेक्षारहित होकर प्रव्रजित हो गया। ऐसा नहीं था कि मुझे माता-पिता प्रिय नहीं थे, अथवा महा-यश प्रिय नहीं था, पर बुद्धत्व प्रिय होने के कारण मैंने राज्य को त्याग दिया। (युधञ्जयचरिया)

* 'अधिष्ठान' पारमी : बुद्धत्व प्राप्त करने के उद्देश्य से मैं सोलह वर्षों तक गूंगा, बहरा और पंगु बना रहा। अधिष्ठान में मेरा कोई सानी नहीं है। (तेमियचरिया)

* 'सत्य' पारमी : मैंने अनेक बार सत्य-वचनों का आश्रय लेकर सत्य-क्रियाएं कीं और उनसे अभीष्ट फल प्राप्त किये। उदाहरणतया, ग्रीष्म-काल में तालाब में पानी कम हो जाने से कौवे, गीध, बगुले, चीलें और बाज मछलियों के पास बैठ कर उन्हें रात-दिन खाने लगे। तब मैंने यह सत्य-क्रिया की: 'जब से मैं अपना स्मरण करता हूं, जबसे मैंने होश संभाला है, मुझे जान बूझ कर एक भी प्राणी की हिंसा करना स्मरण नहीं है। मेरे इस सत्य-वचन से मेघ बरसे।' मेरी इस सत्य-क्रिया के साथ ही गर्जना करते हुए मेघ बरसा और उसने ऊंची-नीची धरती

को जल से आप्लावित कर दिया। सत्य में मेरा कोई सानी नहीं है। (मच्छराजचरिया)

* 'मैत्री' पारमी : एक समय मैं सक्क (शक्र) द्वारा निर्मित वन में सिंहों, व्याघ्रों, चीतों, रीछों, भैंसों, चितकबरे मृगों और सूअरों से घिरा रहता था। उस समय न तो कोई मुझसे डरता था और न ही मैं किसी से डरता था। उस समय मैत्री-बल के सहारे ही मैं वन में रमण किया करता था। (सुवण्णसामचरिया)

* 'उपेक्षा' पारमी : मैं श्मशान में मुर्दे की हड्डी पर सिर रख कर सोता था। कुछ लोग बार-बार वहां आकर बहुत से (विकराल) रूप दिखलाते थे, जबकि अन्य लोग गंध, माला, तरह-तरह का भोजन और उपहार लाते थे। परंतु जो कोई मुझे सुख देते अथवा दुःख, मैं सबके लिए समान होता था। मुझ में न दया उपजती थी, न क्रोध।सुख और दुःख, तथा यश और अपयश, सबमें मैं तुला के समान रहता था। यह है मेरी 'उपेक्षा' पारमी!

भगवान ने इस ग्रंथ के आरंभ में स्पष्ट किया है कि भले ही चार असंख्य एक लाख कल्पों के मध्य की सभी चर्याएं बुद्धत्व की ओर ले जाने वाली हैं, परंतु मैं बीते हुए कल्पों की चर्याओं को एक ओर रख, केवल इसी कल्प (अर्थात भद्रकल्प) की चर्याओं को कहता हूं।

☸

जातक

प्रस्तुत ग्रंथ में भगवान बुद्ध के पूर्वजन्मों से संबंधित गाथाओं का संकलन है। परंतु मात्र इन गाथाओं के आधार पर पूर्वजन्मों के घटनाक्रम को समझ पाना कठिन है। इसे भली प्रकार समझने के लिए इस ग्रंथ की अर्थकथा (जातकट्ठकथा) का आश्रय लेना आवश्यक रहता है। ऐसी परिस्थिति में सर्वप्रथम 'जातकट्ठकथा' का ही संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है।

जातक-अट्ठकथा

'जातक-अट्ठकथा' में इसके मुख्य शीर्षकों को दृष्टिगत करते हुए पांच सौ सैंतालीस कथाएं हैं। इनमें यह दर्शाया गया है कि भगवान बुद्ध ने 'बुद्धत्व' की प्राप्ति के लिए दसों पारमिताओं को पूरा करने के लिए कैसे-कैसे प्रयास किये।

प्रत्येक कथा पांच भागों में विभक्त है

(१) पच्चुप्पन्नवत्थु

(२) अतीतवत्थु

(३) गाथा

(४) वेय्याकरण

(५) समोधान

'पच्चुप्पन्नवत्थु' से तात्पर्य है प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) कथावस्तु। इसके अंतर्गत भगवान के जीवनकाल की किसी घटनाविशेष का उल्लेख है। 'अतीतवत्थु' के अंतर्गत उक्त घटना के प्रसंगवश भगवान द्वारा अपने पूर्वजन्म की किसी घटना पर प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक कथा के अंतर्गत एक या अनेक गाथाएं हैं। इन गाथाओं का, प्रायःकर, शब्दशः एवं विस्तृत अर्थ भी किया गया है, जो 'वेय्याकरण' है। अंत में 'समोधान' है, जिसमें अतीतवत्थु के पात्रों का भगवान के जीवनकाल के पात्रों के साथ संबंध दिखलाया गया है ।

प्रस्तुत ग्रंथ में जातक कथाओं की गाथाओं, और कहीं-कहीं समोधान को भी, अंतर्निविष्ट किया गया है। शेष सारी सामग्री 'जातक-अट्ठकथा' में ही निहित

रहती है। इससे स्पष्ट होगा कि प्रस्तुत ग्रंथ की गाथाओं को समझने के लिए 'जातक-अट्ठकथा' का आश्रय लेना कितना आवश्यक है।

उदाहरणतया, 'वट्टक जातक' (१.१.३५) के अंतर्गत एक ही गाथा है

'पंख हैं, पर उनसे उड़ा नहीं जाता; पैर हैं, पर इनसे चला नहीं जाता । मेरे माता-पिता मुझे छोड़ कर चले गये हैं। हे अग्नि! पीछे हट जा।'

इससे यह नहीं पता चलता कि यह बात किसने और किस प्रसंग में कही है। 'जातक-अट्ठकथा' के अनुशीलन से विदित होता है कि जंगल में आग लग जाने के समय एक सद्यःजात बटेर के बच्चे ने इस प्रकार की सत्यक्रिया की थी, जबकि न तो उसमें अपने पंखों से उड़ने की सामर्थ्य थी और न पैरों से चलने की, और जबकि उसके माता-पिता भी उसे पेड़ के घोंसले में अकेला छोड़कर चले गये थे। समोधान के अंतर्गत बतलाया गया है कि उस समय के बटेरराज भगवान स्वयं ही थे।

प्रस्तुत ग्रंथ

प्रस्तुत ग्रंथ में 'जातक-अट्ठकथा' की जिन गाथाओं को संगृहीत किया गया है उन्हें 'अभिसंबुद्ध गाथा', अर्थात बुद्ध द्वारा उदीरित गाथाएं, भी कहा जाता है । कथा-वार गाथाओं के संग्रह को 'जातक' कहा गया है। ऐसे जातकों की कुल संख्या पांच सौ सैंतालीस है, और गाथाओं की छह हजार छह सौ बावन ।

जातकों का विभाजन बाईस 'निपातों' में किया गया है। इनमें से पहले तेरह निपात १,२,३ से लेकर १३ तक की संख्या से अभिहित किये गये है; चौदहवां निपात 'पकिण्णक' (प्रकीर्णक) कहा गया है; पंद्रहवें से इक्कीसवें निपात २०,३०,४० के क्रमसे ८० तक की संख्या से निर्दिष्ट किये गये हैं और बाईसवें निपात को 'महानिपात' संज्ञा दी गयी है।

निपात सं. १ से ७ में जातकों की संख्या १५० से २०-२१ तक, घटते क्रम से है; निपात सं. ८ से १६ में ९ से १६ तक; निपात सं. १७ से २१ में २ से ५ तक; और निपात सं. २२ में दस। पहले निपात से लेकर अंतिम निपात तक गाथाओं की संख्या में निरंतर वृद्धि होना पाया जाता है। उदाहरणतया, प्रथम निपात के जातकों में गाथाओं की औसत संख्या एक है, जबकि अंतिम निपात में यह संख्या दो सौ चवालीस है। अंतिम निपात का नाम 'महानिपात' सर्वथा

सार्थक है, जैसा कि इसमें गाथाओं की संख्या २,४४० है जो पूरे ग्रंथ की गाथाओं के एक-तिहाई से भी कहीं अधिक है।

प्रस्तुत ग्रंथ बुद्ध-वचन के अंतर्गत आता है और 'तिपिटक' का अंगभूत है । यहां पर समूची 'जातक-अट्ठकथा' को आधार बना कर इस ग्रंथ का सार प्रस्तुत करने का मंतव्य नहीं है। परंतु इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि बालक-बालिकाओं का कथाओं के प्रति स्वाभाविक आकर्षण होता है, उनके लिए प्रेरणास्पद कुछेक जातक-कथाओं का संकेतमात्र नीचे किया जा रहा है।

बालोपयोगी जातक कथाएं

○ मत्तकभत्त जातक (जातक सं. १८) – वध के लिए लाया जाता हुआ भेड़ा हंसा भी, और रोया भी। सो क्यों?

○ कुरुंगमिग जातक (२१) – वृक्ष से फलों को सीधा-सीधा नीचे गिरते न देख कुरंग मृग को आशंका हुई कि वृक्ष ने अपना स्वभाव पलट लिया है। अतः वह वहां से चल दिया और शिकारी के चंगुल से बच निकला।

○ अभिण्ह जातक (२७) – कुत्ते और हाथी का परस्पर इतना स्नेह हो गया कि कुत्ते का साथ छूटने पर हाथी ने खाना-पीना छोड़ दिया।

○ सम्मोदमान जातक (३३) – एकमत बटेरों का चिडीमार कुछ न बिगाड़ सका, परंतु जब उनमें फूट पड़ गयी तब वे सभी उसके जाल में फँस गये।

○ बक जातक (३८) – बगुले ने मछलियों को धोखा देकर एक-एक को ले जाकर बहुतों को मार खाया। अंत में वह एक केकड़े के हाथों मारा गया।

○ नामसिद्धि जातक (९७) – 'पापक' नाम का विद्यार्थी एक अच्छे नाम की तलाश में बहुत घूमा। अंत में यह समझ आने पर कि नाम तो केवल बुलाने के लिए होता है, वह लौट आया।

○ अनुसासिक जातक (११५) – दूसरों को उपदेश देने वाली लोभी चिड़िया स्वयं पहिये के नीचे आकर मर गयी।

○ बिळारवत जातक (१२८) – सियार धर्म का ढोंग रच कर चूहों को खाता था। बोधिसत्त्व ने इसे 'बिडालव्रत' की संज्ञा दी।

० एकपण्ण जातक (१४९) – बोधिसत्त्व ने नीम के पौधे के दो पत्तों की कडुवाहट चखा कर राजकुमार का दुष्ट स्वभाव दूर किया।

० राजोवाद जातक (१५१) – मल्लिका राजा का सिद्धांत था 'जैसे को तैसा', काशी-नरेश का था 'बुराई को भलाई से जीतना'। इन दोनों राजाओं में काशी-नरेश ही बड़ा माना गया।

० सुसुमार जातक (२०८) – मगरमच्छ अपनी स्त्री के कहने से वानर का कलेजा लेना चाहता था, पर वानर अपनी चतुराई से बच निकला।

० कच्छप जातक (२१५) – दो हंस-बच्चे एक लकड़ी को कछुए के मुँह में दे, और उसके दोनों सिरों को अपने मुँह में ले, आकाश-मार्ग से जा रहे थे। कछुए के चुप न रहने पर उसने नीचे गिर अपनी जान गंवायी।

० तिलमुट्ठि जातक (२५२) – आचार्य ने बुढ़िया के तिलों की मुट्ठी खाने वाले राजकुमार-शिष्य को पीटा। राजकुमार ने बड़े होने पर आचार्य को जान से मरवाना चाहा। परंतु आचार्य ने ऐसा न करने के लिए सद्बुद्धि दी।

० दूत जातक (२६०) – किसी ने अपने आप को 'पेट का दूत' जना कर स्वादिष्ट भोजन प्राप्त किया।

० पदुम जातक (२६१) – नकटे ने झूठी प्रशंसा करने वालों की अवहेलना कर सच्ची बात कहने वाले को तालाब के कमल दिये।

० आरामदूसक जातक (२६८) – वानरों ने पौधों को उखाड़ कर उनकी जड़ें नाप-नाप कर उन्हें पानी से सींचा, और इस प्रकार सारी बगिया उजाड़ दी।

० कुटिदूसक जातक (३२१) – वानर ने बया के सदुपदेश से चिढ़ कर उसके घोंसले को नोच डाला।

० दद्दभ जातक (३२२) – 'पृथ्वी पलट रही है – इस आशंका से खरगोश के भागने पर दूसरे अंधविश्वासी जानवर भी उसका अनुकरण कर अंधाधुंध भागने लगे। अंत में सिंह ने उन्हें रोका और खरगोश की भ्रांति को दूर किया।

० कक्कारु जातक (३२६) – पुरोहित द्वारा झूठ बोल कर देवताओं से दिव्य-कक्कारु पुष्प प्राप्त किये गये, जो उसे भारी पड़े।

० मिगालोप जातक (३८१) – पिता का कहना न मान बहुत ऊंची उड़ान भर मिगालोप नाम का गृद्ध-शावक झंझावत में फँस कर अपने प्राण गँवा बैठा।

○ सिङ्घपुप्फ जातक (३९२) – देवकन्या ने एक ब्राह्मण को तालाब में उतर खिले हुए फूल को सूंघते हुए देख उसे 'गंध-चोर' कह कर उसकी भर्त्सना की।

○ वट्टक जातक (३९४) – स्निग्ध भोजन करने पर भी कौवे के दुबला होने और घास-तिनके खाने पर भी बटेर के मोटा होने के कारण पर प्रकाश ।

साधकोपयोगी जातक कथाएं

इसी प्रकार विपश्यी साधकों के लिए भी उपयोगी कुछेक जातक कथाओं का संकेत नीचे किया जा रहा है।

○ मखादेव जातक (९) – सिर का सफेद बाल देख कर राजा सिंहासन त्याग कर प्रव्रजित हो गया।

○ महासुदस्सन जातक (९५) – महासुदस्सन राजा द्वारा अपने मरण-काल के समय दिया गया अनित्यता का उपदेश।

○ सिङ्गाल जातक (१४८) – मांस का लोभी गीदड़ हाथी के गुदा-मार्ग से उसके पेट में प्रविष्ट होकर वहीं कैद हो गया। फिर यथा-तथा उसमें से बाहर निकल कर अत्यधिक संवेग को प्राप्त हुआ।

○ उपसाळ्हक जातक (१६६) – पृथ्वी में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहां कोई न कोई जलाया न गया हो, अथवा जहां श्मशान न रहा हो।

○ सकुणग्घि जातक (१६८) – बटेर ने अपने गोचर स्थान पर रह कर बाज की भी जान ले ली। पैतृक प्रदेश में विचरण करने का उपदेश।

○ गिरिदत्त जातक (१८४) – शिक्षक के लंगड़ा होने से घोड़ा लंगड़ा कर चलने लगा; सही शिक्षक मिलने पर अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ गया।

○ गरहित जातक (२१९) – मनुष्यों की करनी – बंदर की दृष्टि में!

○ वच्छनख जातक (२३५) – गृहस्थ जीवन के दोष।

○ किंसुकोपमजातक (२४८) – सभी राजकुमारों ने 'किंसुक' को देखा, परंतु फिर भी मतैक्य नहीं। क्यों?

○ कुरुधम्म जातक (२७६) – कुरु-धर्म का परिचय।

○ वक जातक (३००) – भेड़िये का उपोसथ-व्रत।

○ खन्तीवादी जातक (३१३) –जिस राजा ने बोधिसत्त्व के हाथ-पांव तथा नाक-कान कटवा दिये, बोधिसत्त्व ने उसके भी चिरंजीव होने की कामना की।

○ मतरोदन जातक (३१७) –बड़े भाई की मृत्यु हो जाने पर बोधिसत्त्व ने रोना-पीटना निरर्थक बतलाया।

○ तित्तिर जातक (३१९) – पाप कब नहीं लगता – इसका स्पष्टीकरण।

○ कोकिलजातक (३३१) –बोधिसत्त्व के उपदेश से राजा की वाचालता दूर हुई।

○ उरग जातक (३५४) –पुत्र सांप के डँसने से मर गया, पर कोई नहीं रोया – न पिता, न माता; न भार्या, न भगिनी, न दासी।

○ कोरण्डिय जातक (३५६) –हर किसी को, बिना मांग किए, शील ग्रहण करने के लिए आग्रह करने का अनौचित्य।

○ अट्ठसद्द जातक (४१८) –आठ प्रकार की आवाजों से संत्रस्त राजा के लिए इन आवाजों का स्पष्टीकरण।

○ महामङ्गल जातक (४५३) –विज्ञों द्वारा प्रशंसित, सुखकर, आठ प्रकार के सोत्थान (स्वस्तियां)।

○ युधञ्जय जातक (४६०) –ओस की बूंदों को देखकर वैराग्य की भावना जागृत हुई।

○ जनसन्ध जातक (४६८) –दस बातें, जिनके कारण बाद में पछताना पड़ता है। दूसरी दस बातें, जिनके कारण बाद में पछताना नहीं पड़ता है।

○ मित्तामित्त जातक (४७३) – मित्र और अमित्र के लक्षण।

○ सम्भव जातक (५१५) –सात वर्ष के बालक द्वारा 'अर्थ' और 'धर्म' पर प्रकाश।

○ वेस्सन्तर जातक (५४७) –वेस्सन्तर राजा के दान की रोमांचकारी अपूर्व कथा।

सुभाषित

विचाराधीन ग्रंथ की गाथाओं का स्वतंत्र रूप से अध्ययन करने पर इसमें

ढेर-सारे सुभाषित मिलते हैं। इनमें से कुछेक को उपयुक्त शीर्षकों के अंतर्गत नीचे निबद्ध किया गया है।

अति

– पंडित होना अच्छा है, अतिपंडित होना नहीं। (१.१.९८)

–जो मिल जाय उससे संतुष्ट रहना चाहिए, अति लोभ करना पाप है। (१.१.१३६)

अतीत-अनागत

–अतीत के बारे में सोच करना और अनागत के बारे में प्रलाप करना – इससे मूर्ख लोग काटे हुए हरे सरकंडे के समान सूख जाते हैं। (२.२२.९१)

असत्पुरुष-सत्पुरुष

–जैसे कृष्णपक्ष में चंद्रमा दिन प्रति दिन छोटा होता जाता है, वैसे ही होता है असत्पुरुषों से संसर्ग। (२.२१.४८४)

–जैसे शुक्ल पक्ष में चंद्रमा दिन प्रति दिन बड़ा होता जाता है, वैसे ही होता है सत्पुरुषों से संसर्ग। (२.२१.४८६)

–आकाश दूर तक फैला हुआ होता है, और पृथ्वी भी। कहते हैं समुद्र का पार भी दूर-दूर तक है। परंतु इनसे भी अधिक दूरी होती है असत्पुरुषों तथा सत्पुरुषों के धर्म में। (२.२१.४१४)

असत्यभाषण

–न तो कामकामी होकर, न भय के मारे और न द्वेष-वश प्रव्रजित लोग असत्यभाषण करते हैं। (२.१७.१४५)

आयु-क्षय

–खड़े रहने, बैठने, लेटने तथा चलने के समय की तो बात ही क्या, आंख खोलने और बंद करने के समय भी आयु का क्षय होता ही रहता है। (१.४.१११)

आर्य-अनार्य

– आर्य पुरुष आर्यपुरुष के काम आता है। (१.१४.४६)

– अनार्य पुरुष गोद में बैंठे सांप की तरह डँसता है। (२.२२.६५५)

आशा-निराशा

– पुरुष आशा लगाए रखे; बुद्धिमान कभी निराश न हो। (१.१.५१)

इच्छा-चक्र

–चार से आठ, आठ से सोलह, और सोलह से बत्तीस की इच्छा करने के कारण सिर पर घूमने वाला चक्र प्राप्त हुआ। इच्छा (लोभ) से ताड़ित मनुष्य के सिर पर यह चक्र घूमता रहता है। (१.१.१०४)

उद्योग

–आज ही उद्योग करना चाहिए, कौन जाने कल मरण हो जाय, क्योंकि उस बड़ी सेना वाले मृत्युराज के साथ हमारा कोई इकरार नहीं है (कि हम कब मरेंगे)। (२.२२.१६६)

एकता

–एकजुट होकर रहना सीखो, बुद्धों ने इसे सराहा है। मिल-जुल कर रहने में आनंद लेने वाला धर्मिष्ठ व्यक्ति योगक्षेम से वंचित नहीं होता। (१.१३.२६)

एकाकी विचरण

–समय बीतता जाता है, रातें निकलती जाती हैं, मैं भी संसार में सारी आसक्तियों को लांघ कर, शीतल हुई, अकेली विचरण करूंगी। (१.१५.३६२)

कच्चा-पक्का

–जो फलोंसे लदे महावृक्ष के फलको कच्चाही तोड़ लेता है, वह इसके रस को नहीं जानता और इसका बीज भी नष्ट हो जाता है। ऐसे ही जो महावृक्ष के समान राष्ट्र का अधर्म से शासन करता है, वह इसके रस को नहीं जानता और वह राष्ट्र भी नष्ट हो जाता है। (२.१८.१७२-१७३)

–जो फलोंसे लदे महावृक्ष के फलको पक जाने पर तोड़ता है, वह इसके रस को जानता है और इसका बीज भी नष्ट नहीं होता है। ऐसे ही जो महावृक्ष के समान राष्ट्र का धर्म से शासन करता है, वह इसके रस को जानता है और राष्ट्र भी नष्ट नहीं होता है। (२.१८.१७४-१७५)

कथनी-करनी

–जो करे वही कहे, जो न करे वह न कहे। न करते हुए केवल कहने वाले को बुधजन खूब पहचानते हैं। (१.४.७८)

कर्म

–असंख्य जन्म लेने पर भी कर्म पीछे-पीछे चलते हैं। कल्याणकारी हो या अनिष्टकारी, कर्म नष्ट नहीं होता है। (२.२२.१२८२)

–खूब पैनी तलवार, सुपायित खड्ग, छाती में घोंपी हुई बर्छी – कामभोग इनसे भी कहीं अधिक दुःखदायी होते हैं। (१.११.७०)

–जैसे कीचड़ में धँसा हुआ हाथी धरती को देख कर भी वहां नहीं जा पाता है, वैसे ही मैं भी कामभोगों की दलदल में धँसा हुआ भिक्षु के मार्ग पर नहीं जा रहा हूं। (१.१५.४५)

–सिक्कों की वर्षा होने पर भी कामभोगों में तृप्ति नहीं होती। कामवासनाएं

अल्प स्वाद वाली (अधिकांशतः) दुःखद ही होती हैं। यह जानकर बुद्धिमान व्यक्ति दैवी कामभोगों में भी अनुरक्त नहीं होता। सम्यक संबुद्ध का श्रावक तृष्णा के क्षय (निर्वाण) में ही अनुरक्त होता है। (१.३.२३-२४)

क्रोध

– क्रोध के वशीभूत मत हो। (१.२.८१)

– तात! क्रोध मत कर। क्रोध करना अच्छा नहीं होता। (१.६.८)

– बुद्धिमान लोग क्रोध से बलशाली नहीं होते। (१.१५.१९)

गुह्य अर्थ

– गुह्य अर्थ को प्रकट न करे, निधि के समान उसकी रक्षा करे (१.२५.३३२)

चिंतन

–बिना सोची हुई बात हो जाती है, सोची हुई नहीं होती। स्त्री अथवा पुरुष के भोग चिंतन पर आश्रित नहीं होते। (१.१३.१३९)

जन्मों का क्षय

–मैंने निःसंदेह जन्मों के क्षय का अंत देख लिया है। अब मैं फिर गर्भ-गत नहीं होऊंगा। यह मेरा अंतिम गर्भ-शयन था। पुनर्जन्म के लिए मेरा संसार क्षीण हो चुका है। (१.८.१७)

तृष्णा

–अरी तृष्णे! मैंने तेरी जड़ को देख लिया है। तेरा उत्पाद इच्छाओं में होता है। तो मैं इच्छा ही नहीं करूंगा, जिससे तू अस्तित्व में ही नहीं आ पायगी। (१.८.३९)

त्राण

– अपने आप को बचा कर चलो। (१.९.५९)

दान

– सभी प्राणियों के लिए दान से बढ़ कर कोई सहारा नहीं है। (१.२२.१७११)

–थोड़ा होने पर थोड़ा दे, ठीक-ठीक होने पर ठीक-ठीक दे, और बहुत होने पर बहुत दे। दान न देना उचित नहीं है। (२.२१.१९३)

–जिनके राग, द्वेष और अज्ञान दूर हो गये हैं, वे क्षीणास्रव अरहंत हैं। उनको दिया गया दान बड़ा फलप्रद होता है। (१.१५.२३)

–घर में आग लग जाने पर जो बर्तन बाहर निकाल लिए जाते हैं, वही उस व्यक्ति के काम आते हैं, न कि जो वहां जल जाते हैं। इसी प्रकार संसार जरा और मृत्यु से जल रहा है, दान देकर इसमें से भी निकाल लो। दिया हुआ ही बचाया हुआ होता है। (१.८.६९-७०)

दुर्बुद्धि

–हे दुर्बुद्धि! जटाओं से तुझे क्या लाभ है, और मृगछाल ओढ़ने से क्या? अंदर से तू मैला है, और बाहर से धोता है। (१.१.१३८)

दुःख

–जो व्यक्ति, बिन-पूछे, असमय ही अपना दुःख प्रलापता रहता है, उसके शत्रु प्रसन्न होते हैं और हितचिंतक विषण्ण। (१.१३.५९)

देवता

–देवता मनुष्यों की तरह जीर्ण नहीं होते हैं, उनके शरीर पर झुर्रियां नहीं पड़ती हैं। आने वाले दिनों में उनका वर्ण दिव्यतर होता जाता है और भोगों में बढ़ोतरी होती रहती है। (१.११.४८)

धर्म

– निश्चय ही लोक में पहले धर्म प्रकट हुआ, और बाद में अधर्म। (१.१.२८)

– धर्म कीचड़-रहित तालाब है, और पाप पसीना-रूपी मैल। (१.६.९२)

–मैं जब धर्म की बात बोलता हूं, उस समय मुझे पाप स्पर्श नहीं करता है। (१.७.८०)

– धर्म ही ऋषियों की ध्वजा होती है। (२.२१.४९४)

–लोहे से सोना पीटा जाता है, सोने से लोहा नहीं। यदि अधर्म धर्म को जीत ले, तो लोहा सोने जैसा सुंदर हो जाय। (१.११.३१)

–हनन किये जाने पर धर्म मार डालता है, अहत रहने पर किसी को नहीं मारता। अतः धर्म का हनन मत करो, जिससे यही कहीं तुम्हें न मार डाले। (१.८.४५)

धर्माचरण

–निश्चय ही धर्म धर्माचरण करने वाले की रक्षा करता है। खूब अभ्यास किया गया धर्म सुख प्राप्त करता है। खूब अभ्यास किये गए धर्म का यह सुफल होता है कि धर्माचरण करने वाले की दुर्गति नहीं होती है। (१.१०.१०२)

नरक

–जैसे व्यापारियों की नाव बेहिसाब भर ही जाय, तो अधिक भार ले जाने के कारण समुद्र में डूब जाती है, वैसे ही थोड़े-थोड़े पाप का संचय करता हुआ मनुष्य भी बहुत भार ढोने के कारण नरक में धँस जाता है। (२.२२.१२४५-१२४६)

नारी

–जीवलोक में जो स्त्री समता का आचरण करनेवाली, मेधाविनी, शीलवती, ससुर को देवता मानने वाली एवं पतिव्रता होती है, उस सुमेधा, शुचिकर्मा, मानुषी नारी का दर्शन पाने के लिए अमानुष देव आते हैं। (१.१४.१२२-१२३)

नेता

–गौवों के (नदी) तैरने के समय यदि बैल टेढ़ा जाता है, तो नेता के टेढ़े जाने के कारणसभी गौवें भी टेढ़े जाने लगती हैं। इसी प्रकारजो मनुष्यों में श्रेष्ठ माना जाता है, यदि वही अधर्म करताहै तो शेष प्रजा पहले से ही ऐसा करने लग जाती है। राजा के अधार्मिक होने पर सारा राष्ट्र दुःखी होता है। (१.४.१३३-१३४)

–गौओं के (नदी) तैरने के समय यदि बैल सीधा जाता है, तो नेता के सीधा जाने के कारण गौवें भी सीधी जाने लगती हैं। इसी प्रकार जो मनुष्यों में श्रेष्ठ माना जाता है, यदि वह धर्म का पालन करताहै तो शेष प्रजा पहले से ही ऐसा करने लग जाती है। राजा के धार्मिक होने पर सारा राष्ट्र सुख पाता है। (१.४.१३५-१३६)

प्रज्ञावान

– प्रज्ञावान इस संसार में दुःख में भी सुख प्राप्त करता है। (२.१७.३३)

–कुशलजन प्रज्ञा को श्रेष्ठ बतलाते हैं, जैसे तारों में चंद्रमा। शील, वैभव और सज्जनों का धर्म – ये प्रज्ञावान के पीछे-पीछे चलते हैं। (२.१७.८१)

प्रमाद-अप्रमाद

–अप्रमाद अमृत (निर्वाण) का स्थान है, प्रमाद मृत्यु का।अप्रमत्त मरते नहीं हैं, और प्रमत्त तो मृत-सदृश ही होते हैं। (१.१६.३३२)

प्रशंसा-निंदा

–एक ही बात के लिए एक को प्रशंसा मिलती है, और दूसरे को निंदा। (१.१३.११४)

प्रसन्न-अप्रसन्न

– प्रसन्न व्यक्ति से ही मेल करे, अप्रसन्न से दूर रहे। (२.१८.१३१)

प्रिय-अप्रिय

– बहुत देर तक टिके रहने से प्रिय अप्रिय हो जाता है। (१.१३.३७)

–सुंदर वर्ण वाले, आकर्षक ,देखने में सुंदर, परुष वाणी बोलने वाले न तो इस लोक में प्रिय होते हैं, न परलोक में। जरा देखो इस काली, दुर्वर्ण, तिल के दागों वाली कोयल को, जो अपनी स्निग्ध वाणी के कारण बहुत से प्राणियों को प्रिय लगती है! (१.३.५५-५६)

पुरुष-स्त्री

– पुरुष की हितचिंतक स्त्री दुर्लभ होती है, और (ऐसे ही) स्त्री का हितचिंतक भर्तार भी। (१.१६.३३०)

–सब मामलों में पुरुष ही पंडित नहीं होता, किन्हीं-किन्हीं मामलों में स्त्री भी खूब चतुर होती है। (१.८.२२)

बीज-फल

– जो जैसा बीज बोता है, वह वैसा फल ले जाता है। (१.२.१४४)

भोजन

–(भोजन की) मात्रा को न जानने वाले डूब जाते हैं, इसकी मात्रा को जानने वाले नहीं। (१.३.१५)

– पक्षी के लिए मनुष्यों के भोजन सुभोज्य नहीं होते। (१.५.१४०)

–भोजन के लिए दूसरे के घर में प्रवेश करने पर कम खाये-पिये, और रूप पर मन मत टिकाये। (१.१३.५२)

–वह लंबी डोर वाले, बंधनयुक्त, मछली पकड़ने वाले कांटे को ही निगलता है जो अतिथि के बैठे हुए अकेला भोजन करता है। (२.२१.२०२)

–ब्राह्मण ने जिन कामभोगों का तिरस्कार किया, उन्हें तू उपभोग करने जा रहा है। हे राजन्! वमन किये हुए को खाने वाले की प्रशंसा नहीं होती है। (१.१५.३५४)

मन

–यदि मन दूषित न हो, तो प्रतीत्य-कर्मस्पर्श नहीं करता। जो पाप करने के लिए उत्सुक नहीं है, ऐसे भद्रजन को पाप नहीं लगता। (१.४.७६)

मनुष्य-जीवन

–इस लोक में मनुष्यों का जीवन सौ वर्ष ही है। यह सीमा प्राप्त होने से पहले ही आदमी टूटे हुए सरकंडे के समान सूखने लगता है। (१.१५.३५)

–छलनी में पानी के समान यह समय सिमटता जा रहा है। ऐसे छोटे-से जीवन में प्रमाद करने का समय नहीं है। (२.१७.२२३)

–ज्यों ज्यों कपड़ा बुना जाता है, त्यों त्यों बुनने के लिए शेष रहा तागा थोड़ा होता जाता है – वैसा ही मनुष्यों का जीवन है! (२.२२.१०६)

मितभाषिता

–जो बुद्धिमान समय पर विचारपूर्वक थोड़ा ही बोलता है, वह सभी शत्रुओं को वैसे ही अधिकार में कर लेता है जैसे गरुड़ सर्प को। (१.४.१२४)

मित्रता

– बार-बार के संवास से मित्रता सुदृढ़ होती है। (२.१८.५३)

– सत्पुरुष के साथ की गयी मैत्री सुख देने वाली होती है। (१.२.२२)

–मित्र वही होता है जिसे दूसरे फोड़ नहीं सकते, और जिसकी गोद में सिर रख कर ऐसे सोया जा सकता है जैसे पुत्र (माता की गोद में सोता है)। (१.५.६४)

मित्रद्रोह

–जिस वृक्ष की छाया में बैठे अथवा सोये, उसकी डाल को न तोड़ें; क्योंकि मित्र-द्रोह करने से पाप होता है। (१.१०.१५१)

–जो इस लोक में मित्रों के साथ द्रोह करता है, वह कुष्ठी-कोढ़ी होता है। काया छूटने पर मित्रद्रोही नरक में उत्पन्न होता है। (१.१६.२२३)

–जिस प्रकार मजबूत जड़ वाले वट-वृक्ष का पवन कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता, उसी प्रकार शत्रु भी उसे परास्त नहीं कर सकते, जो कि मित्रों के साथ द्रोह नहीं करता है। (२.२२.२१)

मूर्ख

– मूर्ख की संगत मत करो। मूर्खों से समागम दुःखपूर्ण होता है। (१.९.८६)

– जटा और मृगछाला से मूर्खों की सुरक्षा नहीं होती। (१.१५.२२)

–आर्य धर्म को न जानने वाले मूर्ख दिन-रात यही बातचीत करते रहते हैं – मेरा हिरण्य, मेरा सोना! (१.२.१३७)

–जो शुद्ध, निर्मल, दोषरहित मनुष्य को दोषी ठहराता है, उस दोषी ठहराने वाले मूर्ख को ही पाप लगता है। जैसे पवन के विरुद्ध फेंकी गयी सूक्ष्म धूलि इसे फेंकने वाले पर ही जा गिरती है। (१.५.९४)

मूर्ख-पंडित

–जहां मूर्ख बोलते हैं, वहां मुक्त भी बँध जाते है; और जहां पंडित बोलते हैं, वहां बँधे हुए भी मुक्त हो जाते हैं। (१.१.१२०)

मृत्यु

–मृत्यु द्वारा पकड़ा हुआ होने पर क्या हो सकती है रति, और क्या धन की कामना? (१.१५.३७)

– मैं आज ही प्रव्रजित होऊंगा, कौन जाने कल मरना हो जाय! (२.१९.४५)

–पुरुष हों या नारियां, ये युवावस्था में भी मरते हैं। अतः कौन जीवन पर यह भरोसा करके चले कि मैं (अभी) युवा हूं। (२.२२.१०१)

–जिस प्रकार आदमी यदि नौका को पानी में चलाता है, तो वह उसे किनारे पर ले ही जाती है, उसी प्रकार जरा और व्याधि मर्त्य को निरंतर मृत्यु के नियंत्रण में ले जाती रहती हैं। (१.१५.३४४)

मृत्युपरायणता

– जवान और बूढ़े, मूर्ख और पंडित, संपन्न और विपन्न – ये सभी मृत्युपरायण हैं, जैसे पके हुए फलों का हर समय गिरने का भय बना रहता है, वैसे ही उत्पन्न हुए मर्त्यों को हर समय मरने की आशंका बनी रहती है। (१.११.८७-८८)

याचक

–याचक अप्रिय होता है, और ऐसे ही याचना की पूर्ति न करने वाला भी। (१.७.५५)

रुदन

– संत पुरुष रोने को बेकार कहते हैं। (१.५.११८)

वाणी

– जब बोले मनोज्ञ वाणी ही बोले, अ-मनोज्ञ कभी नहीं। (१.१.२८)

विशुद्धि

–हीन ब्रह्मचर्य से क्षत्रिय के रूप में उत्पन्न होता है, मध्यम ब्रह्मचर्य से देवता के रूप में, और उत्तम ब्रह्मचर्य से विशुद्ध हो जाता है। (१.८.७५)

– उत्तम धर्म का आचरण कर सारे वर्ण विशुद्ध हो जाते हैं। (२.२२.४३९)

विश्वास

–स्वाद वाला हो या बिना स्वाद वाला, थोड़ा हो या बहुत, विश्वस्त होकर जहां खाया जाता है (वही अच्छा लगता है)। रसों में विश्वास ही प्रधान है। (१.४.१८४)

वैधव्य

–पानी न होने पर नदी नग्न होती है, राजा न होने पर राष्ट्र नग्न होता है, दस भाई होने पर भी विधवा स्त्री नग्न होती है। संसार में वैधव्य कड़वा होता है। (२.२२.१८४०)

वैर

–जो न किसी को मारता है, न मरवाता है; न जीतता है, न जितवाता है; जो सब प्राणियों के प्रति मैत्री का अंश लिए रहता है, उसका किसी से वैर नहीं होता है। (१.१०.१४४)

–'मुझे गाली दी', 'मुझे मारा','मुझे हराया', 'मुझे लूट लिया' –जो ऐसी बातें सोचते रहते हैं, उनका वैर कभी शांत नहीं होता। (१.५.११३)

–वैर, वैर से कभी शांत नहीं होता, अवैर से ही शांत होता है –यह सदा से चला आ रहा धर्म है। (१.५.११५)

शील

– लोक में शील से बढ़ कर कुछ नहीं है। (१.१.८६)

–शील ही वह नया विलेपन है, जिसकी सुगंध कभी समाप्त नहीं होती है। (१.६.९२)

श्रद्धा

–श्रद्धाविहीन से मेल न करे, वह सूखे कुएं के समान होता है जिसे खोदने पर कीचड़ की गंध वाला पानी ही निकलता है। (२.१८.१३०)

श्रमण

–जो कोप करने योग्य बात पर कोप नहीं करता, ऐसा सत्पुरुष कभी क्रुद्ध नहीं होता, क्रुद्ध हो तो कोप को प्रकट नहीं करता। संसार में ऐसे मनुष्य को 'श्रमण' कहते हैं। (१.१०.२४)

श्रेष्ठता

–अश्व की श्रेष्ठता उसके वेग से, बैल की उसकी भार खींचने की क्षमता से, गाय की उसके दोहन से और पंडित की उसके भाषित से जानी जाती है। (१.१६.१६८)

संकल्प

–जो पुरुष कल और परसों करता रहता है, उसका पतन हो जाता है। यह जानकर कि भविष्य-काल होता ही नहीं, कौन धीर पुरुष किसी (कुशल) संकल्प को टालेगा? (१.१५.३४८)

संगत

–बुरे आदमी की संगत से बढ़कर कुछ बुरा नहीं होता; भले आदमी की संगत से बढ़कर कुछ अच्छा नहीं होता। (१.२.२३-२४)

–यदि कोई व्यक्ति दुर्गंधयुक्त मछली को कुशाग्र से छूता है, तो वह कुश भी दुर्गंध देने लगते हैं। मूर्खों की संगत भी ऐसी ही होती है। (१.१५.१८३)

–यदि कोई व्यक्ति तगर को पत्ते में लपेटता है, तो वह पत्ता भी सुगंधित हो जाता है। धीर जनों की संगत भी ऐसी ही होती है। (१.१५.१८४)

सज्जन

–यदि सज्जन कभी विवाद करते हैं, तो शीघ्र ही वापिस समझौता कर लेते हैं। मूर्ख (मिट्टी के) बर्तनों की तरह टूट जाते हैं और शांति को प्राप्त नहीं होते। (१.४.४६)

संत

–वह सभा नहीं होती जिसमें संत न हों। वे संत नहीं होते जो धर्म की बात न बोलें। संत वही होते हैं जो राग, द्वेष और मोह को छोड़ कर धर्म की बात बोलते हैं। (२.२१.४९२)

समझ

–जो किसी बात के पैदा होने पर उसे शीघ्र ही नहीं समझ लेता है, वह शत्रु के वशीभूत हो पीछे पछताता है। जो किसी बात के पैदा होने पर उसे शीघ्र ही समझ लेता है, वह शत्रु के चंगुल से बच निकलता है ओर पीछे पछताता नहीं है। (१.४.१६७-१६८)

समाधि

–इस लोक तथा परलोक में समाधि से बढ़ कर सुख नहीं है। एकाग्रचित्त न तो अपने को दुःख देता है, न दूसरे को। (१.४.१२०)

सार

– घुन को सार अच्छा नहीं लगता। (१.८.१२)

–चूहों को तुष का भी पता रहता है, और तंडुल का भी। वे स्थूल तुष को छोड़ कर तंडुल खाया करते हैं। (१.४.१४९)

सुख -

– संस्कार अनित्य हैं; उत्पन्न होना और नष्ट हो जाना उनका स्वभाव है । वे उत्पन्न हो कर निरुद्ध हो जाते हैं। उनका (नितांत) उपशमन ही सुख है। (१.१.९५)

महानिद्देस

निद्देस के दो भाग हैं –'महानिद्देस' तथा 'चूळनिद्देस'। 'महानिद्देस' सुत्तनिपात के 'अट्ठक वर्ग' की व्याख्या है और 'चूळनिद्देस' इसके 'पारायन वर्ग' (वत्थुगाथा को छोड़कर) और'खग्गविसाणसुत्त' की।

प्रस्तुत ग्रंथ में अंतर्निविष्ट 'अट्ठक वर्ग' का सारांश सुत्तनिपात के साथ दिया जा चुका है। यहां कुछ अधिक विस्तार के साथ इसे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है।

अट्ठक वर्ग

'अट्ठक वर्ग' में सोलह सुत्त हैं, जिनका आशय संक्षेप में निम्न प्रकार से है

(१) कामसुत्त

इसमें कामभोगों के दुष्परिणामों के बारे में बतलाया गया है। भोग-विलास की इच्छा करनेवाले की इच्छा पूरी होने पर वह प्रसन्न हो उठता है, परंतु ऐसा न होने पर वह तीर-चुभे के समान पीड़ित होता है। अतः व्यक्ति को सदा स्मृतिमान रह, कामभोगों का परित्याग कर देना चाहिए ।

(२) गुहट्ठक सुत्त

अल्प जल वाले क्षीण जलाशय की मछलियों के समान तृष्णा के वशीभूत हो तड़फड़ानेवालों को देखो। इसे देख, भवों में आसक्ति न करता हुआ तृष्णा-रहित हो विचरण करे।

(३) दुट्ठट्ठक सुत्त

आसक्तियुक्त व्यक्ति ही धर्म को लेकर विवादों में पड़ता है, आसक्तिरहित इनमें क्योंकर और कैसे पड़ेगा? उसे न तो आत्म-दृष्टि होती है और न उच्छेद-दृष्टि। उसने यहीं सारी दृष्टियों को दूर कर देता है।

(४) सुद्धट्ठक सुत्त

जिसने वेदनाओं के स्तर पर धर्म को सम्यक प्रकार से समझ लिया हो, वह महाप्रज्ञ ऊंची-नीची दृष्टियों के फेर में नहीं पड़ता। वह खुला विचरण करता है। उसे यहां सीखने के लिए कुछ शेष नहीं रहता।

(५) परमट्ठक सुत्त

संसार में (मिथ्या-) ज्ञान अथवा शील-व्रत के आधार पर किसी दृष्टि को स्थापित न करे। न तो अपने आप को दूसरों के समान समझे, और न उनसे हीन अथवा श्रेष्ठ। किसी भी दृष्टि में अनासक्त ब्राह्मण को इस संसार में कौन विचलित कर सकता है?

(६) जरासुत्त

इसमें जीवन की अल्पता एवं असारता पर प्रकाश डालते हुए यह सीख दी गयी है कि एकाग्रचित्त हो विचरण करने वाला, एकांतचिंतन में लीन रहने वाला, अपने आप को पुनर्जन्म में न पड़ने दे।

(७) तिस्समेत्तेय्यसुत्त

इसमें मैथुन-धर्म के दुष्परिणामों का बखान करते हुए यह सीख दी गयी है कि मुनि इन्हें जानकर अकेला ही दृढ़तापूर्वक विचरण करे और मैथुन का सेवन न करे।

(८) पसूरसुत्त

इसमें यह उपदेश निहित है कि दृष्टि को लेकर किसी विवाद में नहीं पड़ना चाहिए। फिर भी यदि कोई विवाद के लिए आगे आये और कहे कि 'यही सच है', तो उसे कहना चाहिए कि यहां बहस करने के लिए कोई नहीं है।

(९) मागण्डियसुत्त

इसमें भी भगवान ने दृष्टिवाद का खंडन कर निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग बतलाया है।

(१०) पुराभेदसुत्त

इसके अंतर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि जिसका लोक में अपना कुछ नहीं है, जो अभाव के बारे में कुछ नहीं सोचता और सिद्धांतों के फेर में नहीं पड़ता, वह 'शांत' कहलाता है।

(११) कलहविवादसुत्त

इसमें कलह, विवाद, विलाप आदि के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। ये सभी प्रिय से उत्पन्न होते हैं। प्रिय का निदान है कामना। कामना का आधार है सुखद अथवा दुःखद वेदनाएं। इन वेदनाओं का आधार है स्पर्श और स्पर्श का नाम-रूप।

(१२) चूळवियूहसुत्त

इसमें प्रज्ञप्त किया गया है कि 'सत्य तो एक ही है, दूसरा है ही नहीं, जिसके बारे में लोक परस्पर विवाद करें। परंतु नाना मत वाले श्रमण अपनी ओर से नाना सत्यों की घोषणा करते रहते हैं, जिससे ये सब एक ही बात नहीं बोलते हैं।

(१३) महावियूहसुत्त

इसमें भगवान का संदेश है कि सभी शील-व्रत तथा सदोष-निर्दोष कर्मों को छोड़कर, और शुद्धि-अशुद्धि की कामना न करते हुए, विरक्त होकर, शांति के लिए विचरण करना चाहिए। ब्राह्मण विवेक का मार्ग अपना कर तृष्णा और दृष्टि के फेर में नहीं पड़ता।

(१४) तुवट्टक सुत्त

इसमें भिक्षुओं की चर्या पर प्रकाश डालने के अनंतर कहा गया है कि भिक्षु सदा स्मृतिमान रह, अप्रमत्त हो, भगवान की शिक्षा का स-सम्मान अभ्यास करे।

(१५) अत्तदण्डसुत्त

इसमें भगवान बुद्ध के संविग्न होकर घर छोड़ने का कारण प्रज्ञप्त किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें मुमुक्षुओं के लिए अनेक उपदेश भी हैं, यथा –सारी

कामनाओं को सर्वथा बींध कर अपनी मुक्ति के लिए अभ्यास करे; निर्वाण चाहने वाला व्यक्ति निद्रा, तंद्रा और आलस्य को जीते, प्रमाद में न रहे, अभिमान में न पड़े; पुराने का अभिनंदन न करे, नये की चाह न करे, खोये की सोच न करे और तृष्णा में लिप्त न हो; इत्यादि।

(१६) सारिपुत्तसुत्त

इसके अंतर्गत सारिपुत्त ने बंधन में जकड़े हुए बहुत से प्राणियों की ओर से भगवान से अनेक प्रश्न किये जिनका उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर समाधान किया और अंततः भिक्षुओं को, स्मृतिमान रह, अंधकार का नाश करने के लिए आह्वान किया।

निद्देस

परंपरागत मान्यता के अनुसार प्रस्तुत ग्रंथ में उपलब्ध आगमांश की व्याख्या धर्मसेनापति सारिपुत्त की देन है। यह व्याख्या मौलिक, विशद तथा सारगर्भित है। इसके अध्ययन से इसमें विवेचित सामग्री का आशय एकदम स्पष्ट हो जाता है।

इस व्याख्या का लाभ उठाने के लिए इसकी शैली से परिचित होना आवश्यक है। अतः इसकी कुछ विशेषताओं का उल्लेख नीचे किया जा रहा है ।

आगम से उद्धरण

व्याख्या करते समय अनेक स्थलों पर भगवान बुद्ध के वचन उद्धृत किये गये हैं। यथाभेरवेसु च न सम्पवेधेय्याति। ... वुत्तं हेतं भगवता – "एतं नून तं भयं भेरवं न जहे आगच्छती"ति। (महानि० १५८)

वैकल्पिक अर्थ एवं व्याख्याएं

अनेक स्थलों पर वैकल्पिक अर्थ एवं व्याख्याएं भी की गयी हैं। यथा

पञ्ञं पुरक्खत्वाति। (महानि० २०४)

इसका अर्थ कर चुकने के पश्चात 'अथ वा' का प्रयोग कर इसी संदर्भ को अन्य दो प्रकार से भी समझाया गया है।

पर्यायवाची शब्द

शब्दों का अर्थ बतलाने के लिए उनके पर्यायवाची शब्दों की सूची दी गयी है। यथा

विचरन्तीति विचरन्ति विहरन्ति इरियन्ति वत्तन्ति पालेन्ति यपेन्ति यापेन्ति।

(महानि० ९९)

व्याख्या की पुनरावृत्ति एवं 'पेय्याल'

यही शब्द जहां कहीं पुनः प्रस्तुत हुए हैं, वहां-वहां भी इनके पर्यायवाची शब्दों की सूची अथवा व्याख्या को, प्रायः कर, ज्यों-का-त्यों दोहराया गया है। कहीं-कहीं इसे 'पेय्याल' के रूप में भी दर्शाया गया है। यथा

कामा ति। उद्दानतो द्वे कामा – वत्थुकामा च किलेसकामा च। कतमे वत्थुकामा? ... इमे वुच्चन्ति वत्थुकामा। कतमे किलेसकामा?... इमे वुच्चन्ति किलेसकामा।

(महानि० १)

इसी ग्रंथ में "कामा" शब्द की यही व्याख्या 'पेय्याल' के रूप में अन्य चार स्थानों पर भी पायी जाती है।

प्रकार भेद

विवेचन किये जाने वाले शब्द के प्रकार भी आवश्यकतानुसार दर्शाये गये हैं, और यत्र-तत्र उनकी आगे व्याख्या भी की गयी है। यथा

पुत्ता ति। चत्तारो पुत्ता – अत्तजो पुत्तो, खेत्तजो पुत्तो, दिन्नको पुत्तो, अन्तेवासिको पुत्तो।

(महानि० ९३)

सल्लं ति सत्त सल्लानि – रागसल्लं, दोससल्लं, मोहसल्लं, मानसल्लं, दिट्ठिसल्लं, सोकसल्लं, कथंकथासल्लं।

कतमं रागसल्लं? ... कतमं दोससल्लं? ... कतमं मोहसल्लं? ... कतमं मानसल्लं? ... कतमं दिट्ठिसल्लं? ... कतमं सोकसल्लं?... कतमं कथंकथासल्लं? ...

(महानि० १७४)

निदान सहित व्याख्या

पदों की व्याख्या करते समय आवश्यकतानुसार उनका निदान भी प्रस्तुत किया गया है। यथा

ब्राह्मणो ति सत्तन्नं धम्मानं बाहितत्ता ब्राह्मणो ... (महानि॰ २५)

भिक्खू ति सत्तन्नं धम्मानं भिन्नत्ता भिक्खु ... (महानि॰ १८)

बुद्धो ति केनट्ठेन बुद्धो? ... (महानि॰ १९२)

मुस्सते वापि सासन्ति द्वीहि कारणेहि सासनं मुस्सति ... (महानि॰ ५०)

सोदाहरण व्याख्या

अनेक स्थलों पर प्रासंगिक उदाहरण प्रस्तुत कर विषय को समझाया गया है। यथा

मोसवज्जे न निय्येथाति। (महानि॰ १७८)

यहां 'मोसवज्ज' (मुसावाद) का आशय समझाने के लिए जान-बूझ कर झूठ बोलने के अनेक उदाहरण दिये गये हैं, जैसे अनजाने को जाना हुआ और जाने हुए को अनजाना, और इसी प्रकार न देखे हुए को देखा हुआ और देखे हुए को अनदेखा, बतलाना।

पद-निष्पत्ति

यत्र-तत्र पदों की निष्पत्ति पर भी प्रकाश डाला गया है। यथा

नागो'ति। आगुं न करोतीति –नागो, न गच्छती ति नागो, नागच्छती ति – नागो। (महानि॰ ८०)

साधना-पक्ष

साधना-पक्ष को भी यत्र-तत्र उजागर किया गया है। यथा

सीतं अथुण्हं अधिवासयेय्याति। (महानि॰ २०१)

इसकी व्याख्या करते हुए बतलाया गया है कि 'शीत' और 'उष्ण' दो कारणों

से होते हैं –(१) भीतरी धातु के प्रकोपसे, और (२) बाहरी मौसम के कारण। भीतरी धातु के प्रकोपसे शरीर पर होने वाली सर्दी-गर्मी कोस्पष्ट रूप से अनुभव कर पाना विपश्यी साधकों के लिए सहल होता है।

निद्दं न बहुलीकरेय्याति। (महानि० १६१)

इसकी व्याख्या करते हुए बतलाया गया है कि रात और दिन के छह भाग करकेइनमें से पांच भागों में तो प्रतिपत्ति काकामकरेऔर एक भाग में विश्राम करे।

प्रकृत संदर्भों की आवृत्ति

'अट्ठक वर्ग' के विभिन्न प्रकरण-प्राप्त संदर्भों की व्याख्या पूरी हो चुकने पर इन्हीं संदर्भों को पुनः दोहराया गया है। यथा

कामं कामयमानस्स ... लद्धा मच्चो यदिच्छति। (महानि० १)

इसकी व्याख्या पूरी हो जाने पर अंत में इसी गाथा कोपुनः दोहराया गया है:

तेनाह भगवा – "कामं कामयमानस्स ... लद्धा मच्चो यदिच्छती"ति (महानि० १)

चूळनिद्देस

निद्देस के दो भाग हैं – '**महानिद्देस' तथा 'चूळनिद्देस'**। 'महानिद्देस' में सुत्तनिपात के 'अट्ठक वर्ग' की व्याख्या है और 'चुळनिद्देस' में इसके 'पारायन वर्ग' (वत्थुगाथा को छोड़ कर) और'खग्गविसाणसुत्त' की।

प्रस्तुत ग्रंथ में अंतर्निविष्ट **'पारायन वर्ग'** और **'खग्गविसाणसुत्त'** का सारांश सुत्तनिपात के साथ दिया जा चुका है। यहां कुछ अधिक विस्तार के साथ इसे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है।

पारायन वर्ग

इस वर्ग के अंतर्गत बावरी ब्राह्मण द्वारा भगवान बुद्ध के पास प्रेषित सोलह माणवों द्वारा एक-एक करके उनसे पूछे गये गंभीर प्रश्नों का संग्रह है । इनमें से कुछेक प्रश्नोत्तर इस प्रकार से हैं

(१) अजित माणव

प्रश्न – संसार किससे ढका हुआ है? किससे प्रकाशित नहीं होता? इसका क्या आलेप है? उसके लिये क्या महाभय है?

उत्तर – संसार अविद्या से ढका हुआ है। मात्सर्य और प्रमाद के कारण वह प्रकाशित नहीं होता। तृष्णा को मैं इसका आलेप कहता हूं। दुःख इसके लिए महाभय है।

(२) तिस्समेत्तेय्य माणव

प्रश्न – इस संसार में कौन संतुष्ट है? किसमें चंचलताएं नहीं हैं ?

उत्तर – जो कामभोगों को त्याग ब्रह्मचारी है, वितृष्ण है, सदा स्मृतिमान है, और जो भिक्षु ज्ञान (अर्थात सम्यक दर्शन) द्वारा मुक्त है, उसमें चंचलताएं नहीं होती हैं।

(३) पुण्णक माणव

प्रश्न –इस संसार में जिन ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों ने देवताओं के लिए बहुत यज्ञ किये थे, क्या वे जन्म और बुढ़ापे से पार चले गये?

उत्तर –लाभ के कारण देवताओं के गुण गाने, प्रशंसा करने, चर्चा करने, यज्ञ करने और कामभोग की इच्छा करने से यज्ञों में आसक्त और भवतृष्णा में रत ये लोग जन्म और बुढ़ापे से पार नहीं जा पाये।

(४) **मेत्तगू माणव**

प्रश्न – संसार में जो अनेक प्रकार के दुःख हैं, उनकी उत्पत्ति कहां से है?

उत्तर –ये (तृष्णा, दृष्टि, क्लेश, कर्मादि दस प्रकार की) उपधियों से उत्पन्न होते हैं।

(५) **धोतक माणव**

प्रश्न –मुझे ऐसा उपदेश दें जिससे मैं निर्वाण धर्म को जान लूं और आकाश के समान निर्मल हो, यहीं शांत वा अनासक्त होकर विचरण करने लगूं।

उत्तर –ऊपर, नीचे, तिरछे या बीच में जो कुछ भी जानते हो, उसे संसार में आसक्ति जानकर पुनर्जन्म के लिए तृष्णा मत करो।

(६) **उपसीव माणव**

प्रश्न –ऐसा कौनसा आलंबन है जिसके सहारे मैं अकेला इस बहुत बड़ी बाढ़ को पार कर सकूं ?

उत्तर – आकिंचन्यायतन को देखते हुए, स्मृतिमान हो, 'कुछ नहीं है' को आलंबन बनाकर बाढ़ को पार कर जाओ।

(७) **नन्द माणव**

प्रश्न – किसी को ज्ञान के कारण मुनि कहते हैं, अथवा आजीविका के कारण?

उत्तर –कुशलजन न तो दृष्टि, न श्रुति और न ही ज्ञान के कारण किसी को मुनि कहते हैं। मैं शोक ,पाप और तृष्णा से रहित हो विचरण करने वाले को मुनि कहता हूं।

(८) **हेमक माणव**

प्रश्न –तृष्णा का प्रहाण करने वाला कौन-सा धर्म है जिसे जानकर, स्मृतिमान हो, विचरण करते हुए संसार में तृष्णा को पार किया जा सकता है?

उत्तर –यहां दृष्ट, श्रुत, ज्ञात प्रिय रूपों के प्रति दृढ़ आसक्ति को दूर करना

अच्युत निर्वाण पद कहलाता है। जो स्मृतिमान यह जानकर इसी जीवन में शांत हो गये, सदा के लिए उपशांत वे तृष्णा को पार कर गये होते हैं।

(९) तोदेय्य माणव

प्रश्न – जिसमें कामनाएं निवास नहीं करतीं, जिसमें तृष्णा नहीं होती, और जो संदेह से परे चला जाता है, उसका विमोक्ष कैसा होता है?

उत्तर – जिसमें कामनाएं निवास नहीं करतीं, जिसमें तृष्णा नहीं होती, और जो संदेह से परे चला जाता है, उसका कोई अन्य विमोक्ष नहीं होता है।

(१०) कप्प माणव

प्रश्न – जलाशय रूपी संसार के बीच रहने वालों के लिए बुढ़ापा और मृत्यु रूपी महाभयानक बाढ़ के आने पर (सुरक्षा के लिए) द्वीप बतलाएं।

उत्तर – अकिंचन और अनासक्ति ही वह द्वीप है, कोई दूसरा नहीं।

(११) जतुकण्णि माणव

प्रश्न – ऐसा धर्म बतलाएं जिससे मैं यहां जन्म और बुढ़ापे को दूर करना जान लूं।

उत्तर – नैष्क्रम्य को कल्याणकारी जानकर कामभोगों में आसक्ति को त्याग दो। तुम्हें अपनाने अथवा त्यागने के लिए कुछ न रहे। पहले के संस्कारों को नष्ट कर दो और पीछे कुछ न अपनाओ। यदि तुम बीच में कुछ ग्रहण नहीं करोगे, तो उपशांत होकर विचरण करोगे।

(१२) भद्रावुध माणव

प्रश्न – आपके वचन सुनने की आकांक्षा से जनपदों से नाना प्रकार के लोग एकत्र हुए हैं, उन्हें वैसा ही धर्म समझायें जैसा कि आपको विदित है।

उत्तर – ऊपर, नीचे, तिरछे और बीच में सारी आसक्ति-रूपी तृष्णा को त्याग दो। संसार में लोग जो-जो अपनाते हैं, उसी के कारण मार मनुष्य के पीछे पड़ता है। अतः स्मृतिमान भिक्षु सारे संसार में किसी के प्रति आसक्त न हो।

(१३) उदय माणव

प्रश्न – लोक का बंधन क्या है? उसकी विचरण-भूमि क्या है? किसके त्याग को निर्वाण कहा जाता है?

उत्तर – लोक का बंधन राग है। वितर्क इसकी विचरण भूमि है। तृष्णा का प्रहाण निर्वाण कहलाता है।

(१४) पोसाल माणव

प्रश्न – रूप-संज्ञाओं से रहित, सभी अरूप-संज्ञाओं से मुक्त, 'भीतर और बाहर कुछ नहीं है' – ऐसा देखने वाले व्यक्ति को आगे कैसे ज्ञान उत्पन्न करना चाहिए?

उत्तर – आकिंचन्यायतन को उत्पन्न करने वाले कर्म-संस्कार को जानकर, राग को बंधन समझ कर – ऐसा जान यहां विपश्यना करता है, उस पूर्णता को प्राप्त ब्राह्मण का वह ज्ञान यथार्थ होता है।

(१५) मोघराज माणव

प्रश्न – संसार को किस रूप में देखने वाले को मृत्युराज नहीं देख पाता है?

उत्तर – सदा स्मृतिमान हो शून्य के रूप को देखो। इस प्रकार आत्मदृष्टि का नाश कर मृत्यु को पार कर जाओगे। इस रूप में संसार को देखने वाले को मृत्युराज नहीं देख पाता है।

(१६) पिङ्गिय माणव

प्रश्न – मैं जीर्ण हूं, दुर्बल हूं और मेरी आभा जाती रही है; मेरे नेत्र शुद्ध नहीं हैं और कानोंसे ठीक सुनायी नहीं देता है। मुझे ऐसे धर्म का उपदेश करें जिसे जान कर मैं यहां जन्म और बुढ़ापे का अंत कर लूं और बीच में मोहमूढ़ होकर न मरूं।

उत्तर – रूपों के कारण परेशान, रूपों के कारण नाश को प्राप्त होने वाली प्रमत्त जनता को देखकर अप्रमत्त बनो और रूप का अंत करो, जिससे कि आवागमन बंद हो।

खग्गविसाणसुत्त

इस सुत्त में इकतालीस गाथाएं हैं। इनमें गैंडे के सींग के समान एकाकी विचरण करने का उपदेश है, जैसे

* सभी प्राणियों के प्रति दंड त्याग कर, उनमें से किसी एक को भी न सताये। पुत्र की भी कामना न करे, सहायक की तो बात ही क्या? गैंडे के सींग के समान एकाकी विचरण करे।

* संसर्ग में रहने वाले को स्नेह उत्पन्न होता है, स्नेह के कारण यह दुःख उत्पन्न होता है। स्नेह से उत्पन्न होने वाले दुष्परिणाम को देखते हुए गैंडे के सींग के समान एकाकी विचरण करे।

* यह विपत्ति है, फोड़ा है, उपद्रव है, रोग है, कांटा है और भय है – कामभोगों में इस दुष्परिणाम को देख कर गैंडे के सींग के समान एकाकी विचरण करे।

* समय-समय पर मैत्री, करुणा, विमुक्ति और मुदिता का अभ्यास करते हुए, सब लोगों के अनुकूल रहते हुए गैंडे के सींग के समान एकाकी विचरण करे।

* राग, द्वेष तथा मोह को छोड़कर, बंधनों को तोड़कर, मृत्यु से भी न डरते हुए गैंडे के सींग के समान एकाकी विचरण करे।

निद्देस

परंपरागत मान्यता के अनुसार प्रस्तुत ग्रंथ में उपलब्ध आगमांशों की व्याख्या धर्मसेनापति सारिपुत्त की देन है। यह व्याख्या मौलिक, विशद तथा सारगर्भित है। इसके अध्ययन से इसमें विवेचित सामग्री का आशय एकदम स्पष्ट हो जाता है।

इस व्याख्या का लाभ उठाने के लिए इसकी शैली से परिचित होना आवश्यक है। अतः इसकी कुछ विशेषताओं का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

आगम से उद्धरण

व्याख्या करते समय अनेक स्थलों पर भगवान बुद्ध के वचन उद्धृत किये गये हैं। यथा

आदीनवं कामगुणेसु दिस्वाति वुत्तं हेतं भगवता –

"को च, भिक्खवे, कामानं आदीनवो? ..." (चूळनि० खग्गविसाणसुत्तनिद्देस १३६)

आयुष्मान महामोग्गल्लान के वचन भी उद्धृत किये गये हैं। यथा-

अनवस्सुतो परिडय्हमानोति वुत्तं हेतं आयस्मता महामोग्गल्लानेन – "अवस्सुतपरियायञ्च वो, आवुसो, देसेस्सामि अनवस्सुतपरियायञ्च। ..."

(चूळनि० खग्गविसाणसुत्तनिद्देस १४९)

वैकल्पिक अर्थ एवं व्याख्याएं

अनेक स्थलों पर वैकल्पिक अर्थ एवं व्याख्याएं भी की गयी हैं। यथा

कुसलो सब्बधम्मानन्ति। (चूळनि॰ अजितमाणवपुच्छानिद्देस ८)

इसका अर्थ कर चुकने के पश्चात 'अथ वा' का प्रयोग कर इसी संदर्भ को अन्य तीन प्रकार से भी समझाया गया है।

पर्यायवाची शब्द

शब्दों का अर्थ बतलाने के लिए उनके पर्यायवाची शब्दों की सूची दी गयी है। यथा

वदामीति वदामि आचिक्खामि देसेमि पञ्ञपेमि।

पट्ठपेमि विवरामि विभजामि उत्तानीकरोमि पकासेमीति। (चूळनि॰ अजितमाणवपुच्छानिद्देस ६)

व्याख्या की पुनरावृत्ति एवं 'पेय्याल'

यही शब्द जहां कहीं पुनः आये हैं, वहां-वहां भी इनके पर्यायवाची शब्दों की सूची अथवा व्याख्या को, प्रायःकर, ज्यों-का-त्यों दोहराया गया है। कहीं-कहीं इसे 'पेय्याल' के रूप में भी दर्शाया गया है। यथा

कामाति उद्दानतो द्वे कामा – वत्थुकामा च किलेसकामा च। कतमे वत्थुकामा?

... इमे वुच्चन्ति वत्थुकामा। कतमे किलेसकामा?... इमे वुच्चन्ति किलेसकामा।
(चूळनि॰ अजितमाणवपुच्छानिद्देस ८)

इसी ग्रंथ में "कामा" शब्द की यही व्याख्या 'पेय्याल' के रूप में अन्य बारह स्थानों पर भी पायी जाती है।

प्रकार भेद

विवेचन किये जाने वाले शब्द के प्रकार भी आवश्यकतानुसार दर्शाये गये हैं, और यत्र-तत्र उनकी आगे व्याख्या भी की गयी है। यथा

आसवाति चत्तारो आसवा – कामासवो, भवासवो, दिट्ठासवो, अविज्जासवो।
(चूळनि॰ जतुकण्णिमाणवपुच्छानिद्देस ६९)

चक्खुमाति भगवा पञ्चहि चक्खूहि चक्खुमा – मंसचक्खुनापि चक्खुमा, दिब्बचक्खुनापि चक्खुमा, पञ्ञाचक्खुनापि चक्खुमा, बुद्धचक्खुनापि चक्खुमा, समन्तचक्खुनापि चक्खुमा। क थं भगवा मंसचक्खुनापि चक्खुमा? ...

क थं भगवा दिब्बेन चक्खुनापि चक्खुमा? ...

क थं भगवा पञ्ञाचक्खुनापि चक्खुमा? ...

क थं भगवा बुद्धचक्खुनापि चक्खुमा? ...

क थं भगवा समन्तचक्खुनापि चक्खुमा? ... (चूळनि॰ मोघराजमाणवपुच्छानिद्देस ८५)

निदान सहित व्याख्या

पदों की व्याख्या क रते समय आवश्यक तानुसार उनक ा निदान भी प्रस्तुत कि या गया है। यथा

ब्राह्मणोति सत्तन्नं धम्मानं बाहितत्ता ब्राह्मणो। ... (चूळनि॰ मेत्तगूमाणवपुच्छानिद्देस २८)

भिक्खूति सत्तन्नं धम्मानं भिन्नत्ता भिक्खु। ... (चूळनि॰ अजितमाणवपुच्छानिद्देस ८)

वेदगू भावितत्तोति क थं च भगवा वेदगू? ... क थं भगवा भावितत्तो? ... (चूळनि॰ मेत्तगूमाणवपुच्छानिद्देस १८)

ये च सङ्खातधम्मासेति। सङ्खातधम्मा वुच्चन्ति अरहन्तो खीणासवा ।

किं क ारणा सङ्खातधम्मा वुच्चन्ति अरहन्तो खीणासवा? ... (चूळनि॰ अजितमाणवपुच्छानिद्देस ७)

सोदाहरण व्याख्या

अनेक स्थलों पर प्रासंगिक उदाहरण प्रस्तुत क र विषय को समझाया गया है। यथा

खग्गविसाणक प्पोति। (चूळनि॰ खग्गविसाणसुत्तनिद्देस १२१)

यहां 'विसाणक प्पो' क ा आशय लोणक प्पो, तित्तक प्पो, मधुरक प्पो, अग्गिक प्पो, हिमक प्पो, समुद्दक प्पो तथा सत्थुक प्पो के उदाहरण देक र स्पष्ट कि या गया है।

पद-निष्पत्ति

यत्र-तत्र पदों की निष्पत्ति पर भी प्रकाश डाला गया है। यथा

नागोति नागो; भगवा आगुं न करोतीति नागो,

न गच्छतीति नागो, न आगच्छतीति नागो। (चूळनि० पारायनानुगीतिगाथानिद्देस १०२)

साधना-पक्ष

साधना-पक्ष को भी यत्र-तत्र उजागर किया गया है। यथा

सुञ्ञतो लोकं अवेक्खस्सूति। (चूळनि० मोघराजमाणवपुच्छानिद्देस ८८)

इसकी व्याख्या करते हुए बड़े विस्तार से समझाया गया है कि कोई व्यक्ति किन दो कारणों से लोक को शून्य के रूप में देखता है, और यह देखना कैसे, और कितने प्रकार से होता है। भगवान की वाणी उद्धृत करते हुए यह भी बतलाया गया है कि लोक की शून्यता से अभिप्राय है इसमें आत्मभाव का न रहना। विपश्यी साधकों द्वारा इस विवेचन को अनुभूति के स्तर पर अधिक सुगमता से समझा जा सकता है।

प्रकृत संदर्भों की आवृत्ति

'पारायन वर्ग' तथा 'खग्गविसाणसुत्त' के विभिन्न प्रकरण-प्राप्त संदर्भों की व्याख्या पूरी हो चुकने पर इन्हीं संदर्भों को पुनः दोहराया गया है। यथा

केनस्सु निवुतो लोको ... किंसु तस्स महब्भयं। (चूळनि० अजितमाणवपुच्छानिद्देस १)

इसकी व्याख्या पूरी हो जाने पर अंत में इसी गाथा को पुनः दोहराया गया है

तेनाह सो ब्राह्मणो –

"केनस्सु निवुतो लोको ... किंसु तस्स महब्भय"न्ति॥ (चूळनि० अजितमाणवपुच्छानिद्देस १)

अतिरिक्त विषयवस्तु

'पारायन वर्ग' के अंतर्गत बावरी ब्राह्मण द्वारा भगवान बुद्ध के पास भिजवाये गये सोलह माणवों द्वारा उनसे पूछे गये प्रश्नों और भगवान द्वारा दिये गये उनके

उत्तरों की संपूर्ण व्याख्या हो चुकने के उपरांत यह भी दर्शाया गया है कि भगवान से समाधान प्राप्त कर कौन-कौनसे प्रश्नकर्ता अरहंत हो गये और किसे यह विरज, विमल, धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ – "जो कुछ समुदय स्वभाव वाला है, वह निरोध स्वभाव वाला भी है।"

पटिसम्भिदामग्ग

इस ग्रंथ का विषय 'पटिसम्भिदा' (प्रतिसंवित्-संबंधी ज्ञान) का विवेचन करना है। यह विषय अत्यंत गहन है और संभवतः, इसी कारण इस ग्रंथ के अंतिम 'उद्दान' में इसे 'सागर के समान गंभीर', 'तारकाकीर्णनभ के समान (विस्तीर्ण)' और प्राकृतिक झील के समान विशाल बतलाया गया है।

यह ग्रंथ तीन वर्गों में बँटा हुआ है – 'महावग्ग', 'युगनद्धवग्ग' तथा 'पञ्ञावग्ग'। इनमें से पहले का आकार बहुत बड़ा है, दूसरे का मँझला और तीसरे का छोटा। प्रत्येक वर्ग के अंतर्गत दस-दस 'कथाएं' हैं, जिनमें बुद्धधर्म के किसी-न-किसी तत्त्व का विशद विवेचन किया गया है।

बुद्ध-वाणी को सांगोपांग समझने के लिए यह रचना एक नितांत उपयोगी संदर्भ ग्रंथ के समान है, क्योंकि इसमें उपलब्ध सामग्री किसी भी जिज्ञासु की बुद्धधर्म-विषयक जिज्ञासा शांत करने के लिए पर्याप्त है।

इस ग्रंथ की प्रत्येक 'कथा' का, वर्गवार, संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

१. महावग्ग

(१) ञाणकथा

इस कथा का आकार बहुत बड़ा है, जो समूचे ग्रंथ के चतुर्थांश से भी कुछ अधिक ही है। इसमें तिहत्तर प्रकार के ज्ञान उल्लेख प्राप्त हैं, जिनमें से पहले सड़सठ श्रावकों के लिए सामान्य और अंतिम छः असामान्य हैं।

श्रावकों के लिए सामान्य ज्ञान हैं – श्रुतमय, शीलमय, समाधिभावनामय, धर्मस्थिति, संमर्षण, उदयव्ययानुपश्यना, विपश्यना, आदीनव, संस्कार-उपेक्षा, गोत्रभू, मार्ग, फल, विमुक्ति, प्रत्यवेक्षण, वस्तुनानात्व, गोचरनानात्व, चर्यानानात्व, भूमिनानात्व, धर्मनानात्व, इत्यादि।

उनके लिए असामान्य ज्ञान हैं – परचित्त ज्ञान, प्राणियों का आशयानुशयज्ञान, दो प्रकार की अभिव्यक्ति वाला चमत्कारिक ज्ञान,

महाकरुणासमापत्तिज्ञान, सर्वज्ञता ज्ञान तथा अनावरण ज्ञान। ये ज्ञान, वस्तुतः, तथागत की संपत्ति हैं।

(२) दिट्ठिकथा

इसमें बतलाया गया है कि दृष्टि क्या होती है, इसके कितने कारण हैं, कितने पूर्वाग्रह, कितने प्रकार, कितने अभिनिवेश, और क्या होता है दृष्टि-कारणों का समुच्छेद।

(३) आनापानस्सतिकथा

इसमें उल्लेख किया गया है कि आनापानस्मृति को भावित करने के समाधि से संबंधित दो सौ प्रकार के ज्ञान उत्पन्न होते हैं – आठ बाधक, आठ उपकारक, अठारह उपक्लेशिक, तेरह वोदानिक, बत्तीस स्मृतिकारक, इत्यादि।

तदनंतर इनमें से प्रत्येक का विस्तृत विवेचन किया गया है। विवेचन के अंतर्गत 'आनापानस्मृति' की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। – "जिसकी आनापानस्मृति बुद्ध की देशना के अनुसार अभ्यास में लायी जाकर परिपूर्ण और सुभावित हो गयी हो, वह बादलों से मुक्त हुए चंद्रमा के समान इस लोक में भासमान होता है।"

(४) इंद्रियकथा

इसमें अनेक सुत्तों के आधार पर बतलाया गया है कि ये पांच इंद्रियां हैं – श्रद्धा-इंद्रिय, वीर्य-इंद्रिय, स्मृति-इंद्रिय, समाधि-इंद्रिय और प्रज्ञा-इंद्रिय।

इन इंद्रियों से संबंधित अनेक विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है, यथा – इनकी विशुद्धि, भावना, प्रतिप्रश्रब्धि; इनका समुदय, अस्तगमन, आस्वाद, आदीनव, निःसरण; और इन्हें कहां तथा कितने प्रकार से देखा जाना चाहिए; इत्यादि।

(५) विमोक्खकथा

इसमें तीन प्रकार के विमोक्ष गिनाये गये हैं – शून्य, अनिमित्त और अप्रणिहित। फिर इन्हीं तीन विमोक्षों को साथ मिलाते हुए अड़सठ प्रकार के विमोक्ष भी बतलाये गये हैं। तदनंतर इन सभी का आशय भी स्पष्ट किया गया है।

इसके अतिरिक्त विमोक्ष से संबंधित अनेक विषयों की चर्चा भी की गयी है, यथा – विमोक्ष-मुख, विमोक्ष-प्रत्यनीक, विमोक्षानुलोम, विमोक्ष-विवर्त, विमोक्ष-भावना, इत्यादि।

(६) गतिकथा

इसमें यह दर्शाया गया है कि ज्ञान से संयुक्त प्राणिजात का कौन-कौनसे हेतुओं के प्रत्यय से पुनर्जन्म होता है, और इसी प्रकार ज्ञान से वियुक्त प्राणिजात का भी।

(७) कम्मकथा

इसमें भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल के अच्छे अथवा बुरे कर्मों और उनके विपाकों की चर्चा की गयी है।

(८) विपल्लासकथा

इसमें प्रज्ञप्त किया गया है कि अनित्य में नित्य, दुःख में सुख, अनात्म में आत्मा और असुंदर में सुंदर की भावना करने से संज्ञा, चित्त और दृष्टि का विपर्यास हो जाता है। इसके विपरीत अनित्य में अनित्य, दुःख में दुःख, अनात्म में अनात्मा और असुंदर में असुंदर की भावना करने से संज्ञा, चित्त और दृष्टि का विपर्यास नहीं होता है। पहले प्रकार की भावना से लोग जन्म-मरण के चक्कर में पड़ जाते हैं, और दूसरे प्रकार की भावना से सारे दुःखों से छूट जाते हैं।

(९) मग्गकथा

इसमें 'मार्ग' के संबंध में विविध प्रकार की चर्चा की गयी है, यथा –'मार्ग' से क्या आशय लिया जाना चाहिए, अष्टांगिक मार्ग के आठ अंग किस-किस मार्ग को प्रशस्त करते हैं, और ऐसे ही सात बोध्यंग, पांच बल तथा पांच इंद्रियां भी। इसके अतिरिक्त स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी तथा अरहंत के मार्ग-क्षणों में अष्टांगिक मार्ग के आठों अंगों की भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है।

(१०) मण्डपेय्यकथा

इस कथा में 'मण्ड', 'कसट' और 'पेय्य' –इन तीन शब्दों की चर्चा हुई है।

इनके शब्दार्थ, क्रमशः,हैं –'मांड, 'कचरा' तथा 'पेय'। 'मण्डपेय्य' से तात्पर्य है '(कचरे को छोड़ कर) मांड को पीना।

प्रासंगिक कथा में 'मण्डपेय्य' का उक्त आशय स्पष्ट करने वाले उदाहरण हैं, यथा – 'सम्यकदृष्टि है दर्शनरूपी मांड'; मिथ्यादृष्टि है कचरा'; अतः '(मिथ्यादृष्टिरूपी कचरे को छोड़ कर) सम्यकदृष्टि से दर्शनरूपी मांड को पीना' है –'मण्डपेय्य'।

इस कथा में बतलाया गया है कि 'मांड' तीन प्रकार के होते हैं, और पांच इंद्रियों, पांच बलों, सात बोध्यंगों, इत्यादि के कैसे-कैसे मण्डपेय्य' हैं।

२. युगनद्धवग्ग

(१) युगनद्धकथा

इसमें अरहत्व-प्राप्ति के इन चार मार्गों पर प्रकाश डाला गया है –१. शमथ को पूर्वगामी कर विपश्यना की भावना, २. विपश्यना को पूर्वगामी कर शमथ की भावना, ३. शमथ तथा विपश्यना की साथ साथ भावना, और ४. चित्त की एकाग्रता से मार्ग मिल जाने पर उसकी भावना।

इन चार मार्गों का आशय स्पष्ट करने के लिए इनमें से प्रत्येक का, पृथक-पृथक, विस्तृत विवेचन भी किया गया है।

'शमथ' और 'विपश्यना' की भावना का स्वरूप 'युगनद्ध' (जुए में जुते) समान लगता है। इसी को दृष्टि में रख कर इस कथा को 'युगनद्धकथा' की संज्ञा दिया जाना प्रतीत होता है।

(२) सच्चकथा

इसमें इन चार सत्यों को प्रज्ञप्त किया गया है –'यह दुःख है', 'यह दुःख का समुदय है', 'यह दुःख का निरोध है', और 'यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है।'

इनके प्रतिवेधन, लक्षण, वर्गीकरण, इत्यादि पर भी प्रकाश डाला गया है ।

(३) बोज्झङ्गकथा

इसमें इन सात बोध्यंगों को प्रज्ञप्त किया गया है –स्मृति, धर्मविचय, वीर्य,

प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा। फिर यह भी समझाया गया है कि इन्हें बोध्यंग कहने का क्या आशय है।

तत्पश्चात आयुष्मान सारिपुत्त के उस सुत्त को उद्धृत किया गया है जिसमें उन्होंने यह बतलाया है कि मैं जब चाहूं तब जिस-किसी बोध्यंग के साथ विहार कर सकता हूं, और उनकी स्थिति और च्यवनता को प्रज्ञापूर्वक जानता रहता हूं। तदनंतर इसी विषय का आगे विवेचन किया गया है।

(४) **मेत्ताकथा**

इसमें मैत्री-चेतोविमुक्ति को भावित करने से इसके इन ग्यारह शुभ परिणामों की आशा रखने का उल्लेख किया गया है – १. सुख की नींद सोना, २. सुखपूर्वक नींद खुलना, ३. दुःस्वप्न न देखना, ४. मनुष्यों का प्रिय होना, ५. अ-मनुष्यों का प्रिय होना, ६. देवताओं द्वारा रक्षित होना, ७. अग्नि, विष अथवा शस्त्र का प्रभाव न होना, ८. चित्त का शीघ्र ही समाहित हो जाना, ९. मुख का वर्ण खिल उठना, १०. होश में रह प्राण छोड़ना, और ११. आगे प्रतिवेधन न करने पर ब्रह्मलोक तक तो पहुँच ही जाना।

तत्पश्चात सारे सत्त्वों और सारे प्राणियों के प्रति मैत्री-चेतोविमुक्ति का विषय प्रतिपादित किया गया है। ऐसा करते समय यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार मैत्री-चेतोविमुक्ति पांच इंद्रियों, पांच बलों, सात बोध्यंगों और आठ मार्गांगों से परिभावित होती है।

(५) **विरागकथा**

इसमें यह बतलाया गया है कि विराग मार्ग है, और विमुक्ति फल। तदनंतर इसका निदान भी प्रस्तुत किया गया है।

(६) **पटिसम्भिदाकथा**

इसमें 'धम्मपटिसम्भिदा' (धर्म-संबंधी ज्ञान), 'अत्थपटिसम्भिदा' (अर्थ-संबंधी ज्ञान), 'निरुक्तिपटिसम्भिदा (निर्वचन-संबंधी ज्ञान) और 'पटिभानपटिसम्भिदा' (ज्ञानदर्शन-संबंधी ज्ञान) के बारे में विवेचन किया गया है, और यह भी स्पष्ट किया गया है कि इन्हें यह संज्ञा तभी दी जा सकती है जबकि इनका प्रज्ञापूर्वक स्पर्श, साक्षात्कार कर लिया गया हो; अन्यथा नहीं।

(७) धम्मचक्क कथा

इसमें 'चक्खु' (चक्षु), 'ञाण' (ज्ञान), 'पञ्ञा' (प्रज्ञा), 'विज्जा' (विद्या) और 'आलोक' – इन पांच धर्मों के आशय का विविध प्रकार से प्रख्यापन करने के उपरांत 'धम्मचक्क' (धर्मचक्र) का विविध प्रकार से आशय समझाया गया है, जैसे

'धर्म को प्रवर्तित करता है और चक्र को भी'; 'चक्र को प्रवर्तित करता है और धर्म को भी'; 'धर्म से प्रवर्तित करता है'; 'धर्माचरण के लिए प्रवर्तित करता है'; 'धर्म में स्थित होकर प्रवर्तित करता है'; 'धर्म में प्रतिष्ठित होकर प्रवर्तित करता है'; 'धर्म में प्रतिष्ठापित करता हुआ प्रवर्तित करता है; इत्यादि ।

(८) लोकुत्तरकथा

इसमें निम्नांकित को 'लोकुत्तरा धम्मा' (लोकोत्तर धर्म) बतलाया गया है

चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रियां, पांच बल, सात बोध्यंग, आर्य अष्टांगिक मार्ग, चार आर्यमार्ग, चार श्रामण्यफल और निर्वाण। तदनंतर 'लोकुत्तरा' शब्द का आशय विविध प्रकार से स्पष्ट किया गया है, जैसे

'लोक को तैर जाते हैं'; 'लोक का अतिक्रमण कर जाते हैं'; 'लोक के अतिरिक्त हैं'; 'लोक से अलिप्त हैं'; 'लोक से विसंयुक्त हैं'; 'लोक की अगति हैं'; 'लोक के अविषय हैं; इत्यादि।

(९) बलकथा

इसमें पांच प्रकार के बल गिनाये गये हैं – श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा। फिर इन पांच को साथ मिलाते हुए अड़सठ प्रकार के बल भी बतलाये गये हैं।

तदनंतर इनमें से प्रत्येक का पृथक-पृथक विवेचन किया गया है।

(१०) सुञ्ञकथा

इसमें पच्चीस प्रकार की शून्यताओं के बारे में बतलाया गया है, यथा – शून्य-शून्यता, संस्कार-शून्यता, विपरिणाम-शून्यता, अग्र-शून्यता, इत्यादि।

३. पञ्ञावग्ग

(१) महापञ्ञाकथा

इसमें बतलाया गया है कि किस-किस प्रकार की अनुपश्यना को भावित करने से किस-किस प्रकार की प्रज्ञा परिपूर्ण होती है, जैसे – अनित्यानुपश्यना से जवनप्रज्ञा, दु:खानुपश्यना से निर्वेधिकप्रज्ञा, अनात्मानुपश्यना से महाप्रज्ञा, इत्यादि। इसी क्रम में नौ प्रकार की प्रज्ञा को भावित करने से 'हासप्रज्ञा' परिपूर्ण हो जाती है, जिसे 'पटिभानसम्भिदा' भी कहते हैं। इसके अर्थ, धर्म, निर्वचन तथा प्रतिभान का विश्लेषण करने से, क्रमशः, प्राप्त होती हैं – 'अत्थपटिसम्भिदा', 'धम्मपटिसम्भिदा', 'निरुत्तिपटिसम्भिदा' तथा 'पटिभानपटिसम्भिदा'। ये चारों प्रज्ञा द्वारा स्पृष्ट, साक्षात्कृत होती हैं।

तत्पश्चात यह इंगित किया गया है कि कौन से चार धर्म भावित किये जाने पर स्रोतापत्ति, सकृदागामित्व, अनागामिता और अरहत्व के फल का साक्षात्कार करवा देते हैं। ये धर्म हैं – सत्पुरुष की संगति, सद्धर्म का श्रवण, सही चिंतन और स्थूल धर्म से लेकर सूक्ष्म धर्म का प्रतिपादन। इससे सोलह प्रकार की प्रज्ञा को प्राप्त हुआ पुद्गल 'पटिसम्भिदा-प्राप्त' जाना जाता है । प्रज्ञा में अग्र होने के कारण बुद्ध ऐसे सभी पुद्गलों में अग्रगण्य होते हैं।

(२) इद्धिकथा

इसमें बतलाया गया है कि 'इद्धि' (ऋद्धि) का आशय 'इज्झन' (पनपने, फलने-फूलने)से लेना होता है। ऋद्धियों के दस प्रकार होते हैं, और इनकी होती हैं चार भूमियां, चार पाद, आठ पद और सोलह मूल।

तदुपरांत प्रत्येक ऋद्धि का पृथक-पृथक विवेचन किया गया है।

(३) अभिसमयकथा

इसमें मार्ग की भावना, फल के साक्षात्कार, चित्तमलों के प्रहाण और धर्माभिसमय के बारे में चर्चा की गयी है।

(४) विवेककथा

इसमें आर्य अष्टांगिक मार्ग के आठ अंगों में से प्रत्येक के पांच विवेकों, पांच

विरागों, , पांच निरोधों, पांच अवसर्गों और बारह आश्रयों के बारे में चर्चा की गयी है, और तदुपरांत श्रद्धा-इंद्रिय, वीर्य-इंद्रिय, स्मृति-इंद्रिय, समाधि-इंद्रिय और प्रज्ञा-इंद्रिय के विवेकों, विरागों, निरोधों और आश्रयों के बारे में भी।

(५) चरियाकथा

इसमें सर्वप्रथम इन आठ चर्याओं का विवेचन किया गया है – ईर्यापथ, आयतन, स्मृति, समाधि, ज्ञान, मार्ग, प्राप्ति और लोकार्थ।तदनंतर आठ-आठ के दो समूहों में सोलह अन्य चर्याओं का भी उल्लेख किया गया है।

(६) पाटिहारियकथा

इसमें इन तीन प्रातिहार्यों का विवेचन किया गया है – ऋद्धि, आदेशना और अनुशासनी।

(७) समसीसकथा

इसमें मृत्यु के साथ ही निर्वाण प्राप्त करने से संबंधित विषय प्रतिपादित किया गया है।

(८) सतिपट्ठानकथा

इसमें यह दर्शाया गया है कि कोई भिक्षु किस प्रकार काया में कायानुपश्यना, वेदनाओं में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्मों में धर्मानुपश्यना करता हुआ विहार करता है।

(९) विपस्सनाकथा

इसमें प्रज्ञप्त किया गया है कि सभी संस्कारों को अनित्य एवं दुःख, सभी धर्मों को अनात्म, और निर्वाण को भी सुख के रूप में अनुभव करने पर भिक्षु सहिष्णु चित्तवृत्ति वाला होकर, सम्यक मार्ग में प्रवेश कर, स्रोतापत्ति, सकृदागामित्व, अनागामिता अथवा अरहत्व का साक्षात्कार कर लेता है।

तदनंतर यह दर्शाया गया है कि सहिष्णु चित्तवृत्ति का प्रतिलाभ चालीस प्रकार से होता है, और सम्यक मार्ग में प्रवेश भी चालीस प्रकार से होता है। फिर इनमें से प्रत्येक का विवरण भी दिया गया है।

(१०) मातिक ाक था

इसके अंतर्गत कु छ शब्दों की व्याख्या की गयी है, यथा – 'निच्छात', 'मोक्ख-विमोक्ख', 'विज्जाविमुत्ति', 'अधिसील', 'अधिचित्त', 'अधिपञ्ञा', इत्यादि।

नेत्तिप्पकरण

इस ग्रंथ को 'नेत्तिप्पकरण' (अथवा 'नेत्ति') के नाम से इसलिए जाना जाता है कि यह सद्धर्म को भली प्रकार समझने के लिए 'नेतृत्व' (मार्गदर्शन) प्रदान करता है।

इसके दो मुख्य भाग हैं:

(१) सङ्गहवार, तथा (२) विभागवार।

'विभागवार' के उप-विभाग हैं

(क) उद्देसवार, (ख) निद्देसवार, तथा (ग) पटिनिद्देसवार।

'पटिनिद्देसवार' के अंतर्गत उपलब्ध विषय-सामग्री का आगे वर्गीकरण है

१. हार-विभङ्ग

२. हार-सम्पात

३. नय-समुट्ठान, तथा

४. सासन-पट्ठान।

इन भागों, विभागों तथा वर्गीकरणों का आशय निम्न प्रकार से है

सङ्गहवार : समूचे ग्रंथ की समष्टिगत विषय-सूची

विभागवार : समष्टिगत विषय-सूची का विभिन्न वर्गों में विभाजन ।

उद्देसवार : विषय-वस्तु का संक्षिप्त परिचय

(विषय-वस्तु – सोलह हार : देसना, विचय, युत्ति, पदट्ठान, लक्खण, चतुब्यूह, आवट्ट, विभत्ति, परिवत्तन, वेवचन, पञ्ञत्ति, ओतरण, सोधन, अधिट्ठान, परिक्खार, समारोपन।)

पांच नय : नन्दियावट्ट, तिपुक्खल, सीहविक्कीळित, दिसालोचन, अङ्कुस।

अठारह मूल पद : अकुसल पद – तण्हा, अविज्जा, लोभ, दोस, मोह, सुभसञ्ञा, सुखसञ्ञा, निच्चसञ्ञा, अत्तसञ्ञा। कुसलपद –समथ, विपस्सना,

अलोभ, अदोस, अमोह, असुभसञ्ञा, दुक्खसञ्ञा, अनिच्चसञ्ञा, अनत्तसञ्ञा।)

* **निद्देसवार** : हारों तथा नयों की परिभाषाएं और इन्हें उपयोग में लेने की विधि

* **पटिनिद्देसवार** : हारों, नयों तथा मूल पदों का विस्तृत विवेचन

* **हार-विभङ्ग** : हारों का पृथक-पृथक विवेचन

* **हार-सम्पात** : हारों का समष्टिगत विवेचन

* **नय-समुट्ठान** : नयों का विवेचन

* **सासन-पट्ठान** : बुद्ध-शासन एवं मूल पदों का विवेचन।

उक्त विवरण से स्पष्ट होगा कि प्रस्तुत ग्रंथ में मुख्यतया 'हार', 'नय' तथा 'मूल पद' ही विवेचित हैं। अतः इनका संक्षिप्त परिचय दिया जाना समीचीन है।

• (१) **हार** (गुंथे हुए विषयों की मालाएं) – ये सोलह प्रकार के हैं।

१. देसना : बुद्ध की छः प्रकार की देशना –कामभोग प्राप्त हो जाने पर इनके आस्वाद (अस्साद) को दर्शाने वाली; कामभोग प्रहीण होने पर इनके दुष्परिणाम (आदीनव) को दर्शाने वाली; संसार से निकासी (निःसरण) का मार्ग दर्शाने वाली; श्रामण्य के लाभ (फल) को दर्शाने वाली; निर्वाण-प्राप्ति का साधन (उपाय) दर्शाने वाली; और नैतिक उद्देश्य (आणत्ति) दर्शाने वाली ।

२. विचय : सुत्त का गहरा विश्लेषण (पविचय)

३. युत्ति : युक्तियों (युत्ति) द्वारा धर्म का विश्लेषण कर उसके अर्थ को समझना

४. पदट्ठान : उपदिष्ट धर्म का नजदीकी कारण, पदस्थान (पदट्ठान)

५. लक्खण : किसी एक धर्म के कहे जाने पर वैसे ही लक्षण (लक्खण) वाले सभी धर्मों को समझ लेना

६. चतुब्यूह : व्यंजन से सुत्त की निरुक्ति, अभिप्राय, निदान तथा पूर्वापरसंधि रूपी चतुर्व्यूह (चतुब्यूह) की गवेषणा

७. आवट्ट : एक पदस्थान मिलने पर दूसरे पदस्थानों की भी खोज, और इनका प्रतिपक्ष में आवर्तन (आवट्ट)

८. विभत्ति : विविध प्रकार का विभाजन (विभत्ति)

९. परिवत्तन : कुशल धर्मों का अकुशल धर्मों में, और अकुशल धर्मों का कुशल धर्मों में, परिवर्तन (परिवत्तन)

१०. वेवचन : शब्दों के अन्य अनेक पर्यायवाची शब्दों (वेवचन) से सुत्त का अर्थ जानना

११. पञ्ञत्ति : एक ही धर्म को अनेक प्रकार से प्रस्तुत करने का ढंग

१२. ओतरण : प्रतीत्यसमुत्पाद, इंद्रिय, स्कंध, धातु तथा आयतनों के रूप में बुद्ध के मंतव्यों का विश्लेषण

१३. सोधन : गाथाओं में पूछे गये प्रश्नों के अशुद्ध होने पर उत्तर देते समय उनका शोधन (सोधन)

१४. अधिट्ठान : जिन धर्मों को पहले तो एकल, और फिर विभिन्नता से निर्दिष्ट किया गया हो, उन्हें वैसे ही धारण करना (अधिष्ठान)

१५. परिक्खार : जो धर्म जिस धर्म को उत्पन्न करे, उसे उसका परिष्कार (परिक्खार) जानना

१६. समारोपन : जिस किसी मूल से उत्पन्न धर्म, और जिन्हें बुद्ध ने एक अर्थ वाला बतलाया हो, उनका समारोपण (समारोपन)

- (२) **नय** (तात्पर्य का निर्णय करने की युक्तियां) –ये पांच प्रकार के हैं।

१. नन्दियावट्ट : सत्यों से युक्त कर, तृष्णा और अविद्या को शमथ और विपश्यना से ले जाने वाला नय

२. तिपुक्खल : अकुशल तथा कुशल धर्मों को मूलसहित यथार्थ, सत्य एवं असत्य के अभाव पर लाने वाला नय

३. सीहविक्कीळित : विपर्यासों से अधर्म, और इंद्रियों से सद्धर्म की ओर ले जाने वाला नय

४. दिसालोचन : व्याख्याओं में जहां-तहां विवेचन किये गये कुशल एवं अकुशल धर्मों का परीक्षण करने संबंधी नय

५. अङ्कुस : दिसालोचन के फलस्वरूप प्रकट होने वाले सारे कुशल एवं अकुशल धर्मों को समेटने वाला नय

- (३) **मूल पद** – इनकी कुल गणना अठारह है। इनके नामों का उल्लेख 'उद्देसवार' के अंतर्गत किया जा चुका है, जिनका आशय निम्न प्रकार से लिया जाना चाहिए

अकुशल मूल : १. तृष्णा, २. अविद्या, ३. लोभ, ४. द्वेष, ५. मोह, ६. शुभसंज्ञा, ७. सुखसंज्ञा, ८. नित्यसंज्ञा, तथा ९. आत्मसंज्ञा।

कुशल मूल : १. शमथ, २. विपश्यना, ३. अलोभ, ४. अद्वेष, ५. अमोह, ६. अशुभसंज्ञा, ७. दु:खसंज्ञा, ८. अनित्यसंज्ञा, तथा ९. अनात्मसंज्ञा।

- **'सासन-पट्ठान'** के अंतर्गत बुद्ध-वचनों को निम्नांकित सोलह मुख्य भागों में बांटा गया है

१. सङ्किलेसभागिय – चित्त-मलों का विवेचन करने वाले

२. वासनाभागिय – नैतिकता का विवेचन करने वाले

३. निब्बेधभागिय – प्रज्ञा द्वारा सत्य-बंधन का विवेचन करने वाले

४. असेखभागिय – अरहंतों की अवस्था का विवेचन करने वाले

५. संङ्किलेसभागिय एवं वासनाभागिय – १ वा २ के अनुरूप

६. सङ्किलेसभागिय एवं निब्बेधभागिय – १ वा ३ के अनुरूप

७. सङ्किलेसभागिय एवं असेखभागिय – १ वा ४ के अनुरूप

८. सङ्किलेसभागिय, निब्बेधभागिय एवं असेखभागिय – १, ३ वा ४ के अनुरूप

९. सङ्किलेसभागिय, वासनाभागिय एवं निब्बेधभागिय – १, २ वा ३ के अनुरूप

१०. वासनाभागिय एवं निब्बेधभागिय – २ वा ३ के अनुरूप

११. तण्हासङ्किलेसभागिय –तृष्णा-पक्ष से चित्त-मलों का विवेचन करने वाले

१२. दिट्ठिसङ्किलेसभागिय –दृष्टि-पक्ष से चित्त-मलों का विवेचन करने वाले

१३. दुच्चरितसङ्किलेसभागिय –दुराचार पर आधारित चित्त-मलों का विवेचन करने वाले

१४. तण्हावोदानभागिय – तृष्णा की विशुद्धि का विवेचन करने वाले

१५. दिट्ठिवोदानभागिय – (मिथ्या-) दृष्टि की विशुद्धि का विवेचन करने वाले

१६. दुच्चरितवोदानभागिय –दुराचरण की विशुद्धि का विवेचन करने वाले

[इनके अतिरिक्त निम्नांकित पदों का विवेचन भी किया गया है –लोकिय, लोकुत्तर तथा लोकिय एवं लोकुत्तर; सत्ताधिट्ठान, धम्माधिट्ठान तथा सत्ताधिट्ठान एवं धम्माधिट्ठान; ञाण, ञेय्य तथा ञाण एवं ञेय्य; दस्सन, भावना तथा दस्सन एवं भावना; सकवचन, परवचन तथा सकवचन एवं परवचन; कुसल, अकुसल तथा कुसल एवं अकुसल; अनुञ्ञात, पटिक्खित तथा अनुञ्ञात एवं पटिक्खित; इत्यादि।]

प्रायोगिक पक्ष

पूर्व में प्रस्तुत की गयी विषय-वस्तु के कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं, जिससे 'नेत्ति' का प्रायोगिक पक्ष भी यत्किंचित उजागर हो सके।

हार

देसनाहारविभङ्ग : बुद्ध की छः प्रकार की देशना

(१) अस्साद (आस्वाद) : "यदि भोग-विलास करने वाले की इच्छा पूरी हो जाती है, तो वह व्यक्ति अवश्य ही अपनी इच्छा पूरी हो जाने से प्रसन्न मन वाला हो जाता है।"

(२) आदीनव (दुष्परिणाम) : "यदि इच्छा करने वाले तृष्णा के वशीभूत हुए उस व्यक्ति को भोग-विलास जाते रहते हैं, तो वह तीर-चुभे के समान व्यथित होता है।"

(३) निःसरण (निकासी) : "सर्प के सिर को पैरों से कुचलने के समान जो

भोग-विलास को त्याग देता है, वह इस संसार में जागरूक बना रह कर विषैली तृष्णा की परिधि को लांघ जाता है।"

(४) **फल (लाभ)** : "निश्चय ही धर्म धर्माचरण करने वाले की रक्षा करता है, जैसे वर्षाकाल में बड़ा छाता। अच्छी तरह अभ्यास किये हुए धर्म का यह शुभ परिणाम होता है कि धर्माचरण करने वाला दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है।)

(५) **उपाय (साधन)** : "जब कोई प्रज्ञापूर्वक यह देख लेता है कि सारे संस्कार अनित्य हैं, सारे संस्कार दुःख हैं और सारे धर्म अनात्म हैं, तब उसके दुःखों का निर्वेदन हो जाता है – यह विशुद्धि का मार्ग है।"

(६) **आणत्ति (नैतिक उद्देश्य)** : "जैसे आंख वाला व्यक्ति पराक्रम करते समय विषमता को दूर रखता है, वैसे ही जीवलोक में ज्ञानी व्यक्ति पापों को दूर रखे।"

पदट्ठानहारविभङ्ग

प्रमोद प्रीति का पदस्थान है, प्रीति प्रश्रब्धि का, प्रश्रब्धि सुख का, सुख समाधि का, समाधि यथाभूतज्ञानदर्शन का, यथाभूतज्ञानदर्शन निर्वेद का, निर्वेद वैराग्य का और वैराग्य विमुक्ति का।

परिवत्तनहारविभङ्ग

सारे संस्कारों में अशुभानुपश्यी हो विहार करने वाले भिक्षु की ही शुभसंज्ञा का प्रहाण हो जाता है, दुःखानुपश्यी हो विहार करने वाले की सुखसंज्ञा का प्रहाण हो जाता है, अनित्यानुपश्यी हो विहार करने वाले की नित्यसंज्ञा का प्रहाण हो जाता है और अनात्मानुपश्यी हो विहार करने वाले की ही आत्मसंज्ञा का प्रहाण हो जाता है।

वेवचनहारविभङ्ग

'मनिंद्रिय', 'मनोधातु', 'मनायतन', 'विजानना' – ये मन के 'वेवचन' (पर्यायवाची शब्द) हैं।

पञ्ञत्तिहारविभङ्ग

वह इन्हें, यथार्थतः, प्रज्ञापूर्वक जानता है – 'यह दुःख है', 'यह दुःख का समुदय है', 'यह दुःख का निरोध है', 'यह दुःख का निरोध प्राप्त कराने वाला मार्ग है'।

यह है सत्यों की प्रतिवेध-प्रज्ञप्ति, दर्शन-भूमि की निक्षेप-प्रज्ञप्ति, मार्ग की भावना-प्रज्ञप्ति और स्रोतापत्ति-फल की साक्षात्कार-प्रज्ञप्ति।

अधिट्ठानहारविभङ्ग

'दुःख'

यह है धर्म का 'एकल' निर्देश। 'दुःख' क्या है? दुःख है जन्म, बुढ़ापा, व्याधि, मरण, अप्रियों से मिलाप, प्रियों से बिछोह, इष्ट का प्राप्त न होना; संक्षेप में पांचों उपादान-स्कंध। – यह है प्रासंगिक धर्म का 'विभिन्नता से' निर्देश।

परिक्खारहारविभङ्ग

जो धर्म जिस धर्म को उत्पन्न करे, वह होता है उसका 'परिक्खार' (परिष्कार)। 'परिक्खार' का लक्षण होता है 'उत्पादकत्व'।

उत्पादन करने वाले दो धर्म हैं – 'हेतु' तथा 'पच्चय' (प्रत्यय)। पहले का लक्षण होता है असाधारण और दूसरे का साधारण।

दृष्टांत

'अंकुर' के फूटने में 'बीज' की भूमिका है असाधारण और 'पृथ्वी तथा जल' की साधारण। अतः इस प्रकरण में 'बीज' (अर्थात, 'अंकुर का अपना स्वभाव है') है 'हेतु'। और 'पृथ्वी तथा जल' हैं 'पच्चय'।

हारसम्पात (युत्ति०, पदट्ठान०, आवट्ट०, वेवचन०)

इन चारों को निम्नांकित गाथा के आधार पर समझाया गया है

"तस्मा रक्खितचित्तस्स, सम्मासङ्कप्पगोचरो। सम्मादिट्ठिपुरेक्खारो, ञत्वान उदयब्बयं। थिनमिद्धाभिभू भिक्खु, सब्बा दुग्गतियो जहे"ति॥

युत्तिहारसम्पात

इस गाथा के अंशों को ऐसे युक्त करना चाहिए – 'इसलिए चित्त की रक्षा करने वाला ऐसा होगा, जिसकी गोचर भूमि सम्यक संकल्प होगी; जिसकी गोचरभूमि सम्यक संकल्प होगी, वह सम्यक दृष्टि वाला होगा; सम्यक दृष्टि को आगे कर विहार करने वाला उदय-व्यय का प्रतिवेधन कर लेगा; और उदय-व्यय का प्रतिवेधन करने वाला सारी दुर्गतियों को लांघ जायगा'।

पदट्ठानहारसम्पात

'तस्मा रक्खितचित्तस्स' – यह तीन सुचरितों का पदस्थान है। 'सम्मासङ्कप्पगोचरो' – यह शमथ का पदस्थान है। 'सम्मादिट्ठिपुरेक्खारो' – यह विपश्यना का पदस्थान है। 'ञत्वान उदयब्बयं' – यह दर्शनभूमि का पदस्थान है। 'थिनमिद्धाभिभू भिक्खु' – यह वीर्य का पदस्थान है। 'सब्बा दुग्गतियो जहे' – यह भावना का पदस्थान है।

आवट्टहारसम्पात

'तस्मा रक्खितचित्तस्स सम्मासङ्कप्पगोचरो' – यह शमथ है। 'सम्मादिट्ठिपुरेक्खारो' – यह विपश्यना है। 'ञत्वान उदयब्बयं' – यह दुःख का परिज्ञान है। 'थिनमिद्धाभिभू भिक्खु' – यह समुदय का प्रहाण है। 'सब्बा दुग्गतियो जहे' – यह निरोध है।

वेवचनहारसम्पात

'तस्मा रक्खितचित्तस्स' में 'चित्त' के वेवचन (पर्यायवाची शब्द) हैं 'मन', 'विञ्ञाण', 'मनिंद्रिय', 'मनायतन', 'विजानना' तथा 'विजानितत्त' ।

'सम्मासङ्कप्पगोचरो' के वेवचन हैं 'नेक्खम्मसङ्कप्प', 'अब्यापादसङ्कप्प' तथा 'अविहिंसासङ्कप्प'।

'सम्मादिट्ठिपुरेक्खारो' के वेवचन हैं 'सम्मादिट्ठि', 'पञ्ञासत्थ', 'पञ्ञाखग्ग', 'पञ्ञापज्जोत', 'पञ्ञापतोद' तथा 'पञ्ञापासाद'।

नयसमुट्ठान

'सीहविक्कीळिता' तथा 'दिसालोचन'

'सीह' (सिंह) होते हैं बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध और राग-द्वेष-मोह का विनाश किये हुए श्रावक। उनकी 'विक्कीळित' (विक्रीडित, क्रीडा) होती है भावना, साक्षात्कार तथा विनाश। 'विक्कीळित' है (श्रद्धा आदि) इंद्रियों का पनपना और बुराइयों का उखड़ना। जब कि इंद्रियों की गोचर भूमि है सद्धर्म, बुराइयों की है कामुकता। यह कहलाती है 'सीहविक्कीळित' तथा 'दिसालोचन' नयों की भूमि।

सासनपट्ठान

सङ्किलेसभागिय सुत्त

"जैसे सेंध लगाते पकड़ा गया चोर अपने ही कर्म से बांधा जाता और मारा जाता है, वैसे ही यह प्रजा यहां मृत्यु को प्राप्त हो, परलोक में अपने ही कर्म से बांधी जाती और मारी जाती है।"

वासनाभागिय सुत्त

"जो सुख चाहने वाले प्राणियों की लाठी से हिंसा नहीं करता है, वह अपना सुख चाहने पर मरणोपरांत सुख ही प्राप्त करता है।"

निब्बेधभागिय सुत्त

"जब डट कर ध्यान करने वाले ब्राह्मण के समक्ष धर्म प्रकट होते हैं, तब इसके सारे संदेह दूर हो जाते हैं, क्योंकि वह इन धर्मों को हेतु-सहित जान लेता है।"

असेखभागिय सुत्त

"यह छोटी उम्र वाला भिक्षु है। यह उत्तम पुरुष है। यह सेना-सहित मार को जीत कर अंतिम देह धारण किये हुए है।"

सङ्किलेसभागिय, वासनाभागिय तथा निब्बेधभागिय सुत्तः कर्म चार प्रकार के होते हैं – 'कण्ह कण्हविपाक', 'सुक्क सुक्कविपाक', 'कण्हसुक्क कण्हसुक्कविपाक' और 'अकण्ह-असुक्क अकण्हअसुक्कविपाक' (अर्थात, 'कृष्ण और कृष्ण परिणाम वाले', 'शुक्ल और शुक्ल परिणाम वाले', 'कृष्ण-शुक्ल और कृष्ण-शुक्ल परिणाम वाले' और 'अकृष्ण-अशुक्ल तथा अकृष्ण-अशुक्ल परिणाम वाले'।)

इनमें से जो कर्म होता है 'कण्ह कण्हविपाक' अथवा 'कण्हसुक्क कण्हसुक्कविपाक', वह होता है 'सङ्किलेस'। जो कर्म होता है 'सुक्क सुक्कविपाक', वह वासना। जो कर्म होता है 'अकण्ह-असुक्क अकण्हअसुक्कविपाक', वह होता है उत्तम श्रेष्ठ, कर्मों के क्षय का हेतु – 'निब्बेध' (निर्वेध)।

तण्हावोदानभागिय सुत्त

इसका निर्देश 'समथ' (शमथ) से किया जाना चाहिए।

दिट्ठिवोदानभागिय सुत्त

इसका निर्देश 'विपस्सना' (विपश्यना) से किया जाना चाहिए।

दुच्चरितवोदानभागिय सुत्त

इसका निर्देश 'सुचरित' (सदाचरण) से किया जाना चाहिए।

विशिष्ट पदों का विवेचन

'ञाण', 'ञेय्य' तथा 'ञाण' एवं 'ञेय्य' : 'सारे संस्कार अनित्य हैं' – यह 'ञेय्य' (ज्ञेय) है। 'जब प्रज्ञापूर्वक देखता है' –यह 'ञाण' (ज्ञान) है। 'तब दुःख का निर्वेदन हो जाता है, यह विशुद्धि का मार्ग है' –यह 'ञाण' (ज्ञान) और 'ञेय्य' (ज्ञेय) है।

'कुसल', 'अकुसल' तथा 'कुसल' एवं 'अकुसल' : तीन 'कुसलमूल' हैं : अलोभ, अदोस तथा अमोह – यह है 'कुसल' (कुशल)मूल।

तीन 'अकुसलमूल' हैं : लोभ, दोस तथा मोह – यह है 'अकुसल' (अकुशल)मूल।

"जो जैसा बीज बोता है, वह वैसा फल ले जाता है – कल्याणकारी कल्याणकारकऔर पापकारी पापपूर्ण।" इसमें 'कल्याणकारीकल्याणकारक' – यह है 'कुसल' और 'पापकारी पापपूर्ण' – यह है 'अकुसल'। इस प्रकार यह दृष्टांत है 'कुसल' तथा 'अकुसल' का।

'अनुञ्ञात', 'पटिक्खित्त' तथा 'अनुञ्ञात' एवं 'पटिक्खित्त' : "जैसे कोई भ्रमर पुष्प के वर्ण और गंध को बिना हानि पहुँचाये, रस लेकर चला जाता है, ऐसे ही मुनि ग्राम में विचरण करे।" – यह'अनुञ्ञात' (अनुज्ञात) है।

किसी ने कहा : "कोई पुत्र के समान प्यारा नहीं होता, गाय के समान धन नहीं होता, सूर्य के समान आभा नहीं होती, जलों में समुद्र सबसे बढ़कर है।"

परंतु भगवान ने इसके प्रतिवाद में कहा : "कोई अपने समान प्यारा नहीं होता, धान्य के समान धन नहीं होता, प्रज्ञा के समान आभा नहीं होती, जलों में वृष्टि सबसे बढ़कर है।" –इससे पहला कथन'पटिक्खित्त' (प्रतिक्षिप्त) हुआ।

"सब पापों का न करना,कुशलकर्मों का संचय करना और चित्त को निर्मल करते रहना –यह बुद्धों की शिक्षा है।" –इसमें 'पटिक्खित्त' है 'सब पापों का न

करना', और 'अनुञ्ञात' है 'कुशल कर्मों का संचय करना' । इस प्रकार यह दृष्टांत है 'अनुञ्ञात' एवं 'पटिक्खित्त' का।

इस ग्रंथ के अंत में यह उल्लेख किया गया है कि इसे आयुष्मान महाकच्चायन (महाकात्यायन) ने कहा, भगवान ने इसका अनुमोदन किया और मूल सङ्गीति में इसका संगायन हुआ।

पेटकोपदेस

यह ग्रंथ भी 'नेत्तिपकरण' के समान ही सद्धर्म को भली प्रकार समझने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। 'पेटकोपदेस' का अर्थ ही है 'पिटक-संबंधी उपदेश (अथवा शिक्षा)'।

'नेत्तिपकरण' तथा 'पेटकोपदेस' – इन दोनों की विषय-वस्तु एवं शैली लगभग एक-समान है। दोनों में पाये जाने वाले बहुत से उदाहरण भी एक जैसे हैं। फिर भी 'पेटकोपदेस' की यह विशेषता है कि इनमें विषय-वस्तु को मुख्यतया चार आर्य सत्यों की दृष्टि से विन्यस्त किया गया है। किसी-किसी विषय का विवेचन भी बहुत विस्तार से किया गया है, यथा 'हारसम्पातभूमि' के अंतर्गत 'झान' (ध्यान) का।

इस ग्रंथ के अंत में इसके रचयिता जंबुवनवासी स्थविर महाकच्चायन दर्शाये गये हैं।

मिलिन्दपञ्ह

‘मिलिन्दपञ्हो’ का अर्थ है ‘मिलिन्द के प्रश्न’। मिलिन्द का वास्तविक नाम था ङुत्रह्यघ्प्र्, जि मूलतः यवन देश का शासक था। बाद में यह भारतवर्ष के पश्चिमोत्तरीय भूभाग पर आधिपत्य जमा कर यहां का शासक बन गया। इसकी राजधानी सागल थी।

यह राजा बहुत से शास्त्रों में पारंगत और एक अत्यंत कुशल तार्किक था। इसने उस समय के सभी लव्धप्रतिष्ठ श्रमणों व ब्राह्मणों को वाद-विवाद में पछाड़ रखा था, और उसे ऐसा लगने लगा था – ‘अरे, तुच्छ है जंबूद्वीप! झूठ-मूठ ही इसका इतना नाम है। यहां कोई भी ऐसा श्रमण या ब्राह्मण नहीं है, जो मेरे साथ संलाप करके, मेरी शंकाओं का निवारण कर सके।

अंततः इसका शास्त्रार्थ अरहंत-अवस्था-प्राप्त स्थविर नागसेन से हुआ, जिन्होंने इसके सभी प्रश्नों का समाधान कर दिया। उन्हीं प्रश्नोत्तरों का संग्रह-ग्रंथ कहलाता है –‘मिलिन्दपञ्हो’।

इस ग्रंथ की ‘निगमन कथा’ के अनुसार यह रचना छः कांडों और बाईस वर्गों में विभाजित है, और इसमें राजा मिलिन्द द्वारा पूछे गये प्रश्नों की कुल संख्या तीन सौ चार है।

छः कांड हैं – (१) बाहिरकथा (पुब्बयोगादि), (२) मिलिन्दपञ्ह (लक्खणपञ्ह), (३) मिलिन्दपञ्ह (विमतिच्छेदनपञ्ह), (४) मेण्डकपञ्ह, (५) अनुमानपञ्ह, तथा (६) ओपम्मकथापञ्ह। इस ग्रंथ की कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

(१) बाहिरकथा (पुब्बयोगादि)

‘बाहिरकथा’ के अंतर्गत नागसेन और मिलिन्द के पूर्वजन्मों से लेकर इस जन्म में दोनों के प्रथम समागम तक की कथावस्तु प्रकाश में लायी गयी है।

(२) मिलिन्दपञ्ह (लक्खणपञ्ह)

भदंत नागसेन के पास पहुँच कर राजा मिलिन्द ने उनसे प्रश्न किया –‘भंते!

आप किस नाम से जाने जाते हैं?' भदंत ने उत्तर दिया –'महाराज! मैं नागसेन नाम से जाना जाता हूं, हालांकि यह संज्ञा व्यवहार-भर के लिए है, और यथार्थ में ऐसा कोई पुरुष नहीं है।'

यह सुनते ही राजा ने भदंत पर प्रश्नों की झड़ी लगा दी –'यदि यथार्थ में ऐसा कोई पुरुष नहीं है, तो आपको भिक्षादि कौन देता है? कौन उसका योग करता है? कौन शील की रक्षा करता है? कौन ध्यान-भावना का अभ्यास करता है? कौन निर्वाण का साक्षात्कार करता है? यदि आपको कोई मार डाले, तो यह किसी का मारना भी नहीं हुआ? ऐसे ही, न आपके कोई आचार्य हुए, न उपाध्याय, और न आपकी उपसंपदा हुई। क्या आपका रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान पृथक-पृथक, या एक-साथ, नागसेन हैं'?

इस पर 'रथ' का उदाहरण देते हुए भदंत ने सिद्ध कर दिया कि जैसे अवयवों के आधार पर ही रथ की संज्ञा होती है, वैसे ही स्कंधों के होने से ही 'सत्त्व' की संज्ञा होती है, यथार्थ में कोई सत्त्व नहीं होता।

तदनंतर राजा द्वारा बहुत से प्रश्न किये गये, जिनका उत्तर देते हुए भदंत ने अनेक प्रकार के स्पष्टीकरण दिये, जिनमें से कुछेक निम्न प्रकार से हैं

* परिनिर्वाण प्राप्त करना हमारा परम उद्देश्य है, जिससे नया जन्म न हो।

* यदि किसी के चित्त में मैल बना रहता है, तो वह जन्म ग्रहण करता है; यदि मैल नहीं बना रहता है, तो वह जन्म नहीं ग्रहण करता है।

* कुशल धर्म हैं –शील, श्रद्धा, वीर्य, स्मृति और समाधि। ये सभी धर्म, ज्ञान-सहित, एक ही प्रयोजन सिद्ध करते हैं – दु:खों का विनाश।

* एक जन्म के अंतिम विज्ञान के लय होते ही दूसरे जन्म का प्रथम विज्ञान उठ खड़ा होता है; ऐसी परिस्थिति में न तो वही जीव बना रहता है, और न कोई दूसरा ही हो जाता है।

* ज्ञान और प्रज्ञा एक ही होते हैं। ज्ञान उत्पन्न होते ही मोह (अज्ञान) दूर हो जाता है, जैसे अंधेरी कोठरी में दीपक जलाने से अंधेरा दूर हो जाता है।

* अरहंत अवस्था को प्राप्त हुआ व्यक्ति शरीर में होने वाली वेदनाओं को तो अनुभव करता है, पर चित्त में होने वाली वेदनाओं को नहीं।

* यद्यपि मृत्यु के साथ एक नाम-रूप का लय होता है और जन्म के साथ दूसरा नाम-रूप उठ खड़ा होता है, किंतु यह भी होता उसी से है। इसी कारणवश मृत्यु को प्राप्त होने वाला व्यक्ति अपने पाप-कर्मों से मुक्त नहीं हो जाता।

* अतीत काल का मूल अविद्या है। अविद्या के कारण संस्कार उत्पन्न होते हैं, संस्कारों के कारण विज्ञान, विज्ञान के कारण नाम-रूप, नाम-रूप के कारण छह इंद्रियां, छह इंद्रियों के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जन्म और जन्म हो जाने के कारण बुढ़ापा, मृत्यु, शोक ,विलाप, दु:ख, दौर्मनस्य और उपायास उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार काल के आदि का पता नहीं चलता है।

* ऐसे कोई संस्कार नहीं होते जो न होकर उत्पन्न होते हों; वही संस्कार उत्पन्न होते हैं जिनका सिलसिला पहले से चला आ रहा होता है।

* चक्षु और रूपों के होने से चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। उसके उत्पन्न होने के साथ ही स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना, एकाग्रता, जीवितिंद्रिय और मनसिकार –ये धर्म उत्पन्न होते हैं; ऐसे ही अन्य इंद्रियों और उसके विषयों को लेकर भी ये धर्म उत्पन्न होते हैं। यहां कोई जानने वाली आत्मा नहीं होती है।

* जहां चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है वहां मनोविज्ञान भी उत्पन्न होता है। जहां मनोविज्ञान होता है वहां स्पर्श भी होता है, वेदना भी, संज्ञा भी, चेतना भी, वितर्क भी, विचार भी। भले ही स्पर्श, वेदना आदि के अपने-अपने लक्षण हैं, फिर भी इन धर्मों के एक साथ मिल जाने पर उन्हें अलग-अलग बांट कर इस प्रकार नहीं दिखलाया जा सकता –"यह रहा स्पर्श, यह वेदना, यह संज्ञा, यह चेतना, यह विज्ञान, यह वितर्क और यह विचार!"

(३) मिलिन्दपञ्ह (विमतिच्छेदनपञ्ह)

इसके अंतर्गत भी राजा मिलिन्द के प्रश्नों के उत्तर में भदंत नागसेन द्वारा प्रस्तुत किये गये कुछेक समाधान नीचे दिये जा रहे हैं।

* जैसे बीजों की विविधता के कारण पेड़ भी एक-जैसे नहीं होते हैं, ऐसे ही मनुष्यों के कर्म नाना प्रकार के होने से मनुष्य भी एक-जैसे नहीं होते हैं।

* निरोध (संपूर्ण उपशमन) ही निर्वाण होता है।

* अनुपाधिशेष निर्वाण धातु से परिनिर्वाण पाये हुए भगवान को

दिखलाया नहीं जा सकता है; उनकी धर्म-काया से ही उन्हें दिखलाया जा सकता है (क्योंकि धर्म-देशना उन्हीं से प्राप्त हुई थी।)

* भगवान सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा होने पर भी उचित समय आने पर ही श्रावकों को शिक्षापद का उपदेश करते थे, असमय पर नहीं; जैसे सभी औषधों का जानकार वैद्य भी बीमार पड़ने पर ही औषध देता है, बिना बीमार पड़े नहीं।

* 'सराग' और 'वीतराग' में यही भेद होता है कि एक तृष्णा में डूबा रहता है और दूसरा नहीं।

* यहां पैदा होकर यहीं मर जाना; यहां मर कर अन्यत्र पैदा होना, और वहां पैदा होकर वहीं मर जाना; वहां मर कर कहीं और पैदा हो जाना – इसे कहते हैं 'संसार'।

* 'स्मृति' इतने प्रकार से उत्पन्न होती है – स्वयं की अभिज्ञा से; बाहर की याद से; किसी बड़ी बात के घटने से; सुखद प्रसंग याद आने से; दुःखद प्रसंग याद आने से; किन्हीं पदार्थों में समानता अथवा असमानता देखने से; दूसरे के कहने से; किसी लक्षण को देखने से; भूली-बिसरी बात को याद करने का प्रयत्न करने से; मुद्रा से; गणना से; कंठस्थ कर लेने से; भावना के बल से; पुस्तक को देखने से; धरोहर में रखी हुई वस्तु को देखने से; और किसी पूर्वानुभव के कारण।

* काटने का काम प्रज्ञा करती है; प्रज्ञा को काटने वाला दूसरा कुछ नहीं है।

(४) मेण्डक पञ्ह

इस कांड को यह नाम देने का यह कारण है कि इसमें उठाये गये प्रश्नों की तुलना 'मेण्डक' (भेड़े) के सींगों से की जा सकती है। जैसे ये सींग एक जैसे पैने होते हैं, वैसे ही ये प्रश्न भी देखने में परस्पर-विरोधी और द्विविधात्मक प्रतीत होते हैं। भदंत नागसेन ने इन प्रश्नों का बड़ी कुशलता से उत्तर देकर इनमें समन्वय स्थापित किया है।

इस प्रकार के कुछ द्विविधाजनक प्रश्न नीचे दिये गये हैं। – भगवान ने कहा: 'आनन्द! अब यह सद्धर्म पांच सौ वर्ष तक टिकेगा।' फिर अपने परिनिर्वाण के समय सुभद्द परिव्राजक को कहा: 'यदि भिक्षु सम्यक प्रकार से विहार करें, तो यह लोक भी अरहंतों से शून्य न हो।'

(राजा मिलिन्द को इनमें यह विरोधाभास लगा कि यदि तथागत के कथनानुसार सद्धर्म का पांच सौ वर्ष तक ही टिका रहना है तो उनका यह वचन सही प्रतीत नहीं होता कि यह लोक अरहंतों से शून्य नहीं भी हो सकता। और यदि उन्होंने यह कहा है कि यह लोक अरहंतों से शून्य नहीं भी हो सकता, तो उनका यह कथन सही प्रतीत नहीं होता कि सद्धर्म पांच सौ वर्ष ही टिकेगा।)

– यह कहा जाता है कि तथागत के लिए जो कुछ करणीय था वह सब बोधिवृक्ष के नीचे पूरा हो गया था, और इससे परे उनके लिए कुछ करणीय नहीं बचा था। फिर भी यह देखा जाता है कि उन्होंने समाधि लगाने के लिए तीन माह का एकांतवास किया।

(विरोधाभास : यदि तथागत ने बोधिवृक्ष के नीचे अपना सारा करणीय कर लिया था, तो समाधि लगाने के लिए तीन माह का एकांतवास क्यों किया ? और यदि उन्होंने सचमुच समाधि लगाने के लिए तीन माह का एकांतवास किया, तो यह बात सही नहीं प्रतीत होती कि उन्होंने बोधिवृक्ष के नीचे ही अपना सारा करणीय कर लिया था।)

– भगवान ने कहा : 'मैं स्वयं जानकर ही धर्म का उपदेश करता हूं, बिना जाने नहीं।' फिर विनय-प्रज्ञप्ति के समय यह भी कहा : 'आनन्द! मेरे उठ जाने के बाद यदि संघ उचित समझे तो छोटे-मोटे नियमों को छोड़ सकता है'।

(विरोधाभास : भगवान ने स्वयं जान कर ही धर्म का उपदेश देना बतलाया है, और यह भी कहा है कि यदि संघ उचित समझे तो छोटे-मोटे नियमों को छोड़ सकता है। इससे ऐसा आभास होता है कि भगवान ने छोटे-मोटे नियमों को स्वयं जाने बिना ही प्रज्ञप्त किया था, वर्ना संघ को इन्हें छोड़ देने के लिए अनुमति क्यों देते ? अतः भगवान के दोनों कथनों में से कोई एक तो सही नहीं है।)

– भगवान ने कहा : 'सभी लोग दंड से कांपते हैं, सभी को मृत्यु से भय लगता है।' फिर उन्होंने यह भी कहा : 'अरहंत सारे भयों से पार चला जाता है।'

(विरोधाभास : यदि भगवान का पहला कथन सत्य है तो दूसरा सही नहीं लगता, और यदि दूसरा कथन सत्य है तो पहला सही नहीं लगता।)

– भगवान ने कहा : 'न तो अंतरिक्ष में, न समुद्र के मध्य में, और न ही पर्वतों की कंदराओं में पैठ कर, संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां स्थित होकर कोई मृत्यु के फंदे से बच सके।' दूसरी ओर भगवान ने 'परित्तों'

(परित्राणों) का भी उपदेश दिया है, यथा – रतनसुत्त, मेत्तसुत्त, खन्धपरित्त, मोरपरित्त, आदि।

(विरोधाभास : यदि भगवान का पहला कथन सही है कि कोई व्यक्ति मृत्यु के फंदे से नहीं बच सकता, तो 'परित्त'-कर्म निष्फल हुए; और यदि 'परित्त'-कर्म सार्थक हैं और इनसे मृत्यु से बचाव होता है, तो भगवान का पहला कथन सही नहीं ठहरता कि कोई व्यक्ति मृत्यु के फंदे से नहीं बच सकता।)

– यह कहा जाता है कि बुद्ध को चीवर, पिंडपात, शयनासन, पथ्य, औषधादि परिष्कार सदैव प्राप्त हो जाते थे, और साथ ही यह भी कहा जाता है कि वे पञ्चसाल नामक ब्राह्मणों के ग्राम में भिक्षा के लिए प्रवेश कर कुछ भी प्राप्त किए बिना, धुले-धुलाये पात्र को लिए हुए, वापस लौट आये। (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

– भगवान ने कहा : 'आनन्द! तथागत के मन में ऐसा नहीं आता कि मैं ही भिक्षु-संघ का संचालन करता हूं, या भिक्षु-संघ मेरे उद्देश्य से है।' उधर मेत्तेय भगवान के स्वाभाविक गुणों को दर्शाते हुए उन्होंने यह भी कहा : 'वे हजारों भिक्षु-संघों का संचालन करेंगे, जैसे मैं अभी सैकड़ों भिक्षु-संघों का संचालन कर रहा हूं।' (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

– भगवान ने कहा : 'आनन्द! तुम लोग तथागत की शरीर-पूजा में मत लगो।' फिर उन्होंने यह भी कहा : 'उस पूजनीय की धातु को पूजो, ऐसा करते हुए यहां से स्वर्ग को जाओगे।' (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

– भगवान ने कहा : 'जान बूझ कर झूठ बोलने वाले को पाराजिक दोष लगता है।' (पाराजिक दोष के कारण भिक्षु का भिक्षुभाव चला जाता है ।) फिर यह भी कहा : 'जान बूझ कर झूठ बोलने में थोड़ा दोष लगता है, जिसे किसी दूसरे भिक्षु के सामने स्वीकार कर लेना चाहिए।' (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

– भगवान ने कहा : 'भिक्षुओ! मैत्री-चेतोविमुक्ति की भावना करने से ग्यारह प्रकार के शुभ परिणामों की आशा रखनी चाहिए।' (इन शुभ परिणामों में एक शुभ परिणाम यह भी है कि ऐसे व्यक्ति पर अग्नि, विष तथा शस्त्र का प्रभाव नहीं होता।) फिर यह भी कहा जाता है कि मैत्री-विहार करनेवाले साम कुमार के मृगों के साथ वन में विचरण करते हुए एक दिन पीळियक्ख नामक राजा के विष

में बुझाये बाण के लग जाने से वे वहीं पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

–भगवान ने कहा: 'मेल-मिलाप से भय उत्पन्न होता है, ठिकाना होने से मैल जागता है। ठिकाना न होना और मेल-मिलाप का अभाव –यह मुनि का चिंतन है।' फिर भगवान ने यह भी कहा: 'सुंदर विहार बनाये और उनमें विद्वानों को बसाये।' (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

–भगवान ने कहा: 'उठे, प्रमाद न करे, भोजन के विषय में संयत हो।' फिर यह भी कहा: 'उदायि! मैं कभी तो इस पात्र को पूरा भर कर खाता हूं, और कभी इससे भी अधिक'। (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

–भगवान ने कहा: 'भिक्षुओ! अर्हत सम्यक संबुद्ध उस मार्ग का पता लगाते हैं जो दूसरों को मालूम नहीं रहता।' फिर उन्होंने यह भी कहा: 'मैंने उस सनातन मार्ग को देख लिया है जिस पर पहले के सम्यक संबुद्ध चलते आये हैं।' (विरोधाभास : स्पष्ट है।)

इस कांड में ऐसे प्रश्नों के समाधान तो मिलते ही हैं, इनके अतिरिक्त भी बहुत से महत्त्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है, यथा

धार्मिक मंत्रणा करने के अयोग्य स्थान; धार्मिक मंत्रणा करने के अयोग्य व्यक्ति; गुप्त विषयों को प्रकट कर देने वाले व्यक्ति; बुद्धि पकने के कारण; उपासक के गुण; सात प्रकार के चित्त; चित्त को कमजोर बनाने वाली बातें; पाप और पुण्य में कौन बलवान, कौन कमजोर; अनजाने में किये गये पाप-पुण्य का फल; दु:ख-चर्या के दोष; संसार के बंधन; यक्षों का अस्तित्व; मृत्यु के कारण; अकालमृत्यु; आत्म-हत्या; निर्वाण-विषयक; स्वप्न-विषयक; दान-विषयक (जैसे, दान कैसे मांगा जाता है, दान न करने योग्य वस्तुएं, मृतकों के नाम पर दान देने का फल); इत्यादि।

(५) अनुमानपञ्ह

इस कांड में राजा मिलिन्द भदंत नागसेन से पूछता है : 'क्या आपने बुद्ध को देखा है?' "नहीं, महाराज!" "क्या आपके आचार्यों ने बुद्ध को देखा है?" "नहीं, महाराज!" "यदि न तो आपने बुद्ध को देखा है और न ही आपके आचार्यों ने, तो मालूम होता है कि बुद्ध हुए ही नहीं, उनके होने का कोई प्रमाण नहीं है।

इस पर भदंत नागसेन ने कहा कि 'धर्म' के अस्तित्व से ही 'बुद्ध' के अस्तित्व का अनुमान लगाना चाहिए। उन सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अरहंत, सम्यक संबुद्ध द्वारा अनुभूत यह परिभोग-सामग्री आज भी विद्यमान है – चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक-प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पांच इंद्रियां, पांच बल, सात बोध्यंग और आर्य अष्टांगिक मार्ग। इन्हीं से विश्वास जमता है कि भगवान बुद्ध अवश्य हुए होंगे।

इसी प्रसंग में भदंत नागसेन ने भगवान द्वारा निर्मित 'धर्मनगर' का एक अत्यंत मनोरम, हृदयग्राही और विचित्र रूपक भी प्रस्तुत किया है।

इसी कांड का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रकरण है – 'धुतङ्गकथा'। इसके अंतर्गत राजा मिलिन्द ने यह जानना चाहा है कि क्या घरों में रहने वाले गृहस्थ लोग भी निर्वाण का साक्षात्कार कर सकते हैं? इस पर भदंत नागसेन ने उसे बतलाया कि बहुत बड़ी संख्या में ऐसे लोग निर्वाण का साक्षात्कार किये हुए हैं।

तब राजा ने यह जानना चाहा कि यदि ऐसा है, तो भिक्षु लोग धुतांग सिद्ध करने में क्यों लगे रहते हैं? क्या वैसा होने से धुतांग निरर्थक नहीं ठहरते?

इस पर भदंत ने धुतांगों के अट्ठाईस गुण बतलाये और धुतांगों का सम्यक प्रकार से सेवन करनेवालों को अठारह गुणों से युक्त होना बतलाया। इन दुष्कर व्रतों का निभाना हर किसी के बस की बात नहीं होती। इस प्रकार के व्यक्ति ही इन्हें निभा सकते हैं – श्रद्धालु, लजालु, धृतिमान, निष्कपट, उद्देश्य-रत, अचंचल, सीखने के लिए तत्पर, दृढ़-संकल्प, ध्यान-बहुल और मैत्री में विहार करनेवाले। जो गृही इस जन्म में निर्वाण का साक्षात्कार कर लेते हैं, उन्होंने पूर्वजन्मों में कभी न कभी इन धुतांगों का पालन अवश्य किया होता है। स्थविर सारिपुत्त भी इन्हीं व्रतों से काया, वाणी और चित्त को नियंत्रित कर, अनंत गुणों से युक्त होकर, भगवान बुद्ध के शासन में धर्मचक्र के अनुप्रवर्तक हो पाये।

भदंत नागसेन ने प्रकरण-प्राप्त धुतांगों के नाम भी गिनाये हैं, जो संख्या में तेरह हैं।

(६) ओपम्मकथापञ्ह

इस कांड में राजा मिलिन्द का प्रश्न है कि कितने गुणों से युक्त हुआ भिक्षु अर्हत्पद का साक्षात्कार कर लेता है। इस बारे में भदंत नागसेन ने बतलाया कि

अर्हत्पद का साक्षात्कार करने के इच्छुक भिक्षु को प्राणिजगत एवं वस्तुजगत से इतने गुणों को ग्रहण करना चाहिए

गधे से एक, कौवे से दो, कमल से तीन, बैल से चार, समुद्र से पांच, सिंह से सात, सूर्य से आठ, इत्यादि।

तदनंतर भदंत ने इनमें से प्रत्येक गुण पर भी प्रकाश डाला है और आवश्यकतानुसार अपने कथन को भगवान बुद्ध अथवा उनके प्रमुख श्रावकों की उक्तियों से संवलित भी किया है।'गधे' के गुण का उदाहरण

जैसे गधा जहां कहीं लेटता है – चाहे वह कूड़े-करकट का अंबार हो, या चौक, या चौरस्ता, या ग्रामद्वार, या भूसे का ढेर – वहां वह बेखबर होकर नहीं सोता; वैसे ही योगसाधना करने वाला योगी जहां कहीं लेटे – चाहे तिनकों की चटाई हो, या पत्तों का बिछौना, या लकड़ी का तख्ता, या धरती – वहां वह बेखबर होकर न सोये। गधे का यह गुण उसमें होना चाहिए।

भगवान ने भी कहा है – 'भिक्षुओ! लकड़ी के लट्ठे को सिरहाना बना कर मेरे श्रावक अप्रमत्त और परिश्रमशील हो विहरते हैं।'

धर्मसेनापति सारिपुत्त ने भी कहा है – 'पालथी मार कर बैठे हुए भिक्षु के घुटनों तक भी वर्षा क्यों न हो जाय, दृढ-संकल्प भिक्षु के सुख-विहार के लिए विघ्नकारक नहीं होती है'।

विषय-सूची

प्राक्क थन . . . . **V**

१. यमक वग्गो १

२. अप्पमादवग्गो ५

३. चित्तवग्गो ८

४. पुप्फ वग्गो १०

५. बालवग्गो १३

६. पण्डितवग्गो १६

७. अरहन्तवग्गो १९

८. सहस्सवग्गो २१

९. पापवग्गो २४

१०. दण्डवग्गो २७

११. जरावग्गो ३०

१२. अत्तवग्गो ३२

१३. लोक वग्गो ३४

१४. बुद्धवग्गो ३६

१५. सुखवग्गो ३९

१६. पियवग्गो ४२

१७. कोधवग्गो ४५

१८. मलवग्गो ४८

१९. धम्मट्ठवग्गो ५२
२०. मग्गवग्गो ५५
२१. पकिण्णक वग्गो ५९
२२. निरयवग्गो ६२
२३. नागवग्गो ६५
२४. तण्हावग्गो ६८
२५. भिक्खुवग्गो ७३
२६. ब्राह्मणवग्गो ७८
धम्मपदे वग्गानमुद्दानं ८७
गाथानमुद्दानं ८८
परिशिष्ट-१ . . . . ८९

१. प्राक्कथन

भगवान बुद्ध की अमर वाणी 'धम्मपद' का भाषानुवाद आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। विश्वभर के लोकप्रिय ग्रंथों में इसका बहुत ऊंचा स्थान है। विपश्यना के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ इसकी लोकप्रियता और भी बढ़ती चली जायगी, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है।

कल्याणमित्र विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्काजी दस-दिवसीय विपश्यना शिविरों में साधना पक्ष को समझाने के लिए इसमें से बहुत से उद्धरण देते हैं। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि आपके लिए इस ग्रंथ का कितना महत्त्व है। ध्यान से देखा जाय तो इसकी एक-एक गाथा साधना पक्ष को मजबूत करने वाली और अगाध प्रेरणा जगाने वाली है।

'धम्मपद' में समूची बुद्धवाणी की कुंजी भी उपलब्ध है –

"यथापि रुचिरं पुप्फं, वण्णवन्तं अगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा, अफला होति अकुब्बतो॥

(गाथा ५१)

"यथापि रुचिरं पुप्फं, वण्णवन्तं सुगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा, सफला होति कुब्बतो॥"

(गाथा ५२)

"जैसे कोई पुष्प सुंदर और वर्णयुक्त होने पर भी गंधरहित हो, वैसे ही अच्छी कही हुई (बुद्ध-)वाणी होती है फलरहित, यदि कोई तदनुसार (आचरण) न करे।

"जैसे कोई पुष्प सुंदर और वर्णयुक्त हो और सुगंध वाला हो, वैसे ही अच्छी कही हुई (बुद्ध-)वाणी होती है फलसहित, यदि कोई तदनुसार (आचरण) करने वाला हो।"

इस प्रकार बुद्धवाणी फलप्रद तभी होती है जब कोई इसके अनुसार आचरण करे, इसे अनुभूति पर उतारे। यही बुद्धवाणी की कुंजी है।

उदाहरण –

"'सब्बे सङ्खारा अनिच्चाति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥"

(गाथा २७७)

"'सारे संस्कार अनित्य हैं' (याने जो कुछ उत्पन्न होता है वह नष्ट होता ही है)। इस (सच्चाई) को जब कोई (विपश्यना-)प्रज्ञा से देख (-जान) लेता है, तब उसको दुःखों का निर्वेद प्राप्त होता है (अर्थात, दुःख-क्षेत्र के प्रति भोक्ताभाव टूट जाता है) – ऐसा है यह विशुद्धि (विमुक्ति) का मार्ग!"

यदि कोई इस गाथा का दस, बीस, पचास या सौ बार पाठ ही करता रहे, तो इससे कोई लाभ नहीं होता; केवल बुद्धि का यत्किंचित परिष्कार होता है। जब इसी को अनुभूति पर उतार लेते हैं, तब अपरिमित कल्याण होने लगता है, सारे दुःखों से मुक्त होने का रास्ता मिल जाता है।

'धम्मपद' में ऐसी गाथाओं की भरमार है। इसीलिए विपश्यना विशोधन विन्यास ने बुद्धवाणी में से सर्वप्रथम इसी ग्रंथ का भाषानुवाद करने का निर्णय लिया। अब शनैः शनैः अन्यान्य ग्रंथों के भाषानुवाद का कार्य भी हाथ में लिया जायगा।

इस ग्रंथ में किये गये अनुवाद को आपके लिए अधिकाधिक उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। अनुवाद सरल भाषा में है जिसे हर कोई समझ सके। साधना पक्ष को उजागर करने की भी पूरी चेष्टा की गयी है। गाथाओं के तात्पर्य को समझाने के लिए प्रचुर सामग्री कोष्ठकों में डाली गयी है। 'परिशिष्ट' के रूप में "धम्मपद" की गाथाओं से मेल खाते कल्याणमित्र द्वारा विरचित हिंदी **राजस्थानी दोहों** को भी ग्रंथ में सम्मिलित किया गया है जो न केवल प्रेरणादायक सामग्री का काम करते हैं बल्कि अपने अनूठेपन के कारण ग्रंथ की शोभा को भी चार चांद लगाते हैं।

ध्यान रहे कि समूची बुद्धवाणी को 'तिपिटक' के नाम से जाना जाता है। 'तिपिटक' के तीन बड़े विभाजन हैं – (१) विनयपिटक, (२) सुत्तपिटक तथा (३) अभिधम्मपिटक। इनमें से 'सुत्तपिटक' के अंतर्गत पांच निकाय हैं – दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्तनिकाय, अङ्गुत्तरनिकाय तथा खुद्दकनिकाय। 'खुद्दकनिकाय' के अंतर्गत १९ ग्रंथ हैं। इन १९ ग्रंथों में से एक है –'धम्मपद'।

इस ग्रंथ का पालि-पाठ म्यंमा देश में सन १९५४-५६ में संपन्न हुए छट्ठ संगायन में स्वीकृत पाठ का अनुगामी है। इसी कारण यह सर्वथा प्रामाणिक है।

आशा है इस अनमोल ग्रन्थ का प्रकाशन विपश्यी साधकों, साधिकाओं, धर्म में अभिरूचि रखने वाले जिज्ञासुओं के लिए लाभप्रद होगा।

विपश्यना विशोधन विन्यास

धम्मगिरि, इगतपुरी

धम्मपद

१.यमक वग्गो

१. **मनोपुब्बङ्गमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया।**
मनसा चे पदुट्ठेन, भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति, चक्कंव वहतो पदं॥

मन सभी धर्मों (प्रवृत्तियों) का अगुआ है, मन ही प्रधान है, सभी धर्म मनोमय हैं। जब कोई व्यक्ति अपने मन को मैला करके कोई वाणी बोलता है, अथवा शरीर से कोई कर्म करता है, तब दुःख उसके पीछे ऐसे हो लेता है, जैसे गाड़ी के चक्के बैल के पैरों के पीछे-पीछे हो लेते हैं।

२. **मनोपुब्बङ्गमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया।**
मनसा चे पसन्नेन, भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति, छायाव अनपायिनी॥

मन सभी धर्मों (प्रवृत्तियों) का अगुआ है, मन ही प्रधान है, सभी धर्म मनोमय हैं। जब कोई व्यक्ति अपने मन को उजला रख कर कोई वाणी बोलता है, अथवा शरीर से कोई कर्म करता है, तब सुख उसके पीछे ऐसे हो लेता है जैसे कभी संग न छोड़ने वाली छाया संग-संग चलने लगती है।

३. **अक्कोच्छि मं अवधि मं, अजिनि मं अहासि मे।**
ये च तं उपनय्हन्ति, वेरं तेसं न सम्मति॥

'मुझे कोसा', 'मुझे मारा', 'मुझे हराया', 'मुझे लूटा' - जो मन में ऐसी गांठें बांधते रहते हैं, उनका वैर शांत नहीं होता।

४. **अक्कोच्छि मं अवधि मं, अजिनि मं अहासि मे।**
ये च तं नुपनय्हन्ति, वेरं तेसूपसम्मति॥

'मुझे कोसा', 'मुझे मारा', 'मुझे हराया', 'मुझे लूटा' –जो मन में ऐसी गांठें नहीं बांधते हैं, उनका वैर शांत हो जाता है।

५. न हि वेरेन वेरानि, सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो॥

यहां (इस लोक में) कभी भी वैर से वैर शांत नहीं होते, बल्कि अवैर से शांत होते हैं। यही सनातन धर्म है।

६. परे च न विजानन्ति, मयमेत्थ यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति, ततो सम्मन्ति मेधगा॥

अनाड़ी लोग नहीं जानते कि हम यहां (इस संसार) से जाने वाले हैं। जो इसे जान लेते हैं उनके झगड़े शांत हो जाते हैं।

७. सुभानुपस्सिं विहरन्तं, इन्द्रियेसु असंवुतं।
भोजनम्हि चामत्तञ्ञुं, कुसीतं हीनवीरियं।
तं वे पसहति मारो, वातो रुक्खंव दुब्बलं॥

अच्छी लगने वाली चीजों को शुभ ही शुभ देखते विहार करने वाले, इंद्रियों में असंयत, भोजन की मात्रा के अजानकार, आलसी और उद्योगहीन को मार ऐसे सताता है जैसे दुर्बल वृक्ष को मारुत (पवन)।

८. असुभानुपस्सिं विहरन्तं, इन्द्रियेसु सुसंवुतं।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं, सद्धं आरद्धवीरियं।
तं वे नप्पसहति मारो, वातो सेलंव पब्बतं॥

अशुभ को अशुभ जान कर साधना करने वाले, इंद्रियों में सुसंयत, भोजन की मात्रा के जानकार, श्रद्धावान और उद्योगरत को मार उसी प्रकार नहीं डिगा सकता जैसे कि वायु शैल पर्वत को।

९. अनिक्कसावो कासावं, यो वत्थं परिदहिस्सति।
अपेतो दमसच्चेन, न सो कासावमरहति॥

जिसने कषायों (चित्तमलों) का परित्याग नहीं किया है पर कषाय वस्त्र धारण किये हुए है, वह संयम और सत्य से परे है। वह कषाय वस्त्र (धारण करने) का अधिकारी नहीं है।

१०. यो च वन्तकसावस्स, सीलेसु सुसमाहितो।
उपेतो दमसच्चेन, स वे कासावमरहति॥

जिसने कषायों (चित्तमलों) को निकाल बाहर किया है, शीलों में प्रतिष्ठित है,

संयम और सत्य से युक्त है, वह निःसंदेह काषाय वस्त्र (धारण करने) का अधिकारी है।

११. असारे सारमतिनो, सारे चासारदस्सिनो।
ते सारं नाधिगच्छन्ति, मिच्छासङ्कप्पगोचरा॥

जो निःसार को सार और सार को निःसार समझते हैं, ऐसे गलत चिंतन में लगे हुए व्यक्तियों को सार प्राप्त नहीं होता।

१२. सारञ्च सारतो ञत्वा, असारञ्च असारतो।
ते सारं अधिगच्छन्ति, सम्मासङ्कप्पगोचरा॥

सार को सार और निःसार को निःसार जान कर शुद्ध चिंतन वाले व्यक्ति सार को प्राप्त कर लेते हैं।

१३. यथा अगारं दुच्छन्नं, वुट्ठी समतिविज्झति।
एवं अभावितं चित्तं, रागो समतिविज्झति॥

जैसे बुरी तरह छाये हुए घर में वर्षा का पानी घुस जाता है, वैसे ही अभावित चित्त में राग घुस जाता है।

१४. यथा अगारं सुछन्नं, वुट्ठी न समतिविज्झति।
एवं सुभावितं चित्तं, रागो न समतिविज्झति॥

जैसे अच्छी तरह छाये हुए घर में वर्षा का पानी नहीं घुस पाता है, वैसे ही (शमथ और विपश्यना से) अच्छी तरह भावित चित्त में राग नहीं घुस पाता है।

१५. इध सोचति पेच्च सोचति, पापकारी उभयत्थ सोचति।
सो सोचति सो विहञ्ञति, दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो॥

यहां (इस लोक में) शोक करता है, मरणोपरांत (परलोक में) शोक करता है, पाप करने वाला (व्यक्ति) दोनों जगह शोक करता है। वह अपने कर्मों की मलिनता देख कर शोकापन्न होता है, संतापित होता है।

१६. इध मोदति पेच्च मोदति, कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति।
सो मोदति सो पमोदति, दिस्वा कम्मविसुद्धिमत्तनो॥

यहां (इस लोक में) प्रसन्न होता है, मरणोपरांत (परलोक में) प्रसन्न होता है, पुण्य किया हुआ व्यक्ति दोनों जगह प्रसन्न होता है। वह अपने कर्मों की शुद्धता (पुण्यकर्मसंपत्ति) देख कर मुदित होता है, प्रमुदित होता है।

१७. इध तप्पति पेच्च तप्पति, पापकारी उभयत्थ तप्पति।
"पापं मे कत"न्ति तप्पति, भिय्यो तप्पति दुग्गतिं गतो॥

यहां (इस लोक में) संतप्त होता है, प्राण छोड़ कर (परलोक में) संतप्त होता है। पापकारी दोनों जगह संतप्त होता है। 'मैंने पाप किया है' - इस (चिंतन) से संतप्त होता है (और) दुर्गति को प्राप्त होकर और भी (अधिक) संतप्त होता है।

१८. इध नन्दति पेच्च नन्दति, कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति।
"पुञ्ञं मे कत"न्ति नन्दति, भिय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो॥

यहां (इस लोक में) आनंदित होता है, प्राण छोड़ कर (परलोक में) आनंदित होता है। पुण्यकारी दोनों जगह आनंदित होता है। 'मैंने पुण्य किया है' - इस (चिंतन) से आनंदित होता है (और) सुगति को प्राप्त होने पर और भी (अधिक) आनंदित होता है।

१९. बहुम्पि चे संहितं भासमानो, न तक्करो होति नरो पमत्तो।
गोपोव गावो गणयं परेसं, न भागवा सामञ्ञस्स होति॥

धर्मग्रंथों (तिपिटक) का कितना ही पाठ करे, लेकिन यदि प्रमाद के कारण मनुष्य उन धर्मग्रंथों के अनुसार आचरण नहीं करता, तो दूसरों की गौवें गिनने वाले ग्वालों की तरह वह श्रमणत्व का भागी नहीं होता।

२०. अप्पम्पि चे संहितं भासमानो, धम्मस्स होति अनुधम्मचारी।
रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं, सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा, स भागवा सामञ्ञस्स होति॥

धर्मग्रंथों का भले थोड़ा ही पाठ करे, लेकिन यदि वह (व्यक्ति) धर्म के अनुकूल आचरण करने वाला होता है, तो राग, द्वेष और मोह को त्याग कर, संप्रज्ञानी बन, भली प्रकार विमुक्त चित्त वाला होकर, इहलोक अथवा परलोक में कुछ भी आसक्ति न करता हुआ श्रमणत्व का भागी हो जाता है।

यमकवग्गो पठमो निट्ठितो।

२. अप्पमादवग्गो

२१. **अप्पमादो अमतपदं, पमादो मच्चुनो पदं।**
अप्पमत्ता न मीयन्ति, ये पमत्ता यथा मता॥

प्रमाद न करना अमृत (निर्वाण) का पद है और प्रमाद मृत्यु का पद। प्रमाद न करने वाले (कभी) मरते नहीं और प्रमादी (तो) मरे-समान होते हैं।

२२. **एवं विसेसतो ञत्वा, अप्पमादम्हि पण्डिता।**
अप्पमादे पमोदन्ति, अरियानं गोचरे रता॥

ज्ञानी जन अप्रमाद के बारे में इस प्रकार विशेष रूप से जान कर आर्यों की गोचरभूमि में रमण करते हुए अप्रमाद में प्रमुदित होते हैं।

२३. **ते झायिनो साततिका, निच्चं दळ्हपरक्कमा।**
फुसन्ति धीरा निब्बानं, योगक्खेमं अनुत्तरं॥

वे सतत ध्यान करने वाले, नित्य दृढ़ पराक्रम करने वाले, धीर पुरुष उत्कृष्ट योगक्षेम वाले निर्वाण को प्राप्त (अर्थात, इसका साक्षात्कार) कर लेते हैं।

२४. **उट्ठानवतो सतीमतो, सुचिकम्मस्स निसम्मकारिनो।**
सञ्ञतस्स धम्मजीविनो, अप्पमत्तस्स यसोभिवड्ढति॥

उद्योगशील, स्मृतिमान, शुचि (दोषरहित) कर्म करने वाले, सोच-समझ कर काम करने वाले, संयमी, धर्म का जीवन जीने वाले, अप्रमत्त (व्यक्ति) का यश खूब बढ़ता है।

२५. **उट्ठानेनप्पमादेन, संयमेन दमेन च।**
दीपं कयिराथ मेधावी, यं ओघो नाभिकीरति॥

मेधावी (पुरुष) उद्योग, अप्रमाद, संयम तथा (इंद्रियों के) दमन द्वारा (अपने लिए ऐसा) द्वीप बना ले जिसे (चार प्रकार के क्लेशों की) बाढ़ आप्लावित न कर सके।

२६. **पमादमनुयुञ्जन्ति, बाला दुम्मेधिनो जना।**
अप्पमादञ्च मेधावी, धनं सेट्ठंव रक्खति॥

मूर्ख, दुर्बुद्धि जन प्रमाद में लगे रहते हैं, (जबकि) मेधावी श्रेष्ठ धन के समान अप्रमाद की रक्षा करता है।

२७. मा पमादमनुयुञ्जेथ, मा कामरतिसन्थवं।
अप्पमत्तो हि झायन्तो, पप्पोति विपुलं सुखं॥

प्रमाद मत करो और न ही कामभोगों में लिप्त होओ, क्योंकि अप्रमादी ध्यान करते हुए महान (निर्वाण) सुख को पा लेता है।

२८. पमादं अप्पमादेन, यदा नुदति पण्डितो।
पञ्ञापासादमारुय्ह, असोको सोकिनिं पजं।
पब्बतट्ठोव भूमट्ठे, धीरो बाले अवेक्खति॥

जब कोई समझदार व्यक्ति प्रमाद को अप्रमाद से परे धकेल देता (अर्थात, जीत लेता) है, तब वह प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़ा हुआ शोक रहित हो जाता है। (ऐसा) शोक रहित धीर (मनुष्य) शोकग्रस्त (विमूढ़) जनों को ऐसे ही (करुण भाव से) देखता है जैसे कि पर्वत पर खड़ा हुआ (कोई व्यक्ति) धरती पर खड़े हुए लोगों को देखे।

२९. अप्पमत्तो पमत्तेसु, सुत्तेसु बहुजागरो।
अबलस्संव सीघस्सो, हित्वा याति सुमेधसो॥

प्रमाद करने वालों में अप्रमादी (क्षीणाश्रव) तथा (अज्ञान की नींद में) सोये लोगों में (प्रज्ञा में) अतिसचेत उत्तम प्रज्ञा वाला (दूसरों को) पीछे छोड़ कर (ऐसे आगे निकल जाता है) जैसे शीघ्रगामी अश्व दुर्बल अश्व को।

३०. अप्पमादेन मघवा, देवानं सेट्ठतं गतो।
अप्पमादं पसंसन्ति, पमादो गरहितो सदा।

अप्रमाद के कारण इंद्र देवताओं में श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ। (पंडित जन) अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं, और प्रमाद की सदा निंदा होती है।

३१. अप्पमादरतो भिक्खु, पमादे भयदस्सि वा।
संयोजनं अणुं थूलं, डहं अग्गीव गच्छति॥

जो साधक अप्रमाद में रत रहता है, या प्रमाद में भय देखता है, वह अपने छोटे-बड़े सभी (कर्म-संस्कारों के) बंधनों को आग की भांति जलाते हुए चलता है।

३२. अप्पमादरतो भिक्खु, पमादे भयदस्सि वा।
अभब्बो परिहानाय, निब्बानस्सेव सन्तिके।

जो साधक अप्रमाद में रत रहता है, या प्रमाद में भय देखता है, उसका पतन नहीं हो सकता। वह (तो) निर्वाण के समीप (पहुँचा हुआ) होता है।

अप्पमादवग्गो दुतियो निट्ठितो।

३. चित्तवग्गो

३३. फन्दनं चपलं चित्तं, दूरक्खं दुन्निवारयं।
उजुं करोति मेधावी, उसुकारोव तेजनं॥

चंचल, चपल, कठिनाईसे संरक्षण और कठिनाईसे (ही) निवारण योग्य चित्त को मेधावी (पुरुष) वैसे ही सीधा करता है जैसे बाण बनाने वाला बाण को।

३४. वारिजोव थले खित्तो, ओकमोकतउब्भतो।
परिफन्दतिदं चित्तं, मारधेय्यं पहातवे॥

जैसे जल से निकालकर धरती पर फेंकीगयी मछली तड़फड़ाती है, वैसे ही मार के फंदे से निकलने के लिए यह चित्त (तड़फड़ाता है)।

३५. दुन्निग्गहस्स लहुनो, यत्थकामनिपातिनो।
चित्तस्स दमथो साधु, चित्तं दन्तं सुखावहं॥

ऐसे चित्त का दमन करना अच्छा है जिसको वश में करना कठिन है, जो शीघ्रगामी है और जहां चाहे वहां चला जाता है। दमन किया गया चित्त सुख देने वाला होता है।

३६. सुदुद्दसं सुनिपुणं, यत्थकामनिपातिनं।
चित्तं रक्खेथ मेधावी, चित्तं गुत्तं सुखावहं॥

जो बड़ा दुर्दर्श है, कठिनाईसे दिखाई पड़ने वाला है, बड़ा चालाक है, जहां चाहे वहीं जा पहुँचता है, समझदार (व्यक्ति) को चाहिए कि (ऐसे) चित्त की रक्षा करे। सुरक्षित चित्त बड़ा सुखदायी होता है।

३७. दूरङ्गमं एकचरं, असरीरं गुहासयं।
ये चित्तं संयमेस्सन्ति, मोक्खन्ति मारबन्धना॥

जो (कोई) (पुरुष, स्त्री, गृहस्थ अथवा प्रव्रजित) दूरगामी, अकेला विचरने वाले, शरीर-रहित, गुहाशायी चित्त को संयमित करेंगे, वे मार के बंधन से मुक्त हो जायेंगे।

३८. अनवट्ठितचित्तस्स, सद्धम्मं अविजानतो।
परिप्लवपसादस्स, पञ्ञा न परिपूरति॥

जिसका चित्त अस्थिर है, जो सद्धर्म को नहीं जानता, जिसकी श्रद्धा दोलायमान (डांवाडोल) है, उसकी प्रज्ञा परिपूर्ण नहीं हो सकती।

३९. अनवस्सुत चित्तस्स, अनन्वाहत चेतसो।
पुञ्ञपापपहीनस्स, नत्थि जागरतो भयं॥

जिसके चित्त में राग नहीं, जिसका चित्त द्वेष से रहित है, जो पाप-पुण्य-विहीन है, उस सजग रहने वाले (क्षीणाश्रव) को कोई भय नहीं होता।

४०. कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा, नगरूपमं चित्तमिदं ठपेत्वा।
योधेथ मारं पञ्ञावुधेन, जितञ्च रक्खे अनिवेसनो सिया॥

इस शरीर को घड़े के समान (भंगुर) जान, और इस चित्त को गढ़ के समान (रक्षित और दृढ़) बना, प्रज्ञारूपी शस्त्र के साथ मार से युद्ध करे। (उसे) जीत लेने पर भी (चित्त की) रक्षा करे और अनासक्त बना रहे।

४१. अचिरं वतयं कायो, पथविं अधिसेस्सति।
छुद्धो अपेतविञ्ञाणो, निरत्थंव कलिङ्गरं॥

अहो! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतनारहित होकर निरर्थक काठ के टुकड़े की भांति पृथ्वी पर पड़ रहेगा।

४२. दिसो दिसं यं तं कयिरा, वेरी वा पन वेरिनं।
मिच्छापणिहितं चित्तं, पापियो नं ततो करे॥

शत्रु शत्रु की अथवा वैरी वैरी की जितनी हानि करता है, कुमार्ग पर लगा हुआ चित्त उससे (कहीं) अधिक हानि करता है।

४३. न तं माता पिता कयिरा, अञ्ञे वापि च ञातका।
सम्मापणिहितं चित्तं, सेय्यसो नं ततो करे॥

जितनी (भलाई) न माता-पिता कर सकते हैं, न दूसरे भाई-बंधु, उससे (कहीं अधिक) भलाई सन्मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।

चित्तवग्गो ततियो निट्ठितो।

४. पुप्फ वग्गो

४४. **को इमं पथविं विचेस्सति, यमलोकञ्च इमं सदेवकं ।**
को धम्मपदं सुदेसितं, कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति ॥

कौन है जो इस (आत्मभाव अथवा अपनापे रूपी) पृथ्वी, और देवताओं सहित इस यमलोक को (बींध कर इनका) साक्षात्कार कर लेगा? कौन कुशल (व्यक्ति) भली प्रकार उपदिष्ट धर्म के पदों का पुष्प की भांति (चयन करते हुए इनको भी बींध कर इनका) साक्षात्कार कर पायगा?

४५. **सेखो पथविं विचेस्सति, यमलोकञ्च इमं सदेवकं ।**
सेखो धम्मपदं सुदेसितं, कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति ॥

शैक्ष्य (निर्वाण की खोज में लगा हुआ व्यक्ति) ही पृथ्वी पर, और देवताओं सहित इस यमलोक पर, विजय पायगा। शैक्ष्य (ही) भली प्रकार उपदिष्ट धर्म के पदों का पुष्प की भांति चयन करेगा।

४६. **फेणूपमं कायमिमं विदित्वा, मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो।**
छेत्वान मारस्स पपुप्फकानि, अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे ॥

इस शरीर को फेन (झाग) के समान (या) (मरु-)मरीचिका के समान (निःसार) जान कर मार के फंदों को काट कर मृत्युराज की दृष्टि से ओझल रहे।

४७. **पुप्फानि हेव पचिनन्तं, ब्यासत्तमनसं नरं।**
सुत्तं गामं महोघोव, मच्चु आदाय गच्छति ॥

(कामभोगरूपी) पुष्पों को चुनने वाले, आसक्तियों में डूबे हुए मनुष्य को मृत्यु (वैसे ही) पकड़ कर ले जाती है जैसे सोये हुए गांव को (नदी की) बड़ी बाढ़ (बहा ले जाती है)।

४८. **पुप्फानि हेव पचिनन्तं, ब्यासत्तमनसं नरं।**
अतित्तञ्ञेव कामेसु, अन्तको कुरुते वसं ॥

(कामभोगरूपी) पुष्पों को चुनने वाले, आसक्तियों में डूबे हुए मनुष्य को (जबकि अभी वह) कामनाओं से तृप्त नहीं हुआ है, यमराज अपने वश में कर लेता है।

४९. यथापि भमरो पुप्फं, वण्णगन्धमहेठयं।
पलेति रसमादाय, एवं गामे मुनी चरे॥

जैसे भ्रमर फूलके वर्ण और गंध को क्षति पहुँचाये बिना रस को लेकर चल देता है, वैसे ही गांव में मुनि भिक्षाटन करे।

५०. न परेसं विलोमानि, न परेसं कताकतं।
अत्तनोव अवेक्खेय्य, कतानि अकतानि च॥

दूसरों के परुष (मर्मच्छेदक) वचनों पर ध्यान न दे, न दूसरों के कृत-अकृत को देखे, (तद्विपरीत) अपने (ही) कृत-अकृत को देखे।

५१. यथापि रुचिरं पुप्फं, वण्णवन्तं अगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा, अफला होति अकुब्बतो॥

जैसे कोई पुष्प सुंदर और वर्णयुक्त होने पर भी गंधरहित हो, वैसे ही अच्छी कही हुई (बुद्ध) वाणी होती है फलरहित, यदि कोई तदनुसार (आचरण) न करे।

५२. यथापि रुचिरं पुप्फं, वण्णवन्तं सुगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा, सफला होति कुब्बतो॥

जैसे कोई पुष्प सुंदर और वर्णयुक्त हो और (सु-) गंध वाला हो, वैसे ही अच्छी कही हुई (बुद्ध) वाणी होती है फलसहित, यदि कोई तदनुसार (आचरण) करने वाला हो।

५३. यथापि पुप्फरासिम्हा, कयिरा मालागुणे बहू।
एवं जातेन मच्चेन, कत्तब्बं कुसलं बहुं॥

जैसे (कोई व्यक्ति) पुष्प-राशि से बहुत सी मालाएं बनाये, ऐसे ही उत्पन्न हुए प्राणी को बहुत-सा कुशलकर्म (पुण्य) करना चाहिए।

५४. न पुप्फगन्धो पटिवातमेति, न चन्दनं तगरमल्लिका वा।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवायति॥

चंदन, तगर, कमल अथवा जूही - इन (सभी) की सुगंधों से शील-सदाचार की सुगंध बढ़-चढ़ कर है।

५५. चन्दनं तगरं वापि, उप्पलं अथ वस्सिकी।
एतेसं गन्धजातानं, सीलगन्धो अनुत्तरो॥

तगर और चंदन की गंध, उत्पल (कमल) और चमेली की गंध - इन भिन्न-भिन्न सुगंधियों से शील की गंध अधिक श्रेष्ठ है।

५६. अप्पमत्तो अयं गन्धो, य्वायं तगरचन्दनं।
यो च सीलवतं गन्धो, वाति देवेसु उत्तमो॥

तगर और चंदन की जो यह गंध फैलती है, वह अल्पमात्र है, और जो यह शीलवानों की गंध है, वह उत्तम (गंध) देवताओं में फैलती है।

५७. तेसं सम्पन्नसीलानं, अप्पमादविहारिनं।
सम्मदञ्ञा विमुत्तानं, मारो मग्गं न विन्दति॥

जो शीलसंपन्न हैं, प्रमादरहित होकर विहार करते हैं, यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त हो चुके हैं, उनके मार्ग को मार नहीं देख पाता।

५८. यथा सङ्कारठानस्मिं, उज्झितस्मिं महापथे।
पदुमं तत्थ जायेथ, सुचिगन्धं मनोरमं॥

५९. एवं सङ्कारभूतेसु, अन्धभूते पुथुज्जने।
अतिरोचति पञ्ञाय, सम्मासम्बुद्धसावको॥

जिस प्रकार महापथ पर फेंके गये कचरे के ढेर में पवित्र गंध वाला मनोरम पद्म उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार (कचरे के समान) भगवान सम्यक्संबुद्ध का श्रावक भी अपनी प्रज्ञा से अंधे पृथग्जनों के बीच अत्यंत शोभायमान होता है।

पुप्फवग्गो चतुत्थो निट्ठितो।

५. बालवग्गो

६०. दीघा जागरतो रत्ति, दीघं सन्तस्स योजनं।
दीघो बालानं संसारो, सद्धम्मं अविजानतं॥

जागने वाले की रात लंबी हो जाती है, थके हुए का योजन लंबा हो जाता है। सद्धर्म को न जानने वाले मूर्ख (व्यक्तियों) के लिए संसार (-चक्र) लंबा हो जाता है।

६१. चरञ्चे नाधिगच्छेय्य, सेय्यं सदिसमत्तनो।
एकचरियं दळ्हं कयिरा, नत्थि बाले सहायता॥

यदि विचरण करते हुए (शील, समाधि, प्रज्ञा में) अपने से श्रेष्ठ या अपने सदृश (सहचर) न मिले, तो दृढता के साथ अकेला ही विचरण करे। मूर्ख (व्यक्ति) से सहायता नहीं मिल सकती।

६२. पुत्ता मत्थि धनमत्थि, इति बालो विहञ्ञति।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि, कुतो पुत्ता कुतो धनं॥

'मेरे पुत्र!' 'मेरा धन!' - इस (मिथ्या चिंतन) में ही मूढ़ व्यक्ति व्याकुल बना रहता है। अरे, जब यह (तन और मन का) अपनापा ही अपना नहीं है, तो कहां 'मेरे पुत्र!'? कहां 'मेरा धन!?

६३. यो बालो मञ्ञति बाल्यं, पण्डितो वापि तेन सो।
बालो च पण्डितमानी, स वे "बालो"ति वुच्चति॥

जो मूढ़ होकर (अपनी) मूढ़ता को स्वीकारता है, वह इस (अंश) में पंडित (ज्ञानी) है; और जो मूढ़ होकर (अपने आप को) पंडित मानता है, वह 'मूढ़' ही कहा जाता है।

६४. यावजीवम्पि चे बालो, पण्डितं पयिरुपासति।
न सो धम्मं विजानाति, दब्बी सूपरसं यथा॥

चाहे मूढ़ (व्यक्ति) जीवन-भर पंडित की सेवा में रहे, वह धर्म को (वैसे ही) नहीं जान पाता जैसे कलुछी सूप के रस को।

६५. मुहुत्तमपि चे विञ्ञू, पण्डितं पयिरुपासति।
खिप्पं धम्मं विजानाति, जिव्हा सूपरसं यथा॥

चाहे विज्ञ पुरुष मुहूर्त भर ही पंडित की सेवा में रहे, वह शीघ्र ही धर्म को (वैसे) जान लेता है जैसे जिह्वा सूप के रस को।

६६. चरन्ति बाला दुम्मेधा, अमित्तेनेव अत्तना।
करोन्ता पापकं कम्मं, यं होति कटुकप्फलं॥

बाल-बुद्धि वाले मूर्ख जन अपने ही शत्रु बन कर आचरण करते हैं और ऐसे पापकर्म करते हैं जिनका फल (स्वयं उनके अपने लिए ही) कड़ुवा होता है।

६७. न तं कम्मं कतं साधु, यं कत्वा अनुतप्पति।
यस्स अस्सुमुखो रोदं, विपाकं पटिसेवति॥

वह किया हुआ कर्म ठीक नहीं जिसे करके पीछे पछताना पड़े, और जिसके फल को अश्रुमुख हो रोते हुए भोगना पड़े।

६८. तञ्च कम्मं कतं साधु, यं कत्वा नानुतप्पति।
यस्स पतीतो सुमनो, विपाकं पटिसेवति॥

और वह किया हुआ कर्म ठीक होता है जिसे करके पीछे पछताना न पड़े, और जिसके फल को प्रसन्नचित्त होकर अच्छे मन से भोगा जा सके।

६९. मधुवा मञ्ञति बालो, याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं, बालो दुक्खं निगच्छति॥

जब तक पाप का फल नहीं आता तब तक मूढ़ (व्यक्ति) उसे मधु के समान (मधुर) मानता है, और जब पाप का फल आता है तब (वह) मूढ़ दुःखी होता है।

७०. मासे मासे कुसग्गेन, बालो भुञ्जेय्य भोजनं।
न सो सङ्खातधम्मानं, कलं अग्घति सोळसिं॥

चाहे मूढ़ (व्यक्ति) महीना-महीना (के अंतराल) पर केवल कुश की नोक से भोजन करे, तो भी वह धर्मवेत्ताओं (की कुशल चेतना) के सोलहवें भाग की बराबरी भी नहीं कर सकता।

७१. न हि पापं कतं कम्मं, सज्जु खीरंव मुच्चति।
डहन्तं बालमन्वेति, भस्मच्छन्नोव पावको॥

जैसे ताजा दूध शीघ्र नहीं जमता, उसी तरह किया गया पाप कर्म शीघ्र (अपना) फल नहीं लाता। राख से ढंकी आग की तरह जलता हुआ वह मूर्ख का पीछा करता है।

७२. यावदेव अनत्थाय, ञत्तं बालस्स जायति।
हन्ति बालस्स सुक्कं सं, मुद्धमस्स विपातयं॥

मूढ़ का जितना भी ज्ञान है (वह उसके) अनिष्ट के लिए होता है। वह उसकी मूर्धा (सिर=प्रज्ञा) को गिरा कर उसके कुशल कर्मों का नाश कर डालता है।

७३. असन्तं भावनमिच्छेय्य, पुरेक्खारञ्च भिक्खुसु।
आवासेसु च इस्सरियं, पूजा परकुलेसु च॥

(मूढ़ व्यक्ति) जो नहीं है उसकी संभावना जगाता है, भिक्षुओं में अग्रणी (बनना चाहता है), संघ के आवासों (विहारों) का स्वामित्व (चाहता है) और पराये कुलों में आदर-सत्कार की कामना करता है।

७४. ममेव कत मञ्ञन्तु, गिहीपब्बजिता उभो।
ममेवातिवसा अस्सु, किच्चाकिच्चेसु किस्मिचि।
इति बालस्स सङ्कप्पो, इच्छा मानो च वड्ढति॥

गृहस्थ और प्रव्रजित दोनों मेरा ही किया मानें, किसी भी कृत्य-अकृत्य में मेरे ही वशवर्ती रहें - ऐसा मूढ़ (व्यक्ति) का संकल्प होता है। (इससे) उसकी इच्छा और अभिमान का संवर्द्धन होता है।

७५. अञ्ञा हि लाभूपनिसा, अञ्ञा निब्बानगामिनी।
एवमेतं अभिञ्ञाय, भिक्खु बुद्धस्स सावको।
सक्कारं नाभिनन्देय्य, विवेक मनुब्रूहये॥

लाभ का मार्ग दूसरा है और निर्वाण की ओर ले जाने वाला दूसरा - इस प्रकार इसे भली प्रकार जान कर बुद्ध का श्रावक भिक्षु (आदर-) सत्कार की इच्छा न करे और (त्रिविध) विवेक (अर्थात काय विवेक, चित्त विवेक, विक्खम्भन विवेक) को बढ़ावा दे।

बालवग्गो पञ्चमो निट्ठितो।

६. पण्डितवग्गो

७६. निधीनंव पवत्तारं, यं पस्से वज्जदस्सिनं।
निग्गय्हवादिं मेधाविं, तादिसं पण्डितं भजे।
तादिसं भजमानस्स, सेय्यो होति न पापियो॥

जो व्यक्ति अपना दोष दिखाने वाले को (भूमि में छिपी) संपदा दिखाने वाले कीतरह समझे, जो संयम कीबात करनेवाले मेधावी पंडित कीसंगति करे, उस व्यक्ति का मंगल ही होता है, अमंगल नहीं।

७७. ओवदेय्यानुसासेय्य, असब्भा च निवारये।
सतञ्हि सो पियो होति, असतं होति अप्पियो॥

जो उपदेश दे, अनुशासन करे, अनुचित कार्यसे रोके, वह सत्पुरुषों का प्रिय होता है और असत्पुरुषों का अप्रिय।

७८. न भजे पापके मित्ते, न भजे पुरिसाधमे।
भजेथ मित्ते कल्याणे, भजेथ पुरिसुत्तमे॥

न पापी मित्रों कीसंगत करे, न अधम पुरुषों की।संगति करे कल्याणमित्रों की, उत्तम पुरुषों की।

७९. धम्मपीति सुखं सेति, विप्पसन्नेन चेतसा।
अरियप्पवेदिते धम्मे, सदा रमति पण्डितो॥

बुद्ध के उपदेशित धर्म में सदा रमण करताहै पंडित। (नवविध लोकोत्तर) धर्म (रस) का पान करने वाला विशुद्धचित्त हो सुखपूर्वक विहार करता है।

८०. उदकञ्हि नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका, अत्तानं दमयन्ति पण्डिता॥

पानी ले जाने वाले (जिधर चाहते हैं, उधर ही से) पानी को ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण को (तपा कर) सीधा करतेहैं, बढ़ई लकड़ीको (अपनी रुचि के अनुसार) सीधा या बांका करते हैं, और पंडित (जन) अपना (ही) दमन करते हैं।

८१. सेलो यथा एकघनो, वातेन न समीरति।
एवं निन्दापसंसासु, न समिञ्जन्ति पण्डिता॥

जैसे सघन शैल-पर्वत वायु से प्रकंपित नहीं होता, वैसे ही समझदार लोग निंदा और प्रशंसा (वस्तुतः, आठों लोक धर्मों) से विचलित नहीं होते।

८२. **यथापि रहदो गम्भीरो, विप्पसन्नो अनाविलो।**
एवं धम्मानि सुत्वान, विप्पसीदन्ति पण्डिता॥

(देशना-) धर्मों को सुनकर पंडित (जन) गहरे, स्वच्छ, निर्मल सरोवर के समान अत्यंत प्रसन्न (संतुष्ट) होते हैं।

८३. **सब्बत्थ वे सप्पुरिसा चजन्ति,**
न कामकामा लपयन्ति सन्तो।
सुखेन फुट्ठा अथ वा दुखेन,
न उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति॥

सत्पुरुष सर्वत्र (पांचों स्कंधों में) छंदराग छोड़ देते हैं। संत जन कामभोगों के लिए बात नहीं चलाते। चाहे सुख मिले या दुःख, पंडित (जन) (अपने मन का) उतार-चढ़ाव प्रदर्शित नहीं करते।

८४. **न अत्तहेतु न परस्स हेतु,**
न पुत्तमिच्छे न धनं न रट्ठं।
न इच्छेय्य अधम्मेन समिद्धिमत्तनो,
स सीलवा पञ्ञवा धम्मिको सिया॥

जो अपने लिए या दूसरे के लिए पुत्र, धन अथवा राज्य की कामना नहीं करता और न अधर्म से अपनी उन्नति चाहता है, वह शीलवान, प्रज्ञावान और धार्मिक होता है।

८५. **अप्पका ते मनुस्सेसु, ये जना पारगामिनो।**
अथायं इतरा पजा, तीरमेवानुधावति॥

मनुष्यों में (भवसागर से) पार जाने वाले लोग विरले ही होते हैं। ये दूसरे लोग तो (सत्कायदृष्टिरूपी) तट पर ही दौड़ने वाले होते हैं।

८६. **ये च खो सम्मदक्खाते, धम्मे धम्मानुवत्तिनो।**
ते जना पारमेस्सन्ति, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं॥

जो लोग सम्यक प्रकारसे आख्यात धर्म का अनुवर्तन करते हैं, वे अति दुस्तर मृत्यु-क्षेत्र के पार चले जायेंगे।

८७. कण्हं धम्मं विप्पहाय, सुक्कं भावेथ पण्डितो।
ओका अनोकमागम्म, विवेके यत्थ दूरमं॥

पंडित कृष्णधर्म को त्याग कर शुक्ल (धर्म) की भावना करे (अर्थात, पापकर्म को छोड़ कर शुभ कर्म करे।) वह घर से बेघर होकर (सामान्य व्यक्ति के लिए) आकर्षणरहित एकांत का सेवन करे।

८८. तत्राभिरतिमिच्छेय्य, हित्वा कामे अकिञ्चनो।
परियोदपेय्य अत्तानं, चित्तक्लेसेहि पण्डितो॥

कामनाओं को त्याग कर अकिंचन (बना हुआ व्यक्ति) वहीं (उसी अवस्था में) रमण करने की इच्छा करे। समझदार (व्यक्ति) (पांच नीवरणरूपी) चित्त-मलों से अपने आपको परिशुद्ध करे।

८९. येसं सम्बोधियङ्गेसु, सम्मा चित्तं सुभावितं।
आदानपटिनिस्सग्गे, अनुपादाय ये रता।
खीणासवा जुतिमन्तो, ते लोके परिनिब्बुता॥

संबोधि के अंगों में जिनका चित्त सम्यक प्रकारसे भावित (अभ्यस्त) हो गया है, जो परिग्रह का परित्याग कर अपरिग्रह में रत हैं, आश्रवों (चित्तमलों) से रहित ऐसे द्युतिमान (पुरुष ही) लोक में निर्वाण-प्राप्त हैं।

पण्डितवग्गो छट्ठो निट्ठितो।

७. अरहन्तवग्गो

९०. **गतद्धिनो विसोकस्स, विप्पमुत्तस्स सब्बधि।**
सब्बगन्थप्पहीनस्स, परिळाहो न विज्जति॥

जिसकी यात्रा पूरी हो गयी है, जो शोक रहित है, सर्वथा विमुक्त है, जिसकी सभी ग्रंथियां कट गयी हैं, उसके लिए (कायिक और चैतसिक) संताप (नाम की कोई चीज) नहीं है।

९१. **उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो, न निकेते रमन्ति ते।**
हंसाव पल्ललं हित्वा, ओकमोकं जहन्ति ते॥

स्मृतिमान उद्योग करते रहते हैं, वे घर में रमण नहीं करते। जैसे हंस क्षुद्र जलाशय को छोड़ कर चले जाते हैं, वैसे ही वे घर-बार (अथवा, सभी ठौर-ठिकानों को) छोड़ देते हैं।

९२. **येसं सन्निचयो नत्थि, ये परिञ्ञातभोजना।**
सुञ्ञतो अनिमित्तो च, विमोक्खो येसं गोचरो।
आकासे व सकुन्तानं, गति तेसं दुरन्नया॥

जो (कर्मों और प्रत्ययों का) संचय नहीं करते, जिन्हें (अपने) आहार (की मात्रा का) पूरा पूरा ज्ञान है, शून्यतास्वरूप तथा निमित्तरहित निर्वाण जिनकी गोचरभूमि है, उनकी गति वैसे ही अज्ञेय रहती है जैसे आकाश में पक्षियों की (गति)।

९३. **यस्सासवा परिक्खीणा, आहारे च अनिस्सितो।**
सुञ्ञतो अनिमित्तो च, विमोक्खो यस्स गोचरो।
आकासे व सकुन्तानं, पदं तस्स दुरन्नयं॥

जिसके आश्रव (चित्त-मल) पूरी तरह से क्षीण हो गये हैं, जो आहार में आसक्त नहीं है, शून्यतास्वरूप तथा निमित्तरहित निर्वाण जिनकी गोचरभूमि है, उनकी गति वैसे ही अज्ञेय रहती है जैसे आकाश में पक्षियों की (गति)।

९४. **यस्सिन्द्रियानि समथङ्गतानि, अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता।**
पहीनमानस्स अनासवस्स, देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो॥

सारथि द्वारा सुदांत (सुशिक्षित) घोड़ों के समान जिसकी इंद्रियां शांत हो गयी

हैं, जिसका अभिमान विगलित हो गया है, जो आश्रवरहित है, देवगण भी वैसे (व्यक्ति) की स्पृहा करते हैं।

९५. **पथविसमो नो विरुज्झति, इन्दखिलुपमो तादि सुब्बतो।**
रहदोव अपेतकद्दमो, संसारा न भवन्ति तादिनो॥

सुंदर व्रतधारी अर्हत (=तादि) पृथ्वी के समान क्षुब्ध न होने वाला और इंद्रकील के समान अकंप्य होता है। वैसे (व्यक्ति) को कर्दमरहित जलाशय की भांति संसार (-मल) नहीं होते।

९६. **सन्तं तस्स मनं होति, सन्ता वाचा च कम्म च।**
सम्मदञ्ञा विमुत्तस्स, उपसन्तस्स तादिनो॥

सम्यक ज्ञान द्वारा मुक्त हुए उपशांत (अरहंत) का मन शांत हो जाता है, और वाणी तथा कर्म भी शांत हो जाते हैं।

९७. **अस्सद्धो अकतञ्ञू च, सन्धिच्छेदो च यो नरो।**
हतावकासो वन्तासो, स वे उत्तमपोरिसो॥

जो नर (अंध-) श्रद्धारहित, निर्वाण का जानकार, (भव-संसरण की) संधि का छेदन किये हुए, (पुनर्जन्म की) संभावनारहित और (सर्वप्रकार की) आशाएं त्यागे हुए हो, वह निःसंदेह उत्तम पुरुष होता है।

९८. **गामे वा यदि वारञ्ञे, निन्ने वा यदि वा थले।**
यत्थ अरहन्तो विहरन्ति, तं भूमिरामणेय्यकं॥

गांव हो या जंगल, भूमि नीची हो या (ऊंची), जहां (कहीं) अरहंत विहार करते हैं, वह भूमि रमणीय होती है।

९९. **रमणीयानि अरञ्ञानि, यत्थ न रमती जनो।**
वीतरागा रमिस्सन्ति, न ते कामगवेसिनो॥

रमणीय वन जहां (सामान्य) व्यक्ति रमण नहीं करते, (वहां) वीतराग (क्षीणाश्रव) रमण करेंगे (क्योंकि) वे कामभोगों की खोज में नहीं रहते।

अरहन्तवग्गो सत्तमो निट्ठितो।

८. सहस्सवग्गो

१००. सहस्समपि चे वाचा, अनत्थपदसंहिता।
एकं अत्थपदं सेय्यो, यं सुत्वा उपसम्मति॥

निरर्थक पदों से युक्त हजार वचनों की अपेक्षा एक (अकेला) सार्थक पद श्रेयस्कर होता है जिसे सुनकर (कोई व्यक्ति) (रागादि के उपशमन से) शांत हो जाता है।

१०१. सहस्समपि चे गाथा, अनत्थपदसंहिता।
एकं गाथापदं सेय्यो, यं सुत्वा उपसम्मति॥

निरर्थक पदों से युक्त हजार गाथाओं की अपेक्षा (वह) एक (अकेला सार्थक) गाथापद श्रेयस्कर होता है जिसे सुनकर (कोई व्यक्ति) शांत हो जाता है।

१०२. यो च गाथा सतं भासे, अनत्थपदसंहिता।
एकं धम्मपदं सेय्यो, यं सुत्वा उपसम्मति॥

जो (कोई) निरर्थक पदों से युक्त सौ गाथाएं बोले उसकी अपेक्षा एक (अकेला सार्थक) धर्मपद श्रेयस्कर होता है जिसे सुन कर (कोई व्यक्ति) शांत हो जाता है।

१०३. यो सहस्सं सहस्सेन, सङ्गामे मानुसे जिने।
एकञ्च जेय्यमत्तानं, स वे सङ्गामजुत्तमो॥

हजारों हजार मनुष्यों को संग्राम में जीतने वाले से भी एक अपने आपको जीतने वाला कहीं उत्तम संग्राम-विजेता होता है।

१०४. अत्ता हवे जितं सेय्यो, या चायं इतरा पजा।
अत्तदन्तस्स पोसस्स, निच्चं सञ्ञतचारिनो॥

इन अन्य लोगों को (द्यूत, धन-हरण, संग्राम अथवा बलाभिभव द्वारा) जीतने की अपेक्षा अपने आपको जीतना ही श्रेयस्कर है। जिस व्यक्ति ने स्वयं को दांत बना लिया है और जो अपने आपको नित्य संयत रखता है -

१०५. नेव देवो न गन्धब्बो, न मारो सह ब्रह्मुना।
जितं अपजितं कयिरा, तथारूपस्स जन्तुनो॥

उस प्रकार के व्यक्ति की जीत को न तो देव, न गंधर्व और न (ही) ब्रह्मा सहित मार (ही) पराजय में बदल सकते हैं।

१०६. **मासे मासे सहस्सेन, यो यजेथ सतं समं।**
एकञ्च भावितत्तानं, मुहुत्तमपि पूजये।
सायेव पूजना सेय्यो, यञ्चे वस्ससतं हुतं॥

जो (कोई) सौ वर्षों तक महीने-महीने हजार रुपये से यज्ञ करे और (स्रोतापन्न से लेकर क्षीणाश्रव तक) (किसी) भावितात्म (व्यक्ति की) मुहूर्त्त-भर ही पूजा कर ले तो सौ वर्षों के यज्ञ की अपेक्षा वह (मुहूर्त्त-भर की) पूजा ही श्रेयस्कर होती है।

१०७. **यो च वस्ससतं जन्तु, अग्गिं परिचरे वने।**
एकञ्च भावितत्तानं, मुहुत्तमपि पूजये।
सायेव पूजना सेय्यो, यञ्चे वस्ससतं हुतं॥

जो कोई व्यक्ति सौ वर्षों तक वन में अग्निहोत्र करे और (किसी) भावितात्म (व्यक्ति की) मुहूर्त भर ही पूजा कर ले, तो सौ वर्षों के हवन से वह (मुहूर्त भर की) पूजा ही श्रेयस्कर होती है।

१०८. **यं किञ्चि यिट्ठं व हुतं व लोके, संवच्छरं यजेथ पुञ्ञपेक्खो।**
सब्बम्पि तं न चतुभागमेति, अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्यो॥

पुण्य की इच्छा से जो कोई संसार में वर्ष-भर यज्ञ-हवन करे, तो भी वह (स्रोतापन्न से लेकर क्षीणाश्रव की किसी अवस्था को प्राप्त) सरलचित्त (व्यक्तियों) को किये जाने वाले अभिवादन के चतुर्थांश के बराबर भी नहीं होता।

१०९. **अभिवादनसीलिस्स, निच्चं वुड्ढापचायिनो।**
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति, आयु वण्णो सुखं बलं॥

जो अभिवादनशील है (और) नित्य बड़े-बूढ़ों की सेवा करता है, उसकी (ये) चार बातें बढ़ती हैं - आयु, वर्ण, सुख और बल।

११०. **यो च वस्ससतं जीवे, दुस्सीलो असमाहितो।**
एकाहं जीवितं सेय्यो, सीलवन्तस्स झायिनो॥

दु;शील और चित्त की एकाग्रता से रहित (व्यक्ति) के सौ वर्ष के जीवन से शीलवान और ध्यानी (व्यक्ति) का एक दिन का जीवन श्रेयस्कर होता है।

१११. **यो च वस्ससतं जीवे, दुप्पञ्ञो असमाहितो।**
एकाहं जीवितं सेय्यो, पञ्ञवन्तस्स झायिनो॥

दुष्प्रज्ञ और चित्त की एकाग्रता से रहित (व्यक्ति) के सौ वर्ष के जीवन से प्रज्ञावान और ध्यानी (व्यक्ति) का एक दिन का जीवन श्रेयस्कर होता है।

११२. यो च वस्ससतं जीवे, कुसीतो हीनवीरियो।
एकाहं जीवितं सेय्यो, वीरियमारभतो दळ्हं॥

आलसी और उद्योगरहित (व्यक्ति) के सौ वर्ष के जीवन से दृढ़ उद्योग करने वाले (व्यक्ति) का एक दिन का जीवन श्रेयस्कर होता है।

११३. यो च वस्ससतं जीवे, अपस्सं उदयब्बयं।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो उदयब्बयं॥

(पंचस्कंध के) उदय-व्यय को न देखने वाले (व्यक्ति) के सौ वर्ष के जीवन से उदय-व्यय को देखने वाले (व्यक्ति) का एक दिन का जीवन श्रेयस्कर होता है।

११४. यो च वस्ससतं जीवे, अपस्सं अमतं पदं।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो अमतं पदं॥

अमृत-पद (निर्वाण) को न देखने वाले (व्यक्ति) के सौ वर्ष के जीवन से अमृत-पद को देखने वाले (व्यक्ति) का एक दिन का जीवन श्रेयस्कर होता है।

११५. यो च वस्ससतं जीवे, अपस्सं धम्ममुत्तमं।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो धम्ममुत्तमं॥

उत्तम धर्म (नवविध लोकोत्तर धर्म अर्थात चार मार्ग, चार फल और निर्वाण) को न देखने वाले व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से उत्तम धर्म को देखने वाले (व्यक्ति) का एक दिन का जीवन श्रेयस्कर होता है।

सहस्सवग्गो अट्ठमो निट्ठितो।

९. पापवग्गो

११६. अभित्थरेथ कल्याणे, पापा चित्तं निवारये।
दन्धञ्हि करोतो पुञ्ञं, पापस्मिं रमती मनो॥

पुण्य (कर्म) करने में जल्दी करे, पाप (कर्म) से चित्त को हटाये, क्योंकि धीमी गति से पुण्य (कर्म) करने वाले का मन पाप (कर्म) में लीन होने लगता है।

११७. पापञ्चे पुरिसो कयिरा, न नं कयिरा पुनप्पुनं।
न तम्हि छन्दं कयिराथ, दुक्खो पापस्स उच्चयो॥

यदि पुरुष (कभी) पाप (कर्म) कर डाले, तो उसे बार-बार (तो) न करे। वह उसमें रुचि न ले, क्योंकि पाप (कर्मों) का संचय दुःख (का कारण) होता है।

११८. पुञ्ञञ्चे पुरिसो कयिरा, कयिरा नं पुनप्पुनं।
तम्हि छन्दं कयिराथ, सुखो पुञ्ञस्स उच्चयो॥

यदि पुरुष (कभी) पुण्य (कर्म) करे, तो उसे बार-बार करे। वह उसके प्रति उत्साह जगाये, (क्योंकि) पुण्य (कर्मों) का संचय सुख (का कारण) होता है।

११९. पापोपि पस्सति भद्रं, याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं, अथ पापो पापानि पस्सति॥

पापी भी (पाप को) (तब तक) अच्छा ही समझता है जब तक पाप का विपाक नहीं होता। और जब पाप का विपाक होता है, तब पापी पापों को देखने लगता है।

१२०. भद्रोपि पस्सति पापं, याव भद्रं न पच्चति।
यदा च पच्चति भद्रं, अथ भद्रो भद्रानि पस्सति॥

भद्र (पुण्य करनेवाला व्यक्ति) भी तब तक पाप को देखता है जब तक पुण्य का विपाक नहीं होता। जब पुण्य का परिपाक होता है, तब (वह) भद्र (व्यक्ति) पुण्यों को देखने लगता है।

१२१. मावमञ्ञेथ पापस्स, न मं तं आगमिस्सति।
उदबिन्दुनिपातेन, उदकुम्भोपि पूरति।
बालो पूरति पापस्स, थोकं थोकम्पि आचिनं॥

'वह मेरे पास नहीं आयगा' - ऐसा (सोच कर) पाप की अवहेलना न करे।

बूंद बूंद पानी गिरने से घड़ा भर जाता है। (ऐसे ही) थोड़ा थोड़ा संचय करता हुआ मूढ़ (व्यक्ति भी) पाप से भर जाता है।

१२२. मावमञ्ञेथ पुञ्ञस्स, न मं तं आगमिस्सति।
उदबिन्दुनिपातेन, उदकुम्भोपि पूरति।
धीरो पूरति पुञ्ञस्स, थोकं थोकम्पि आचिनं॥

'वह मेरे पास नहीं आयगा' - ऐसा (सोच कर) पुण्य की अवहेलना न करे। बूंद बूंद पानी गिरने से घड़ा भर जाता है। (ऐसे ही) थोड़ा थोड़ा संचय करता हुआ धीर (व्यक्ति) पुण्य से भर जाता है।

१२३. वाणिजोव भयं मग्गं, अप्पसत्थो महद्धनो।
विसं जीवितुकामोव, पापानि परिवज्जये॥

जैसे छोटे काफिले (परंतु) विपुल धन वाला व्यापारी भययुक्त मार्ग को, अथवा जीवित रहने की इच्छा वाला (व्यक्ति) विष को (छोड़ देता है), (वैसे ही) (मनुष्य) पापों को छोड़ दे।

१२४. पाणिम्हि चे वणो नास्स, हरेय्य पाणिना विसं।
नाब्बणं विसमन्वेति, नत्थि पापं अकुब्बतो॥

यदि हाथ में व्रण (घाव) न हो तो हाथ से विष को ले सकता है (क्योंकि) व्रणरहित (घावरहित) (शरीर में) विष नहीं चढ़ता है। (ऐसे ही) (पापकर्म) न करने वाले को पाप नहीं लगता।

१२५. यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति, सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स।
तमेव बालं पच्चेति पापं, सुखुमो रजो पटिवातंव खित्तो॥

जो निरपराध, निर्मल, दोषरहित व्यक्ति पर दोषारोपण करता है, उस (दोष लगाने वाले) मूर्ख को ही पाप लगता है; (जैसे कि) पवन की उल्टी दिशा में फेंकी गयी सूक्ष्म रज (फेंकने वाले पर ही आ गिरती है।)

१२६. गब्भमेके उप्पज्जन्ति, निरयं पापकम्मिनो।
सग्गं सुगतिनो यन्ति, परिनिब्बन्ति अनासवा॥

कोई (मनुष्य लोक में) गर्भ में उत्पन्न होते हैं, पापकर्मी नरक में (जाते हैं), सुगति वाले स्वर्ग में जाते हैं, और अनाश्रव (चित्तमलरहित) निर्वाण-लाभ करते हैं।

१२७. न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे, न पब्बतानं विवरं पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो, यत्थट्ठितो मुच्चेय्य पापकम्मा॥

न (अनंत) आकाश में, न समुद्र (की गहराइयों) में, न पर्वतों की (गुहा-) कंदराओं में प्रवेश करके- (इस) जगत में, कहीं भी तो ऐसा स्थान नहीं है जहां ठहरा हुआ (कोई) अपने पापकर्मों (अकुशल संस्कारों के कर्मफलों) को भोगने से बच सके।

१२८. न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे, न पब्बतानं विवरं पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो, यत्थट्ठितं नप्पसहेय्य मच्चु॥

न (अनंत) आकाश में, न समुद्र (की गहराइयों) में, न पर्वतों की (गुहा-) कंदराओं में प्रवेश करके- (इस) जगत में कहीं भी तो ऐसा स्थान नहीं है जहां ठहरे हुए को मृत्यु न पकड़ ले, न दबोच लें।

पापवग्गो नवमो निट्ठितो।

१०. दण्डवग्गो

१२९. सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बे भायन्ति मच्चुनो।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये॥

सभी दंड से डरते हैं। सभी को मृत्यु से भय लगता है। (अतः) (सभी को) अपने जैसा समझ कर न (किसी की) हत्या करे, न हत्या करने के लिए प्रेरित करे।

१३०. सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बेसं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये॥

सभी दंड से डरते हैं। जीवित रहना सबको प्रिय लगता है। (अतः) (सभी को) अपने जैसा समझ कर न (किसी की) हत्या करे, न हत्या करने के लिए प्रेरित करे।

१३१. सुखकामानि भूतानि, यो दण्डेन विहिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो, पेच्च सो न लभते सुखं॥

जो सुख चाहने वाले प्राणियों को, अपने सुख की चाह से, दंड से विहिंसित करता है (कष्ट पहुंचाता है), वह मर कर सुख नहीं पाता।

१३२. सुखकामानि भूतानि, यो दण्डेन न हिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो, पेच्च सो लभते सुखं॥

जो सुख चाहने वाले प्राणियों को, अपने सुख की चाह से, दंड से विहिंसित नहीं करता (कष्ट नहीं पहुंचाता है), वह मर कर सुख पाता है।

१३३. मावोच फरुसं कञ्चि, वुत्ता पटिवदेय्यु तं।
दुक्खा हि सारम्भकथा, पटिदण्डा फुसेय्यु तं॥

तुम किसी को कठोर वचन मत बोलो, बोलने पर (दूसरे भी) तुम्हे वैसे ही बोलेंगे। क्रोध या विवाद भरी वाणी दुःख है। उसके बदले में तुम्हे दंड मिलेगा।

१३४. सचे नेरेसि अत्तानं, कंसो उपहतो यथा।
एस पत्तोसि निब्बानं, सारम्भो ते न विज्जति॥

यदि (तुम) अपने आपको टूटे हुए कांसे के समान निःशब्द कर लो, तो

(समझो तुमने) निर्वाण पा लिया (क्योंकि) तुममें कोई विवाद नहीं रह गया, कोई प्रतिवाद नहीं रह गया।

१३५. यथा दण्डेन गोपालो, गावो पाजेति गोचरं।
एवं जरा च मच्चु च, आयुं पाजेन्ति पाणिनं॥

जैसे ग्वाला लाठी से गायों को चरागाह में हांक कर ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों की आयु को हांक कर ले जाते हैं।

१३६. अथ पापानि कम्मानि, करं बालो न बुज्झति।
सेहि कम्मेहि दुम्मेधो, अग्गिदड्ढोव तप्पति॥

बाल बुद्धि वाला मूर्ख (व्यक्ति) पापकर्म करते हुए होश नहीं रखता। (परंतु समय पाकर) अपने उन्हीं कर्मों के कारण वह दुर्मेध (दुर्बुद्धि) ऐसे तपता है जैसे आग से जला हो।

१३७. यो दण्डेन अदण्डेसु, अप्पदुट्ठेसु दुस्सति।
दसन्नमञ्ञतरं ठानं, खिप्पमेव निगच्छति॥

जो दंडरहितों (क्षीणाश्रवों) को दंड से (पीड़ित करता है) या निर्दोषों को दोष लगाता है, उसे इन दस बातों में से कोई एक बात शीघ्र ही होती है -

१३८. वेदनं फरुसं जानिं, सरीरस्स च भेदनं।
गरुकं वापि आबाधं, चित्तक्खेपञ्च पापुणे॥

(१) तीव्र वेदना, (२) हानि, (३) अंगभंग, (४) बड़ा रोग, (५) चित्तविक्षेप (उन्माद),

१३९. राजतो वा उपसग्गं, अब्भक्खानञ्च दारुणं।
परिक्खयञ्च ञातीनं, भोगानञ्च पभङ्गुरं॥

(६) राजदंड, (७) कड़ी निंदा, (८) संबंधियों का विनाश, (९) भोगों का क्षय, अथवा

१४०. अथ वास्स अगारानि, अग्गि डहति पावको।
कायस्स भेदा दुप्पञ्ञो, निरयं सोपपज्जति॥

इसके घर को आग जला डालती है। शरीर छूटने पर वह दुष्प्रज्ञ नरक में उत्पन्न होता है।

१४१. न नग्गचरिया न जटा न पङ्का, नानासक ाथण्डिलसायिक ावा।
रजोजल्लं उक्कु टिक प्पधानं,सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णक ङ्खं॥

जिस मनुष्य के संदेह समाप्त नहीं हुए हैं उसकी शुद्धि न नंगे रहने से, न जटा (धारण क रने) से, न कीचड़ (लपेटने) से, न उपवास क रने से, न क ड़ी भूमि पर सोने से, न क ादा पोतने से, और न उक ड़ूं बैठने से ही होती है।

१४२. अलङ्कतो चेपि समं चरेय्य, सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खु ॥

(वस्त्र, आभूषण आदि से) अलंकृ त रहते हुए भी यदि क ोई शांत, दान्त, स्थिर (नियंत्रित), ब्रह्मचारी है तथा सारे प्राणियों के प्रति दंड त्याग क र समता क ा आचरण क रता है, तो वह ब्राह्मण है, श्रमण है, भिक्षु है।

१४३. हिरीनिसेधो पुरिसो, क ोचि लोक स्मि विज्जति।
यो निन्दं अपबोधेति, अस्सो भद्रो क सामिव॥

संसार में क ोई (क ोई) पुरुष ऐसा भी होता है जो (स्वयं ही) लज्जा के मारे निषिद्ध (क र्म) नहीं क रता। वह निंदा क ो नहीं सह सक ता, जैसे सधा हुआ घोड़ा चाबुक क ो (नहीं सह सक ता)।

१४४. अस्सो यथा भद्रो क सानिविट्ठो, आतापिनो संवेगिनो भवाथ।
सद्धाय सीलेन च वीरियेन च, समाधिना धम्मविनिच्छयेन च।
सम्पन्नविज्जाचरणा पतिस्सता, जहिस्सथ दुक्खमिदं अनप्पकं ॥

चाबुक खाये उत्तम घोड़े के समान उद्योगशील और संवेगशील बनो। श्रद्धा, शील, वीर्य, समाधि और धर्म-विनिश्चय से युक्त हो विद्या और आचरण से संपन्न और स्मृतिमान बन इस महान दु:ख(-समूह) क ा अंत क र सक ोगे।

१४५. उदक ञ्हि नयन्ति नेत्तिक ा, उसुक ारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छक ा, अत्तानं दमयन्ति सुब्बता॥

पानी ले जाने वाले (जिधर चाहते हैं उधर ही) पानी क ो ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण क ो (तपा क र) सीधा क रते हैं, बढ़ई लक ड़ी क ो (अपनी रुचि के अनुसार) सीधा या बांक ा क रते हैं, और सदाचार-परायण अपना (ही) दमन क रते हैं।

दण्डवग्गो दसमो निट्ठितो।

११. जरावग्गो

१४६. को नु हासो किमानन्दो, निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनद्धा, पदीपं न गवेसथ॥

जहां प्रतिक्षण (सब कुछ) जल ही रहा हो, वहां कैसी हँसी? कैसा आनंद? (कैसा आमोद? कैसा प्रमोद?) ऐ (अविद्यारूपी) अंधकार से घिरे हुए (भोले लोगो!) तुम (ज्ञानरूपी) प्रकाश-प्रदीप की खोज क्यों नहीं करते?

१४७. पस्स चित्तकतं बिम्बं, अरुकायं समुस्सितं।
आतुरं बहुसङ्कप्पं, यस्स नत्थि धुवं ठिति॥

देखो (इस) चित्रित शरीर को जो व्रणों से युक्त, फूला हुआ, रोगी और नाना (प्रकार के) संकल्पों से युक्त है (और) जो सदा बना रहने वाला नहीं है।

१४८. परिजिण्णमिदं रूपं, रोगनीळं पभङ्गुरं।
भिज्जति पूतिसन्देहो, मरणन्तञ्हि जीवितं॥

यह शरीर जीर्ण-शीर्ण, रोग का घर और नितांत भंगुर है। सड़ायंध से भरी हुई (यह) देह टुकड़े-टुकड़े हो जाती है; जीवन मरणांतक जो ठहरा!

१४९. यानिमानि अपत्थानि, अलाबूनेव सारदे।
कापोतकानिअट्ठीनि, तानि दिस्वान का रति॥

शरद काल की फेंकी गयी (अपथ्य) लौकी के समान (कुम्हलाये हुए मृत शरीर को देख कर) या कबूतरों के से वर्ण वाली (श्मशान में पड़ी) हड्डियों को देख कर किसको (इस देह से) अनुराग होगा?

१५०. अट्ठीनं नगरं कतं, मंसलोहितलेपनं।
यत्थ जरा च मच्चु च, मानो मक्खो च ओहितो॥

यह हड्डियों का नगर बना है जो मांस और रक्त से लेपा गया है; जिसमें जरा, मृत्यु, अभिमान और म्रक्ष (डाह) छिपे हुए हैं।

१५१. जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता, अथो सरीरम्पि जरं उपेति।
सतञ्च धम्मो न जरं उपेति, सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति॥

रंग-बिरंगे सुचित्रित राजरथ जीर्ण हो जाते हैं और यह शरीर भी जीर्णता को

प्राप्त हो जाता है। (परंतु) संतों (बुद्धों) का धर्म जीर्ण नहीं होता (तरोताजा बना रहता है)। संतजन (बुद्ध) संतों से ऐसा (ही) कहते हैं।

१५२. अप्पस्सुतायं पुरिसो, बलिबद्दोव जीरति।
मंसानि तस्स वड्ढन्ति, पञ्ञा तस्स न वड्ढति॥

अज्ञानी पुरुष बैल के समान जीर्ण होता है। उसका मांस बढ़ता है, प्रज्ञा नहीं।

१५३. अनेकजातिसंसारं, सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारं गवेसन्तो, दुक्खा जाति पुनप्पुनं॥

(इस काया-रूपी) घर को बनाने वाले की खोज में (मैं) बिना रुके अनेक जन्मों तक (भव-) संसरण करता रहा, किंतु बार बार दुःख(-मय) जन्म ही हाथ लगे।

१५४. गहकारक दिट्ठोसि, पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा, गहकूटं विसङ्खतं।
विसङ्खारगतं चित्तं, तण्हानं खयमज्झगा॥

ऐ घर बनाने वाले! (अब) तू देख लिया गया है, (अब) फिर (तू) (नया) घर नहीं बना सकता। तेरी सारी कड़ियां टूट गयी हैं और घर का शिखर भी विशृंखलित हो गया है। चित्त पूरी तरह संस्काररहित हो गया है और तृष्णाओं का क्षय (निर्वाण) प्राप्त हो गया है।

१५५. अचरित्वा ब्रह्मचरियं, अलद्धा योब्बने धनं।
जिण्णकोञ्चाव झायन्ति, खीणमच्छेव पल्लले॥

ब्रह्मचर्य का पालन किये बिना (अथवा) यौवन में धन कमाये बिना (लोग वृद्धावस्था में) मत्स्यहीन जलाशय में बूढ़े (जीर्ण) क्रौंच पक्षी के समान घुट-घुट कर मरते हैं।

१५६. अचरित्वा ब्रह्मचरियं, अलद्धा योब्बने धनं।
सेन्ति चापातिखीणाव, पुराणानि अनुत्थुनं॥

ब्रह्मचर्य का पालन किये बिना (अथवा) यौवन में धन कमाये बिना (लोग) वृद्धावस्था में धनुष से छोड़े गये (बाण) की भांति पुरानी बातों को याद कर अनुताप करते हुए बिलखते हुए सोते हैं।

जरावग्गो एकादसमो निट्ठितो।

१२. अत्तवग्गो

१५७. अत्तानञ्चे पियं जञ्ञा, रक्खेय्य नं सुरक्खितं।
तिण्णं अञ्ञतरं यामं, पटिजग्गेय्य पण्डितो॥

यदि अपने को प्रिय समझते हो तो उसको सुरक्षित रखो। समझदार (व्यक्ति) (जीवन के) तीन प्रहरों (अवस्थाओं - युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था) में से (किसी) एक में (तो) अवश्य सचेत हो।

१५८. अत्तानमेव पठमं, पतिरूपे निवेसये।
अथञ्ञमनुसासेय्य, न किलिस्सेय्य पण्डितो॥

पहले अपने आपको ही उचित (कार्य) में लगाये, फिर (किसी) दूसरे को उपदेश करे, (तो) पंडित क्लेश को प्राप्त नहीं होगा।

१५९. अत्तानं चे तथा कयिरा, यथाञ्ञमनुसासति।
सुदन्तो वत दमेथ, अत्ता हि किर दुद्दमो॥

यदि पहले अपने को वैसा बनाये जैसा कि दूसरों को उपदेश देता है, तो अपने आपको सुदान्त करने वाला (भलीभांति वश में करने वाला) ही दूसरे का दमन कर सकता है।

१६०. अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया।
अत्तना हि सुदन्तेन, नाथं लभति दुल्लभं॥

मनुष्य (व्यक्ति) अपना स्वामी आप है, भला दूसरा कौन स्वामी हो सकता है? अपने आपको भली-भांति वश में करके (प्रज्ञा द्वारा ही) यह दुर्लभ (स्वामित्व) प्राप्त होता है।

१६१. अत्तना हि कतं पापं, अत्तजं अत्तसम्भवं।
अभिमत्थति दुम्मेधं, वजिरं वस्ममयं मणिं॥

अपने से पैदा हुआ, अपने से उत्पन्न, अपने द्वारा किया गया पाप(-कर्म) (इसे करने वाले) दुर्बुद्धि को उसी प्रकार पीड़ित करता है जिस प्रकार कि पाषाणमय मणि को वज्र।

१६२. यस्स अच्चन्तदुस्सील्यं, मालुवा सालमिवोत्थतं।
करोति सो तथत्तानं, यथा नं इच्छती दिसो॥

शाल वृक्ष पर फैली हुई मालुवा लता के समान जिसका दुराचार खूब (फैला हुआ है), वह अपने आपको वैसा ही बना लेता है जैसा कि उसके शत्रु चाहते हैं।

१६३. सुकरानि असाधूनि, अत्तनो अहितानि च।
यं वे हितञ्च साधुञ्च, तं वे परमदुक्करं॥

बुरे और अपने लिए अहितकारी (काम) करना सहल है, (किंतु) भला और हितकारी (काम) करना बड़ा दुष्कर है।

१६४. यो सासनं अरहतं, अरियानं धम्मजीविनं।
पटिक्कोसति दुम्मेधो, दिट्ठिं निस्साय पापिकं।
फलानि कट्ठकस्सेव, अत्तघाताय फल्लति॥

धर्म का जीवन जीने वाले, आर्य, अरहंतों के शासन (=शिक्षा) की जो दुर्बुद्धि पापपूर्ण दृष्टि के कारण निंदा करता है, वह बांस के फल (फूल) की भांति आत्म-हत्या के लिए (ही) फलता (फूलता) है।

१६५. अत्तना हि कतं पापं, अत्तना संकिलिस्सति।
अत्तना अकतं पापं, अत्तनाव विसुज्झति।
सुद्धी असुद्धि पच्चत्तं, नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये॥

अपने द्वारा किया गया पाप ही अपने को मैला करता है। स्वयं पाप न करे तो आदमी आप ही विशुद्ध बना रहे। शुद्धि-अशुद्धि तो प्रत्येक मनुष्य की अपनी-अपनी ही है। (अपने-अपने ही अच्छे-बुरे कर्मों के परिणामस्वरूप है।) कोई दूसरा भला किसी दूसरे को कैसे शुद्ध कर सकता है? (कैसे मुक्त कर सकता है?)

१६६. अत्तदत्थं परत्थेन, बहुनापि न हापये।
अत्तदत्थमभिञ्ञाय, सदत्थपसुतो सिया॥

परार्थ के लिए आत्मार्थ को बहुत ज्यादा भी न छोड़े। आत्मार्थ को जानकर सदर्थ में लगा रहे।

अत्तवग्गो द्वादसमो निट्ठितो।

१३. लोक वग्गो

१६७. हीनं धम्मं न सेवेय्य, पमादेन न संवसे।
मिच्छादिट्ठिं न सेवेय्य, न सिया लोकवड्ढनो॥

(पांच कामगुणों वाले) निकृष्ट धर्म का सेवन न करे, न प्रमाद में लिप्त हो। मिथ्यादृष्टि को न अपनाये, और अपने आवागमन को बढ़ाने वाला न बने।

१६८. उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य, धम्मं सुचरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति, अस्मिं लोके परम्हि च॥

उठे (उत्साही बने), प्रमाद न करे, सुचरित धर्म का आचरण करे। धर्मचारी इस लोक और परलोक (दोनों जगह) सुखपूर्वक विहार करता है।

१६९. धम्मं चरे सुचरितं, न नं दुच्चरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति, अस्मिं लोके परम्हि च॥

सुचरित धर्म का आचरण करे, दुराचरण से बचे। धर्मचारी इस लोक और परलोक (दोनों जगह) सुखपूर्वक विहार करता है।

१७०. यथा पुब्बुळकं पस्से, यथा पस्से मरीचिकं।
एवं लोकं अवेक्खन्तं, मच्चुराजा न पस्सति॥

जो (इस) लोक को बुलबुले के समान और मृग-मरीचिका के समान देखे, उस (ऐसे देखने वाले) की ओर मृत्युराज (आंख उठा कर) नहीं देखता।

१७१. एथ पस्सथिमं लोकं, चित्तं राजरथूपमं।
यत्थ बाला विसीदन्ति, नत्थि सङ्गो विजानतं॥

आओ, चित्रित राजरथ के समान इस लोक को देखो जहां मूढ़ (जन) आसक्त होते हैं, ज्ञानी जन आसक्त नहीं होते।

१७२. यो च पुब्बे पमज्जित्वा, पच्छा सो नप्पमज्जति।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥

जो पहले प्रमाद करके (भी) पीछे प्रमाद नहीं करता, वह मेघमुक्त चंद्रमा की भांति इस लोक को प्रकाशित करता है।

१७३. यस्स पापं कतं कम्मं, कुसलेन पिधीयति।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥

जो अपने पहले किये हुए पाप कर्म को (वर्तमान के) कुशल कर्म से ढँक लेता है, वह मेघमुक्त चंद्रमा की भांति इस लोक को खूब भासमान करता है।

१७४. अन्धभूतो अयं लोको, तनुकेत्थ विपस्सति।
सकुणो जालमुत्तोव, अप्पो सग्गाय गच्छति॥

यह लोक (प्रज्ञा चक्षु के अभाव में) अंधे जैसा है, यहां विपश्यना करने वाले थोड़े ही हैं। जाल से मुक्त हुए पक्षी की भांति विरले ही सुगति अथवा निर्वाण को जाते हैं। (बाकी तो जाल में ही फँसे रहते हैं।)

१७५. हंसादिच्चपथे यन्ति, आकासे यन्ति इद्धिया।
नीयन्ति धीरा लोकम्हा, जेत्वा मारं सवाहिनिं॥

हंस सूर्य-पथ (आकाश) में जाते हैं, (कोई) ऋद्धि-बल से आकाश में जाते हैं। पंडित लोग सेनासहित मार को जीत कर (इस) लोक से (निर्वाण को) ले जाये जाते हैं (अर्थात, निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं।)

१७६. एकं धम्मं अतीतस्स, मुसावादिस्स जन्तुनो।
वितिण्णपरलोकस्स, नत्थि पापं अकारियं॥

एक धर्म (सत्य) का अतिक्रमण कर जो झूठ बोलता है, परलोक के प्रति उदासीन ऐसे प्राणी के लिए कोई इस प्रकार का पाप नहीं रह जाता जो वह न कर सके।

१७७. न वे कदरिया देवलोकं वजन्ति, बाला हवे नप्पसंसन्ति दानं।
धीरो च दानं अनुमोदमानो, तेनेव सो होति सुखी परत्थ॥

कृपण (लोग) देवलोक में नहीं जाते हैं, मूढ़ (लोग) ही दान की प्रशंसा नहीं करते हैं। पंडित (व्यक्ति) दान का अनुमोदन करता हुआ उसी (कर्म के आधार) से परलोक में सुखी होता है।

१७८. पथब्या एकरज्जेन, सग्गस्स गमनेन वा।
सब्बलोकाधिपच्चेन, सोतापत्तिफलं वरं॥

पृथ्वी के एकच्छत्र राज्य, अथवा स्वर्गारोहण, (अथवा) सारे लोकों के आधिपत्य से अधिक उत्तम है स्रोतापत्ति का फल।

लोकवग्गो तेरसमो निट्ठितो।

१४. बुद्धवग्गो

१७९. यस्स जितं नावजीयति, जितं यस्स नो याति कोचि लोके।
तं बुद्धमनन्तगोचरं, अपदं केन पदेन नेस्सथ॥

जिसकी विजय को अविजय में नहीं पलटा जा सकता, जिसके द्वारा विजित (राग, द्वेष, मोहादि) वापस संसार में नहीं आते (पुनः नहीं बांधते), उस अपद अनंतगोचर बुद्ध को किस उपाय से मोहित (प्रलुब्ध) कर सकोगे?

१८०. यस्स जालिनी विसत्तिका, तण्हा नत्थि कुहिञ्चि नेतवे।
तं बुद्धमनन्तगोचरं, अपदं केन पदेन नेस्सथ॥

जिसकी जाल फैलाने वाली विषाक्त तृष्णा कहीं भी ले जाने में समर्थ नहीं रही, उस अनंतगोचर बुद्ध को किस उपाय से मोहित (प्रलुब्ध) कर सकोगे?

१८१. ये झानपसुता धीरा, नेक्खम्मूपसमे रता।
देवापि तेसं पिहयन्ति, सम्बुद्धानं सतीमतं॥

जो पंडित (जन) ध्यान (करने) में लगे रहते हैं, और त्याग और उपशमन में लगे रहते हैं, उन स्मृतिमान संबुद्धों की देवता भी स्पृहा करते हैं।

१८२. किच्छो मनुस्सपटिलाभो, किच्छं मच्चान जीवितं।
किच्छं सद्धम्मस्सवनं, किच्छो बुद्धानमुप्पादो॥

मनुष्य (योनि) प्राप्त होना कठिन है, मनुष्यों का जीवित रहना कठिन है, सद्धर्म का श्रवण (कर पाना) कठिन है और बुद्धों का उत्पन्न होना कठिन है।

१८३. सब्बपापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं॥

सभी पापकर्मों (अकुशल कर्मों) को न करना, पुण्यकर्मों की संपदा संचित करना, (पांच नीवरणों से) अपने चित्त को परिशुद्ध करना (धोते रहना) - यही बुद्धों की शिक्षा है।

१८४. खन्ती परमं तपो तितिक्खा, निब्बानं परमं वदन्ति बुद्धा।
न हि पब्बजितो परूपघाती, न समणो होति परं विहेठयन्तो॥

सहनशीलता और क्षमाशीलता परम तप है। बुद्ध (जन) निर्वाण को उत्तम

बतलाते हैं। दूसरे का घात करनेवाला प्रव्रजित नहीं होता और दूसरे को सताने वाला श्रमण नहीं हो सकता।

१८५. अनूपवादो अनूपघातो, पातिमोक्खे च संवरो।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं, पन्तञ्च सयनासनं।
अधिचित्ते च आयोगो, एतं बुद्धान सासनं॥

निंदा न करना, घात न करना, प्रातिमोक्ष (भिक्षु-नियमों) द्वारा अपने को सुरक्षित रखना, (अपने) आहार की मात्रा का जानकार होना, एकांत में सोना-बैठना और चित्त को एकाग्र करने के प्रयत्न में जुटना - यह (सभी) बुद्धों की शिक्षा है।

१८६. न कहापणवस्सेन, तित्ति कामेसु विज्जति।
अप्पस्सादा दुखा कामा, इति विञ्ञाय पण्डितो॥

स्वर्ण मुद्राओं की वर्षा से (भी) कामभोगों की तृप्ति नहीं हो सकती। यह जान कर कि कामभोग अल्प आस्वाद वाले और दुःखद होते हैं, (कोई) पंडित -

१८७. अपि दिब्बेसु कामेसु, रतिं सो नाधिगच्छति।
तण्हक्खयरतो होति, सम्मासम्बुद्धसावको॥

दैवी कामभोगों में भी आनंद प्राप्त नहीं करता। सम्यक संबुद्ध का श्रावक तृष्णा का क्षय करने में लगा रहता है।

१८८. बहुं वे सरणं यन्ति, पब्बतानि वनानि च।
आरामरुक्खचेत्यानि, मनुस्सा भयतज्जिता॥

मनुष्य भय के मारे पर्वतों, वनों, उद्यानों, वृक्षों, चैत्यों - आदि बहुतों की शरण में जाते हैं,

१८९. नेतं खो सरणं खेमं, नेतं सरणमुत्तमं।
नेतं सरणमागम्म, सब्बदुक्खा पमुच्चति॥

(परंतु) यह शरण मंगलकारी नहीं है, यह शरण उत्तम नहीं है। इस शरण को पाकर सभी दुःखों से छुटकारा नहीं होता।

१९०. यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च, सङ्घञ्च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि, सम्मप्पञ्ञाय पस्सति॥

१९१. **दुक्खं दुक्खसमुप्पादं, दुक्खस्स च अतिक्कमं।**
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥

१९२. **एतं खो सरणं खेमं, एतं सरणमुत्तमं।**
एतं सरणमागम्म, सब्बदुक्खा पमुच्चति॥

जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण गया है, जो चार आर्य सत्यों - दुःख, दुःख की उत्पत्ति, दुःख से मुक्ति और मुक्तिगामी आर्य अष्टांगिक मार्ग - को सम्यक प्रज्ञा से देखता है, यही मंगलदायक शरण है, यही उत्तम शरण है। इसी शरण को प्राप्त कर (व्यक्ति) सभी दुःखों से मुक्त होता है।

१९३. **दुल्लभो पुरिसाजञ्ञो, न सो सब्बत्थ जायति।**
यत्थ सो जायति धीरो, तं कुलं सुखमेधति॥

श्रेष्ठ पुरुष का जन्म दुर्लभ होता है, वह सब जगह पैदा नहीं होता। वह (उत्तम प्रज्ञा वाला) धीर (पुरुष) जहां उत्पन्न होता है उस कुल में सुख की वृद्धि होती है।

१९४. **सुखो बुद्धानमुप्पादो, सुखा सद्धम्मदेसना।**
सुखा सङ्घस्स सामग्गी, समग्गानं तपो सुखो॥

सुखदायी है बुद्धों का उत्पन्न होना, सुखदायी है सद्धर्म का उपदेश। सुखदायी है संघ की एकता, सुखदायी है एक साथ तपना।

१९५. **पूजारहे पूजयतो, बुद्धे यदि व सावके।**
पपञ्चसमतिक्कन्ते, तिण्णसोकपरिद्दवे॥

पूजा के योग्य बुद्धों अथवा उनके श्रावकों - जो (भव-) प्रपंच का अतिक्रमण कर चुके हैं और शोक तथा भय को पार कर गये हैं -

१९६. **ते तादिसे पूजयतो, निब्बुते अकुतोभये।**
न सक्का पुञ्ञं सङ्खातुं, इमेत्तमपि केनचि॥

निर्वाणप्राप्त, निर्भय हुए - ऐसे लोगों की पूजा के पुण्य का परिमाण इतना होगा, यह नहीं कहा जा सकता।

बुद्धवग्गो चुद्दसमो निट्ठितो।

१५. सुखवग्गो

१९७. सुसुखं वत जीवाम, वेरिनेसु अवेरिनो।
वेरिनेसु मनुस्सेसु, विहराम अवेरिनो॥

वैरियों के बीच अवैरी होकर, अहो! हम बड़े सुख से जी रहे हैं। वैरी मनुष्यों के बीच हम अवैरी होकर विचरण करते हैं।

१९८. सुसुखं वत जीवाम, आतुरेसु अनातुरा।
आतुरेसु मनुस्सेसु, विहराम अनातुरा॥

(तृष्णा से) आतुर (-व्याकुल) लोगों के बीच, अहो! हम अनातुर (-अनाकुल) रह कर बड़े सुख से जी रहे हैं। आतुर (रोगी) मनुष्यों में हम अनातुर (नीरोग) रह कर विचरण करते हैं।

१९९. सुसुखं वत जीवाम, उस्सुकेसु अनुस्सुका।
उस्सुकेसु मनस्सेसु, विहराम अनुस्सुका॥

(कामभोगोंके प्रति) आसक्त (लोभी) लोगों के बीच हम अनासक्त (अलोभी) होकर, अहो! हम बड़े सुख से जी रहे हैं। लोभी के बीच हम निर्लोभी होकर विचरण करते हैं।

२००. सुसुखं वत जीवाम, येसं नो नत्थि किञ्चनं।
पीतिभक्खा भविस्साम, देवा आभस्सरा यथा॥

जिनके पास कुछ नहीं है, अहो! (वैसे हम) कैसे बड़े सुख से जी रहे हैं। आभास्वर देवताओं के समान हम प्रीति का (ही) भोजन करने वाले होंगे।

२०१. जयं वेरं पसवति, दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति, हित्वा जयपराजयं॥

विजय वैर को जन्म देती है, पराजित (व्यक्ति) दुःख (की नींद) सोता है। जिसके (रागद्वेषादि) शांत हो गये हैं वह (क्षीणाश्रव) जय और पराजय को छोड़ कर सुख (की नींद) सोता है।

२०२. नत्थि रागसमो अग्गि, नत्थि दोससमो कलि।
नत्थि खन्धसमा दुक्खा, नत्थि सन्तिपरं सुखं॥

राग के समान (कोई) आग नहीं, द्वेष के समान (कोई) दुर्भाग्य नहीं, पंचस्कंध

(रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान) के समान (कोई) दुःख नहीं, शांति (निर्वाण) से बढ़ कर (कोई) सुख नहीं।

२०३. जिघच्छापरमा रोगा, सङ्खारपरमा दुखा।
एतं ञत्वा यथाभूतं, निब्बानं परमं सुखं॥

भूख (तृष्णा) सबसे बड़ा रोग है। भूख संस्कार सबसे बड़ा दुःख। (तृष्णा और उससे बनते संस्कारों को अपने भीतर विपश्यना साधना द्वारा) यथाभूत जानकर जो निर्वाण (प्राप्त होता) है, वह सबसे बड़ा सुख है।

२०४. आरोग्यपरमा लाभा, सन्तुट्ठिपरमं धनं।
विस्सासपरमा ञाति, निब्बानं परमं सुखं॥

आरोग्य परम लाभ है, संतुष्टि परम धन है, विश्वास परम बंधु है, निर्वाण परम सुख है।

२०५. पविवेक रसं पित्वा, रसं उपसमस्स च।
निद्दरो होति निप्पापो, धम्मपीतिरसं पिवं॥

पूर्ण एकांत का रस-पान कर और (ऐसे ही) शांति (निर्वाण) का रस-पान कर व्यक्ति निडर होता है और धर्म-प्रीति का रस-पान कर वह निष्पाप हो जाता है।

२०६. साहु दस्सनमरियानं, सन्निवासो सदा सुखो।
अदस्सनेन बालानं, निच्चमेव सुखी सिया॥

आर्यो (श्रेष्ठ पुरुषों) का दर्शन अच्छा होता है, संतों के साथ निवास सदा सुखकर होता है। मूढ़ (पुरुषों) के अदर्शन से सदा सुखी बने रहो।

२०७. बालसङ्गतचारी हि, दीघमद्धान सोचति।
दुक्खो बालेहि संवासो, अमित्तेनेव सब्बदा।
धीरो च सुखसंवासो, ञातीनंव समागमो॥

मूढ़ (पुरुषों) के साथ संगत करने वाला दीर्घ काल तक शोकग्रस्त रहता है, मूढ़ों का सहवास शत्रु के समान सदा दुःखदायी होता है, बंधुओं के समागम की भांति ज्ञानियों का सहवास सुखदायी होता है।

२०८. तस्मा हि धीरञ्च पञ्ञञ्च बहुस्सुतञ्च, धोरय्हसीलं वतवन्तमरियं।
तं तादिसं सप्पुरिसं सुमेधं, भजेथ नक्खत्तपथंव चन्दिमा॥

इसलिए धीर, प्रज्ञावान, बहुश्रुत, उद्योगी, व्रती, आर्य - ऐसे सुमेध सत्पुरुष का (एवंविध) साहचर्य करे जैसे चंद्रमा नक्षत्र-पथ का करता है।

सुखवग्गो पन्नरसमो निट्ठितो।

१६. पियवग्गो

२०९. अयोगे युञ्जमत्तानं, योगस्मिञ्च अयोजयं।
अत्थं हित्वा पियग्गाही, पिहेतत्तानुयोगिनं॥

अनुचित कर्म (अयोनिसोमनसिकार) में लगा हुआ, उचित कर्म (योनिसोमनसिकार) में न लगने वाला और सदर्थ को छोड़ कर (पांच कामगुणरूपी) प्रिय को पकड़ने वाला (उस पुरुष की) स्पृहा करे जो आत्मोन्नति में लगा हो।

२१०. मा पियेहि समागञ्छि, अप्पियेहि कुदाचनं।
पियानं अदस्सनं दुक्खं, अप्पियानञ्च दस्सनं॥

प्रियों (सत्त्वों अथवा संस्कारों) का संग न करे और न कभी अप्रियों का ही। प्रियों का अदर्शन (न दिखना) दुःखदायी होता है और अप्रियों का दर्शन (अर्थात, दिख जाना) भी दुःखदायी होता है।

२११. तस्मा पियं न कयिराथ, पियापायो हि पापको।
गन्था तेसं न विज्जन्ति, येसं नत्थि पियाप्पियं॥

इसलिए (किसी को) प्रिय न बनाये, क्योंकि प्रिय का वियोग बुरा लगता है। जिनके (कोई) प्रिय-अप्रिय नहीं होते, उनके कोई बंधन नहीं होते।

२१२. पियतो जायती सोको, पियतो जायती भयं।
पियतो विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं॥

प्रिय (वस्तु) से शोक उत्पन्न होता है, प्रिय से भय उत्पन्न होता है। प्रिय (के बंधन) से विमुक्त (व्यक्ति) को शोक नहीं होता, फिर भय कहां से (होगा)?

२१३. पेमतो जायती सोको, पेमतो जायती भयं।
पेमतो विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं॥

प्रेम (करने) से शोक उत्पन्न होता है, प्रेम से भय उत्पन्न होता है। प्रेम (के बंधन) से विमुक्त (व्यक्ति) को शोक नहीं होता, फिर भय कहां से (होगा)?

२१४. रतिया जायती सोको, रतिया जायती भयं।
रतिया विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं॥

(पंचकामगुणात्मक)राग (करने) से शोक उत्पन्न होता है, राग से भय उत्पन्न

होता है। राग (के बंधन) से विमुक्त (व्यक्ति) को शोक नहीं होता, फिर भय कहां से (होगा)?

२१५. कामतो जायती सोको, कामतो जायती भयं।
कामतो विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं॥

काम (कामना) से शोक उत्पन्न होता है, काम से भय उत्पन्न होता है। काम से विमुक्त (व्यक्ति) को शोक नहीं होता। फिर भय कहां से (होगा)?

२१६. तण्हाय जायती सोको, तण्हाय जायती भयं।
तण्हाय विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं॥

(छः द्वारों पर होनेवाली) तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय उत्पन्न होता है। तृष्णा से विमुक्त (व्यक्ति) को शोक नहीं होता, फिर भय कहां से (होगा)?

२१७. सीलदस्सनसम्पन्नं, धम्मट्ठं सच्चवेदिनं।
अत्तनो कम्म कुब्बानं, तं जनो कुरुते पियं॥

जो शीलसंपन्न, सम्यक दृष्टिसंपन्न, धर्मनिष्ठ (नव प्रकार के लोकोत्तर धर्मों में स्थित), सत्यवादी, कर्तव्यपरायण है, उसे लोग प्यार करते हैं।

२१८. छन्दजातो अनक्खाते, मनसा च फुटो सिया।
कामेसुच अप्पटिबद्धचित्तो, उद्धंसोतोति वुच्चति॥

जो अनाख्यात (अवर्णनीय, निर्वाण) का अभिलाषी हो, उसी में जिसका मन लगा हो, और (अनागामी मार्ग में होने से) कामभोगों में जिसका चित्त न रुंधा हो, वह ऊर्ध्वस्रोत कहा जाता है।

२१९. चिरप्पवासिं पुरिसं, दूरतो सोत्थिमागतं।
ञातिमित्ता सुहज्जा च, अभिनन्दन्ति आगतं॥

(जैसे) चिरकाल तक परदेस में रहने के बाद दूर (देश) से सकुशल घर आये पुरुष का संबंधी, मित्र और हितैषीजन स्वागत करते हैं;

२२०. तथेव कतपुञ्ञम्पि, अस्मा लोका परं गतं।
पुञ्ञानि पटिगण्हन्ति, पियं ञातीव आगतं॥

वैसे ही पुण्यकर्मा (पुरुष) के इस लोक से पर (-लोक) में जाने पर (उसके)

पुण्य उसका वैसे ही स्वागत करते हैं जैसे (अपने) प्रिय के लौटने पर उसके संबंधी (उसका स्वागत करते हैं)।

पियवग्गो सोळसमो निट्ठितो।

१७. कोधवग्गो

२२१. कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं, संयोजनं सब्बमतिक्कमेय्य।
तं नामरूपस्मिमसज्जमानं, अकिञ्चनं नानुपतन्ति दुक्खा॥

क्रोध को छोड़ दे, अभिमान का त्याग करे, सारे संयोजनों (बंधनों) को पार कर जाय। ऐसे नामरूप में आसक्त न होने वाले अपरिग्रही को दुःख संतप्त नहीं करते।

२२२. यो वे उप्पतितं कोधं, रथं भन्तंव वारये।
तमहं सारथिं ब्रूमि, रस्मिग्गाहो इतरो जनो॥

जो भड़के हुए क्रोध को (बड़े वेग से) घूमते हुए रथ के समान रोक ले, उसे मैं सारथि कहता हूं, दूसरे लोग तो (मात्र) लगाम पकड़ने वाले होते हैं।

२२३. अक्कोधेन जिने कोधं, असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन, सच्चेनालिकवादिनं॥

अक्रोध से क्रोध को जीते, अभद्र को भद्र बन कर जीते, कृपण को दान से जीते और झूठ बोलने वाले को सत्य से (जीते)।

२२४. सच्चं भणे न कुज्झेय्य, दज्जा अप्पम्पि याचितो।
एतेहि तीहि ठानेहि, गच्छे देवान सन्तिके॥

सच बोले, क्रोध न करे, मांगने पर थोड़ा रहते भी दे। इन तीन कारणों से (कोई व्यक्ति) देवताओं के निकट (अर्थात, देवलोक में) चला जाता है।

२२५. अहिंसका ये मुनयो, निच्चं कायेन संवुता।
ते यन्ति अच्चुतं ठानं, यत्थ गन्त्वा न सोचरे॥

जो मुनि (जन) अहिंसक हैं और जो सदा काया में संयत रहते हैं, वे उस अच्युत (शाश्वत) स्थान (निर्वाण) को पा लेते हैं जहां पहुँच कर शोक नहीं करते।

२२६. सदा जागरमानानं, अहोरत्तानुसिक्खिनं।
निब्बानं अधिमुत्तानं, अत्थं गच्छन्ति आसवा॥

जो सदा जागरूक रहते हैं, रात-दिन सीखने में लगे रहते हैं और जिनका ध्येय निर्वाण प्राप्त करना है, उनके आश्रव नष्ट हो जाते हैं।

२२७. **पोराणमेतं अतुल, नेतं अज्जतनामिव।**
निन्दन्ति तुण्हिमासीनं, निन्दन्ति बहुभाणिनं।
मितभाणिम्पि निन्दन्ति, नत्थि लोके अनिन्दितो॥

हे अतुल! यह पुरानी बात है, आज की नहीं - (लोग) चुप बैठे हुए की निंदा करते हैं, बहुत बोलने वाले की निंदा करते हैं, मितभाषी की भी निंदा करते हैं। संसार में अनिंदित कोई नहीं है।

२२८. **न चाहु न च भविस्सति, न चेतरहि विज्जति।**
एकन्तं निन्दितो पोसो, एकन्तं वा पसंसितो॥

ऐसा पुरुष जिसकी निंदा ही निंदा होती हो, या प्रशंसा ही प्रशंसा, न (कभी) था, न होगा, न इस समय है।

२२९. **यं चे विञ्ञू पसंसन्ति, अनुविच्च सुवे सुवे।**
अच्छिद्दवुत्तिं मेधाविं, पञ्ञासीलसमाहितं॥

विज्ञ (लोग) सोच विचार कर जिस प्रज्ञा वा शील से युक्त, निर्दोष, मेधावी की दिन-प्रतिदिन प्रशंसा करते हैं -

२३०. **निक्खं जम्बोनदस्सेव, को तं निन्दितुमरहति।**
देवापि नं पसंसन्ति, ब्रह्मुनापि पसंसितो॥

जम्बोनद सोने की अशर्फी के समान उसकी कौन निंदा कर सकता है? देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं, वह ब्रह्मा द्वारा भी प्रशंसित होता है।

२३१. **कायप्पकोपं रक्खेय्य, कायेन संवुतो सिया।**
कायदुच्चरितं हित्वा, कायेन सुचरितं चरे॥

कायिक चंचलता से बचा रहे, काय से संयत रहे। कायिक दुराचार को त्याग कर शरीर से सदाचरण करे।

२३२. **वचीपकोपं रक्खेय्य, वाचाय संवुतो सिया।**
वचीदुच्चरितं हित्वा, वाचाय सुचरितं चरे॥

वाचिक चंचलता से बचा रहे, वाणी से संयत रहे। वाचिक दुराचार को त्याग कर वाणी का सदाचरण करे।

२३३. **मनोपकोपं रक्खेय्य, मनसा संवुतो सिया।**
मनोदुच्चरितं हित्वा, मनसा सुचरितं चरे॥

मानसिक चंचलता से बचे, मन से संयत रहे (उसे संयमित रखे)। मानसिक दुराचार को त्याग कर मानसिक सदाचरण करे।

२३४. कायेन संवुता धीरा, अथो वाचाय संवुता।
मनसा संवुता धीरा, ते वे सुपरिसंवुता॥

जो धीर पुरुष कायसे संयत हैं, वाणी से संयत हैं, मन से संयत हैं, वे ही पूर्णतया संयत हैं।

कोधवग्गो सत्तरसमो निट्ठितो।

१८. मलवग्गो

२३५. पण्डुपलासोव दानिसि, यमपुरिसापि च ते उपट्ठिता।
उय्योगमुखे च तिट्ठसि, पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति॥

(अरे उपासक !) पीले पत्ते के समान इस समय तू है, यमदूत तेरे पास खड़े हैं (अर्थात, अब तू मरणासन्न है), तू प्रयाण के लिए तैयार है और (कुशल कर्मों का) पाथेय (रास्ते की खुराक) तेरे पास कुछ नहीं है।

२३६. सो करोहि दीपमत्तनो, खिप्पं वायम पण्डितो भव।
निद्धन्तमलो अनङ्गणो, दिब्बं अरियभूमिं उपेहिसि॥

सो तू अपने लिए द्वीप (रक्षास्थल) बना, शीघ्र ही (साधना का) अभ्यास कर पंडित हो जा। (तू) मल का प्रक्षालन कर, निर्मल बन, दिव्य आर्यभूमि (पांच प्रकार की शुद्धावास भूमि) को पा लेगा।

२३७. उपनीतवयो च दानिसि, सम्पयातोसि यमस्स सन्तिके।
वासो ते नत्थि अन्तरा, पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति॥

अब तेरी आयु समाप्त हो चुकी है, तू यम के निकट पहुँच गया है, बीच में तेरा कोई ठिकाना भी नहीं है और न ही तेरे पास (कोई) पाथेय (रास्ते की खुराक) है।

२३८. सो करोहि दीपमत्तनो, खिप्पं वायम पण्डितो भव।
निद्धन्तमलो अनङ्गणो, न पुनं जातिजरं उपेहिसि॥

सो तू अपने लिए द्वीप बना, शीघ्र ही (साधना का) अभ्यास कर पंडित हो जा। (तू) मल का प्रक्षालन कर, निर्मल बन, पुनः जन्म, जरा (रोग तथा मृत्यु) के बंधन में नहीं पड़ेगा।

२३९. अनुपुब्बेन मेधावी, थोकं थोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव, निद्धमे मलमत्तनो॥

समझदार व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने मैल को क्रमशः थोड़ा-थोड़ा क्षण-प्रतिक्षण वैसे ही दूर करे जैसे कि रजतकार (सुनार) चांदी के मैल को दूर करता है।

२४०. अयसाव मलं समुट्ठितं, तदुट्ठाय तमेव खादति।
एवं अतिधोनचारिनं, सानि कम्मानि नयन्ति दुग्गतिं॥

जैसे लोहे के ऊपर उठा हुआ मल (जंग) उसी पर उठ कर उसी को खाता है, वैसे ही मर्यादा का उल्लंघन करने वाले (व्यक्ति) के अपने (ही) कर्म (उसे) दुर्गति की ओर ले जाते हैं।

२४१. असज्झायमला मन्ता, अनुट्ठानमला घरा।
मलं वण्णस्स कोसज्जं, पमादो रक्खतो मलं॥

स्वाध्याय न करना परियत्ति का मल है, मरम्मत न करना (झाड़ू-बुहारू न करना) घरों का मल है, आलस्य सौंदर्य का मल है और प्रमाद प्रहरी का मल है।

२४२. मलित्थिया दुच्चरितं, मच्छेरं ददतो मलं।
मला वे पापका धम्मा, अस्मिं लोके परम्हि च॥

दुश्चरित्र होना स्त्री का मल है, कृपणता दाता का मल है और (सभी) पापपूर्ण (अकुशल) धर्म इहलोक और परलोक के मल हैं।

२४३. ततो मला मलतरं, अविज्जा परमं मलं।
एतं मलं पहन्त्वान, निम्मला होथ भिक्खवो॥

उससे भी बढ़ कर अविद्या (आठ प्रकार का अज्ञान) परम मल है। हे साधको! इस मल को दूर करके निर्मल बन जाओ।

२४४. सुजीवं अहिरिकेन, काकसूरेन धंसिना।
पक्खन्दिना पगब्भेन, संकिलिट्ठेन जीवितं॥

(पापाचार के प्रति) निर्लज्ज, कौवे के समान (छीनने में) शूर, (परहित-) विनाशी, आत्मश्लाघी (शेखीखोर) (बड़बोल), दु:साहसी, मलिन (पुरुष) का जीवन सुखपूर्वक बीतता हुआ (देखा जाता है)।

२४५. हिरीमता च दुज्जीवं, निच्चं सुचिगवेसिना।
अलीनेनाप्पगब्भेन, सुद्धाजीवेन पस्सता॥

(पापाचार के प्रति) लजालु, नित्य पवित्रता का ध्यान रखने वाले, अप्रमादी, अनुच्छृंखल, शुद्ध जीविका वाले (पुरुष) के जीवन को कठिनाई से बीतते (देखा जाता है)।

२४६. यो पाणमतिपातेति, मुसावादञ्च भासति।
लोके अदिन्नमादियति, परदारञ्च गच्छति॥

२४७. सुरामेरयपानञ्च, यो नरो अनुयुञ्जति।
इधेवमेसो लोकस्मिं, मूलं खणति अत्तनो॥

जो संसार में हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, परस्त्रीगमन करता है, मद्यपान (सुरा एवं मेरय का पान) करता है, वह व्यक्ति यहीं - इसी लोक में - अपनी जड़ खोदता है।

२४८. एवं भो पुरिस जानाहि, पापधम्मा असञ्ञता।
मा तं लोभो अधम्मो च, चिरं दुक्खाय रन्धयुं॥

हे पुरुष! ऐसा जान कि अकुशलधर्म पर संयम करना आसान नही है। तुझे लोभ (राग) तथा अधर्म (पाप, अकुशल धर्म) चिरकाल तक दुःख में न रांधते (पकाते) रहें।

२४९. ददाति वे यथासद्धं, यथापसादनं जनो।
तत्थ यो मङ्कु भवति, परेसं पानभोजने।
न सो दिवा वा रत्तिं वा, समाधिमधिगच्छति॥

लोग अपनी श्रद्धा और प्रसन्नता के अनुरूप दान देते हैं। दूसरों के खाने-पीने से जो खिन्न होता है वह दिन हो या रात (कभी भी) (उपचार अथवा अर्पणा) समाधि को प्राप्त नहीं करता है।

२५०. यस्स चेतं समुच्छिन्नं, मूलघच्चं समूहतं।
स वे दिवा वा रत्तिं वा, समाधिमधिगच्छति॥

(किंतु) जिसकी ऐसी मनोवृत्ति उच्छिन्न हो गयी है (समूल नष्ट हो गयी है) वही, दिन हो या रात (सदैव), एकाग्रता को प्राप्त होता है।

२५१. नत्थि रागसमो अग्गि, नत्थि दोससमो गहो।
नत्थि मोहसमं जालं, नत्थि तण्हासमा नदी॥

राग के समान अग्नि नहीं है, न द्वेष के समान जकड़न। मोह के समान फंदा नहीं है, न तृष्णा के समान नदी।

२५२. सुदस्सं वज्जमञ्ञेसं, अत्तनो पन दुद्दसं।
परेसं हि सो वज्जानि, ओपुनाति यथा भुसं।
अत्तनो पन छादेति, कलिंव कितवा सठो॥

दूसरों का दोष देखना आसान है, किंतु अपना (दोष) देखना कठिन। वह

(व्यक्ति) दूसरों के दोषों को भूसे की तरह उड़ाता फिरता है, किंतु अपने दोषों को वैसे ही ढँकता है जैसे बेईमान जुआरी पासे को।

२५३. परवज्जानुपस्सिस्स, निच्चं उज्झानसञ्ञिनो।
आसवा तस्स वड्ढन्ति, आरा सो आसवक्खया॥

दूसरों के दोषों को देखने में लगे हुए, सदा शिकायत करने की चेतना वाले (व्यक्ति) के आश्रव (चित्त-मल) बढ़ते हैं। वह आश्रवों के क्षय से दूर होता है।

२५४. आकासेव पदं नत्थि, समणो नत्थि बाहिरे।
पपञ्चाभिरता पजा, निप्पपञ्चा तथागता॥

आकाश में कोई पद (चिह्न) नहीं होता, (बुद्ध-शासन से) बाहर (कोई) श्रमण नहीं होता। लोग भांति-भांति के प्रपंचों में पड़े रहते हैं, (किंतु) तथागत निष्प्रपंच होते हैं।

२५५. आकासेव पदं नत्थि, समणो नत्थि बाहिरे।
सङ्खारा सस्सता नत्थि, नत्थि बुद्धानमिञ्जितं॥

आकाश में (कोई) पद (चिह्न) नहीं होता, (बुद्ध-शासन से) बाहर (मुक्ति के मार्ग पर चलता हुआ या मुक्ति का फल-प्राप्त) (कोई) श्रमण नहीं होता, संस्कार (पांच स्कंध) शाश्वत नहीं होते, बुद्धों में (किसी प्रकार की) चंचलता नहीं होती।

मलवग्गो अट्ठारसमो निट्ठितो।

१९. धम्मट्ठवग्गो

२५६. न तेन होति धम्मट्ठो, येनत्थं साहसा नये।
यो च अत्थं अनत्थञ्च, उभो निच्छेय्य पण्डितो॥

जो (व्यक्ति) सहसा किसी बात का निश्चय कर ले, वह धर्मिष्ठ नहीं कहा जाता। जो अर्थ और अनर्थ दोनों का चिंतन कर निश्चय करे वह पंडित (कहलाता है)।

२५७. असाहसेन धम्मेन, समेन नयती परे।
धम्मस्स गुत्तो मेधावी, "धम्मट्ठो"ति पवुच्चति॥

जो (व्यक्ति) धीरज के साथ, धर्मपूर्वक, निष्पक्ष होकर दूसरों का मार्गदर्शन करता है, वह धर्मरक्षक मेधावी 'धर्मिष्ठ' कहा जाता है।

२५८. न तेन पण्डितो होति, यावता बहु भासति।
खेमी अवेरी अभयो, "पण्डितो"ति पवुच्चति॥

(संघ के बीच) बहुत बोलने से (कोई) पंडित नहीं हो जाता। (कुशल-)क्षेम से रहने वाला, वैर-रहित तथा निर्भय (व्यक्ति) ही 'पंडित' कहा जाता है।

२५९. न तावता धम्मधरो, यावता बहु भासति।
यो च अप्पम्पि सुत्वान, धम्मं कायेन पस्सति।
स वे धम्मधरो होति, यो धम्मं नप्पमज्जति॥

बहुत बोलने से (कोई) धर्मधर नहीं हो जाता। जो (कोई) थोड़ी सी भी (धर्म की बात) सुन कर काय से धर्म का दर्शन करने लगता है (अर्थात, विपश्यना करने लगता है) और जो धर्म (के आचरण) में प्रमाद नहीं करता, वही निःसंदेह 'धर्मधर' होता है।

२६०. न तेन थेरो सो होति, येनस्स पलितं सिरो।
परिपक्को वयो तस्स, "मोघजिण्णो"ति वुच्चति॥

सिर के (बाल) पकने से (कोई) स्थविर नहीं हो जाता, (केवल) उसकी आयु पकी है, वह तो 'मोघजीर्ण' (व्यर्थ का वृद्ध हुआ) कहा जाता है।

२६१. यम्हि सच्चञ्च धम्मो च, अहिंसा संयमो दमो।
स वे वन्तमलो धीरो, "थेरो" इति पवुच्चति॥

जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम और दम है, वही विगतमल, धृतिसंपन्न स्थविर कहा जाता है।

२६२. न वाक्करणमत्तेन, वण्णपोक्खरताय वा।
साधुरूपो नरो होति, इस्सुकी मच्छरी सठो॥

जो ईर्ष्यालु, मत्सरी और शठ है, वह वक्तामात्र होने से अथवा सुंदर-रूप होने से 'साधुरूप' मनुष्य नहीं हो जाता।

२६३. यस्स चेतं समुच्छिन्नं, मूलघच्चं समूहतं।
स वन्तदोसो मेधावी, "साधुरूपो"ति वुच्चति॥

जिसके (भीतर से) ये (ईर्ष्या, मात्सर्य आदि) जड़मूल से सर्वथा उच्छिन्न हो गये हैं, वह विगतदोष मेधावी (पुरुष) 'साधुरूप' कहा जाता है।

२६४. न मुण्डकेन समणो, अब्बतो अलिकं भणं।
इच्छालोभसमापन्नो, समणो किं भविस्सति॥

जो (शीलव्रत और धुतांगव्रत पालन न करने से) अव्रती है (और) जो झूठ बोलने वाला है, वह सिर मुँड़ा लेने (मात्र) से श्रमण नहीं हो जाता। इच्छा और लोभ से ग्रस्त भला क्या श्रमण होगा?

२६५. यो च समेति पापानि, अणुं थूलानि सब्बसो।
समितत्ता हि पापानं, "समणो"ति पवुच्चति॥

जो छोटे-बड़े पापों का सर्वशः शमन कर लेता है, पापों के शमित होने के कारण वह 'श्रमण' कहा जाता है।

२६६. न तेन भिक्खु सो होति, यावता भिक्खते परे।
विस्सं धम्मं समादाय, भिक्खु होति न तावता॥

दूसरों से भिक्षा मांगने (मात्र) से (कोई) भिक्षु नहीं हो जाता, और न ही भिक्षु होता है विषम धर्म को ग्रहण करने से।

२६७. योध पुञ्ञञ्च पापञ्च, बाहेत्वा ब्रह्मचरियवा।
सङ्खाय लोके चरति, स वे "भिक्खू"ति वुच्चति॥

जो यहां (इस शासन में) पुण्य और पाप को दूर रखकर, ब्रह्मचारी बन, विचार करके लोक में विचरण करता है, वही वस्तुतः 'भिक्षु' कहा जाता है।

२६८. न मोनेन मुनी होति, मूळ्हरूपो अविद्दसु।
यो च तुलंव पग्गय्ह, वरमादाय पण्डितो॥

अविद्वान और मूढ़-समान (पुरुष) (केवल) मौन रहने से मुनि नहीं हो जाता। जो पंडित तराजू के समान तोल कर (शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति, विमुक्तिज्ञानदर्शन-रूपी) उत्तम (तत्त्व) को ग्रहण कर -

२६९. पापानि परिवज्जेति, स मुनी तेन सो मुनि।
यो मुनाति उभो लोके, "मुनि" तेन पवुच्चति॥

पाप(-कर्मों) का परित्याग कर देता है, वह मुनि होता है - इस बात से वह मुनि होता है। चूंकि वह दोनों लोकों का मनन करता है, इस कारण वह 'मुनि' कहा जाता है।

२७०. न तेन अरियो होति, येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सब्बपाणानं, "अरियो"ति पवुच्चति॥

प्राणियों की हिंसा करने से (कोई) आर्य नहीं हो जाता। सभी प्राणियों की हिंसा न करने से वह 'आर्य' कहा जाता है।

२७१. न सीलब्बतमत्तेन, बाहुसच्चेन वा पन।
अथ वा समाधिलाभेन, विवित्तसयनेन वा॥

केवल शील (पालने) और व्रत (करने) से, या बहुश्रुत होने से, या समाधि के लाभ से, या एकांत में शयन करने (एकांतवासी होने) से -

२७२. फुसामि नेक्खम्मसुखं, अपुथुज्जनसेवितं।
भिक्खु विस्सासमापादि, अप्पत्तो आसवक्खयं॥

'पृथग्जन (अज्ञ) जिसे सेवन नहीं कर सकते (मैंने) उस नैष्क्रम्य-सुख को प्राप्त कर लिया है' ऐसा सोच हे भिक्षुओ! आश्रवों का क्षय न हो जाने तक (तुम) आश्वस्त होकर (अर्थात, चैन से) मत (बैठे) रहो।

धम्मट्ठवग्गो एकूनवीसतिमो निट्ठितो।

२०. मग्गवग्गो

२७३. मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो, सच्चानं चतुरो पदा।
विरागो सेट्ठो धम्मानं, द्विपदानञ्च चक्खुमा॥

मार्गों में अष्टांगिक मार्ग श्रेष्ठ है, सच्चाइयों में चार आर्य-सत्य, धर्मों में वीतरागता श्रेष्ठ है, (देवमनुष्यादि) द्विपदों में चक्षुमान बुद्ध।

२७४. एसेव मग्गो नत्थञ्ञो, दस्सनस्स विसुद्धिया।
एतञ्हि तुम्हे पटिपज्जथ, मारस्सेतं पमोहनं॥

दर्शन की विशुद्धि (ज्ञान की प्राप्ति) के लिए यही मार्ग है, (कोई) दूसरा नहीं। तुम इसी पर आरूढ़ होओ, यह मार को हक्का-बक्का करने वाला, किंकर्तव्यविमूढ़ बनाने वाला है।

२७५. एतञ्हि तुम्हे पटिपन्ना, दुक्खस्सन्तं करिस्सथ।
अक्खातो वो मया मग्गो, अञ्ञाय सल्लकन्तनं॥

इस (मार्ग) पर आरूढ़ होकर तुम दुःख का अंत कर लोगे। मेरे द्वारा शल्य काटनेवाले इस मार्ग को स्वयं जान कर तुम्हारे लिए आख्यान किया गया है।

२७६. तुम्हेहि किच्चमातप्पं, अक्खातारो तथागता।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति, झायिनो मारबन्धना॥

तपना तो तुम्हें ही पड़ेगा, तथागत तो (मार्ग) आख्यात करते हैं। इस (मार्ग) पर आरूढ़ होकर ध्यान करनेवाले मार के बंधन से सर्वथा मुक्त हो जाते हैं।

२७७. "सब्बे सङ्खारा अनिच्चा"ति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

"सारे संस्कार अनित्य हैं" (याने, जो कुछ उत्पन्न होता है वह नष्ट होता ही है)। इस (सच्चाई) को जब कोई (विपश्यना-) प्रज्ञा से देख (-जान) लेता है, तब उसको दुःखों से निर्वेद प्राप्त होता है (अर्थात, दुःख-क्षेत्र के प्रति भोक्ताभाव टूट जाता है) - ऐसा है यह विशुद्धि (विमुक्ति) का मार्ग!

२७८. "सब्बे सङ्खारा दुक्खा"ति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

"सारे संस्कार दुःख हैं" (याने, जो कुछ उत्पन्न होता है, वह नाशवान होने के

कारण दुःख ही है)। इस (सच्चाई) को जब कोई (विपश्यना-) प्रज्ञा से देख (-जान) लेता है, तब उसको सभी दुःखों से निर्वेद प्राप्त होता है (अर्थात, दुःख-क्षेत्र के प्रति भोक्ताभाव टूट जाता है) - ऐसा है यह विशुद्धि (विमुक्ति) का मार्ग!

२७९. "सब्बे धम्मा अनत्ता"ति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

"सभी धर्म अनात्म हैं" (याने, लोकीय अथवा लोकोत्तर जो कुछ भी है, वह सब अनात्म है, 'मैं' 'मेरा' नहीं है)। इस (सच्चाई) को जब कोई (विपश्यना-) प्रज्ञा से देख (-जान) लेता है, तब उसको सभी दुःखों से निर्वेद प्राप्त होता है (अर्थात, दुःख-क्षेत्र के प्रति भोक्ताभाव टूट जाता है) - ऐसा है यह विशुद्धि (विमुक्ति) का मार्ग!

२८०. उट्ठानकालम्हि अनुट्ठहानो, युवा बली आलसियं उपेतो।
संसन्नसङ्कप्पमनो कुसीतो, पञ्ञाय मग्गं अलसो न विन्दति॥

जो उद्योग करने के समय उद्योग नहीं करता, युवा और बलशाली होने पर भी आलस्य करता है, मन के संकल्पों को गिरा देता है, निर्वीर्य होता है - ऐसा आलसी (व्यक्ति) प्रज्ञा का मार्ग नहीं पा सकता।

२८१. वाचानुरक्खी मनसा सुसंवुतो, कायेन च नाकुसलं कयिरा।
एते तयो कम्मपथे विसोधये, आराधये मग्गमिसिप्पवेदितं॥

वाणी को संयत रखे, मन को संयत रखे और शरीर से कोई अकुशल (काम) न करे। इन तीनों कर्मपथों (कर्मेंद्रियों) का विशोधन करे। ऋषि (बुद्ध) के बताये (अष्टांगिक) मार्ग का अनुसरण करे।

२८२. योगा वे जायती भूरि, अयोगा भूरिसङ्खयो।
एतं द्वेधापथं ञत्वा, भवाय विभवाय च।
तथात्तानं निवेसेय्य, यथा भूरि पवड्ढति॥

योग (के अभ्यास) से प्रज्ञा उत्पन्न होती है, उसके अभाव से उसका क्षय होता है। उत्पत्ति और विनाश के (योग तथा अयोग - इन) दो प्रकार के मार्गों को जान कर अपने आपको इस प्रकार विनियोजित करे जिससे प्रज्ञा की भरपूर वृद्धि हो।

२८३. वनं छिन्दथ मा रुक्खं, वनतो जायते भयं।
छेत्वा वनञ्च वनथञ्च, निब्बना होथ भिक्खवो॥

वन (आसक्ति) को काटो, वृक्ष (शरीर) को नहीं। भय वन से पैदा होता है। हे साधको! वन को, और झाड़ (तृष्णा) को काट कर अनासक्त हो जाओ।

२८४. याव हि वनथो न छिज्जति, अणुमत्तोपि नरस्स नारिसु।
पटिबद्धमनोव ताव सो, वच्छो खीरपकोव मातरि॥

जब तक अणुमात्र (जरा-सी) भी नर की नारियों के प्रति कामना बनी रहती है, तब तक जैसे दूध पीने वाला बछड़ा माता में आबद्ध रहता है वैसे ही वह नर भी (उनमें) आसक्त रहता है।

२८५. उच्छिन्द सिनेहमत्तनो, कुमुदंसारदिकं वपाणिना।
सन्तिमग्गमेव ब्रूहय, निब्बानं सुगतेन देसितं॥

जिस प्रकार हाथ से शरद (ऋतु) के कुमुद को तोड़ा जाता है, उसी प्रकार अपने (हृदय से) स्नेह को उच्छिन्न कर डालो। सुगत (बुद्ध) द्वारा उपदिष्ट (इस) शांतिमार्ग निर्वाण को ही भावित करो।

२८६. इध वस्सं वसिस्सामि, इध हेमन्तगिम्हिसु।
इति बालो विचिन्तेति, अन्तरायं न बुज्झति॥

(मैं) यहां वर्षाकाल में रहूंगा, यहां हेमंत और ग्रीष्म में - मूढ़ (व्यक्ति) इस प्रकार सोचता है और (किसी संभावित) बाधा को नहीं बूझता (कि मैं किसी भी समय, देश अथवा उम्र में इस जीवन से कूच कर सकता हूं)।

२८७. तं पुत्तपसुसम्मत्तं, ब्यासत्तमनसं नरं।
सुत्तं गामं महोघोव, मच्चु आदाय गच्छति॥

जैसे सोये हुए गांव को (कोई) बड़ी बाढ़ बहा कर ले जाय, वैसे ही पुत्र और पशु के नशे में धुत्त आसक्तचित्त (व्यक्ति) को मृत्यु (पकड़कर) ले जाती है।

२८८. न सन्ति पुत्ता ताणाय, न पिता नापि बन्धवा।
अन्तके नाधिपन्नस्स, नत्थि ञातीसु ताणता॥

पुत्र रक्षा नहीं कर सकते, न पिता और न ही बंधुजन। जब मृत्यु पकड़ लेती है तब जाति वाले रक्षा नहीं कर सकते।

२८९. एतमत्थवसं ञत्वा, पण्डितो सीलसंवुतो।
निब्बानगमनं मग्गं, खिप्पमेव विसोधये॥

इस तथ्य को जान कर शील में संयत पंडित (समझदार व्यक्ति) निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग का शीघ्र ही विशोधन करे।

मग्गवग्गो वीसतिमो निट्ठितो।

२१. पकिण्णक वग्गो

२९०. मत्तासुखपरिच्चागा, पस्से चे विपुलं सुखं।
चजे मत्तासुखं धीरो, सम्पस्सं विपुलं सुखं॥

यदि (कोई) धीर (व्यक्ति) थोड़े से सुख के परित्याग से विपुल (निर्वाण) सुख (का लाभ) देखे, तो (वह) विपुल सुख का ख्याल करके थोड़े से सुख को छोड़ दे।

२९१. परदुक्खूपधानेन, अत्तनो सुखमिच्छति।
वेरसंसग्गसंसट्ठो, वेरा सो न परिमुच्चति॥

दूसरे को दुःख देकर जो अपने लिए सुख चाहता है, वैर के संसर्ग में पड़ कर वह वैर से मुक्त नहीं हो पाता।

२९२. यञ्हि किच्चं अपविद्धं, अकिच्चं पन करियति।
उन्नळानं पमत्तानं, तेसं वड्ढन्ति आसवा॥

जो करणीय से हाथ खींच ले किंतु अकरणीय को करे, ऐसे खोखले (घमंडी) प्रमादियों के आश्रव (चित्तमल) बढ़ते हैं।

२९३. येसञ्च सुसमारद्धा, निच्चं कायगता सति।
अकिच्चं ते न सेवन्ति, किच्चे सातच्चकारिनो।
सतानं सम्पजानानं, अत्थं गच्छन्ति आसवा॥

जिनकी कायानुस्मृति नित्य उपस्थित रहती है (याने, जो सतत कायानुपश्यना करते रहते हैं, काय के प्रति एवं काय में होने वाली संवेदनाओं के प्रति जागरूक रहते हैं), वे (साधक) कभी कोई अकरणीय काम नहीं करते, सदा करणीय ही करते हैं। (ऐसे) स्मृतिमान और प्रज्ञावान (साधकों) के आश्रव क्षय को प्राप्त होते हैं (उनके चित्त के मैल नष्ट होते हैं)।

२९४. मातरं पितरं हन्त्वा, राजानो द्वे च खत्तिये।
रट्ठं सानुचरं हन्त्वा, अनीघो याति ब्राह्मणो॥

माता (तृष्णा), पिता (अहंकार), दो क्षत्रिय राजाओं (शाश्वत दृष्टि और उच्छेद दृष्टि), अनुचर (राग) सहित राष्ट्र (बारह आयतनो) का हनन कर ब्राह्मण (क्षीणाश्रव) दुःखरहित हो जाता है।

२९५. मातरं पितरं हन्त्वा, राजानो द्वे च सोत्थिये।
वेयग्घपञ्चमं हन्त्वा, अनीघो याति ब्राह्मणो॥

माता (तृष्णा), पिता (अहंकार), दो श्रोत्रिय (ब्राह्मण) राजाओं (शाश्वत दृष्टि और उच्छेद दृष्टि) और पांच व्याघ्रों में (पांच नीवरणों में) पांचवें (संदेह) का हनन कर ब्राह्मण (क्षीणाश्रव) दुःखरहित हो जाता है।

२९६. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च, निच्चं बुद्धगता सति॥

जिनकी दिन-रात, हर समय बुद्ध-विषयक स्मृति बनी रहती है, वे गौतम (भगवान बुद्ध) के श्रावक सदैव भली-भांति प्रबुद्ध (जाग्रत) बने रहते हैं।

२९७. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च, निच्चं धम्मगता सति॥

जिनकी दिन-रात, हर समय धर्म-विषयक स्मृति बनी रहता है, वे गौतम (भगवान बुद्ध) के श्रावक सदैव भली-भांति प्रबुद्ध बने रहते हैं।

२९८. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च, निच्चं सङ्घगता सति॥

जिनकी दिन-रात, हर समय संघ-विषयक स्मृति बनी रहती है, वे गौतम (भगवान बुद्ध) के श्रावक सदैव भली-भांति प्रबुद्ध बने रहते हैं।

२९९. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च, निच्चं कायगता सति॥

जिनमें दिन-रात कायगता स्मृति (याने, काय के प्रति जागरूकता) की निरंतरता बनी रहती है, गौतम (भगवान बुद्ध) के वे श्रावक सदैव भली-भांति प्रबुद्ध बने रहते हैं।

३००. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च, अहिंसाय रतो मनो॥

जिनका मन दिन-रात अहिंसा में रमा रहता है, वे गौतम (भगवान बुद्ध) के श्रावक सदैव भली-भांति प्रबुद्ध बने रहते हैं।

३०१. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च, भावनाय रतो मनो॥

जिनका मन दिन-रात (मैत्री) भावना में रत रहता है, वे गौतम (भगवान बुद्ध) के श्रावक सदैव भली-भांति प्रबुद्ध बने रहते हैं।

३०२. दुप्पब्बज्जं दुरभिरमं, दुरावासा घरा दुखा।
दुक्खोसमानसंवासो, दुक्खानुपतितद्धगू।
तस्मा न चद्धगू सिया, न च दुक्खानुपतितो सिया॥

कष्टपूर्ण प्रव्रज्या में रत रहना दुष्कर होता है, न रहने योग्य घर दुःखद होते हैं, असमान (व्यक्ति) से सहवास दुःखदायी होता है, मार्ग (आवागमन) का पथिक होना दुःखपूर्ण होता है। इसलिए न तो (संसाररूपी) मार्ग का पथिक बने और न दुःख में पड़ने वाला बने।

३०३. सद्धो सीलेन सम्पन्नो, यसोभोगसमप्पितो।
यं यं पदेसं भजति, तत्थ तत्थेव पूजितो॥

श्रद्धावान, शीलवान, और यश और भोग से युक्त (कुलपुत्र) जिस-जिस प्रदेश में जाता है वहीं-वहीं (लाभ-सत्कार से) पूजित होता है।

३०४. दूरे सन्तो पकासेन्ति, हिमवन्तोव पब्बतो।
असन्तेत्थ न दिस्सन्ति, रत्तिं खित्ता यथा सरा॥

संत (लोग) हिमालय पर्वत के समान दूर से ही प्रकाशमान होते हैं, (किंतु) असंत (दुर्जन) यहीं (पास में होने पर भी) रात में फेंके गये बाण की भांति दिखलायी नहीं देते।

३०५. एकासनं एकसेय्यं, एको चरमतन्दितो।
एको दमयमत्तानं, वनन्ते रमितो सिया॥

एक आसन रखने वाला, एक शय्या रखने वाला, तन्द्रा रहित हो एकाकी विचरण करने वाला, अपने को दमन कर अकेला ही (स्त्री, पुरुष, शब्दादि से विरहित) वनांत में रमण करे।

पकिण्णकवग्गो एकवीसतिमो निट्ठितो।

२२. निरयवग्गो

३०६. अभूतवादी निरयं उपेति, यो वापि कत्वा न करोमि चाह।
उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति, निहीनकम्मा मनुजा परत्थ॥

असत्य बोलने वाला नरक में जाता है, और वह भी जो कि (पापकर्म) करके 'नहीं किया' - ऐसा कहता है। दोनों ही प्रकार के नीच कर्म करने वाले मनुष्य मर कर परलोक में एक-समान हो जाते हैं।

३०७. कासावकण्ठा बहवो, पापधम्मा असञ्ञता।
पापा पापेहि कम्मेहि, निरयं ते उपपज्जरे॥

कंठ में काषाय (वस्त्र) डाले कितने ही पापधर्मा (पापी) असंयमी हैं जो अपने पापकर्मों से नरक में उत्पन्न होते हैं।

३०८. सेय्यो अयोगुळो भुत्तो, तत्तो अग्गिसिखूपमो।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो, रट्ठपिण्डमसञ्ञतो॥

असंयमी, दुराचारी होकर राष्ट्र का अन्न खाने से अग्नि-शिखा के समान तप्त लोहे के गोले को खाना अधिक अच्छा है।

३०९. चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो, आपज्जति परदारूपसेवी।
अपुञ्ञलाभं न निकामसेय्यं, निन्दं ततीयं निरयं चतुत्थं॥

प्रमादी परस्त्रीगामी की चार गतियां होती हैं - (१) अपुण्य-लाभ, (२) सुख की नींद न आना, (३) निंदा, और (४) नरक।

३१०. अपुञ्ञलाभो च गती च पापिका, भीतस्स भीताय रती च थोकिका।
राजा च दण्डं गरुकं पणेति, तस्मा नरो परदारं न सेवे॥

(अथवा) अपुण्य-लाभ, बुरी गति, भयभीत (पुरुष) की भयभीत (स्त्री) से अत्यल्प कामक्रीड़ा और राजा का (हाथ-पैर काटने जैसा) भारी दंड देना। इसलिए पुरुष परस्त्रीगमन न करे।

३११. कुसो यथा दुग्गहितो, हत्थमेवानुकन्तति।
सामञ्ञं दुप्परामट्ठं, निरयायुपकड्ढति॥

जैसे ठीक से न पकड़ा गया कुश (=तीक्ष्ण धार वाला तृण) हाथ को ही छेद

देता है, (वैसे ही) गलत प्रकारसे ग्रहण कियागया श्रामण्य नरककीओर खींच ले जाता है।

३१२. यं किञ्चि सिथिलं कम्मं, संकिलिट्ठञ्च यं वतं।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं, न तं होति महप्फलं॥

जो कोई कर्म शिथिलता से किया जाय, जो व्रत मलिन है और जो ब्रह्मचर्य अशुद्ध है, वह बड़ा फल देने वाला नहीं होता।

३१३. कयिरा चे कयिराथेनं, दळ्हमेनं परक्कमे।
सिथिलो हि परिब्बाजो, भिय्यो आकिरते रजं॥

यदि (कोई काम) करना हो तो उसे करे, उसमें दृढ़ पराक्रम के साथ लग जाय। शिथिल परिव्राजक (अपने भीतर रागरजादि होने से) अधिक मल बिखेरता है।

३१४. अकतं दुक्कटं सेय्यो, पच्छा तप्पति दुक्कटं।
कतञ्च सुकतं सेय्यो, यं कत्वा नानुतप्पति॥

दुष्कृत (बुरे काम) का न करना श्रेयस्कर है (क्योंकि) दुष्कृत करने वाला पीछे अनुताप करता है; और सुकृत (अच्छे काम) का करना श्रेयस्कर है जिसे करके (पीछे) अनुताप नहीं करना पड़ता।

३१५. नगरं यथा पच्चन्तं, गुत्तं सन्तरबाहिरं।
एवं गोपेथ अत्तानं, खणो वो मा उपच्चगा।
खणातीता हि सोचन्ति, निरयम्हि समप्पिता॥

जैसे (कोई) सीमावर्ती नगर भीतर-बाहर से (खूब) रक्षित होता है, वैसे ही अपने आपको रक्षित रखे। क्षण भर भी न चूके, क्योंकि क्षण को चूके हुए लोग नरक में पड़ कर शोक करते हैं।

३१६. अलज्जिताये लज्जन्ति, लज्जिताये न लज्जरे।
मिच्छादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं॥

जो अलज्जा (के काम) में लज्जा करते हैं और लज्जा (के काम) में लज्जा नहीं करते, मिथ्या दृष्टि से ग्रस्त वे सत्त्व (प्राणी) दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

३१७. अभये भयदस्सिनो, भये चाभयदस्सिनो।
मिच्छादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं॥

भयरहित (काम में) भय देखने वाले और भय (के काम) में भय को न देखने वाले मिथ्या दृष्टि से ग्रस्त सत्त्व (प्राणी) दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

३१८. अवज्जे वज्जमतिनो, वज्जे चावज्जदस्सिनो।
मिच्छादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं॥

अदोष में दोष बुद्धि रखने वाले और दोष में अदोष दृष्टि रखने वाले मिथ्या दृष्टि से ग्रस्त सत्त्व (प्राणी) दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

३१९. वज्जञ्च वज्जतो ञत्वा, अवज्जञ्च अवज्जतो।
सम्मादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं॥

दोष को दोष, और अदोष को अदोष जान कर सम्यक्दृष्टिसंपन्न सत्त्व (प्राणी) सुगति को प्राप्त होते हैं।

निरयवग्गो द्वावीसतिमो निट्ठितो।

२३. नागवग्गो

३२०. अहं नागोव सङ्गामे, चापतो पतितं सरं।
अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं, दुस्सीलो हि बहुज्जनो॥

जैसे (किसी) संग्राम में हाथी धनुष से छोड़े गये बाण को (सहन करता है) (वैसे ही) मैं (दूसरों के) कटुवचन को सहन करूंगा, क्योंकि (संसार में) दु:शील (व्यक्ति ही) अधिक हैं।

३२१. दन्तं नयन्ति समितिं, दन्तं राजाभिरूहति।
दन्तो सेट्ठो मनुस्सेसु, योतिवाक्यं तितिक्खति॥

दान्त (शिक्षित) हाथी को परिषद में ले जाते हैं। दान्त पर (ही) राजा चढ़ता है। मनुष्यों में भी दान्त (व्यक्ति ही) श्रेष्ठ होता है जो कि कटुवचन को सह लेता है।

३२२. वरमस्सतरा दन्ता, आजानीया च सिन्धवा।
कुञ्जरा च महानागा, अत्तदन्तो ततो वरं॥

खच्चर, अच्छी नसल के सैंधव घोड़े और महानाग हाथी दान्त (शिक्षित) होने पर उत्तम होते हैं, (परंतु) अपने आप को दान्त किया हुआ (पुरुष) उनसे श्रेष्ठ होता है।

३२३. न हि एतेहि यानेहि, गच्छेय्य अगतं दिसं।
यथात्तना सुदन्तेन, दन्तो दन्तेन गच्छति॥

इन (हाथी, घोड़े आदि) सवारियों से बिना गयी दिशा (निर्वाण) तक नहीं जाया जा सकता, जैसे कि अपने आप को सुदान्त बना कर, (कोई) दान्त (व्यक्ति) दान्त (इंद्रियों) के साथ (वहां तक) चला जाता है।

३२४. धनपालो नाम कुञ्जरो, कटुकभेदनो दुन्निवारयो।
बद्धो कबळं न भुञ्जति, सुमरति नागवनस्स कुञ्जरो॥

दुर्निवार, धनपाल नाम का हाथी जिसकी कनपट्टी से मद चू रहा है, बँध जाने पर कवल (कौर) नहीं खाता, (बल्कि) नागवन (हाथियों के जंगल) का स्मरण करता है।

३२५. मिद्धी यदा होति महग्घसो च, निद्दायिता सम्परिवत्तसायी।
महावराहोव निवापपुट्ठो, पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो॥

जो (पुरुष) आलसी, पेटू, निद्रालु, करवट बदल-बदल कर सोने वाला, और दाना खाकर पुष्ट हुए मोटे सूअर के समान होता है, वह मंदबुद्धि बार-बार गर्भ में पड़ता है।

३२६. इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं , येनिच्छकं यत्थकामं यथासुखं।
तदज्जहं निग्गहेस्सामि योनिसो, हत्थिप्पभिन्नं विय अङ्कुसग्गहो॥

यह जो जहां इच्छा हो, जहां कामना हो, जहां सुख दिखे, वहां चलायमान हो जाने वाला चित्त है, पहले इसे अचंचल बनाऊंगा। इसे ऐसे ही भलीभांति वश में करूंगा जैसे कि अंकुशधारी महावत बिगड़ैल हाथी को वश में करता है।

३२७. अप्पमादरता होथ, सचित्तमनुरक्खथ।
दुग्गा उद्धरथत्तानं, पङ्के सन्नोव कुञ्जरो॥

अप्रमाद में जुटो। (अपने) चित्त की रक्षा करो। कीचड़ में धँसे हाथी के समान अपने आपको कठिन मार्ग से बाहर निकालो (और निर्वाण के धरातल पर प्रतिष्ठापित करो)।

३२८. सचे लभेथ निपकं सहायं, सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं।
अभिभुय्य सब्बानि परिस्सयानि, चरेय्य तेनत्तमनो सतीमा॥

यदि (किसी को) साथ चलने के लिए (कोई) साधुविहारी, धैर्यसंपन्न, बुद्धिमान साथी मिल जाय, तो (वह) सारी परेशानियों को ताक पर रख कर प्रसन्नवदन और स्मृतिमान होकर उसके संग विचरण करे।

३२९. नो चे लभेथ निपकं सहायं, सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं।
राजाव रट्ठं विजितं पहाय, एको चरे मातङ्गरञ्ञेव नागो॥

यदि (किसी को) साथ चलने के लिए (कोई) साधुविहारी, धैर्यसंपन्न, बुद्धिमान साथी न मिले, तो (वह) पराजित राष्ट्र को छोड़ कर जाते हुए राजा के समान अथवा हस्तिवन में हाथी के समान अकेला विचरण करे।

३३०. एकस्स चरितं सेय्यो, नत्थि बाले सहायता।
एको चरे न च पापानि कयिरा, अप्पोस्सुक्को मातङ्गरञ्ञेव नागो॥

अकेला विचरना उत्तम है, (किंतु) मूढ़ की मित्रता अच्छी नहीं। हस्तिवन में हाथी के समान अनासक्त होकर अकेला विचरण करे और पाप न करे।

३३१. अत्थम्हि जातम्हि सुखा सहाया, तुट्ठी सुखा या इतरीतरेन।
पुञ्ञं सुखं जीवितसङ्खयम्हि, सब्बस्स दुक्खस्स सुखं पहानं ॥

काम पड़ने पर मित्रों का होना सुखकर है। जिस किसी (छोटी या बड़ी) चीज से संतुष्ट हो जाना (यह भी) सुखकारक है। जीवन के क्षय होने पर (किया हुआ) पुण्य सुखदायक होता है। सारे दुःखों का प्रहाण (अरहंत हो जाना) (सर्वाधिक) सुखकर है।

३३२. सुखा मत्तेय्यता लोके, अथो पेत्तेय्यता सुखा।
सुखा सामञ्ञता लोके, अथो ब्रह्मञ्ञता सुखा॥

लोक में माता की सेवा करना सुखकर है, (और) ऐसे ही पिता की सेवा (भी) सुखकर है। लोक में श्रमण की सेवा (आदर) करना सुखकर है, और (ऐसे ही) ब्राह्मण की सेवा (आदर) करना भी सुखकर है।

३३३. सुखं याव जरा सीलं, सुखा सद्धा पतिट्ठिता।
सुखो पञ्ञाय पटिलाभो, पापानं अकरणं सुखं॥

बुढ़ापे तक शील का पालन करना सुखकर (होता) है, अचल श्रद्धा सुखकर (होती) है, प्रज्ञा का लाभ सुखकर (होता) है (और) पाप (कर्मों) का न करना सुखकर (होता) है।

नागवग्गो तेवीसतिमो निट्ठितो।

२४. तण्हावग्गो

३३४. मनुजस्स पमत्तचारिनो, तण्हा वड्ढति मालुवा विय।
सो प्लवती हुरा हुरं, फलमिच्छंव वनस्मि वानरो॥

प्रमत्त होकर आचरण करने वाले मनुष्य की तृष्णा मालुवा लता की भांति बढ़ती है, वन में फल की इच्छा से एक शाखा छोड़ दूसरी शाखा पकड़ते बंदर की तरह वह एक भव से दूसरे भव में भटकता रहता है।

३३५. यं एसा सहते जम्मी, तण्हा लोके विसत्तिका।
सोका तस्स पवड्ढन्ति, अभिवट्ठंव बीरणं॥

लोक में यह विषमयी तृष्णा जिस किसी को अभिभूत कर लेती है, उसके (दु:ख-) शोक वैसे ही बढ़ने लगते हैं जैसे कि वर्षा ऋतु में 'बीरण' नाम का जंगली घास (बढ़ता रहता है)।

३३६. यो चेतं सहते जम्मिं, तण्हं लोके दुरच्चयं।
सोका तम्हा पपतन्ति, उदबिन्दुव पोक्खरा॥

इस (बार-बार) जन्मने वाली दुरतिक्रमणीय तृष्णा को जो लोक में अभिभूत कर देता है, उसके शोक (वैसे ही) झड़ जाते हैं जैसे पद्म (-पत्र) से पानी की बूंद।

३३७. तं वो वदामि भद्दं वो, यावन्तेत्थ समागता।
तण्हाय मूलं खणथ, उसीरत्थोव बीरणं।
मा वो नळंव सोतोव, मारो भञ्जि पुनप्पुनं॥

इसलिए मैं तुम्हें, जितने यहां आये हो, कहता हूं, तुम्हारे कल्याण के लिए कहता हूं - जैसे खस के लिए (बड़ी कुदाल लेकर) बीरण को खोदते हैं, ऐसे ही तृष्णा को जड़ से उखाड़ डालो। (कहीं ऐसा न हो कि) तुम्हें (देवपुत्र) मार (वैसे ही) बार-बार उखाड़ता रहे जैसे नदी के स्रोत में उगे हुए सरकंडे को (बड़े वेग से आता हुआ) नदी का प्रवाह।

३३८. यथापि मूले अनुपद्दवे दळ्हे, छिन्नोपि रुक्खो पुनरेव रूहति।
एवम्पि तण्हानुसये अनूहते, निब्बत्तती दुक्खमिदं पुनप्पुनं॥

जैसे जड़ के बिल्कुल नष्ट न होने और (उसके) दृढ़ बने रहने पर कटा हुआ

वृक्ष फि र उग जाता है, वैसे ही तृष्णा-रूपी अनुशय के (जड़ से) उच्छिन्न न होने पर यह दु:ख बार-बार उत्पन्न होता है।

३३९. यस्स छत्तिंसति सोता, मनापसवना भुसा।
बाहा वहन्ति दुद्दिट्ठिं, सङ्कप्पा रागनिस्सिता॥

जिसके छत्तीस स्रोत मन को प्रिय लगने वाली (वस्तुओं) की ही ओर जाते हों, उस मिथ्या दृष्टि वाले व्यक्ति को उसके राग निश्रित संक ल्प बहा ले जाते हैं।

३४०. सवन्ति सब्बधि सोता, लता उप्पज्ज तिट्ठति।
तञ्च दिस्वा लतं जातं, मूलं पञ्ञाय छिन्दथ॥

(ये) स्रोत सभी ओर बहते हैं (जिसके कारण) (तृष्णारूपी) लता अंकुरित रहती है। उस उत्पन्न हुई लता को देख कर प्रज्ञा से उसकी जड़ को काट डालो।

३४१. सरितानि सिनेहितानि च, सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो।
ते सातसिता सुखेसिनो, ते वे जातिजरूपगा नरा॥

(ये) (तृष्णारूपी) नदियां प्राणियों के चित्त को प्रसन्न करने वाली होती हैं। इस सुख में आसक्त सुख की चाहना करने वाले जन्म, बुढ़ापा, (रोग तथा मृत्यु) के फेर में जा पड़ते हैं।

३४२. तसिणाय पुरक्खता पजा, परिसप्पन्ति ससोव बन्धितो।
संयोजनसङ्गसत्तका, दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुनं चिराय॥

तृष्णा से परिवारित प्राणी (जंगल में किसी व्याध द्वारा) बँधे हुए खरहे के समान चक्कर काटते रहते हैं। (मन के) बंधनों में फँसे हुए (लोग) लंबे समय तक बार-बार (जन्मादि का) दु:ख पाते हैं।

३४३. तसिणाय पुरक्खता पजा, परिसप्पन्ति ससोव बन्धितो।
तस्मा तसिणं विनोदये, आकङ्खन्त विरागमत्तनो॥

तृष्णा से परिवारित प्राणी (जंगल में किसी व्याध द्वारा) बँधे हुए खरहे के समान चक्कर काटते रहते हैं। इसलिए अपने वैराग्य की आकांक्षा करते हुए (साधक) तृष्णा को दूर करे।

३४४. यो निब्बनथो वनाधिमुत्तो, वनमुत्तो वनमेव धावति।
तं पुग्गलमेथ पस्सथ, मुत्तो बन्धनमेव धावति॥

जो तृष्णा से छूट कर, तृष्णामुक्त हो, तृष्णा की ओर ही दौड़ता है, उस

(व्यक्ति) को वैसे ही जानो जैसे (कोई बंधन से मुक्त हुआ) पुरुष फिर बंधन की ओर ही भागने लगे।

३४५. न तं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा, यदायसं दारुजपब्बजञ्च।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु, पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा॥

(यह) जो लोहे, लकड़ी, या रस्सी का बंधन है, उसे पंडित (जन) दृढ़ बंधन नहीं कहते। (वस्तुतः दृढ़ बंधन होता है) मणियों, कुंडलों, पुत्रों तथा स्त्री में तृष्णा का होना।

३४६. एतं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा, ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं।
एतम्पि छेत्वान परिब्बजन्ति, अनपेक्खिनो कामसुखंपहाय॥

पंडित (जन) इसी को दृढ़, पतनोन्मुख, शिथिल और दुस्त्याज्य बंधन कहते हैं। वे अपेक्षारहित हो, कामसुख को छोड़ कर, इस (दृढ़ बंधन) को भी (ज्ञान-रूपी खड्ग से) काट कर प्रव्रजित हो जाते हैं।

३४७. ये रागरत्तानुपतन्ति सोतं, सयंकतं मक्कटकोव जालं।
एतम्पि छेत्वान वजन्ति धीरा, अनपेक्खिनो सब्बदुक्खं पहाय॥

जैसे मकड़ा स्वयं बनाये हुए जाल में (फँस जाता है), वैसे ही राग-रंजित (लोग) स्वयं बनाये (तृष्णारूपी) स्रोत में गिर जाते हैं। पंडित (जन) सारे दुःखों का प्रहाण कर इस स्रोत को भी काट कर अपेक्षारहित हो चल देते हैं।

३४८. मुञ्च पुरे मुञ्च पच्छतो, मज्झे मुञ्च भवस्स पारगू।
सब्बत्थ विमुत्तमानसो, न पुनं जातिजरं उपेहिसि॥

आगे (भूत), पीछे (भविष्य) और मध्य (वर्तमान) की (सारी बातों को) छोड़ दो अर्थात सभी स्कंधों को त्याग दो (और उन्हें छोड़ कर) भव (-सागर) के पार हो जाओ। सब ओर से विमुक्तचित्त होकर (तुम) फिर जन्म, बुढ़ापा (और मृत्यु) को नहीं प्राप्त होगे।

३४९. वितक्कमथितस्सजन्तुनो, तिब्बरागस्ससुभानुपस्सिनो।
भिय्यो तण्हा पवड्ढति, एस खो दळ्हं करोति बन्धनं॥

(कामवितर्कादि से) ग्रस्त, तीव्र राग युक्त और शुभ ही शुभ (सुंदर ही सुंदर) देखने वाले प्राणी की तृष्णा और भी प्रवृद्ध होती (खूब बढ़ती) है। (इससे) वह (अपने लिए) और भी दृढ़ बंधन तैयार करता है।

३५०. वितक्कूपसमे च यो रतो, असुभं भावयते सदा सतो।
एस खो ब्यन्ति काहिति, एस छेच्छति मारबन्धनं॥

जो वितर्कों को शांत करने में लगा है (और) सदा स्मृतिमान रह अशुभ की भावना करता है, वह मार के बंधन को काट देगा, वह निश्चय ही इस (तृष्णा) का विनाश कर देगा।

३५१. निट्ठङ्गतो असन्तासी, वीततण्हो अनङ्गणो।
अच्छिन्दि भवसल्लानि, अन्तिमोयं समुस्सयो॥

जिसने लक्ष्य (अर्हत्व) पा लिया हो, जो निर्भय, तृष्णारहित और मलविहीन हो गया हो, जिसने भव (प्राप्त कराने वाले) शल्यों को काट दिया हो, उसका यह अंतिम जीवन (होता) है।

३५२. वीततण्हो अनादानो, निरुत्तिपदकोविदो।
अक्खरानं सन्निपातं, जञ्ञा पुब्बापरानि च।
स वे "अन्तिमसारीरो, महापञ्ञो महापुरिसो"ति वुच्चति॥

जो तृष्णारहित अपरिग्रही, निरुक्ति और पद (चार प्रतिसंभिदाओं) में निपुण हो, और अक्षरों को पहले पीछे (के क्रम से) रखना जानता हो, वही अंतिम देहधारी, महाप्राज्ञ और महापुरुष कहा जाता है।

३५३. सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि, सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो, सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्यं॥

(मैं) सबको अभिभूत (परास्त) करने वाला, सर्वज्ञ, सारे धर्मों से अलिप्त, सर्वत्यागी हूं, तृष्णा का क्षय हो जाने से विमुक्त हूं। (परम ज्ञान को) स्वयं की अभिज्ञा से जान कर (मैं) किसको (अपना उपाध्याय या आचार्य) बतलाऊं?

३५४. सब्बदानं धम्मदानं जिनाति, सब्बरसं धम्मरसो जिनाति।
सब्बरतिं धम्मरति जिनाति, तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति॥

धर्म का दान सब दानों को जीत लेता है (सब दानों में श्रेष्ठ है)। धर्म का रस सब रसों को जीत लेता है (सब रसों में श्रेष्ठ है)। धर्म में रमण करना सभी रमण-सुखों को जीत लेता है (सब रतियों में श्रेष्ठ है)। तृष्णा का क्षय सब दुःखों को जीत लेता है (अर्थात, सबसे श्रेष्ठ है)।

३५५. हनन्ति भोगा दुम्मेधं, नो च पारगवेसिनो।
भोगतण्हाय दुम्मेधो, हन्ति अञ्ञेव अत्तनं॥

(संसार को) पार करने का प्रयत्न न करने वाले दुर्बुद्धि को भोग नष्ट कर देते हैं। भोगों की तृष्णा में पड़ कर (वह) दुर्बुद्धि पराये के समान अपना ही हनन कर लेता है।

३५६. तिणदोसानि खेत्तानि, रागदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु, दिन्नं होति महप्फलं॥

खेतों का दोष है (इनमें उगने वाले भांति-भांति के) तृण (क्योंकि ऐसे खेत बहुत नहीं उपजते)। इस प्रजा का दोष है (इसके अंदर जागने वाला) राग। (ऐसे लोगों को दान देने से कोई बड़ा फल प्राप्त नहीं होता)। इसलिए वीतराग (व्यक्तियों) को (ही दान देना चाहिए) जिससे महान फल प्राप्त होता है।

३५७. तिणदोसानि खेत्तानि, दोसदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतदोसेसु, दिन्नं होति महप्फलं॥

खेतों का दोष तृण है। इस प्रजा का दोष है द्वेष। इसलिए वीतद्वेष (व्यक्तियों) को दान देने से महान फल प्राप्त होता है।

३५८. तिणदोसानि खेत्तानि, मोहदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतमोहेसु, दिन्नं होति महप्फलं॥

खेतों का दोष तृण है। इस प्रजा का दोष है मोह। इसलिए वीतमोह (व्यक्तियों) को दान देने से महान फल प्राप्त होता है।

३५९. तिणदोसानि खेत्तानि, इच्छादोसा अयं पजा।
तस्मा हि विगतिच्छेसु, दिन्नं होति महप्फलं॥
तिणदोसानि खेत्तानि, तण्हादोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीततण्हेसु, दिन्नं होति महप्फलं॥

खेतों का दोष तृण है। इस प्रजा का दोष है इच्छा। इसलिए इच्छारहित (व्यक्तियों) को दान देने से महान फलप्राप्त होता है। खेतों का दोष तृण है। इस प्रजा का दोष है तृष्णा। इसलिए तृष्णारहित (व्यक्तियों) को दान देने से महान फल प्राप्त होता है।

तण्हावग्गो चतुवीसतिमो निट्ठितो।

२५. भिक्खुवग्गो

३६०. चक्खुना संवरो साधु, साधु सोतेन संवरो।
घानेन संवरो साधु, साधु जिव्हाय संवरो॥

चक्षु का संवर (संयम) अच्छा है, अच्छा है श्रोत्र का संवर। घ्राण का संवर अच्छा है, अच्छा है जिह्वा का संवर।

३६१. कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्थ संवरो।
सब्बत्थ संवुतो भिक्खु, सब्बदुक्खा पमुच्चति॥

काय (शरीर) का संवर अच्छा है, अच्छा है वाणी का संवर। मन का संवर अच्छा है, अच्छा है सर्वत्र (इंद्रियों का) संवर। सर्वत्र संवर-प्राप्त भिक्षु (साधक) सारे दुःखों से मुक्त हो जाता है।

३६२. हत्थसंयतो पादसंयतो, वाचासंयतो संयतुत्तमो।
अज्झत्तरतो समाहितो, एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुं॥

जो हाथ, पैर और वाणी में संयत है, (जो) उत्तम संयमी है, अपने भीतर की (सच्चाइयों को) जानने में लगा है, समाधियुक्त, एकाकी और संतुष्ट है, उसे 'भिक्षु' कहते हैं।

३६३. यो मुखसंयतो भिक्खु, मन्तभाणी अनुद्धतो।
अत्थं धम्मञ्च दीपेति, मधुरं तस्स भासितं॥

जो भिक्षु मुख से संयत है, सोच-विचार कर बोलता है, उद्धत नहीं है, अर्थ और धर्म को प्रकाशित करता है, उसका बोल मीठा होता है।

३६४. धम्मारामो धम्मरतो, धम्मं अनुविचिन्तयं।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु, सद्धम्मा न परिहायति॥

धर्म में रमण करनेवाला, धर्म में रत, धर्म का चिंतन करते, धर्म का पालन करते भिक्षु (साधक) सद्धर्म से च्युत नहीं होता।

३६५. सलाभं नातिमञ्ञेय्य, नाञ्ञेसं पिहयं चरे।
अञ्ञेसं पिहयं भिक्खु, समाधिं नाधिगच्छति॥

अपने लाभ की अवहेलना नहीं करनी चाहिए, दूसरों के (लाभ की) स्पृहा नहीं

करनी चाहिए। दूसरों के (लाभ की) स्पृहा करनेवाला भिक्षु (साधक) चित्त की एकाग्रता को नहीं प्राप्त कर पाता।

३६६. अप्पलाभोपि चे भिक्खु, सलाभं नातिमञ्ञति।
तं वे देवा पसंसन्ति, सुद्धाजीविं अतन्दितं॥

थोड़ा-सा लाभ मिलने पर भी यदि भिक्षु (साधक) अपने लाभ की अवहेलना नहीं करता है, तो उस शुद्ध जीविका वाले, निरालस की देवता प्रशंसा करते हैं।

३६७. सब्बसो नामरूपस्मिं, यस्स नत्थि ममायितं।
असता च न सोचति, स वे "भिक्खू"ति वुच्चति॥

नामरूप के प्रति जिसका बिल्कुल ही 'मैं' 'मेरे' का भाव नहीं, जो (उनके) नहीं होने पर शोक नहीं करता, वही 'भिक्षु' कहा जाता है।

३६८. मेत्ताविहारी यो भिक्खु, पसन्नो बुद्धसासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं, सङ्खारूपसमं सुखं॥

मैत्री (भावना) से विहार करता हुआ जो भिक्षु (साधक) बुद्ध के शासन में प्रसन्न रहता है, (वह) (सभी) संस्कारों का शमन करनेवाले शांत (और) सुखमय पद (निर्वाण) को प्राप्त करता है।

३६९. सिञ्च भिक्खु इमं नावं, सित्ता ते लहुमेस्सति।
छेत्वा रागञ्च दोसञ्च, ततो निब्बानमेहिसि॥

हे भिक्षु (साधक)! इस (आत्मभाव नाम की) नाव को उलीचो, उलीचने पर यह तुम्हारे लिए हल्की हो जायगी। राग और द्वेष (रूपी बंधनों) का छेदन कर, फिर तुम निर्वाण को प्राप्त कर लोगे।

३७०. पञ्च छिन्दे पञ्च जहे, पञ्च चुत्तरि भावये।
पञ्चसङ्गातिगो भिक्खु, "ओघतिण्णो"ति वुच्चति॥

(सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रतपरामर्श, कामराग और व्यापाद - इन) पांच (अवरभागीय संयोजनों) का छेदन करे, (रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य और अविद्या - इन) पांच (ऊर्ध्वभागीय संयोजनों) को छोड़ दे, और तदुपरांत (इनके प्रहाण के लिए श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा - इन) पांच (इंद्रियों) की भावना करे। जो भिक्षु (साधक) पांच आसक्तियों (राग, द्वेष, मोह, मान और दृष्टि) का अतिक्रमण कर चुका हो, वह (काम, भव, दृष्टि तथा

अविद्या रूपी चार प्रकार की) बाढ़ों को पार किया हुआ 'ओघतीर्ण' कहा जाता है।

३७१. झाय भिक्खु मा पमादो, मा ते कामगुणे रमेस्सु चित्तं।
मालोहगुळंगिलीपमत्तो, माकन्दि "दुक्खमिद" न्ति डय्हमानो॥

हे भिक्षु (साधक)! ध्यान करो, प्रमाद में मत पड़ो। तुम्हारा चित्त (पांच प्रकार के) कामगुणों (भोगों) के चक्कर में मत पड़े। प्रमत्त होकर मत लोहे के गोले को निगलो। 'हाय! यह दुःख' कहकर जलते हुए तुम्हें (कहीं) क्रंदन न करना पड़े।

३७२. नत्थि झानं अपञ्ञस्स, पञ्ञा नत्थि अझायतो।
यम्हि झानञ्च पञ्ञा च, स वे निब्बानसन्तिके॥

प्रज्ञाविहीन (पुरुष) का ध्यान नहीं होता, ध्यान न करने वाले को प्रज्ञा नहीं होती। जिसके पास ध्यान और प्रज्ञा (दोनों) हैं, वही निर्वाण के समीप (स्थित) होता है।

३७३. सुञ्ञागारं पविट्ठस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
अमानुसी रति होति, सम्मा धम्मं विपस्सतो॥

किसी शून्यागार में प्रवेश करके कोई शांत-चित्त साधक जब सम्यक रूप से धर्मानुपश्यना करता है, तब उसे लोकोत्तर सुख प्राप्त होता है (जो कि सामान्य मानवीय लौकिक सुखों से परे होता है)।

३७४. यतो यतो सम्मसति, खन्धानं उदयब्बयं।
लभती पीतिपामोज्जं, अमतं तं विजानतं॥

साधक (सम्यक सावधानता के साथ) जब-जब (शरीर और चित्त) स्कंधों के उदय-व्यय रूपी अनित्यता की विपश्यना द्वारा अनुभूति करता है, तब-तब उसे प्रीति-प्रमोद (रूपी अध्यात्म-सुख) की उपलब्धि होती है। ज्ञानियों के लिए यह अमृत है।

३७५. तत्रायमादि भवति, इध पञ्ञस्स भिक्खुनो।
इन्द्रियगुत्ति सन्तुट्ठि, पातिमोक्खे च संवरो॥

यहां (इस धर्म में) प्रज्ञावान भिक्षु (साधक) को आरंभ में करना होता है- इंद्रियों का संवर, संतोष और प्रातिमोक्ष (भिक्षु-विनय के नियमों) में संवर।

३७६. मित्ते भजस्सु कल्याणे, सुद्धाजीवे अतन्दिते।
पटिसन्थारवुत्यस्स, आचारकुसलो सिया।
ततो पामोज्जबहुलो, दुक्खस्सन्तं करिस्सति॥

(वह इसके लिए) शुद्ध जीविका वाले, निरालस, कल्याणकारी मित्रों का साथ करे। वह मैत्रीपूर्ण स्वागत करने वाला हो, आचार-पालन में कुशल हो। उससे वह प्रमोद की बहुलता के साथ दुःख का अंत कर लेगा।

३७७. वस्सिका विय पुप्फानि, मद्दवानि पमुञ्चति।
एवं रागञ्च दोसञ्च, विप्पमुञ्चेथ भिक्खवो॥

(जैसे) जूही (अपने) कुम्हलाये हुए फूलों को छोड़ देती है, वैसे ही हे भिक्षुओ (साधको)! (तुम) राग ओर द्वेष को छोड़ दो।

३७८. सन्तकायो सन्तवाचो, सन्तवा सुसमाहितो।
वन्तलोकामिसो भिक्खु, "उपसन्तो"ति वुच्चति॥

शरीर (और) वाणी से शांत, शांतिप्राप्त, सुसमाहित, लोक के आमिष (लौकिक भोगों) को वमन किये हुए भिक्षु (साधक) को 'उपशांत' कहा जाता है।

३७९. अत्तना चोदयत्तानं, पटिमंसेथ अत्तना।
सो अत्तगुत्तो सतिमा, सुखं भिक्खु विहाहिसि॥

जो अपने आपको स्वयं प्रेरित करे, अपना परीक्षण स्वयं करे, वह अपने द्वारा रक्षित, स्मृतिमान भिक्षु (साधक) सुखपूर्वक विहार करेगा।

३८०. अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया।
अत्ता हि अत्तनो गति।
तस्मा संयमयत्तानं, अस्सं भद्रंव वाणिजो॥

व्यक्ति स्वयं ही अपना स्वामी है, स्वयं ही अपनी गति (शरण) है। इसलिए अपने आपको संयत करे, वैसे ही जैसे कि अच्छे घोड़ों का व्यापारी अपने घोड़ों को (करता है)।

३८१. पामोज्जबहुलो भिक्खु, पसन्नो बुद्धसासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं, सङ्खारूपसमं सुखं॥

बुद्ध के शासन में प्रसन्न (रहने वाला) प्रमोदबहुल भिक्षु (साधक) (सभी)

संस्कारों के उपशमन से (प्राप्त होने वाले) सुखमय शांत पद (निर्वाण) को प्राप्त करे।

३८२. यो हवे दहरो भिक्खु, युञ्जति बुद्धसासने।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥

जो कोई तरुण साधक भी बुद्ध के शासन में लग जाता है, वह (अर्हत्व-प्राप्ति के मार्ग के ज्ञान से) मेघमुक्त चंद्रमा के समान इस (खंधादिभेद) लोक को प्रकाशित करता है।

भिक्खुवग्गो पञ्चवीसतिमो निट्ठितो।

२६. ब्राह्मणवग्गो

३८३. छिन्द सोतं परक्कम्म, कामे पनुद ब्राह्मण।
सङ्खारानं खयं ञत्वा, अकतञ्ञूसि ब्राह्मण॥

हे ब्राह्मण! (तृष्णारूपी) स्रोत को काट दे, पराक्रम कर कामनाओं को दूर कर। संस्कारों के क्षय को जान कर, हे ब्राह्मण! (तू) अकृत (निर्वाण) का जानने वाला हो जा।

३८४. यदा द्वयेसु धम्मेसु, पारगू होति ब्राह्मणो।
अथस्स सब्बे संयोगा, अत्थं गच्छन्ति जानतो॥

जब (कोई) ब्राह्मण दो धर्मों (शमथ और विपश्यना) में पारंगत हो जाता है, तब उस जानकार के सभी बंधन नष्ट हो जाते हैं।

३८५. यस्स पारं अपारं वा, पारापारं न विज्जति।
वीतद्दरं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जिसके पार (भीतर के छह आयतन - आंख, कान, नाक, जीभ, काय और मन), अपार (बाहर के छह आयतन - रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य और धर्म) या पार-अपार (ये दोनों ही, अर्थात 'मैं' 'मेरे' का भाव) नहीं हैं, जो निर्भय और अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३८६. झायिं विरजमासीनं, कतकिच्चमनासवं।
उत्तमत्थमनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

(जो) ध्यानी, विमल, आसनबद्ध (स्थिर), कृतकृत्य, और आश्रवरहित हो, जिसने उत्तम अर्थ (निर्वाण) को प्राप्त कर लिया हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३८७. दिवा तपति आदिच्चो, रत्तिमाभाति चन्दिमा।
सन्नद्धो खत्तियो तपति, झायी तपति ब्राह्मणो।
अथ सब्बमहोरत्तिं, बुद्धो तपति तेजसा॥

दिन में सूर्य तपता है, रात में चंद्रमा भासता है, कवच पहन क्षत्रिय चमकता है, ध्यान करता हुआ ब्राह्मण चमकता है, और सारे रात-दिन बुद्ध (अपने) तेज से चमकते है।

३८८. बाहितपापोति ब्राह्मणो, समचरिया समणोति वुच्चति।
पब्बाजयमत्तनो मलं, तस्मा "पब्बजितो"ति वुच्चति॥

ब्राह्मण वह (कहलाता) है जिसने पापों को बहा दिया, श्रमण वह है जिसकी चर्या समतापूर्ण है, और प्रव्रजित वह कहलाता है जिसने अपने चित्त के मैल दूर कर लिये।

३८९. न ब्राह्मणस्स पहरेय्य, नास्स मुञ्चेथ ब्राह्मणो।
धी ब्राह्मणस्स हन्तारं, ततो धी यस्स मुञ्चति॥

ब्राह्मण (निष्पाप) पर प्रहार नहीं करना चाहिए, (और) ब्राह्मण को भी उस (प्रहार करने वाले) पर कोप नहीं करना चाहिए। धिक्कार है ब्राह्मण की हत्या करनेवाले पर, और उससे भी अधिक धिक्कार है उस पर जो (इसके लिए) कोप करता है।

३९०. न ब्राह्मणस्सेतदकिञ्चि सेय्यो, यदा निसेधो मनसो पियेहि।
यतो यतो हिंसमनो निवत्तति, ततो ततो सम्मतिमेव दुक्खं॥

ब्राह्मण के लिए यह कम श्रेयस्कर नहीं होता जब (वह) मन से प्रियों को निकाल देता है। जहां-जहां मन हिंसा से टलता है, वहां-वहां दुःख शांत होता ही है।

३९१. यस्स कायेन वाचाय, मनसा नत्थि दुक्कटं।
संवुतं तीहि ठानेहि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो शरीर से, वाणी से और मन से दुष्कर्म नहीं करता, जो इन तीनों क्षेत्रों में संयमयुक्त है, उसे (ही) मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३९२. यम्हा धम्मं विजानेय्य, सम्मासम्बुद्धदेसितं।
सक्कच्चं तं नमस्सेय्य, अग्गिहुत्तंव ब्राह्मणो॥

जिस (किसी) से सम्यक संबुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म को जाने, उसे (वैसे ही) सत्कारपूर्वक नमस्कार करे जैसे अग्निहोत्र को ब्राह्मण (नमस्कार करता है)।

३९३. न जटाहि न गोत्तेन, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च, सो सुची सो च ब्राह्मणो॥

न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से ही ब्राह्मण होता है। जिसमें सत्य (सोलह

प्रकारसे प्रतिवेधन कियेहुए चार आर्य-सत्य) और (नौ प्रकारके लोकोत्तर) धर्म हैं, वही शुचि (पवित्र) है और वही ब्राह्मण है।

३९४. किं ते जटाहि दुम्मेध, किं ते अजिनसाटिया।
अब्भन्तरं ते गहनं, बाहिरं परिमज्जसि॥

अरे दुष्प्रज्ञ! जटाओं से तेरा क्या बनेगा? मृगचर्म धारण करनेसे तेरा क्या लाभ होगा? भीतर तो तेरा चित्त गहन मलीनता से भरा पड़ा है। बाहर-बाहर से तू इस शरीर को क्या रगड़ता-धोता है?

३९५. पंसुकूलधरं जन्तुं, किसं धमनिसन्थतं।
एकं वनस्मिं झायन्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो फटेचीथड़ों कोधारण करताहै, जो कृशहै, जिसके शरीर कीसभी नसें दिखाई पड़ती है, और जो वन में एकाकीध्यान करनेवाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३९६. न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि, योनिजं मत्तिसम्भवं।
भोवादि नाम सो होति, सचे होति सकिञ्चनो।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

यदि वह परिग्रही (आसक्ति युक्त) है और भो वादी है तो (ब्राह्मणी) माता के गर्भ से उत्पन्न होने पर भी उसे मैं ब्राह्मण नहीं कहता। जो अपरिग्रही है और अनासक्त है उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३९७. सब्बसंयोजनं छेत्वा, यो वे न परितस्सति।
सङ्गातिगं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो सारे संयोजनों (बंधनों) को काटकर भय नहीं खाता, जो तृष्णा एवं संयोजन के पार चला गया है, और जिसे संसार में आसक्ति नहीं है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३९८. छेत्वा नद्धिं वरत्तञ्च, सन्दानं सहनुक्कमं।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो नद्धा (क्रोध), वरत्रा (तृष्णा रूपी रस्सी), संदान (बासठ प्रकार की दृष्टियां रूपी पगहे), और हनुक्रम (मुंह पर बांधे जाने वाले जाल, अनुशय) को काटकर तथा पटिघ (अविद्या रूपी जूए) को (उतार) फेंकबुद्ध हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३९९. अक्कोसं वधबन्धञ्च, अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तीबलं बलानीकं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो (चित्त को) बिना दूषित किये गाली, वध (दण्ड) और बंधन (कारावास) को सह लेता है, सहन-शक्ति (क्षमा-बल) ही जिसकी सेना है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४००. अक्कोधनं वतवन्तं, सीलवन्तं अनुस्सदं।
दन्तं अन्तिमसारीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो अक्रोधी, (धुत-) व्रती, शीलवान, (तृष्णा के न रहने से) निरभिमानी है, (दंभी नहीं है), (छह इंद्रियों का दमन कर लेने से) दान्त (संयमी) और अंतिम शरीर धारी है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४०१. वारि पोक्खरपत्तेव, आरग्गेरिव सासपो।
यो न लिम्पति कामेसु, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

पद्म-पत्र पर जल और सूई के सिरे पर सरसों के दाने के समान जो कामभोगों में लिप्त नहीं होता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४०२. यो दुक्खस्स पजानाति, इधेव खयमत्तनो।
पन्नभारं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो यहीं (इसी लोक में) अपने (खंध-) दुःख के क्षय को प्रज्ञापूर्वक जान लेता है, जिसने अपना बोझ उतार फेंका है, (और) जो आसक्तिरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४०३. गम्भीरपञ्ञं मेधाविं, मग्गामग्गस्स कोविदं।
उत्तमत्थमनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

गहन प्रज्ञा वाले, मेधावी, मार्ग-अमार्ग के पंडित, उत्तम अर्थ (निर्वाण) को प्राप्त हुए (व्यक्ति) को मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४०४. असंसट्ठं गहट्ठेहि, अनागारेहि चूभयं।
अनोकसारिमप्पिच्छं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो गृहस्थों तथा गृह-त्यागियों दोनों में लिप्त नहीं होता, जो बिना (ठौर-) ठिकाने के घूमने वाला और अल्पेच्छ है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४०५. निधाय दण्डं भूतेसु, तसेसु थावरेसु च।
यो न हन्ति न घातेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

स्थावर व जंगम (चर व अचर) सभी प्राणियों के प्रति जिसने दंड त्याग दिया है (हिंसा त्याग दी है), जो न किसी की हत्या करता है, न हत्या करवाता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४०६. अविरुद्धं विरुद्धेसु, अत्तदण्डेसु निब्बुतं।
सादानेसु अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो विरोधियों के बीच अविरोधी (बन कर) रहता है, दंडधारियों के बीच शांति से रहता है, परिग्रह करने वालों में अपरिग्रही (होकर) रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४०७. यस्स रागो च दोसो च, मानो मक्खो च पातितो।
सासपोरिव आरग्गा, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जिसके (चित्त से) राग, द्वेष, अभिमान और म्रक्ष (डाह) ऐसे ही गिर पड़े हैं जैसे सूई के सिरे से सरसों के दाने, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४०८. अकक्कसं विञ्ञापनिं, गिरं सच्चमुदीरये।
याय नाभिसजे कञ्चि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो (इस प्रकार की) अकर्कश,सार्थक (विषय को स्पष्ट करने वाली), सच्ची वाणी को बोले जिससे किसी को पीड़ा न पहुंचे, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४०९. योध दीघं व रस्सं वा, अणुं थूलं सुभासुभं।
लोके अदिन्नं नादियति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो यहां इस लोक में लम्बी या छोटी, मोटी या महीन, सुंदर या असुंदर वस्तु बिना दिये नहीं लेता, अर्थात उसकी चोरी नहीं करता,उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४१०. आसा यस्स न विज्जन्ति, अस्मिं लोके परम्हि च।
निरासासं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जिसके (मन में) इस लोक अथवा परलोक के संबंध में कोई आशा-आकांक्षा नहीं रह गयी है, जो सभी प्रकार की आशाओं-आकांक्षाओं (और आसक्तियों) से मुक्त हो चुका है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४११. यस्सालया न विज्जन्ति, अञ्ञाय अकथंकथी।
अमतोगधमनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जिसको आलय (तृष्णा) नहीं है, जो सब कुछ जान कर संदेहरहित हो गया है, जिसने अवगाहन करके (डुबकी लगा कर) निर्वाण प्राप्त कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४१२. योध पुञ्ञञ्च पापञ्च, उभो सङ्गमुपच्चगा।
असोकं विरजं सुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो यहां (इस लोक में) पुण्य और पाप दोनों के प्रति आसक्ति से परे चला गया है, जो शोकरहित, विमल और शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४१३. चन्दंव विमलं सुद्धं, विप्पसन्नमनाविलं।
नन्दीभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो चंद्रमा के समान विमल, शुद्ध, निखरा हुआ और मलरहित है, और (जिसकी) भवतृष्णा पूरी तरह क्षीण हो गयी है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४१४. योमं पलिपथं दुग्गं, संसारं मोहमच्चगा।
तिण्णो पारगतो झायी, अनेजो अकथंकथी।
अनुपादाय निब्बुतो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जिसने इस दुर्गम संसार (जन्म-मरण) के चक्कर में डालने वाले मोह-रूपी उल्टे मार्ग को त्याग दिया है, जो तरा हुआ, पार गया हुआ, ध्यानी, (तृष्णाविरहित होने से) स्थिर, संदेहरहित और बिना किसी उपादान के निर्वाणलाभी हो गया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४१५. योध कामे पहन्त्वान, अनागारो परिब्बजे।
कामभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो यहां (इस लोक में) कामभोगों का परित्याग कर, घर-बार छोड़ कर प्रव्रजित हो जाय, और जिसका कामभव पूरी तरह क्षीण हो गया हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४१६. योध तण्हं पहन्त्वान, अनागारो परिब्बजे।
तण्हाभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो यहां (इस लोक में) तृष्णा का परित्याग कर, घर-बार छोड़ कर प्रव्रजित हो

जाय, और जिसकी (भवतृष्णा) पूरी तरह क्षीण हो गयी हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४१७. हित्वा मानुसकं योगं, दिब्बं योगं उपच्चगा।
सब्बयोगविसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो मानुषिक बंधन और दैवी बंधन से परे चला गया है, जो सब प्रकार के बंधनों से विमुक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४१८. हित्वा रतिञ्च अरतिञ्च, सीतिभूतं निरूपधिं।
सब्बलोकाभिभुं वीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो (पंचकामगुणरूपिणी) रति और (अरण्यवास की उत्कंठास्वरूप) अरति को छोड़ कर शांत और क्लेशरहित हो गया है, और जो सारे लोकों को जीत कर वीर (बना) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४१९. चुतिं यो वेदि सत्तानं, उपपत्तिञ्च सब्बसो।
असत्तं सुगतं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो सत्त्वों (प्राणियों) की च्युति और उत्पत्ति को पूरी तरह से जानता है, और (जो) अनासक्त, अच्छी गति वाला और बोधिसंपन्न है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४२०. यस्स गतिं न जानन्ति, देवा गन्धब्बमानुसा।
खीणासवं अरहन्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जिसकी गति देव, गंधर्व और मनुष्य नहीं जानते, और जो क्षीणाश्रव अरहंत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४२१. यस्स पुरे च पच्छा च, मज्झे च नत्थि किञ्चनं।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जिसके आगे, पीछे और बीच में कुछ नहीं है अर्थात जो अतीत, अनागत और वर्तमान की सभी कामनाओं से मुक्त है, जो अकिंचन और अपरिग्रही है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४२२. उसभं पवरं वीरं, महेसिं विजिताविनं।
अनेजं न्हातकं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो श्रेष्ठ, प्रवर, वीर, महर्षि, विजेता, अकंप्य, स्नातक और बुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४२३. पुब्बेनिवासं यो वेदि, सग्गापायञ्च पस्सति,
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि।
सब्बवोसितवोसानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो (अपने) पूर्व-निवास को जानता है, और स्वर्ग तथा नरक को देख लेता है, और फिर जन्म के क्षय को प्राप्त हुआ अपनी अभिज्ञाओं को पूर्ण किया हुआ मुनि है (और) जिसने जो कुछ करना था वह सब कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

ब्राह्मणवग्गो छब्बीसतिमो निट्ठितो।

एत्तावता सब्बपठमे यमक वग्गे चुद्दस वत्थूनि, अप्पमादवग्गे नव, चित्तवग्गे नव, पुप्फ वग्गे द्वादस, बालवग्गे पन्नरस, पण्डितवग्गे एक ादस, अरहन्तवग्गे दस, सहस्सवग्गे चुद्दस, पापवग्गे द्वादस, दण्डवग्गे एक ादस, जरावग्गे नव, अत्तवग्गे दस, लोक वग्गे एक ादस, बुद्धवग्गे नव, सुखवग्गे अट्ठ, पियवग्गे नव, क ोधवग्गे अट्ठ, मलवग्गे द्वादस, धम्मट्ठवग्गे दस, मग्गवग्गे द्वादस, पकि ण्णक वग्गे नव, निरयवग्गे नव, नागवग्गे अट्ठ, तण्हावग्गे द्वादस, भिक्खुवग्गे द्वादस, ब्राह्मणवग्गे चत्तालीसाति पञ्चाधिक ानि तीणि वत्थुसतानि।

सतेवीसचतुस्सता, चतुसच्चविभाविना।
सतत्तयञ्च वत्थूनं, पञ्चाधिकं समुट्ठिताति॥

धम्मपदे वग्गानमुद्दानं

यमकप्पमादो चित्तं, पुप्फं बालेन पण्डितो।
अरहन्तो सहस्सञ्च, पापं दण्डेन ते दस॥

जरा अत्ता च लोको च, बुद्धो सुखं पियेन च।
कोधो मलञ्च धम्मट्ठो, मग्गवग्गेन वीसति॥

पकिण्णं निरयो नागो, तण्हा भिक्खु च ब्राह्मणो।
एते छब्बीसति वग्गा, देसितादिच्चबन्धुना॥

गाथानमुद्दानं

यमके वीसति गाथा, अप्पमादम्हि द्वादस।
एकादस चित्तवग्गे, पुप्फवग्गम्हि सोळस॥

बाले च सोळस गाथा, पण्डितम्हि चतुद्दस।
अरहन्ते दस गाथा, सहस्से होन्ति सोळस॥

तेरस पापवग्गम्हि, दण्डम्हि दस सत्त च।
एकादस जरा वग्गे, अत्तवग्गम्हि ता दस॥

द्वादस लोकवग्गम्हि, बुद्धवग्गम्हि ठारस।
सुखे च पियवग्गे च, गाथायो होन्ति द्वादस॥

चुद्दस कोधवग्गम्हि, मलवग्गेक वीसति।
सत्तरस च धम्मट्ठे, मग्गवग्गे सत्तरस॥

पकिण्णे सोळस गाथा, निरये नागे च चुद्दस।
छब्बीस तण्हावग्गम्हि, तेवीस भिक्खुवग्गिका॥

एकतालीसगाथायो, ब्राह्मणे वग्गमुत्तमे।
गाथासतानि चत्तारि, तेवीस च पुनापरे।
धम्मपदे निपातम्हि, देसितादिच्चबन्धुनाति॥

धम्मपद निट्ठिता।

परिशिष्ट-१

‘धम्मपद’ की गाथाओं से मेल खाते विपश्यनाचार्य
श्री सत्यनारायण गोयन्काजी
द्वारा विरचित हिंदी/राजस्थानी दोहे

गाथा-००४ **गाली दी मारा मुझे, हाय लिया सब लूट।**
ज्यूं ही यह चिंतन छुटे, बैर जायँ सब छूट॥

गाथा-००५ **बैर बैर से ना मिटे, बढ़े द्वेष दुष्कर्म।**
बैर मिटे मैत्री किये, यही सनातन धर्म॥

गाथा-००८ **कम खाणो, कम बोलणो, काया वाणी मौन।**
मार न विचलित कर सकै, ज्यूं परबत नै पौन॥

गाथा-०११ **माने सार असार को, और सार निस्सार।**
कहां मिले उस मूढ़ को, शुद्ध धरम का सार॥

गाथा-०१२ (१)
समझ लिया है सार को, छोड़ दिया निस्सार।
सम्यक द्रष्टा विज्ञजन, वे ही पायें सार॥

(२)
जिसने समझा सार को, छोड़ दिया निस्सार।
सम्यक द्रष्टा विज्ञजन, हुए दुखों के पार॥

गाथा-०१४ (१)
ज्यों छायी छत में नहीं, वर्षा-जल घुस पाय।
त्यों ही संयत चित्त में, राग द्वेष ना आय॥

(२)
कुटिया छायी जतन से, अब बरसो मेघेश।
छायी चित पर धरम छत, होय न राग प्रवेश॥

गाथा-०१९ कितने फल इस तरु लगे? जाने चौकीदार।
केवल गिनती ही गिने, फल न चखे लाचार॥

गाथा-०२५ प्रलयंकारी बाढ़ में, तू ही तेरा द्वीप।
अंधकारमय रात में, तू ही तेरा दीप॥

गाथा-०४२ जितनी हानि न कर सकें, दुश्मन द्वेषी दोय।
अधिक हानि निज मन करे, जब मन मैला होय॥

गाथा-०४३ मां बापू प्रिय बंधुजन, भला करें सब कोय।
अधिक भला निज मन करे, जब यह उजला होय॥

गाथा-०५४ गंध गुलाब वहीं चले, चले पवन जिस ओर।
शील गंध बिन पवन के, गमके चारों ओर॥

गाथा-१०३ रण सहस्र योद्धा लड़े, जीते युद्ध हजार।
पर जो जीते स्वयं को, वही शूर सरदार॥

गाथा-११० सौ वर्षों की जिंदगी, बिना शील दी खोय।
शीलवान का एक दिन, सदा श्रेष्ठतर होय॥

गाथा-१११ सौ वर्षों की जिंदगी, बिन प्रज्ञा दी खोय।
प्रज्ञानी का एक दिन, महा मांगलिक होय॥

गाथा-१२७ सागर तल, पर्वत गुहा, अंतरिक्ष का छोर।
पाप फलों से बच सकें, ऐसा दिखे न ठोर॥

गाथा-१२८ जल में, थल में, गगन में, नहीं सुरक्षित कोय।
ऐसा स्थान न जगत में, जहां मरण ना होय॥

गाथा-१२९ मत हत्या कर, मार मत, सबको प्यारे प्राण।
अपनी सी ही वेदना, सब जीवों की जान॥

गाथा-१३० मत पीड़ा, मत त्रास दे, मत हर इनके प्राण।
सुख-दुख सबके एक से, सारे जीव समान॥

गाथा-१५३ जब जब जन्मा बिन रुके, रहा लगाता दौड़।
कदम कदम बढ़ता रहा, मृत्यु द्वार की ओर॥

गाथा-१६५ हम ही अपने कर्म से, होते शुद्ध अशुद्ध।
अन्य कौन शोधन करे, देव, ब्रह्म या बुद्ध॥

गाथा-१६६ नहीं दोष है स्वार्थ में, सही स्वार्थ ले जान।
अपना करे अनर्थ ही, बिना स्वार्थ पहचान॥

गाथा-१८३ जीवन भर करते रहें, कुशल कर्म भरपूर।
अकुशल से बचते रहें, रहें पाप से दूर॥

गाथा-१९७ रहे बैरियों में मगर, चित बैरी ना होय।
सबका ही चाहे भला, सच्चा मंगल होय॥

गाथा-२०४ (१)
परम लाभ 'आरोग्य' है, परम मित्र 'संतोष'।
परम बंधु 'विश्वास' है, 'मुक्ति' परम सुख कोष॥

(२)
नहीं लाभ आरोग्य सम, धन संतुष्टि समान।
नहीं बंधु विश्वास सम, सुख सदृश निर्वाण॥

गाथा-२१५ काम जगै तो भय जगै, जागै मन मँह सोक।
काम तज्यां निरभय हुवै, सहजां हुवै निसोक॥

गाथा-२१६ तृष्णा से दुख जागते, तृष्णा से भय होय।
तृष्णा त्यागे दुख मिटे, भय काहे से होय॥

गाथा-२२३ जीत झूठ को सत्य से, क्रोध जीत अक्रोध।
जीत घृणा को प्यार से, मैल चित्त के शोध॥

गाथा-२४० अपने मन का मैल ही, अपना नाश कराय।
ज्यूं लोहे का जंग ही, लोहे को खा जाय॥

गाथा-२५१ राग सदृश न रोग है, द्वेष सदृश ना दोष।
मोह सदृश न मूढ़ता, धरम सदृश न होश॥

गाथा-२५२ प्रकट करे पर दोष को, ढकता अपने दाग।
पर निंदा निज स्तुति निरत, व्याकुल रहे अभाग॥

गाथा-२७७ सै संस्कार अनित्य है, देख ग्यान सूं देख।
प्रग्या सूं देखण लगै, दुख की रवै न रेख॥

गाथा-२८८ (१)
पूत न रच्छा कर सकै, बाप न सकै बचाय।
नूंतो आवै काळ को, कूण सकै सरकाय॥

(२)
पुत्र न रक्षा कर सके, पिता न माता भ्रात।
कौन बचा पाए भला, काल करे जब घात॥

गाथा-३३८ तृष्णा जड़ से खोद कर, अनासक्त बन जायँ।
भव सागर से तरन का, यह ही एक उपाय॥

गाथा-३५४ (१)
सब दानों से श्रेष्ठ है, धर्म रतन का दान।
दायक पाये पुण्य बल, ग्राहक सुख निर्वाण॥

(२)

धरम दान सब दान मँह, सिरै मोर ही होय।
सभी रसां मँह धरम रस, अतुलित हितक रहोय॥

गाथा-३६१ वाणी तो वश में भली, वश में भला शरीर।
पर जो मन वश में करे, वही संयमी वीर॥

गाथा-३६४ सदा सोचिए धर्म ही, सदा बोलिए धर्म।
हो शरीर से धर्म ही, यही मुक्ति का मर्म॥

गाथा-३७३ (१)

शांत चित्त अंतर्मुखी, बैठे शून्यागार।
देखत देखत वेदना, दिखे परम सुख सार॥

(२)

आंख मूंद अन्तरमुखी, बैठे शून्यागार!
देखत देखत वेदना, मिले सुखों का सार॥

गाथा-३७४ जहां जहां इस स्कंध में, सम्यक स्मृति जग जाय।
वहीं दिखे उत्पाद-व्यय, तो अमृत मिल जाय॥

गाथा-३९४ जटा जूट माला तिलक, हुए शीश के भार।
भेष बदल कर क्या मिला, मन के मैल उतार॥

विषय-सूची

(१) शील	**१**
शील की महिमा	१
शील की सुरक्षा	२
शील का अतिक्रमण	२
(२) चित्त	**३**
चित्त की सुरक्षा	३
मन मैला और तन को धोये	४
चित्त सधे सब सधे	५
मन जीते जग जीत	५
मन का मैल उतार	६
(३) सुख - दुःख	**७**
सुख या दुःख?	७
सरलता में ही सुख है	७
संतोष ही सच्चा सुख	७
भोगे सुख न होय	८
(४) शत्रु - मित्र - सेवाभाव	**९**
राग : द्वेष : मोह - असली शत्रु	९
स्वार्थी मित्र	९
सेवा का फल	९
वैर बढ़ाये वैर, अवैर बढ़ाये प्रीत	१०
जागे मैत्रीभाव	१०
(५) सत्य-दर्शन	**११**
संदृष्टि से दुःख-निरोध	११
सबको जाने निज समान	१२
सम्यक दर्शन	१२
सम्यक संबुद्ध	१३
निर्विवाद सत्य	१३
(६) तृष्णा	**१४**
तृष्णाओं से विरक्ति, बंधनों से मुक्ति	१४
तृष्णा का विषैला डंक	१५
तृष्णा - दुःख का मूल	१६
तृष्णाविहीन का जीवन	१६

(७) **अहंकार कायासक्ति**	**१७**
'मेरा', 'मेरा' क्या करे	१७
रूप का स्वरूप जानो	१७
गंदगी का ढेर	१७
हड्डियों का नगर	१८
रोगों की वृद्धि	१८
(८) **पराक्रम - प्रमाद**	**१९**
श्वास वृथा मत जाय	१९
पराक्रम का महत्त्व	१९
अपनी मुक्ति अपने हाथ	१९
प्रमादी की विपन्नता	२०
अप्रमादी की संपन्नता	२०
(९) **उत्तम पुरुष**	**२१**
उत्तम पुरुष के गुण	२१
आदर्श साधक	२१
सद्गृहस्थ के गुण	२२
श्रेष्ठ पुरुष को नमन	२३
पापकारी - पुण्यकारी	२४
स्रोतापन्न की विशेषता	२४
सच्चा विजयी	२४
मूढ़ व्यक्ति की विवशता	२५
प्राणी की वास्तविकता	२५
(१०) **लक्षण**	**२६**
संयत पुरुष कौन?	२६
ब्राह्मण कौन?	२६
पंडित कौन?	२७
मुनि कौन?	२७
भिक्षु कौन?	२८
(११) **मंगल भाव**	**२९**
मंगल कामना	२९
सर्व-मंगल में स्व-मंगल	२९
कर भला तो हो भला	३०
हिंसक की विमुक्ति	३०
उत्तम मंगल	३०

(१२) **धर्मपथ** **३२**
आनंदपथ ३२
श्रेष्ठ मार्ग ३२
प्रकाश की खोज ३२
(१३) **जन्म – मृत्यु** **३३**
मार का वार खाली जाय ३३
मृत्यु का वर्चस्व ३३
न मरने का भय, न जीने की चाह ३४
(१४) **अनित्यता** **३५**
अनित्यता का धर्म ३५
अनात्मबोध ३६
संवेदनाओं का प्रपंच ३६
(१५) **विकार** **३९**
क्रोध व लोभ चढ़ें जब सिर पर ३९
आसक्त बने विवादी, अनासक्त हो निर्विवादी ३९
गुण - अवगुण की परख ४०
कर्म ४०
कर्म ही प्रधान ४०
जैसी करनी वैसी भरनी ४०
अब देरी का क्या काम? ४२
किये ही होय ४२
(१६) **वाणी** **४३**
उपमा से धर्म-देशना ४३
बुद्ध की प्रबुद्ध वाणी ४३
उदान वाक्य ४४
उत्तम वाणी ४५
मौन की महत्ता ४५
(१७) **बोधि** **४६**
सत्य बोध ४६
(१८) **बुद्ध वंदना** **४७**
बुद्ध की सही वंदना ४७
(१९) **बुद्ध शिक्षा** **४८**
बुद्ध का शासन ४८
बुद्धों की शिक्षा ४९

(२०) **निर्वाण** **५०**
निर्वाण का साक्षात्कार कैसे? ५०
निर्वाण - परम सुख ५०
मोक्ष के अधिकारी ५०
सजगता से विमुक्ति ५१
(२१) **भव-चक्र** **५३**
भव-बंधन टूट गये ५३
संसार में आवागमन क्यों? ५५
व्यर्थ ही रोय ५६
भवचक्र से मुक्ति ५६
सुलगता संसार ५६
(२२) **कल्याणमित्र – सत्संग** **५७**
कल्याणमित्र कौन? ५७
कल्याणमित्र का संयोग ५७
सत्संग की कामना ५७
सत्संगति ५८
(२३) **धर्म** **५९**
धर्म करे कल्याण ५९
धर्मचारी सुख का अधिकारी ६०
धर्मशरण ही उत्तम शरण ६१
धर्मरत्न अनमोल ६३
विपश्यना – सनातन धर्म ६३
यथाभूत ज्ञानदर्शन ६४
धर्मचारी ही सर्वप्रिय ६५
धर्म की निरपेक्षता ६५
(२४) **दान की महिमा** **६६**
सर्वोत्तम दान ६६
(२५) **बिखरे मोती** **६७**
रमणीय भूमि ६७
प्रज्ञा का प्रकाश ६७
अप्रमाद का सुपरिणाम ६७
दूध का दूध पानी का पानी ६८

दो शब्द

साधकों के लिए 'विपश्यना' नाम के मासिक प्रेरणापत्र का प्रकाशन सन १९७१ से हो रहा है। तभी से इसके हर अंक में बुद्ध-वाणी का कोई-न-कोई संदर्भ भी भाषानुवाद सहित उद्धृत किया जा रहा है।

इन संदर्भों का चयन विपश्यनाचार्य श्री गोयन्काजी स्वयं करते हैं। ये सभी संदर्भ साधकों के लिए बड़े प्रेरणादायी होते हैं और इनमें से बहुतों की व्याख्या भी वे साधना-शिविरों के दौरान करते हैं। साधकों के लिए इन संदर्भों का स्थायी महत्त्व होने से अब इन्हें पुस्तकाकार में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है।

प्रकाशन से पूर्व इन संदर्भों का विषयवार वर्गीकरण कर इन्हें उपयुक्त शीर्षकों एवं उप-शीर्षकों के तले रखा गया है।

हमारी मंगल कामना है कि इस सत्प्रयास से सभी साधक खूब खूब लाभान्वित हों।

निदेशक,

विपश्यना विशोधन विन्यास

ध म्म वा णी - सं ग्र ह

(१) शील

शील की महिमा

सीलं बलं अप्पटिमं, सीलं आयुधमुत्तमं।
सीलमाभरणं सेट्ठं, सीलं कवचमब्भुतं॥

(अनुपम-) अप्रतिम है शील का बल (-वैभव)। उत्तम है शील का आयुध (-अस्त्र)। श्रेष्ठ है शील का आभरण (-आभूषण)। अद्भुत है शील का कवच (-बख्तर)।

सीलगन्धसमो गन्धो, कुतो नाम भविस्सति।
यो समं अनुवाते च, पटिवाते च वायति॥

शील-गंध के समान अन्य गंध कहां होगी - जो जैसे हवा के रुख की ओर, वैसे ही उल्टी ओर भी बहती हो।

सोभन्तेव न राजानो, मुत्तामणि विभूसिता।
यथा सोभन्ति यतिनो, सीलभूसनभूसिता॥

मुक्ता-मणियों से सुसज्जित राजा भी ऐसे शोभायमान नहीं होते जैसे कि शील के आभूषण से सुसज्जित यति शोभायमान होते हैं।

वेला च संवरं सीलं, चित्तस्स अभिहासनं।
तित्थञ्च सब्बबुद्धानं, तस्मा सीलं विसोधये॥

संयम शील का प्रमाण है, शील चित्त को आनंदित करता है और सभी बुद्धों का तीर्थ (संप्रदाय) है, इसलिए शील को विशुद्ध करे।

शील की सुरक्षा

किकीवअण्डं चमरीव बालधिं, पियञ्च पुत्तं नयनं व एककं।
तथेव सीलं अनुरक्खमानका, सुपेसला होथ सदा सगारवा॥

जिस प्रकार टिटिहरी अपने अंडे की, चमरी गाय अपनी पूंछ की, माता अपने इकलौते पूत की, काना व्यक्ति अपनी अकेली आंख की (सावधानीपूर्वक सुरक्षा करता है), उसी प्रकार शील की भलीभांति सुरक्षा करे और उसी के प्रति सदाचरणयुक्त हो उसका गौरव करे।

शील का अतिक्रमण

पाणातिपातो अदिन्नादानं, मुसावादो च वुच्चति।
परदारगमनञ्चेव, नप्पसंसन्ति पण्डिता॥

यह जो प्राणी-हिंसा, चोरी, झूठ और परस्त्रीगमन कहलाता है; समझदार लोग उसकी प्रशंसा नहीं करते।

इत्थिमिस्से कुतो सीलं, मंसभक्खे कुतो दया।
मुसमाने कुतो सच्चं, महालोभे कुतो हिरी।
महातन्दे कुतो सिप्पं, महाकोधे कुतो धनं॥

स्त्रीसंसर्ग में निरत रहने वाले में शील कहां? मांसभक्षण करने वाले में दया कहां? झूठ बोलने वाले में सच कहां? महातंद्रिल आलसी के पास शिल्प कहां? महाक्रोधी के पास धन कहां?

(२) चित्त

चित्त की सुरक्षा

चित्तं, भिक्खवे, रक्खितं महतो अत्थाय संवत्तति।

भिक्षुओ, सुरक्षित किया हुआ चित्त महान अर्थकारी है (महालाभकारी है)।

मनोपकोपो रक्खेय्य, मनसा संवुतो सिया।
मनोदुच्चरितं हित्वा, मनसा सुचरितं चरे॥

मानसिक आवेश (उन्माद) से अपने को बचाये, मन से संयत रहे (उसे संयमित रखे)। मानसिक दुराचार को त्याग कर मानसिक सदाचरण करे।

अनभिज्झालु विहरेय्य, अब्यापन्नेन चेतसा।
सतो एकग्गचित्तस्स, अज्झत्तं सुसमाहितो॥

लोभरहित (चित्त से) विहार करे, क्रोधरहित चित्त से विहार करे, स्मृतिमान और एकाग्र चित्त वाले का अंदर सुसमाहित होता है।

चित्तं मम अस्सवं विमुत्तं, दीघरत्तं परिभावितं सुदन्तं।
पापं पन मे न विज्जति, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव॥

मेरा मन आज्ञाकारी है, विमुक्त है। दीर्घकाल से मैंने इसे सुशिक्षित कर रखा है, सुदंत बना (वश में कर) रखा है। मुझमें (जरा भी) पाप नहीं बचा है। हे देव! अब चाहो तो जी भर कर बरस लो!

सुदुद्दसं सुनिपुणं, यत्थकामनिपातिनं।
चित्तं रक्खेथ मेधावी, चित्तं गुत्तं सुखावहं॥

जिसे समझना बड़ा मुश्किल है, जो बड़ा चालाक है, जहां चाहे वहीं जा पहुँचता है, समझदार (व्यक्ति) को चाहिए कि (ऐसे) चित्त की सुरक्षा करे। सुरक्षित चित्त बड़ा सुखदायी होता है।

अतीतानुधावनं चित्तं, विक्खेपानुपतितं - समाधिस्स परिपन्थो।
अनागतपटिकङ्खनं चित्तं, विकम्पितं - समाधिस्स परिपन्थो॥

अतीत की ओर दौड़ने वाला विक्षिप्त चित्त समाधि के लिए खतरा, बाधा, मार्ग-अवरोधक है। भविष्य की आकांक्षा से प्रकंपित हुआ चित्त समाधि के लिए खतरा है, मार्ग-अवरोधक है।

इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं, येनिच्छकं यत्थकामं यथासुखं।
तदज्जहं निग्गहेस्सामि योनिसो, हत्थिप्पभिन्नं विय अङ्कुसग्गहो॥

यह जो जहां इच्छा होती, जहां कामना होती, जहां सुख दिखता, वहां पहले जाने वाला चित्त है, उसे विचारपूर्वक वैसे ही भलीभांति वश में करूंगा जैसे कि अंकुशधारी महावत बिगड़ैल हाथी को वश में करता है।

मन मैला और तन को धोये

किं ते जटाहि दुम्मेध, किं ते अजिनसाटिया।
अब्भन्तरं ते गहनं, बाहिरं परिमज्जसि॥

अरे दुष्प्रज्ञ! जटाओं से तेरा क्या बनेगा? मृगचर्म धारण करने से तेरा क्या लाभ होगा? भीतर तो तेरा चित्त गहन मलीनता से भरा पड़ा है। बाहर-बाहर से तू इस शरीर को क्या रगड़ता-धोता है?

न नग्गचरिया न जटा न पङ्का, नानासका थण्डिलसायिका वा,
रजोजल्लं उक्कुटिकप्पधानं, सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकङ्खं॥

जिस मनुष्य की आकांक्षाएं समाप्त नहीं हुई हैं उसकी शुद्धि न नंगे रहने से, न जटा (धारण करने) से, न कीचड़ (लपेटने) से, न उपवास करने से, न कड़ी भूमि पर सोने से, न कादा पोतने से और न उकडू बैठने से ही होती है।

चित्त सधे सब सधे

अनवट्ठितचित्तस्स, सद्धम्मं अविजानतो।
परिप्लवपसादस्स, पञ्ञा न परिपूरति॥

जिसका चित्त अस्थिर है, जो सद्धर्म को नहीं जानता, जिसकी श्रद्धा दोलायमान (डांवांडोल) है, उसकी प्रज्ञा परिपूर्ण नहीं हो सकती।

मन जीते जग जीत

यो सहस्सं सहस्सेन, सङ्गामे मानुसे जिने।
एकञ्च जेय्यमत्तानं, स वे सङ्गामजुत्तमो॥

हजार संग्रामों में हजारों मनुष्यों को जीतने वाले से भी एक अपने आप को जीतने वाला कहीं उत्तम संग्राम-विजेता होता है।

सेलो यथा एकघनो, वातेन न समीरति।
एवं निन्दापसंसासु, न समिञ्जन्ति पण्डिता॥

जैसे सघन शैल-पर्वत वायु से प्रकंपित नहीं होता, वैसे ही समझदार लोग निंदा और प्रशंसा (वस्तुतः आठों लोकधर्मों) से विचलित नहीं होते।

अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया।
अत्तना हि सुदन्तेन, नाथं लभति दुल्लभं॥

व्यक्ति स्वयं ही अपना स्वामी है, भला कोई दूसरा उसका स्वामी कैसे हो सकता है? अपने आप को भली-भांति वश में करके ही व्यक्ति दुर्लभ स्वामित्व प्राप्त कर सकता है।

अत्ता हि अत्तनो नाथो, अत्ता हि अत्तनो गति।
तस्मा संयममत्तानं, अस्सं भद्रंव वाणिजो॥

व्यक्ति स्वयं ही अपना स्वामी है, स्वयं ही अपनी गति (शरण) है। इसलिए अपने आप को संयत करे, वैसे ही जैसे कि अच्छे घोड़ों का व्यापारी अपने घोड़ों को (करता) है।

मन का मैल उतार

अनुपुब्बेन मेधावी, थोकं थोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव, निद्धमे मलमत्तनो॥

समझदार व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने मैल को क्रमशः थोड़ा-थोड़ा क्षण-प्रतिक्षण वैसे ही दूर करे जैसे कि रजतकार (सुनार) चांदी के मैल को दूर करता है।

बाहितपापोति ब्राह्मणो, समचरिया समणोति वुच्चति।
पब्बाजयमत्तनो मलं, तस्मा "पब्बजितो" ति वुच्चति॥

ब्राह्मण वह (कहलाता) है जिसने पापों को बहा दिया, श्रमण वह (कहलाता) है जिसकी चर्या समतापूर्ण है और प्रव्रजित वह कहलाता है जिसने अपने चित्त के मैल दूर कर लिये।

(३) सुख - दुःख

सुख या दुःख?

यं परे सुखतो आहु, तदरिया आहु दुक्खतो।
यं परे दुक्खतो आहु, तदरिया सुखतो विदू॥

दूसरों ने जिसे सुख कहा है, आर्यों (संतों) ने उसे दुःख कहा है। जिसे दूसरों ने दुःख कहा है उसे आर्यों (संतों ने) सुख जाना है।

सरलता में ही सुख है

करणीयमत्थकुसलेन, यं तं सन्तं पदं अभिसमेच्च।
सक्को उजू च सुहुजू च, सुवचो चस्स मुदु
अनतिमानी॥

जिसे सचमुच अपना अर्थ सिद्ध करना है (अपना कल्याण साधना है), परम शांति-पद (निर्वाण) प्राप्त करना है, उसे चाहिए कि वह इस योग्य बने! वह सरल बने. अति सरल बने, सुभाषी बने, मृदु (-स्वभाव) बने, निरभिमानी बने।

संतोष ही सच्चा सुख

दुक्खी सुखं पत्थयति, सुखी भिय्योपि इच्छति।
उपेक्खा पन सन्तत्ता, सुखमिच्चेव भासिता॥

(वर्तमान स्थिति से व्याकुल होकर) दुःखी मनुष्य सुख के लिए प्रार्थना करता है। (वर्तमान सुख से असंतुष्ट होकर) सुखी मनुष्य अधिक सुख की कामना करता है। संतप्त व्यक्ति यदि उपेक्षाभाव रखे तो वही सुख कहा गया है।

भोगे सुख न होय

आनण्यसुखं ञत्वान, अथो अत्थिसुखं परं।
भुञ्जं भोगसुखं मच्चो, ततो पञ्ञा विपस्सति॥

विपस्समानो जानाति, उभो भागे सुमेधसो।
अनवज्जसुखस्सेतं, कलं नाग्घति सोळसिं॥

विपश्यी साधक उऋणसुख को, संपदा के अस्तित्व के सुख को और संपदा के भोगसुख को तथा उनके अनित्य स्वभाव को विपश्यना साधना द्वारा प्रज्ञा से जान लेता है। फिर शीलसंपन्न होने के सुख को भी विपश्यना द्वारा जान कर यह भलीभांति समझ लेता है कि इन दोनों में क्या अंतर है। याने उऋणसुख, संपदासुख, भोगसुख तीनों मिल कर अनवद्य (=निर्दोष) शीलसुख की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं।

(४) शत्रु - मित्र - सेवाभाव

राग : द्वेष : मोह - असली शत्रु

नत्थि रागसमो अग्गि, नत्थि दोससमो गहो।
नत्थि मोहसमं जालं, नत्थि तण्हासमा नदी॥

राग के समान अग्नि नहीं है, न द्वेष के समान जकड़न। मोह के समान फंदा नहीं है, न तृष्णा के समान नदी।

छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं अतिवत्तति।
निहीयति यसो तस्स, काळपक्खेव चन्दिमा॥

जो व्यक्ति राग, द्वेष, भय और मोह से धर्म का अतिक्रमण करता है, उसका यश कृष्ण पक्ष के चंद्रमा की भांति क्षीण होता है।

स्वार्थी मित्र

अञ्ञदत्थुहरो होति, अप्पेन बहुमिच्छति।
भयस्स किच्चं करोति, सेवति अत्थकारणा॥

पराये धन का अपहरण करने वाला, थोड़ा देकर बहुत पाने की इच्छा रखने वाला, ऐसा काम करने वाला जो भय पैदा करे और स्वार्थ के लिये ही साथ देने वाला मित्र नहीं, अमित्र होता है।

सेवा का फल

अभिवादनसीलिस्स, निच्चं वुद्धापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति, आयु वण्णो सुखं बलं॥

जो अभिवादनशील है, जो सदा वृद्धों की सेवा करने वाला है, उसकी चार बातें बढ़ती हैं - आयु, वर्ण, सुख और बल।

वैर बढ़ाये वैर, अवैर बढ़ाये प्रीत

न हि वेरेन वेरानि, सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो॥

यहां (इस लोक में) कभीभी वैर से वैर शांत नहीं होते, बल्कि अवैर से ही शांत होते हैं। यही सनातन धर्म है।

जागे मैत्रीभाव

यस्स सब्बमहोरत्तं, अहिंसाय रतो मनो।
मेत्तंसो सब्बभूतेसु, वेरं तस्स न केनची'ति॥

जिसका मन सब के प्रति रात-दिन अहिंसा में रत रहता है, जो सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव रखता है, उसका किसी के साथ वैर नहीं रह जाता।

मेत्तञ्च सब्बलोकस्मिं, मानसं भावये अपरिमाणं।
उद्धं अधो च तिरियञ्च, असम्बाधं अवेरमसपत्तं॥

बिना बाधा के, बिना वैर के और बिना विरोध के ऊपर-नीचे, आड़े-तिरछे, सभी दिशाओं में समस्त लोक के प्रति अपने मन में असीम मैत्रीभाव जगाये।

(५) सत्य-दर्शन

संदृष्टि से दुःख-निरोध

चतुन्नं अरियसच्चानं, यथाभूतं अदस्सना।
संसितं दीघमद्धानं, तासु तास्वेव जातिसु॥

तानि एतानि दिट्ठानि, भवनेत्ति समूहता।
उच्छिन्नं मूलं दुक्खस्स, नत्थिदानि पुनब्भवोति॥

चारों आर्य सत्यों को यथाभूत न देख सकने के कारण ही लंबे समय तक उन-उन योनियों में आवागमन होता रहा। अब तो ये चारों आर्य सत्य देख लिए गये हैं। फलस्वरूप भवनेत्री भवतृष्णा नष्ट हो गयी है। दुःख की जड़ उखड़ गयी है, अब पुनर्जन्म नहीं होगा।

यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा, आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
अथस्स कङ्खा वपयन्ति सब्बा, यतो पजानाति सहेतुधम्मं॥

अथस्स कङ्खा वपयन्ति सब्बा, यतो खयं पच्चयानं अवेदी।
विधूपयं तिट्ठति मारसेनं, सुरियोव ओभासयमन्तलिक्खं॥

जब किसी ब्राह्मण-तापस को ध्यान करते हुए (बोधिपक्षीय) धर्म प्रकट होते हैं तब उसकी सारी शंकाएं दूर हो जाती हैं, क्योंकि वह सभी उत्पन्न होने वाली स्थितियों का कारण जान लेता है। उसकी सारी शंकाएं दूर हो जाती हैं, क्योंकि वह उन कारणों का नष्ट होना भी जान लेता है। (और इस प्रकार कारणों को नष्ट करके)(प्रबल) मार सेना को पराजित करता हुआ (पूर्ण विमुक्त अवस्था में) वैसे ही प्रतिष्ठित हो जाता है जैसे कि समस्त अंधकार को परास्त करके सूर्य अंतरिक्ष में प्रतिष्ठित होता है।

यथिन्दखीलो पठविं सितो सिया, चतुब्भि वातेहि असम्पकम्पियो।
तथूपमं सप्पुरिसं वदामि, यो अरियसच्चानि अवेच्च पस्सति॥

जिस प्रकार धरती में (गहराइयों तक) गड़ा हुआ इंद्रकील (नगरद्वार-स्तंभ) चारों ओर की तेज हवाओं से कंपायमान नहीं होता, मैं कहता हूं कि उसी प्रकार वह सत्पुरुष (भी) अविचल बना रहता है जो चारों आर्यसत्यों का गहराइयों से साक्षात्कार कर लेता है।

सबको जाने निज समान

सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बेसं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये॥

सभी दंड से डरते हैं। जीवित रहना सबको प्रिय लगता है। (अतः) (सभी को) अपने जैसा समझ कर न हत्या करे, न हत्या करने के लिए प्रेरित करे।

सम्यक दर्शन

यतं चरे यतं तिट्ठे, यतं अच्छे यतं सये।
यतं समिञ्जये भिक्खु, यतमेनं पसारये॥

उद्धं तिरियं अपाचीनं, यावता जगतो गति।
समवेक्खिता च धम्मानं, खन्धानं उदयब्बयं॥

संयत होकर चले, संयत होकर खड़ा हो, संयत होकर बैठे, संयत होकर लेटे। भिक्षु संयत होकर ही सिकोड़े, संयत होकर पसारे। ऊपर-नीचे, आड़े-तिरछे जहां तक लोक गति है, वहां तक धर्मों और पांच स्कंधों (नाम और रूप) के उदय-व्यय का सम्यक दर्शन करे।

सम्यक संबुद्ध

जातिधम्मो जराधम्मो, ब्याधिधम्मो सहं तदा।
अजरं अमतं खेमं, परियेसिस्सामि निब्बुतिं॥

यह जो जातिधर्मा, जराधर्मा और व्याधिधर्मा है, उसे जीत कर जो अजर, अमर और क्षेमपूर्ण है, मैं उसकी खोज में लगूंगा।

इमिना मे अधिकारेन, कतेन पुरिसुत्तमे।
सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा, सन्तारेस्सं सदेवकं॥

इन पुरुषोत्तम सम्यक संबुद्ध द्वारा इस प्रकार अधिकारी व्यक्ति घोषित किये जाने पर, मैं सर्वज्ञता प्राप्त कर देव-मनुष्यों के तारने में सहायक बन जाऊं।

महाकारुणिको नाथो, हिताय सब्ब पाणिनं।
पूरेत्वा पारमी सब्बा, पत्तो सम्बोधिमुत्तमं॥

महाकारुणिक भगवान ने सब प्राणियों के हित-सुख के लिये समस्त पारमिताओं को परिपूर्ण कर उत्तम संबोधि प्राप्त की।

निर्विवाद सत्य

एकञ्हि सच्चं न दुतीयमत्थि, यस्मिं पजा नो विवदे पजानं।
नाना ते सच्चानि सयं थुनन्ति, तस्मा न एकं समणा वदन्ति॥

सत्य तो एक ही है, दूसरा है ही नहीं, जिसके बारे में लोग सचमुच परस्पर विवाद करें। परंतु ये नाना मत वाले श्रमण अपनी ओर से नाना सत्यों की घोषणा करते हैं इसलिए ये सब एक ही बात नहीं बोलते।

यथापि कुम्भकारस्स, कता मत्तिकभाजना।
सब्बे भेदनपरियन्ता, एवं मच्चान जीवितं॥

जैसे कुम्हार के बनाये हुए सभी मिट्टी के भांडे टूट जाने वाले हैं, वैसे ही मर्त्यों (मरणशील प्राणियों) का जीवन है।

(६) तृष्णा

मोहं, भिक्खवे, एक धम्मं पजहथ, अहं वो पाटिभोगो अनागामिताया।

भिक्षुओ! (केवल) एक मोह का त्याग कर दो। तो मैं तुम्हारे अनागामी (मुक्त) होने का जामिन होता हूं।

खीणं पुराणं नवं नत्थि सम्भवं, विरत्तचित्तायतिके भवस्मिं।
ते खीणबीजा अविरुळ्हिछन्दा, निब्बन्ति धीरा यथायं पदीपो॥

जिनके (सारे) पुराने कर्म क्षीण हो गये हैं और नये कर्मों की उत्पत्ति होती नहीं, पुनर्जन्म के प्रति जिनका चित्त पूर्णतया विरक्त हो गया हो, वे क्षीण-बीज, तृष्णा-विमुक्त धीर (पुरुष) वैसे ही निर्वाण को प्राप्त होते हैं जैसे (कि तेल और बाती समाप्त होने पर) यह प्रदीप।

तृष्णाओं से विरक्ति, बंधनों से मुक्ति

सुखं वा यदि वा दुक्खं, अदुक्खमसुखं सह।
अज्झत्तं च बहिद्धा च, यं किञ्चि अत्थि वेदितं॥

एतं दुक्खन्ति ञत्वान, मोसधम्मं पलोकिनं।
फुस्स फुस्स वयं पस्सं, एवं तत्थ विजानति।
वेदनानं खया भिक्खु, निच्छातो परिनिब्बुतो॥

बाहर और भीतर जो भी संवेदनाएं महसूस होती हैं वे चाहे सुखद हों या दुःखद अथवा अदुःखद-असुखद, साधक उनकी मिथ्या भ्रांति को नष्ट करता है और अनुभव करता है कि वस्तुतः उनमें दुःख ही समाया हुआ है। जहां स्पर्श होता है और स्पर्शजन्य संवेदना होती है, वहां उसके अनित्य स्वभाव को अनुभव कर उससे विरक्त होता है और इस प्रकार अभ्यास करता हुआ साधक उस स्थिति में पहुँच जाता है जहां कि वह समस्त संवेदनाओं का क्षय और तृष्णा का उन्मूलन कर परम उपशांत हो जाता है; परिनिर्वाण प्राप्त कर लेता है।

छन्दजं अघं छन्दजं दुक्खं।
छन्दविनया अघविनयो।
अघविनया दुक्खविनयो॥

छंद (याने, तृष्णा) से पाप उत्पन्न होता है, तृष्णा से ही दुःख जन्मता है। तृष्णा नष्ट कर दी जाय, तो पाप नष्ट हो जाता है। पाप नष्ट कर दिया जाय, तो दुःख नष्ट हो जाता है।

कामतो जायती सोको, कामतो जायती भयं।
कामतो विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं॥

काम से शोक उत्पन्न होता है। काम से भय उत्पन्न होता है। काम से विमुक्त (व्यक्ति) को शोक नहीं होता। फिर भय कहां से (होगा)?

नन्दीसम्बन्धनो लोको, वितक्कस्स विचारणं।
तण्हाय विप्पहानेन, सब्बं छिन्दति बन्धनं॥

लोकीय क्षेत्र में आनंदरस लेना, उससे संबंधित वितर्क में विचरण करना बंधन है। (इस) तृष्णा के प्रहाण से सारे बंधन कट जाते हैं।

तृष्णा का विषैला डंक

यं एसा सहते जम्मी, तण्हा लोके विसत्तिका।
सोका तस्स पवड्ढन्ति, अभिवड्ढंव बीरणं॥

लोक में यह विषमयी तृष्णा जिस किसी को अभिभूत कर लेती है, उसके शोक वैसे ही बढ़ने लगते हैं जैसे कि वर्षा ऋतु में 'वीरण' नाम की जंगली घास (बढ़ती रहती है)।

इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं, यायं तण्हा पोनोब्भविका नन्दीरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी। सेय्यथिदं - कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा।

भिक्षुओ, यह है दुःख-समुदय आर्यसत्य। यह जो तृष्णा है बार-बार उत्पन्न होने के स्वभाव वाली, रागरंजन और आनंदन से संयुक्त रहने वाली,

कभी यहां का, कभी वहां का रस चख-चख कर अभिनंदन करती रहने वाली। कौन सी है यह तृष्णा? यह है काम-तृष्णा, भव-तृष्णा और विभव-तृष्णा।

मनुजस्स पमत्तचारिनो, तण्हा वड्ढति मालुवा विय।
सो प्लवती हुरा हुरं, फलमिच्छंव वनस्मिं वानरो॥

प्रमत्त होकर आचरण करने वाले मनुष्य की तृष्णा मालुवा लता की भांति बढ़ती है, वन में फलकी इच्छा से एक डाल छोड़ दूसरी डाल पकड़ते बंदर की तरह वह एक भव से दूसरे भव में भटकता रहता है।

तृष्णा - दुःख का मूल

जातिपि दुक्खा, जरापि दुक्खा, ब्याधिपि दुक्खो, मरणम्पि दुक्खं, अप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो, यम्पिच्छं न लभति तम्पि दुक्खं - सङ्खित्तेन पञ्चुपादानक्खन्धा दुक्खा।

जन्म भी दुःख है, बुढ़ापा भी दुःख है, रोग भी दुःख है, मरण भी दुःख है। अप्रिय (व्यक्तियों, वस्तुओं, स्थितियों) का संयोग दुःख है, प्रिय (व्यक्तियों, वस्तुओं, स्थितियों) का वियोग दुःख है, मनचाहे का न पाना भी दुःख है; संक्षेप में कहें तो उपादान (याने, आसक्ति) पर आधारित पंच-स्कंधों की यह जीवनधारा ही दुःख है।

तृष्णाविहीन का जीवन

सुसुखं वत जीवाम, आतुरेसु अनातुरा।
आतुरेसु मनुस्सेसु, विहराम अनातुरा॥

(तृष्णा से) आतुर(-व्याकुल) लोगों के बीच, अहो! हम अनातुर(-अनाकुल) रह कर बड़े सुख से जी रहे हैं। आतुर मनुष्यों में हम अनातुर रह कर विचरण करते हैं।

(७) अहंकार का यासक्ति

'मेरा', 'मेरा' क्या करे

पुत्ता मत्थि धनमत्थि, इति बालो विहञ्ञति।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि, कुतो पुत्ता कुतो धनं॥

"मेरे पुत्र!""मेरा धन!" - इस (मिथ्या चिंतन) में ही मूढ़ व्यक्ति तड़पता रहता है। अरे, जब यह (तन और मन का) अपनापा ही अपना नहीं है, तो कहां "मेरे पुत्र"? कहां "मेरा धन"?

रूप का स्वरूप जानो

किञ्च, भिक्खवे, रूपं वदेथ? रुप्पतीति खो, भिक्खवे, तस्मा 'रूप'न्ति वुच्चति। केन रुप्पति? सीतेनपि रुप्पति, उण्हेनपि रुप्पति, जिघच्छायपि रुप्पति, पिपासायपि रुप्पति, डंसमकसवातातपसरीसप- सम्फस्सेनपि रुप्पति। रुप्पतीति खो, भिक्खवे, तस्मा 'रूप'न्ति वुच्चति।

भिक्षुओ, "रूप" क्यों कहा जाता है? क्योंकि यह (रुप्पति) विकृत होता है, इसीलिए रूप कहा जाता है। किससे विकृत होता है? शीत से विकृत होता है, उष्ण से विकृत होता है, भूख से विकृत होता है, प्यास से विकृत होता है, डंस, मच्छर, हवा, धूप तथा कीड़ों-सांपों के स्पर्श से विकृत होता है। भिक्षुओ! क्योंकि यह विकृत होता है इसी से "रूप" कहलाता है।

गंदगी का ढेर

अल्लचम्मपटिच्छन्नो, नवद्वारो महावणो।
समन्ततो पग्घरति, असुचिपूतिगन्धियो॥

गीली चमड़ी से ढका हुआ, नौ द्वारों वाला, महाव्रण-सदृश यह शरीर सभी ओर से सड़ी-गली दुर्गंधमयी गंदगी बहा रहा है।

हड्डियों का नगर

अट्ठीनं नगरं कतं, मंसलोहितलेपनं।
यत्थ जरा च मच्चु च, मानो मक्खो च ओहितो॥

यह हड्डियों का नगर बना है जो मांस और रक्त से लेपा गया है; जिसमें जरा, मृत्यु, अभिमान और म्रक्ष (डाह) छिपे हुए हैं।

रोगों की वृद्धि

तयो रोगा पुरे आसुं, इच्छा अनसनं जरा।
पसूनं च समारम्भा, अट्ठानवुतिमागमुं॥

पहले केवल तीन रोग थे - इच्छा, भूख और बुढ़ापा। पशुवध से अट्ठानवे (रोग) हो गये।

(८) पराक्र म - प्रमाद

श्वास वृथा मत जाय

दीघो रस्सो च अस्सासो, पस्सासोपि च तादिसो।
चत्तारो वण्णा वत्तन्ति, नासिक ग्गेव भिक्खुनो॥

लंबा आश्वास और लंबा प्रश्वास, ओछा आश्वास और ओछा प्रश्वास - ये चारों भिक्षु (साधक) के नासिक ाग्र पर (उसकी जानक ारी में) प्रवर्तित होते रहते हैं।

पराक्र म क ा महत्त्व

दळ्हं पग्गण्ह वीरियं, मा निवत्त अभिक्क म।
मयम्पेतं विजानाम, धुवं बुद्धो भविस्ससि॥

दृढ़ पराक्र म में लगे रहो। रुको मत। आगे बढ़ते (ही) जाओ। हम जानते हैं कि तुम बुद्ध बनोगे। यह ध्रुव सत्य है।

सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञं च भावयं।
आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजटये जटं॥

शील में प्रतिष्ठित हुआ प्रज्ञावान व्यक्ति समाधि और विपश्यना ज्ञान क ा अभ्यास क रता है, और इस प्रक ार पुरुषार्थ में पक ा दक्ष साधक अपने अंतर्मन की जटाएं क ाट लेता है।

अपनी मुक्ति अपने हाथ

यस्स पापं क तं क म्मं, कु सलेन पिधीयते।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥

जो अपने पहले कि ये हुए पापक र्म को वर्तमान के कु शल क र्म से ढक लेता है, वह मेघमुक्त चंद्रमा की भांति इस लोक को खूब भासमान क रता है।

अथ पापानि कम्मानि, करं बालो न बुज्झति।
सेहि कम्मेहि दुम्मेधो, अग्गिदड्ढोव तप्पति॥

बाल बुद्धि वाला मूर्ख (व्यक्ति) पापकर्म करते हुए होश नहीं रखता। (परंतु समय पाकर) अपने उन्हीं कर्मों के कारण वह दुर्मेध (दुर्बुद्धि) ऐसे तपता है जैसे आग में जल रहा हो।

प्रमादी की विपन्नता

बहुम्पि चे संहित भासमानो, न तक्करो होति नरो पमत्तो।
गोपोव गावो गणयं परेसं, न भागवा सामञ्ञस्स होति॥

धर्म-ग्रंथों (तिपिटक) का कितना ही पाठ करे, लेकिन यदि प्रमाद के कारण मनुष्य उन धर्म-ग्रंथों के अनुसार आचरण नहीं करता, तो दूसरों की गौवें गिनने वाले ग्वाले की तरह वह श्रमणत्व का भागी नहीं होता।

अप्रमादी की संपन्नता

पमादं अप्पमादेन, यदा नुदति पण्डितो।
पञ्ञापासादमारुय्ह, असोको सोकिनिं पजं।
पब्बतट्ठोव भूमट्ठे, धीरो बाले अवेक्खति॥

जब कोई समझदार व्यक्ति प्रमाद को अप्रमाद से परे धकेल देता (अर्थात, जीत लेता) है, तब वह प्रज्ञा-रूपी प्रासाद पर चढ़ा हुआ शोक रहित हो जाता है। (ऐसा) शोक रहित धीर (मनुष्य) शोकग्रस्त विमूढ जनों को ऐसे ही (करुणभाव से) देखता है जैसे कि पर्वत पर खड़ा हुआ (कोई व्यक्ति) धरती पर खड़े हुए लोगों को देखता हो।

(९) उत्तम पुरुष

उत्तम पुरुष के गुण

यम्हि सच्चञ्च धम्मो च, अहिंसा संयमो दमो।
स वे वन्तमलो धीरो, थेरो इति पवुच्चति॥

जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम ओर दम हैं; वही विगतमल, धृतिसंपन्न स्थविर कहा जाता है।

सो अत्थवा सो धम्मट्ठो, सो दक्खो सो विचक्खणो।
करेय्य रममानोपि, किच्चं धम्मत्थसंहितं॥

वह व्यक्ति अर्थवान है (उसने सही स्वार्थ सिद्ध कर लिया है), वह धर्मिष्ठ है, वह दक्ष (कुशल) है; वह विचक्षण (चतुर) है; संसार में रमता हुआ भी वह धर्मयुक्त और अर्थयुक्त काम करता है।

खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा, सुद्दा चण्डालपुक्कुसा।
यम्हा धम्मं विजानेय्य, सो हि तस्स नरुत्तम॥

चाहे क्षत्रिय हो या ब्राह्मण, वैश्य हो या शूद्र, चंडाल हो या पुक्कुस; जिस किसी से धर्म जाना जा सके, मुमुक्षु के लिये वही उत्तम पुरुष है।

आदर्श साधक

यथापि भद्दो आजञ्ञो, खलित्वा पतितिट्ठति।
एवं दस्सनसम्पन्नं, सम्मासम्बुद्धसावकं॥

जिस प्रकार भद्र उत्तम जाति का घोड़ा गिरने पर भी उठ खड़ा होता है, उसी प्रकार सम्यक संबुद्ध का दर्शन-संपन्न श्रावक भी।

यदा वितक्के उपरुन्धियत्तनो, नगन्तरे नगविवरं समस्सितो।
वीतद्दरो वीतखिलोव झायति, ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥

जब कोई साधक किसी पर्वत-प्रदेश की गिरि-गुहा में निर्भय और निर्बाध होकर सम्यक रूप से ध्यान के आश्रित होता है और अपने वितर्कों को शांत कर लेता है तब उससे बढ़कर परमानंद की अनुभूति नहीं होती।

ओक्खित्तचक्खु न च पादलोलो, झानानुयुत्तो बहुजागरस्स,
उपेक्खमारब्भ समाहितत्तो, तक्कासयं कुक्कुच्चियूपछिन्दे॥

आंखें नीची हों, पांव संयत हों, ध्यानानुरत हो, बहुजागरूक हो, उपेक्षावान हो और समाधिस्थ होकर तर्कों के आश्रय और व्याकुलता को नष्ट करे।

सद्गृहस्थ के गुण

उट्ठाता कम्मधेय्येसु, अप्पमत्तो विधानवा।
समं कप्पेति जीवकं, सम्भतं अनुरक्खति॥

सद्गृहस्थ कामधंधे में उत्साही (कर्मठ) हो, अप्रमादी हो, सावधान हो, धैर्यपूर्वक जीविकोपार्जन करे और अर्जित संपत्ति का कुशल आरक्षक हो।

"भुत्ता भोगा भता भच्चा, वितिण्णा आपदासु मे।
उद्धग्गा दक्खिणा दिन्ना, अथो पञ्चबली कता।
उपट्ठिता सीलवन्तो, सञ्ञता ब्रह्मचारयो॥

यदत्थं भोगं इच्छेय्य, पण्डितो घरमावसं।
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो, कतं अननुतापियं॥

एतं अनुस्सरं मच्चो, अरियधम्मे ठितो नरो।
इधेव नं पसंसन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती'ति"॥

मैंने अपनी संपदा का स्वयं उपभोग किया और अपने आश्रितों एवं भृत्यों का भरण-पोषण कर उनकी सुरक्षा की। ऊर्ध्व अग्र दक्षिणाएं दीं। पंच-बलि दी (पांच प्रकार के दान-कर्म किये)। मैंने शीलवान, संयमी,

ब्रह्मचारियों की सेवा की, उनका पोषण किया। कोई भी समझदार गृहस्थ इसीलिए तो भोगसंपदा की कामना करता है। मेरी कामनाएं पूरी हुईं। मैंने सारे काम ऐसे ही किये जिनके फलस्वरूप मुझे अनुताप नहीं होता।

यों अपने सत्कर्मों का स्मरण करता हुआ सद्गृहस्थ आर्य धर्म में स्थित होता है। इस लोक में लोग उसकी प्रशंसा करते हैं और फिर मरने पर स्वर्ग में भी वह प्रमुदित होता है।

यस्सेति चतुरो धम्मा, सद्धस्स घरमेसिनो।
सच्चं धम्मो धिति चागो, स वे पेच्च न सोचति।
अस्मा लोका परं लोकं, एवं पेच्च न सोचति॥

जिस श्रद्धालु गृहस्वामी (गृहस्थ) में सत्य, धर्म, धृति (धीरज) और त्याग - ये चार गुण होते हैं वह न इस लोक में चिंताग्रस्त होता है और न ही मर कर परलोक में।

माता पिता दिसा पुब्बा, आचरिया दक्खिणा दिसा।
पुत्तदारा दिसा पच्छा, मित्तामच्चा च उत्तरा॥

दासकम्मकरा हेट्ठा, उद्धं समणब्राह्मणा।
एता दिसा नमस्सेय्य, अलमत्तो कुले गिही॥

माता-पिता पूर्व दिशा हैं, आचार्य दक्षिण दिशा; पुत्र-कलत्र पश्चिम दिशा है, मित्र-अमात्य उत्तर दिशा; दास-कर्मकर निचली दिशा है, श्रमण-ब्राह्मण ऊपरी दिशा। सही अर्थ में जो गृहस्थ है उसको चाहिए कि इन दिशाओं को नमस्कार करे।

श्रेष्ठ पुरुष को नमन

नमो ते पुरिसाजञ्ञ, नमो ते पुरिसुत्तम।
यस्स ते आसवा खीणा, दक्खिणेय्योसि मारिस॥

नमस्कार है तुम्हें हे श्रेष्ठ पुरुष! नमस्कार है तुम्हें हे उत्तम पुरुष! तुम्हारे आश्रव क्षीण हो गये हैं। तुम दक्षिणार्ह हो, हे पूज्यवर!!

पापकारी - पुण्यकारी

इध तप्पति पेच्च तप्पति, पापकारी उभयत्थ तप्पति।
इध नन्दति पेच्च नन्दति, कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति॥

यहां (इस लोक में) संतप्त होता है, प्राण छोड़ कर (परलोक में) संतप्त होता है। पापकारी दोनों जगह संतप्त होता है।

यहां (इस लोक में) आनंदित होता है, प्राण छोड़ कर (परलोक में) आनंदित होता है। पुण्यकारी दोनों जगह आनंदित होता है।

स्रोतापन्न की विशेषता

किञ्चापि सो कम्मं करोति पापकं, कायेन वाचा उद चेतसा वा।
अभब्बो सो तस्स पटिच्छदाय, अभब्बता दिट्ठपदस्स वुत्ता।
इदम्पि सङ्घे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥

(स्रोतापन्न अवस्था पर पहुँचा हुआ परमपद द्रष्टा साधक) यदि कभी काया, वाणी या चित्त से कोई पापकर्म कर भी लेता है तो वह उसे छिपा नहीं सकता। (भगवान द्वारा) कहा गया है कि निर्वाण का साक्षात्कार कर लेने वाले (व्यक्ति) के लिये (अपने दुष्कृत को गोपनीय रख पाना असंभव है)। सचमुच! यह भी श्रेष्ठ रत्नत्व है आर्य श्रावक-संघ में। इस सत्य कथन के प्रभाव से स्वस्ति हो! (मंगल हो!!)

सच्चा विजयी

सीलमेव इध अग्गं, पञ्ञवा पन उत्तमो।
मनुस्सेसु च देवेसु, सीलपञ्ञाणतो जयं॥

यहां (धर्म के क्षेत्र में) शील ही अग्र (प्रमुख) है; प्रज्ञावान ही उत्तम है। शील और प्रज्ञा से ही मनुष्यों और देवताओं में विजय होती है।

एतदत्तनि सम्भूतं, ब्रह्मयानं अनुत्तरं।
निय्यन्ति धीरा लोकम्हा, अञ्ञदत्थु जयं जयं॥

स्वयं ऐसे सर्वोत्तम ब्रह्मयान बन कर धीर पुरुष लोकों से पार हो जाते हैं और परम अवस्था प्राप्त कर जय-विजय साध लेते हैं।

मूढ़ व्यक्ति की विवशता

... अनुपट्ठितकायसति च विहरति परित्तचेतसो। तञ्च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति - यत्थस्स पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

...वह काया के प्रति सजगता न रख कर परिसीमित चित्त का जीवन जीता है। वह व्यक्ति समाधि और प्रज्ञा द्वारा प्राप्त विमुक्ति की उस अवस्था का यथार्थतः साक्षात्कार नहीं कर सकता जिससे कि उसकी सारी अकुशल पाप-वृत्तियों का क्षय हो जाय।

पुब्बे हनति अत्तानं, पच्छा हनति सो परे।
सुहतं हन्ति अत्तानं, वीतंसेनेव पक्खिमा॥

(मूढ़ व्यक्ति) पहले अपना हनन करता है, तत्पश्चात किसी और का। (वैसे ही जैसे कि) चिड़ीमार का पक्षी पहले अपने सुख का सर्वनाश कर लेता है।

प्राणी की वास्तविकता

यथा हि अङ्गसम्भारा, होति सद्दो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु, होति सत्तोति सम्मुति॥

जैसे (यान के) एक-एक हिस्से को जोड़ देने से उसे 'रथ' शब्द से पुकारा जाता है, वैसे ही (शरीर और चित्त के पांचों) स्कंधों के जुड़ जाने से व्यवहार के लिए उसे प्राणी कहा जाता है। (वस्तुतः इन पांच स्कंधों से अलग कोई प्राणी नहीं है।)

(१०) लक्षण

संयत पुरुष कौन?

कायेन संवुता धीरा, अथो वाचाय संवुता।
मनसा संवुता धीरा, ते वे सुपरिसंवुता॥

जो धीर पुरुष कायसे संयत हैं, वाणी से संयत हैं, मन से संयत हैं, वे ही पूर्णतया संयत हैं।

मा जातिं पुच्छी, चरणञ्च पुच्छ, कट्ठा हवे जायति जातवेदो।
नीचाकुलीनोपि मुनी धितीमा, आजानियो होति हिरीनिसेधो॥

जाति मत पूछो। आचरण पूछो। (जिसे कोई नहीं पूजता, उस) लकड़ी में से अग्नि जन्म लेती है (जिसे कई पूजते हैं)। (इसी प्रकार) नीच (माने जाने वाले) कुल में जन्म लेकर भी कोई व्यक्ति उत्तम धीमान मुनि होता है जो लज्जाजनक कामों से दूर रहता है।

ब्राह्मण कौन?

यस्स कायेन वाचाय, मनसा नत्थि दुक्कटं।
संवुतं तीहि ठानेहि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो शरीर से, वाणी से और मन से दुष्कर्म नहीं करता, जो इन तीनों क्षेत्रों में संयमयुक्त है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूं।

आसा यस्स न विज्जन्ति, अस्मिं लोके परम्हि च।
निरासयं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जिसके (मन) में इस लोक अथवा परलोक के संबंध में कोई आशा-आकांक्षा नहीं रह गयी है, जो सभी प्रकार की आशा-आकांक्षाओं (और आसक्तियों) से मुक्त हो चुका है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

निधाय दण्डं भूतेसु, तसेसु थावरेसु च।
यो न हन्ति न घातेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

स्थावर व जंगम (चर व अचर) सभी प्राणियों के प्रति जिसने दंड त्याग दिया है (अर्थात, हिंसा त्याग दी है), जो न किसी की हत्या करता है, न हत्या करवाता है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

न जटाहि न गोत्तेन, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चं च धम्मो च, सो सुची सो च ब्राह्मणो॥

न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से ही ब्राह्मण होता है। जिसमें सत्य और धर्म है वही शुचि (पवित्र) है और वही ब्राह्मण है।

पंडित कौन?

दिट्ठे धम्मे च यो अत्थो, यो चत्थो सम्परायिको।
अत्थाभिसमया धीरो, पण्डितोति पवुच्चति॥

इन पार्थिव नेत्रों द्वारा जिस स्थूल सत्य को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है और जो सूक्ष्म सत्य इन पार्थिव नेत्रों की दर्शन सीमा से परे है, इन दोनों ही लौकिक और पारलौकिक सत्यों को धर्म-साधना द्वारा साक्षात्कार करके जो धीर व्यक्ति दोनों का लाभ ग्रहण करता है, वही पंडित (याने, समझदार) कहा जाता है।

मुनि कौन?

अञ्ञाय लोकं परमत्थदस्सिं, ओघं समुद्दं अतितरिय तादिं।
तं छिन्नगन्थं असितं अनासवं, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥

जो (अपनी काया के भीतर, महज चिंतन के स्तर पर नहीं, बल्कि विपश्यना द्वारा अनुभूतियों के स्तर पर नरक, पशु, असुर, मनुज, देव, ब्रह्म आदि विभिन्न) लोकों का सही ज्ञान प्राप्त करता हुआ (काया, चित्त, चैतसिक और निर्वाण-संबंधी) परमार्थ सत्यों का स्वयं साक्षात्कार कर (तृष्णा की)

बाढ़ और (अज्ञान के दु:ख-) सागर को लांघ कर (जीवन्मुक्त अवस्था में स्थित, सर्वथा) असंग, अनासक्त, अनाश्रव और छिन्न-ग्रंथि हो गया हो, समझदार लोग उसे 'मुनि' कहते हैं।

भिक्षु कौन?

चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ, भिक्खवे, धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ।

भिक्षुओ! चलते रहो। अनेक लोगों के भले के लिए, अनेक लोगों के सुख के लिए, देव-मनुष्यों के कल्याण के लिए, हित के लिये, सुख के लिए विचरण करते ही रहो। लोगों को धर्म का सदुपदेश दो, भिक्षुओ! ऐसा धर्म जो कि आदि में कल्याणकारी है, मध्य में कल्याणकारी है, अंत में कल्याणकारी है। (सर्वतोमुखी कल्याणकारी ही कल्याणकारी है।) उस धर्म का शब्दों के साथ, अर्थों के साथ, भावों के साथ, व्यावहारिक अभिव्यंजना के साथ प्रकटीकरण करो। ऐसा धर्म जिसमें कि केवलमात्र परिपूर्ण परिशुद्धि ही परिशुद्धि है। अशुद्धि के लिए कहीं कोई स्थान नहीं। ऐसे परम परिशुद्ध ब्रह्माचरण का प्रकाशन करो अपने ब्रह्माचरण द्वारा। ऐसे परम परिशुद्ध धर्माचरण का ज्ञापन करो अपने धर्माचरण द्वारा।

कामच्छन्दो च ब्यापादो, थिनमिद्धञ्च भिक्खुनो।
उद्धच्च विचिकिच्छा च, सब्बसोव न विज्जति॥

इस साधक-भिक्षु में कामेषणा, द्वेष, आलस्य, उद्धतता और संदेह (ये पांचों नीवरण) बिल्कुल नहीं हैं।

(११) मंगल भाव

मंगल क ामना

सब्बरोगा विनीमुत्तो, सब्बसन्तापवज्जितो।
सब्बवेरमतिक्क न्तो, निब्बुतो च तुवं भव॥

तुम्हें सारे रोगों से मुक्ति मिले! सब संतापों से छुटक ारा मिले! तुम्हारे सारे वैर दूर हों! और तुम निर्वाण क ो प्राप्त क रो।

जयन्तो बोधिया मूले, सक्यानं नन्दिवड्ढनो।
एवमेव जयो होतु, जयस्सु जयमङ्गलं॥

शाक्यों के नंदिवर्द्धन (भगवान गौतम) ने बोधिवृक्ष के तले (जिस प्रक ार पापी मार पर विजय प्राप्त की),उसी प्रक ार तुम भी विजयलाभी बनो! जय-मंगल लाभी बनो!

दुक्खप्पत्ता च निद्दुक्खा, भयप्पत्ता च निब्भया।
सोक प्पत्ता च निस्सोक ा, होन्तु सब्बेपि पाणिनो॥

ये सभी प्राणी जो दुःखग्रस्त हैं वे दुःखमुक्त हों! जो भयग्रस्त हैं वे भयमुक्त हों! जो शोक ग्रस्त हैं वे शोक मुक्त हों!

सर्व-मंगल में स्व-मंगल

किं मे एके न तिण्णेन, पुरिसेन थामदस्सिना।
सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा, सन्तारेस्सं सदेवकं॥

मेरे एक अके ले के तर जाने से क्या होगा? के वल इसी में अपना पुरुषार्थ क्या देखूं? मुझे तो सर्वज्ञता प्राप्त क र अनेक ानेक देव-मनुष्यों के तरने में सहायक बनना है।

कर भला तो हो भला

सक्कत्वा सक्कतो होति, गरू होति सगारवो।
वण्णकित्तिभतो होति, यो मित्तानं न दुब्भति॥

जो मित्रों के साथ द्रोह नहीं करता, वह सत्कार करके सत्कार पाता है, गौरव करके गौरवनीय होता है, उसे भरपूर प्रशंसा और कीर्ति मिलती है।

पूजको लभते पूजं, वन्दको पटिवन्दनं।
यसो कित्तिञ्च पप्पोति, यो मित्तानं न दुब्भति॥

जो मित्रों के साथ द्रोह नहीं करता, उस पूजा करने वाले की पूजा होती है, वंदना करने वाले की वंदना होती है, वह यश और कीर्ति को प्राप्त होता है।

हिंसक की विमुक्ति

लोहितपाणि पुरे आसिं, अङ्गुलिमालोति विस्सुतो।
सरणगमनं पस्स, भवनेत्ति समूहता॥

मैं पहले खून-रंगे हाथों वाला कुख्यात अंगुलिमाल था। अहो! (बुद्ध के प्रति मेरे इस) शरणगमन को देखो! मैंने भवनेत्री (भव के आधार को ही) उखाड़ फेंका है।

उत्तम मंगल

मातापिता-उपट्ठानं, पुत्तदारस्स सङ्गहो।
अनाकुला च कम्मन्ता, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

माता-पिता की सेवा करना, पुत्र-स्त्री (परिवार) का पालन-पोषण करना, और आकुल-व्याकुल न करने वाला निष्पाप व्यवसाय करना - यह उत्तम मंगल है।

बाहुसच्चञ्च सिप्पञ्च, विनयो च सुसिक्खितो।
सुभासिता च या वाचा, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

अनेक विद्याओं को अर्जित करना, शिल्प-कलाओं में निपुण होना, विनय अनुशासन में सुशिक्षित होना, और वार्तालाप में सुभाषी होना - यह उत्तम मंगल है।

असेवना च बालानं, पण्डितानञ्च सेवना।
पूजा च पूजनीयानं, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

मूर्खों की संगति न करना, बुद्धिमानों की संगति करना और पूज्यों की पूजा करना - यह उत्तम मंगल है।

तपो च ब्रह्मचरियञ्च, अरियसच्चान दस्सनं।
निब्बानसच्छिकिरिया च, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

तप (करना), ब्रह्मचर्य का पालन करना, आर्यसत्यों का दर्शन (करना) और निर्वाण का साक्षात्कार करना - यह उत्तम मंगल है।

सब्बे सत्ता सब्बे पाणा, सब्बे भूता च केवला।
सब्बे भद्रानि पस्सन्तु, मा कञ्चि पापमागमा॥

सभी सत्त्व, सभी प्राणी, सभी जन्मे हुए जीव, सब मंगल का ही दर्शन करें। रंचमात्र भी पाप में न लगें।

(१२) धर्मपथ

आनंदपथ

यदा असोकं विरजं असङ्खतं, सन्तं पदं सब्बकिलेससोधनं।
भावेति संयोजनच्छिदं, ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥

जब कोई साधक शोक-विहीन, रजविहीन, असंस्कृत, सर्व-क्लेश-शोधक परम शांत-पद निर्वाण का साक्षात्कार कर उसे भावित करता है और इस अभ्यास द्वारा अपने संयोजन-बंधन तोड़ता है तब (वह) जिस परमानंद का अनुभव करता है उससे बढ़कर और कोई आनंद नहीं होता।

सुत्वान धम्मं महतो महारसं, सब्बञ्ञुतञ्ञाणवरेन देसितं।
मग्गं पपज्जिं अमतस्स पत्तिया, सो योगक्खेमस्स पथस्स कोविदो॥

उत्तम सर्वज्ञ ज्ञानी द्वारा उपदेशित मधुर रस वाले महान धर्म को सुनकर योगक्षेम (निर्वाण) पथ के कुशल जानकार द्वारा निर्देशित मार्ग पर मैं अमृत की प्राप्ति के लिये चल पड़ा।

श्रेष्ठ मार्ग

मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो, सच्चानं चतुरो पदा।
विरागो सेट्ठो धम्मानं, द्विपदानञ्च चक्खुमा॥

मार्गों में अष्टांगिक मार्ग श्रेष्ठ है, सच्चाइयों में चार आर्य-सत्य, धर्मों में वीतरागता श्रेष्ठ है, द्विपदों (मनुष्यों) में चक्षुमान बुद्ध।

प्रकाश की खोज

को नु हासो किमानन्दो, निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनद्धा, पदीपं न गवेसथ॥

जहां प्रतिक्षण (सब कुछ) जल ही रहा हो, वहां कैसी हँसी? कैसा आनंद? (कैसा आमोद? कैसा प्रमोद?) ऐ अंधकार से घिरे हुए भोले लोगो! तुम (ज्ञान-रूपी) प्रदीप की खोज क्यों नहीं करते?

(१३) जन्म – मृत्यु

मार का वार खाली जाय

असुभानुपस्सिं विहरन्तं, इन्द्रियेसु सुसंवुतं।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं, सद्धं आरद्धवीरियं।
तं वे नप्पसहति मारो, वातो सेलंव पब्बतं॥

अशुभ को अशुभ जान कर साधना करने वाले, इंद्रियों में सुसंयत, भोजन की मात्रा के जानकार, श्रद्धावान और उद्योगरत को मार उसी प्रकार नहीं डिगा सकता, जैसे कि वायु शैल पर्वत को।

मृत्यु का वर्चस्व

अप्पं वत जीवितं इदं, ओरं वस्ससतापि मिय्यति।
यो चेपि अतिच्च जीवति, अथ खो सो जरसापि मिय्यति॥

यह जीवन सचमुच कितना अल्प है, लघु है। मानव पूरे सौ वर्ष भी नहीं जी पाता और मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। यदि कोई सौ वर्ष से अधिक भी जी लेता है तो आखिर जर्जरित होकर मृत्यु को प्राप्त होता ही है।

यथा दण्डेन गोपालो, गावो पाजेति गोचरं।
एवं जरा च मच्चु च, आयुं पाजेन्ति पाणिनं॥

जैसे ग्वाला लाठी से गायों को हांक कर चरागाह में ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों की आयु को हांक कर ले जाते हैं।

यथापि कुम्भकारस्स कतं मत्तिक भाजनं।
खुद्दकञ्च महन्तञ्च यं पक्कं यञ्च आमकं।
सब्बं भेदनपरियन्तं एवं मच्चान जीवितं॥

जैसे कुम्हार के बनाये सभी मिट्टी के भाजन छोटे हों या बड़े, पक्के हों या कच्चे, फूट कर नष्ट ही होने वाले होते हैं - ऐसे ही प्राणियों के जीवन भी।

दहरा च हि वुद्धा च, ये बाला ये च पण्डिता।
अड्ढा चेव दलिद्दा च, सब्बे मच्चुपरायणा॥

तरुण हो या वृद्ध, मूर्ख हो या पंडित, धनी हो या निर्धन, सभी मरणधर्मा हैं।

खत्तिये ब्राह्मणे वेस्से, सुद्दे चण्डालपुक्कुसे।
न किञ्चि परिवज्जेति, सब्बमेवाभिमद्दति॥

मृत्युराज क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र और चंडाल - किसी को भी नहीं छोड़ता, सबको कुचल डालता है।

न मरने का भय, न जीने की चाह

नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
निक्खिपिस्सं इमं कायं, सम्पजानो पटिस्सतो।

मैं न मृत्यु का अभिनंदन करता हूं, न जीवित रहने का अभिनंदन करता हूं। (जब समय आयगा) स्मृति और संप्रज्ञान सहित मैं इस शरीर को छोड़ दूंगा।

(१४) अनित्यता

अनित्यता का धर्म

“सब्बे सङ्खारा अनिच्चा”ति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

“सारे संस्कार अनित्य हैं”(याने, जो कुछ उत्पन्न होता है वह नष्ट होता ही है)। इस (सच्चाई) को जब कोई (विपश्यना-) प्रज्ञा से देख (-जान) लेता है, तब वह दुःख में निर्वेद प्राप्त करता है। ऐसा है यह विशुद्धि (विमुक्ति) का मार्ग!

“सब्बे सङ्खारा दुक्खा”ति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

“सारे संस्कार दुःख हैं” (याने, जो कुछ उत्पन्न होता है, वह नाशवान होने के कारण दुःख ही है)। इस (सच्चाई) को जब कोई (विपश्यना-) प्रज्ञा से देख (-जान) लेता है, तब वह दुःख में निर्वेद प्राप्त करता है। ऐसा है यह विशुद्धि (विमुक्ति) का मार्ग!

अनिच्चा वत सङ्खारा, उप्पादवयधम्मिनो।
उपज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो॥

सचमुच सारे संस्कार अनित्य ही तो हैं। (उत्पन्न होने वाली सभी स्थितियां, वस्तु, व्यक्ति अनित्य ही तो हैं।) उत्पन्न होना और नष्ट हो जाना यह तो इनका धर्म (=स्वभाव) ही है। उत्पन्न हो होकर नष्ट होते होते जब उनका पूर्णतया उपशमन हो जाता है (पुनः उत्पन्न होने का क्रम समाप्त हो जाता है), उसी का नाम परम सुख है। (वही निर्वाण-सुख है)।

न गामधम्मो निगमस्स धम्मो, न चापियं एककुलस्स धम्मो।
सब्बस्स लोकस्स सदेवकस्स, एसेव धम्मो यदिदं अनिच्चता॥

यह जो अनित्यता का धर्म (=स्वभाव) है वह न किसी ग्रामविशेष का है, न किसी नगरविशेष का और न ही किसी एक परिवारविशेष का। यह अनित्यता तो देवताओं सहित समस्त लोकों का धर्म (=स्वभाव) है।

अनात्मबोध

"सब्बे धम्मा अनत्ता"ति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

"सभी धर्म अनात्म हैं" (याने, लोकीय अथवा लोकोत्तर जो कुछ भी है, वह सब अनात्म है, 'मैं', 'मेरा' नहीं है)। इस (सच्चाई) को जब कोई (विपश्यना-) प्रज्ञा से देख (-जान) लेता है, तब वह दुःख में निर्वेद प्राप्त करता है। ऐसा है यह विशुद्धि (विमुक्ति) का मार्ग!

संवेदनाओं का प्रपंच

यथा पि वाता आकासे, वायन्ति विविधा पुथू।
पुरत्थिमा पच्छिमा चा पि, उत्तरा अथ दक्खिणा॥

सरजा अरजा चा पि, सीता उण्हा च एकदा।
अधिमत्ता परित्ता च, पुथू वायन्ति मालुता॥

तथेविमस्मिं कायस्मिं, समुप्पज्जन्ति वेदना।
सुखदुक्खसमुप्पत्ति, अदुक्खमसुखा च या॥

जैसे आकाश में विविध प्रकार की वायु प्रवहमान होती हैं - पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी, और दक्षिणी भी; धूलभरी और धूलविहीन भी, कभी शीतल और कभी उष्ण, प्रमत्त और शांत भी, वैसे ही शरीर में भी वेदनाएं उत्पन्न होती हैं - सुखद भी, दुःखद भी, अदुःखद-असुखद भी।

पित्तं सेम्हञ्च वातो च, सन्निपाता उतूनि च।
विसमं ओपक्कमिकं, कम्मविपाकेन अट्ठमी॥

पित्त के कारण, कफ के कारण, वात के कारण, सन्निपात (तीनों के मिलने) के कारण, ऋतु के कारण, विषम (भोजन) के कारण, कायक्लेश के साधना-उपक्रम के कारण, और आठवें पूर्व-कर्मों के पकने के कारण शरीर में भिन्न-भिन्न प्रकार की संवेदनाएं होती रहती हैं।

न वेदनं वेदयति सपञ्ञो, सुखम्पि दुक्खम्पि बहुस्सुतोपि।
अयञ्च धीरस्स पुथुज्जनेन, महा विसेसो कुसलस्स होति॥

(शुद्ध धर्म का) बहुश्रुत प्रज्ञावान व्यक्ति शरीर पर होने वाली सुखद अथवा दुःखद संवेदनाओं को भोगता नहीं। कुशल के क्षेत्र में अज्ञानी के मुकाबले ज्ञानी की यही महान विशेषता होती है।

सारिपुत्तो एतदवोच –

"किमारम्मणा, समिद्धि, पुरिसस्स सङ्कप्पवितक्का उप्पज्जन्ती"ति?

"नामरूपारम्मणा, भन्ते"ति।

"ते पन, समिद्धि, किं समोसरणा"ति?

"वेदनासमोसरणा, भन्ते"ति।

सारिपुत्र बोले -

"हे समिद्धि! किस आलंबन के आधार पर लोगों के संकल्प-विकल्प उत्पन्न होते हैं?"

"नाम-रूप (शरीर और मन) के आधार पर, भंते!"

"हे समिद्धि! ये संकल्प-विकल्प किससे संयुक्त हो जाते हैं?"

"भंते! ये शरीर की संवेदनाओं के साथ संयुक्त हो जाते हैं।"

तिस्सो इमे, भिक्खवे, वेदना। कतमा तिस्सो? सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना। सुखाय, भिक्खवे, वेदनाय रागानुसयो पहातब्बो, दुक्खाय

वेदनाय पटिघानुसयो पहातब्बो, अदुक्खमसुखाय वेदनाय अविज्जानुसयो पहातब्बो।

साधको! यह तीन प्रकार की शारीरिक वेदनाएं होती हैं। कौन सी तीन? सुखद संवेदना, दुःखद संवेदना, अदुःखद-असुखद संवेदना।

साधको! सुखद संवेदनाओं के प्रति (अंतर्मन की गहराइयों में) जो सुषुप्त राग-संस्कार हैं उसका त्याग करना चाहिए। दुःखद संवेदनाओं के प्रति (अंतर्मन की गहराइयों में) जो सुषुप्त द्वेष-संस्कार हैं उसका त्याग करना चाहिए। अदुःखद-असुखद संवेदनाओं के प्रति (अंतर्मन की गहराइयों में) जो सुषुप्त अविद्या-संस्कार हैं उसका त्याग करना चाहिए।

(१५) विकार

क्रोध व लोभ चढ़ें जब सिर पर

कुद्धो अत्थं न जानाति, कुद्धो धम्मं न पस्सति।
अन्धतमं तदा होति, यं कोधो सहते नरं॥

लुद्धो अत्थं न जानाति, लुद्धो धम्मं न पस्सति।
अन्धतमं तदा होति, यं लोभो सहते नरं॥

क्रुद्ध व्यक्ति अपना भला नहीं जानता। क्रुद्ध व्यक्ति धर्म नहीं देख सकता। जिसको क्रोध जीत लेता है, वह उस समय गहरे अंधकार में होता है।

लोभ-लुब्ध व्यक्ति अपना भला नहीं जानता। लोभ-लुब्ध व्यक्ति धर्म नहीं देख सकता। जिसको लोभ जीत लेता है वह उस समय गहरे अंधकार में होता है।

आसक्त बने विवादी, अनासक्त हो निर्विवादी

उपयो हि धम्मेसु उपेति वादं, अनूपयं केन कथं वदेय्य।
अत्ता निरत्ता न हि तस्स अत्थि, अथोसि सो दिट्ठिमिधेव सब्बं॥

धर्म में आसक्त व्यक्ति ही विवाद में पड़ता है। जो अनासक्त है वह क्यों और कैसे विवाद में पड़ेगा? उसने सारी दार्शनिक मान्यताओं को त्याग दिया है। उसके लिये न आत्मवाद है, न नैरात्मवाद।

गुण - अवगुण की परख

सक गुणं सक दोसं यो, जानाति सो पण्डितो।
पर गुणं पर दोसं यो, जानाति सो पण्डितो॥

जो अपने गुणों को और अपने दोषों को जानता है, वही पंडित है, वही समझदार है। जो पराये गुणों और पराये दोषों को जानता है, वही पंडित है, वही समझदार है।

कर्म

कर्म ही प्रधान

न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
कम्मुना वसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो॥

न कोई जन्म से वृषल (चांडाल) होता है, न ही जन्म से ब्राह्मण। कर्म से ही कोई वृषल होता है, कर्म से ही ब्राह्मण।

जैसी करनी वैसी भरनी

अत्तना हि कतं पापं, अत्तना सङ्किलिस्सति।
अत्तना अकतं पापं, अत्तनाव विसुज्झति।
सुद्धी असुद्धि पच्चत्तं, नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये॥

अपने द्वारा किया गया पाप ही अपने को मैला करता है। स्वयं पाप न करे तो आदमी आप ही विशुद्ध बना रहे। शुद्धि अशुद्धि तो प्रत्येक मनुष्य की अपनी-अपनी ही है। (अपने-अपने ही अच्छे बुरे कर्मों के परिणामस्वरूप है।) कोई दूसरा भला किसी दूसरे को कैसे शुद्ध कर सकता है? (कैसे मुक्त कर सकता है?)

न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे, न पब्बतानं विवरं पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो, यत्थट्ठितो मुच्चेय्य पापक म्मा॥

न (अनंत) आक ाश में, न सागर (की गहराइयों) में, न पर्वतों की (गुहा-) कंदराओं में प्रवेश क रके- (इस) जगत में, क हीं भी तो ऐसा स्थान नहीं है जहां ठहरा हुआ (कोई) पापक र्मों (अकु शल संस्क ारों के क र्मफ लों) को भोगने से बच सके।

यो पाणमतिपातेति, मुसावादञ्च भासति।
लोके अदिन्नमादियति, परदारञ्च गच्छति।

सुरामेरयपानञ्च, यो नरो अनुयुञ्जति।
इधेवमेसो लोक स्मिं, मूलं खणति अत्तनो॥

जो संसार में हिंसा क रता है, झूठ बोलता है, चोरी क रता है, परस्त्रीगमन क रता है, मद्यपान (सुरा एवं मेरय का पान) क रता है, वह व्यक्ति यहीं - इसी लोक में - अपनी जड़ खोदता है (अर्थात, अनाथ होक र विचरता है)।

मावोच फ रुसं क ञ्चि, वुत्ता पटिवदेय्यु तं।
दुक्खा हि सारम्भक था, पटिदण्डा फु सेय्यु तं॥

तुम कि सी को क ठोर वचन मत बोलो, भले बदले में दूसरे क ठोर ही बोलें। बोलोगे तो प्रतिक्रि यास्वरूप तुम्हें दंड ही मिलेगा, क्योंकि क ठोर वचन के आरंभ से दु:ख ही होता है।

चरन्ति बाला दुम्मेधा, अमित्तेनेव अत्तना।
क रोन्ता पापकं क म्मं, यं होति क टुकं फ लं॥

बाल-बुद्धि वाले मूर्खजन अपने ही शत्रु बन क र आचरण क रते हैं और ऐसे पापक र्म क रते हैं जिनक ा फ ल (स्वयं उनके लिये ही) क डुवा होता है।

अब देरी का क्या काम?

अज्जेव किच्चमातप्पं, को जञ्ञा मरणं सुवे।
न हि नो सङ्गरं तेन, महासेनेन मच्चुना॥

जो भी कुशल कर्म करने हैं, आज ही कर ले। (कल पर मत टाल)। कौन जाने कल ही मरण हो जाय। (मरण के अनेकानेक निमित्त-कारणों वाली) इस विशाल महासेना के सेनापति मृत्युराज से हमारी कोई लिखा-पढ़ी (समझौता) तो है नहीं (कि वह हमारे द्वारा निश्चित समय पर ही आयगा)।

उट्ठहथ निसीदथ, को अत्थो सुपितेन वो।
आतुरानञ्हि का निद्दा, सल्लविद्धान रुप्पतं॥

उठ! बैठ! सोने से तुम्हें क्या मिलेगा भला? जिन्हें कांटा चुभा हो उन व्याकुल रोगियों को नींद कैसी? (शीघ्र अपना कांटा निकालें।)

किये ही होय

अधिगतमिदं बहूहि, अमतं अज्जापि च लभनीयमिदं।
यो योनिसो पयुञ्जति, न च सक्का अघटमानेन॥

बहुतों ने यह अमृत प्राप्त किया है। और आज भी यह प्राप्त किया जा सकता है। पर प्राप्त वही करता है जो भली प्रकार प्रयत्न करता है। बिना पुरुषार्थ (प्रयत्न) के प्राप्त नहीं होता।

सुत्वा तथा ये न करोन्ति बाला, चरन्ति दुक्खेसु पुनप्पुनं ते।
सुत्वा तथा ये पटिपत्तियुत्ता, भवन्ति ते सच्चदसा सपञ्ञा॥

जो मूर्ख व्यक्ति धर्म के मूलभूत सिद्धांतों को सुनते हैं पर उनका पालन नहीं करते, वे बार-बार दुःखों के जीवन में से ही गुजरते हैं।

जो सुनते हैं और तदनुसार आचरण करते हैं, वही सत्यदर्शी प्रज्ञावान होते हैं।

(१६) वाणी

उपमा से धर्म-देशना

अच्चारद्धम्हि वीरियम्हि, सत्था लोके अनुत्तरो।
वीणोपमं करित्वा मे, धम्मं देसेसि चक्खुमा॥

संसार में अनुत्तर चक्षुमान धर्म शास्ता भगवान बुद्ध ने, अतियों में उलझ कर श्रम करनेवाले मुझ (अबोध) को वीणा की उपमा देकर धर्म की देशना दी।

बुद्ध की प्रबुद्ध वाणी

ये धम्मा हेतुप्पभवा, तेसं हेतुं तथागतो आह।
तेसञ्च यो निरोधो, एवंवादी महासमणो॥

जो भी स्थितियां कारणों से उत्पन्न होती हैं, तथागत ने उनके उत्पत्ति-कारण बताये हैं और साथ ही उनका निरोध भी। यही उस महाश्रमण भगवान बुद्ध का सिद्धांत है, मार्ग है।

यो हि पस्सति सद्धम्मं, सो मं पस्सति पण्डितो।
अपस्समानो सद्धम्मं, मं पस्सम्पि न पस्सति॥

जो समझदार व्यक्ति सद्धर्म को देखता है, वही मुझे देखता है। जो सद्धर्म को नहीं देखता, वह मुझे देखता हुआ भी नहीं देखता।

अयमेव खो, भिक्खु, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो ब्रह्मचरियं। यो खो, भिक्खु, रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो, इदं ब्रह्मचरियपरियोसानं।

भिक्षु! यह जो आर्य अष्टांगिक मार्ग है यही ब्रह्मचर्य है। यह जो राग-क्षय, द्वेष-क्षय, मोह-क्षय है यही ब्रह्मचर्य की परिणति है।

अभिञ्ञेय्यं अभिञ्ञातं, भावेतब्बञ्च भावितं।
पहातब्बं पहीनं मे, तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मण॥

जिसे जानना था उसे जान लिया, जिसे अनुभव करना था उसे अनुभवित कर लिया, जिसका मुझे प्रहाण करना था, वह प्रहीण हो गया। हे ब्राह्मण! इसलिए मैं बुद्ध हूं।

यथाद्दक्खि तथाक्खासि, विमलो भूरिमेधसो।
निक्कामो निब्बनो नागो, किस्स हेतु मुसा भणे॥

विमल महाप्रज्ञ ने जैसा देखा, अनुभव किया, वैसा ही कहा। भगवान निष्काम हैं, वितृष्ण हैं। नाग (पापरहित) हैं। झूठ क्यों बोलेंगे भला!

उदान वाक्य

नमो ते बुद्ध वीरत्थु, विप्पमुत्तोसि सब्बधि।
तुय्हापदाने विहरं, विहरामि अनासवो॥

हे बुद्ध! हे वीर! आपको नमस्कार! आप सभी बंधनों से विमुक्त हैं। आपके उपदेशों के अनुसार आचरण कर (जीवन जीकर) मैं आश्रव-रहित (वासना-रहित) हो विहार करता हूं।

सब्बदुक्खं परिञ्ञातं, हेतुतण्हा विसोसिता।
भावितो अट्ठङ्गिको मग्गो, निरोधो फुसितो मया॥

मैंने सारे दुःख का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है। दुःख के कारण तृष्णा को सुखा लिया (उसे समाप्त कर लिया) है। अष्टांगिक मार्ग को भावित कर लिया है और निरोध (निर्वाणिक) अवस्था का स्पर्श कर लिया है। (जो करना था सब कर लिया। मैं कृतकृत्य हुई, मुक्त हुई।)

यो मे धम्ममदेसेसि, सन्दिट्ठिकमकालिकं।
तण्हक्खयमनीतिकं, यस्स नत्थि उपमा क्वचि॥

जिसे स्वयं अनुभूति द्वारा देखा जा सके (सन्दिट्ठिको), जो तत्क्षण फल देने वाला है (अकालिको), जो तृष्णा का क्षय करने वाला है (तण्हक्खयो),

जिसे धारण करने में जरा भी अहित नहीं हो सकता (अनीतिको), ऐसे धर्म को जिन्होंने मुझे दिया उनकी कोई उपमा नहीं है - वे निरुपम हैं।

उत्तम वाणी

सुभासितं उत्तममाहु सन्तो, धम्मं भणे नाधम्मं तं दुतियं।
पियं भणे नाप्पियं तं ततियं, सच्चं भणे नालिकं तं चतुत्थन्ति॥

संतों ने कल्याणकारी अच्छी वाणी को ही उत्तम कहा है। (जो परकल्याणकारीनहीं है, ऐसी वाणी न बोले - यह प्रथम उपदेश है।) धर्म की ही वाणी बोले, अधर्म की नहीं - यह दूसरा उपदेश है। प्रिय बोले, अप्रिय नहीं - यह तीसरा है। और सत्य बोले, असत्य नहीं - यह है चौथा।

विवादं भयतो दिस्वा, अविवादञ्च खेमतो।
समग्गा सखिला होथ, एसा बुद्धानुसासनी॥

विवाद में भय और अविवाद में कुशलक्षेम देखते हुए एकता बनाये रखे और मृदुभाषी रहे - यही बुद्धों का अनुशासन है।

मौन की महत्ता

कायमुनिं वचीमुनिं, चेतोमुनिं अनासवं।
मुनिं मोनेय्यसम्पन्नं, आहु सब्बपहायिनं॥

जिसकी काया मौन है, जिसकी वाणी मौन है, जिसका चित्त मौन है - ऐसे मौन-संपन्न, आश्रव-विहीन, सर्वस्व-त्यागी को मुनि कहते हैं।

(१७) बोधि

सत्य बोध

चतूसु समुद्देसु जलं परित्तकं,
ततो बहुं अस्सुजलं अनप्पकं।
दुक्खेन फुट्ठस्स नरस्स सोचनो,
किं कारणा अम्म तुवं पमज्जसी॥

बार-बार दुःख और शोक में निमग्न हुए व्यक्ति ने इतना अश्रुजल बहाया है जिसके मुकाबले चारों महासमुद्रों का जल भी कम है। इसे समझ। बेटी! तू क्यों बेहोशी में डूबी है?

(१८) बुद्ध वंदना

बुद्ध की सही वंदना

आरद्धवीरिये पहितत्ते, निच्चं दळ्हपरक्कमे।
समग्गे सावके पस्स, एतं बुद्धान वन्दनं॥

देखो! ये श्रावक किस प्रकार (एकत्र होकर) समग्र रूप से साधना में लगे हैं। (चित्त-शुद्धि के लिए) नित्य दृढ़ पराक्रम करते रहते हैं। सचमुच यही है बुद्धों की वंदना!

सिक्खासाजीवसम्पन्नो, इन्द्रियेसु सुसंवुतो।
नमस्समानो सम्बुद्धं, विहासि अपराजितो॥

बुद्ध की शिक्षा और शुद्ध आजीविका से युक्त होकर, मैं इंद्रियसंयत और अजेय हुआ और यों बुद्ध को नमस्कार करता हुआ विहार करने लगा।

(१९) बुद्ध शिक्षा

बुद्ध का शासन

दुक्खञ्चेव पञ्ञापेमि, दुक्खस्स च निरोधं।

मैं केवल दुःख और दुःख-निरोध का ही प्रज्ञापन करता हूं।

बोज्झङ्गो सतिसङ्खातो, धम्मानं विचयो तथा।
वीरियं पीति पस्सद्धि, बोज्झङ्गा च तथा परे॥

समाधुपेक्खा बोज्झङ्गा, सत्तेते सब्बदस्सिना।
मुनिना सम्मदक्खाता, भाविता बहुलीकता।
संवत्तन्ति अभिञ्ञाय, निब्बाणाय च बोधिया॥

स्मृति, धर्म-विचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा - ये सात बोध्यंग हैं जिनका सर्वदर्शी मुनिराज बुद्ध ने सम्यक प्रकार से आख्यान किया, उन्हें भावित किया (और) उनका बहुलीकरण किया। (ये सातों) अभिज्ञा, निर्वाण और परम ज्ञान प्राप्त कराने वाले हैं।

वेदियमानस्स यो पनाहं, भिक्खवे, इदं दुक्खन्ति पञ्ञपेमि,
अयं दुक्खसमुदयोति पञ्ञपेमि, अयं दुक्खनिरोधोति पञ्ञपेमि,
अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदाति पञ्ञपेमि॥

जो व्यक्ति शरीर पर होने वाली संवेदनाओं का अनुभव कर रहा हो, हे भिक्षुओ! मैं -

उसी को यह सत्य प्रज्ञापित करता हूं (सिखाता हूं) - यह दुःख है।

उसी को यह सत्य प्रज्ञापित करता हूं (सिखाता हूं) - यह दुःख की उत्पत्ति है।

उसी को यह सत्य प्रज्ञापित करता हूं (सिखाता हूं) - यह दुःख का निरोध है।

उसी को यह सत्य प्रज्ञापित करता हूं (सिखाता हूं) - यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है।

सुत्वा सुभासितं वाचं, बुद्धस्सादिच्चबन्धुनो।
पञ्चव्याधिञ्हि निपुणं, वालग्गं उसुना यथा॥

आदित्यबंधु भगवान बुद्ध के सुभाषित वचन को सुनकर उनकी बतायी हुई विधि द्वारा मैंने वस्तुस्थिति का उसी प्रकार प्रतिभेदन कर परम सत्य को जान लिया जिस प्रकार कि किसी कुशल धनुर्धारी के तीर द्वारा बाल का अग्रभाग बींध दिया जाता है।

बुद्धों की शिक्षा

सब्बपापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं॥

सभी पापकर्मों (अकुशल कर्मों) को न करना, पुण्यकर्मों की संपदा संचित करना, (पांच नीवरणों से) अपने चित्त को परिशुद्ध करना (धोते रहना) - यही बुद्धों की शिक्षा है।

वाचानुरक्खी मनसा सुसंवुतो, कायेन नाकुसलं कयिरा।
एते तयो कम्मपथे विसोधये, आराधये मग्गमिसिप्पवेदितं॥

वाणी को संयत रखे, मन को संयत रखे और शरीर से कोई अकुशल (काम) न करे। इन तीनों कर्मपथों (कर्मेंद्रियों) का विशोधन करे। ऋषि (बुद्ध) के बताये (अष्टांगिक) मार्ग का अनुसरण करे।

बुद्धमप्पमेय्यं अनुस्सर पसन्नो,
धम्ममप्पमेय्यं अनुस्सर पसन्नो।

सङ्घमप्पमेय्यं अनुस्सर पसन्नो,
पीतिया फुटसरीरो होहिसि सततमुदग्गो॥

असीम अप्रमेय बुद्ध, धर्म और संघ को याद करके प्रसन्न हो जाओ। शरीर को प्रीति-प्रमोद से भर लो और सदा उल्लास-उमंग के साथ रहो।

(२०) निर्वाण

निर्वाण का साक्षात्कार कैसे?

यतो यतो सम्मसति, खन्धानं उदयब्बयं।
लभती पीतिपामोज्जं, अमतं तं विजानतं॥

साधक सम्यक सावधानता के साथ जब-जब (शरीर और चित्त) स्कंधों के उदय-व्यय (रूपी अनित्य स्वभाव की) विपश्यना द्वारा अनुभूति करता है, तब-तब प्रीति-प्रमोद रूपी अध्यात्म-सुख की उपलब्धि करता हुआ अमृत पद (निर्वाण) का साक्षात्कार कर लेता है।

निर्वाण - परम सुख

आरोग्यपरमा लाभा, सन्तुट्ठिपरमं धनं।
विस्सासपरमा ञाति, निब्बानं परमं सुखं॥

आरोग्य परम लाभ है, संतुष्टि परम धन है, विश्वास परम बंधु है, निर्वाण परम सुख है।

मोक्ष के अधिकारी

खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा, सुद्दा चण्डालपुक्कुसा।
सब्बेव सोरता दन्ता, सब्बेव परिनिब्बुता॥

वे सभी जो सुरत हैं, विनम्र हो सत्कर्मों में लगे हैं, सुदंत हैं, आत्मसंयम का जीवन जीते हैं; वे सभी परिनिवृत्त हैं; चाहे वे क्षत्रिय हों, ब्राह्मण हों, वैश्य हों, शूद्र हों, चांडाल हो या भंगी हों।

सजगता से विमुक्ति

येसञ्च सुसमारद्धा, निच्चं कायगता सति।
अकिच्चं ते न सेवन्ति, किच्चे सातच्चकारिनो।
सतानं सम्पजानानं, अत्थं गच्छन्ति आसवा॥

जिनकी कायानुस्मृति नित्य उपस्थित रहती है (याने, जो सतत कायानुपश्यना करते रहते हैं, काय के प्रति एवं काय में होने वाली संवेदनाओं के प्रति जागरूक रहते हैं), वे (साधक) कभी कोई अकरणीय काम नहीं करते, सदा करणीय ही करते हैं। (ऐसे) स्मृतिमान और प्रज्ञावान (साधकों) के आश्रव क्षय को प्राप्त होते हैं (अर्थात, उनके चित्त के मैल नष्ट होते हैं)।

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च, निच्चं कायगता सति॥

जिनमें नित्य, दिन हो या रात, कायगतास्मृति (याने, काया के प्रति जागरूकता) की निरंतरता बनी रहती है, (भगवान) गौतम (बुद्ध) के (वे) श्रावक सदैव भली-भांति प्रबोधित रहते हैं।

"यतो च भिक्खु आतापी, सम्पजञ्ञं न रिञ्चति।
ततो सो वेदना सब्बा, परिजानाति पण्डितो॥

सो वेदना परिञ्ञाय, दिट्ठे धम्मे अनासवो।
कायस्स भेदा धम्मट्ठो, सङ्ख्यं नोपेति वेदगू"ति॥

जब कोई तपस्वी साधक संप्रज्ञान (प्रज्ञा पर आधारित शरीर वा चित्त-संबंधी संपूर्ण जानकारी) को कभी नहीं छोड़ता है, तब वह ज्ञानी (व्यक्ति) सभी प्रकार की संवेदनाओं को भली प्रकार जान लेता है। वह संवेदनाओं को देखते-देखते उनका परिज्ञान कर इसी लोक में आश्रवहीन हो जाता है। संवेदनाओं का मर्मज्ञ ऐसा धर्मिष्ठ व्यक्ति काया छोड़ने पर (अर्थात, मरणोपरांत) ससीम (लोकों) को नहीं प्राप्त होता (अर्थात,

अनिर्वचनीय परिनिर्वाण को प्राप्त कर लेता है, जिससे उसका अनित्य संसार में पुनः आवागमन नहीं होता)।

समाहितो सम्पजानो, सतो बुद्धस्स सावको।
वेदना च पजानाति, वेदनानञ्च सम्भवं॥

यत्थ चेता निरुज्झन्ति, मग्गं च खयगामिनं।
वेदनानं खया भिक्खु, निच्छातो परिनिब्बुतो॥

बुद्ध का श्रावक (साधक) जो समाहित है, सजग है (सच्चाई को) प्रज्ञापूर्वक संपूर्णतया जानने वाला है, वह (शारीरिक) संवेदना को भली प्रकार (प्रज्ञापूर्वक) जानता है - संवेदनाओं की उत्पत्ति को, जहां ये निरुद्ध होती हैं और (संवेदनाओं के) क्षयगामी मार्ग को भी (जानता है)। संवेदनाओं के क्षय से साधक तृष्णा-रहित हो परिनिर्वाण पा लेता है।

(२१) भव-चक्र

भव-बंधन टूट गये

सोज्ज भद्दो अनुत्रासी, पहीनभयभेरवो।
झायति वनमोगय्ह, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥

सीलक्खन्धे पतिट्ठाय, सतिं पञ्ञं च भावयं।
पापुणिं अनुपुब्बेन, सब्बसंयोजनक्खयं॥

वही गोधायपुत्र भद्रिय (जो गढ़-महलों में खड्गहस्त अंगरक्षकों से घिरे रहने पर भी संत्रस्त और भयभीत रहता था) आज (सही माने में) भद्र हुआ, त्रासरहित, भयरहित हुआ, वन में प्रवेश कर ध्यान करता है। शील-सदाचार में पूर्णतया प्रतिष्ठित होकर स्मृति तथा प्रज्ञा की भावना करता हुआ, क्रमशः, मैंने सारे संयोजनों के क्षय को प्राप्त किया, अर्थात मेरे सभी बंधन टूट गये।

मरणे मे भयं नत्थि, निकन्ति नत्थि जीविते।
सन्देहं निक्खिपिस्सामि, सम्पजानो पटिस्सतो॥

न मुझे मरने का भय है, न जीने की कामना। (जब समय आयगा) मैं इस देह को स्मृति और संप्रज्ञा (जागरूकता और तटस्थता) के साथ त्याग दूंगा।

रूपसोखुम्मतं ञत्वा, वेदनानं च सम्भवं।
सञ्ञा यतो समुदेति, अत्थं गच्छति यत्थ च।
सङ्खारे परतो ञत्वा, दुक्खतो नो च अत्ततो॥

स वे सम्मदसो भिक्खू, सन्तो सन्तिपदे रतो।
धारेति अन्तिमं देहं, जेत्वा मारं सवाहिनिं॥

रूपकलापों की सूक्ष्मता को जानकर, संवेदनाओं की उत्पत्ति को जानकर, संज्ञा की जहां उत्पत्ति होती है और जहां उसका निरोध होता है

उसको जानकर, सभी संस्कारों से तादात्म्य दूरकर, उन्हें दु:ख-स्वरूप समझकर और उनके प्रति अनात्मभाव रखकर जो शांत सम्यकदर्शी साधक भिक्षु (परम) शांतिपद निर्वाण रत होता है वह सेना-सहित मार को जीत कर अंतिम देहधारी बन जाता है। (उसके लिये अगला जन्म नहीं होता।)

खन्धा दिट्ठा यथाभूतं, भवा सब्बे पदालिता।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो॥

शरीर और चित्त स्कंधों की यथाभूत सच्चाइयों का सम्यक दर्शन कर लिया। मेरे सारे भव विदीर्ण हो गये। बार बार का जन्म-संसरण क्षय हो गया। अब मेरे लिये पुनर्भव नहीं है।

नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
कालञ्च पटिकङ्खामि, सम्पजानो पतिस्सतो॥

न मृत्यु का अभिनंदन करता हूं, न जीने का ही। संप्रज्ञ और सजग रह कर अपने समय की प्रतीक्षा करता हूं।

अप्पमादरतो भिक्खु, पमादे भयदस्सि वा।
सयोजनं अणुं थूलं, डहं अग्गीव गच्छति॥

जो साधक अप्रमाद में रत रहता है, या प्रमाद से भय खाता है, वह अपने छोटे-बड़े सभी (कर्म-संस्कारों के) बंधनों को आग की भांति जलाते हुए चलता है।

परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, भवनेत्ति समूहता॥

मैंने अपने शास्ता को, धर्मगुरु को, पहचान लिया है। मैंने बुद्ध का शासन पूरा कर लिया है, उनकी शिक्षा का पूरा पालन कर लिया है। मैंने अपना भारी बोझ उतार लिया है। भवनेत्री (भवतृष्णा) को दूर कर दिया है।

भग्गरागो भग्गदोसो, भग्गमोहो अनासवो।
भग्गास्स पापका धम्मा, भगवा तेन वुच्चती॥

राग, द्वेष और मोह को भग्न कर दिया है जिन्होंने, जो आश्रवरहित हैं, जिनके सभी पाप-स्वभाव भग्न हो गये हैं, इस कारण वे भगवान कहलाते हैं।

अथ निब्बिन्दहं रूपे, निब्बिन्दञ्च विरज्जहं।
मा पुन जातिसंसारं, सन्धावेय्यं पुनप्पुनं॥

इस शारीरिक रूप-सौंदर्य के प्रति मेरे मन में निर्वेद जागा। मैं इसके प्रति मोहमुक्त और विरक्त हो गयी। (इस अवस्था में विपश्यना करती हुई मैं उस अवस्था पर पहुँची जहां नितांत विमुक्त हो गयी।) अब मृत्यु और जन्म के चक्कर में बार-बार भटकना न होगा। संसार में फिर मेरा जन्म नहीं होगा।

संसार में आवागमन क्यों?

चतुन्नं, भिक्खवे, अरियसच्चानं अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च।

भिक्षुओ, चार आर्य-सत्यों को भली प्रकार न जान लेने के कारण और गहराई से बींध कर अपने अनुभवों के स्तर पर उनका स्वयं साक्षात्कार न कर लेने के कारण ही इतने लंबे समय से मेरा और तुम्हारा इस संसारचक्र में बार-बार आना-जाना और भागना-दौड़ना होता रहा है।

रूपं दिस्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसिकरोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तञ्च अज्झोस तिट्ठति।
तस्स वड्ढन्ति आसवा, भवमूलोपगामिनो॥

सुंदर रूप देख कर इसी प्रिय आलंबन का चिंतन करने लगता है तो स्मृति-विमूढ़ हो जाता है (होश खो बैठता है)। कामराग से रंजित हुआ ऐसा चित्त, शरीर पर प्रकट होने वाली संवेदनाओं के आस्वादन में डूबा रहता है।

उस व्यक्ति के आश्रव बढ़ते हैं जो कि उसके भवचक्र के आवागमन के मूल कारण बनते हैं।

व्यर्थ ही रोय

न हेतदत्थाय मतस्स होति, न जीवितत्थं परपोरिसानं।
मतं हि रुण्णं न यसं न लोक्यं, न वण्णितं समणब्राह्मणेहि॥

रोने से न मृत व्यक्ति का भला होता है, न जीवितों का। दोनों की ही हानि होती है। मृतक के लिये रोने से न यश बढ़ता है और न चित्तविशुद्धि होती है। इसीलिए श्रमण और ब्राह्मण इसे अच्छा नहीं कहते (इसकी प्रशंसा नहीं करते)।

भवचक्र से मुक्ति

सो वेदना परिञ्ञाय, दिट्ठे धम्मे अनासवो।
कायस्स भेदा धम्मट्ठो, सङ्ख्यं नोपेति वेदगू॥

वह धर्मिष्ठ, वेदगू व्यक्ति वेदनाओं का परिपूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त कर (परम सत्य का साक्षात्कार कर), अनाश्रव हो, (जब) मृत्यु को प्राप्त होता है (तब) इस नश्वर जगत को पुनः प्राप्त नहीं होता।

सुलगता संसार

सब्बो आदीपितो लोको, सब्बो लोको पधूपितो।
सब्बो पज्जलितो लोको, सब्बो लोको पकम्पितो॥

सारा लोक सुलग रहा है, सारा लोक धधक रहा है, सारा लोक जल रहा है, सारा लोक प्रकंपित हो रहा है।

(२२) कल्याणमित्र – सत्संग

कल्याणमित्र कौन?

पियो गरु भावनीयो, वत्ता च वचनक्खमो।
गम्भीरञ्च कथं कत्ता, नो चट्ठाने नियोजको॥

जो कल्याणमित्र है, वह प्रिय, गौरवशाली, आदरणीय, सुवक्ता और मृदुभाषी होता है; गंभीर बातों को बताने वाला और बुरे कामों में नहीं लगाने वाला होता है।

कल्याणमित्र का संयोग

सूरियस्स, भिक्खवे, उदयतो एतं पुब्बङ्गमं पुब्बनिमित्तं, यदिदं - अरुणुग्गं; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अरियस्स अट्ठङ्गिकस्स मग्गस्स उप्पादाय एतं पुब्बङ्गमं एतं पुब्बनिमित्तं यदिदं – कल्याणमित्तता।

जैसे भिक्षुओ! आकाश में ललाई का छा जाना सूर्योदय का पूर्वांग है, पूर्व-लक्षण है, वैसे ही साधकों के लिये कल्याणमित्र का संयोग आर्य अष्टांगिक मार्ग की उपलब्धि का पूर्वांग है, पूर्व-लक्षण है।

सत्संग की कामना

इमिना पुञ्ञकम्मेन, मा मे बालसमागमो।
सन्तं समागमो होतु, याव निब्बानपत्तिया॥

इस पुण्यकर्म के प्रभाव से मेरा कभी भी मूर्खों से पाला न पड़े। जब तक निर्वाण न प्राप्त कर लूं, सदा सत्पुरुषों से ही मिलन हो।

सत्संगति

साधु सुविहितान दस्सनं, कङ्खा छिज्जति बुद्धि वड्ढति।
बालम्पि करोन्ति पण्डितं, तस्मा साधु सतं समागमो॥

सत्पुरुषों का दर्शन भला है। (इससे) शंकाएं दूर होती हैं। बुद्धि बढ़ती है। वे मूर्ख को भी समझदार बना देते हैं। अतः सत्पुरुषों की संगत साधु (अच्छी) है।

यं त्वेव जञ्ञा सदिसो ममन्ति, सीलेन पञ्ञाय सुतेन चापि।
तेनेव मेत्तिं कयिराथ सद्धिं, सुखो हवे सप्पुरिसेन सङ्गमोति॥

जिसे शील, प्रज्ञा और श्रुत में अपने सदृश जाने, उसी के साथ मैत्री करे। सत्पुरुष का सत्संग सुखदायी होता है।

न भजे पापके मित्ते, न भजे पुरिसाधमे।
भजेथ मित्ते कल्याणे, भजेथ पुरिसुत्तमे॥

न पापी मित्रों की संगत करे, न अधम पुरुषों की। संगति करे कल्याणमित्रों की, उत्तम पुरुषों की।

(२३) धर्म

धर्म करे कल्याण

सब्बीतियो विवज्जन्तु, सोको रोगो विनस्सतु।
मा ते भवत्वन्तरायो, सुखी दीघायुको भव॥

(तुम्हारे) सारे कष्ट दूर हों, रोग-शोक विनष्ट हों। तुम्हें कोई अंतराय (विघ्न) न रहे! (तुम) सुखी रहो (और) दीर्घायु प्राप्त करो!!

इच्छितं पत्थितं तुय्हं, खिप्पमेव समिज्झतु।
सब्बे पूरेन्तु सङ्कप्पा, चन्दो पन्नरसो यथा॥

(सभी) इच्छित और प्रार्थित (वस्तुएं) तुम्हें शीघ्र प्राप्त हों! तुम्हारे सभी संकल्प पूनम के चांद की तरह परिपूर्ण हों।

आयु आरोग्य-सम्पत्ति, सग्गसम्पत्तिमेव च।
ततो निब्बानसम्पत्ति, इमिना ते समिज्झतु॥

(मेरे इस पुण्य-कर्म के प्रभाव से) तुम्हें दीर्घायु-संपत्ति प्राप्त हो, आरोग्य-संपत्ति प्राप्त हो, (समय आने पर) स्वर्ग-संपत्ति प्राप्त हो, और तदनंतर निर्वाण-संपत्ति प्राप्त हो!

सब्बे सत्ता सुखी होन्तु, सब्बे होन्तु च खेमिनो।
सब्बे भद्राणि पस्सन्तु, मा कञ्चि दुक्खमागमा॥

सारे प्राणी सुखी हों और कुशलक्षेम से युक्त हों। सब मंगलदर्शी हों। किसी को किसी प्रकार का दुःख न हो।

सद्धिं होन्तु सुखी सब्बे, परिवारेहि अत्तनो।
अनीघा सुमना होन्तु, सह सब्बेहि ञातिभि॥

अपने (-अपने) परिवार (-जन) और सब जातिभाइयों सहित सभी लोग सुखी हों! (वे) शांति और सौमनस्य लाभ करें!!

पापुणन्तु विसुद्धाय, सुखाय पटिपत्तिया।
असोकं अनुपायासं, निब्बानं सुखमुत्तमं॥

विशुद्धि के लिए, सुख के लिए, सदाचरण के लिए शोक रहित, शांत, उत्तम सुख निर्वाण को प्राप्त करें।

सुत्तन्ते रक्खिते सन्ते, पटिपत्ति होति रक्खिता।
पटिपत्तियं ठितो धीरो, योगक्खेमा न धंसति॥

धर्मसूत्र सुरक्षित रहने पर प्रतिपत्ति (याने, साधना) का आचरण सुरक्षित रहता है। सूत्रानुसार आचरण करने वाला धीर व्यक्ति योगक्षेम (निर्वाण) से वंचित नहीं होता है।

चिरं तिट्ठतु सद्धम्मो, धम्मे होन्तु सगारवो।
सब्बेपि सत्ता कालेन, सम्मा देवो पवस्सतु॥

सद्धर्म चिरस्थायी हो! (सभी लोग) धर्म के प्रति गौरवयुक्त हों! सम्यक देव समय पर बरसें!

सब्बदानं धम्मदानं जिनाति, सब्बरसं धम्मरसो जिनाति।
सब्बरतिं धम्मरति जिनाति, तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति॥

धर्म का दान सब दानों को जीत लेता है (सब दानों में श्रेष्ठ है।) धर्म का रस सब रसों को जीत लेता है (सब रसों में श्रेष्ठ है।) धर्म में रमण करना सभी रमण-सुखों को जीत लेता है (सब रतियों में श्रेष्ठ है।) तृष्णा का क्षय सब दुःखों को जीत लेता है (अर्थात, सबसे श्रेष्ठ है)।

धर्मचारी सुख का अधिकारी

धम्मं चरे सुचरितं, न नं दुच्चरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति, अस्मिं लोके परम्हि च॥

सुचरित धर्म का आचरण करे। दुराचरण से बचे। धर्मचारी इस लोक और परलोक (दोनों जगह) सुखपूर्वक विहार करता है।

छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं नातिवत्तति।
आपूरति यसो तस्स, सुक्कपक्खेव चन्दिमाति॥

जो व्यक्ति राग, द्वेष, भय और मोह से धर्म का अतिक्रमण नहीं करता, उसका यश शुक्ल पक्ष के चंद्रमा की भांति बढ़ता है।

धम्मपीति सुखं सेति, विप्पसन्नेन चेतसा।
अरियप्पवेदिते धम्मे, सदा रमति पण्डितो॥

बुद्ध के उपदेशित धर्म में सदा रमण करता है पंडित। (नवविध लोकोत्तर) धर्म (रस) का पान करनेवाला विशुद्धचित्त हो सुखपूर्वक विहार करता है।

धर्मशरण ही उत्तम शरण

नत्थि मे सरणं अञ्ञं, धम्मो मे सरणं वरं।
एतेन सच्चवज्जेन, भवतु ते जयमङ्गलं॥

"मेरी अन्य कोई शरण नहीं, केवल (लोकोत्तर) धर्म ही मेरी उत्तम शरण है" - इस सत्य वचन (के प्रताप) से तेरा जय-मंगल हो!

अट्ठङ्गिको अरियपथो जनानं, मोक्खप्पवेसो उजुकोव मग्गो।
धम्मो अयं सन्तिकरो पणीतो, निय्यानिको तं पणमामि धम्मं॥

यह जो आर्य-जनों के उपयुक्त अष्टांगिक मार्ग है, यह जो मोक्ष-प्राप्ति के लिये सीधा सरल मार्ग है, यह जो शांतिदायक उत्तम धर्म है और यह जो निर्वाण की ओर ले जाने वाला है - मैं ऐसे धर्म को प्रणाम करता हूं।

धम्मानुधम्मपटिपत्तिया बुद्धं पूजेमि।

धम्मानुधम्मपटिपत्तिया धम्मं पूजेमि।

धम्मानुधम्मपटिपत्तिया सङ्घं पूजेमि।

धर्मानुधर्म को आचरण में उतार कर मैं बुद्ध की पूजा करता हूं।

धर्मानुधर्म को आचरण में उतार कर मैं धर्म की पूजा करता हूं।

धर्मानुधर्म को आचरण में उतार कर मैं संघ की पूजा करता हूं।

सुञ्ञागारं पविट्ठस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
अमानुसी रति होति, सम्मा धम्मं विपस्सतो॥

किसी शून्यागार में प्रवेश करके कोई शांत-चित्त साधक जब सम्यक रूप से धर्मानुपश्यना करता है तब उसे लोकोत्तर सुख प्राप्त होता है (जो कि सामान्य मानवीय लोकीय सुखों से परे होता है)।

यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च, सङ्घञ्च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि, सम्मप्पञ्ञाय पस्सति॥

दुक्खं दुक्खसमुप्पादं, दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥

एतं खो सरणं खेमं, एतं सरणमुत्तमं।
एतं सरणमागम्म, सब्बदुक्खा पमुच्चति॥

जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण गया है, जिसने चार आर्यसत्यों - दुःख, दुःख की उत्पत्ति, दुःख से मुक्ति और मुक्तिगामी आर्य अष्टांगिक मार्ग - को सम्यक प्रज्ञा से देख लिया है, और जो यह जानता है कि यही मंगलदायक शरण है, यही उत्तम शरण है, वह इसी शरण को प्राप्त कर सब दुःखों से मुक्त हो जाता है।

धम्मारामो धम्मरतो, धम्मं अनुविचिन्तयं।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु, सद्धम्मा न परिहायति॥

धर्म में रमण करने वाला, धर्म में रत, धर्म का चिंतन करते, धर्म का स्मरण करते भिक्षु (साधक) सद्धर्म से च्युत नहीं होता।

सुखो बुद्धानमुप्पादो, सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा सङ्घस्स सामग्गी, समग्गानं तपो सुखो॥

सुखदायी है बुद्धों का उत्पन्न होना, सुखदायी है सद्धर्म का उपदेश। सुखदायी है संघ की एकता, सुखदायी है एक-साथ तपना।

धर्मरत्न अनमोल

स्वागतं न दुरागतं, नयिदं दुमन्तितं मम।
संविभत्तेसु धम्मेसु, यं सेट्ठं तदुपागमिं॥

मेरा यहां आना अच्छा ही हुआ, बुरा नहीं हुआ। मुझे जो परामर्श मिला वह कल्याणकारीही सिद्ध हुआ। संविभाजित धर्म में यह जो श्रेष्ठ है उसे मैंने प्राप्त किया।

वनप्पगुम्बे यथा फुस्सितग्गे, गिम्हानमासे पठमस्मिं गिम्हे।
तथूपमं धम्मवरं अदेसयि, निब्बानगामिं परमं हिताय॥

ग्रीष्म ऋतु के प्रारंभिक मास में जिस प्रकार सघन वन प्रफुल्लित वृक्षशिखरों से शोभायमान होता है, उसी प्रकार भगवान बुद्ध ने ऐसे परम हितकारीश्रेष्ठ धर्म काउपदेश दिया जो निर्वाण कीओर ले जाने वाला है।

यं किञ्चि रतनं लोके, विज्जति विविधा पुथु।
रतनं धम्मसमं नत्थि, तस्मा सोत्थि भवन्तु ते॥

लोक में जो विविध प्रकारके रत्न हैं, उनमें से कोईभी धर्म-रत्न जैसा नहीं है। इस सत्य से तुम्हारी स्वस्ति हो!

विपश्यना – सनातन धर्म

चिरं तिट्ठतु लोकस्मिं, सम्मासम्बुद्धसासनं।
दस्सेन्तं सोतवन्तुनं, मग्गं सत्तविसुद्धिया॥

सात प्रकार की विशुद्धियों के लिये, श्रोत्रवंतों (कान वालों) को भगवान सम्यक संबुद्ध ने जो उपदेश दिया वह लोक में चिरकालतक स्थित रहे।

जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता, अथो सरीरम्पि जरं उपेति।
सतो च धम्मं न जरं उपेति, सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति॥

रंग-बिरंगे सुचित्रित राजरथ जीर्ण हो जाते हैं और यह शरीर भी जीर्णता को प्राप्त हो जाता है। (परंतु) संतों (बुद्धों) का धर्म जीर्ण नहीं होता (तरोताजा बना रहता है)। संतजन (बुद्ध) संतों से ऐसा (ही) कहते हैं।

यथाभूत ज्ञानदर्शन

अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।
यदतीतं पहीनं तं, अप्पत्तञ्च अनागतं॥

पच्चुप्पन्नञ्च यो धम्मं, तत्थ तत्थ विपस्सति।
असंहीरं असङ्कुप्पं, तं विद्वा मनुब्रूहये॥

भूतकाल की याद कर व्यग्र-व्याकुल न हो, भविष्य की कपोल-कल्पना के प्रति कामनाग्रस्त न हो। भूतकाल तो बीत चुका, भविष्य अभी आया नहीं। इस क्षण जो जो जहां-जहां उत्पन्न हुआ है, उस धर्म को, उस स्थिति को, समझदार आदमी वहां-वहां देखे। परंतु न राग-रंजित होकर उससे चिपके और न ही द्वेष-दूषित होकर उससे कुपित हो। इस प्रकार अनासक्त हो, साक्षी स्वभाव वाली विपश्यना का अभ्यास करे, उसका विकास करे।

कम्मुना वत्तति लोको, कम्मुना वत्तति पजा।
कम्मनिबन्धना सत्ता, रथस्साणीव यायतो।
एवमेतं यथाभूतं, कम्मं पस्सन्ति पण्डिता।
पटिच्चसमुप्पाददस्सा, कम्मविपाककोविदा॥

संसार कर्म के आधार पर चलता है। कर्म के आधार पर प्रजा चलती है। चलते हुए रथ का पहिया जैसे धुरी से बँधा रहता है, वैसे ही प्राणी भी अपने कर्मों से बँधे हुए रहते हैं। इस प्रकार प्रतीत्यसमुत्पाददर्शी तथा कर्मविपाककुशल ज्ञानी विपश्यी कर्म-संस्कार (के खेल) को यथाभूत देखते हैं, याने जैसे-जैसे होता है वैसे-वैसे देखते हैं।

जिघच्छापरमा रोगा, सङ्खारपरमा दुखा।
एतं ञत्वा यथाभूतं, निब्बानं परमं सुखं॥

भूख सबसे बड़ा रोग है (और उसके कारण) जो संस्कार बनते हैं वे सबसे बड़े दुःख हैं। (तृष्णा और उससे बनते संस्कारों को अपने भीतर विपश्यना साधना द्वारा) यथाभूत जानकर जो निर्वाण (प्राप्त होता) है, वह सबसे बड़ा सुख है।

धर्मचारी ही सर्वप्रिय

सीलदस्सनसम्पन्नं, धम्मट्ठं सच्चवादिनं।
अत्तनो कम्मं कुब्बानं, तं जनो कुरुते पियं॥

जो शीलसंपन्न, विपश्यनासंपन्न, धर्मनिष्ठ, सत्यवादी, कर्तव्यपरायण है, उसे लोग प्यार करते हैं।

धर्म की निरपेक्षता

"अन्तेवासिकम्यता नो समनो गोतमो एवमाहा" ति। न खो पनेतं, निग्रोध, एवं दट्ठब्बं। यो एव वो आचरियो, सो एव वो आचरियो होतु।

(यदि तुम्हारे मन में ऐसा विचार हो कि) श्रमण गौतम अपने शिष्यों की संख्या बढ़ाने के लिये ऐसा कहते हैं, तो ऐसा नहीं समझना चाहिए। निग्रोध! जो तुम्हारे आचार्य हैं, वे ही तुम्हारे आचार्य रहें।

(२४) दान की महिमा

सर्वोत्तम दान

अन्नदो बलदो होति, वत्थदो होति वण्णदो।
यानदो सुखदो होति, दीपदो होति चक्खुदो॥

सो च सब्बददो होति, यो ददाति उपस्सयं।
अमतं ददो च सो होति, यो धम्ममनुसासाति॥

जो अन्न का दान देता है, वह बल का दान देता है। जो वस्त्र का दान देता है, वह वर्ण (रूप) का दान देता है। जो वाहन का दान देता है, वह सुख का दान देता है। जो प्रदीप का दान देता है, वह चक्षु का दान देता है। जो उपाश्रय (निवास-स्थान) का दान देता है, वह सब कुछ दान देता है। परंतु जो धर्म में अनुशासित करता है (याने, धर्म का दान देता है), वह वस्तुतः अमृत का दान देता है (निर्वाण का दान देता है)।

यो धम्मलद्धस्स ददाति दानं, उट्ठानवीरियाधिगतस्स जन्तु।
अतिकम्म सो वेतरणिं यमस्स, दिब्बानि ठानानि उपेति मच्चो॥

जो (दानी) धर्मलाभी, उत्थान-वीर्ययुक्त [याने, पुरुषार्थ-पराक्रम द्वारा मुक्तिमार्ग (साधना-पथ) पर आरूढ़ व्यक्ति] को दान देता है, वह यम की वैतरणी (नदी) को पार कर दिव्य स्थानों को प्राप्त होता है।

(२५) बिखरे मोती

रमणीय भूमि

गामे वा यदि वारञ्ञे, निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थ अरहन्तो विहरन्ति, तं भूमिरामणेय्यकं॥

गांव हो या जंगल, भूमि नीची हो या (ऊंची), जहां (कहीं) अरहंत विहार करते हैं, वह भूमि रमणीय होती है।

प्रज्ञा का प्रकाश

यथा सङ्कारठानस्मिं, उज्झितस्मिं महापथे।
पदुमं तत्थ जायेथ, सुचिगन्धं मनोरमं॥

एवं सङ्कारभूतेसु, अन्धभूते पुथुज्जने।
अतिरोचति पञ्ञाय, सम्मासम्बुद्धसावको॥

जिस प्रकार महापथ पर फेंके गये कचरे के ढेर में पवित्र गंध वाला मनोरम पद्म उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार कचरे के समान अंधे पृथग्जनों के बीच सम्यक संबुद्ध का श्रावक भी अपनी प्रज्ञा से अंधे पृथग्जनों के बीच अत्यंत शोभायमान होता है।

अप्रमाद का सुपरिणाम

यो च पुब्बे पमज्जित्वा, पच्छा सो नप्पमज्जति।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥

जो पहले प्रमाद करके (भी) पीछे प्रमाद नहीं करता, वह मेघमुक्त चंद्रमा की भांति इस लोक को प्रकाशित करता है।

दूध का दूध पानी का पानी

सारञ्च सारतो ञत्वा, असारञ्च असारतो।
ते सारं अधिगच्छन्ति, सम्मासङ्कप्पगोचरा॥

सार को सार और निःसार को निःसार जान कर सम्यक चिंतन करने वाले व्यक्ति सार को प्राप्त कर लेते हैं।

असारे सारमतिनो, सारे चासारदस्सिनो।
ते सारं नाधिगच्छन्ति, मिच्छासङ्कप्पगोचरा॥

जो निःसार को सार और सार को निःसार समझते हैं, ऐसे गलत चिंतन में लगे हुए व्यक्तियों को सार प्राप्त नहीं होता।

गाथानुक्र मणिक ा

[अ]

अज्जेव कि च्चमातप्पं – म. नि. ३. २७२
अत्ता ही अत्तनो नाथो – धम्मपद १६०
अत्तना हि क तं पापं – धम्मपद १६५
अतीतं नान्वागमेय्य – म. नि. ३.२७२
अतीतानुधावनं चित्तं – पटिसम्भिदामग्ग १.१५६
अनिच्चा वत सङ्खारा – दी. नि. २.२२१
असारे सारमतिनो – धम्मपद ११
अन्नदो बलदो होति – सं. नि. १.१.४२
अनुपुब्बेन मेधावी – धम्मपद २३९
अञ्ञाय लोकं परमत्थदस्सिं –सु. नि. २२१
अथ पापानि क म्मानि – धम्मपद १३६
असुभानुपस्सिं विहरन्तं – धम्मपद ८
अट्ठङ्गिको अरियपथो जनानं – वन्दना ५
अनभिज्झालु विहरेय्य – अं. नि. १.४.२९
अस्मा लोक ापरं लोकं –सं. नि. १.१.२४६
अञ्ञदत्थुहरो होति – दी. नि. ३.२५५
अनवट्ठितचित्तस्स – धम्मपद ३८
अधिगतमिदं बहूहि – थेरीगाथा ५१५
अप्पं वत जीवितं इदं – सु. नि. ८१०
अप्पमादरतो भिक्खु – धम्मपद ३१
अनुपट्ठितक ायसति – म. नि. १.४०९
अयमेव खो, भिक्खु – सं. नि. ३.५.६
अत्ता हि अत्तनो नाथो – धम्मपद ३८०
अभिञ्ञेय्यं अभिञ्ञातं – सु. नि. ५६३
अच्चारद्धम्हि वीरियम्हि – थेरगाथा ६३८
अथ निब्बिन्दहं रूपे – थेरीगाथा २६
अन्तेवासिक म्यता – दी. नि. ३.७८
अभिवादनसीलिस्स – आटानाटियसुत्त २८
अल्लचम्मपटिच्छन्नो – मिलिन्दपञ्ह २.६.१
असेवना च बालानं – सु. नि. २६२
अट्ठीनं नगरं क तं – धम्मपद १५०

[आ]

आसा यस्स न विज्जन्ति – धम्मपद ४१०
आयु आरोग्य-सम्पत्ति – मङ्गल-आसिंसना १
आनण्यसुखं ञत्वान – अं. नि. १.४.६२
आरोग्यपरमा लाभा – धम्मपद २०४
आरद्धवीरिये पहितत्ते – थेरीअपदान २.२.१७१

[इ]

इदं खो पन भिक्खवे – महावग्ग १४
इत्थि-मिस्से कु तो सीलं –
क पिदप्पणनीति ३२३
इच्छितं पत्थितं तुय्हं – मङ्गल-आसिंसना २
इमिना पुञ्ञक म्मेन – मङ्गल-क ामना १०
इध तप्पति पेच्च तप्पति –
धम्मपद १७, १८
इमिना मे अधिक ारेन –
बुद्धवंस २. ५७-५८
इदं पुरे चित्तमचारि – धम्मपद ३२६

[उ]

उट्ठाता क म्मधेय्येसु – अं. नि. ३.८.५४
उट्ठहथ निसीदथ – सु. नि. ३३३
उपयो हि धम्मेसु – सु. नि. ७९३

[ए]

एक ञ्हिसच्चं न दुतियमत्थि –सु. नि. ८९०
एतदत्तनि सम्भूतं – सं. नि. ३.५.४

[ओ]

ओक्खित्तचक्खु न च पादलोलो –
सु. नि. ९७८

[क]

कम्मुना वत्तति लोको – सु. नि. ६५८, ६५९
क रणीयमत्थकु सलेन – सु. नि. १४३
क ामच्छन्दो च ब्यापादो – थेरगाथा ७४

कामतो जायती सोको – धम्मपद २१५
कायमुनिं वचीमुनिं – अं. नि. १.३.१२३
कायेन संवुता धीरा – धम्मपद २३४
किकीव अण्डं – वि. मग्ग १.१९
किञ्च भिक्खवे, रूप वदेथ –
सं. नि. २.३.७९
किञ्चापि सो कम्म करोति पापकं –
खुद्दकपाठ ६.१२
किं ते जटाहि दुम्मेध – धम्मपद ३९४
किं मे एकेन तिण्णेन – बुद्धवंस २.५६
किमारम्मणा, समिद्धि – अं. नि. ३.९.१४
कुद्धो अत्थं न जानाति – अं. नि. २.७.६४
को नु हासो किमानन्दो – धम्मपद १४६

[ख]

खीणं पुराणं – खुद्दकपाठ ६.१५
खन्धा दिट्ठा यथाभूतं – थेरगाथा ८७
खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा – जातक १.१३.८
खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा –जातक १.१४.७४
खत्तिये ब्राह्मणे वेस्से – सं. नि. १.१.१३६

[ग]

गामे वा यदि वारञ्ञे – धम्मपद ९८

[च]

चरथ, भिक्खवे, चारिकं – दी. नि. २.८८
चरन्ति बाला दुम्मेधा – धम्मपद ८८
चतुन्नं अरियसच्चानं – दी. नि. २.१५५
चतुन्नं, भिक्खवे, अरियसच्चानं –
दी. नि. २.१५५
चतूसु समुद्देसु जलं परित्तकं –
थेरीगाथा अ.कथा १११
चित्तं, भिक्खवे, रक्खितं –अं. नि. १.१.३६
चित्तं मम अस्सवं – सु. नि. २३
चिरं तिट्ठतु लोकस्मिं – ...
चिरं तिट्ठतु सद्धम्मो – मङ्गल-कामना ६

[छ]

छन्दजं अघं छन्दजं दुक्खं – सं नि. १.१.३४
छन्दा दोसा भया मोहा – दी. नि. ३.२४६

[ज]

जयन्तो बोधिया मूले – पुब्बण्हसुत्त १५
जातिपि दुक्खा–महावग्ग १४, सं.नि.३.५.१०८१
जातिधम्मो जराधम्मो – बुद्धवंस २.७
जिघच्छापरमा रोगा – धम्मपद २०३
जीरन्ति वे राजरथा – धम्मपद १५१

[त]

तपो च ब्रह्मचरियञ्च – सु. नि. २७०
तयो रोगा पुरे आसुं – सु. नि. ३१३
तिस्सो इमा, भिक्खवे, वेदना –
सं. नि. २.४.२५१

[द]

दळ्हं पग्गण्ह वीरियं – बुद्धवंस २.१०७
दहरा च हि वुद्धा च – जातक १.११.८७
दिट्ठे धम्मे च यो अत्थो –सं. नि. १.१.१२९
दीघो रस्सो च अस्सासो –वि. मग्ग १.२१९
दुक्खञ्चेव पञ्ञापेमि –
सं. नि. २.३.८६, २.४.४११
दुक्खप्पत्ता च निद्दुक्खा – पुब्बण्हसुत्त ४
दुक्खी सुखं पत्थयति – वि. मग्ग २.६४४

[ध]

धम्मपीति सुखं सेति – धम्मपद ७९
धम्मं चरे सुचरितं – धम्मपद १६९
धम्मानुधम्मपटिपत्तिया –
श्रामणेर विनय, सङ्कप्पो
धम्मारामो धम्मरतो – धम्मपद ३६४

[न]

न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे –धम्मपद १२७
न गामधम्मो निगमस्स धम्मो –
थेरी अपदान २.३.८२
न जच्चा वसलो होति – सु. नि. १४२
न जटाहि न गोत्तेन – धम्मपद ३९३
न नग्गचरिया न जटा न पङ्का –
धम्मपद १४१
न भजे पापके मित्ते – धम्मपद ७८

नमो ते पुरिसाजञ्ञ – थेरगाथा ६२९
नमो ते बुद्ध वीरत्थु – थेरगाथा ४७
न वेदनं वेदयति सपञ्ञो –
सं. नि. २.४.२५४
न हि वेरेन वेरानि – धम्मपद ५
न हेतदत्थाय मतस्स – थेरगाथा ५५४
नत्थि मे सरणं अञ्ञं – सरण-गमनं ३
नत्थि रागसमो अग्गि – धम्मपद २५१
नन्दीसम्बन्धनो लोको – सं. नि. १.१.६५
नाभिनन्दामि मरणं – थेरगाथा १९६
नाभिनन्दामि मरणं – थेरगाथा १००१
निधाय दण्डं भूतेसु – धम्मपद ४०५

[प]

पमादं अप्पमादेन – धम्मपद २८
परिचिण्णो मया सत्था- थेरी अपदान २.३.१२४
पाणातिपातो अदिन्नादानं –दी. नि. ३.२४५
पापुणन्तु विसुद्धाय – मङ्गल-कामना ५
पित्तं सेम्हञ्च च वातो च –सं.नि.२.४.२६९
पियो गरु भावनीयो – वि. मग्ग १.४२
पुत्ता मत्थि धनम्मत्थि – धम्मपद ६२
पुब्बे हनति अत्तानं – थेरगाथा १३९
पूजको लभते पूजं – मेत्तानिसंससुत्त ६

[ब]

बाहितपापोति ब्राह्मणो – धम्मपद ३८८
बाहुसच्चञ्च सिप्पञ्च – सु.नि. २६४
बहुम्पि चे संहित भासमानो – धम्मपद १९
बुद्धमप्पमेय्यं अनुस्सर – थेरगाथा ३८२-३८४
बोज्झङ्गो सतिसङ्खातो – बोज्झङ्गसुत्त १.३

[भ]

भग्गरागो भग्गदोसो – वि. मग्ग १.१४४
भुत्ता भोगा भता भच्चा –अं. नि. १.४.६१

[म]

मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो – धम्मपद २७३
मनुजस्स पमत्तचारिनो – धम्मपद ३३४
मनोपकोपं रक्खेय्य – धम्मपद २३३
मरणे मे भयं नत्थि – थेरगाथा २०
महाकारुणिको नाथो – पुब्बण्हसुत्त १४
मा जातिं पुच्छी – सु. नि. ४६६
मातापिता दिसा पुब्बा – दी. नि. ३.२७३
मातापिता उपट्ठानं – सु. नि. २६५
मावोच फरुसं कञ्चि – धम्मपद १३३
मेत्तञ्च सब्बलोकस्मिं – सु. नि. १५०
मोहं, भिक्खवे, एकधम्मं – इतिवुत्तक ३

[य]

यं एसा सहते जम्मी – धम्मपद ३३५
यं किञ्चि रतनं लोके – अभय परित्त ७
यं त्वेव जञ्ञा सदिसो ममन्ति –
जातक १.२.२२
यं परे सुखतो आहु – सु. नि. ७६७
यतं चरे यतं तिट्ठे – इतिवुत्तक १११
यतो च भिक्खु आतापी –सं. नि. २.४.२५१
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च – धम्मपद २६१
यतो यतो सम्मसति – धम्मपद ३७४
यथाद्दक्खि तथाक्खासि – सु. नि. ११३७
यथा दण्डेन गोपालो – धम्मपद १३५
यथापि कुम्भकारस्स – सु. नि. ५८२
यथापि कुम्भकारस्स – वि. मग्ग १.१६९
यथापि भद्दो आजञ्ञो – थेरगाथा ४५
यथा पि वाता आकासे –
खुद्दकपाठ ६.८; सु. नि. २३१
यथा सङ्कारठानस्मिं – धम्मपद ५८-५९
यथा हि अङ्गसम्भारा – सं. नि. १.१.१७१
यदत्थं भोगं इच्छेय्य – अं. नि. १.४.६१
यदा असोकं विरजं – थेरगाथा ५२१
यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा – उदान १.३
यदा वितक्के उपरुन्धियत्तनो –
थेरगाथा ५२५
यस्स कायेन वाचाय – धम्मपद ३९१
यस्स पापं कतं कम्मं – धम्मपद १७३
यस्स सब्बमहोरत्तं – सं. नि. १.१.२३८
यस्सेते चतुरो धम्मा –
सु. नि. १९०, सं. नि. १.१.२४६
ये धम्मा हेतुप्पभवा – अपदान १.१.२८६
येसञ्च सुसमारद्धा – धम्मपद २९३

यो च पुब्बे पमज्जित्वा – धम्मपद १७२
यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च –
धम्मपद १९०-१९२
यो धम्मलद्धस्स ददाति दानं –
जातक १.८.७१
यो पाणमतिपातेति – धम्मपद २४६, २४७
यो मे धम्ममदेसेसि – सु. नि. ११४३
यो सहस्सं सहस्सेन – धम्मपद १०३
यो हि पस्सति सद्धम्मं –
थेरगाथा अ.कथा २.३५४

[र]
रूपं दिस्वा सति मुट्ठा – थेरगाथा ९८
रूपसोखुम्मतं ञत्वा – अं. नि. १.४.१६

[ल]
लोहितपाणिं पुरे आसिं – थेरगाथा ८८१
लुद्धो अत्थं न जानाति – इतिवु. ८८

[व]
वनप्पगुम्बे यथा फुस्सितग्गे –
खुद्दकपाठ ६.१३; सु. नि. २३६
वाचानुरक्खी मनसा – धम्मपद २८१
विवादं भयतो दिस्वा –चरियापिटक ३.१२२
वेदियमानस्स खो पनाहं –अं. नि. १.३.६२
वेला च संवरं सीलं – थेरगाथा ६१३

[स]
सक्कत्वासक्कतोहोति –मेत्तानिसंससुत्त ५
सक गुणं सक दोसं यो – ...
स्वागतं न दुरागतं – थेरगाथा ९
सब्बदानं धम्मदानं जिनाति –धम्मपद ३५४
सद्धिं होन्तु सुखी सब्बे – आवाहनसुत्त १०
सब्बदुक्खं परिञ्ञातं – थेरीगाथा १५८
सब्बपापस्स अकरणं – धम्मपद १८३
सब्बरोगा विनीमुत्तो – आटानाटियसुत्त १७
सब्बीतियो विवज्जन्तु –आटानाटियसुत्त २७
“सब्बे धम्मा अनत्ता”ति – धम्मपद २७९
“सब्बे सङ्खारा अनिच्चा”ति –धम्मपद २७७
“सब्बे सङ्खारा दुक्खा”ति – धम्मपद २७८
सब्बे तसन्ति दण्डस्स – धम्मपद १३०
सब्बे सत्ता सब्बे पाणा –जातक १.२.१०५
सब्बे सत्ता सुखी होन्तु – मङ्गल-कामना ९
सब्बो आदीपितो लोको – सं. नि. १.१.१६८
समाहितो सम्पजानो – सं. नि. २.४.२४९
सरजा अरजा चापि – सं. नि. २.४.२६०
साधु सुविहितान दस्सनं – थेरगाथा ७५
सारञ्च सारतो ञत्वा – धम्मपद १२
सिक्खासाजीवसम्पन्नो – थेरगाथा ५१३
सीलगन्धसमो गन्धो – वि. मग्ग १.९
सीलदस्सनसम्पन्नं – धम्मपद २१७
सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो –
सं. नि. १.१.२३
सीलमेव इध अग्गं – थेरगाथा ७०
सीलं बलं अप्पटिमं – थेरगाथा ६१४
सुखं वा यदि वा दुक्खं –
सु. नि. ७४३-७४४
सुखो बुद्धानमुप्पादो – धम्मपद १९४
सुञ्ञागारं पविट्ठस्स – धम्मपद ३७३
सुत्तन्ते रक्खिते सन्ते –
अं. नि. अ.कथा १.१.१३०
सुदुद्दसं सुनिपुणं – धम्मपद ३६
सुत्वा तथा ये न करोन्ति बाला –
अपदान १.१.१३७-१३८
सुत्वा सुभासितं वाचं – थेरगाथा २६
सुत्वान धम्मं महतो महारसं – थेरगाथा ६९
सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति – धम्मपद २९९
सुभासितं उत्तममाहु सन्तो – सु. नि. ४५२
सुसुखं वत जीवाम – धम्मपद १९८
सूरियस्स, भिक्खवे, उदयतो –
सं. नि. ३.५.४९
सेलो यथा एकघनो – धम्मपद ८१
सो अत्थवा सो धम्मट्ठो – थेरगाथा ७४०
सोज्ज भद्दो अनुत्रासी –
थेरगाथा ८६४-८६५
सोभन्तेव न राजानो – वि. मग्ग १.९
सो वेदना परिञ्ञाय – सं. नि. २.४.२५१

विषय-सूची

एक क -निपात(१-१ ३)

१. रूप आदि वर्ग- - - - - - - - - - - - - - - - - - १

२. नीवरण-प्रहाण वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - ३

३. अक र्मणीय वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - ६

४. अदान्त (दमन न कि या हुआ) वर्ग - - - - - - - - - - ७

५. प्रणिहित एवं पारभाषी (सुबोध) वर्ग - - - - - - - - - ८

६. क्षणिक वर्ग- - - - - - - - - - - - - - - - - - १०

७. प्रयत्नारंभआदि वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - १२

८. क ल्याणमित्रादि वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - १४

९. प्रमादादि वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - १५

१०. द्वितीय प्रमादादि वर्ग - - - - - - - - - - - - - - १६

११. अधर्म वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - १९

१२. अनपराध वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - १९

१३. एक पुद्गल वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - २१

अंगुत्तर निकाय

उन भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध को नमस्कार है।

एकक-निपात

१. रूप आदि वर्ग

१. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान[1] श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे।

तब भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया–

"भिक्षुओ !"

"भदंत !" कहकर भिक्षुओं ने प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा–

---

१ **भगवाति वचनं सेट्ठं, भगवाति वचनमुत्तमं।**
गरुगारवयुत्तो सो, भगवा तेन वुच्चति॥

['भगवान' श्रेष्ठ वचन है, 'भगवान' उत्तम वचन है, गौरव-युक्त होने से वे (तथागत) भगवान कहलाते हैं।]

"भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे रूप को नहीं जानता[१] जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, स्त्री का रूप।

"स्त्री का रूप, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेता है।

२. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे शब्द (दूसरी आवाज़) को नहीं जानता जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, स्त्री का शब्द (आवाज़)।

"स्त्री का शब्द, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेता है।

३. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरी गंध को नहीं जानता जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेती है जैसे भिक्षुओ, स्त्री की गंध।

"स्त्री की गंध, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेती है।

४. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे रस को नहीं जानता जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, स्त्री का रस।

"स्त्री का रस, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेता है।

५. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे स्पर्श को नहीं जानता जो पुरुष के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, स्त्री का स्पर्श।

"स्त्री का स्पर्श, भिक्षुओ! पुरुष के चित्त को बांध लेता है।

६. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे रूप को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, पुरुष का रूप।

"पुरुष का रूप, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेता है।

७. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे शब्द (आवाज़) को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, पुरुष का शब्द।

---

१ पालि में यहां **'समनुपस्सामि'** शब्द का प्रयोग किया है, जिसका **'जानना'** अर्थ करना ही अधिक समीचीन होगा। जानना अर्थात अनुभूति के स्तर पर जानना, जैसे कि पूज्य श्री सत्यनारायण गोयन्काजी ने कहा है। उन्होंने 'जान्यता' और 'मान्यता' में अंतर दिखाया है। मान्यता सिर्फ मानना है, परंतु जान्यता अनुभूति के स्तर पर जानना अर्थात, प्रत्यक्ष अनुभव करना है। 'देखना' का प्रयोग हिंदी में इस अर्थ में नहीं होता। हां, इसका अर्थ भी अनुभूति के स्तर पर जानना हो सकता है बशर्ते इसके पहले कुछ रहे। इसे पू. गोयन्काजी ने एक उदाहरण से समझाया कि 'रसगुल्ले खाकर तो देख'। इस वाक्य में देखने का भाव अनुभव करना है। अट्ठकथा में समनुपस्सना दो प्रकार की कही गयी है – **ञाणसमनुपस्सना** और **दिट्ठिसमनुपस्सना**। सभी संस्कार अनित्य हैं, नित्य नहीं; ऐसा देखना ञाणसमनुपस्सना है। 'रूप' आदि को आत्मा के रूप में मानना **'दिट्ठिसमनुपस्सना'** है। यहां **'ञाणसमनुपस्सना'** अभिप्रेत है । **'समनुपस्सामि'** का अर्थ सर्वज्ञता ज्ञान से जानना, देखना है। किंतु सब जगह 'सर्वज्ञता ज्ञान से जानता हूं' लिखने से भाषा बोझिल हो जायगी। इसलिए केवल 'जानता हूं' रखना तय किया गया।

"पुरुष का शब्द, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेता है।

८. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरी गंध को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेती है जैसे भिक्षुओ, पुरुष की गंध।

"पुरुष की गंध, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेती है।

९. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे रस को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, पुरुष का रस।

"पुरुष का रस, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेता है।

१०. "भिक्षुओ, मैं और किसी दूसरे स्पर्श को नहीं जानता जो स्त्री के चित्त को इस प्रकार बांध लेता है जैसे भिक्षुओ, पुरुष का स्पर्श।

"पुरुष का स्पर्श, भिक्षुओ! स्त्री के चित्त को बांध लेता है।"

* * * * *

२. नीवरण-प्रहाण वर्ग

११. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म[१] (बात) नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न कामेच्छा उत्पन्न होती है अथवा उत्पन्न कामेच्छा

१ 'धर्म' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त किया गया है जैसे अच्छा आचरण, देशना अर्थात नैतिक शिक्षा, सनातन नियम (कानून) आदि। इसका अर्थ हेतु, कारण, नैतिक गुण, तथा तथ्य भी है जो पारमार्थिक सत्य, परासत्ता का विलोम है। धर्म का अर्थ कहीं सिद्धांत भी होता है तो कहीं इसका अर्थ बात भी होता है। **'सब्बे धम्मा अनिच्चा**ति' में धर्म का अर्थ सभी संवृति सत्य है अर्थात प्रत्यक्ष जगत है। **'दिट्ठेव धम्मे'** में धर्म इस जीवन को, इस लोक को द्योतित करता है, जो सम्परायिक अर्थात लोकोत्तर (परलोक) का विलोम है। **'लोक धम्मा'** में धर्म का अर्थ इस दुनिया में प्राप्त होने वाली चीजें जैसे लाभ-हानि, यश-अपयश, निंदा-प्रशंसा और सुख-दुःख इत्यादि हैं जो लोक धर्म कहे जाते हैं। **'उत्तरिमनुस्सधम्मा'** से अभिप्रेत हैं अलौकिक बातें। **'गामधम्मा'** से मतलब है गांव के लोगों द्वारा बोली जाने वाली बातें या उनके द्वारा किया जाने वाला आचरण। **'वयधम्मा सङ्खारा'** में धर्म का अर्थ स्वभाव है अर्थात सभी संस्कार व्ययधर्मा, क्षयधर्मा हैं।

धर्म से अभिप्राय नाम तथा रूप संबंधी सभी बातों से है। चित्त धर्म है तो चैतसिक भी धर्म हैं। रूप धर्म है तो इसकी अनित्यता भी धर्म है। कुशल तथा अकुशल चित्त वृत्तियां भी धर्म हैं।

धर्म का अर्थ नैतिकता, न्याय, उचित व्यवहार, आचरण, कर्त्तव्य आदि है। **'ञातिधम्मा'** का अर्थ संबंधियों के प्रति कर्त्तव्य से है। **'देय्यधम्म'** का अर्थ दान से है। **'पापधम्मा'** बुरा आचरण है और **'लोभधम्मा'** लालची स्वभाव को बताता है। धर्म का अर्थ 'विषय' भी होता है जैसे एकक निपात में एक ही एक धर्म का वर्णन है, द्विक निपात में दो-दो धर्मों का और त्रिक निपात में तीन-तीन धर्मों का। इसी तरह और निपातों में भी बढ़ते क्रम से धर्मों का वर्णन है।

अत्यधिक विपुल होती है जैसे, भिक्षुओ, यह शुभ-निमित्त (राग पैदा करने वाला निमित्त)।

"शुभ-निमित्त का ही, भिक्षुओ, गलत ढंग से (अयथार्थ) चिंतन करने से अनुत्पन्न कामेच्छा उत्पन्न होती है और उत्पन्न कामेच्छा... होती है।

१२. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न द्वेष अत्यधिक विपुल होता है जैसे, भिक्षुओ, यह प्रतिकूल निमित्त (द्वेष जगाने वाला निमित्त)।

"प्रतिकूलनिमित्त का ही, भिक्षुओ, अयथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है और उत्पन्न द्वेष... होता है।

१३. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न आलस्य उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न आलस्य अत्यधिक विपुल होता है जैसे, भिक्षुओ, यह अरुचि, तंद्रा, जम्हाई लेना, भोजनांतर की तंद्रा तथा चित्त की सुस्ती।

"जिसका चित्त सुस्ती-ग्रस्त है, भिक्षुओ, उसी में अनुत्पन्न आलस्य उत्पन्न होता है और उत्पन्न आलस्य... होता है।

१४. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप अत्यधिक विपुल होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त की अशांति।

"अशांत-चित्त में ही भिक्षुओ, अनुत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप उत्पन्न होता है और उत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप... होता है।

१५. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न संशय उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न संशय अत्यधिक विपुल होता है जैसे, भिक्षुओ, यह अयथार्थ चिंतन करना।

"अयथार्थ चिंतन होने से ही भिक्षुओ, अनुत्पन्न संशय उत्पन्न होता है और उत्पन्न संशय... होता है।

१६. "भिक्षुओ, मैं और कोई ऐसा दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न कामेच्छा अनुत्पन्न रहती है अथवा उत्पन्न कामेच्छा का प्रहाण होता है जैसे, भिक्षुओ, यह अशुभ-निमित्त (जुगुप्सा जगाने वाला निमित्त)।

"अशुभ-निमित्त पर भिक्षुओ, सही ढंग से (यथार्थ) चिंतन करने से अनुत्पन्न कामेच्छा उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न कामेच्छा का प्रहाण होता है।

१७. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न द्वेष अनुत्पन्न रहता है अथवा उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है जैसे, भिक्षुओ, यह मैत्री[1] के आधार पर चित्त की विमुक्ति।

"मैत्री के आधार पर चित्त की विमुक्ति पर यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है।

१८. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न आलस्य उत्पन्न नहीं होता अथवा उत्पन्न आलस्य का प्रहाण होता है जैसे, भिक्षुओ, यह आरंभिक प्रयत्न, आयास और प्रयास (अधिक-प्रयत्न और सर्वाधिक-प्रयत्न)[2]।

"जो प्रयत्नशील है, भिक्षुओ, उसमें अनुत्पन्न आलस्य उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न आलस्य का प्रहाण होता है।

१९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप उत्पन्न नहीं होता अथवा उत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप का प्रहाण होता है, जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त की शांति।

"उपशांत चित्त में भिक्षुओ, अनुत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न उद्धतपन तथा अनुताप का प्रहाण होता है।

२०. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न संशय उत्पन्न नहीं होता अथवा उत्पन्न संशय का प्रहाण होता है जैसे, भिक्षुओ, यह यथार्थ चिंतन करना।

"यथार्थ चिंतन करने से भिक्षुओ, अनुत्पन्न संशय उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न संशय का प्रहाण होता है।"

* * * * *

१ **'मेत्ता चेतोविमुत्ति'** – मैत्री के आधार पर चित्त विमुक्ति का अभ्यास करता है, मैत्री भरे चित्त से चित्त विमुक्ति का अभ्यास करता है जैसा पू. श्री गोयन्काजी ने बताया है। अट्ठकथाकार के अनुसार भी मैत्री से युक्त चित्त नीवरण आदि विरोधी धर्मों से विमुक्त होता है। हम चार ब्रह्मविहारों की भावना करते हैं जिनमें मेत्ता एक ब्रह्मविहार है। मेत्ता भावना से व्याप्त चित्त से चित्त-विमुक्ति होती है जिसका साधक अभ्यास करता है।

२ **आरम्भधातु, निक्कमधातु** और **परक्कमधातु** का अर्थ, क्रमशः, आरंभिक प्रयत्न, आयास (अधिक प्रयत्न) और प्रयास (सर्वाधिक प्रयत्न) किया गया है।

३. अकर्मणीय वर्ग

२१. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म (वस्तु) नहीं जानता जो अभ्यास (भावना) न करने से इस प्रकार निकम्मा हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास न करने से चित्त निकम्मा हो जाता है।

२२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास करने से इतना काम का हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास करने से चित्त काम का हो जाता है।

२३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास न करने से इतना महान अनर्थकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास न करने से चित्त महान अनर्थकारी हो जाता है।

२४. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास करने से इतना महान कल्याणकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास करने से चित्त महान कल्याणकारी हो जाता है।

२५. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास न करने से, जिसके अप्रकट[१] रहने से (आविर्भाव न होने से) इतना महान अनर्थकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास न करने से, अप्रकट रहने से चित्त महान अनर्थकारी हो जाता है।

२६. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास करने से, जिसके प्रकट होने से (आविर्भाव होने से) इतना महान कल्याणकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास करने से, प्रकट होने से चित्त महान कल्याणकारी हो जाता है।

२७. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास न करने से, बहुलीकरण[२] (बार-बार अभ्यास) न करने से इतना महान अनर्थकारी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

---

१ जिस चित्त की शक्तियां अप्रकट हैं, उस चित्त को भी अप्रकट ही जानना चाहिए।

२ यहां पालि में **'बहुलीकतं'** शब्द है। इसका अर्थ बार-बार अभ्यास से है पर अच्छा होगा इसके लिए 'बहुलीकरण' या 'भावना करना' शब्द रखना। कहा भी गया है – **चित्तं, भिक्खवे, भावितं बहुलीकतन्ति एत्थ समथविपस्सनावसेन भावितञ्चेव पुनपुनकतञ्च चित्तं अधिपेतं।**

"भिक्षुओ, अभ्यास न क रने से, बहुलीक रण न क रने से चित्त महान अनर्थक ारी हो जाता है।

२८. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास क रने से, बहुलीक रण क रने से इतना महान क ल्याणक ारीहो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास क रने से, बहुलीक रण क रने से चित्त महान क ल्याणक ारीहो जाता है।

२९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास न क रने से, बहुलीक रण न क रने से इस प्रक ार दुःखदायी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास न क रने से, बहुलीक रण न क रने से चित्त दुःखदायी हो जाता है।

३०. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अभ्यास क रने से, बहुलीक रण क रने से इतना सुखदायी हो जाता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अभ्यास क रने से, बहुलीक रण क रने से चित्त सुखदायी हो जाता है।"

* * * * *

४. अदान्त (दमन न कि या हुआ) वर्ग

३१. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म (वस्तु) नहीं जानता जिसक ा यदि दमन न कि या जाय तो ऐसा महान अनर्थक ारीहोता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, दमन न कि या गया चित्त महान अनर्थक ारीहोता है।

३२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसक ा दमन कि ये जाने पर इतना महान क ल्याणक ारी (अर्थ सिद्ध क रने वाला) होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, दमन कि या गया चित्त महान क ल्याणक ारीहोता है।

३३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो अरक्षित रहने पर ऐसा महान अनर्थक ारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, अरक्षित चित्त महान अनर्थक ारी होता है।

३४. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो संरक्षित रहने पर ऐसा महान कल्याणकारीहोता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, संरक्षित चित्त महान कल्याणकारीहोता है।

३५-३६. ...अरक्षित... रक्षित... (शब्दों की भिन्नता है, अर्थ-भेद नहीं है)।

३७. "भिक्षुओ, मैं और कोईदूसरा धर्म नहीं जानता जो असंयत होने पर महान अनर्थकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, असंयत चित्त महान अनर्थकारी होता है।

३८. "भिक्षुओ, मैं और कोईदूसरा धर्म नहीं जानता जो संयत रहने पर ऐसा कल्याणकारीहोता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, संयत चित्त महान कल्याणकारीहोता है।

३९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसका दमन न करने पर, जिसके अरक्षित रहने पर और असंयत रहने पर ऐसा महान अनर्थकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, चित्त का दमन न करने पर, इसके अरक्षित रहने पर और असंयत रहने पर यह महान अनर्थकारी होता है।

४०. "भिक्षुओ, मैं और कोईदूसरा धर्म नहीं जानता जिसका दमन करने पर, जिसके सुरक्षित रहने पर, और संयत रहने पर ऐसा महान कल्याणकारी होता है जैसे, भिक्षुओ, यह चित्त।

"भिक्षुओ, चित्त का दमन करने पर, इसके सुरक्षित रहने पर और संयत रहने पर महान कल्याणकारी होता है।"

* * * * *

५. प्रणिहित एवं पारभाषी (सुबोध) वर्ग

४१. "जैसे भिक्षुओ, शालि (धान) की बाली हो अथवा जौ की बाली हो और वह ठीक ढंग से न रखी गई (मिथ्या प्रणिहित) हो और वह हाथ या पैर से दब जाय तो इसकी संभावना नहीं है कि वह हाथ या पैर को बींधेगा या खून निकालेगा। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, बाली के ठीक से न रखे होने के कारण। इसी प्रकार भिक्षुओ, यह संभव नहीं है कि कोई भिक्षु ठीक से न रखे गये (सम्यक प्रणिहित) चित्त से अविद्या को बींध सकेगा, विद्या का उपार्जन कर

सकेगा तथा निर्वाण का साक्षात्कार कर सकेगा। यह ऐसा क्यों? चित्त के ठीक से रखे न रहने के कारण।

४२. "जैसे भिक्षुओ, शालि की बाली हो अथवा जौ की बाली हो और वह ठीक से रखी गई (सम्यक प्रणिहित) हो और वह हाथ या पैर से दब जाय तो इसकी संभावना है कि वह हाथ या पैर को बींधेगा या खून निकालेगा। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, शालि की बाली के ठीक से रखे होने के कारण। इसी प्रकार, भिक्षुओ, यह संभव है कि वह भिक्षु ठीक से रखे गये चित्त से अविद्या को बींध सकेगा, विद्या का उपार्जन कर सकेगा तथा निर्वाण का साक्षात्कार कर सकेगा। यह ऐसा क्यों? चित्त के ठीक से रखे रहने के कारण।

४३. "यहां भिक्षुओ, मैं एक प्रदुष्ट-चित्त आदमी के चित्त को अपने चित्त से यथाभूत जानता[१] हूं कि यदि यह व्यक्ति इसी समय मर जाये तो ऐसा होगा जैसे कि लाकर नरक में डाल दिया गया हो। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, इसका चित्त ही प्रदुष्ट है। भिक्षुओ, चित्त के प्रदुष्ट होने के कारण ही यहां कुछ प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्त कर नरक में पैदा होते हैं।

४४. "यहां भिक्षुओ, मैं एक प्रसन्नचित्त आदमी के चित्त को अपने चित्त से यथाभूत जानता हूं कि यदि यह व्यक्ति इसी समय मर जाये तो ऐसा होगा जैसे कि लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, इसका चित्त ही प्रसन्न है। भिक्षुओ, चित्त के प्रसन्न होने के कारण ही यहां कुछ प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्त कर स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होते हैं।

४५. "जैसे भिक्षुओ, पानी का तालाब मैला हो, (पानी) चंचल हो और कीचड़-युक्त हो, वहां किनारे पर खड़े आंख वाले आदमी को न सीपी दिखाई दे, न शंख, न कंकड़ दिखाई दे, न पत्थर और न चलती हुई अथवा स्थिर मछलियां ही दिखाई दें। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, पानी के मलिन (आविल) होने के कारण। इसी प्रकार भिक्षुओ, इसकी संभावना नहीं है कि वह भिक्षु मैले चित्त से स्व-हित को जान सकेगा, पर-हित को जान सकेगा, उभय-हित को

१ यहां पालि में **'पजानाति'** शब्द है। इसका अर्थ यथाभूत जानने से है। जैसे-जैसे साधक साधना के क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकास करता है, उसके ज्ञान का क्षेत्र बढ़ता जाता है। **'जानाति'** का अर्थ 'जानता है', **'विजानाति'** का अर्थ 'बहुतों में से अलग कर जानता है'; **'पजानाति'** का अर्थ 'यथाभूत जानता है'; **'परिजानाति'** का अर्थ 'जहां तक जानने की परिधि है वहां तक जानता है अर्थात परिपूर्ण रूप से जानता है', **'अभिजानाति'** का अर्थ 'सम्यक रूप से जानता है।' और **'सञ्जानाति'** का अर्थ 'पहचानता है।' पालि में आये ये शब्द पारिभाषिक हैं और ये साधक की भिन्न-भिन्न अवस्थाएं बताते हैं।

जान सकेगा और सामान्य मनुष्य-धर्म से श्रेष्ठतर विशिष्ट आर्य-ज्ञान-दर्शन को साक्षात कर सकेगा। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, चित्त के मैले होने के कारण।

४६. "जैसे भिक्षुओ, पानी का तालाब अच्छा हो, स्वच्छ हो, निर्मल हो, वहां किनारे पर खड़े आंख वाले आदमी को सीपी भी दिखाई दे, शंख भी दिखाई दे, कंकड़ भी दिखाई दे, पत्थर भी दिखाई दे और चलती हुई अथवा स्थिर मछलियां भी दिखाई दें। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, पानी के निर्मल (अनाविल) होने के कारण। इसी प्रकार भिक्षुओ, इसकी संभावना है कि वह भिक्षु निर्मल चित्त से स्व-हित को जान सकेगा, पर-हित को जान सकेगा, उभय-हित को जान सकेगा और सामान्य मनुष्य-धर्म से श्रेष्ठतर विशिष्ट आर्य-ज्ञान-दर्शन को साक्षात कर सकेगा। यह ऐसा क्यों? भिक्षुओ, चित्त के निर्मल होने के कारण।

४७. "भिक्षुओ, जितने भी वृक्ष हैं उनमें कोमलता (मृदुता) तथा कमनीयता की दृष्टि से स्पंदन ही श्रेष्ठ कहलाता है। उसी प्रकार भिक्षुओ, मैं एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जो भावित करने से ऐसा मृदु तथा कमनीय हो जाता हो, जैसे यह चित्त।

"भिक्षुओ, चित्त भावना करने से, बार-बार[१] भावना करने से मृदु हो जाता है तथा कमनीय हो जाता है।

४८. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई भी ऐसा एक धर्म (वस्तु) नहीं जानता जो इतना शीघ्र परिवर्तनशील हो जैसे कि यह चित्त। भिक्षुओ, चित्त इतना शीघ्र परिवर्तनशील है कि इसकी उपमा देना भी सहज नहीं है।

४९. "भिक्षुओ, यह चित्त प्रभास्वर है। (स्वाभाविक रूप से विशुद्ध है।) यह बाह्यमल से दूषित है।

५०. "भिक्षुओ, यह चित्त प्रभास्वर है। यह बाह्यमल से पूरी तरह से मुक्त है।"

* * * * *

६. क्षणिक वर्ग

५१. "भिक्षुओ, यह चित्त (स्वाभाविक रूप से) प्रभास्वर है। यह बाह्यमल से दूषित है। इस बात को अश्रुत (अज्ञानी) पृथग्जन यथार्थ रूप से (यथाभूत)

---

१ यहां पालि में **'भिय्योभावाय वेपुल्लाय संवत्तति'** है। **'भिय्योभावाय'** का अर्थ 'अधिक होता है, कई गुणा होता है'। **'भिय्योभावाय वेपुल्लाय'** का अर्थ अधिक मात्रा में विपुलता को प्राप्त करता है। **'भिय्योभावाय'** का अर्थ बार-बार बढ़ना है।

नहीं जानता है। इसलिए 'अश्रुत पृथग्जन को चित्त-भावना (चित्ताभ्यास) होती ही नहीं ऐसा मैं कहता हूं।'

५२. "भिक्षुओ, यह चित्त (स्वाभाविक रूप से) प्रभास्वर है। यह बाह्यमल से पूरी तरह से मुक्त है। इस बात को श्रुत (ज्ञानी) आर्य-श्रावक यथार्थ रूप से जानता है। इसलिए 'श्रुतवान आर्य-श्रावक को चित्त-भावना होती है ऐसा मैं कहता हूं।'

५३. "भिक्षुओ, यदि भिक्षु चुटकी बजाने भर (उतने से समय भर) भी मैत्री-भावना करता है तो भिक्षुओ, ऐसा भिक्षु ध्यान से रिक्त नहीं होकर (अरित्तज्झानी=ध्यान से अरिक्त) विचरण करता है, शास्ता के अनुशासन में रहने वाला, शास्ता के उपदेश के अनुसार आचरण करने वाला; वह भिक्षु व्यर्थ ही राष्ट्र-पिंड[1] खाने वाला नहीं होता। जो बार-बार मैत्री-भावना करता है उसका तो कहना ही क्या।

५४-५५. ऐसे ही मैत्री भावित करना... मन में धारण करना...।

५६. "भिक्षुओ, जितने भी अकुशल-धर्म (बुरी बातें) हैं, अकुशल के सहायक हैं, अकुशल-पक्षीय हैं, वे सभी मन से निःसृत हैं। मन उनमें पहले उत्पन्न होता है और अकुशल-धर्म पीछे।

५७. "भिक्षुओ, जितने भी कुशल-धर्म (अच्छी बातें) हैं, कुशल के सहायक हैं, कुशलपक्षीय हैं वे सभी मन से निःसृत हैं। मन उनमें पहले उत्पन्न होता है और कुशल-धर्म पीछे।

५८. भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म (बात) नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न होते हैं अथवा उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रमाद।

"भिक्षुओ, प्रमादी के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

५९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि भिक्षुओ, यह अप्रमाद।

---

१ **रट्ठपिण्ड** (राष्ट्र-पिंड) – **ञातिपरिवट्टं पहाय रट्ठं निस्साय पब्बजितेन परेसं गेहतो पटिलद्धत्ता पिण्डपातो रट्ठपिण्डो नाम वुच्चति।**

रिश्तेदारों की मंडली को छोड़ राष्ट्र पर निर्भर हो प्रव्रजित द्वारा दूसरे के घर से भोजन प्राप्त करने के कारण वह भोजन राष्ट्र-पिंड कहलाता है।

"भिक्षुओ, अप्रमादी के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

६०. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जिसके फलस्वरूप अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह आलस्य।

"भिक्षुओ, आलसी के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है।"

* * * * *

७. प्रयत्नारंभआदि वर्ग

६१. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म (बात) नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रयत्न[1] का आरंभ।

"भिक्षुओ, प्रयत्नशील के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

६२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह इच्छा की अधिकता।

"भिक्षुओ, अधिक इच्छा करने वाले के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

६३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह अल्पेच्छता।

"भिक्षुओ, अल्पेच्छ व्यक्ति के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

६४. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह असंतोष।

"भिक्षुओ, असंतुष्ट के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

१ यहां पालि में **वीर्य** शब्द है। इसका अर्थ 'प्रयत्न' किया गया है।

६५. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह संतोष।

"भिक्षुओ, संतुष्ट के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

६६. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह अयथार्थ चिंतन करना।

"भिक्षुओ, अयथार्थ चिंतन करनेवाले के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

६७. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह यथार्थ चिंतन करना।

"भिक्षुओ, यथार्थ चिंतन करने वाले के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

६८. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह असंप्रज्ञान।

"भिक्षुओ, असंप्रज्ञानी व्यक्ति के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

६९. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह संप्रज्ञान[१]।

"भिक्षुओ, संप्रज्ञानी के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

७०. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह कुसंगति(पापमित्रता)।

---

१ यहां पालि में **'सम्पजञ्ञं'** शब्द है (बु. सं. 'संप्रज्ञान')। यह 'ज्ञान' से भिन्न है। ज्ञान बौद्धिक धरातल पर भी हो सकता है, बल्कि इसी धरातल पर बहुधा होता है। 'संप्रज्ञान' का अर्थ प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा अनुभूति के स्तर पर का ज्ञान है जहां लंबे समय तक वेदनाओं के उत्पाद, स्थिति और भंग को अनुभव के स्तर पर जाना जाता है।

"भिक्षुओ, पापमित्र के संग में रहने वाले के अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।"

* * * * *

८. कल्याणमित्रादि वर्ग

७१. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म (बात) नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह सुसंगति (कल्याणमित्रता)।

"भिक्षुओ, कल्याणमित्र का संग करने वाले के अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानिहोती है।

७२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह अकुशल-धर्मों में लगना और कुशल-धर्मों में न लगना।

"भिक्षुओ, अकुशल-धर्मों में लगने और कुशल-धर्मों में न लगने से अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न कुशल धर्मों की परिहानि होती है।

७३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है जैसे कि, भिक्षुओ, यह कुशल-धर्मों में लगना और अकुशल-धर्मों में न लगना।

"भिक्षुओ, कुशल-धर्मों में लगने और अकुशल-धर्मों में न लगने से अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि होती है।

७४. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न बोधि-अंग[१] उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न बोधि-अंग भावना[२] की पूर्णता को नहीं प्राप्त होते जैसे कि, भिक्षुओ, यह यथार्थ चिंतन न करना।

---

१ **बोज्झंग** (बोध्यंग) – **बुज्झति एतायाति बोधि, बोधिया अङ्गो बोज्झङ्गो –** जिन धर्मों द्वारा आर्य-सत्य जाने जाते हैं उन्हें बोधि कहते हैं। बोधि के अंग को बोध्यंग कहते हैं। बोध्यंग सात हैं जैसे स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि तथा उपेक्षा।

२ **भावना**= बार-बार अनुभूति के स्तर पर जानना।

"भिक्षुओ, अयथार्थ चिंतन करनेवाले के अनुत्पन्न बोधि-अंग उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न बोधि-अंग भावना[1] की पूर्णता को नहीं प्राप्त होते।

७५. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न बोधि-अंग उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न बोधि-अंग भावना की पूर्णता को प्राप्त होते हैं जैसे कि, भिक्षुओ, यह यथार्थ चिंतन करना।

"भिक्षुओ, यथार्थ चिंतन करनेसे अनुत्पन्न बोधि-अंग उत्पन्न हो जाते हैं और उत्पन्न बोधि-अंग भावना की पूर्णता को प्राप्त होते हैं।

७६. "भिक्षुओ, यह जो सगे-संबंधियों का न रहना है, यह कोई बड़ी परिहानि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की परिहानि है यही सबसे बड़ी परिहानि है।

७७. "भिक्षुओ, यह जो सगे-संबंधियों की वृद्धि है, यह कोई बड़ी वृद्धि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की वृद्धि है यही सबसे बड़ी वृद्धि है। इसलिए, भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए कि हम प्रज्ञा-वृद्धि द्वारा उन्नति करेंगे। ऐसा ही, भिक्षुओ, सीखना चाहिए।

७८. "भिक्षुओ, यह जो भोग-सामग्री की परिहानि है, यह कोई बड़ी परिहानि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की परिहानि है यही सबसे बड़ी परिहानि है।

७९. "भिक्षुओ, यह जो भोग-सामग्री की वृद्धि है, यह कोई बड़ी वृद्धि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की वृद्धि है यही सबसे बड़ी वृद्धि है। इसलिए, भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए कि हम प्रज्ञा-वृद्धि द्वारा उन्नति करेंगे। ऐसा ही, भिक्षुओ, सीखना चाहिए।

८०. "भिक्षुओ, यह जो यश की हानि है, यह कोई बड़ी हानि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की हानि है यही सबसे बड़ी हानि है।"

* * * * *

९. प्रमादादि वर्ग

८१. "भिक्षुओ, यह जो यश की वृद्धि है, यह कोई बड़ी वृद्धि नहीं है। भिक्षुओ, यह जो प्रज्ञा की वृद्धि है यही सबसे बड़ी वृद्धि है। इसलिए, भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए कि हम प्रज्ञा-वृद्धि द्वारा उन्नति करेंगे। ऐसा ही, भिक्षुओ, सीखना चाहिए।

---

१ **भावना** = बार-बार अनुभूति के स्तर पर जानना।

८२. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो इतना महान अनर्थकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रमाद।

"भिक्षुओ, प्रमाद महान अनर्थकारी है।

८३. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा धर्म नहीं जानता जो इतना महान कल्याणकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह अप्रमाद।

"भिक्षुओ, अप्रमाद महान कल्याणकारी है।

८४-८५. इसी प्रकार आलस्य... प्रयत्नारंभ।

८६-८७. इसी प्रकार इच्छा की अधिकता... अल्पेच्छता।

८८-८९. इसी प्रकार असंतोष... संतोष।

९०-९१. इसी प्रकार गलत ढंग से (अयथार्थ) चिंतन करना...सही ढंग से (यथार्थ) चिंतन करना।

९२-९३. इसी प्रकार असंप्रज्ञान... संप्रज्ञान।

९४-९५. इसी प्रकार कुसंगति... सुसंगति।

९६-९७. इसी प्रकार अकुशल धर्मों का अभ्यास तथा कुशल धर्मों का अनभ्यास करना...कुशल धर्मों का अभ्यास तथा अकुशल धर्मों का अनभ्यास करना।

* * * * *

१०. द्वितीय प्रमादादि वर्ग

९८. "अपने से संबंधित बातों में (व्यक्तिनिष्ठ बातों में), भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान अनर्थकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रमाद।

"भिक्षुओ, प्रमाद महान अनर्थकारी है।

९९. "अपने से संबंधित बातों में, भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान कल्याणकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह अप्रमाद।

"भिक्षुओ, अप्रमाद महान कल्याणकारी है।

१००-१०१. इसी प्रकार आलस्य... प्रयत्नारंभ।

१०२-१०९. इसी प्रकार इच्छा की अधिकता... अल्पेच्छता।

इसी प्रकार असंतोष... संतोष।

इसी प्रकार अयथार्थ चिंतन करना... यथार्थ चिंतन करना।

इसी प्रकार असंप्रज्ञान... संप्रज्ञान।

११०. "बाह्य से संबंधित बातों में (वस्तुनिष्ठ बातों में), भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान अनर्थकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह पापमित्रता (कुसंगति)।

"भिक्षुओ, पापमित्रता महान अनर्थकारी है।

१११. "बाह्य से संबंधित बातों में, भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान कल्याणकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह कल्याणमित्रता (सुसंगति)।

"भिक्षुओ, कल्याणमित्रता महान कल्याणकारी है।

११२. "बाह्य से संबंधित बातों में, भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान अनर्थकारी हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह अकुशल-धर्मों का अभ्यास तथा कुशल-धर्मों का अनभ्यास करना।

"अकुशल-धर्मों का अभ्यास तथा कुशल-धर्मों का अनभ्यास करना, भिक्षुओ, बहुत अनर्थकारी है।

११३. "अपने से संबंधित बातों में, भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरी बात नहीं जानता जो इतनी महान कल्याणकारी हो जैसे कि भिक्षुओ, यह कुशल धर्मों का अभ्यास तथा अकुशलधर्मों का अनभ्यास करना।

"कुशल-धर्मों का अभ्यास तथा अकुशल-धर्मों का अनभ्यास करना, भिक्षुओ, महान कल्याणकारी है।

११४. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म (बात) नहीं जानता जो इस प्रकार सद्धर्म के भूल जाने (उलझनें पैदा करने, लोप हो जाने), सद्धर्म के अंतर्धान होने का कारण हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह प्रमाद।

"भिक्षुओ, प्रमाद सद्धर्म के भूलने, सद्धर्म के अंतर्धान होने का कारण होता है।

११५. "भिक्षुओ, मैं और कोई दूसरा ऐसा धर्म नहीं जानता जो इस प्रकार सद्धर्म के स्थित रहने का (कायम रहने का), नहीं भूलने का, अंतर्धान न होने का कारण हो जैसे कि, भिक्षुओ, यह अप्रमाद।

"भिक्षुओ, अप्रमाद, सद्धर्म के स्थित रहने का, न भूलने का, अंतर्धान न होने का कारण होता है।

११६-११७. इसी प्रकार आलस्य... प्रयत्नारंभ।

११८-१२९. इसी प्रकार इच्छा की अधिकता... अल्पेच्छता।

इसी प्रकार असंतोष... संतोष।

इसी प्रकार अयथार्थ चिंतन करना... यथार्थ चिंतन करना।

इसी प्रकार असंप्रज्ञान... संप्रज्ञान।

इसी प्रकार पापमित्रता... कल्याणमित्रता।

इसी प्रकार अकुशल-धर्मों का अभ्यास तथा कुशल-धर्मों का अनभ्यास करना।...कुशल-धर्मों का अभ्यास तथा अकुशल-धर्मों का अनभ्यास करना।

१३०. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अधर्म को धर्म बताते हैं वे भिक्षु बहुत जनों के अहित (अकल्याण) में लगे हैं, बहुत जनों के असुख में लगे हैं; बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अनर्थ, अहित तथा दुःख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत अपुण्य उपार्जित करते हैं तथा इस सद्धर्म के अंतर्धान होने में सहायता करते हैं।

१३१. "भिक्षुओ, जो भिक्षु धर्म को अधर्म बताते हैं वे... करते हैं।

१३२-१३९. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अविनय (भिक्षु-अनियम) को विनय (भिक्षु-नियम) बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु विनय को अविनय बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अभाषित को, तथागत द्वारा अकथित वचन को, तथागत द्वारा भाषित, तथागत द्वारा कथित वचन बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा भाषित को, तथागत द्वारा कथित वचन को, तथागत द्वारा अभाषित, तथागत द्वारा अकथित वचन बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अनाचरित को, तथागत द्वारा आचरित बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा आचरित को तथागत द्वारा अनाचरित बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त को, तथागत द्वारा प्रज्ञप्त बताते हैं, वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा प्रज्ञप्त को, तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त बताते हैं वे बहुत जनों के अहित में लगे हैं, बहुत जनों के असुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अनर्थ, अहित तथा दुःख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत अपुण्य उपार्जित करते हैं तथा इस सद्धर्म के अंतर्धान होने में सहायता करते हैं।"

* * * * *

११. अधर्म वर्ग

१४०. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अधर्म को अधर्म बताते हैं वे बहुत जनों के हित (कल्याण) में लगे हैं, बहुत जनों के सुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित तथा सुख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत पुण्य उपार्जित करते हैं और वे इस सद्धर्म की स्थापना करते हैं।

१४१. "भिक्षुओ, जो भिक्षु धर्म को धर्म बताते हैं वे... करते हैं।

१४२-१४८. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अविनय को अविनय बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु विनय को विनय बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अभाषित को तथा अकथित वचन को, तथागत द्वारा अभाषित तथा अकथित वचन बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा भाषित को तथा कथित वचन को, तथागत द्वारा भाषित तथा कथित वचन बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अनाचरित को तथागत द्वारा अनाचरित बताते है वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा आचरित को तथागत द्वारा आचरित बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त को, तथागत द्वारा अप्रज्ञप्त बताते हैं वे... करते हैं।

१४९. "भिक्षुओ, जो भिक्षु तथागत द्वारा प्रज्ञप्त को, तथागत द्वारा प्रज्ञप्त बताते हैं वे बहुत जनों के हित में लगे हैं, बहुत जनों के सुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित तथा सुख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत पुण्य उपार्जित करते हैं और वे इस सद्धर्म की स्थापना करते हैं।"

* * * * *

१२. अनपराध वर्ग

१५०. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अनपराध को अपराध (आपत्ति) बताते हैं वे भिक्षु बहुत जनों के अहित में लगे हैं, बहुत जनों के असुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अनर्थ, अहित तथा दुःख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत अपुण्य उपार्जित करते हैं तथा इस सद्धर्म के अंतर्धान होने में सहायता करते हैं।

१५१. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अपराध को अनपराध बताते हैं वे... करते हैं।

१५२-१५९. "भिक्षुओ, जो भिक्षु हलके अपराध[१] को भारी अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु भारी अपराध[२] को हलका अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु संगीन अपराध[३] को अ-संगीन अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु अ-संगीन अपराध[४] को संगीन अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु सावशेष (आंशिक) अपराध[५] को निर्विशेष (सर्वांगिक) अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु सर्वाङ्गिक अपराध[६] को सावशेष अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु प्रायश्चित्त की जा सकने वाली आपत्ति (सप्रतिकर्म-आपत्ति) को प्रायश्चित्त न की जा सकने वाली आपत्ति बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु प्रायश्चित्त न की जा सकने वाली आपत्ति को प्रायश्चित्त की जा सकने वाली आपत्तिबताते हैं वे... करते हैं।

१६०. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अनपराध को अनपराध बताते हैं वे भिक्षु बहुत जनों के हित में लगे हैं, बहुत जनों के सुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित तथा सुख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत पुण्य उपार्जित करते हैं तथा इस सद्धर्म की स्थापना करते हैं।

१६१. "भिक्षुओ, जो भिक्षु अपराध कोअपराध बताते हैं वे... करतेहैं।

१६२-१६९. "भिक्षुओ, जो भिक्षु हलके अपराध को हलका अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु भारी अपराध को भारी अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

---

१ **'लहुकं आपत्ति'** (पालि) = हलका अपराध

२ **'गरुका आपत्ति'** (पालि) = भारी अपराध

३ **'दुट्ठुल्ल आपत्ति'** (पालि) = संगीन अपराध

४ **'अदुट्ठुल आपत्ति'** (पालि) = अ-संगीन अपराध

५ **'सावसेस आपत्ति'** (पालि) = आंशिक अपराध

६ **'अनवसेस आपत्ति'** (पालि) = सर्वाङ्गिक अपराध

"भिक्षुओ, जो भिक्षु संगीन अपराध को संगीन अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु अ-संगीन अपराध को अ-संगीन अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु सावशेष अपराध को सावशेष अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु निर्विशेष अपराध को निर्विशेष अपराध बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु प्रायश्चित्त की जा सकने वाली आपत्ति को प्रायश्चित्त की जा सकने वाली बताते हैं वे... करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु प्रायश्चित्त न की जा सकने वाली आपत्ति को प्रायश्चित्त न की जा सकने वाली आपत्ति बताते हैं वे भिक्षु बहुत जनों के हित में लगे हैं, बहुत जनों के सुख में लगे हैं, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित तथा सुख में लगे हैं और वे भिक्षु बहुत पुण्य उपार्जित करते हैं तथा इस सद्धर्म की स्थापना करते हैं।"

* * * * *

१३. एक पुद्गल वर्ग

१७०. "भिक्षुओ, लोक में एक व्यक्ति बहुत जनों के हित के लिए, बहुत जनों के सुख के लिए, लोकों पर अनुकंपा करने के लिए तथा देव-मनुष्यों के अर्थ, हित और सुख के लिए उत्पन्न होता है। कौन-सा एक व्यक्ति? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध।

"भिक्षुओ, यह एक व्यक्ति लोक में बहुत जनों के हित के लिए... उत्पन्न होता है।

१७१. "भिक्षुओ, एक व्यक्ति का लोक में प्रादुर्भाव दुर्लभ है। किस एक व्यक्ति का? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध का।

"भिक्षुओ, इस एक व्यक्ति का लोक में प्रादुर्भाव दुर्लभ है।

१७२. "भिक्षुओ, एक व्यक्ति लोक में उत्पन्न होता है वह असाधारण होता है। कौन-सा एक व्यक्ति? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध।

"भिक्षुओ, यह एक व्यक्ति लोक में उत्पन्न होता है जो असाधारण होता है।

१७३. "भिक्षुओ, एक व्यक्ति का शरीरांत बहुत जनों के अनुताप का कारण होता है। किस एक व्यक्ति का? तथागतअर्हत सम्यक संबुद्ध का।

"भिक्षुओ, इस एक व्यक्ति का शरीरांत बहुत जनों के अनुताप के लिए होता है।

१७४. "भिक्षुओ, लोक में एक व्यक्ति उत्पन्न होता है जो अद्वितीय होता है, आत्मनिर्भर होता है, जो अप्रतिम होता है, उसके जैसा कोई नहीं होता तथा उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता, और जो द्विपदों में श्रेष्ठतम (अग्र) होता है। कौन-सा एक व्यक्ति? तथागतअर्हत सम्यक संबुद्ध।

"भिक्षुओ, यह एक व्यक्ति लोक में... द्विपदोंमें अग्र होता है।

१७५-१८६. "भिक्षुओ, एक व्यक्ति के प्रादुर्भाव होने से महती (व्यापक) दृष्टि मिल जाती है[1], बहुत आलोक हो जाता है, बहुत प्रकाश फैल जाता है, छः श्रेष्ठ धर्म पैदा हो जाते हैं, चारों प्रतिसंभिदाओं[2] (=मीमांसापूर्ण ज्ञान – अत्थ, धम्म, निरुत्ति, पटिभान-पटिसम्भिदा) का साक्षात्कार हो जाता है, अनेक धातुओं का प्रतिवेधन हो जाता है, नाना धातुओं का प्रतिवेधन हो जाता है, विद्या-विमुक्ति फल का साक्षात्कार हो जाता है, स्रोतापत्ति फल का साक्षात्कार हो जाता है, सकृदागामी फल का साक्षात्कार हो जाता है, अनागामी फल का साक्षात्कार हो जाता है, और अर्हत्व फल का साक्षात्कार हो जाता है। किस एक व्यक्ति के? तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध के।

"भिक्षुओ, इस एक व्यक्ति के प्रादुर्भाव होने से... अर्हत्वफल का साक्षात्कार हो जाता है।

१८७. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई भी एक व्यक्ति ऐसा नहीं जानता जो तथागत द्वारा प्रवर्तित अनुत्तर धर्म-चक्र को सम्यक प्रकार से अनुप्रवर्तित कर सके, जैसे भिक्षुओ, यह सारिपुत्त।

---

१ **'महतो चक्खुस्स पातुभावो होति'** – **'महतो चक्खु'** का अर्थ 'महती दृष्टि' है, अर्थात इसे प्राप्त कर मनुष्य 'जानने और देखने' (जानाति, पस्सति) लगता है अर्थात वह स्पष्ट रूप से समझने लगता है। वह पूर्ण रूप से विवेकी हो जाता है। अट्ठकथा से स्पष्ट है कि इस वाक्य का अर्थ प्रज्ञा-चक्षु की उत्पत्ति होती है। **कतमस्स चक्खुस्साति**? – अर्थात किस चक्षु की? **पञ्ञाचक्खुस्सस** प्रज्ञा चक्षु की।

२ पटिसम्भिदा (सं. प्रतिसंविद्) – तार्किक विश्लेषण। तार्किक विश्लेषण के चार प्रकार हैं। **अत्थपटिसम्भिदा** – अर्थ विश्लेषण, **धम्मपटिसम्भिदा** – प्रत्ययों का विश्लेषण, **निरुत्ति पटिसम्भिदा** – परिभाषा देना, **पटिभान पटिसम्भिदा** – वह बुद्धि जिसके समक्ष उपरिकथित प्रक्रियाओं से जानने योग्य बातें रखी जाती हैं।

"भिक्षुओ, सारिपुत्त तथागत द्वारा प्रवर्तित अनुत्तर धर्म-चक्र को सम्यक प्रकार से अनुप्रवर्तित करते हैं।"

* * * * *

विषय-सूची

एक क -निपात(१४-२०)

१४. एतदग्र वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - २३
१. प्रथम वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - २३
२. द्वितीय वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - २४
३. तृतीय वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - २५
४. चतुर्थ वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - २५
५. पंचम वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - २६
६. षष्ठ वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - २७
७. सप्तम वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - २८
१५. असंभव वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - २९
१. प्रथम वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - २९
२. द्वितीय वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - ३०
३. तृतीय वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - ३१
१६. (बुद्धोपदिष्ट) एक धर्म - - - - - - - - - - - - - ३३
१. प्रथम वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - ३३
२. द्वितीय वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - ३४
३. तृतीय वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - ३६
४. चतुर्थ वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - ३८
१७. प्रशांतक र धर्म वर्ग - - - - - - - - - - - - - ४१
१८. क्षणिक वर्ग (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - - ४२
१९. क ायगत-स्मृति वर्ग - - - - - - - - - - - - - ४८
२०. अमृत वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - ५०

१४. एतदग्र वर्ग

१. प्रथम वर्ग

१८८. "भिक्षुओ, मेरे भिक्षु-श्रावकों में ये अग्र (श्रेष्ठतम) हैं –

दीर्घकालीनों[1] (दीर्घ काल तक भिक्षु बने रहने वालों) में अग्र अञ्ञासिकोण्डञ्ञ[2]।

१८९. महाप्रज्ञावानों में अग्र सारिपुत्त[3]

१९०. ऋद्धिमानों में अग्र महामोग्गल्लान[4]

१९१. धुतंगधारियों में अग्र महाकस्सप[5]

१९२. दिव्यचक्षु वालों में अग्र अनुरुद्ध[6]

१९३. उच्च कुलीनों में अग्र काळिगोध-पुत्र भद्दिय[7]

---

१ एक शब्द है **'रत्तञ्ञूनं'** जिसका अनुवाद अट्ठकथा के आधार पर '(ज्ञान) रात्रि के जानकारों से किया गया है – **रत्तियो जानन्तानं**। वस्तुतः इसका अर्थ 'प्रतिष्ठित' या 'पुराना' या 'अनुभवी' है। प्रव्रजित होने के बाद जो जितनी रातें बिताता है वह उतना ही प्रतिष्ठित समझा जाता है क्योंकि वह रात्रि की शांति में ध्यान कर ज्ञान की प्राप्ति करता है। इसलिए इसे अभिधा में न अनुवाद कर लक्षणा में करना चाहिए अर्थात '(ज्ञान) रात्रि के जानकारोंसे' नहीं बल्कि 'सुप्रतिष्ठित' या 'अनुभवी' से। वस्तुतः यह शब्द उस व्यक्ति के लिए आया है जिसने प्रव्रजित होने के बाद अनेक रातें ध्यान में बितायी हैं। दूसरी बात यह है कि प्रव्रजित भिक्षु रात को व्यर्थ नहीं गँवाते, वे रात की नीरवता में ध्यान कर प्रज्ञा की प्राप्ति करते हैं जिसके फलस्वरूप वे प्रसिद्ध होते हैं। ऐसी रातों को जानने वालों को **'रत्तञ्ञू'** कहा गया है, अर्थात 'अभिज्ञात, सम्मानित, ज्ञानी' आदि। रीज डेविड्स ने इसका अनुवाद रिकोग्नाइज्ड (अभिज्ञात, सम्मानित) तथा ऑफ लाँग स्टेन्डिंग (चिरकालिक) किया है।

२ शाक्य देश में कपिलवत्थु नगर के पास द्रोणवस्तु ग्राम में, ब्राह्मण-कुल में जन्म।

३ मगध देश में राजगृह नगर से अविदूर उपतिस्स ग्राम=नालक ग्राम (=वर्तमान सारिचक, बड़गांव-नालंदा के पास, जि० नालंदा में ब्राह्मण-कुल में जन्म।)

४ मगध-देश में राजगृह से अविदूर कोलित ग्राम में, ब्राह्मण-कुल में जन्म।

५ मगध-देश में, महातीर्थ ब्राह्मण-ग्राम में, ब्राह्मण-कुल में जन्म।

६ शाक्य देश में, कपिलवत्थु नगर में, भगवान के चाचा अमतोदन शाक्य के पुत्र; क्षत्रिय-कुल में जन्म।

७ शाक्य देश में, कपिलवत्थु नगर में, क्षत्रिय-कुल में जन्म।

१९४. मधुर-स्वर वालों में अग्र लकुण्डक-भद्दिय[१]

१९५. सिंहनाद करने वालों में अग्र पिण्डोलभारद्वाज[२]

१९६. धर्मकथिकों में अग्र मन्ताणि-पुत्र पुण्ण[३]

१९७. संक्षिप्त कहे का विस्तार से अर्थ करने वालों में अग्र महाकच्चान[४]

२. द्वितीय वर्ग

१९८. "भिक्षुओ, मेरे भिक्षु-श्रावकों में ये अग्र हैं –

मनोमय-काया निर्माण कर सकने वालों में अग्रचूळपन्थक[५]

१९९. चित्त-विवर्त (भव-चक्र को विवर्तित करने के लिए कुशल चित्तकर्म करने वालों में) कुशलों में अग्रचूळपन्थक

२००. संज्ञा-विवर्त-कुशलों में अग्र महापन्थक[६]

२०१. शांतचित्त विहारियों में अग्र सुभूति[७]

२०२. दाक्षिणेय्यों में अग्र सुभूति

२०३. आरण्यकों में अग्र खदिरवनिय रेवत[८]

२०४. ध्यानियों में अग्र कङ्खारेवत[९]

२०५. अत्यधिक प्रयत्नशीलों में अग्र सोण कोळिविस[१०]

२०६. सुस्पष्ट वाणी बोलने वालों में अग्र सोण कुटिकण्ण[११]

२०७. लाभ प्राप्त करने वालों में अग्र सीवलि[१२]

२०८. श्रद्धाधिमुक्तों में (जिनकी श्रद्धा में गहरी रुचि है) अग्र वक्कलि[१३]

---

१ कोसल देश में, श्रावस्ती नगर में, धनी कुल में।

२ मगध, राजगृह में, ब्राह्मण कुल में।

३ शाक्य, कपिलवस्तु के समीप द्रोणवस्तु ब्राह्मण-ग्राम में, ब्राह्मणकुल।

४ अवन्ती देश, उज्जयिनी में, ब्राह्मण कुल में।

५ मगध, राजगृह, श्रेष्ठी-कन्या-पुत्र।

६ मगध, राजगृह, श्रेष्ठी-कन्या-पुत्र।

७ कोसल, श्रावस्ती, वैश्यकुल में।

८ मगध, नालक ब्राह्मण-ग्राम में (सारिपुत्त के अनुज)।

९ कोसल, श्रावस्ती, महाभोग-कुल में।

१० अंगदेश, चम्पानगर में, श्रेष्ठी-कुल में।

११ अवन्ती देश, कुररघर में, वैश्य कुल में।

१२ शाक्य, कुंडिया (कोलीय-दुहिता सुप्पवासा का पुत्र) क्षत्रिय कुल।

१३ कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण कुल।

३. तृतीय वर्ग

२०९. "भिक्षुओ, मेरे भिक्षु-श्रावकों में अग्र हैं –

शिक्षाकामियों में अग्र राहुल[१]

२१०. श्रद्धा से प्रव्रजितों में अग्र रट्ठपाल[२]

२११. प्रथम शलाका ग्रहण करने वालों में अग्रकुण्डधान[३]

२१२. क्षिप्रप्रज्ञों [प्रतिभावानों (कवियों)] में अग्र वङ्गीस[४]

२१३. सबको प्रसन्न करने वालों में अग्रवङ्गन्त-पुत्र उपसेन[५]

२१४. शयनासन व्यवस्थापकों में अग्र मल्ल-पुत्र दब्ब[६]

२१५. देवताओं के प्रियों में अग्र पिलिन्दवच्छ[७]

२१६. क्षिप्र-अभिज्ञा प्राप्त करने वालों में अग्र बाहिय दारुचीरिय[८]

२१७. धुरंधर वक्ताओं में अग्र कुमारकस्सप[९]

२१८. प्रतिसम्भिदा प्राप्त करने वालों में अग्र महाकोट्ठित[१०]

४. चतुर्थ वर्ग

२१९. भिक्षुओ, मेरे भिक्षु-श्रावकों में ये अग्र हैं –

बहुश्रुतों में अग्र – आनन्द।

२२०. स्मृतिमानों में अग्र – आनन्द।

२२१. प्रवीणों (चतुरों) में अग्र – आनन्द।

२२२. धृतिमानों में अग्र – आनन्द।

२२३. सेवकों में अग्र – आनन्द[११]।

---

१ शाक्य, कपिलवस्तु (सिद्धार्थ कुमार के पुत्र) क्षत्रिय कुल।

२ कुरुदेश, थुल्लकोट्ठित, वैश्य कुल।

३ कोसल श्रावस्ती, ब्राह्मण कुल।

४ कोसल श्रावस्ती, ब्राह्मण कुल।

५ मगध, नालक ब्राह्मण-ग्राम (सारिपुत्त के अनुज) ब्राह्मण कुल।

६ मल्लदेश, अनुपियानगर, क्षत्रिय कुल।

७ कोसल श्रावस्ती, ब्राह्मण कुल।

८ बाहिय राष्ट्र (=सतलज व्यास का दोआब, जालंधर, होशियारपुर के जिले और कपूरथला राज्य) में उत्पन्न।

९ मगध, राजगृह।

१० कोसल श्रावस्ती, ब्राह्मण कुल।

११ शाक्य, कपिलवस्तु, अमतोदन पुत्र, क्षत्रिय कुल।

२२४. महापरिषद वालों (जिनके अनुयायियों की संख्या अधिक हो) में अग्र उरुवेल कस्सप[१]

२२५. कुलों को प्रसन्न करने वालों में अग्रकाळुदायी[२]

२२६. निरोगों में अग्र बाकुल[३]

२२७. पूर्वजन्म स्मरण करने वालों में अग्र सोभित[४]

२२८. विनयधरों में अग्र उपालि[५]

२२९. भिक्षुणियों को उपदेश देने में अग्र नन्दक[६]

२३०. इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करने वालों में अग्रनन्द[७]

२३१. भिक्षुओं को उपदेश देने में अग्र महाकप्पिन[८]

२३२. तेजोधातु को आलंबन बनाकर ध्यानकुशलोंमें अग्र सागत[९]

२३३. हाजिरजवाबी वक्ताओं (पटिभानेय्यकों) में अग्र राध[१०]

२३४. मोटे (रूक्ष) चीवरधारियों में अग्र मोघराज[११]

५. पंचम वर्ग

२३५. "भिक्षुओ, मेरी भिक्षुणी-श्राविकाओं में ये अग्र हैं –

दीर्घकालीनों (दीर्घकाल तक भिक्षुणी बने रहने वालियों) में अग्र महापजापतिगोतमी[१२]

२३६. महाप्रज्ञावतियों में अग्र खेमा[१३]

२३७. ऋद्धिमतियों में अग्र उप्पलवण्णा[१४]

१ काशी देश, वाराणसी नगर, ब्राह्मण कुल।

२ शाक्य, कपिलवत्थु अमात्य के घर में।

३ वत्स्य देश, कोशाम्बी, वैश्य कुल।

४ कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण कुल में।

५ शाक्य, कपिलवत्थु, नाई कुल।

६ कोशल, श्रावस्ती, कुलगृह।

७ शाक्य, कपिलवत्थु (महाप्रजापतिपुत्र) क्षत्रिय कुल।

८ सीमांत (प्रत्यंत) देश कुक्कुटवतीनगर, राजवंश।

९ कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण कुल।

१० मगध, राजगृह, ब्राह्मण कुल।

११ कोशल, श्रावस्ती, (बावरि शिष्य) ब्राह्मण कुल।

१२ शाक्य, कपिलवत्थु, सुद्धोदन भार्या, क्षत्रिय कुल।

१३ मद्रदेश, सागल (स्यालकोट) नगर, राजपुत्री, मगधराज बिंबिसार की भार्या।

१४ कोशल, श्रावस्ती, श्रेष्ठी कुल।

२३८. विनय-धारियों में अग्र पटाचारा[१]

२३९. धर्म-कथा कहने वालियों में अग्र धम्मदिन्ना[२]

२४०. ध्यानियों में अग्र नन्दा[३]

२४१. अत्यधिक प्रयत्नशीलों में अग्र सोणा[४]

२४२. दिव्यचक्षु वालियों में अग्र बकुला[५]

२४३. क्षिप्र-अभिज्ञा प्राप्त करने वालियों में अग्र भद्दा कुण्डलकेसी[६]

२४४. पूर्वजन्म अनुस्मरण करने वालियों में अग्र भद्दा कापिलानी[७]

२४५. महा अभिज्ञाप्राप्तों में अग्र भद्दकच्चाना[८]

२४६. मोटे (रूक्ष) चीवर धारण करने वालियों में अग्र किसागोतमी[९]

२४७. श्रद्धाधिमुक्तों में अग्र सिङ्गालकमाता[१०]

६. षष्ठ वर्ग

२४८. "भिक्षुओ, मेरे उपासक श्रावकों में ये अग्र हैं –
सर्वप्रथम शरण में आने वालों में अग्र तपुस्स[११] और भल्लिक[१२] वणिक

२४९. दायकों में अग्र अनाथपिण्डिक सुदत्त गृहपति[१३]

२५०. धर्मकथिकों में अग्रमच्छिकासण्डिक चित्त गृहपति[१४]

२५१. चार संग्रह वस्तुओं से (दान, मधुर वचन, उपयोगी जीवन, न्यायपूर्ण व्यवहार) परिषद का संग्रह करने वालों में अग्र हत्थक आळवक[१५]

१ कोशल, श्रावस्ती, श्रेष्ठी कुल।

२ मगध, राजगृह, विसाख श्रेष्ठी की भार्या।

३ शाक्य, कपिलवस्तु, महाप्रजापति गोतमी की पुत्री।

४ कोसल, श्रावस्ती, कुलगृह।

५ कोसल, श्रावस्ती, कुलगृह।

६ मगध, राजगृह श्रेष्ठी कुल।

७ मद्रदेश, सागलनगर, ब्राह्मण कुल, (महाकस्सपभार्या)।

८ शाक्य, कपिलवस्तु, राहुलमाता (देवदहवासी सुप्पबुद्ध शाक्य की पुत्री), क्षत्रिय।

९ कोसल, श्रावस्ती, वैश्य।

१० मगध, राजगृह, श्रेष्ठी कुल।

११ असितञ्जन नगर, कुटुम्बिक गृह में।

१२ असितञ्जन नगर, कुटुम्बिक गृह में।

१३ कोसल, श्रावस्ती, सुमन श्रेष्ठी पुत्र।

१४ मगध, मच्छिकासंड, श्रेष्ठी कुल।

१५ पंचालदेश, आलवी, (=अरवल, जि० फर्रुखाबाद), राजकुमार।

२५२. उत्तम दान देने वालों में अग्र महानाम सक्क[१]
२५३. मनोहर वस्तुओं का दान देने वालों में अग्र वैशाली का उग्ग गृहपति[२]
२५४. संघसेवकों में अग्र उग्ग गृहपति[३]
२५५. अवेत्य (दृढ़) श्रद्धावानों में अग्र सूरम्बट्ठ[४]
२५६. लोगों द्वारा पसंद किये जाने वालों में अग्र कोमारभच्च जीवक[५]
२५७. विश्वस्त रूप से बातचीत करने वालों में अग्र नकुलपिता गृहपति[६]

७. सप्तम वर्ग

२५८. "भिक्षुओ, मेरी उपासिका श्राविकाओं में ये अग्र हैं –
प्रथम शरण आने वालियों में अग्र सेनानी दुहिता सुजाता[७]
२५९. दायिकाओं में अग्र विसाखा मिगार-माता[८]
२६०. बहुश्रुतों में अग्र खुज्जुत्तरा[९]
२६१. मैत्री विहार (=भावना) करने वालियों में अग्र सामावती[१०]
२६२. ध्यानियों में अग्र उत्तरा नन्दमाता[११]
२६३. प्रणीतदायिकाओं में अग्र सुप्पवासा कोलियधीता[१२]
२६४. रोगी सुश्रुषिकाओं में अग्र सुप्पिया उपासिका[१३]
२६५. अतीव प्रसन्नों में अग्र कातियानी[१४]

---

१ शाक्य, कपिलवस्तु, (अनुरुद्ध का ज्येष्ठ भ्राता), क्षत्रिय।
२ वज्जिदेश, वैशाली, श्रेष्ठी कुल।
३ वज्जिदेश, हस्तिग्राम, श्रेष्ठी कुल।
४ कोसल, श्रावस्ती, श्रेष्ठी कुल।
५ मगध, राजगृह, अभयकुमार से सालवतिका गणिका से उत्पन्न।
६ भग्ग (=भर्गदेश) (सुंसुमारगिरि) श्रेष्ठी कुल।
७ मगध, उरुवेला के सेनानीग्राम, सेनानी कुटुम्बिक की पुत्री।
८ कोसल, श्रावस्ती, वैश्य।
९ वत्स्य, कौशाम्बी, घोसक श्रेष्ठी की दाई की पुत्री।
१० भद्रवति राष्ट्र, भद्दिया (=भद्रिका) नगर, भद्रवतिक श्रेष्ठी पुत्री; (पश्चात वत्स, कौशाम्बी, घोषित, श्रेष्ठी की धर्म-पुत्री), वत्सराज उदयन की महिषी।
११ मगध, राजगृह, सुमन श्रेष्ठी के अधीन पूर्णसिंह की पुत्री।
१२ शाक्य, कुंडिया, सीवलीमाता-क्षत्रिय कुल।
१३ काशी देश, वाराणसी, कुलगृह (वैश्य कुल)
१४ अवन्ति, कुररघर, (वैश्य कुल), सोण कुटिकण्ण की माता

२६६. विश्वस्त रूप से बातचीत करने वालियों में अग्र नकुलमाता गृहपत्नी[1]

२६७. श्रवणमात्र से श्रद्धावान होने वालियों में अग्र कुलघरिका (कुरर घर वाली) काळी उपासिका[2]

* * * * *

१५. असंभव वर्ग

१. प्रथम वर्ग

२६८. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य किसी संस्कार को नित्य करके ग्रहण करे, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन किसी संस्कार को नित्य करके ग्रहण करे, इस बात की गुंजाइश है।

२६९. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य किसी संस्कार को सुख करके ग्रहण करे, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन किसी संस्कार को सुख करके ग्रहण करे, इस बात की गुंजाइश है।

२७०. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य किसी धर्म को आत्मा ('मैं', 'मेरा') करके ग्रहण करे, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन किसी धर्म को आत्मा करके ग्रहण करे, इस बात की गुंजाइश है।

२७१. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य अपनी माता की जान ले, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन अपनी माता की जान ले, इस बात की गुंजाइश है।

२७२. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य अपने पिता की जान ले, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

---

१ भग्ग देश, सुंसुमारगिरि, (नकुलपिता गृहपति की भार्या)

२ मगध, राजगृह, कुलगृह में पैदा हुई; अवन्ती कुररघर में ब्याही।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन अपने पिता की जान ले, इस बात की गुंजाइश है।

२७३. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य अर्हत की जान ले, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन अर्हत की जान ले, इस बात की गुंजाइश है।

२७४. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य प्रदुष्ट चित्त से तथागत के शरीर का खून बहावे, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन प्रदुष्ट चित्त से तथागत के शरीर का खूनबहावे, इस बात की गुंजाइश है।

२७५. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य संघ में भेद डाले, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन संघ में भेद डाले, इस बात की गुंजाइश है।

२७६. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि (सम्यक) दृष्टि-प्राप्त मनुष्य किसी दूसरे शास्ता की शरण ग्रहण करे, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पृथग्जन किसी दूसरे शास्ता की शरण ग्रहण करे, इस बात की गुंजाइश है।

२७७. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि एक ही लोकधातु (विश्व) में, एक ही समय में दो अर्हत सम्यक संबुद्ध एक साथ उत्पन्न हों, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि एक ही लोकधातु में एक ही समय में एक अर्हत सम्यक संबुद्ध उत्पन्न हों, इस बात की गुंजाइश है।"

२. द्वितीय वर्ग

२७८. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि एक ही विश्व में, एक ही समय में दो चक्रवर्ती राजा एक साथ उत्पन्न हों, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि एक ही विश्व में, एक ही समय में एक चक्रवर्ती राजा हो, इस बात की गुंजाइश है।

२७९. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि स्त्री अर्हत सम्यक संबुद्ध हो, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पुरुष अर्हत सम्यक संबुद्ध हो, इस बात की गुंजाइश है।

२८०. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि स्त्री चक्रवर्ती राजा हो सके, इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पुरुष चक्रवर्ती राजा हो सके, इस बात की गुंजाइश है।

२८१-२८३. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि स्त्री शक्र बन सके ...मार बन सके ...ब्रह्म बन सके ,इस बात की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि पुरुष शक्र बन सके ... मार बन सके ... ब्रह्म बन सके, इस बात की गुंजाइश है।

२८४. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि कायिक दुश्चरित (शारीरिक दुष्कर्म, अकुशल कर्म) का इष्ट, प्रियकर, मनोनुकूल परिणाम हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि कायिक दुश्चरित का अनिष्ट[१], अप्रियकर, प्रतिकूल परिणाम हो, इसकी गुंजाइश है।

२८५. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि वाचिक दुश्चरित का इष्ट, प्रियकर, मनोनुकूल परिणाम हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि वाचिक दुश्चरित का अनिष्ट, अप्रियकर, प्रतिकूल परिणाम हो, इसकी गुंजाइश है।

२८६. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि मानसिक दुश्चरित का इष्ट, प्रियकर, मनोनुकूल परिणाम हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि मानसिक दुश्चरित का अनिष्ट, अप्रियकर, प्रतिकूल परिणाम हो, इसकी गुंजाइश है।"

३. तृतीय वर्ग

२८७. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि कायिक सुचरित (शारीरिक शुभकर्म, कुशल कर्म) का अनिष्ट, अप्रियकर, प्रतिकूल परिणाम हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

---

१ अट्ठकथा के अनुसार **'पटिघनिमित्तन्ति अनिट्ठं निमित्तं'** – अर्थात प्रतिघ निमित्त का अर्थ अनिष्ट निमित्त।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि कायिक सुचरित का इष्ट, प्रियकर, मनोनुकूल परिणामहो, इसकी गुंजाइश है।

२८८-२८९. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि वाचिक सुचरित का अनिष्ट, अप्रियकर, प्रतिकूल परिणाम हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि वाचिक सुचरित का इष्ट, प्रियकर, मनोनुकूल परिणामहो, इसकी गुंजाइश है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि मानसिक सुचरित का अनिष्ट, अप्रियकर,प्रतिकूलपरिणाम हो, इसकीतनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि मानसिक सुचरित का इष्ट, प्रियकर, मनोनुकूल परिणामहो, इसकी गुंजाइश है।

२९०. "भिक्षुओ, इस बात कीसंभावना नहीं है कि कायिकदुष्कर्मकरने वाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण,शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकरस्वर्गलोक में उत्पन्न हो, इसकीतनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात कीसंभावना है कि कायिकदुष्कर्मकरनेवाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरकमें पैदा हो, इसकी गुंजाइश है।

२९१-२९२. "भिक्षुओ, इस बात कीसंभावना नहीं है कि वाचिक दुष्कर्म करनेवाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण,शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकरस्वर्गलोक में उत्पन्न हो, इसकीतनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात कीसंभावना है कि वाचिक दुष्कर्मकरनेवाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरकमें पैदा हो, इसकी गुंजाइश है।

"भिक्षुओ, इस बात कीसंभावना नहीं है कि मानसिक दुष्कर्मकरनेवाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण,शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात कीसंभावना है कि मानसिक दुष्कर्मकरनेवाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़करनरक में पैदा हो, इसकीगुंजाइश है।

२९३. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि कायिक सत्कर्म (शुभ कर्म, कुशल कर्म) करने वाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप से, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि कायिक शुभ-कर्म करने वाला प्राणी, उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न हो, इसकी गुंजाइश है।

२९४-२९५. "भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि वाचिक शुभ-कर्म करने वाला प्राणी, उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा हो, इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि वाचिक शुभ-कर्म करने वाला प्राणी, उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न हो, इसकी गुंजाइश है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना नहीं है कि मानसिक शुभ-कर्म करने वाला प्राणी, उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा हो, इसकी गुंजाइश नहीं है।

"भिक्षुओ, इस बात की संभावना है कि मानसिक शुभ-कर्म करने वाला प्राणी उसके परिणामस्वरूप, उसके कारण, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न हो, इसकी गुंजाइश है।"

* * * * *

१६. (बुद्धोपदिष्ट) एक धर्म

१. प्रथम वर्ग

२९६. "भिक्षुओ, एक ही धर्म है जिसका अभ्यास (भावना), जिसका बहुलीकरण (वृद्धि, संवर्धन), भिक्षु के संपूर्ण निर्वेद के लिए, वैराग्य (विराग) के लिए, निरोध के लिए, उपशमन के लिए, अभिज्ञा के लिए, संबोधि के लिए तथा निर्वाण-लाभ के लिए होता है। कौन-सा एक धर्म? बुद्धानुस्मृति।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म की भावना, इस एक धर्म का बहुलीकरण, भिक्षु के संपूर्ण निर्वेद के लिए... होता है।

२९७. "भिक्षुओ, एक ही धर्म है जिसका अभ्यास, उसका बहुलीकरण, भिक्षु के संपूर्ण निर्वेद के लिए... होता है। कौन-सा एक धर्म? धर्मानुस्मृति। ...

संघानुस्मृति। ...शीलानुस्मृति। ...त्यागानुस्मृति। ...देवतानुस्मृति। ...आनापानस्मृति। ...मरणानुस्मृति। ...कायगतानुस्मृति। ...उपशमानुस्मृति।

“भिक्षुओ, इस एक धर्म की भावना, इस एक धर्म का बहुलीकरण, भिक्षु के संपूर्ण निर्वेद के लिए, वैराग्य के लिए, निरोध के लिए, उपशमन के लिए, अभिज्ञा के लिए, संबोधि के लिए तथा निर्वाण-लाभ के लिए होता है।”

२. द्वितीय वर्ग

२९८. “भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म (बात) नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न होते हों तथा उत्पन्न अकुशल-धर्मों में अत्यधिक विपुलता (वृद्धि) होती हो, जैसे भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि।

“भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि वाले में अनुत्पन्न अकुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं, उत्पन्न अकुशल-धर्म अत्यधिक वैपुल्य को प्राप्त होते हैं।

२९९. “भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हों तथा उत्पन्न कुशल-धर्मों में अत्यधिक विपुलता होती हो, जैसे भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि।

“भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि वाले में अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं, उत्पन्न कुशल-धर्म अत्यधिक वैपुल्य को प्राप्त होते हैं।

३००. “भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न न होते हों अथवा उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानि हो जाती हो जैसे भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि।

“भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि वाले में अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते, उत्पन्न कुशल-धर्मों की परिहानिहो जाती है।

३०१. “भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न न हों अथवा उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि न हो, जैसे भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि।

“भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि वाले में अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानिहो जाती है।

३०२. “भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न मिथ्यादृष्टि उत्पन्न हो जाती हो अथवा उत्पन्न मिथ्यादृष्टि वृद्धि को प्राप्त करती हो, जैसे यह अयथार्थ चिंतन करना।

“भिक्षुओ, अयथार्थ चिंतन करनेसे अनुत्पन्न मिथ्यादृष्टि उत्पन्न हो जाती है और उत्पन्न मिथ्यादृष्टि वृद्धि को प्राप्त करती है।

३०३. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे अनुत्पन्न सम्यक-दृष्टि उत्पन्न हो जाती हो अथवा उत्पन्न सम्यक-दृष्टि वृद्धि को प्राप्त करती हो, जैसे यह यथार्थ चिंतन करना।

"भिक्षुओ, यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न सम्यक-दृष्टि उत्पन्न हो जाती है और उत्पन्न सम्यक-दृष्टि वृद्धि को प्राप्त करती है।

३०४. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्तकर नरक में पैदा होते हैं जैसे कि भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि।

"भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि से युक्त प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्तकर नरकमें पैदा होते हैं।

३०५. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं जानता जिससे प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न होते हैं, जैसे कि भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि।

"भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि से युक्त प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न होते हैं।

३०६. "भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि वाले प्राणी के जो भी मिथ्यादृष्टि के अनुसार किये गये कायिक-कर्म हैं, जो भी वाचिक-कर्म हैं... जो भी मानसिक-कर्म हैं... जो भी चेतना है, जो भी कामनाएं हैं, जो भी संकल्प हैं तथा जितने भी संस्कार हैं वे सभी धर्म के अनिष्ट के लिए, अप्रियकर होने के लिए, प्रतिकूल होने के लिए, अहित के लिए तथा दुःख के लिए होते हैं। ऐसा किसलिए? भिक्षुओ, दृष्टि ही बुरी है।

"भिक्षुओ, जैसे नीम का बीज हो, कोसातकी-बीज हो वा कड़वी लौकी का बीज हो और वह गीली जमीन में गाड़ा गया हो, वह जितना भी पृथ्वी-रस को ग्रहण करता है, जितना भी उदक-रस को ग्रहण करता है, वह सब तिक्त ही होता है, कड़वा ही होता है, अरुचिकर ही होता है। यह किसलिए? भिक्षुओ, बीज ही खराब है। इसी प्रकार भिक्षुओ, मिथ्या-दृष्टि वाले प्राणी के जो भी... कायिक-कर्म हैं... जो भी वाचिक-कर्म हैं... जो भी मानसिक-कर्म हैं... भिक्षुओ, दृष्टि ही बुरी है।

३०७. "भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि वाले प्राणी के जो भी सम्यक-दृष्टि के अनुसार किये गये कायिक-कर्म हैं, जो भी वाचिक-कर्म हैं... जो भी मानसिक-कर्म हैं... जो भी चेतना है, जो भी कामनाएं है, जो भी संकल्प हैं

तथा जितने भी संस्कार हैं वे सभी धर्म इष्ट के लिए, रुचि के लिए, मनोनुकूल होने के लिए, हित के लिए तथा सुख के लिए होते हैं। ऐसा किसलिए? भिक्षुओ, दृष्टि ही अच्छी है।

"भिक्षुओ, जैसे ऊख का बीज हो, धान का बीज हो या अंगूर का बीज हो और वह गीली जमीन में गाड़ा गया हो, वह जितना भी पृथ्वी-रस को ग्रहण करता है, जितना भी उदक-रस को ग्रहण करता है, वह सब मधुर ही होता है, रुचिकर ही होता है, स्वादिष्ट ही होता है। यह किसलिए? भिक्षुओ, बीज ही अच्छा है। इसी प्रकार भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि वाले प्राणी के जो भी... कायिक-कर्म हैं... जो भी वाचिक-कर्म हैं... जो भी मानसिक-कर्म हैं... भिक्षुओ, दृष्टि ही अच्छी है।"

३. तृतीय वर्ग

३०८. "भिक्षुओ, लोक में एक आदमी बहुत जनों के अहित के लिए, बहुत जनों के असुख के लिए, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अनर्थ के लिए, अहित के लिए तथा दुःख के लिए पैदा होता है।

"कौन-सा एक आदमी?

"मिथ्यादृष्टिक जो विपरीत-दर्शन वाला होता है, वह बहुत जनों को सद्धर्म की ओर से हटाकर असद्धर्म में प्रतिष्ठापित कर देता है।

"भिक्षुओ, लोक में यह एक आदमी... दुःख के लिए पैदा होता है।"

३०९. "भिक्षुओ, लोक में एक आदमी बहुत जनों के हित के लिए, बहुत जनों के सुख के लिए, बहुत जनों के तथा देव-मनुष्यों के अर्थ के लिए, हित के लिए तथा सुख के लिए पैदा होता है।

"कौन-सा एक आदमी?

"सम्यक-दृष्टिक जो अविपरीत-दर्शन वाला होता है, वह बहुत जनों को असद्धर्म से हटाकर सद्धर्म में प्रतिष्ठापित कर देता है।

"भिक्षुओ, लोक में यह एक आदमी... सुख के लिए पैदा होता है।

३१०. "भिक्षुओ, मैं दूसरा कोई भी ऐसा धर्म नहीं जानता जो इतना महादोषपूर्ण हो जितना कि यह मिथ्यादृष्टि।

"भिक्षुओ, मिथ्यादृष्टि सर्वाधिक दोषपूर्ण है।

३११. "भिक्षुओ, मैं दूसरे किसी भी एक आदमी को नहीं जानता जो इस प्रकार बहुत जनों का अहित करने में लगा हो, बहुत जनों को असुख पहुँचाने

में लगा हो, बहुत जनों तथा देव-मनुष्यों के अनर्थ के लिए हो, अहित के लिए हो और दुःख के लिए हो, जैसे कि भिक्षुओ, यह मूर्ख मक्खलि।

"भिक्षुओ, जैसे नदी के मुहाने पर जाल फैला हो, जो बहुत सी मछलियों के अहित के लिए हो, दुःख के लिए हो, क्लेश के लिए हो, कष्ट के लिए हो, इसी प्रकार भिक्षुओ, मूर्ख मक्खलि को मनुष्य-रूपी जाल मानना चाहिए, जो बहुत जनों के अहित के लिए, दुःख के लिए, क्लेश के लिए तथा कष्ट के लिए इस लोक[1] में उत्पन्न हुआ है।

३१२. "भिक्षुओ, दुराख्यात (गलत आख्यात किया गया, गलत कहा गया) धर्म-विनय जो किसी को देता है, जिसे देता है और जो तदनुसार आचरण करता है, ये सभी बहुत अपुण्यार्जन करते हैं। यह किसलिए? भिक्षुओ, धर्म के ही दुराख्यात होने के कारण।

३१३. "भिक्षुओ, सु-आख्यात (सही आख्यात किया गया, सही कहा गया) धर्म-विनय जो किसी को देता है, जिसे देता है और जो तदनुसार आचरण करता है, वे सभी बहुत पुण्यार्जन करते हैं। यह किसलिए? भिक्षुओ, धर्म के ही सु-आख्यात होने के कारण।

३१४. "भिक्षुओ, दुराख्यात धर्म-विनय में दायक को (दान की) मात्रा जाननी चाहिए, प्रतिग्राहक को नहीं। यह किसलिए? भिक्षुओ, धर्म के दुराख्यात होने के कारण।

३१५. "भिक्षुओ, सु-आख्यात धर्म-विनय में प्रतिग्राहक को मात्रा जाननी चाहिए, दायक को नहीं। यह किसलिए? भिक्षुओ, धर्म के सु-आख्यात होने के कारण।

३१६. "भिक्षुओ, दुराख्यात धर्म-विनय में जो अत्यधिक प्रयत्नशील (बहुपरिश्रमी) होता है वह कष्ट पाता है। यह किसलिए? भिक्षुओ, धर्म के दुराख्यात होने के कारण।

३१७. "भिक्षुओ, सु-आख्यात धर्म-विनय में जो आलसी होता है वह कष्ट पाता है। यह किसलिए? भिक्षुओ, धर्म के सु-आख्यात होने के कारण।

३१८. "भिक्षुओ, दुराख्यात धर्म-विनय में जो आलसी होता है वह सुख पाता है। यह किसलिए? भिक्षुओ, धर्म के दुराख्यात होने के कारण।

---

१ यहां पालि में **'दिट्ठधम्मिकं'** शब्द है । इसमें **'दिट्ठेव धम्मे इमस्मिं येव अत्तभावे उप्पन्नफलं'** का अर्थ 'इस लोक में' या 'इस जन्म में' है। इसका अर्थ कहीं-कहीं 'इस शरीर में' भी किया है जो पालि शब्द **'अत्तभाव'** से प्राप्त है।

३१९. "भिक्षुओ, सु-आख्यात धर्म-विनय में जो अत्यधिक प्रयत्नशील होता है वह सुख पाता है। यह किसलिए? भिक्षुओ धर्म के सु-आख्यात होने के कारण।

३२०. "भिक्षुओ, जैसे थोड़ा भी गूह (विष्ठा) दुर्गंध ही देता है इसी प्रकार भिक्षुओ, मैं थोड़े भी संसार (भव) की प्रशंसा नहीं करता, यहां तक कि चुटकी बजाने भर भी नहीं।

३२१. "भिक्षुओ, जैसे थोड़ा भी मूत्र दुर्गंध ही देता है, इसी प्रकार... चुटकी बजाने भर भी नहीं।

"भिक्षुओ, जैसे थोड़ा भी थूक दुर्गंध ही देता है, इसी प्रकार... चुटकी बजाने भर भी नहीं।

"भिक्षुओ, जैसे थोड़ी भी पीप दुर्गंध ही देती है, इसी प्रकार... चुटकी बजाने भर भी नहीं।

"भिक्षुओ, जैसे थोड़ा भी लहू दुर्गंध ही देता है, इसी प्रकार... चुटकी बजाने भर भी नहीं।"

४. चतुर्थ वर्ग

३२२. "भिक्षुओ, जैसे इस जंबुद्वीप में रमणीय उद्यान, रमणीय-वन, रमणीय-भूमि तथा रमणीय पुष्करणियां थोड़ी ही हैं, अधिकता तो ऊंची-नीची भूमि, नदियों के दुर्गम प्रदेश, झाड़-झँखाड़ वाली भूमि तथा दुर्लंघ्य पर्वत प्रदेशों की ही है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, स्थल पर जन्म ग्रहण करने वाले (थलचर) प्राणी अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं की संख्या अधिक है जो जल में उत्पन्न होने वाले (जलचर) हैं।

३२३. "इसी प्रकार भिक्षुओ... मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करने वाले प्राणी अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो मनुष्येतर योनियों में जन्म ग्रहण करते हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ... मध्यम-जनपदों में जन्म ग्रहण करने वाले प्राणी अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो प्रत्यंत जनपदों में अशिक्षित, म्लेच्छों में जन्म ग्रहण करते हैं।

३२४. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी प्रज्ञावान हैं, जड़बुद्धि नहीं हैं, जिनके मुँह से लार नहीं टपकती (जिनका अपने आप पर संयम है) तथा जो सुभाषित-दुर्भाषित का अर्थ समझने में समर्थ हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही

प्राणियों की संख्या अधिक है जो प्रज्ञावान नहीं हैं, जो जड़बुद्धि हैं, जिनके मुँह से लार टपकती है (संयम नहीं है) तथा जो सुभाषित-दुर्भाषित का अर्थ जानने में असमर्थ हैं।

३२५. "इसी प्रकार भिक्षुओ... आर्य प्रज्ञा-चक्षु से युक्त प्राणी अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो मूढ़ हैं, मिथ्यादृष्टि वाले (अविद्यागत) हैं।

३२६. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जिन प्राणियों को तथागत का दर्शनलाभ होता है, वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जिन्हें तथागत का दर्शनलाभ नहीं होता।

३२७. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जिन प्राणियों को तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनने के लिए मिलता है, वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं की संख्या अधिक है जिन्हें तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनने के लिए नहीं मिलता है।

३२८. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी सुनकर धर्म को मन में धारण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो सुनकर धर्म को मन में धारण नहीं करते।

३२९. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी धारण[१] किये हुए धर्म के अर्थ की परीक्षा करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो धारण किए हुए धर्म के अर्थ की परीक्षा नहीं करते।

३३०. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी अर्थ तथा धर्म को जानकर धर्मानुसार आचरण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो अर्थ तथा धर्म को जानकर भी धर्मानुसार आचरण नहीं करते।

३३१. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी संविग्न होने के स्थान पर संविग्न होते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो संविग्न होने के स्थान पर संविग्न नहीं होते।

३३२. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी संविग्न होकर यथार्थ से प्रयत्न करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो संविग्न होकर भी यथार्थ से प्रयत्न नहीं करते।

३३३. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी व्यवसर्ग का आलंबन लेकर (निर्वाण के उद्देश्य से) समाधि लाभ करते हैं, चित्त की एकाग्रता प्राप्त करते हैं,

---

१ **'धातानं धम्मानं अत्थं उपपरिक्खन्ति'** – 'धारण किये हुए धर्मों के अर्थ की परीक्षा करते हैं' (देखें चङ्कीसुत्त)।

वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो व्यवसर्ग का आलंबन लेकर समाधि लाभ नहीं करते, चित्त की एकाग्रता प्राप्त नहीं करते।

३३४. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी श्रेष्ठ, उत्तम खाद्य रस के लाभी हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो श्रेष्ठ, उत्तम खाद्य रस के लाभी नहीं हैं, और उंछवृत्ति से प्राप्त (खेत में लुनाई के बाद या रास्ते में पड़े हुए दाने को जीविका के लिए चुनना) या भिक्षापात्र में एकत्र किया हुआ भोजन खा कर गुजारा करते है।

३३५. "इसी प्रकार भिक्षुओ... जो प्राणी अर्थ-रस, धर्म-रस तथा विमुक्ति-रस के लाभी हैं वे अल्पसंख्यक हैं, ऐसे ही प्राणियों की संख्या अधिक है जो अर्थ-रस, धर्म-रस, तथा विमुक्ति-रस के लाभी नहीं हैं। इसलिए भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए कि हम अर्थ-रस, धर्म-रस तथा विमुक्ति-रस के लाभी होंगे। भिक्षुओ, ऐसा ही सीखना चाहिए।

३३६-३३८. "भिक्षुओ, जैसे इस जंबुद्वीप में रमणीय-उद्यान, रमणीय-वन, रमणीय-भूमि तथा रमणीय-पुष्करणियां थोड़ी ही हैं, अधिकता तो ऊंची-नीची भूमि, नदियों के दुर्गम प्रदेश, झाड़-झँखाड़ वाली भूमि तथा दुर्लंघ्य पर्वत प्रदेशों की ही है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, जो मनुष्य-योनि से च्युत होकर फिर मनुष्य ही होकर जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो मनुष्य-योनि से च्युत होकर नरक में पैदा होते हैं। ...पशु-योनि में पैदा होते हैं। ...प्रेत होकर पैदा होते हैं।

३३९-३४१. "...इसी प्रकार भिक्षुओ, जो प्राणी मनुष्य-योनि से च्युत होकर देवों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो मनुष्य-योनि से च्युत होकर नरक में पैदा होते हैं। ...पशु-योनि में पैदा होते हैं। ...प्रेत होकर पैदा होते हैं।

३४२-३४४. "...इसी प्रकार भिक्षुओ, जो प्राणी देव-योनि से च्युत होकर देवों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो देव-योनि से च्युत होकर नरक में जन्म ग्रहण करते हैं। ...पशु-योनि में जन्म ग्रहण करते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

३४५-३४७. "...इसी प्रकार, भिक्षुओ, जो प्राणी देव-योनि से च्युत होकर मनुष्यों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो देव-योनि से च्युत होकर नरक में जन्म ग्रहण करते हैं। ...पशु-योनि में जन्म ग्रहण करते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

३४८-३५०. "...इसी प्रकार, भिक्षुओ, जो प्राणी नरक से च्युत होकर मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो नरक से च्युत होकर नरक में जन्म ग्रहण करते हैं। ...पशु-योनि में जन्म ग्रहण करते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

३५१-३५३. "...इसी प्रकार, भिक्षुओ, जो प्राणी नरक से च्युत होकर देवों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो नरक से च्युत होकर नरक में जन्म ग्रहण करते हैं। ...पशु-योनि में जन्म ग्रहण करते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

३५४-३५६. "...इसी प्रकार, भिक्षुओ, जो प्राणी पशु-योनि से च्युत होकर मनुष्यों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो पशु-योनि से च्युत होकर नरक में पैदा होते हैं। ...पशु-योनि में पैदा होते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

३५७-३५९. "...इसी प्रकार, भिक्षुओ, जो प्राणी पशु-योनि से च्युत होकर देवों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं प्राणियों की संख्या अधिक है जो पशु-योनि से च्युत होकर नरक में पैदा होते हैं। ...पशु-योनि में पैदा होते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

३६०-३६२. "...इसी प्रकार, भिक्षुओ, जो प्राणी प्रेत-योनि से च्युत होकर मनुष्यों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं की संख्या अधिक है जो प्रेत-योनि से च्युत होकर नरक में जन्म ग्रहण करते हैं। ...पशु-योनि में पैदा होते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।

३६३-३६५. "...इसी प्रकार, भिक्षुओ, जो प्राणी प्रेत-योनि से च्युत होकर देवों में जन्म ग्रहण करते हैं वे अल्पसंख्यक हैं, उन्हीं की संख्या अधिक है जो प्रेत-योनि से च्युत होकर नरक में जन्म ग्रहण करते हैं। ...पशु-योनि में जन्म ग्रहण करते हैं। ...प्रेत होकर जन्म ग्रहण करते हैं।"

* * * * *

१७. प्रशांतकरधर्म वर्ग

३६६-३८१. "भिक्षुओ, यह जो आरण्यकत्व है, यह निश्चयपूर्वक लाभ है। यह जो पिंडपात्रिकत्व (मात्र भिक्षाटन से प्राप्त भोजन ग्रहण करना) है, यह जो पांशुकूलिकत्व (=फटे-पुराने चीथड़ों के चीवर धारण करना) है, यह जो त्रि-चीवरधारी होना है, यह जो धर्मकथिक होना है, यह जो विनयधर होना है, यह जो बहुश्रुत होना है, यह जो स्थविर होना है, यह जो चीवर का उचित रूप

से धारण करना है, यह जो अनुयायियों का होना है, यह जो बहुत अनुयायियों का होना है, यह जो श्रेष्ठ-कुल का होना है, यह जो परिष्कृत वर्ण वाला होना है, यह जो सुस्पष्ट वाणी वाला होना है, यह जो अल्पेच्छता है तथा यह जो निरोग होना है, यह सब निश्चयपूर्वक लाभ हैं।"

* * * * *

१८. क्षणिक वर्ग (द्वितीय)

३८२. "भिक्षुओ, यदि कोई भिक्षु चुटकी बजाने भर ही प्रथम ध्यान का अभ्यास करता है तो, हे भिक्षुओ, इतने से ही वह भिक्षु ध्यान से रिक्त नहीं हो (अरिक्तध्यानी हो) विचरण करता है, शास्ता के अनुशासन में रहने वाला, उनके उपदेश के अनुसार आचरण करने वाला वह भिक्षु व्यर्थ ही राष्ट्र-पिंड खाने वाला नहीं होता। जो भिक्षु, इसका बहुत अभ्यास करते हैं उनका तो कहना ही क्या।

३८३-३८९. "भिक्षुओ, यदि कोई भिक्षु, चुटकी बजाने भर भी दूसरे ध्यान का अभ्यास करता है...

"तीसरे ध्यान का अभ्यास करता है...

"चौथे ध्यान का अभ्यास करता है...

"मैत्री के आधार पर चित्त-विमुक्ति का अभ्यास करता है...

"करुणा के आधार पर चित्त-विमुक्ति का अभ्यास करता है...

"मुदिता के आधार पर चित्त-विमुक्ति का अभ्यास करता है...

"उपेक्षा के आधार पर चित्त-विमुक्ति का अभ्यास करता है...

३९०-३९३. "काया में कायानुपश्यी[1] होकर विहार करता है, श्रमशील, संप्रज्ञानी, स्मृतिमान तथा लोक (काया रूपी) में अभिध्या (लोभ) -दौर्मनस्य (द्वेष) को हटाकर;

"वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर...

"चित्त में चित्तानुपश्यी होकर...

"धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर...

---

१ **'कायेकायानुपस्सी विहरति'** का अनुवाद 'काय के प्रति कायानुपश्यी होकर' भी किया जाता है। वस्तुतः इसका अर्थ है 'काया में कायानुपश्यी होकर विपश्यना करना'। इस साढ़े तीन हाथ की काया में ही अनुपश्यना करते हैं। जैसे आनापानसति इरियापथ आदि की जब हम अनुपश्यना करते हैं तब काया में ही करते हैं जो यथाभूत है। 'काया के प्रति' का तो अर्थ होगा 'काया के संबंध में, काया के विषय में' जो यथाभूत न होकर काल्पनिक भी हो सकता है।

३९४-३९७. "अनुत्पन्न पापपूर्ण अकुशल धर्मों को उत्पन्न न होने देने के लिए संकल्प (बलवती कामना) करता है, प्रयत्न करता है, पराक्रम (वीर्यारंभ) करता है, चित्त को उसी में लगाये रखता है, कठोरपरिश्रम करता है।

"उत्पन्न पापपूर्ण अकुशल-धर्मों के प्रहाण के लिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, पराक्रम करता है, चित्त को उसी में लगाये रखता है, कठोर परिश्रम करता है।

"अनुत्पन्न कुशल-धर्मों को उत्पन्न करने के लिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, पराक्रम करता है, चित्त को उसी में लगाये रखता है, कठोर परिश्रम करता है।

"उत्पन्न कुशल-धर्मों को स्थित करने के लिए, न भुलाने (लोप न होने) के लिए, बढ़ाने के लिए, विपुलता को प्राप्त कराने के लिए, भावना की पूर्णता को प्राप्त कराने के लिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, पराक्रम करता है, चित्त को उसी में लगाये रखता है, कठोरपरिश्रम करता है।

३९८-४०१. "छंद (संकल्प)-समाधि-प्रधान-संस्कार युक्त ऋद्धि[1] की भावना (का अभ्यास) करता है...

"वीर्य (परिश्रम)-समाधि-प्रधान-संस्कारयुक्त ऋद्धि की भावना करता है...

"चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कार युक्त ऋद्धि की भावना करता है...

"मीमांसा-समाधि-प्रधान-संस्कार युक्त ऋद्धि की भावना करता है...

४०२-४०६. "श्रद्धा-इंद्रिय की भावना करता है...

"वीर्य-इंद्रिय की भावना करता है...

"स्मृति-इंद्रिय की भावना करता है...

"समाधि-इंद्रिय की भावना करता है...

"प्रज्ञा-इंद्रिय की भावना करता है...

४०७-४११. "श्रद्धा-बल की भावना करता है...

---

१ **इद्धिपाद** (ऋद्धिपाद) चार हैं:

(१) **छन्दसमाधिपधान सङ्खारसमन्नागत** = छंद (संकल्प) समाधि प्रधान (प्रयत्न) संस्कार (युक्त) ऋद्धि की भावना करता है।

(२) **वीर्यसमाधिपधान सङ्खारसमन्नागत** = वीर्य (परिश्रम) संस्कार (युक्त) ऋद्धि की भावना करता है।

(३) **चित्तसमाधिपधान सङ्खारसमन्नागत** = चित्त युक्त ऋद्धि की भावना करता है।

(४) **वीमंसासमाधिपधान सङ्खारसमन्नागत** = मीमांसा युक्त ऋद्धि की भावना करता है।

"वीर्य-बल की भावना करता है...

"स्मृति-बल की भावना करता है...

"समाधि-बल की भावना करता है...

"प्रज्ञा-बल की भावना करता है...

४१२-४१८. "स्मृति-संबोधि-अंग की भावना करता है...

"धर्मविचय-संबोधि-अंग की भावना करता है...

"वीर्य-संबोधि-अंग की भावना करता है...

"प्रीति-संबोधि-अंग की भावना करता है...

"प्रश्रब्धि-संबोधि-अंग की भावना करता है...

"समाधि-संबोधि-अंग की भावना करता है...

"उपेक्षा-संबोधि-अंग की भावना करता है...

४१९-४२६. "सम्यक-दृष्टि की भावना करता है...

"सम्यक-संकल्प की भावना करता है...

"सम्यक-वाणी की भावना करता है...

"सम्यक-कर्मान्त की भावना करता है...

"सम्यक-आजीविका की भावना करता है...

"सम्यक-व्यायाम (प्रयत्न) की भावना करता है...

"सम्यक-स्मृति की भावना करता है...

"सम्यक-समाधि की भावना करता है...

४२७-४३४. "अपनी आंतरिक रूप-संज्ञा को जानकर बाहर के सीमित सुवर्ण-दुर्वर्ण रूपों को देखता है और उन्हें अपने वश में कर लेने पर उसकी धारणा होती है कि 'मैं जानता हूं, देखता हूं'...

"अपनी आंतरिक रूप-संज्ञा को जानकर बाहर के असीम सुवर्ण-दुर्वर्ण रूपों को देखता है और उन्हें अपने वश में कर लेने पर उसकी धारणा होती है कि 'मैं जानता हूं, देखता हूं'...

"अपनी आंतरिक अरूप-संज्ञा को जानकर बाहर के सीमित सुवर्ण-दुर्वर्ण रूपों को देखता है और उन्हें अपने वश में कर लेने पर उसकी धारणा होती है कि 'मैं जानता हूं, देखता हूं'...

"अपनी आंतरिक अरूप-संज्ञा को जानकर बाहर के असीम सुवर्ण-दुर्वर्ण रूपों को देखता है और उन्हें अपने वश में कर लेने पर उसकी धारणा होती है कि 'मैं जानता हूं, देखता हूं'...

"अपनी आंतरिक अरूप-संज्ञा को जानकर बाहर के नीले, नील-वर्ण के, नील रंग के उदाहरण वाले (नील रंग जैसे) तथा नीली-चमक के रूपों को देखता है और उन्हें अपने वश में कर लेने पर उसकी धारणा होती है कि 'मैं जानता हूं, देखता हूं'...

"अपनी आंतरिक अरूप-संज्ञा को जानकर बाहर के पीले, पीत-वर्ण के, पीले रंग के उदाहरण वाले तथा पीली-चमक के रूपों को देखता है...

"अपनी आंतरिक अरूप-संज्ञा को जानकर बाहर के लाल, रक्त-वर्ण के, लाल रंग के उदाहरण वाले तथा लाल-चमक के रूपों को देखता है...

"अपनी आंतरिक अरूप-संज्ञा को जानकर बाहर के सफेद, श्वेत-वर्ण के, सफेद रंग के उदाहरणवाले, सफेद-चमक के रूपों को देखता है...

४३५-४४२. "रूप वाला (भौतिक शरीर वाला होकर) होकर रूपों को देखता है...

"अपनी आंतरिक अरूप-संज्ञा को जानकर बाहर के रूपों को देखता है और उन्हें अपने वश में कर लेने पर उसकी धारणा होती है कि 'मैं जानता हूं, देखता हूं...

"शोभन[1] है" धारणा वाला होकर (वह ध्यान करने के लिए) प्रवृत्त होता है।

"सब प्रकार से रूप-संज्ञाओं का अतिक्रमण कर, प्रतिघ-संज्ञाओं को अस्त कर, नानात्व-संज्ञाओं को मन से दूर कर 'आकाश अनंत है' ऐसा मान कर आकासानञ्चायतन को प्राप्त कर विहार करता है...

"सब प्रकार से आकासानञ्चायतन का अतिक्रमण कर 'विज्ञानान्त्यायतन है' ऐसा मानकर विज्ञानान्त्यायतन को प्राप्त कर विहार करता है...

"सब प्रकार से विज्ञानान्त्यायतन का अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' ऐसा मानकर 'आकिञ्चञ्ञायतन' को प्राप्त कर विहार करता है...

"सब प्रकार से 'आकिञ्चञ्ञायतन' का अतिक्रमण कर 'नैवसंज्ञानासंज्ञायतन' को प्राप्त कर विहार करता है...

"सब प्रकार से 'नैवसंज्ञानासंज्ञायतन' का अतिक्रमण कर 'सञ्ञावेदयितनिरोध' को प्राप्त कर विहार करता है...

४४३-४५२. "पृथ्वी-कसिण की भावना करता है...

---

१ यहां **'अधिमुत्तो'** (बु. सं. अधिमुक्त) का अर्थ 'प्रवृत्त होना' है। अतः **'सुभन्तेव अधिमुत्तो होति'** का अर्थ 'शोभन है' में प्रवृत्त होता है। इसका अर्थ 'शोभन है' इसी धारणा वाला होता है। पर यहां अर्थ सिर्फ 'धारणा वाला होना' नहीं, बल्कि प्रवृत्त होना है।

"जल-कसिण की भावना करता है...
"तेज (=अग्नि)-कसिण की भावना करता है...
"वायु-कसिण की भावना करता है...
"नील-कसिण की भावना करता है...
"पीत-कसिण की भावना करता है...
"लोहित-कसिण की भावना करता है...
"अवदात (=श्वेत)-कसिण की भावना करता है...
"आकाश-कसिणकी भावना करता है...
"विज्ञान-कसिण की भावना करता है...
४५३-४६२. अशुभ-संज्ञा की भावना करता है...
"मरण-संज्ञा की भावना करता है...
"आहार के संबंध में प्रतिकूल-संज्ञा की भावना करता है...
"सारे लोक के प्रति अनासक्ति-भाव की भावना करता है ...
"अनित्य-संज्ञा की भावना करता है...
"अनित्य में दुःख-संज्ञा की भावना करता है...
"दुःख में अनात्म-संज्ञा की भावना करता है...
"प्रहाण-संज्ञा की भावना करता है...
"वैराग्य-संज्ञा की भावना करता है...
"निरोध-संज्ञा की भावना करता है...
४६३-४७२. "अनित्य-संज्ञा की भावना करता है...
"अनात्म-संज्ञा की भावना करता है...
"मरण-संज्ञा की भावना करता है...
"आहार के संबंध में प्रतिकूल संज्ञा की भावना करता है...
"सारे लोक के प्रति अनासक्ति-भाव की भावना करता है...
"अस्थि-संज्ञा की भावना करता है...
"(लाश में) कीड़े पड़ जाने की संज्ञा की भावना करता है...
"नीली पड़ जाने की संज्ञा की भावना करता है...
"क्षतविक्षत हो जाने की संज्ञा की भावना करता है...
"सूज जाने की संज्ञा की भावना करता है...
४७३-४८२. "बुद्धानुस्मृति की भावना करता है...

"धर्मानुस्मृति की भावना करता है...
"संघानुस्मृति की भावना करता है...
"शील-अनुस्मृति की भावना करता है...
"त्यागानुस्मृति की भावना करता है...
"देवतानुस्मृति की भावना करता है...
"आनापान-स्मृति की भावना करता है...
"मरण-स्मृति की भावना करता है...
"कायगत-स्मृति की भावना करता है...
"उपशमानुस्मृति की भावना करता है...
४८३-४९२. "प्रथम ध्यान के साथ श्रद्धा-इंद्रिय की भावना करता है...
"प्रथम ध्यान के साथ वीर्य-इंद्रिय की भावना करता है...
"प्रथम ध्यान के साथ स्मृति-इंद्रिय की भावना करता है...
"प्रथम ध्यान के साथ समाधि-इंद्रिय की भावना करता है...
"प्रथम ध्यान के साथ प्रज्ञा-इंद्रिय की भावना करता है...
"प्रथम... श्रद्धा-बल की भावना करता है...
"प्रथम... वीर्य-बल की भावना करता है...
"प्रथम... स्मृति-बल की भावना करता है...
"प्रथम... समाधि-बल की भावना करता है...
"प्रथम... प्रज्ञा-बल की भावना करता है...
४९३-५६२. "द्वितीय ध्यान के साथ...
"तृतीय ध्यान के साथ...
"चतुर्थ ध्यान के साथ...
"मैत्री के साथ...
"करुणा के साथ...
"मुदिता के साथ...
"उपेक्षा के साथ...
"श्रद्धा-इंद्रिय की भावना करता है...
"वीर्य-इंद्रिय की भावना करता है...
"स्मृति-इंद्रिय की भावना करता है...
"समाधि-इंद्रिय की भावना करता है...

"प्रज्ञा-इंद्रिय की भावना करता है...

"श्रद्धा-बल की भावना करता है...

"वीर्य-बल की भावना करता है...

"स्मृति-बल की भावना करता है...

"समाधि-बल की भावना करता है...

"प्रज्ञा-बल की भावना करता है...

"इस प्रकार के भिक्षु को, हे भिक्षुओ! अरिक्तध्यानी कहते हैं, शास्ता के अनुशासन में रहने वाला, उनके उपदेश के अनुसार आचरण करने वाला वह भिक्षु व्यर्थ ही राष्ट्र-पिंड खाने वाला नहीं होता। जो भिक्षु इसका बहुत अभ्यास करते हैं, उनका तो कहना ही क्या!"

* * * * *

१९. कायगत-स्मृति वर्ग

५६३. "भिक्षुओ, जो कोई भी चित्त से महासमुद्र का स्पर्श करता है (चिंतन करता है), समुद्र में पड़ने वाली छोटी नदियां भी उसके अंतर्गत ही आ जाती हैं, इसी प्रकार भिक्षुओ, जो कोई कायगत-स्मृति को भावित कर लेता है, उसका बहुलीकरण कर लेता है, तो जितने भी विद्यापक्षीय कुशल-धर्म हैं उन सबका समावेश उसके अंतर्गत हो जाता है।

५६४-५७०. "भिक्षुओ, एक धर्म की भावना, बहुलीकरण महान संवेग के लिए होता है। ...

"महान अर्थ के लिए होता है...

"महान योग-क्षेम (कल्याण) के लिए होता है...

"स्मृति-संप्रज्ञान के लिए होता है...

"ज्ञान-दर्शन-लाभ के लिए होता है...

"इसी जन्म में सुखपूर्वक रहने के लिए होता है ...

"विद्या-विमुक्ति-फल के साक्षात करने के लिए होता है।

"कौन-सा एक धर्म? कायगतस्मृति। भिक्षुओ, यही एक धर्म है जिसकी भावना... विद्या-विमुक्ति-फल के साक्षात करने के लिए होता है।

५७१. "भिक्षुओ, एक धर्म के भावित करने पर, बहुलीकरण करने पर काया भी प्रश्रब्ध होती है, चित्त भी प्रश्रब्ध होता है, वितर्क-विचार भी उपशमित हो जाते हैं तथा सारे के सारे विद्यापक्षीय धर्म भावना की परिपूर्णता

को प्राप्त हो जाते हैं। किस एक धर्म के ? कायगत-स्मृति के। भिक्षुओ, इस एक धर्म को भावित... प्राप्त हो जाते हैं।

५७२. "भिक्षुओ, एक धर्म के भावित करने पर, बहुलीकरण करने पर अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते, उत्पन्न अकुशल-धर्मों की परिहानि हो जाती है। किस एक धर्म के ? कायगत-स्मृति के।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म के भावित... परिहानि हो जाती है।

५७३. "भिक्षुओ, एक धर्म के भावित करने पर, बहुलीकरण करने पर अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं, उत्पन्न कुशल-धर्म अत्यधिक वैपुल्य को प्राप्त होते हैं। किस एक धर्म के ? कायगत-स्मृति के।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म के भावित... प्राप्त होते हैं।

५७४. "भिक्षुओ, एक धर्म के भावित करने पर, बहुलीकरण करने पर अविद्या का प्रहाण होता है, विद्या उत्पन्न होती है, अहंकार का नाश होता है, अनुशयों का समुद्धात होता है तथा संयोजनों का प्रहाण होता है। किस एक धर्म के ? कायगत-स्मृति के।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म के भावित... प्रहाण होता है।

५७५-५७६. "भिक्षुओ, एक धर्म की भावना, बहुलीकरण प्रज्ञा के प्रस्फुटन के लिए होता है, अनुत्पाद परिनिर्वाण (इंधन रहित, जहां पुनर्जन्म का कारण बनने वाला कोई कर्म-बीज शेष नहीं रहता) के लिए होता है। किस एक धर्म की ? कायगत-स्मृति की।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म की भावना... होता है।

५७७-५७९. "भिक्षुओ, एक धर्म के भावित करने पर, बहुलीकरण करने पर अनेक धातुओं का प्रतिवेधन होता है... नाना धातुओं का प्रतिवेधन होता है... अनेक धातुओं के विश्लेषण करने की प्रतिसम्भिदा[1] होती है। किस एक धर्म के ? कायगत-स्मृति के।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म के भावित... होती है।

५८०-५८३. "भिक्षुओ, एक धर्म की भावना, बहुलीकरण स्रोतापत्ति-फल के साक्षात्कार के लिए होता है, सकृदागामी-फल के साक्षात्कार के लिए होता है, अनागामी-फल के साक्षात्कार के लिए होता है, अर्हंत-फल के साक्षात्कार के लिए होता है। किस एक धर्म का ? कायगत-स्मृति का।

"भिक्षुओ, इस एक धर्म की भावना... होता है।

१ देखें पादटिप्पणी २, पृष्ठ २६

५८४-५९९. “भिक्षुओ, एक धर्म की भावना, बहुलीकरण प्रज्ञा के लिए होता है, प्रज्ञा की वृद्धि के लिए होता है, प्रज्ञा वैपुल्य के लिए होता है, महती-प्रज्ञा के लिए होता है, बहु-प्रज्ञा के लिए होता है, विपुल-प्रज्ञा के लिए होता है, गंभीर-प्रज्ञा के लिए होता है, दूर-प्रज्ञा के लिए होता है, भूरि-प्रज्ञा के लिए होता है, प्रज्ञा बाहुल्य के लिए होता है, शीघ्र-प्रज्ञा के लिए होता है, स्फूर्त-प्रज्ञा के लिए होता है, प्रसन्न-प्रज्ञा के लिए होता है, क्षिप्र-प्रज्ञा के लिए होता है, तीक्ष्ण-प्रज्ञा के लिए होता है, तथा निर्वेधिक-प्रज्ञा के लिए होता है। किस एक धर्मका? कायगत-स्मृतिका।

“भिक्षुओ, इस एक धर्म की भावना... होता है।”

* * * * *

२०. अमृत वर्ग

६००. “भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृतिका परिभोग नहीं करते वे अमृत का परिभोग नहीं करते। भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृतिका परिभोग करते हैं वे अमृत का परिभोग करते हैं।

६०१. “भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का परिभोग नहीं किया, उन्होंने अमृत का परिभोग नहीं किया। भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का परिभोग किया, उन्होंने अमृत का परिभोग किया।

६०२. “भिक्षुओ, जिनकी कायगत-स्मृति का ह्रास हो गया उनके अमृत का ह्रास हो गया। भिक्षुओ, जिनकी कायगत-स्मृति का ह्रास नहीं हुआ उनके अमृत का ह्रास नहीं हुआ।

६०३. “भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृति करने से चूक गया वह अमृत पाने से चूक गया। भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृति करने से नहीं चूका वह अमृत पाने से नहीं चूका।

६०४. “भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति के प्रति प्रमाद किया, उन्होंने अमृत के प्रति प्रमाद किया। भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति के प्रति प्रमाद नहीं किया उन्होंने अमृत के प्रति प्रमाद नहीं किया।

६०५. “भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृति को भूल गये वे अमृत को भूल गये। भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृति को नहीं भूले, वे अमृत को नहीं भूले।

६०६. “भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का सेवन (अभ्यास) नहीं किया, उन्होंने अमृत का सेवन नहीं किया। भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का सेवन किया उन्होंने अमृतका सेवन किया।

६०७. "भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति को भावित नहीं किया, उन्होंने अमृत को भावित नहीं किया। भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति को भावित किया उन्होंने अमृत को भावित किया।

६०८. "भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का बहुलीकरण नहीं किया, उन्होंने अमृत का बहुलीकरण नहीं किया। भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का बहुलीकरण किया, उन्होंने अमृत का बहुलीकरण किया।

६०९. "भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृति से अनभिज्ञ रहे, वे अमृत से अनभिज्ञ रहे। भिक्षुओ, जो कायगत-स्मृति से अनभिज्ञ नहीं रहे वे अमृत से अनभिज्ञ नहीं रहे।

६१०. "भिक्षुओ, जिन्हें कायगत-स्मृति का परिज्ञान नहीं हुआ, उन्हें अमृत का परिज्ञान नहीं हुआ। भिक्षुओ, जिन्हें कायगत-स्मृति का परिज्ञान हुआ, उन्हें अमृत का परिज्ञान हुआ।

६११. "भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का साक्षात्कार नहीं किया, उन्होंने अमृत का साक्षात्कार नहीं किया। भिक्षुओ, जिन्होंने कायगत-स्मृति का साक्षात्कार किया, उन्होंने अमृत का साक्षात्कार किया।"

ऐसा भगवान ने कहा। भिक्षुओ ने प्रसन्न हो भगवान के कथन का अभिनंदन किया।

एकक निपात समाप्त।

* * * * *

विषय-सूची

द्विक -निपात (१-५)

१. प्रथम पंचाशतक

१. क रणीय वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - ५२

१. दोष सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - ५२

२. प्रधानसुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - ५३

३. अनुतापसुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - ५४

४. अननुतापसुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - ५४

५. उपज्ञातसुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - ५४

६. संयोजनसुत्त- - - - - - - - - - - - - - - - - - ५५

७. कृ ष्णसुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - ५६

८. शुक्लसुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - ५६

९. चर्या (आचरण) सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - ५६

१०. वर्षोपनायिक ासुत्त - - - - - - - - - - - - - - - ५६

२. प्रबंध क ौशल वर्ग - - - - - - - - - - - - - - ५६

३. मूर्ख वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - ६३

४. समचित्त वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - ६६

५. परिषद वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - ७४

द्विक निपात

१. प्रथम पंचाशतक

१. करणीय वर्ग

१. दोष सुत्त

१. ऐसा मैंने सुना – एक समय भगवान श्रावस्ती में, जेतवन में अनाथपिण्डिक के आराम में विहार कर रहे थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया –"भिक्षुओ!" उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया – "भदंत!" भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, दो दोष हैं। कौन-से दो? इहलोक-संबंधी दोष (इसी जन्म में बुरा फल देने वाला दुष्कर्म) तथा परलोक-संबंधी दोष (परलोक में बुरा फल देने वाला दुष्कर्म)। भिक्षुओ, इहलोक-संबंधी दोष कौन-सा है? भिक्षुओ, एक आदमी देखता है कि एक चोर को, एक अपराधी को राजा के आदमी पकड़ कर ले जाते हैं और नाना प्रकार के दंड देते हैं –कोड़े से भी मारते हैं, बेंत से भी पीटते हैं, मुद्गर से भी पीटते हैं, हाथ भी काट लेते हैं, पांव भी काट लेते हैं, हाथ-पांव भी काट लेते हैं, कान भी छेद देते हैं, नाक भी छेद देते हैं, कान-नाक भी छेद देते हैं, खोपड़ी निकालकर उसमें गर्म लोहा भी डाल देते हैं, बालों सहित सिर की चमड़ी उखाड़ कर खोपड़ी को कंकड़ों से भी रगड़ते हैं, संडासी से मुँह खोलकर उसमें दीपक भी जला देते हैं, सारे शरीर पर तेल-बत्ती लपेटकर उसमें आग भी लगा देते हैं, हाथ पर तेल-बत्ती लपेट कर उसमें आग भी लगा देते हैं, गले से गिट्टे तक की चमड़ी भी उतार देते हैं, गले से कटि-प्रदेश तक की चमड़ी और कटि-प्रदेश से गिट्टे तक की चमड़ी भी उतार देते हैं, दोनों कोहनियों तथा दोनों घुटनों में मेखें (किले) ठोक कर जमीन पर भी लिटा देते हैं, उभय-मुख कांटे गाड़-गाड़कर चमड़ी, मांस तथा नसें भी नोच लेते हैं, सारे शरीर की चमड़ी को कार्षापण-कार्षापणभर काट डालते हैं, शरीर को जहां-तहां शस्त्रों से पीट कर उस पर कंघी भी फेरते हैं, एक करवट लिटा कर कान में से कील भी गाड़ देते हैं, बिना चमड़ी को हानि पहुँचाये अंदर-अंदर हड्डी भी पीस डालते हैं, उबलता-उबलता तेल भी डाल देते हैं, कुत्तों से भी कटवाते हैं, जीते जी सूली पर भी लटकाते हैं तथा तलवार से सिर भी काट डालते हैं।

"उसके मन में यह होता है – जिस तरह के पाप-कर्म करने से एक चोर को, एक अपराधी को राजा के आदमी पकड़कर ले जाते हैं और नाना प्रकार के दंड देते हैं, कोड़े से भी मारते हैं... तलवार से सिर भी काट डालते हैं। मैं भी यदि ऐसा पाप-कर्म करूंगा, तो मुझे भी राजा के आदमी पकड़कर ले जायेंगे और इसी प्रकार से नाना दंडों से दंडित करेंगे, कोड़े से भी मारेंगे... तलवार से सिर भी काट डालेंगे।

"वह इसी जन्म में फल देने वाले दुष्कर्म से डरकर दूसरों की वस्तुएं लूटता हुआ नहीं घूमता है। भिक्षुओ, यह कहलाता है इसी जन्म में बुरा फल देने वाला दुष्कर्म।"

"भिक्षुओ, परलोक में फल देने वाला दुष्कर्म क्या है?"

"भिक्षुओ, कोई-कोई इस प्रकार विचार करता है – कायिक दुष्कर्म का परलोक में बुरा फल होता है, वाचिक दुष्कर्म का परलोक में बुरा फल होता है, मानसिक दुष्कर्म का परलोक में बुरा फल होता है। अगर मैं शरीर से दुष्कर्म करूं, वाणी से दुष्कर्म करूं, मन से दुष्कर्म करूं तो क्या इससे मैं शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा नहीं होऊंगा?

"इस तरह वह परलोक में फल देने वाले दुष्कर्म से भयभीत हो जाने के कारण शारीरिक दुष्कर्मों का त्याग कर, शारीरिक सत्कर्मों का अभ्यास करता है, वाचिक दुष्कर्मों का त्याग कर, वाचिक सत्कर्मों का अभ्यास करता है, मानसिक दुष्कर्मों का त्याग कर, मानसिक सत्कर्मों का अभ्यास करता है और अपने आपको शुद्ध बनाता है। भिक्षुओ, यह परलोक में फल देने वाला दुष्कर्म कहलाता है। भिक्षुओ, ये दो प्रकार के दुष्कर्म हैं।

"इसलिए भिक्षुओ, यह सीखना चाहिए कि हम लोग इसी जन्म में बुरा फल देने वाले दुष्कर्म से डरेंगे, परलोक में बुरा फल देने वाले दुष्कर्म से डरेंगे, दोष में भय मानने वाले होंगे, दोष में भय देखने वाले होंगे। इसी प्रकार भिक्षुओ, सीखना चाहिए। भिक्षुओ, यह आशा करनी चाहिए कि दोष में भय मानने वाला, दोष में भय देखने वाला सभी दोषों से पूरी तरह मुक्त हो जायगा।"

२. प्रधानसुत्त

२. "भिक्षुओ, लोक में यह दो दुष्कर कार्य हैं। कौन-से दो? एक तो गृहस्थों का घर में रहते समय चीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय औषध आदि आवश्यक वस्तुओं का दान करने का दुष्कर कार्य; दूसरा, घर से बेघर

हुए अनागारिक प्रव्रजितों का सर्व उपधियों (जो फिर जन्म देने का कारण बनें) के परित्याग का कठिन प्रयास।

"भिक्षुओ, लोक में ये दो दुष्कर कार्य हैं। भिक्षुओ, इन दोनों दुष्कर कार्यों में यह जो सर्व उपधियों का परित्याग करना है, यही अधिक दुष्कर कार्य है। इसलिए भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए कि सभी उपधियों का परित्याग करने का प्रयास करेंगे। भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए।"

३. अनुतापसुत्त

३. "भिक्षुओ, ये दो अनुताप पैदा करनेवाले धर्म (बातें) हैं। कौन-से दो?

"भिक्षुओ, किसी ने शरीर से दुष्कर्म किया होता है, शुभ-कर्म नहीं किया होता; वाणी से दुष्कर्म किया होता है, शुभ-कर्म नहीं किया होता; मन से दुष्कर्म किया होता है, शुभ-कर्म नहीं किया होता।

"वह यह सोचकर अनुतप्त होता है कि मैंने शरीर से दुष्कर्म किया, शरीर से शुभ-कर्म नहीं किया, यह सोचकर अनुतप्त होता है कि मैंने वाणी से दुष्कर्म किया, वाणी से शुभ-कर्म नहीं किया, यह सोचकर अनुतप्त होता है कि मन से दुष्कर्म किया, शुभ-कर्म नहीं किया। भिक्षुओ, ये दो अनुताप पैदा करने वाले धर्म हैं।"

४. अननुतापसुत्त

४. "भिक्षुओ, ये दो अनुताप न पैदा करने वाले धर्म हैं। कौन-से दो?

"भिक्षुओ, किसी ने शरीर से शुभ-कर्म किया होता है, दुष्कर्म नहीं किया होता... मन से... वह यह सोचकर अनुतप्त नहीं होता कि मैंने शरीर से शुभ-कर्म किया है, यह सोचकर अनुतप्त नहीं होता कि मैंने शरीर से दुष्कर्म नहीं किया है... मन से...।

"भिक्षुओ, ये दो अनुताप न पैदा करने वाले धर्म हैं।"

५. उपज्ञातसुत्त

५. "भिक्षुओ, मैंने दो बातों को उपज्ञात किया (गहराई से जाना) है, एक तो कुशल धर्मों में असंतुष्ट रहने को, दूसरे अप्रतिवारित[1], अनारोधित (बिना पीछे हटे) कठोर प्रयत्न करने को। भिक्षुओ, मैंने अप्रतिवारित कठोर प्रयत्न

---

१ यहां पालि में **'अप्पटिवानिता'** शब्द है। इसका अर्थ हमारी समझ में अप्रतिवारित है, बिना पीछे हटे, बिना कतराये प्रयत्न करना है। अट्ठकथा में **'अप्पटिवानितातिअप्पटिक्क मना, अनोसक्क ना'** कहा गया है जिसका अर्थ 'बिना प्रतिक्रमण किये, बिना पीछे हटे' होता है।

किया है, यह सोचकर कि चाहे त्वचा, नसें और हड्डी ही शेष रह जायं, शरीर का मांस-रक्त सूख जाये, जो कुछ पुरुष-सामर्थ्य, पुरुष-वीर्य तथा पुरुष-पराक्रम से प्राप्तव्य है, उसे प्राप्त करने तक पुरुषार्थ जारी रहेगा। इस प्रकार, भिक्षुओ, मेरी संबोधि अप्रमाद से ही प्राप्त हुई है, अनुत्तर-योगक्षेम भी अप्रमाद से ही प्राप्त हुआ है।

"भिक्षुओ, यदि तुम भी अनारोधित कठोर प्रयत्न करो –चाहे त्वचा, नसें और हड्डी ही शेष रह जायं, शरीर का मांस-रक्त सूख जाये, जो कुछ पुरुष-सामर्थ्य, पुरुष-वीर्य, तथा पुरुष-पराक्रम से प्राप्तव्य हो सकता है, उसे प्राप्त करने तक पुरुषार्थ जारी रखो तो भिक्षुओ, तुम भी जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुलपुत्र ठीक ही घर से बे-घर होकर प्रव्रजित हो जाते हैं, उस श्रेष्ठ, ब्रह्मचर्य-फल को इसी जन्म में स्वयं अभिज्ञात कर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करोगे।

"इसीलिए, भिक्षुओ, यही सीखना चाहिए -- अनारोधित कठोर पुरुषार्थ करते रहेंगे –चाहे त्वचा, नसें और हड्डी ही शेष रह जायं, शरीर का मांस-रक्त सूख जाये, जो कुछ पुरुष-सामर्थ्य, पुरुष-वीर्य, तथा पुरुष-पराक्रम से प्राप्तव्य हो सकता है, उसे प्राप्त करने तक पुरुषार्थ जारी रहेगा। भिक्षुओ, ऐसा ही सीखना चाहिए।"

६. संयोजनसुत्त

६. "भिक्षुओ, दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"एक तो संयोजनीय धर्मों में आस्वादन देखना और दूसरे संयोजनीय धर्मों को निर्वेदपूर्वक देखना। भिक्षुओ, संयोजनीय धर्मों का आस्वादन करने वाला राग का त्याग नहीं करता, द्वेष का त्याग नहीं करता, मोह का त्याग नहीं करता। राग, द्वेष तथा मोह का त्याग न करने के कारण वह जाति, जरा, मरण, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य तथा चिंता से मुक्त नहीं होता। वह दुःख से परिमुक्त नहीं होता – ऐसा मैं कहता हूं।

"भिक्षुओ, संयोजनीय धर्मों में निर्वेद की अनुपश्यना करते हुए विचरण करनेवाला राग का त्याग कर देता है, द्वेष का त्याग कर देता है, मोह का त्याग कर देता है। राग, द्वेष तथा मोह का त्याग कर देने के कारण वह जाति, जरा, मरण, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य तथा चिंता से मुक्त होता है। वह दुःख से परिमुक्त होता है – ऐसा मैं कहता हूं।"

७. कृष्णसुत्त

७. "भिक्षुओ, दो कृष्ण-धर्म हैं?

"कौन-से दो?

"निर्लज्ज होना तथा (दुष्कर्म करने में) पापभीरु न होना। भिक्षुओ, ये दो कृष्ण-धर्म हैं।"

८. शुक्लसुत्त

८. "भिक्षुओ, दो शुक्ल-धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"लज्जावान होना तथा (दुष्कर्म करने में) पापभीरु होना। भिक्षुओ, ये दो शुक्ल-धर्म हैं।"

९. चर्या (आचरण) सुत्त

९. "भिक्षुओ, ये दो शुक्ल-धर्म लोक का पालन करते हैं।

"कौन-से दो?

"लज्जा तथा पापभीरुता। भिक्षुओ, यदि ये दो शुक्ल-धर्म लोक का पालन न करें तो न माता दिखाई दे, न मौसी दिखाई दे, न मामी दिखाई दे, न गुरु-पत्नी दिखाई दे अथवा न अपने से बड़े किसी की भार्या दिखाई दे; लोक में स्वच्छंद आचार हो जाय, जैसे भेड़, बकरी, मुर्गी, सूअर, कुत्ते तथा गीदड़ के होते हैं। क्योंकि भिक्षुओ, ये दो शुक्ल-धर्म लोक का पालन करते हैं, इसी से माता भी दिखाई देती है, मौसी भी दिखाई देती है, मामी भी दिखाई देती है, गुरु-पत्नी भी दिखाई देती है और अपने से बड़े किसी की भार्या भी दिखाई देती है।"

१०. वर्षोपनायिकासुत्त

१०. "भिक्षुओ, दो वर्षा-वास हैं?

"कौन-से दो?

"पहला और पिछला। भिक्षुओ, ये दो वर्षा-वास हैं।"

* * * * *

२. प्रबंध कौशल वर्ग

११. "भिक्षुओ, ये दो बल हैं।

"कौन-से दो?

"प्रत्यवेक्षण-बल तथा अभ्यास-बल (भावना-बल)।

"भिक्षुओ, प्रत्यवेक्षण-बल (प्रतिसंख्यानबल) क्या है?

"भिक्षुओ, एक (व्यक्ति) यह प्रत्यवेक्षण करता है कि कायिक-दुश्चरित का इस लोक तथा परलोक में बुरा परिणाम होता है, वाचिक-दुश्चरित का इस लोक तथा परलोक में बुरा परिणाम होता है, मानसिक-दुश्चरित का इस लोक तथा परलोक में बुरा परिणाम होता है।

"वह ऐसा प्रत्यवेक्षण कर, कायिक दुष्कर्मों को छोड़ कर, कायिक शुभ-कर्मों का अभ्यास करता है,... मानसिक दुष्कर्मों को छोड़ कर, मानसिक शुभ-कर्मों का अभ्यास करता है, वह पवित्र जीवन व्यतीत करता है। भिक्षुओ, यह प्रत्यवेक्षण-बल कहलाता है।

"भिक्षुओ, अभ्यास-बल (भावना-बल) क्या है?

"भिक्षुओ, यह जो अभ्यास-बल है यह साधकों (शैक्ष्यों) का बल है। साधक (शैक्ष्य) इसी बल से राग को छोड़ देता है, द्वेष को छोड़ देता है, मोह को छोड़ देता है। राग, द्वेष तथा मोह को छोड़कर जो अकुशल-कर्म हैं, उन्हें नहीं करता है, जो पाप-कर्म हैं उनसे दूर रहता है।

"भिक्षुओ, यह अभ्यास-बल कहलाता है। भिक्षुओ, ये दो बल हैं।"

१२. "भिक्षुओ, ये दो बल हैं।

"कौन-से दो?

"प्रत्यवेक्षण-बल तथा अभ्यास-बल।

"भिक्षुओ, प्रत्यवेक्षण-बल कौन-सा है? भिक्षुओ, एक व्यक्ति यह प्रत्यवेक्षण करता है... (पूर्वानुसार)। भिक्षुओ, यह कहलाता है प्रत्यवेक्षण-बल।"

"भिक्षुओ, अभ्यास-बल कौन-सा है?

"भिक्षुओ, भिक्षु स्मृति-संबोधि-अंग का अभ्यास करता है जो कि प्रविवेकाश्रित (निर्लिप्त) है, वैराग्य-आश्रित है, निरोधाश्रित है और जो उत्सर्गपरिणामी (संपूर्ण त्याग में अंत होने वाला) है।

"धर्मविचय-संबोधि-अंग का अभ्यास करता है, जो कि ...।

"वीर्य-संबोधि-अंग का अभ्यास करता है, जो कि...।

"प्रीति-संबोधि-अंग का अभ्यास करता है, जो कि...।

"प्रश्रब्धि-संबोधि-अंग का अभ्यास करता है, जो कि...।

"समाधि-संबोधि-अंग का अभ्यास करता है, जो कि...।

"उपेक्षा-संबोधि-अंग का अभ्यास करता है, जो कि...।

"भिक्षुओ, इसे अभ्यास-बल कहते हैं। भिक्षुओ, ये दो बल हैं।

१३. "भिक्षुओ, ये दो बल हैं।

"कौन-से दो?

"प्रत्यवेक्षण-बल तथा अभ्यास-बल।

"भिक्षुओ, प्रत्यवेक्षण-बल कौन-सा है?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति... यह प्रत्यवेक्षण-बल कहलाता है... (पूर्वानुसार)

"भिक्षुओ, अभ्यास-बल कौन-सा है?

"भिक्षुओ, यहां एक भिक्षु कामभोगों से अलग, पृथक हो, अकुशल-धर्मों से पृथक हो, सवितर्क, सविचार, विवेक (एकांत) जन्य, प्रीति सुख-युक्त प्रथम-ध्यानलाभी हो विहार[1] करता है; वितर्क-विचारों के उपशमन होने के अनंतर, आंतरिक प्रसाद-युक्त, चित्त की एकाग्रता-युक्त, वितर्क-विचार-रहित, समाधिजन्य प्रीतिसुख-युक्त द्वितीय-ध्यान का लाभी हो विहार करता है; प्रीति से भी वैराग्य-युक्त हो, उपेक्षावान बन विहार करता है, स्मृतिमान हो, संप्रज्ञानी हो, काया से सुखद संवेदनाओं का अनुभव करता है, जिसके बारे में आर्य-जन कहते हैं –'उपेक्षावान है, स्मृतिमान है, सुखपूर्वक विहार करने वाला है', ऐसा तृतीय-ध्यान प्राप्त कर विहार करता है; सुख और दुःख दोनों का प्रहाण कर पूर्वस्थित सौमनस्य-दौर्मनस्य के अस्तगमन होने से, अदुःख-असुख रूप उपेक्षा-स्मृति से परिशुद्ध चतुर्थ-ध्यान लाभी हो विहार करता है। भिक्षुओ, यह कहलाता है अभ्यास-बल। भिक्षुओ, ये दो बल हैं।"

१४. "भिक्षुओ, तथागत की धर्म-देशना दो प्रकार की होती है। कौन-से दो प्रकार की? संक्षिप्त तथा विस्तृत। भिक्षुओ, ये दो प्रकार की तथागत की धर्म-देशना है।"

१५. "भिक्षुओ, जिस किसी अधिकरण (झगड़े) में प्रतिवादी-भिक्षु तथा वादी-भिक्षु स्वयं अपने बारे में सम्यक रूप से प्रत्यवेक्षण नहीं करते, भिक्षुओ, उस अधिकरण में इसी बात की आशा करनी चाहिए कि उनका कलह दीर्घकाल तक जारी रहेगा, वे परस्पर कठोर बोलते रहेंगे, हिंस्र बने रहेंगे तथा भिक्षु सुखपूर्वक न रह सकेंगे।

"भिक्षुओ, जिस किसी अधिकरण में प्रतिवादी-भिक्षु तथा वादी-भिक्षु स्वयं अपने बारे में सम्यक प्रत्यवेक्षण करते हैं, भिक्षुओ, उस अधिकरण में इस बात की आशा रखनी चाहिए कि न उनका कलह दीर्घकाल तक जारी रहेगा, न

१ ध्यान में समय विताना।

वे परस्पर कठोर बोलते रहेंगे और न हिंस्र बने रहेंगे तथा भिक्षु सुखपूर्वक रह सकेंगे।

"भिक्षुओ, प्रतिवादी-भिक्षु अपने बारे में किस प्रकार सम्यक प्रत्यवेक्षण करता है?

"भिक्षुओ, प्रतिवादी-भिक्षु अपने बारे में इस प्रकार सम्यक प्रत्यवेक्षण करता है – मैंने शरीर से कुछ दोष किया। उस भिक्षु ने देख लिया कि मैंने शरीर से कुछ दोष किया। यदि मैंने शरीर से कोई दोष न किया होता तो वह भिक्षु न देखता कि मैंने शरीर से कोई दोष किया है। क्योंकि मैंने शरीर से दोष किया, इसीलिए उस भिक्षु ने देखा कि मैंने शरीर से दोष किया। यह देखकर कि मैंने शरीर से दोष किया वह भिक्षु असंतुष्ट हुआ, असंतुष्ट होकर उस भिक्षु ने मुझे असंतुष्ट करने वाले वचन कहे। उस भिक्षु से असंतोषपूर्ण वचन सुनकर मैं असंतुष्ट हुआ। असंतुष्ट होकर मैंने दूसरों से कहना-सुनना किया। इसमें मेरा ही दोष है, मेरा ही अपराध है जैसे माल पर बिना चुंगी (कस्टम-ड्यूटी) दिये उसे ले जाने वाला अपराधी हो।

"भिक्षुओ, वादी-भिक्षु अपने बारे में किस प्रकार सम्यक प्रत्यवेक्षण करता है?

"भिक्षुओ, वादी-भिक्षु अपने बारे में इस प्रकार सम्यक विचार करता है – इस भिक्षु ने शरीर से कुछ दुष्कर्म किया। मैंने देखा कि इस भिक्षु ने शरीर से कुछ दुष्कर्म किया। यदि यह भिक्षु शरीर से कुछ दुष्कर्म न करता तो मैं यह न देखता कि इस भिक्षु ने शरीर से कुछ दुष्कर्म किया है। क्योंकि इस भिक्षु ने शरीर से कुछ दुष्कर्म किया है, तभी मैंने देखा कि इस भिक्षु ने शरीर से कुछ दुष्कर्म किया है। यह देखकर कि इस भिक्षु ने शरीर से कुछ दुष्कर्म किया है, मैं असंतुष्ट हुआ। असंतुष्ट होकर मैंने इस भिक्षु को असंतुष्ट करने वाली बात कही। मेरी असंतुष्ट करने वाली बात सुनकर यह भिक्षु असंतुष्ट हुआ। असंतुष्ट होकर इसने दूसरों से कहना-सुनना किया। इसमें मेरा ही दोष है, मेरा ही अपराध है, जैसे कोई माल पर बिना चुंगी दिये उसे ले जाने वाला अपराधी हो।

"भिक्षुओ, वादी-भिक्षु अपने बारे में इस प्रकार सम्यक प्रत्यवेक्षण करता है।

"भिक्षुओ, जिस किसी अधिकरण में प्रतिवादी-भिक्षु तथा वादी-भिक्षु स्वयं अपने बारे में सम्यक प्रत्यवेक्षण नहीं करते, भिक्षुओ, उस अधिकरण में इस बात की आशा रखनी चाहिए कि उनका कलह दीर्घकाल तक जारी रहेगा,

वे परस्पर कठोर बोलते रहेंगे और हिंस्र बने रहेंगे तथा भिक्षु सुखपूर्वक न रह सकेंगे।

"भिक्षुओ, जिस किसी अधिकरण में प्रतिवादी-भिक्षु तथा वादी-भिक्षु स्वयं अपने बारे में सम्यक प्रत्यवेक्षण करते हैं, भिक्षुओ, उस अधिकरण में इस बात की आशा रखनी चाहिए कि न उनका कलह दीर्घकाल तक जारी रहेगा, न वे परस्पर कठोर बोलते रहेंगे और न हिंस्र बने रहेंगे तथा भिक्षु सुखपूर्वक रह सकेंगे।"

१६. अब एक ब्राह्मण भगवान के पास गया। जाकर भगवान के साथ बातचीत की और कुशलक्षेम पूछा। कुशलक्षेम पूछ चुकने के बाद वह ब्राह्मण एक ओर जाकर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस ब्राह्मण ने भगवान को कहा – "भो गौतम! इसका क्या कारण है, क्या हेतु है, जिससे कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्त कर नरक में उत्पन्न होते हैं?"

"ब्राह्मण! इसका कारण, इसका हेतु अधर्माचरण है, विषम आचरण है, जिससे कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्त कर नरक में उत्पन्न होते हैं।"

"भो गौतम! इसका क्या कारण है, क्या हेतु है जिससे कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त कर स्वर्गलोक में उत्पन्न होते हैं?"

"ब्राह्मण! इसका कारण, इसका हेतु धर्माचरण है, समाचरण है जिससे कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त कर स्वर्गलोक में उत्पन्न होते हैं।"

"सुंदर, गौतम! बहुत सुंदर, गौतम! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। मैं आप गौतम, धर्म तथा संघ की शरण जाता हूं। गौतम! आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

१७. अब जाणुस्सोणि ब्राह्मण भगवान के पास गया और भगवान के साथ बातचीत की...एक ओर बैठे हुए जाणुस्सोणि ब्राह्मण ने भगवान से कहा –"भो गौतम! इसका क्या कारण है, क्या हेतु है जिससे कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्त कर नरक में उत्पन्न होते हैं?"

"ब्राह्मण! करने (अकुशल कर्म करने) तथा न करने (कुशल कर्म न करने) के कारण यहां कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्त कर, नरक में उत्पन्न होते हैं।"

"भो गौतम! इसका क्या कारण है, क्या हेतु है जिससे कुछ प्राणी शरीर छूटने पर सुगति को प्राप्त कर, स्वर्गलोकमें उत्पन्न होते हैं?"

"ब्राह्मण! करने तथा न करने के कारण यहां कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त कर, स्वर्गलोक्में उत्पन्न होते हैं।"

"मैं आप गौतम के इस संक्षेप से कथित तथा विस्तार से अकथित भाषण का विस्तार से अर्थ नहीं जानता। अच्छा हो यदि आप गौतम मुझे इस प्रकार धर्मोपदेश करें जिससे मैं आप गौतम के संक्षिप्त से कथित तथा विस्तार से अकथित भाषण का विस्तार से अर्थ जान लूं।"

"तो ब्राह्मण सुन! अच्छी तरह मन में धारण कर, मैं कहता हूं।"

'बहुत अच्छा' कहकर जाणुस्सोणि ब्राह्मण ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया। भगवान ने यह कहा –

"ब्राह्मण! यहां एक व्यक्ति ने कायिक दुष्कर्म किया होता है, शुभकर्म नहीं किया होता; वाचिक दुष्कर्म किया होता है, शुभ-कर्म नहीं किया होता; मानसिक दुष्कर्म किया होता है, शुभ-कर्म नहीं किया होता। इस प्रकार ब्राह्मण! करने तथा न करने से यहां कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्त कर नरकमें उत्पन्न होते हैं।

"ब्राह्मण! यहां एक व्यक्ति ने कायिक शुभ-कर्म किया होता है, दुष्कर्म नहीं किया होता; वाचिक शुभ-कर्म किया होता है, दुष्कर्म नहीं किया होता; मानसिक शुभ-कर्म किया होता है, दुष्कर्म नहीं किया होता। इस प्रकार ब्राह्मण! करने तथा न करने से यहां कुछ प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त कर स्वर्गलोक में उत्पन्न होते हैं।"

"सुंदर, गौतम! बहुत सुंदर,... गौतम! आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

१८. अब आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठे: एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द को भगवान ने यह कहा –"आनन्द! मैं शारीरिक दुष्कर्म, वाचिक दुष्कर्म तथा मानसिक दुष्कर्म को संपूर्ण रूप से अकरणीय कहता हूं।"

"भंते! भगवान ने जो यह कायिक दुष्कर्म, वाचिक दुष्कर्म तथा मानसिक दुष्कर्म को संपूर्ण रूप से अकरणीय कहा है, उस अकरणीय के करने पर किस दुष्परिणाम की आशा करनी चाहिए?"

"आनन्द! यह जो मैंने संपूर्ण रूप से अकरणीय कहा है... उस अकरणीय के करने पर इस दुष्परिणाम की आशा की जानी चाहिए –अपने-आप अपनी

निंदा करता है (खुद की नजरों में गिर जाता है)। विज्ञ लोग मालूम होने पर निंदा करते हैं; अपयश होता है; मूढ़ावस्था में मृत्यु को प्राप्त होता है; शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति को प्राप्त कर नरक में उत्पन्न होता है। आनन्द! मैंने जो यह कायिक दुष्कर्म, वाचिक दुष्कर्म तथा मानसिक दुष्कर्म को संपूर्ण रूप से अकरणीय कहा है, उस अकरणीय के करने पर, इस दुष्परिणाम की आशा करनी चाहिए।"

"आनन्द! मैं कायिक शुभकर्म, वाचिक शुभकर्म और मानसिक शुभकर्म संपूर्ण रूप से करणीय कहता हूं।"

"भंते! भगवान ने जो यह कायिक शुभकर्म, वाचिक शुभकर्म तथा मानसिक शुभकर्म को संपूर्ण रूप से करणीय कहा है, उस करणीय के करने पर किस सुपरिणाम (लाभ) की आशा करनी चाहिए?"

"आनन्द! यह जो मैंने संपूर्ण रूप से करणीय कहा है... उस करणीय के करने पर इस सुपरिणाम की आशा की जानी चाहिए – अपने-आप अपनी निंदा नहीं करता है (खुद की नजरों में नहीं गिरता); विज्ञ लोग मालूम होने पर प्रशंसा करते हैं; कल्याणमयी कीर्ति फैलती है; जागरूक होकर मृत्यु को प्राप्त होता है; शरीर छूटने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त कर, स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होता है। आनन्द! यह जो मैंने संपूर्ण रूप से करणीय कहा है, उस करणीय के करने पर इस सुपरिणाम की आशा की जानी चाहिए।"

१९. "भिक्षुओ, अकुशल को छोड़ो। भिक्षुओ, अकुशल छोड़ा जा सकता है। यदि भिक्षुओ, यह न हो सकता कि अकुशल छोड़ा जा सकता, तो मैं ऐसा न कहता कि 'भिक्षुओ, अकुशल छोड़ो।' लेकिन भिक्षुओ, क्योंकि अकुशल छोड़ा जा सकता है, इसलिए मैं ऐसा कहता हूं'भिक्षुओ, अकुशल छोड़ो।'

"भिक्षुओ, यदि अकुशल का प्रहाण होने से अहित और दुःख होता, तो मैं ऐसा नहीं कहता 'भिक्षुओ, अकुशल छोड़ो।' लेकिन क्योंकि भिक्षुओ, अकुशल का प्रहाण हित तथा सुख का कारण होता है, इसलिए मैं ऐसा कहता हूं, 'भिक्षुओ, अकुशल छोड़ो।'

"भिक्षुओ, कुशल की भावना करो। भिक्षुओ, कुशल की भावना की जा सकती है। भिक्षुओ, यदि कुशल की भावना नहीं हो सकती, तो मैं ऐसा न कहता कि 'भिक्षुओ, कुशल की भावना करो।' लेकिन क्योंकि भिक्षुओ, कुशल की भावना हो सकती है, इसलिए मैं ऐसा कहता हूं कि 'भिक्षुओ, कुशल की भावना करो।'

"भिक्षुओ, यदि कुशल की भावना करने से अहित और दुःख होता, तो मैं ऐसा नहीं कहता, 'भिक्षुओ, कुशल की भावना करो।' लेकिन क्योंकि भिक्षुओ, कुशल की भावना हित और सुख का कारण लिए होती है, इसलिए मैं यह कहता हूं कि 'भिक्षुओ, कुशल की भावना करो।'

२०. "भिक्षुओ, दो बातें सद्धर्म को भुला देने का (उसके लोप का), उसके अंतर्धान का कारण होती हैं। कौन-सी दो?

"पदों को गलत ढंग से रखना (अव्यवस्थित पद) तथा उनके अर्थ का अनर्थ करना (अनर्गल अर्थ)।

"भिक्षुओ, पदों को गलत रखने से उनके अर्थ का भी अनर्थ होता है। भिक्षुओ, ये दो बातें सद्धर्म के लोप का, उसके अंतर्धान का कारण होती हैं।"

२१. "भिक्षुओ, दो बातें सद्धर्म के स्थित होने का, उसके लोप न होने का, उसके अंतर्धान न होने का कारण होती हैं। कौन-सी दो?

"पदों को ठीक-ठीक रखना (सुव्यवस्थित पद) तथा उनका सही-सही अर्थ।

"भिक्षुओ, पदों को ठीक-ठीक रखने से उनका अर्थ भी सही-सही रहता है।

"भिक्षुओ, ये दो बातें सद्धर्म के स्थित रहने का, उसके लोप न होने का, उसके अंतर्धान न होने का कारण होती हैं।"

* * * * *

३. मूर्ख वर्ग

२२. "भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।

"कौन-से दो?

"एक जो अपने दोष को दोष नहीं मानता, दूसरा जो अपने दोष को दोष मानने वाले को क्षमा नहीं करता।

"भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।

"भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।

"कौन-से दो?

"एक जो अपने दोष को दोष मानता है, दूसरा जो अपने दोष को दोष मानने वाले को क्षमा करता है। भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।"

२३. "भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप (गलत दोषारोपण) करते हैं।

"कौन-से दो?

"दुष्ट मन वाला द्वेषी तथा मिथ्यादृष्टि वाला श्रद्धावान। भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप करते हैं।"

२४. "भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप करते हैं।

"कौन-से दो?

"जो तथागत द्वारा अभाषित तथा अकथित है उसे तथागत द्वारा भाषित तथा कथित बताता है, और जो तथागत द्वारा भाषित तथा कथित है उसे तथागत द्वारा अभाषित तथा अकथित बताता है। भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप करते हैं।

"भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप नहीं करते।

"कौन-से दो?

"जो तथागत द्वारा अभाषित अकथित है उसे तथागत द्वारा अभाषित अकथित कहता है; जो तथागत द्वारा भाषित कथित है उसे तथागत द्वारा भाषित, कथित कहता है।

"भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप नहीं करते।"

२५. "भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप करते हैं। कौन-से दो? जो नेयार्थ-सूत्र[१] (व्यवहार-भाषा) को नीतार्थ-सूत्र (परमार्थ-भाषा) करके प्रकट करता है, और जो नीतार्थ-सूत्र को नेयार्थ-सूत्र करके प्रकट करता है। भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप करते हैं।"

---

१ यहां पालि में दो शब्द आये है -- **'नेय्यत्थं और नीतत्थं'** जिनका अर्थ क्रमशः नेयार्थ और नीतार्थ होता है । व्यवहार की जानेवाली भाषा को नेयार्थ और परमार्थ प्रकट करने वाली भाषा को नीतार्थ कहते हैं। भगवान जब कहते हैं कि 'भिक्षुओ, एक प्रकार का पुद्गल है, दो प्रकार के पुद्गल हैं' आदि तो नेयार्थ हुआ। इससे यह समझना चाहिए कि परमार्थतः पुद्गल नहीं है – यह नीतार्थ हुआ। यदि कोई मूर्खतावश यह कहने लगे कि यदि परमार्थतः पुद्गल नहीं होता तो भगवान 'एक प्रकार का पुद्गल है, दो प्रकार के पुद्गल हैं' आदि नहीं कहते। अतः वह नेयार्थ को नीतार्थ के रूप में ग्रहण करता है। नीतार्थ है कि सभी संस्कार अनित्य, दुःख और अनात्म हैं। यदि कोई मूर्खतावश कहे कि यह कथन नेयार्थ है जिसका अर्थ है 'नित्य, सुख और आत्मा है' तो वह नीतार्थ को नेयार्थ के रूप में ग्रहण करेगा। **'रूपं भिक्खवे, न तुम्हाकं, तं पजहथ'** (भिक्षुओ, रूप तुम्हारा नहीं है, उसका त्याग करो) – इस वाक्य से यदि कोई यह अर्थ लगाये कि रूप है तभी न ऐसा कहा गया है, तो वह भूल करेगा। इसका नेयार्थ न लेकर नीतार्थ लेना चाहिए। नीतार्थ यह है कि रूप में जो छन्दराग है, आसक्ति है उसका त्याग करने के लिए कहा गया है।

२६. "भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप नहीं करते।

"कौन-से दो?

"जो नेयार्थ-सूत्र को नेयार्थ-सूत्र करके प्रकट करता है और जो नीतार्थ-सूत्र को नीतार्थ करके प्रकट करता है।

"भिक्षुओ, ये दो तथागत पर मिथ्यारोप नहीं करते।"

२७. "भिक्षुओ, ढँके हुए कर्म (प्रच्छन्न-कर्म, पाप-कर्म) करने वाले के लिए दो गतियों में से एक गति की आशा करनी चाहिए –नरक या पशु-योनि।

"भिक्षुओ, खुले कर्म (पुण्य-कर्म) करनेवाले के लिए दो गतियों में से एक गति की आशा करनी चाहिए – देव या मनुष्य।"

२८. "भिक्षुओ, मिथ्या-दृष्टि व्यक्ति के लिए दो गतियों में से एक गति की आशा करनी चाहिए – नरक्या पशु-योनि।"

२९. "भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि व्यक्ति के लिए दो गतियों में से एक गति की आशा करनी चाहिए – देव या मनुष्य।"

३०. "भिक्षुओ, दुःशील की दो जगह राह देखी जाती है –नरक में या पशु-योनि में।"

"भिक्षुओ, शीलवान की दो जगह राह देखी जाती है –देव या मनुष्य में।"

३१. "भिक्षुओ, मैं दो परिणामों को भली-भांति देखकर ही जंगल में, वन में एकांत-निवास का सेवन करता हूं।

"कौन-से दो?

"निजी इहलौकिक सुख-विहार के लिए तथा बाद में आने वाले लोगों पर अनुकंपा करने के लिए। भिक्षुओ, मैं इन दो परिणामों को भली-भांति देखकर ही जंगल में, वन में एकांत-निवास का सेवन करता हूं।"

३२. "भिक्षुओ, दो धर्म विद्यापक्षीय हैं।

"कौन-से दो?

"शमथ तथा विपश्यना।

"भिक्षुओ, शमथ की भावना करने से क्या लाभ होता है? चित्त भावित होता है। चित्त के भावित होने से क्या लाभ होता है? समस्त राग का प्रहाण होता है।

"भिक्षुओ, विपश्यना के अभ्यास से क्या लाभ होता है? प्रज्ञा भावित होती है। प्रज्ञा भावित होने से क्या लाभ होता है? समस्त अविद्या का प्रहाण

होता है। भिक्षुओ, राग से दूषित चित्त मुक्त नहीं होता और अविद्या से दूषित प्रज्ञा भावित नहीं होती। भिक्षुओ, यह रागरहित होना चित्त-विमुक्ति[1] है तथा अविद्यारहित होना प्रज्ञा-विमुक्ति है।"

* * * * *

४. समचित्त वर्ग

३३. "भिक्षुओ, मैं असत्पुरुष-भूमि तथा सत्पुरुष-भूमि की देशना करता हूं। उसे सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो, कहता हूं।"

"भंते! अच्छा" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, असत्पुरुष-भूमि कौन-सी है?

"भिक्षुओ, असत्पुरुष अकृतज्ञ होता है, कृत-उपकार को न जानने वाला। भिक्षुओ, इस अकृतज्ञता की, इस अकृतवेदिता (उपकार को भूलने) की असभ्यों (असत्पुरुषों) ने ही प्रशंसा की है। भिक्षुओ, यह जो अकृतज्ञता है, यह जो अकृतवेदिता है, यह संपूर्णतः असत्पुरुष-भूमि है।

"भिक्षुओ, सत्पुरुष कृतज्ञ होता है, कृत-उपकार को जानने वाला। भिक्षुओ, इस कृतज्ञता की, इस कृतवेदिता की सभ्यों (सत्पुरुषों) ने ही प्रशंसा की है। भिक्षुओ, यह जो कृतज्ञता है यह जो कृतवेदिता है, यह संपूर्णतः सत्पुरुष-भूमि है।"

३४. "भिक्षुओ, दो का प्रत्युपकार नहीं किया जा सकता।

"किन दो का?

"माता का तथा पिता का। भिक्षुओ, सौ वर्ष तक एक कंधे पर माता को ढोये तथा एक कंधे पर पिता को ढोये, और वह उनकी उबटन मलने, मर्दन करने, नहलाने तथा हाथ-पैर दबाने आदि से सेवा करे, और वे भी उसके कंधे पर ही मल-मूत्र कर दें, तो भी भिक्षुओ, यह माता-पिता के किये का प्रत्युपकार नहीं होता। भिक्षुओ, यदि इस रत्न-बहुल पृथ्वी का ऐश्वर्य-राज्य भी माता-पिता

१ पालि में **'चेतोविमुत्ति, पञ्ञाविमुत्ति'** – दो प्रकार की विमुक्तियां कही गयी हैं जिनका अर्थ चित्त-विमुक्ति और प्रज्ञा-विमुक्ति है। **'चेतोविमुक्ति'** से राग का प्रहाण होता है और **'पञ्ञाविमुक्ति'** से अविद्या का। शमथ की भावना करने से चित्त भावित होता है। फलतः सभी रागों का प्रहाण होता है। विपश्यना की भावना करने से प्रज्ञा भावित होती है। फलतः अविद्या का प्रहाण होता है। रागरहित होना चित्त-विमुक्ति है – **रागविरागा चेतोविमुत्ति** और अविद्यारहित होना प्रज्ञाविमुक्ति है – **अविज्जाविरागा पञ्ञाविमुत्ति**।

को सौंप दिया जाय तब भी यह माता-पिता के किये का प्रत्युपकार नहीं होता। यह किसलिए? भिक्षुओ, माता-पिता का पुत्रों पर बहुत उपकार है। वे उनकी देखभाल करते हैं, पोषण करते हैं, वे उन्हें यह लोक दिखाते हैं। अर्थात, वे उन्हें इस लोक से परिचित कराते हैं।

"भिक्षुओ, जो कोई अश्रद्धावान माता-पिता को श्रद्धासंपदा में प्रेरित करता है, स्थापित करता है, प्रतिष्ठापित करता है, दुःशील माता-पिता को शीलसंपदा में प्रेरित करता है, स्थापित करता है, प्रतिष्ठापित करता है, कृपण माता-पिता को त्यागसंपदा में प्रेरित करता है, स्थापित करता है, प्रतिष्ठापित करता है, दुष्प्रज्ञ माता-पिता को प्रज्ञा-संपदा में प्रेरित करता है, स्थापित करता है, प्रतिष्ठापित करता है – तब कहीं माता-पिता के किये का प्रत्युपकार होता है।"

३५. अब एक ब्राह्मण भगवान के पास गया, जाकर भगवान के साथ बातचीत की... एक ओर बैठे हुए उस ब्राह्मणने भगवान से यह कहा –

"आप गौतम का क्या वाद, क्या मत है?"

"ब्राह्मण! मैं क्रियावादी हूं तथा अक्रियावादी हूं।"

"आप गौतम! क्रियावादी तथा अक्रियावादी किस प्रकार हैं?"

"मैं, ब्राह्मण! न करने की बात करता हूं – कायिक दुराचरणों, वाचिक दुराचरणों, मानसिक दुराचरणों, अनेक प्रकार के अकुशल-धर्मों के न करने की बात करता हूं। मैं, ब्राह्मण! करने की बात करता हूं – कायिक सदाचरणों, वाचिक सदाचरणों, मानसिक सदाचरणों, अनेक प्रकार के कुशल-धर्मों के करने की बात करता हूं। ब्राह्मण! इस प्रकार मैं क्रियावादी तथा अक्रियावादी हूं।"

"सुंदर, गौतम! बहुत सुंदर,... जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

३६. अब अनाथपिण्डिक गृहपति भगवान के पास गया, जाकर भगवान को प्रणाम कर...एक ओर बैठे हुए अनाथपिण्डिक गृहपति ने भगवान से यह कहा –

"भंते! लोक में दाक्षिणेय्य (दक्षिणार्ह) कितने हैं? दान कहां देना चाहिए?"

"गृहपति! लोक में दो दक्षिणार्ह हैं, शैक्ष तथा अशैक्ष। गृहपति! ये दो दक्षिणार्ह हैं। इन्हें दान दिया जाना चाहिए।"

भगवान ने यह कहा और यह कहकर तदनंतर शास्ता ने यह कहा –

"सेखो असेखो च इमस्मिं लोके, आहुनेय्या यजमानानं होन्ति।
ते उज्जुभूता कायेन, वाचाय उद चेतसा।
खेत्तं तं यजमानानं, एत्थ दिन्नं महप्फल"न्ति॥

[यजमानों के लिए संसार में शैक्ष तथा अशैक्ष दो दक्षिणार्ह हैं। वे शरीर, वाणी तथा मन से ऋजु होते हैं। ये यजमानों के (पुण्य-) क्षेत्र हैं। इन्हें देने का महान फल होता है।]

३७. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान सारिपुत्त श्रावस्ती में मिगार-माता के पूर्वाराम प्रासाद में रहते थे। तब आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित किया – "आयुष्मान भिक्षुओ!" उन भिक्षुओं ने आयुष्मान सारिपुत्त को प्रत्युत्तर दिया – "आयुष्मान।"

आयुष्मान सारिपुत्त ने यह कहा –

"आयुष्मानो! मैं आंतरिक-संयोजन वाले व्यक्ति के बारे में कहूंगा, बाह्य-संयोजन वाले व्यक्ति के बारे में कहूंगा, इसे सुनो, मन में ठीक से धारण करो। कहता हूं।

"आयुष्मान! बहुत अच्छा" कह उन भिक्षुओं ने आयुष्मान सारिपुत्त को प्रत्युत्तर दिया। आयुष्मान सारिपुत्त ने यह कहा –

"आयुष्मानो! आंतरिक-संयोजन वाला व्यक्ति कौन होता है?

"आयुष्मानो! एक भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन करने वाला, आचार-गोचर (आचरण) से युक्त, अणुमात्र दोष से भी भयभीत होने वाला तथा शिक्षा-पदों को ग्रहणकर उनका सम्यक पालन करने वाला।

"वह शरीर के छूटने पर, मरने के बाद किसी देव-योनि में जन्म ग्रहण करता है। वह वहां से च्युत होकर आगामी होता है, फिर इस लोक में आने वाला।

"आयुष्मानो! ऐसा व्यक्ति आंतरिक-संयोजन वाला व्यक्ति कहलाता है, आगामी, फिर इस लोक में आने वाला।

"आयुष्मानो! बाह्य-संयोजन वाला व्यक्ति कौन होता है?

"आयुष्मानो! एक भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्ष के नियमों का पालन करने वाला, आचार-गोचर से युक्त, अणुमात्र दोष से भी भयभीत होने वाला तथा शिक्षा-पदों को ग्रहणकर उनका सम्यक्पालन करने वाला।

"वह किसी शांत चित्त-विमुक्ति को प्राप्त कर विहार करता है। वह शरीर के छूटने पर, मरने के बाद किसी देव-योनि में जन्म ग्रहण करता है। वह वहां से च्युत होकर अनागामी होता है, फिर इस लोक में नहीं आने वाला।

"आयुष्मानो! ऐसा व्यक्ति बाह्य-संयोजन वाला व्यक्ति कहलाता है, अनागामी, फिर इस लोक में न आने वाला।

"और भी फिर आयुष्मानो! भिक्षु शीलवान होता है... सम्यक पालन करने वाला।

"वह कामनाओं से ही निर्वेद प्राप्त करने के लिए, विराग के लिए, निरोध के लिए मार्गारूढ़[1] होता है। वह भव से ही निर्वेद प्राप्त करने के लिए, विराग के लिए, निरोध के लिए मार्गारूढ़ होता है। वह तृष्णा का क्षय करने के लिए मार्गारूढ़ होता है। वह लोभ का क्षय करने के लिए मार्गारूढ़ होता है। वह शरीर छूटने पर, मरने के बाद किसी देव-योनि में जन्म ग्रहण करता है। वह वहां से च्युत होकर अनागामी होता है, फिर इस लोक में नहीं आने वाला।

"आयुष्मानो! ऐसा व्यक्ति बाह्य-संयोजन वाला व्यक्ति कहलाता है, अनागामी, फिर इस लोक में न आने वाला।"

अब बहुत से सम-चित्त (शांतचित्त) वाले देवता भगवान के पास आये। आकर भगवान को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर स्थित उन देवताओं ने भगवान से यह कहा –

"भंते! मिगार-माता के पूर्वाराम प्रासाद में आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को आंतरिक-संयोजन वाले तथा बाह्य-संयोजन वाले व्यक्ति के बारे में देशना की है। परिषद प्रसन्न है। अच्छा हो यदि भंते! भगवान अनुकंपा कर सारिपुत्त के पास चलें।" भगवान ने मौन रहकर स्वीकार किया।

तब भगवान जैसे कोई बलवान पुरुष समेटी हुई बांह को पसारे अथवा पसारी हुई बांह को समेटे, उसी प्रकार जेतवन से अंतर्धान होकर मिगार-माता के पूर्वाराम प्रासाद में आयुष्मान सारिपुत्त के सामने प्रकट हुए। भगवान बिछे आसन पर विराजमान हुए। आयुष्मान सारिपुत्त भी भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान सारिपुत्त को भगवान ने यह कहा –

---

१ पालि के **'पटिपन्नो होति'** का अनुवाद 'प्रतिपन्न होता है' किया गया है। यह सही है कि 'प्रतिपन्न' शब्द हिंदी कोश में 'मार्गारूढ़ होने' के अर्थ में नहीं मिलता, पर एडगर्टन ने 'बुद्धिष्ट हायब्रिड संस्कृत कोश' में दिखाया है कि 'प्रतिपन्न' मार्गारूढ़ होने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अतः इसे रखा जा सकता है। हिंदी को एक नया शब्द मिलेगा।

"सारिपुत्त! यहां बहुत से सम-चित्त वाले देवता मेरे पास आये। आकर मुझे प्रणाम कर एक ओर बैठ गये।

"सारिपुत्त! एक ओर स्थित उन देवताओं ने मुझे यह कहा –

"भंते! मिगार-माता के पूर्वाराम प्रासाद में स्थित आयुष्मान सारिपुत्त ने भिक्षुओं को आंतरिक-संयोजन वाले व्यक्ति के बारे में तथा बाह्य-संयोजन वाले व्यक्ति के बारे में उपदेश दिया है। भंते! परिषद प्रसन्न है। भंते! अच्छा हो यदि आप अनुकंपा कर आयुष्मान सारिपुत्त के पास चलें। सारिपुत्त! वे देवता दस हों, बीस हों, तीस हों, चालीस हों, पचास हों, साठ हों वे सब सूई की नोक (गिरने) के स्थान पर खड़े हो जाते हैं और परस्पर एक दूसरे को बाधा नहीं पहुँचाते (रगड़ नहीं खाते)।

"हो सकता है सारिपुत्त! तेरे मन में ऐसा हो कि उन देवताओं ने वहां इस प्रकार चित्त का अभ्यास किया है कि वे देवता चाहे दस हों, चाहे बीस हों, चाहे तीस हों, चाहे चालीस हों... सूई की नोक के स्थान पर रह सकते हैं और परस्पर एक दूसरे को बाधा नहीं पहुँचाते। नहीं सारिपुत्त! ऐसा नहीं समझना चाहिए – यहीं[१] (शील, समाधि, प्रज्ञा के क्षेत्र में और मनुष्य लोक में) उन देवताओं ने ऐसा चित्त-अभ्यास किया है कि वे चाहे दस हों... बाधा नहीं पहुँचाते।

"इसलिए सारिपुत्त! यह सीखना चाहिए कि हम शांत इंद्रिय वाले, शांत मानस वाले होंगे। ऐसा ही सारिपुत्त, सीखना चाहिए। शांत इंद्रिय वालों के, शांत मानस वालों के ही कायिक-कर्म शांत होंगे। वाचिक, मानसिक कर्म शांत होंगे। हम अपने सब्रह्मचारियों को उपहार में शांति ही देंगे। तुम्हें सारिपुत्त! ऐसा ही सीखना चाहिए। जिन दूसरे अन्यतैर्थिक परिव्राजकों ने इस धर्म को नहीं सुना वे विनाश को प्राप्त हुए।"

१ भगवान बुद्ध का धर्म विश्वजनीन नियमों पर आधारित है जैसे आग कभी आग से नहीं बुझती, वैसे ही वैर कभी वैर से शांत नहीं होता। अगर हम किसी पर क्रोध करेंगे तो पहले हम ही क्रोध से जलेंगे। इसलिए जब **'इधेव'** शब्द का प्रयोग होता है तब इसका अर्थ सांप्रदायिक बौद्ध धर्म से नहीं, बल्कि वैसे धर्म से है जो विश्वजनीन है जैसे शील, समाधि और प्रज्ञा। पू. गोयन्काजी के अनुसार शील का पालन करना भला किस धर्म में नहीं सिखाया जाता? इस चपल चंचल चित्त को एकाग्र करना कौन धर्म अच्छा नहीं कहता? और प्रज्ञा को जगाना, विकसित करना, पूर्ण करना तथा इसकी अवाप्ति (प्राप्ति) तो धर्म का एक मात्र उच्चतम लक्ष्य है। जहां-जहां भगवान बुद्ध ने **'इधेव'** शब्द का प्रयोग किया है वहां यह बताने के लिए किया है कि उस शासन में अर्थात शील, समाधि तथा प्रज्ञा से ही मानवता का कल्याण संभव है, किसी तथाकथित सांप्रदायिक धर्म से नहीं।

३८. ऐसा मैंने सुना। एक समय आयुष्मान महाकच्चान भद्दसारि के किनारे पर वरणा में विहार कर रहे थे।

उस समय आरामदण्ड ब्राह्मण आयुष्मान महाकच्चान के पास गया। जाकर आयुष्मान महाकच्चान के साथ बातचीत की और कुशलक्षेम पूछा। कुशलक्षेम पूछ चुकने के बाद वह ब्राह्मणएक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे हुए आरामदण्ड ब्राह्मण ने आयुष्मान महाकच्चान को यह कहा –

"हे कच्चान! इसका क्या हेतु है, इसका क्या कारण है कि क्षत्रिय भी क्षत्रियों के साथ विवाद करते हैं, ब्राह्मण भी ब्राह्मणों के साथ विवाद करते हैं, गृहपति भी गृहपतियों के साथ विवाद करते हैं?"

"कामभोगों के प्रति आसक्ति के कारण, कामभोगों के जाल में फँसे होने के कारण, कामभोगों के कीचड़ में धँसे होने के कारण, कामभोगों के गर्त में गड़े होने के कारण हे ब्राह्मण! क्षत्रिय भी क्षत्रियों से विवाद करते हैं, ब्राह्मण भी ब्राह्मणों से विवाद करते हैं, गृहपति भी गृहपतियों के साथ विवाद करते हैं।"

"हे कच्चान! इसका क्या हेतु है, इसका क्या कारण है कि श्रमण भी श्रमणों के साथ विवाद करते हैं?"

"दृष्टि (=मत-विशेष) के प्रति आसक्ति के कारण, दृष्टि के जाल में फँसे होने के कारण, दृष्टि के कीचड़ में धँसे होने के कारण, दृष्टि के गर्त में गड़े होने के कारण हे ब्राह्मण! श्रमण भी श्रमणों के साथ विवाद करते हैं।"

"हे कच्चान! क्या कोई इस लोक में ऐसा है जो कामभोगों की आसक्ति और बंधन आदि के तथा दृष्टि की आसक्ति और बंधन आदि के उस पार चला गया हो?"

"हे ब्राह्मण! लोक में ऐसा (व्यक्तित्व) है जो कामभोगों की आसक्ति और बंधन आदि तथा दृष्टि की आसक्ति और बंधन आदि के उस पार चला गया है।"

"हे कच्चान! लोक में ऐसा कौन है जो कामभोगों की आसक्ति और बंधन आदि तथा दृष्टि की आसक्ति और बंधन आदि के उस पार चला गया है?"

"हे ब्राह्मण! पूर्व जनपद में श्रावस्ती नाम का नगर है। इस समय वे भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध वहां विहार करते हैं। हे ब्राह्मण! वे भगवान कामभोगों की आसक्ति और बंधन आदि तथा दृष्टि की आसक्ति और बंधन आदि के उस पार चले गये हैं।"

ऐसा कहे जाने पर आरामदण्ड ब्राह्मण ने आसन से उठ, वस्त्र को एक कंधे पर कर, दायें घुटने को पृथ्वी पर टेक, जिस ओर भगवान थे उस ओर हाथ जोड़ तीन बार उदान वाक्य कहा –

"उन भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध को नमस्कार है। उन भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध को नमस्कार है। उन भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध को नमस्कार है। उन भगवान को जो कामभोगों की आसक्ति और बंधन आदि तथा दृष्टि की आसक्ति और बंधन आदि के उस पार चले गये हैं।

"सुंदर, हे कच्चान! बहुत सुंदर, कच्चान! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार आप कच्चान ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। मैं उन भगवान गौतम की शरण, धर्म तथा संघ की शरण जाता हूं। आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

३९. एक समय आयुष्मान महाकच्चान मधुरा (मथुरा) में गुन्दावन में विहार करते थे। तब कन्दरायन ब्राह्मण आयुष्मान महाकच्चान के पास आया। आकर आयुष्मान महाकच्चान के साथ... एक ओर बैठे हुए कन्दरायन ब्राह्मण ने आयुष्मान महाकच्चान को यह कहा –

"हे कच्चान! मैंने सुना है कि श्रमण कच्चान बड़े, बूढ़े, ज्येष्ठ, आयु-प्राप्त ब्राह्मणों का न अभिवादन करता है, न सत्कार करता है, न उन्हें (आदरपूर्वक) आसन देता है। हे कच्चान! यदि यह ऐसा ही है कि आप कच्चान बड़े, बूढ़े, ज्येष्ठ, आयु-प्राप्त ब्राह्मणों का न अभिवादन करते हैं, न सत्कार करते हैं, न उन्हें (आदरपूर्वक) आसन देते हैं तो यह ठीक नहीं है।"

"हे ब्राह्मण! उन जानने वाले, देखने वाले अर्हत सम्यक संबुद्ध ने वृद्ध (ज्येष्ठ) तथा युवा (कनिष्ठ) की व्याख्या की है।

"हे ब्राह्मण! यदि कोई आयु से अस्सी वर्ष का हो, नब्बे वर्ष का हो अथवा सौ वर्ष का हो, किंतु वह कामभोग में रत हो, कामभोग के बीच में रहता हो, कामभोग की जलन से जलता हो, कामभोग के वितर्कों का शिकार बनता हो, कामभोग के लिए इच्छुक रहता हो तो वह थेर न कहलाकर मूर्ख ही कहलायगा।

"हे ब्राह्मण! यदि कोई छोटा भी हो, तरुण हो, काले बालों वाला हो, श्रेष्ठ यौवन से युक्त हो, अपनी प्रथम-आयु में ही हो, किंतु वह कामभोग में रत न हो, कामभोग के बीच में न रहता हो, कामभोग की जलन से न जलता हो,

कामभोग के वितर्कों का शिकार न बनता हो, कामभोग के लिए इच्छुक न रहता हो तो वह पंडित और थेर ही कहलायगा।

ऐसा कहे जाने पर कन्दरायन ने आसन से उठकर, वस्त्र को एक कंधे पर कर, छोटे भिक्षुओं के चरणों में सिर से नमस्कार किया। आप लोग पंडित हैं, सही माने में वृद्ध (स्थविर) हैं। हम लोग युवक (कनिष्ठ) हैं, सही माने में मूर्ख हैं।

"सुंदर, हे कच्चान!... हे कच्चान! आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक समझें।"

४०. "भिक्षुओ, जिस समय चोर बलवान होते हैं, उस समय राजागण दुर्बल हो जाते हैं। उस समय भिक्षुओ, राजाओं के लिए बाहर-भीतर आना-जाना सुकर नहीं रहता तथा प्रत्यंत-जनपद की देखभाल करना भी सुकर नहीं रहता। उसी प्रकार ब्राह्मण-गृहपतियों के लिए भी उस समय बाहर आना-जाना तथा बाहर के कामों का निरीक्षण करना सुकर नहीं रहता।

"उसी प्रकार भिक्षुओ, जिस समय दुराचारी भिक्षु सबल हो जाते हैं, उस समय सदाचारी भिक्षु दुर्बल हो, संघ के बीच मुँह बंद किये बैठे रहते हैं अथवा प्रत्यंत-जनपद की ओर चले जाते हैं; भिक्षुओ, यह बहुत जनों के अहित के लिए होता है, बहुत जनों के असुख के लिए होता है, बहुत जनों के अनर्थ, अहित तथा देव-मनुष्यों के दुःख के लिए होता है।

"भिक्षुओ, जिस समय राजा बलवान होते हैं, चोर दुर्बल होते हैं, उस समय भिक्षुओ, राजाओं के लिए बाहर-भीतर आना-जाना सुकर होता है तथा प्रत्यंत-जनपद की देखभाल करना भी सुकर होता है। उसी प्रकार ब्राह्मण-गृहपतियों के लिए भी उस समय बाहर आना-जाना तथा बाहर के कामों का निरीक्षण करना सुकर रहता है।

"उसी प्रकार भिक्षुओ, जिस समय सदाचारी भिक्षु सबल रहते हैं, उस समय दुराचारी भिक्षु दुर्बल हो जाते हैं। उस समय दुराचारी भिक्षु दुर्बल हो संघ के बीच मुँह बंद किये बैठे रहते हैं अथवा जहां-तहां चले जाते हैं; भिक्षुओ, यह बहुत जनों के हित के लिए होता है, बहुत जनों के सुख के लिए होता है, बहुत जनों के अर्थ, हित तथा देव-मनुष्यों के सुख के लिए होता है।"

४१. "भिक्षुओ, मैं दो जनों की मिथ्या-चर्या (मिथ्या आचरण) की प्रशंसा नहीं करता हूं, गृहस्थों की तथा प्रव्रजितों की। भिक्षुओ, चाहे गृहस्थ हो, चाहे प्रव्रजित हो यदि मिथ्या-प्रतिपन्न (मिथ्या मार्ग पर आरूढ़) है तो अपनी मिथ्या-चर्या के कारण वह उचित विधि, कुशल-धर्म को प्राप्त नहीं कर सकता।

"भिक्षुओ, मैं दो जनों की सम्यक-चर्या की प्रशंसा करता हूं, गृहस्थों की तथा प्रव्रजितों की। भिक्षुओ, चाहे गृहस्थ हो, चाहे प्रव्रजित हो, यदि वह सम्यक-प्रतिपन्न है तो अपनी सम्यक-चर्या के कारण वह उचित विधि, कुशल-धर्म को प्राप्त कर सकता है।"

४२. "भिक्षुओ, जो भिक्षु दुर्गृहीत[१] सूत्रों से अक्षरशः व्याख्या कर, अर्थ और धर्म (सार-भाव) का अनादर करते हैं (नहीं मानते हैं), भिक्षुओ, वे भिक्षु बहुत जनों का अहित करने वाले हैं, बहुत जनों के असुख के लिए हैं, बहुत जनों के अनर्थ के लिए, अहित के लिए तथा देव-मनुष्यों के दुःख के लिए हैं। भिक्षुओ, वे भिक्षु बहुत अपुण्यार्जन करते हैं, तथा सद्धर्म के अंतर्धान होने में सहायता करते हैं।

"भिक्षुओ, जो भिक्षु सुगृहीत सूत्रों से अक्षरशः व्याख्या कर, अर्थ और धर्म (सार-भाव) का अनुसरण करते हैं, भिक्षुओ, वे भिक्षु बहुत जनों का हित करने वाले हैं, बहुत जनों के सुख के लिए हैं, बहुत जनों के अर्थ के लिए, हित के लिए तथा देव-मनुष्यों के सुख के लिए हैं, भिक्षुओ, वे भिक्षु बहुत पुण्यार्जन करते हैं तथा सद्धर्म की स्थापना करते हैं।"

* * * * *

५. परिषद वर्ग

४३. "भिक्षुओ, परिषद दो प्रकार की होती है।

"कौन-सी दो?

"उथली-परिषद तथा गंभीर-परिषद।

"भिक्षुओ, उथली परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु उद्धत होते हैं, अभिमानी होते हैं, चपल होते हैं, मुखर होते हैं, असंयतभाषी होते हैं, विस्मृत-स्मृति होते हैं, असंप्रज्ञ होते हैं, असमाहित होते हैं, भ्रांतचित्त होते हैं, असंयत-इंद्रिय होते हैं – भिक्षुओ, ऐसी परिषद उथली-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, गंभीर-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु अनुद्धत होते हैं, अभिमान-रहित होते हैं, चपल नहीं होते, मुखर नहीं होते, संयत-भाषी होते हैं, स्मृतिमान होते हैं, संप्रज्ञानी होते हैं, समाहित होते हैं, एकाग्र-चित्त होते हैं तथा संयत-इंद्रिय होते हैं – भिक्षुओ, ऐसी परिषद गंभीर-परिषद कहलाती है।

---

१ **'दुग्गहितेहीति उप्पटिपाटिया गहितेहि'** (पालि) = असंभव अर्थ ग्रहण कर।

"भिक्षुओ, ये दो प्रकारकी परिषदें हैं। भिक्षुओ, इन दो प्रकारकी परिषदों में यही श्रेष्ठ है जो कि यह गंभीर-परिषद है।"

४४. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषदहोती है।

"कौन-सी दो?

"गुटों में बँटी परिषद तथा समग्र (एकजुट) परिषद।

"भिक्षुओ, गुटों में बँटी परिषद कौन-सीहोती है? भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु परस्पर झगड़ा करतेहैं, कलहकरतेहैं, विवाद करतेहैं, एक-दूसरेको शब्दशूल से बींधते रहते हैं – भिक्षुओ, इस प्रकार की परिषद गुटों में बँटी परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, समग्र-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु मिल-जुलकरप्रसन्नतापूर्वक ,बिना विवाद करतेहुए, दूध-पानी कीतरह मिले हुए, एक दूसरे कोप्रेमभरी दृष्टि से देखते हुए विहार करतेहैं– भिक्षुओ, इस प्रकारकीपरिषद समग्र-परिषद कहलातीहै।

"भिक्षुओ, ये दो प्रकारकी परिषदें हैं। भिक्षुओ, इन दो प्रकारकी परिषदों में यही श्रेष्ठ है जो कि यह समग्र-परिषद है।"

४५. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषदहोती है।

"कौन-सी दो प्रकार?

"हीन-परिषद तथा श्रेष्ठ-परिषद।

"भिक्षुओ, हीन-परिषद कैसी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में स्थविर भिक्षु अल्पेच्छ नहीं होते, शिथिल होते हैं, पतनोन्मुख होते हैं, एकांत-सेवनके प्रति उदासीन होते हैं, अप्राप्त कीप्राप्ति के लिए, जो हस्तगत नहीं है उसे हस्तगत करनेके लिए, जिसकासाक्षात नहीं हुआ है उसकासाक्षात करनेके लिए प्रयत्नशील नहीं होते; उनके अनुयायी भी उनका अनुकरण करते हैं, वे भी अल्पेच्छ नहीं होते, शिथिल होते हैं, पतनोन्मुख होते हैं, एकांत-सेवनके प्रति उदासीन होते हैं, अप्राप्त कीप्राप्ति के लिए, जो हस्तगत नहीं है उसे हस्तगत करने के लिए, जिसका साक्षात नहीं हुआ है उसका साक्षात करने के लिए, प्रयत्नशील नहीं होते। भिक्षुओ, ऐसी परिषद हीन-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, श्रेष्ठ-परिषद कैसी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में स्थविर भिक्षु अल्पेच्छ होते हैं, शिथिल नहीं होते, पतन की ओर अग्रसर नहीं होते, एकांत-सेवन के प्रति उदासीन नहीं

होते, अप्राप्त की प्राप्ति के लिए, जो हस्तगत नहीं है उसे हस्तगत करने के लिए, जिसका साक्षात नहीं हुआ है उसका साक्षात करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं, उनके अनुयायी भी उनका अनुकरण करते हैं, वे भी अल्पेच्छ होते हैं, शिथिल नहीं होते, पतन की ओर अग्रसर नहीं होते, एकांत-सेवन के प्रति उदासीन नहीं होते, अप्राप्त की प्राप्ति के लिए, जो हस्तगत नहीं हुआ है उसे हस्तगत करने के लिए, जिसका साक्षात नहीं हुआ है उसका साक्षात करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार की परिषद श्रेष्ठ-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। इन दोनों प्रकार की परिषदों में यही उत्तम है, जो यह श्रेष्ठ-परिषद है।"

४६. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषद होती है।

"कौन-सी दो?

"अनार्य-परिषद तथा आर्य-परिषद।

"भिक्षुओ, अनार्य-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थ रूप से नहीं जानते, 'यह दुःख-समुदय है' इसे यथार्थ रूप से नहीं जानते, 'यह दुःख-निरोध है' इसे यथार्थ रूप से नहीं जानते, 'यह दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा (मार्ग) है' इसे यथार्थ रूप से नहीं जानते – भिक्षुओ, ऐसी परिषद अनार्य-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, आर्य-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थ रूप से जानते हैं, 'यह दुःख-समुदय है' इसे यथार्थ रूप से जानते हैं, 'यह दुःख-निरोध है' इसे यथार्थ रूप से जानते हैं, 'यह दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा है' इसे यथार्थ रूप से जानते हैं – ऐसी परिषद आर्य-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। भिक्षुओ, इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है, जो यह आर्य-परिषद है।"

४७. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषद होती है।

"कौन-सी दो?

"निःसार-परिषद तथा सारवान-परिषद।

"भिक्षुओ, निःसार-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु राग के कारण कुमार्ग पर चलते हैं, द्वेष के कारण कुमार्ग पर चलते हैं, मोह के कारण कुमार्ग पर चलते हैं, भय के कारण कुमार्ग पर चलते हैं –ऐसी परिषद, भिक्षुओ, निःसार-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, सारवान-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु राग के कारण कुमार्ग पर नहीं चलते हैं, द्वेष के कारण कुमार्ग पर नहीं चलते हैं, मोह के कारण कुमार्ग पर नहीं चलते हैं, भय के कारण कुमार्ग पर नहीं चलते हैं – ऐसी परिषद, भिक्षुओ, सारवान-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है, जो यह सारवान-परिषद है।"

४८. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषद होती है।

"कौन-सी दो?

"दुर्विनीत और प्रश्नोत्तर द्वारा अविनीत तथा प्रश्नोत्तर द्वारा विनीत और सुविनीत।

"भिक्षुओ, दुर्विनीत और प्रश्नोत्तर द्वारा अविनीत परिषद कैसी होती है? भिक्षुओ, जिस परिषद में जो तथागत द्वारा भाषित गंभीर, गंभीर अर्थ वाले, लोकोत्तर, तथा शून्यता-युक्त सूक्त हैं उनके कहे जाते समय न उन्हें सुनते हैं, न कान देते हैं, न समझने के लिए उस ओर चित्त एकाग्र करते हैं, न उन धर्मों को सीखने योग्य तथा प्रवीणता प्राप्त करने योग्य मानते हैं; किंतु जो कविकृत काव्य सूक्त हैं, जिनके अक्षरों तथा व्यंजनों में विचित्रता है, जो (धर्म से) बाह्य हैं, जो (अन्य-) श्रावक भाषित हैं, उनके कहे जाते समय उन्हें सुनते हैं, उधर कान देते हैं, समझने के लिए उस ओर चित्त एकाग्र करते हैं, उन धर्मों को सीखने योग्य तथा प्रवीणता प्राप्त करने योग्य मानते हैं। वे उन धर्मों को धारण कर आपस में, यह कैसे है, इसका क्या अर्थ है इस तरह का प्रश्न करके उन पर परिचर्चा नहीं करते, वे उलझे को सुलझाते नहीं हैं, वे अस्पष्ट को स्पष्ट नहीं करते हैं, अनेक प्रकार के संदिग्ध स्थलों से शंका-संदेह दूर नहीं करते। भिक्षुओ, ऐसी परिषद दुर्विनीत और प्रश्नोत्तर द्वारा अविनीत परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, प्रश्नोत्तर द्वारा विनीत और सुविनीत परिषद कैसी होती है? भिक्षुओ, जिस परिषद में जो कविकृत काव्य-सूक्त हैं, जिनके अक्षरों तथा व्यंजनों में विचित्रता है, जो बाह्य हैं, जो (अन्य-) श्रावक भाषित हैं उनके कहे जाते समय न उन्हें सुनते हैं, न कान देते हैं, न समझने के लिए उस ओर चित्त एकाग्र करते हैं, न उन धर्मों को सीखने योग्य तथा प्रवीणता प्राप्त करने योग्य मानते हैं, किंतु जो तथागत द्वारा भाषित गंभीर, गंभीर अर्थ वाले, लोकोत्तर तथा शून्यता-युक्त सूक्त हैं उनके कहे जाते समय उन्हें सुनते हैं, उधर कान देते हैं, समझने के लिए उधर चित्त एकाग्र करते हैं, उन धर्मों को सीखने तथा

प्रवीणता प्राप्त करने योग्य मानते हैं। वे उन धर्मों को धारण कर आपस में, यह कैसे है, इसका क्या अर्थ है इस तरह का प्रश्न करके उन पर परिचर्चा करते हैं, वे उलझे को सुलझाते हैं, वे अस्पष्ट को स्पष्ट करते हैं, वे अनेक प्रकार के संदिग्ध-स्थलों से शंका-संदेह दूर कर देते हैं। भिक्षुओ, ऐसी परिषद प्रश्नोत्तर द्वारा विनीत और सुविनीत परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ ये दो प्रकार की परिषदें हैं। इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है जो यह प्रश्नोत्तर द्वारा विनीत और सुविनीत परिषद कहलाती है।"

४९. "भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदहोती है।

"कौन-सी दो?

"भौतिक चीजों को महत्त्व देने वाली किंतु सद्धर्म को महत्त्व न देने वाली; सद्धर्म को महत्त्व देने वाली किंतु भौतिकचीजों को महत्त्व न देने वाली।

"भिक्षुओ, भौतिक चीजों को महत्त्व देने वाली किंतु सद्धर्म को महत्त्व न देने वाली परिषद कैसी होती है? भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु श्वेत-वस्त्रधारी गृहस्थों के सम्मुख परस्पर यह कहते हैं कि अमुक भिक्षु दोनों भागों से विमुक्त है (जो आठ प्रकार के विमोक्षों को नाम-काय से साक्षात्कार कर विहार करता है और प्रज्ञा से आस्रवों को पूर्ण रूप से नष्ट करता है), अमुक प्रज्ञा-विमुक्त है (आठ विमोक्षों को काय से साक्षात्कार नहीं करता है लेकिन प्रज्ञा से आस्रवों को क्षीण करता है), अमुक काय-साक्षी है (आठ विमोक्षों का काय से साक्षात्कार करता है और प्रज्ञा से कुछ आस्रवों को पूरी तरह नष्ट करता है), अमुक दृष्टि-प्राप्त है (अमुक दृष्टियों के अंत तक पहुँच गया है, जिसे चारों आर्यसत्यों का सम्यक ज्ञान है और जिसने उनका अभ्यास और कुछ आस्रवों का प्रहाण किया है), अमुक श्रद्धा-विमुक्त है (यह भी दृष्टि-प्राप्त की तरह ही है पर पूर्ण रूप से नहीं: कुछ आस्रवों का यह पूर्ण प्रहाण करते हैं लेकिन दृष्टि-प्राप्त की तरह नहीं), अमुक धर्मानुसारी है (स्रोतापत्ति फल के साक्षात्कार के लिए जो मार्गारूढ़ होता है, जिसकी प्रज्ञा बलवती है, जो आर्य मार्ग की भावना करता है वही धर्मानुसारी है), अमुक श्रद्धानुसारी है (स्रोतापत्ति फल के साक्षात्कार के लिए मार्गारूढ़ है लेकिन प्रज्ञा की जगह श्रद्धा बलवती होती है।), अमुक शीलवान, सदाचारी है, तथा अमुक दुःशील, दुराचारी है... कहकर प्रशंसा करते हैं, उससे उन्हें कुछ लाभ होता है, उस लाभ को प्राप्त कर, उस लाभ में ग्रथित, उससे मूर्च्छित हुए, उसमें आसक्त हुए, उसके दुष्परिणामों की ओर से लापरवाह, उससे बाहर निकलने की प्रज्ञा से विहीन रहकर उन वस्तुओं का परिभोग करते हैं। भिक्षुओ, भौतिक-चीजों को महत्त्व देने वाली किंतु सद्धर्म को महत्त्व न देने वाली परिषद ऐसी होती है।

"भिक्षुओ, सद्धर्म को महत्त्व देने वाली किंतु भौतिक-चीजों को महत्त्व न देने वाली परिषद कैसी होती है? भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु श्वेत-वस्त्रधारी गृहस्थों के सम्मुख परस्पर यह नहीं कहते कि अमुक भिक्षु दोनों भागों से विमुक्त है, अमुक प्रज्ञा-विमुक्त है, अमुक काय-साक्षी है, अमुक दृष्टियों के अंत तक पहुँच गया है, अमुक श्रद्धा-विमुक्त है, अमुक श्रद्धानुसारी है, अमुक धर्मानुसारी है, अमुक शीलवान सदाचारी है तथा अमुक दुःशील दुराचारी है... कहकर प्रशंसा नहीं करते, उससे उन्हें लाभों की प्राप्ति होती है, उन लाभों को प्राप्त कर, उन लाभों में ग्रथित न हुए, उन लाभों से मूर्च्छित न हुए, उन लाभों में न आसक्त हुए, उनके दुष्परिणामों के प्रति सजग, उससे बाहर निकलने की प्रज्ञा से युक्त रहकर उन वस्तुओं का परिभोग करते हैं। भिक्षुओ, सद्धर्म को महत्त्व देने वाली किंतु भौतिक-चीजों को महत्त्व न देने वाली परिषद ऐसी होती है।

"भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है जो यह सद्धर्म को महत्त्व देने वाली किंतु भौतिक-चीजों को महत्त्व न देने वाली है।"

५०. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषद होती है।

"कौन-सी दो?

"विषम तथा सम।

"भिक्षुओ, विषम-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में अधार्मिक-कार्य होते हैं, धार्मिक-कार्य नहीं होते; अविनय (विनयविरुद्ध)-कर्म होते हैं, विनय (विनयानुसार)-कर्म नहीं होते; अधार्मिक-कार्य प्रकाशित होते हैं, धार्मिक-कार्य प्रकाशित नहीं होते, अविनय-कर्म प्रकाशित होते हैं, विनय-कर्म प्रकाशित नहीं होते – भिक्षुओ, ऐसी परिषद विषम-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, सम-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में धार्मिक-कार्य होते हैं, अधार्मिक-कार्य नहीं होते; विनय-कर्म होते हैं, अविनय-कर्म नहीं होते; धार्मिक-कार्य प्रकाशित होते हैं, अधार्मिक-कार्य प्रकाशित नहीं होते, विनय-कर्म प्रकाशित होते हैं, अविनय-कर्म प्रकाशित नहीं होते – भिक्षुओ, ऐसी परिषद सम-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। भिक्षुओ, इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है जो यह सम-परिषद है।"

५१. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषदहोती है।

"कौन-सी दो?

"अधार्मिक-परिषद तथा धार्मिक-परिषद... (अनुच्छेद ५० की तरह)... भिक्षुओ, ये दो प्रकार की परिषदें हैं। भिक्षुओ, इन दो प्रकार की परिषदों में यही श्रेष्ठ है जो यह धार्मिक-परिषद है।"

५२. "भिक्षुओ, दो प्रकार की परिषदहोती है।

"कौन-सी दो?

"अधर्मवादी-परिषद तथा धर्मवादी परिषद।

"भिक्षुओ, अधर्मवादी-परिषद कौन-सी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु धार्मिक अथवा अधार्मिक विवाद उपस्थित करतेहैं। वे उस विवाद कोलेकरएक दूसरे कोसूचित नहीं करते,न छान-बीन या जांच-पड़ताल के लिए एकत्रहोते हैं, और न मेल-मिलाप करतेहैं और न मेल-मिलाप करवानेके लिए एकत्रहोते हैं। वे सूचना देने कोअस्वीकार कर, मेल-मिलाप करझगड़ा समाप्त करानेको अस्वीकारकर, पक्ष-विशेष को ग्रहण करनेवाले, उसी विवाद को दृढ़ता से ग्रहण कर, पकड़करमान लेते हैं कि यही ठीक है और सब गलत है –भिक्षुओ, ऐसी परिषद अधर्मवादी परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, धर्मवादी परिषद कैसी होती है?

"भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु धार्मिक अथवा अधार्मिक विवाद उपस्थित करतेहैं, वे उस विवाद कोलेकरएक दूसरे कोसूचित करतेहैं, उस पर छान-बीन करने के लिए एकत्र होते हैं, मेल-मिलाप करते हैं और मेल-मिलाप करवाने के लिए एकत्र होते हैं, वे सूचना देने को स्वीकार कर, मेल-मिलाप करझगड़ा समाप्त करानेको स्वीकारकर, पक्ष-विशेष को न ग्रहण करनेवाले, उसी विवाद को दृढ़ता से ग्रहण कर, पकड़करनहीं मान लेते कि यही ठीक है और सब गलत है – भिक्षुओ, ऐसी परिषद धर्मवादी परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, ये दो प्रकारकी परिषदें हैं। इन दो प्रकारकी परिषदों में यही श्रेष्ठ है जो यह धर्मवादी परिषद है।"

* * * * *

विषय-सूची

द्विक-निपात (६-१०)

२. द्वितीय पंचाशतक

(६) १. पुद्गल वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - ८१
(७) २. सुख वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - ८४
(८) ३. सनिमित्त वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - ८६
(९) ४. धर्म वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - ८७
(१०) ५. बाल वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - ८८

२. द्वितीय पंचाशतक

(६) १. पुद्गल वर्ग

५३. "भिक्षुओ, लोक में दो व्यक्ति बहुजन-हित के लिए, बहुजन-सुख के लिए उत्पन्न होते हैं, बहुत जनों के अर्थ, हित तथा देव-मनुष्यों के सुख के लिए उत्पन्न होते हैं।

"कौन-से दो व्यक्ति?

"सम्यक-संबुद्ध अर्हत तथागत और चक्रवर्ती-राजा। भिक्षुओ, ये दो व्यक्ति लोक में बहुजन-हित के लिए, बहुजन-सुख के लिए उत्पन्न होते हैं, बहुत जनों के अर्थ, हित तथा देव-मनुष्यों के सुख के लिए उत्पन्न होते हैं।"

५४. "भिक्षुओ, लोक में दो असाधारण मनुष्य जन्म लेते हैं।

"कौन-से दो?

"सम्यक संबुद्ध अर्हत तथागत और चक्रवर्ती-राजा। भिक्षुओ, लोक में ये दो असाधारण मनुष्य जन्म लेते हैं।"

५५. "भिक्षुओ, इन दो व्यक्तियों की मृत्यु बहुत जनों के अनुताप का कारण होती है।

"किन दो की?

"सम्यक संबुद्ध अर्हत तथागत की और चक्रवर्ती-राजा की। भिक्षुओ, इन दो व्यक्तियों की मृत्यु बहुत जनों के अनुताप का कारण होती है।"

५६. "भिक्षुओ, ये दो स्तूपार्ह हैं (जिनके अवशेष पर स्तूप बनाये जा सकते हैं)।

"कौन-से दो?

"सम्यक संबुद्ध अर्हत तथागत तथा चक्रवर्ती-राजा।

"भिक्षुओ, ये दो स्तूपार्ह हैं।"

५७. "भिक्षुओ, ये दो बुद्ध होते हैं।

"कौन-से दो?

"सम्यक संबुद्ध अर्हत तथागत तथा प्रत्येक-बुद्ध।

"भिक्षुओ, ये दो बुद्ध होते हैं।"

५८. "भिक्षुओ, ये दो बिजली के कड़कने पर डरते नहीं।

"कौन-से दो?

"क्षीणास्रव भिक्षु तथा श्रेष्ठ हाथी।

"भिक्षुओ, ये दो बिजली के कड़कने पर डरते नहीं।"

५९. "भिक्षुओ, ये दो बिजली के कड़कने पर डरते नहीं।

"कौन-से दो?

"क्षीणास्रव भिक्षु तथा श्रेष्ठ अश्व।

"भिक्षुओ, ये दो बिजली के कड़कने पर डरते नहीं।"

६०. "भिक्षुओ, ये दो बिजली के कड़कने पर डरते नहीं।

"कौन-से दो?

"क्षीणास्रव भिक्षु तथा मृगराज सिंह।

"भिक्षुओ, ये दो बिजली के कड़कने पर डरते नहीं।"

६१. "भिक्षुओ, दो बातों का विचार कर किन्नर मानुषी-भाषा नहीं बोलते।

"कौन-सी दो?

"हम झूठ न बोलें तथा गलत दोषारोपण न करें।

"भिक्षुओ, इन दो बातों का विचार कर किन्नर मानुषी-भाषा नहीं बोलते।"

६२. "भिक्षुओ, स्त्रियां दो बातों से असंतुष्ट रह कर ही शरीर त्याग करती हैं।

"कौन-सी दो से?

"मैथुन तथा संतानोत्पत्ति की इच्छा से।

"भिक्षुओ, स्त्रियां इन दो बातों से असंतुष्ट रह कर ही शरीर त्याग करती हैं।"

६३. "भिक्षुओ, तुम्हें असंत-सहवास तथा संत-सहवास के बारे में उपदेश देता हूं। इसे सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो। कहता हूं।" "अच्छा, भंते!" कह कर भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, असंत-सहवास कैसा होता है? असंत कैसे रहते हैं?

"भिक्षुओ, स्थविर भिक्षु सोचता है –

"'स्थविर भिक्षु भी मुझे कुछ न कहे, मध्यम-स्थविर भी मुझे कुछ न कहे, नया भी मुझे कुछ न कहे; मैं भी न स्थविर भिक्षु को कुछ कहूं, न मध्यम-स्थविर को कुछ कहूं और न नये भिक्षु को कुछ कहूं।

"'स्थविर मुझे कुछ कहेंगे तो अहित की ही बात कहेंगे, हित की बात नहीं कहेंगे। मैं भी उन्हें ''नहीं'' कहकर कष्ट दूंगा और उनका कहना ठीक है, यह जानते हुए भी उनका कहना नहीं करूंगा। मध्यम-स्थविर भी मुझे कुछ कहेंगे, नये भिक्षु भी मुझे कुछ कहेंगे तो अहित की ही बात कहेंगे, हित की बात नहीं

कहेंगे। मैं भी उन्हें ''नहीं'' कहकर कष्ट दूंगा और उनका कहना ठीक है, यह जानते हुए भी उनका कहना नहीं करूंगा'।

"'मध्यम-स्थविर भी सोचता है... नया भिक्षु भी सोचता है –

"'स्थविर भी मुझे कुछ न कहे, मध्यम-स्थविर भी मुझे कुछ न कहे, नया भी मुझे कुछ न कहे, मैं भी न स्थविर भिक्षु को कुछ कहूं, न मध्यम-स्थविर को कुछ कहूं और न नये भिक्षु को कुछ कहूं।

"'स्थविर मुझे कुछ कहेंगे तो अहित की ही बात कहेंगे, हित की बात नहीं कहेंगे। मैं भी उन्हें ''नहीं'' कहकर कष्ट दूंगा और उनका कहना ठीक है, यह जानते हुए भी उनका कहना नहीं करूंगा। मध्यम-स्थविर भी मुझे कुछ कहेंगे, नये भिक्षु भी मुझे कुछ कहेंगे तो अहित की ही बात कहेंगे, हित की बात नहीं कहेंगे। मैं उन्हें ''नहीं'' कहकर कष्ट दूंगा और उनका कहना ठीक है, यह जानते हुए भी उनका कहना नहीं करूंगा'। भिक्षुओ, इस प्रकार असंत-सहवास होता है। असंत इसी प्रकार रहते हैं।

"भिक्षुओ, संत-सहवास कैसा होता है? संत कैसे रहते हैं?

"भिक्षुओ, स्थविर भिक्षु सोचता है –

"'स्थविर भिक्षु भी मुझे कहे, मध्यम-स्थविर भी मुझे कहे, नया भिक्षु भी मुझे कहे; मैं भी स्थविर भिक्षुओं को कहूं, मध्यम-स्थविरों को कहूं, नये भिक्षु को कहूं।

"'स्थविर मुझे कुछ कहेंगे तो हित की ही बात कहेंगे, अहित की बात नहीं कहेंगे। मैं भी उन्हें ''अच्छा'' कहूंगा और कष्ट नहीं दूंगा। उनका कहना ठीक है, यह जानते हुए मैं उनका कहना करूंगा। मध्यम-स्थविर भी मुझे कुछ कहेंगे, नया भिक्षु भी मुझे कुछ कहेगा तो हित की ही बात कहेगा, अहित की बात नहीं कहेगा। मैं भी उन्हें ''अच्छा'' कहूंगा और कष्ट नहीं दूंगा। उनका कहना ठीक है, यह जानते हुए मैं उनका कहना करूंगा'। भिक्षुओ, इस प्रकार संत-सहवास होता है। संत इसी प्रकार रहते हैं।"

६४. "भिक्षुओ, जिस अधिकरण में दोनों ओर से कहा-सुनी रहेगी, दृष्टि-परिदाह रहेगा, चित्त कुपित रहेगा, दौर्मनस्य रहेगा, क्रोध रहेगा, आंतरिक अशांति रहेगी, उस अधिकरण के बारे में भिक्षुओ, यह आशा करनी चाहिए कि उनका कलह दीर्घकाल तक जारी रहेगा, वे परस्पर कठोर बोलते रहेंगे और हिंस्र बने रहेंगे तथा भिक्षु सुखपूर्वक न रह सकेंगे।

"भिक्षुओ, जिस अधिकरण में दोनों ओर से कहा-सुनी न होगी, दृष्टि-परिदाह न होगा, चित्त कुपित न रहेगा, दौर्मनस्य न रहेगा, क्रोध न रहेगा,

आंतरिक शांति रहेगी, उस अधिकरण के बारे में भिक्षुओ, यही आशा करनी चाहिए कि न उनका कलह दीर्घकाल तक जारी रहेगा, न वे परस्पर कठोर बोलते रहेंगे और न हिंस्र ही बने रहेंगे तथा भिक्षु सुखपूर्वक रह सकेंगे।"

* * * * *

(७) २. सुख वर्ग

६५. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"गृहीसुख तथा प्रव्रज्या-सुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। इन दोनों सुखों में यह प्रव्रज्या-सुख ही श्रेष्ठ है।"

६६. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"कामभोगों का सुख तथा नैष्कर्म्यसुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। इन दोनों सुखों में यह नैष्कर्म्यसुख ही श्रेष्ठ है।"

६७. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"उपधिसुख तथा निरुपधिसुख।[१]

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दोनों सुखों में यह निरुपधिसुख ही श्रेष्ठ है।"

६८. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"सास्रव-सुख तथा अनास्रव-सुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दो सुखों में यह अनास्रव-सुख ही श्रेष्ठ है।"

६९. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

---

१ **'उपधि सुख, निरुपधि सुख'** -- भव-तृष्णा के प्रति आसक्त रहने का सुख उपधिसुख है तथा तृष्णातीत हो जाने का सुख निरुपधि सुख है। उपधिसुख को तेभूमक सुख भी कहते हैं, अर्थात कामावचर, रूपावचर और अरूपावचर भूमि का सुख। निरुपधि सुख को लोकोत्तर सुख कहते हैं।

"भौतिक-सुख तथा अभौतिक-सुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दो सुखों में अभौतिक-सुख ही श्रेष्ठ है।"

७०. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"आर्य-सुख तथा अनार्य-सुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दो सुखों में यह आर्य-सुख ही श्रेष्ठ है।"

७१. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"कायिक-सुखतथा चैतसिक-सुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दो सुखों में यह चैतसिक-सुख ही श्रेष्ठ है।"

७२. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"प्रीति-सहित सुख, प्रीति-रहित सुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दो सुखों में यह प्रीति-रहित सुख ही श्रेष्ठ है।"

७३. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"आनंद-सुख तथा उपेक्षा-सुख[१]।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दो सुखों में यह उपेक्षा-सुख ही श्रेष्ठ है।"

७४. "भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

"कौन-से दो?

"समाधि-सुख तथा असमाधि-सुख।

"भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दोनों सुखों में समाधि-सुख ही श्रेष्ठ है।"

---

१ सात सुख और **उपेक्खा सुख** – प्रथम तीन ध्यानों का सुख सात सुख है क्योंकि इनमें 'प्रीति' ध्यानांग रहता है और चतुर्थ ध्यान का सुख उपेक्षा-सुख।

७५. “भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

“कौन-से दो?

“स-प्रीति-आलंबन-सुख तथा अ-प्रीति-आलंबन-सुख।

“भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दोनों सुखों में अ-प्रीति-आलंबन सुख ही श्रेष्ठ है।”

७६. “भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

“कौन-से दो?

“आनंद-आलंबन-सुख तथा उपेक्षा-आलंबन-सुख।

“भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दोनों सुखों में उपेक्षा-आलंबन-सुख ही श्रेष्ठ है।”

७७. “भिक्षुओ, ये दो सुख हैं।

“कौन-से दो?

“रूप-आलंबन-सुख तथा अरूप-आलंबन-सुख।

“भिक्षुओ, ये दो सुख हैं। भिक्षुओ, इन दोनों सुखों में यह अरूप-आलंबन-सुख ही श्रेष्ठ है।”

* * * * *

(८) ३. सनिमित्त वर्ग

७८. “भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म निमित्त (आधार) होने से उत्पन्न होते हैं, बिना निमित्त के नहीं उत्पन्न होते। उस निमित्त का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।”

७९. “भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म निदान (कारण) होने से उत्पन्न होते हैं, बिना निदान के नहीं। उस निदान का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।”

८०. “भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म हेतु होने से उत्पन्न होते हैं, बिना हेतु के नहीं। उस हेतु का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।”

८१. “भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म संस्कार होने से उत्पन्न होते हैं, बिना संस्कार के नहीं। उस संस्कार का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।”

८२. “भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म प्रत्यय होने से उत्पन्न होते हैं, बिना प्रत्यय के नहीं। उस प्रत्यय का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।”

८३. "भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म रूप होने से ही उत्पन्न होते हैं, बिना रूप के नहीं। उस रूप का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।"

८४. "भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म वेदना के होने से ही उत्पन्न होते हैं, बिना वेदना के नहीं। उस वेदना का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।"

८५. "भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म संज्ञा होने से ही उत्पन्न होते हैं, बिना संज्ञा के नहीं। उस संज्ञा का ही प्रहाण कर देने से वे पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।"

८६. "भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म विज्ञान होने से ही उत्पन्न होते हैं, बिना विज्ञान के नहीं। उस विज्ञान का ही प्रहाण कर देने से पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।"

८७. "भिक्षुओ, पापी अकुशल-धर्म संस्कृत-आलंबन होने से ही उत्पन्न होते हैं, बिना संस्कृत-आलंबन के नहीं। उस संस्कृत-आलंबन का ही प्रहाण कर देने से पापी अकुशल-धर्म उत्पन्न नहीं होते।"

* * * * *

(९) ४. धर्म वर्ग

८८. "भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

८९. "भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"वीर्य (प्रयत्न, प्रग्रह) तथा अविक्षेप (चित्तेकाग्रता)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

(आगे के सूत्र इसी क्रम से हैं।)

९०. "नाम और रूप।"

९१. "विद्या तथा विमुक्ति।"

९२. "भव-दृष्टि तथा विभव-दृष्टि।"

९३. "निर्लज्जता तथा अ-पापभीरुता।"

९४. "लज्जा तथा पापभीरुता।"

९५. "दुर्वचता तथा पापमित्रता।"

९६. "सुवचता तथा कल्याणमित्रता।"

९७. "(अट्ठारह) धातुओं के ज्ञान में कुशल होना तथा मनसिकार (सही ढंग से चिंतन करने) में कुशल होना।"

९८. "भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"आपत्ति (दोषों) के ज्ञान में कुशल होना तथा दोषों को दूर करने का कौशल।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

* * * * *

(१०) ५. बाल वर्ग

९९. "भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।

"कौन-से दो?

"जो अनागत-भार वहन करता है तथा जो आगत-भार वहन नहीं करता।

"भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।"

१००. "भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।

"कौन-से दो?

"जो अनागत-भार वहन नहीं करता तथा जो आगत-भार वहन करता है।

"भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।"

१०१. "भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।

"कौन-से दो?

"जो उचित को अनुचित समझे तथा जो अनुचित को उचित समझे।

"भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।"

१०२. "भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।

"कौन-से दो?

"जो अनुचित को अनुचित समझे तथा जो उचित को उचित समझे।

"भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।"

१०३. "भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।

"कौन-से दो?

"जो अदोष को दोष समझता है तथा जो दोष को अदोष समझता है।

"भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।"

१०४. "भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।

"कौन-से दो?

"जो अदोष को अदोष समझता है तथा जो दोष को दोष समझता है।

"भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।"

१०५. "भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।

"कौन-से दो?

"जो अधर्म को धर्म समझता है तथा जो धर्म को अधर्म समझता है।

"भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।"

१०६. "भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।

"कौन-से दो?

"जो धर्म को धर्म समझता है तथा जो अधर्म को अधर्म समझता है।

"भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।"

१०७. "भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।

"कौन-से दो?

"जो अविनय (अनियम) को विनय (नियम) समझता है, तथा जो विनय को अविनय समझता है।

"भिक्षुओ, ये दो मूर्ख हैं।"

१०८. "भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।

"कौन-से दो?

"जो अविनय को अविनय समझता है तथा जो विनय को विनय समझता है।

"भिक्षुओ, ये दो पंडित हैं।"

१०९. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।

"किन दो के ?

"जो अकौकृतव्य के विषय में कौकृत्य (पश्चात्ताप) करता है तथा जो कौकृतव्य के विषय में अकौकृत्य करता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।"

११०. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते।

"किन दो के ?

"जो अकौकृतव्यके विषय में अकौकृत्यकरता है तथा जो कौकृतव्यके विषय में कौकृत्यकरता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते।"

१११. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।

"किन दो के ?

"जो अनुचित को उचित समझता है तथा जो उचित को अनुचित समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।"

११२. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते।

"किन दो के ?

"जो अनुचित को अनुचित समझता है तथा जो उचित को उचित समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते हैं।"

११३. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।

"किन दो के ?

"जो अनापत्ति (अदोष) को आपत्ति (दोष) समझता है तथा जो आपत्ति को अनापत्ति समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।"

११४. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते।

"किन दो के ?

"जो अनापत्ति को अनापत्ति समझता है तथा जो आपत्ति को आपत्ति समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते हैं।"

११५. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।

"किन दो के ?

"जो अधर्म को धर्म समझता है तथा जो धर्म को अधर्म समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।"

११६. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते हैं।

"किन दो के ?

"जो अधर्म को अधर्म समझता है तथा जो धर्म को धर्म समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते हैं।"

११७. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।

"किन दो के ?

"जो अविनय को विनय समझता है तथा जो विनय को अविनय समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव बढ़ते हैं।"

११८. "भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते हैं ।

"किन दो के ?

"जो अविनय को अविनय समझता है तथा जो विनय को विनय समझता है।

"भिक्षुओ, इन दो के आस्रव नहीं बढ़ते हैं।"

* * * * *

विषय-सूची

द्विक-निपात (११-१५)

३. तृतीय पंचाशतक

(११) १. आशा दुस्त्याज्य वर्ग - - - - - - - - - - - ९१
(१२) २. कामना वर्ग - - - - - - - - - - - - - ९३
(१३) ३. दान वर्ग - - - - - - - - - - - - - - ९७
(१४) ४. सत्कार वर्ग - - - - - - - - - - - - - - ९९
(१५) ५. समापत्ति वर्ग - - - - - - - - - - - - - १००
१. क्रोध पर्याय - - - - - - - - - - - - - - १०१
२. अकुशल पर्याय - - - - - - - - - - - - - - १०४
३. विनय पर्याय - - - - - - - - - - - - - - १०४
४. राग पर्याय - - - - - - - - - - - - - - - १०६

३. तृतीय पंचाशतक

(११) १. आशा दुस्त्याज्य वर्ग

११९. “भिक्षुओ, ये दो आशाएं (इच्छाएं) दुस्त्याज्य हैं।
“कौन-सी दो?
“लाभ की आशा तथा जीवन की आशा।
“भिक्षुओ, ये दो आशायें दुस्त्याज्य हैं।”
१२०. “भिक्षुओ, लोक में ये दो तरह के व्यक्ति दुर्लभ हैं।
“कौन-से दो तरह के ?
“पहले उपकार करने वाला तथा कृतज्ञ, कृतवेदी।
“भिक्षुओ, लोक में ये दो तरह के व्यक्ति दुर्लभ हैं।”
१२१. “भिक्षुओ, लोक में ये दो तरह के व्यक्ति दुर्लभ हैं।
“कौन-से दो तरह के ?
“तृप्त तथा तृप्त करने वाला।
“भिक्षुओ, लोक में ये दो तरह के व्यक्ति दुर्लभ हैं।”
१२२. “भिक्षुओ, इन दो तरह के व्यक्तियों को तृप्त करना दुष्कर है।
“किन दो तरह के ?

"एक तो ऐसे व्यक्ति को जिसे जो-जो मिलता है उसे संचित करता है, दूसरे ऐसे व्यक्ति को जिसे जो-जो मिलता है उसे दूसरों को देता जाता है।

"भिक्षुओ, इन दो तरह के व्यक्तियों को तृप्त करना दुष्कर है।"

१२३. "भिक्षुओ, इन दो तरह के व्यक्तियों को तृप्त करना सहज है।

"किन दो व्यक्तियों को?

"एक तो उस व्यक्ति को जिसे जो-जो मिलता है उसे संचित नहीं करता, दूसरे उस व्यक्ति को जिसे जो-जो मिलता है, उसे दूसरों को देते नहीं रहता।

"भिक्षुओ, इन दो व्यक्तियों को तृप्त करना सहज है।"

१२४. "भिक्षुओ, राग की उत्पत्ति के दो कारण (प्रत्यय) हैं।

"शुभ-निमित्त तथा अयोनिसो-मनसिकार[1] (सही ढंग से चिंतन न करना)।

"भिक्षुओ, राग की उत्पत्ति के ये दो कारण हैं।"

१२५. "भिक्षुओ, द्वेष की उत्पत्ति के दो कारण हैं ।

"कौन-से दो?

"प्रतिघ-निमित्त तथा अयोनिसो-मनसिकार।

"भिक्षुओ, द्वेष की उत्पत्ति के ये दो कारण हैं।"

१२६. "भिक्षुओ, मिथ्या-दृष्टि की उत्पत्ति के दो कारण हैं।

"कौन-से दो?

"दूसरों से अधर्म श्रवण[2] और अयथार्थ चिंतन।

"भिक्षुओ, मिथ्या-दृष्टि की उत्पत्ति के ये दो कारण हैं।"

१२७. "भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि की उत्पत्ति के दो कारण हैं।

"कौन-से दो?

"दूसरों से धर्म श्रवण[3] और योनिसो-मनसिकार (सही ढंग से चिंतन करना)।

---

१ **'अयोनिसो मनसिकारो'** का अर्थ गलत ढंग से चिंतन है, बेढंगा विचार करने से है, अयथार्थ को यथार्थ समझना है। अनित्य को नित्य समझना, दु:ख को सुख, अनात्म को आत्मा और अशुभ को शुभ समझना अयोनिसो मनसिकार है। इसके विपरीत चिंतन को योनिसो मनसिकार कहा गया है।

२ पालि में **'परतो च घोसो ति परस्स सन्तिका असद्धम्मसवनं'** का अर्थ दूसरे से अधर्म सुनना।

३ पालि में **'परतो च घोसो ति परस्स सन्तिका सद्धम्मसवनं'** का अर्थ दूसरे से धर्म सुनना।

"भिक्षुओ, सम्यक-दृष्टि की उत्पत्ति के ये दो कारण हैं।"

१२८. भिक्षुओ, ये दो आपत्तियां (दोष)[१] हैं।

"कौन-सी दो?

"हलकी आपत्ति तथा भारी आपत्ति।

"भिक्षुओ, ये दो आपत्तियां हैं।"

१२९. "भिक्षुओ, ये दो आपत्तियां हैं।

"कौन-सी दो?

"संगीन आपत्ति तथा अ-संगीन आपत्ति।

"भिक्षुओ, ये दो आपत्तियां हैं।"

१३०. "भिक्षुओ, ये दो आपत्तियां हैं।

"कौन-सी दो?

"आंशिक (सावशेष) आपत्ति तथा सर्वांगिक (अनवशेष) आपत्ति।

"भिक्षुओ, ये दो आपत्तियां हैं।"

* * * * *

(१२) २. कामना वर्ग

१३१. "भिक्षुओ, श्रद्धालु भिक्षु यदि सम्यक प्रकार से कामना करता है तो उसकी यही कामना होनी चाहिए कि मैं ऐसा होऊं जैसे सारिपुत्त तथा मोग्गल्लान।

"भिक्षुओ, ये ही तुला हैं, ये ही प्रमाण (माप-दंड) हैं मेरे भिक्षु श्रावकों के लिए जो ये सारिपुत्त तथा मोग्गल्लान हैं।"

१३२. "भिक्षुओ, श्रद्धालु भिक्षुणी यदि सम्यक प्रकार से कामना करे तो उसकी यही कामना होनी चाहिए कि मैं ऐसी होऊं जैसी कि खेमा तथा उप्पलवण्णा भिक्षुणियां।

"भिक्षुओ, ये ही तुला हैं, ये ही प्रमाण हैं मेरी भिक्षुणी श्राविकाओं के लिए जो ये खेमा तथा उप्पलवण्णा भिक्षुणियां हैं।"

१३३. "भिक्षुओ, श्रद्धालु उपासक यदि सम्यक प्रकार से कामना करे तो उसकी यही कामना होनी चाहिए कि मैं ऐसा होऊं जैसे कि चित्त-गृहपति तथा हस्तक आळवक हैं।

१ देखें पादटिप्पणी, पृष्ठ २० पर।

"भिक्षुओ, ये ही तुला हैं, ये ही प्रमाण हैं मेरे श्रद्धालु उपासकों के लिए जो कि ये चित्त-गृहपति तथा हस्तक आळवक हैं।"

१३४. "भिक्षुओ, श्रद्धालु उपासिका यदि सम्यक प्रकार से कामना करे तो उसकी यही कामना होनी चाहिए कि मैं ऐसी होऊं जैसी कि खुज्जुत्तरा तथा वेळुकण्डकिया नन्दमाता उपासिकायें हैं।

"भिक्षुओ, ये ही तुला हैं, ये ही प्रमाण हैं मेरी श्रद्धालु उपासिकाओं के लिए जो कि ये खुज्जुत्तरा उपासिका तथा वेळुकण्डकिया नन्दमाता हैं।"

१३५. "भिक्षुओ, दो धर्मों (बातों) से युक्त मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान (उच्छिन्नमूल)[१], सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"कौन-से दो से?

"बिना जाने, बिना विचार किये जो अप्रशंसार्ह हैं उनकी प्रशंसा करता है; बिना जाने, बिना विचार किये जो प्रशंसार्ह हैं उनकी निंदा करता है।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त, पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।

"कौन-से दो से?

"जानकर, विचारकर अवगुणी के अवगुण कहता है; जानकर, विचारकर गुणी के गुण कहता है।

---

१ पालि में यहां **'अक्खतं'** शब्द है। इसका अनुवाद 'अक्षत रहना', 'बिना (दोष) के होना' किया गया है। उसी तरह **'खतं उपहतं अत्तानं परिहरति'** का भी अनुवाद अवगुणी और सदोष से किया जाता है। वस्तुतः इसका अर्थ होता है – मिथ्या दृष्टि संपन्न हो जीवन बिताता है, अपने जीवन को यापन करता है। किस तरह? जड़ समेत उखाड़े गये वृक्ष के समान, सत्त्वहीन होकर। अट्ठकथा के अनुसार **'खतन्ति गुणानं खतत्ता खतं, उपहतन्ति गुणानं उपहतत्ता उपहतं, छिन्नगुणं, नट्ठगुणन्ति अत्थो'**। रूपक में अनुवाद करना ज्यादा अच्छा होगा।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त, पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।"

१३६. "भिक्षुओ, दो धर्मों से युक्त, मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"कौन-से दो से?

"बिना जाने, बिना विचार किये, अश्रद्धेय-स्थान पर श्रद्धा व्यक्त करता है; बिना जाने, बिना विचार किये श्रद्धेय-स्थान पर अश्रद्धा व्यक्त करता है।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त, मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त, पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।

"कौन-से दो से?

"जानकर, विचार कर अश्रद्धेय-स्थान पर अश्रद्धा व्यक्त करता है; जानकर, विचार कर, श्रद्धेय-स्थान पर श्रद्धा व्यक्त करता है।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त, पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।"

१३७. "भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति मिथ्याचरण करने वाला मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"किन दो के प्रति?

"माता तथा पिता के प्रति।

"भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति मिथ्याचरण करने वाला मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति सम्यक व्यवहार करने वाला, पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।

"किन दो के प्रति?

"माता तथा पिता के प्रति।

"भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति सम्यक व्यवहार करने वाला, पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।

१३८. "भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति अनुचित व्यवहार करने वाला मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"किन दो के प्रति?

"तथागत तथा तथागत-श्रावक के प्रति।

"भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति अनुचित व्यवहार करने वाला मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति उचित व्यवहार करने वाला पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ-पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।

"किन दो के प्रति?

"तथागत तथा तथागत-श्रावक के प्रति।

"भिक्षुओ, इन दोनों के प्रति उचित व्यवहार करने वाला पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है

(अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।"

१३९. "भिक्षुओ, दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"चित्त की परिशुद्धि तथा लोक के प्रति अनासक्त होना।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

१४०. "भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"क्रोध तथा शत्रुभाव।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

१४१. "भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"क्रोध-विनयन (क्रोध को दूर करना) तथा शत्रुभाव-विनयन (शत्रुभाव को दूर करना)।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

* * * * *

(१३) ३. दान वर्ग

१४२. "भिक्षुओ, ये दो दान हैं।

"कौन-से दो?

"भौतिक-दान तथा धर्म-दान। भिक्षुओ, ये दो दान हैं।

"भिक्षुओ, इन दोनों दानों में धर्म-दान ही श्रेष्ठ है।"

१४३. "भिक्षुओ, ये दो यज्ञ हैं।

"कौन-से दो?

"भौतिक-यज्ञ तथा धर्म-यज्ञ।

"भिक्षुओ, ये दो... धर्म-यज्ञ ही श्रेष्ठ है।"

१४४. "भिक्षुओ, ये दो त्याग हैं।

"कौन-से दो?

"भौतिक-त्याग तथा धार्मिक-त्याग (धर्म के लिए त्याग)।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-त्याग ही श्रेष्ठ है।"

१४५. "भिक्षुओ, ये दो परित्याग हैं।
"कौन-से दो?
"भौतिक-परित्याग तथा धार्मिक-परित्याग (धर्म के लिए परित्याग)।
"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-परित्याग ही श्रेष्ठ है।"
१४६. "भिक्षुओ, ये दो भोग हैं।
"कौन-से दो?
"भौतिक-भोग तथा धार्मिक-भोग।
"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-भोग ही श्रेष्ठ है।"
१४७. "भिक्षुओ, ये दो संभोग हैं।
कौन-से दो?
"भौतिक-संभोग तथा धार्मिक-संभोग।
"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-संभोग ही श्रेष्ठ है।"
१४८. "भिक्षुओ, ये दो संविभाग (दान) हैं।
"कौन-से दो?
"भौतिक-दान तथा धार्मिक-दान।
"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-दान ही श्रेष्ठ है।"
१४९. "भिक्षुओ, ये दो संग्रह हैं।
"कौन-से दो?
"भौतिक-संग्रह तथा धार्मिक-संग्रह।
"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-संग्रह ही श्रेष्ठ है।"
१५०. "भिक्षुओ, ये दो अनुग्रह हैं।
"कौन-से दो?
"भौतिक-अनुग्रह तथा धार्मिक-अनुग्रह।
"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-अनुग्रह ही श्रेष्ठ है।"
१५१. "भिक्षुओ, ये दो अनुकंपायें हैं।
"कौन-सी दो?
"भौतिक-अनुकंपा तथा धार्मिक-अनुकंपा।
"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-अनुकंपा ही श्रेष्ठ है।"

* * * * *

(१४) ४. सत्कार वर्ग

१५२. "भिक्षुओ, ये दो सत्कार हैं[1]।

"कौन-से दो?

"भौतिक-सत्कार तथा धार्मिक-सत्कार।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-सत्कार ही श्रेष्ठ है।"

१५३. "भिक्षुओ, ये दो प्रतिसत्कार हैं।

"कौन-से दो?

"भौतिक-प्रतिसत्कार तथा धार्मिक-प्रतिसत्कार।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-प्रतिसत्कार ही श्रेष्ठ है।"

१५४. "भिक्षुओ, ये दो एषणायें हैं।

"कौन-सी दो?

"भौतिक-एषणा तथा धार्मिक-एषणा।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक एषणा ही श्रेष्ठ है।"

१५५. "भिक्षुओ, ये दो पर्येषणायें हैं।

"कौन-सी दो?

"भौतिक-पर्येषणा तथा धार्मिक-पर्येषणा।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-पर्येषणा ही श्रेष्ठ है।"

१५६. "भिक्षुओ, ये दो पर्येष्टियां (खोज) हैं।

"कौन-सी दो?

"भौतिक-पर्येष्टि तथा धार्मिक-पर्येष्टि।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-पर्येष्टि ही श्रेष्ठ है।"

१५७. "भिक्षुओ, ये दो प्रकार की पूजायें हैं।

"कौन-सी दो प्रकार की?

"भौतिक-पूजा तथा धार्मिक-पूजा।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-पूजा ही श्रेष्ठ है।"

१५८. "भिक्षुओ, ये दो प्रकार के आतिथ्य हैं।

"कौन-से दो प्रकार के?

"भौतिक-आतिथ्य तथा धार्मिक-आतिथ्य।

---

१ पालि शब्द **'सन्थारो'** का अर्थ 'सत्कार' 'मैत्रीपूर्ण स्वागत' और 'प्रतिछादन' भी होता है। यहां जो संदर्भ है इसमें इसका अर्थ 'मैत्रीपूर्ण स्वागत' या सत्कार है।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-आतिथ्य ही श्रेष्ठ है।"

१५९. "भिक्षुओ, ये दो ऋद्धियां हैं।

"कौन-सी दो?

"भौतिक-ऋद्धि तथा धार्मिक-ऋद्धि।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-ऋद्धि ही श्रेष्ठ है।"

१६०. "भिक्षुओ, ये दो वृद्धियां हैं।

"कौन-सी दो?

"भौतिक-वृद्धि तथा धार्मिक-वृद्धि।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक-वृद्धि ही श्रेष्ठ है।"

१६१. "भिक्षुओ, ये दो प्रकार के रत्न हैं।

"कौन-से दो प्रकार के?

"भौतिक-रत्न तथा धर्म-रत्न।

"भिक्षुओ, ये दो... धर्म-रत्न ही श्रेष्ठ है।"

१६२. "भिक्षुओ, ये दो संग्रह हैं।

"कौन-से दो?

"भौतिक-संग्रह तथा धार्मिक-संग्रह।

"भिक्षुओ, ये दो... धार्मिक संग्रह ही श्रेष्ठ है।"

१६३. "भिक्षुओ, ये दो वैपुल्य (विपुलतायें) हैं।

"कौन-से दो?

"भौतिक वैपुल्य तथा धर्म वैपुल्य।

"भिक्षुओ, ये दो... धर्म वैपुल्य ही श्रेष्ठ है।"

* * * * *

(१५) ५. समापत्ति वर्ग

१६४. "भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

"कौन-से दो?

"ध्यान (समापत्ति) में बैठने की कुशलता तथा ध्यान से उठने की कुशलता।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

(आगे इसी क्रम से है।)

१६५. “ऋजुता तथा मृदुता।”

१६६. “क्षान्ति तथा विनम्रता।”

१६७. “प्रियवाणी तथा प्रतिसत्कार।”

१६८. “अविहिंसा तथा शुचिता।”

१६९. “इंद्रियों का अरक्षण तथा भोजन में मात्रज्ञ न होना।”

१७०. “इंद्रियों का संरक्षण तथा भोजन में मात्रज्ञ होना।”

१७१. “प्रतिसंख्यान (प्रत्यवेक्षण)-बल तथा भावना-बल।”

१७२. “स्मृति-बल तथा समाधि-बल।”

१७३. “शमथ तथा विपश्यना।”

१७४. “शील-दोष तथा दृष्टि-दोष।”

१७५. “शील-संपत्ति तथा दृष्टि-संपत्ति।”

१७६. “शील-विशुद्धि तथा दृष्टि-विशुद्धि।”

१७७. “दृष्टि-विशुद्धि तथा यथा-दर्शन प्रयत्न।”

१७८. “बहुत कुशल-धर्म करने पर भी संतुष्ट न होना (न अघाना) तथा बिना पीछे हटे प्रयत्नशील बने रहना।”

१७९. “विस्मृति तथा असंप्रज्ञान।”

१८०. “स्मृति तथा संप्रज्ञान।”

* * * * *

१. क्रोध पर्याय

१८१. “भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

“कौन-से दो?

“क्रोध तथा उपनाह (शत्रुभाव)।

“भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।

[इसी प्रकार आगे भी।]

“म्रक्ष (दूसरे के गुण का अवमूल्यन करना) तथा प्रदास (परिदाह, किसी की उन्नति देख जलना)।

“ईर्ष्या तथा मात्सर्य।

“माया तथा शठता।

“निर्लज्जता तथा पापभीरु न होना।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

१८२. "अक्रोध तथा अनुपनाह।

"अम्रक्ष तथा अप्रदास।

"अनीर्ष्या तथा अमात्सर्य।

"अमाया तथा अशठता।

"लज्जा तथा पापभीरुता।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म हैं।"

१८३. "भिक्षुओ, दो धर्मों से युक्त होने पर कोई (व्यक्ति) दुःख भोगता है।

"किन दो से?

"क्रोध से तथा उपनाह से।

"म्रक्ष से तथा प्रदास से।

"ईर्ष्या से तथा मात्सर्य से।

"माया से तथा शठता से।

"निर्लज्जता से तथा अ-पापभीरुता से।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त होने पर कोई (व्यक्ति) दुःख भोगता है।"

१८४. "भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त होने पर कोई (व्यक्ति) सुख भोगता है।

"कौन-से दो धर्मों से?

"अक्रोध तथा अनुपनाह से।

"अम्रक्ष तथा अप्रदास से।

"अनीर्ष्या तथा अमात्सर्य से।

"अमाया तथा अशठता से।

"लज्जा तथा पापभीरुता से।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त होने पर कोई (व्यक्ति) सुख भोगता है।"

१८५. "भिक्षुओ, ये दो धर्म शैक्ष्य-भिक्षु की हानि के कारण होते हैं।

"कौन-से दो?

"क्रोध तथा उपनाह।

"म्रक्ष तथा प्रदास।

"ईर्ष्या तथा मात्सर्य।

"माया तथा शठता।

"निर्लज्जता तथा अ-पापभीरुता।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म शैक्ष्य-भिक्षु की हानि के कारण होते हैं।"

१८६. "भिक्षुओ, ये दो धर्म शैक्ष्य-भिक्षु की हानि के कारण नहीं होते।

"कौन-से दो?

"अक्रोध तथा अनुपनाह।

"अम्रक्ष तथा अप्रदास।

"अनीर्ष्या तथा अमात्सर्य।

"अमाया तथा अशठता।

"लज्जा तथा पापभीरुता।"

"भिक्षुओ, ये दो धर्म शैक्ष्य-भिक्षु की हानि के कारण नहीं होते।"

१८७. "भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त कोई (व्यक्ति) कर्मानुसार मानो नरक में डाल दिया गया हो।

"किन दो धर्मों से?

"क्रोध से तथा उपनाह से... निर्लज्जता से तथा पापभीरु न होने से।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त कोई (व्यक्ति) कर्मानुसार मानो नरक में डाल दिया गया हो।"

१८८. "भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त कोई (व्यक्ति) कर्मानुसार मानो स्वर्ग में डाल दिया गया हो।

"किन दो धर्मों से?

"अक्रोध तथा अनुपनाह से... लज्जा से तथा पापभीरुता से।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त कोई (व्यक्ति) कर्मानुसार मानो स्वर्ग में डाल दिया गया हो।"

१८९. "भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त कोई व्यक्ति शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा होता है।

"किन दो धर्मों से?

"क्रोध से तथा उपनाह से... निर्लज्जता से तथा अ-पापभीरुता से।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से... पैदा होता है।"

१९०. "भिक्षुओ, इन दो धर्मों से युक्त कोई व्यक्ति शरीर के छूटने पर, मरने के बाद, सुगति प्राप्तकर स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है।

"किन दो धर्मों से?

"अक्रोध तथा अनुपनाह से... लज्जा से तथा पापभीरुता से।

"भिक्षुओ, इन दो धर्मों से... उत्पन्न होता है।"

२. अकुशल पर्याय

१९१-२००. "भिक्षुओ, ये दो धर्म अकुशल हैं..."(देखें १८१)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म कुशल हैं..."(देखें १८२)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म सदोष हैं..."(देखें १८१)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म निर्दोष हैं..."(देखें १८२)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म दुःख-कारक हैं..."(देखें १८१)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म सुख-कारक हैं..."(देखें १८२)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म दुःख-फलदायी हैं..."(देखें १८१)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म सुख-फलदायी हैं..."(देखें १८२)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म दुःखद हैं..."(देखें १८१)

"भिक्षुओ, ये दो धर्म सुखद हैं।

"कौन-से दो?

अक्रोध तथा अनुपनाह... अम्रक्ष तथा अप्रदास... अनीर्ष्या तथा अमात्सर्य... अमाया तथा अशठता... लज्जा तथा पापभीरुता।

"भिक्षुओ, ये दो धर्म सुखद हैं।"

३. विनय पर्याय

२०१. "भिक्षुओ, इन दो बातों का लाभ देख कर तथागत ने श्रावकों के लिए शिक्षा-पदों (नियमों) की प्रज्ञप्ति की है।

"किन दो बातों का?

"संघ की सुष्ठुता के लिए (संतुलन के लिए) तथा संघ की आसानी के लिए... (आसान प्रबंधन के लिए)।

"बड़बोले और अतिउत्साही व्यक्तियों का निग्रह करने के लिए तथा सदाचारी व्यक्तियों के सुखपूर्वक रहने के लिए...।

"इहलौकिक आस्रवों, वैरों, दोषों, भयों तथा अकुशल-धर्मों के संवर के लिए; पारलौकिक आस्रवों, वैरों, दोषों, भयों तथा अकुशल-धर्मों के प्रतिघात के लिए...।

"गृहस्थों पर अनुकंपा करने के लिए तथा पापेच्छ भिक्षुओं के पक्ष का नाश करने के लिए।

"अप्रसन्नों को प्रसन्न करने के लिए, प्रसन्नों को और भी अधिक प्रसन्न करने के लिए...।

"सद्धर्म को स्थित करने के लिए, विनय की रक्षा करने के लिए।

"भिक्षुओ, इन दोनों बातों का ख्याल कर तथागत ने श्रावकों के लिए शिक्षा-पदों (नियमों) की प्रज्ञप्ति की है।"

२०२-२३०. "...प्रातिमोक्ष[१] की प्रज्ञप्ति की है..."

"प्रातिमोक्ष उद्देशों की प्रज्ञप्ति की है..."

"प्रातिमोक्ष-स्थापना की प्रज्ञप्ति की है..."

"प्रवारणा की प्रज्ञप्ति की है..."

"प्रवारणा-स्थापना की प्रज्ञप्ति की है..."

"तर्जनीय-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"नियस्य-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"प्रव्राजनीय-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"प्रतिसारणीय-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"उत्क्षेपणीय-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"परिवास-दान की प्रज्ञप्ति की है..."

"मूल-प्रतिकर्षण की प्रज्ञप्ति की है..."

"मानत्त-दान की प्रज्ञप्ति की है..."

"अब्भान की प्रज्ञप्ति की है..."

"ओसारणीय की प्रज्ञप्ति की है..."

"निस्सारणीय की प्रज्ञप्ति की है..."

"उपसम्पदा की प्रज्ञप्ति की है..."

"ज्ञप्ति-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"ज्ञप्ति-द्वितीय-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"ज्ञप्ति-चतुर्थ-कर्म की प्रज्ञप्ति की है..."

"अप्रज्ञापित की प्रज्ञप्ति की है..."

---

१ 'विनय पर्याय' में आये सभी पारिभाषिक शब्दों जैसे प्रातिमोक्ष, तर्जनीय कर्म, नियस्य कर्म आदि के बारे में परिशिष्ट देखें।

"प्रज्ञापित की अनुप्रज्ञप्ति की है..."

"सन्मुख-विनय की प्रज्ञप्ति की है..."

"स्मृति-विनय की प्रज्ञप्ति की है..."

"अमूढ़-विनय की प्रज्ञप्ति की है..."

"प्रतिज्ञात-करण की प्रज्ञप्तिकी है..."

"येभूयिसका (बहुमत) की प्रज्ञप्तिकी है..."

"तस्सपापियसिका की प्रज्ञप्ति की है..."

"तृणविस्तारक (दोषों का संक्षेप में निराकरण) की प्रज्ञप्तिकी है..."

"कौन-सी दो के लिए?

"संघ की सुष्ठुता के लिए (संतुलन के लिए) तथा संघ की आसानी के लिए... (आसान प्रबंधन के लिए)।

"बड़बोले और अतिउत्साही व्यक्तियों का निग्रह करने के लिए तथा सदाचारी व्यक्तियों के सुखपूर्वक रहने के लिए...।

"इहलौकिक आस्रवों, वैरों, दोषों, भयों तथा अकुशल-धर्मों के संवर के लिए; पारलौकिक आस्रवों, वैरों, दोषों, भयों तथा अकुशल-धर्मों के प्रतिघात के लिए...।

"गृहस्थों पर अनुकंपा करने के लिए तथा पापेच्छ भिक्षुओं के पक्ष का नाश करने के लिए।

"अप्रसन्नों को प्रसन्न करने के लिए, प्रसन्नों को और भी अधिक प्रसन्न करने के लिए...।

"सद्धर्म को स्थित करने के लिए, विनय की रक्षा करने के लिए।

"भिक्षुओ, इन दोनों बातों का ख्याल कर तथागत ने श्रावकों के लिए शिक्षा-पदों (नियमों) की प्रज्ञप्ति की है।"

४. राग पर्याय

२३१. "भिक्षुओ, राग (के यथार्थ स्वरूप) के अभिज्ञान के लिए दो धर्मों की भावना (अभ्यास) करनी चाहिए।

"कौन-से दो?

"शमथ तथा विपश्यना की।भिक्षुओ, राग के अभिज्ञान के लिए दो धर्मों की भावना करनी चाहिए।

"भिक्षुओ, राग के परिज्ञान के लिए, परिक्षय के लिए, प्रहाण के लिए, क्षय के लिए, व्यय के लिए, विराग के लिए, निरोध के लिए, त्याग के लिए,

प्रतिनिसर्ग के लिए, इन दो धर्मों की भावना करनी चाहिए"... (२३१ अनुसार)।

२३२-२४६. "भिक्षुओ, द्वेष के, मोह के, क्रोध के, उपनाह के, म्रक्ष के, प्रदास के, ईर्ष्या के, मात्सर्य के, माया के, शठता के, हठपने के, सारंभ के, मान के, अतिमान के, मद के, प्रमाद के (यथार्थ स्वरूप के) अभिज्ञान के लिए, परिज्ञान के लिए, परिक्षय के लिए, प्रहाण के लिए, क्षय के लिए, व्यय के लिए, विराग के लिए, निरोध के लिए, त्याग के लिए, प्रतिनिसर्ग के लिए, दो धर्मों की भावना करनी चाहिए।

"कौन-से दो?

"शमथ की तथा विपश्यना की।... इन दो धर्मों की भावना करनी चाहिए।"

ऐसा भगवान ने कहा। प्रसन्न हो भिक्षुओं ने भगवान के कथन का अभिनंदन किया।

द्विक निपात समाप्त।

* * * * *

विषय-सूची

त्रिक-निपात (१-५)

१. प्रथम पंचाशतक

१. मूर्ख वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - - १०८

१. भय सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - - १०८
२. लक्षण सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - १०८
३. चिंतन सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - १०९
४. अत्यय (दोष) सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - १०९
५. अयथार्थ सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - ११०
६. अकुसल सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - ११०
७. सावद्य सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - १११
८. दुर्भाव सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - १११
९. उच्छिन्नमूल सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - १११
१०. मल सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - ११२

२. रथकार वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - ११३

१. ज्ञात सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - ११३
२. स्मरणीय सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - ११३
३. आशा सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - ११४
४. चक्रवर्ती सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - ११६
५. सचेतन सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - ११७
६. अनुलोम मार्ग सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - १२०
७. स्वकष्ट सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - १२१
८. देवलोक सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - १२१
९. वणिक सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - - - - १२२
१०. वणिक सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - - १२३

३. पुद्गल वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - - १२४

१. समिद्ध सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - १२४
२. ग्लान सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - १२६
३. संस्कार सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - १२७
४. बहूपकार सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - १२८
५. वज्रोपम सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - १२९
६. सेवितव्य सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - १३०
७. जुगुप्सितव्य (घृणा करने योग्य) सुत्त - - - - - - - - - १३१

८. गूथभाषी (विष्ठा) सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - १३३
९. अंध सुत्त - १३४
१०. अवकुब्ज (औंधा घड़ा) सुत्त - - - - - - - - - - - - - १३६
४. देवदूत वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - - - - - १३८
१. सब्रह्मक सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - - १३८
२. आनन्द सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - - १३९
३. सारिपुत्त सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - - १४०
४. निदान सुत्त - १४१
५. हत्थक सुत्त - १४३
६. देवदूत सुत्त - १४४
७. चतुर्महाराज सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - १४९
८. चतुर्महाराज सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - - - १५१
९. सुकुमार सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - - १५१
१०. अधिपति सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - १५४
५. चूळ वर्ग - १५६
१. सन्मुखभाव सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - १५६
२. त्रय स्थानिक सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - १५७
३. ध्यातव्य सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - - १५७
४. कथाफल सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - - १५८
५. पंडित सुत्त - १५८
६. सीलवंत सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - - १५८
७. संस्कृत-लक्षण सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - १५९
८. असंस्कृत-लक्षण सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - १५९
९. पर्वतराज सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - - १५९
१०. कठोर प्रयत्न करणीय सुत्त - - - - - - - - - - - - - १६०
११. महाचोर सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - - १६०

त्रिक निपात

१. प्रथम पंचाशतक

१. मूर्ख वर्ग

१. भय सुत्त

१. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया – "भिक्षुओ!" उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया –"भदंत!" भगवान ने कहा –"भिक्षुओ, जितने भी भय उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं। जितने भी उपद्रव उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं। जितने भी उपसर्ग (खतरे) उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं।

"भिक्षुओ, जैसे सरकंडों के घर में वा फूस के घर में लगी हुई आग लिपे-पुते, निर्वात (हवा रहित), अर्गलों वाले, बंद खिड़कियों वाले कूटागारों को भी जला डालती है, उसी प्रकार भिक्षुओ, जितने भी भय उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं। जितने भी उपद्रव उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं। जितने भी उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, वे मूर्ख से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं।

"भिक्षुओ, इस प्रकार मूर्ख सभय होता है, पंडित निर्भय होता है, मूर्ख स-उपद्रव होता है, पंडित उपद्रव-रहित होता है, मूर्ख स-उपसर्ग होता है, पंडित उपसर्ग-रहित होता है। भिक्षुओ, पंडित से भय नहीं है, पंडित से उपद्रव नहीं है, पंडित से उपसर्ग नहीं है।

"इस कारण ठीक इसी प्रकार भिक्षुओ, सीखना चाहिए –जिन तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति मूर्ख समझा जाता है उन तीन धर्मों को त्यागकर तथा जिन तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति पंडित समझा जाता है उन तीन धर्मों से समन्वित होकर रहेंगे। ठीक इस प्रकार भिक्षुओ, तुम्हें सीखना चाहिए।"

२. लक्षण सुत्त

२. "कर्म ही मूर्ख का लक्षण है (अर्थात, कर्म से ही मूर्ख पहचाना जाता है)। भिक्षुओ, कर्म ही पंडित का लक्षण है (अर्थात, कर्म से ही पंडित पहचाना जाता है)। प्रज्ञा चरित्र से ही शोभायमान होती है।

"भिक्षुओ, इन तीन बातों से युक्त व्यक्ति को मूर्ख समझना चाहिए। किन तीन बातों से? कायिक-दुश्चरित से, वाचिक-दुश्चरित से तथा मानसिक-दुश्चरित से। भिक्षुओ, इन तीन बातों से युक्त व्यक्ति को मूर्ख जानना चाहिए।

"भिक्षुओ, इन तीन बातों से युक्त व्यक्ति को पंडित समझना चाहिए। किन तीन बातों से? कायिक-सुचरित से, वाचिक-सुचरित से तथा मानसिक-सुचरित से। भिक्षुओ, इन तीन बातों से युक्त व्यक्ति को पंडित जानना चाहिए।

"इस कारण ठीक इसी प्रकार भिक्षुओ, सीखना चाहिए – जिन तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति मूर्ख समझा जाता है उन तीन धर्मों का त्याग कर तथा जिन तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति पंडित समझा जाता है उन तीन धर्मों से समन्वित होकर रहेंगे। ठीक इस प्रकार भिक्षुओ, तुम्हें सीखना चाहिए।"

३. चिंतन सुत्त

३. "भिक्षुओ, मूर्ख के ये तीन लक्षण, निमित्त, चिह्न हैं। कौन-से तीन? भिक्षुओ, मूर्ख बुरे विचार रखता है, बुरी वाणी बोलता है, बुरे कर्म करता है। भिक्षुओ, यदि मूर्ख बुरे विचार न रखे, बुरी वाणी न बोले, बुरे कर्म न करे, तो पंडित-लोग यह कैसे जानेंगे कि यह महाशय असत्पुरुष हैं, मूर्ख हैं। क्योंकि भिक्षुओ, मूर्ख बुरे विचार रखता है, बुरी वाणी बोलता है, बुरे कर्म करता है, इसीलिए पंडित-लोग जान लेते हैं कि यह महाशय असत्पुरुष हैं, मूर्ख हैं। भिक्षुओ, ये तीन मूर्ख के लक्षण, निमित्त, चिह्न हैं।"

"भिक्षुओ, पंडित के ये तीन लक्षण, निमित्त, चिह्न हैं। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, पंडित अच्छे विचार रखता है, अच्छी वाणी बोलता है, अच्छे कर्म करता है। भिक्षुओ, यदि पंडित अच्छे विचार न रखे, अच्छी वाणी न बोले, अच्छे कर्म न करे तो पंडित लोग कैसे जानेंगे कि यह सत्पुरुष हैं, पंडित हैं। क्योंकि भिक्षुओ, पंडित अच्छे विचार रखता है, अच्छी वाणी बोलता है, अच्छे कर्म करता है, इसीलिए पंडित-लोग जान लेते हैं कि यह सत्पुरुष हैं, पंडित हैं। भिक्षुओ, ये तीन पंडित के लक्षण, निमित्त, चिह्न हैं। इसलिए ठीक इसी प्रकार भिक्षुओ, तुम्हें... सीखना चाहिए।"

४. अत्यय (दोष) सुत्त

४. "भिक्षुओ, तीन धर्मों (बातों) से युक्त को मूर्ख जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"वह अपने 'दोष' को 'दोष' करके नहीं देखता, 'दोष' को 'दोष' करके देखकर वह उसका 'प्रतिकर्म' नहीं करता, यदि कोई दूसरा अपना 'दोष' स्वीकार करे तो वह उसे धर्मानुसार क्षमा नहीं करता। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त को मूर्ख जानना चाहिए। इसलिए ठीक इसी प्रकार... सीखना चाहिए।"

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को पंडित समझना चाहिए। कौन-से तीन से?

"वह अपने 'दोष' को 'दोष' करके देखता है, 'दोष' को 'दोष' करके देखकर वह उसका 'प्रतिकर्म' करता है, यदि कोई दूसरा अपना 'दोष' स्वीकार करे तो वह उसे धर्मानुसार क्षमा करता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त को पंडित जानना चाहिए। इसलिए ठीक इसी प्रकार... सीखना चाहिए।"

५. अयथार्थ सुत्त

५. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'मूर्ख' जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"गलत ढंग से प्रश्न पूछने वाला होता है, गलत ढंग से प्रश्न का उत्तर देने वाला होता है, दूसरे के समग्र रूप से, परिमार्जित भाषा में, सुसंगत उत्तर दिये जाने पर भी अनुमोदन करनेवाला नहीं होता। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त को 'मूर्ख' जानना चाहिए।"

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'पंडित' जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"उचित ढंग से प्रश्न पूछने वाला होता है, उचित ढंग से प्रश्न का उत्तर देने वाला होता है, दूसरे के समग्र रूप से, परिमार्जित भाषा में, सुसंगत उत्तर दिये जाने पर अनुमोदन करनेवाला होता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त को 'पंडित' जानना चाहिए। इसलिए ठीक इसी प्रकार... सीखना चाहिए।"

६. अकुसल सुत्त

६. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'मूर्ख' जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"अकुशल कायिक-कर्म से, अकुशल वाचिक-कर्म से, तथा अकुशल मानसिक-कर्म से। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त 'मूर्ख' होता है।"

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'पंडित' जानना चाहिए। कौन-से तीन?

"कुशल कायिक-कर्मसे, कुशल वाचिक-कर्मसे, कुशल मानसिक-कर्म से। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त को 'पंडित' जानना चाहिए। इसलिए ठीक इसी प्रकार... सीखना चाहिए।"

७. सावद्य सुत्त

७. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'मूर्ख' जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"सदोष (सावद्य) कायिक-कर्मसे, सदोष वाचिक-कर्मसे, सदोष मानसिक-कर्मसे युक्त...।

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'पंडित' जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"निर्दोष (अनवद्य) कायिक-कर्मसे, निर्दोष वाचिक-कर्मसे, निर्दोष मानसिक-कर्मसे...। इसलिए ठीक इसी प्रकार... सीखना चाहिए।"

८. दुर्भाव सुत्त

८. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'मूर्ख' जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"दुर्भावपूर्ण कायिक-कर्मसे... दुर्भावपूर्ण मानसिक-कर्मसे...।

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त को 'पंडित' जानना चाहिए। कौन-से तीन से?

"सद्भावपूर्ण कायिक-कर्मसे... सद्भावपूर्ण मानसिक-कर्मसे...।

"भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त को 'पंडित' जानना चाहिए।

"इसलिए ठीक इसी प्रकार भिक्षुओ, सीखना चाहिए – जिन तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति मूर्ख समझा जाता है उन तीन धर्मों का त्याग कर तथा जिन तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति पंडित समझा जाता है उन तीन धर्मों से समन्वित होकर रहेंगे।

"ठीक इसी प्रकार भिक्षुओ, तुम्हें सीखना चाहिए।"

९. उच्छिन्नमूल सुत्त

९. "भिक्षुओ, इन तीन धर्मों (बातों) से युक्त मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष, मूल समेत उखाड़ दिये के समान (उच्छिन्नमूल), सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष

होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है। कौन-से तीन से?

"कायिकदुराचरण से, वाचिक दुराचरण से तथा मानसिक दुराचरण से।"

"भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष, मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ-पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।"

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष, मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ-पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है। कौन-से तीन से?

"कायिकसदाचरण से, वाचिक सदाचरण से, तथा मानसिक सदाचरण से।

"भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान न होकर सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है और बहुत पुण्य कमाता है।"

१०. मल सुत्त

१०. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति बिना तीन मलों का त्याग किये नरक में डाल दिये गये के समान होता है। कौन-से तीन से?

"दुश्शील होता है, तथा उसका दुःशील-मल अप्रहीण होता है; ईर्ष्यालु होता है तथा उसका ईर्ष्या-मल अप्रहीण होता है, मात्सर्य-युक्त होता है तथा उसका मात्सर्य-मल अप्रहीण होता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त बिना तीन मलों का त्याग किये नरकमें डाल दिये गये के समान होता है।"

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति तीन मलों का त्याग कर स्वर्ग में डाल दिये गये के समान होता है। कौन-से तीन से?

"सदाचारी होता है और इसका दुराचार-रूपी मल प्रहीण होता है, ईर्ष्या-रहित होता है और इसका ईर्ष्यारूपी मल प्रहीण होता है, मात्सर्य-रहित होता है और इसका मात्सर्यरूपी मल प्रहीण होता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त व्यक्ति तीन मलों का त्याग कर स्वर्ग में डाल दिये गये के समान होता है।"

* * * * *

२. रथकार वर्ग

१. ज्ञात सुत्त

११. "भिक्षुओ, तीन धर्मों (बातों) से युक्त (ज्ञात) प्रसिद्ध भिक्षु बहुत जनों के अहित का कारण होता है, बहुत जनों के असुख का कारण होता है, बहुत जनों के अनर्थ तथा अहित का कारण होता है, और देव-मनुष्यों के दुःख का कारण होता है। कौन-से तीन से?

"प्रतिकूल कायिक-कर्म करने के लिए (दूसरे को) प्रेरित करता है, प्रतिकूल वाचिक-कर्म करने के लिए प्रेरित करता है, प्रतिकूल मानसिक-कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्रसिद्ध भिक्षु बहुत जनों के अहित का कारण होता है, बहुत जनों के असुख का कारण होता है, बहुत जनों के अनर्थ तथा अहित का कारण होता है और देव-मनुष्यों के दुःख का कारण होता है।

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त प्रसिद्ध भिक्षु बहुत जनों के हित का कारण होता है, बहुत जनों के सुख का कारण होता है, बहुत जनों के अर्थ तथा हित का कारण होता है और देव-मनुष्यों के सुख का कारण होता है। कौन-से तीन से?

"अनुकूल कायिक-कर्म करता है, अनुकूल वाचिक-कर्म करता है, अनुकूल मानसिक-कर्म करता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्रसिद्ध भिक्षु बहुत जनों के हित का कारण होता है, बहुत जनों के सुख का कारण होता है, बहुत जनों के अर्थ तथा हित का कारण होता है और देव-मनुष्यों के सुख का कारण होता है।"

२. स्मरणीय सुत्त

१२. "भिक्षुओ, ये तीन बातें मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा को जन्मभर याद रहती हैं। कौन-सी तीन?

"भिक्षुओ, जिस जगह मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा जन्म ग्रहण करता है, भिक्षुओ, यह पहली बात है जो मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा को जन्मभर याद रहती है।

"फिर भिक्षुओ, जिस जगह मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का राज्याभिषेक होता है, भिक्षुओ, यह दूसरी बात है जो मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा को जन्मभर याद रहती है।

"फिर भिक्षुओ, जिस जगह मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा संग्राम जीत कर, विजयी होकर, विजय के उसी स्थान पर रहता है, भिक्षुओ, यह तीसरी बात है जो मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा को जन्मभर याद रहती है।

"भिक्षुओ, ये तीन बातें मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा को जन्मभर याद रहती हैं। इसी प्रकार भिक्षुओ, ये तीन बातें भिक्षु को जन्मभर याद रहती हैं। कौन-सी तीन?

"भिक्षुओ, जिस जगह भिक्षु बाल-दाढ़ी मुँड़वा, काषाय वस्त्र पहन, घर से बे-घर हो प्रव्रजित होता है, भिक्षुओ, यह पहली बात है जो भिक्षु को जन्मभर याद रहती है।

"फिर भिक्षुओ, जिस जगह भिक्षु 'यह दुःख है', इसे यथाभूत जान लेता है, 'यह दुःख-समुदय है', इसे यथाभूत जान लेता है, 'यह दुःख-निरोध है', इसे यथाभूत जान लेता है, 'यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपदा है', इसे यथाभूत जान लेता है, भिक्षुओ, यह दूसरी बात है जो भिक्षु को जन्मभर याद रहती है।

"फिर भिक्षुओ, जिस जगह भिक्षु आस्रवों का क्षय करके, अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है, भिक्षुओ, यह तीसरी बात है जो भिक्षु को जन्मभर याद रहती है।

"भिक्षुओ, ये तीन बातें भिक्षु को जन्मभर याद रहती हैं।"

३. आशा सुत्त

१३. "भिक्षुओ, लोक में तीन तरह के व्यक्ति हैं। कौन-से तीन?

"निराश (शून्याश), आशावान तथा पूर्णाश (आशापूर्ण)।[1]

---

१ पालि में यहां **'निरासो'**, **'आसंसो'** तथा **'विगतासो'** है। इनका अनुवाद क्रमशः निराश, आशावान तथा आशापूर्ण किया जाता है। यहां **'निरासो'** का अर्थ उस व्यक्ति से है जिसके मन में कोई आशा ही नहीं जगती। हिंदी में 'निराश' का अर्थ है जिसकी आशा ही पूरी नहीं हुई। इसका दूसरा अर्थ आशा रहित होना भी है, पर इस अर्थ में इसका प्रयोग हिंदी में बहुधा नहीं होता। लेकिन यहां **'निरासो'** से तात्पर्य वैसे व्यक्ति से नहीं है जिसकी आशा पूरी नहीं हुई, बल्कि वैसे व्यक्ति से है जिसके मन में कोई आशा ही नहीं जगती। 'जिसको कोई आशा ही नहीं' या 'जिसकी आशा पूरी नहीं हुई' में जिस तरह का अंतर है, वही अंतर 'शून्याश' और 'निराश' में है। यद्यपि बृहत हिंदी शब्द कोश में 'शून्याश' शब्द नहीं है, पर हिंदी में इस तरह का शब्द गढ़ा जाना चाहिए ताकि वह समृद्ध हो सके। 'शून्याश' जिस मानसिक स्थिति का बोध कराता है वह 'निराश' बोध नहीं कराता। 'विगतास' का पूर्णाश किया गया है जो 'बृहत हिंदी कोश' में है। इसी के अनुरूप 'शून्याश' गढ़ा गया है।

"भिक्षुओ, निराश व्यक्ति किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति नीच-कुल में जन्म ग्रहण करता है, दरिद्र-कुल में जन्म ग्रहण करता है, अल्प खाद्य-पेय कुल में, दुर्जीविका-कुल में, जहां कठिनाई से खाना-पीना मिलता है जैसे चंडाल कुल में, शिकारियों के कुल में, बंस-फोड़ों के कुल में, रथकार के कुल में, मैला साफ करनेवालों के कुल में। वह दुर्वर्ण होता है, दुर्दर्शनीय, बौना, रोग-बहुल, काना, लूला, लंगड़ा वा पक्षाघात हुआ हुआ। उसे न अन्न-पान मिलता है, न वस्त्र मिलता है, न सवारी मिलती है, न माला-गंध-विलेपन मिलता है, न शय्या मिलती है, न निवासस्थान मिलता है और न प्रदीप मिलता है। वह सुनता है कि अमुक नाम के क्षत्रिय का क्षत्रियों द्वारा राज्याभिषेक हुआ है। उसके मन में यह नहीं होता कि मुझे भी, क्षत्रिय कब क्षत्रियाभिषेक से अभिषिक्त करेंगे – भिक्षुओ, ऐसा (व्यक्ति) निराश (शून्याश) व्यक्ति कहलाता है।

"भिक्षुओ, आशावान व्यक्ति किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, राज्याभिषिक्त, क्षत्रिय राजा का ज्येष्ठ पुत्र होता है, अभिषेकार्ह, अनभिषिक्त, वयः-प्राप्त। वह सुनता है अमुक नाम का क्षत्रिय क्षत्रियों द्वारा क्षत्रियाभिषेक से अभिषिक्त हुआ है। उसके मन में यह होता है कि क्षत्रिय मुझे भी कब क्षत्रियाभिषेक से अभिषिक्त करेंगे? भिक्षुओ, ऐसा (व्यक्ति) आशावान व्यक्ति कहलाता है।

"भिक्षुओ, पूर्णाश व्यक्ति किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, राज्याभिषिक्त क्षत्रिय राजा होता है। वह सुनता है कि अमुक नाम का क्षत्रिय क्षत्रियों द्वारा क्षत्रियाभिषेक से अभिषिक्त हुआ है। उसके मन में यह नहीं होता कि मुझे भी क्षत्रिय कब क्षत्रियाभिषेक से अभिषिक्त करेंगे। यह किसलिए? भिक्षुओ, अभिषेक से पूर्व की इसकी अभिषिक्त होने की आशा पूरी हो चुकी है। भिक्षुओ, ऐसा (व्यक्ति) पूर्णाश व्यक्ति कहलाता है।

"भिक्षुओ, इस लोक में ये तीन प्रकार के व्यक्ति हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, भिक्षुओं में भी तीन प्रकार के भिक्षु हैं। कौन-से तीन?

"निराश (शून्याश), आशावान तथा पूर्णाश।

"भिक्षुओ, निराश भिक्षु किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, एक भिक्षु दुःशील होता है, पापी, अपवित्र, सशंकित आचरण वाला, प्रच्छन्नकर्मी (छिपकर दुष्कर्म करने वाला), श्रमण न होने पर भी श्रमण

होने का दावा करने वाला, ब्रह्मचारी न होते हुए भी ब्रह्मचारी होने का दावा करने वाला, भीतर से सड़ा हुआ, स्रावयुक्त, कूड़े के ढेर जैसा। वह सुनता है कि अमुक भिक्षु आस्रवों का क्षय करके ,अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। उसके मन में यह नहीं होता – मैं भी कब आस्रवों का क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमोक्ष को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करूंगा। भिक्षुओ, ऐसा (भिक्षु) निराश भिक्षु कहलाता है।

"भिक्षुओ, आशावान भिक्षु किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, भिक्षु सदाचारी होता है कल्याणधर्मी। वह सुनता है कि अमुक भिक्षु आस्रवों का क्षय करके ,अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। उसके मन में यह होता है – मैं भी कब आस्रवों का क्षय कर... विहार करूंगा।

"भिक्षुओ, ऐसा (भिक्षु) आशावान भिक्षु कहलाता है।

"भिक्षुओ, पूर्णाश भिक्षु किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, एक (भिक्षु) क्षीणास्रव अर्हत होता है। वह सुनता है कि अमुक भिक्षु आस्रवों का क्षय कर...विहार करता है। उसके मन में यह नहीं होता –मैं भी कब आस्रवों का क्षय कर...विहार करूंगा। यह किसलिए? भिक्षुओ, मुक्त होने से पूर्व की इसकी मुक्त होने की आशा शांत हो चुकी है।

"भिक्षुओ, ऐसा (भिक्षु) पूर्णाश भिक्षु कहलाता है। भिक्षुओ, भिक्षुओं में ये तीन प्रकार के भिक्षु हैं।"

४. चक्रवर्ती सुत्त

१४. "भिक्षुओ, जो चक्रवर्ती, धार्मिक, धर्म-राजा होता है, वह भी राजाविहीन होकर चक्रवर्तीराज्य नहीं करता।"

ऐसा कहने पर एक भिक्षु ने भगवान से यह कहा –"भंते, धार्मिक चक्रवर्ती, धर्म-राजा का राजा कौन?"

"भिक्षु! धर्म ही राजा है।" भगवान ने कहा –

"यहां भिक्षु! धार्मिक चक्रवर्ती, धर्म-राजा, धर्म के ही लिए, धर्म का सत्कार करते हुए, धर्म के प्रति गौरव प्रदर्शित करते हुए, धर्म की पूजा करते हुए, धर्म-ध्वज, धर्म-केतु, धर्माधिपत्य, जनता की धर्मानुकूल सुरक्षा की व्यवस्था करता है।

"यहां भिक्षु! और फिर, धार्मिक चक्रवर्ती, धर्म-राजा, धर्म के ही लिए, धर्म का सत्कार करते हुए, धर्म के प्रति गौरव प्रदर्शित करते हुए, धर्म की पूजा करते हुए, धर्म-ध्वज, धर्म-केतु, धर्माधिपत्य, क्षत्रियों की, अनुगामी क्षत्रियों की, सेना की, ब्राह्मण-गृहपतियों की, निगम-जनपद के लोगों की, श्रमण-ब्राह्मणों की तथा पशु-पक्षियों की धर्मानुकूल सुरक्षा की व्यवस्था करता है।

"हे भिक्षु! वह धार्मिक राजा चक्रवर्ती... धार्मिक सुरक्षा की व्यवस्था करके ...क्षत्रियों की... पशु-पक्षियों की, रक्षा के लिए धर्मानुसार ही (राज्य-) चक्र का प्रवर्तन करता है। वह चक्र किसी अन्य मनुष्य द्वारा, किसी शत्रु द्वारा, या किसी प्राणी द्वारा उल्टा घुमाया नहीं जा सकता।[1]

"इसी प्रकार हे भिक्षु! सम्यक संबुद्ध अर्हत, तथागत धार्मिक, धर्म-राजा, धर्म के ही लिए, धर्म का सत्कार करते हुए, धर्म के प्रति गौरव प्रदर्शित करते हुए, धर्म की पूजा करते हुए, धर्म-ध्वज, धर्म-केतु, धर्माधिपत्य, कायिक-कर्म के प्रति धार्मिक पहरेदारी की व्यवस्था करते हैं – इस प्रकार का कायिक-कर्म करना चाहिए, इस प्रकार का कायिक-कर्म नहीं करना चाहिए।

"और फिर भिक्षु! सम्यक संबुद्ध अर्हत, तथागत धार्मिक, धर्म-राजा, धर्म के ही लिए, धर्म का सत्कार करते हुए, धर्म के प्रति गौरव प्रदर्शित करते हुए, धर्म की पूजा करते हुए, धर्म-ध्वज, धर्म-केतु, धर्माधिपत्य वाचिक-कर्म के प्रति... वाचिक-कर्म करना चाहिए, इस प्रकार का वाचिक-कर्म नहीं करना चाहिए। ...मानसिक-कर्म करना चाहिए, इस प्रकार का मानसिक-कर्म नहीं करना चाहिए।

"हे भिक्षु! वह सम्यक संबुद्ध अर्हत, तथागत, धार्मिक, धर्म-राजा... धर्माधिपत्य पहरेदारी की व्यवस्था कर धर्म से ही अनुत्तर (श्रेष्ठ) धर्म-चक्र का प्रवर्तन करता है। उस धर्म-चक्र को लोक में न कोई दूसरा श्रमण, न कोई ब्राह्मण, न देव, न मार, न ब्रह्मा और न कोई और अप्रवर्तित कर सकता है।"

५. सचेतन सुत्त

१५. एक समय भगवान वाराणसी में ऋषिपतन मृगदाय में विहार कर रहे थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया –

"भिक्षुओ!"

१ पालि के **'अप्पटिवत्तियं'** का अर्थ होता है 'जो उल्टा घुमाया नहीं जा सकता' अर्थात जब धर्म-चक्र प्रवर्त्तन होता है तब उसे कोई उल्टा नहीं घुमा सकता। धर्मचक्र प्रवर्त्तित करना तो बड़ी बात है, उस प्रवर्त्तित धर्म-चक्र को कोई उल्टा भी नहीं घुमा सकता।

"भदंत !" कह उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ! पूर्व समय में सचेतन नाम का राजा हुआ था। भिक्षुओ! तब राजा सचेतन ने रथकार को बुलाकर कहा –

'सौम्य रथकार! छः महीनों के बाद संग्राम होगा। क्या तू इस बीच (रथ के) पहियों की नयी जोड़ी बना सकेगा?'

"भिक्षुओ, रथकार ने सचेतन राजा को प्रत्युत्तर दिया –

'बना सकूंगा।'

"तब भिक्षुओ, रथकार ने छः दिन कम छः महीने में एक पहिया बनाया। तब भिक्षुओ, राजा सचेतन ने रथकार को संबोधित किया –

'सौम्य रथकार! आज से छः दिन के बाद संग्राम होगा, नये पहियों की जोड़ी बनकर तैयार हुई?'

'देव! इन छः दिन कम छः महीनों में एक पहिया बन कर तैयार हुआ है।'

'सौम्य! इन छः दिनों में दूसरा एक पहिया बना सकोगे?'

"भिक्षुओ, रथकार ने सचेतन राजा को उत्तर दिया –

'देव! बना सकूंगा।'

"तब भिक्षुओ, रथकार ने छः दिनों में दूसरा पहिया तैयार किया और इन पहियों की नयी जोड़ी को लेकर राजा सचेतन के पास गया। जाकर उसने राजा सचेतन को यह कहा –

'देव! यह आपकी पहियों की जोड़ी तैयार है।'

'सौम्य रथकार! यह जो एक पहिया तूने छः दिन कम छः महीनों में तैयार किया, और यह जो दूसरा पहिया छः दिनों में तैयार किया, इन दोनों में क्या अंतर है? मैं इन दोनों में कोई भेद नहीं देखता।'

'देव! इन दोनों में अंतर है। देव! इन दोनों का अंतर देखें।'

"भिक्षुओ, तब रथकार ने छः दिन में बने हुए पहिये को प्रवर्तित किया। प्रवर्तित किया हुआ वह पहिया जितनी जोर से धकेला गया था उस जोर के समाप्त होते ही चक्कर खा कर जमीन पर गिर पड़ा। तब उसने जो पहिया छः दिन कम छः महीने में बनाया था उसे प्रवर्तित किया। प्रवर्तित किया हुआ वह पहिया जितने जोर से धकेला गया था उस जोर की गति के अनुसार जाकर मानो धुरी पर स्थित की तरह खड़ा हो गया।

'सौम्य रथकार!इसका क्या हेतु है, क्या कारणहै कि जो यह छः दिन में बना हुआ पहिया है वह जितने जोर से प्रवर्तित कियागया था, उस जोर के समाप्त होते ही चक्कर खा कर जमीन पर गिर पड़ा, और जो पहिया छः दिन कम छः महीने में तैयार हुआ वह पहिया जितने जोर से प्रवर्तित कियागया था उस जोर के अनुसार जाकर धुरी पर स्थित कीतरह खड़ा हो गया?'

'देव! जो यह पहिया छः दिनों में बनकर समाप्त हुआ है उसकी नेमि भी टेढ़ी है, सदोष है, कसर-सहित (त्रुटिपूर्ण है) है, उसके आरे भी टेढ़े हैं, सदोष हैं, कसर-सहित हैं, उसकी नाभि भी टेढ़ी है, सदोष है, कसर-सहित है। उसकी नेमि के भी टेढ़े, सदोष, तथा कसर-सहित होने से, उसके आरों के भी टेढ़े, सदोष तथा कसर-सहित होने से, उसकी नाभि भी टेढ़ी, सदोष तथा कसर-सहित होने से वह पहिया जितने जोर से प्रवर्तित कियागया था उस जोर के समाप्त होते ही चक्कर खा कर जमीन पर गिर पड़ा। और देव! यह जो पहिया छः दिन कम छः महीने में तैयार हुआ उसकी नेमि भी सीधी है, निर्दोष है, कसर-रहित है, उसके आरे भी सीधे हैं, निर्दोष हैं, कसर-रहित हैं, उसकी नाभि भी सीधी है, निर्दोष है तथा कसर-रहित है। उसकी नेमि के भी सीधे, निर्दोष तथा कसर-रहित होने से, उसके आरों के भी सीधे, निर्दोष तथा कसर-रहित होने से, उसकी नाभि के भी सीधे, निर्दोष तथा कसर-रहित होने से यह जो पहिया छः दिन कम छः महीने में तैयार हुआ वह पहिया जितने जोर से प्रवर्तित कियागया था उस जोर के अनुसार मानो धुरी पर स्थित की तरह खड़ा हो गया।'

"भिक्षुओ, संभव है कि तुम यह सोचो कि वह रथकार कोईदूसरा ही था। भिक्षुओ, यह बात इस प्रकार नहीं समझनी चाहिए। मैं ही उस समय वह रथकार था। उस समय मैं लकड़ी के टेढ़ेपन, दोष, लकड़ी की कसरें दूर करने में कुशल था। इस समय भिक्षुओ, मैं अर्हत सम्यक संबुद्ध, शरीर, मन तथा वाणी के टेढ़ेपन, दोष और कसरों को दूर करने में कुशल हूं।

"भिक्षुओ, जिस किसी भिक्षु वा भिक्षुणी के शरीर, वाणी तथा मन का टेढ़ापन, दोष तथा कसर दूर नहीं हुई है वे इस धर्म-विनय से उसी प्रकार गिरे हैं जैसे वह छः दिनों में बना हुआ पहिया।

"भिक्षुओ, जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणी के शरीर, वाणी तथा मन का टेढ़ापन, दोष तथा कसर दूर हो गई है, भिक्षुओ, वे भिक्षु तथा भिक्षुणियां इस धर्म-विनय में उसी प्रकार प्रतिष्ठित हैं जैसे छः दिन कम छः महीने में बना हुआ पहिया।

"इसलिए ठीक इसी प्रकार भिक्षुओ, सीखना चाहिए: शरीर, वाणी तथा मन के टेढ़ेपन, दोषों और कसरों का त्याग करेंगे। भिक्षुओ, तुम्हें ऐसा ही सीखना चाहिए।"

६. अनुलोम मार्ग सुत्त

१६. "भिक्षुओ, तीन धर्मों (बातों) से युक्त भिक्षु अनुलोम-प्रतिपदा (मार्ग) का अनुगामी होता है और यह उसके आस्रवों के क्षय का आधार है। कौन-से तीन से?

"भिक्षुओ, यहां भिक्षु इंद्रियों को संयत रखता है, भोजन में मात्रज्ञ होता है, जागरूक रहने में लगा हुआ रहता है।

"भिक्षुओ, इंद्रियों को किस प्रकार संयत रखता है?

"भिक्षुओ, यहां भिक्षु चक्षु से रूप देखकर न उसके निमित्त[1] को ग्रहण करता है और न उसके अनुव्यंजन[2] को। जिस चक्षु-इंद्रिय के असंयत रहने से लोभ-दौर्मनस्य आदि पापी अकुशल धर्मों की उत्पत्ति हो सकती है, उसका संवर करने का प्रयत्न करता है, चक्षु-इंद्रिय की रक्षा करता है, चक्षु-इंद्रिय पर नियंत्रण प्राप्त करता है – श्रोत्र से शब्द सुन कर... घ्राण से गंध सूंघ कर... जिव्हा से रस चख कर... काय से स्पर्श कर... तथा मन से धर्म का ग्रहण कर न उनके निमित्त को ग्रहण करता है और न उनके अनुव्यंजन को, जिस मन-इंद्रिय के असंयत रहने से लोभ-दौर्मनस्य आदि पापी अकुशल-धर्मों की उत्पत्ति हो सकती है, उसका संवर करने का प्रयत्न करता है, मन-इंद्रिय की रक्षा करता है, मन-इंद्रिय पर नियंत्रण प्राप्त करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु इंद्रियों पर नियंत्रण प्राप्त करता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु भोजन में कैसे मात्रज्ञ होता है?

"भिक्षुओ, यहां भिक्षु ज्ञानपूर्वक ठीक से आहार ग्रहण करता है, न क्रीड़ा के लिए, न मद के लिए, न शरीर को मंडित करने के लिए और न विभूषित करने के लिए; बल्कि उतना ही जिससे इस काया की स्थिति बनी रहे, भूख के कारण जो दर्द हो उससे उपरत (विरत) रहने के लिए तथा ब्रह्मचर्य का अभ्यास करने के लिए ताकि पुरानी वेदना को दूर करें, नयी वेदना की उत्पत्ति न हो, और 'मेरी' (जीवन) यात्रा निर्दोष तथा सुखपूर्वक हो। इस प्रकार, भिक्षुओ, भिक्षु भोजन के विषय में मात्रज्ञ होता है।

---

१ **निमित्त** – स्त्री और पुरुष का रूप या आकृति एक दूसरे के लिए **'निमित्त'** है।

२ उनकी आँखें, नाक तथा बोलने या हँसने का तरीका अनुव्यंजन हैं। निमित्त के विस्तार में जाना अनुव्यंजन है।

"भिक्षुओ, भिक्षु जागरूक रहने में कैसे लगा रहता है?

"भिक्षुओ, यहां भिक्षु दिन में चंक्रमण करता रह कर अथवा बैठा रह कर आवरण (नीवरण) धर्मों को दूर कर चित्त को परिशुद्ध करता है, रात के प्रथम प्रहर में चंक्रमण करता हुआ अथवा बैठा रह कर आवरण धर्मों को दूर कर चित्त को परिशुद्ध करता है, रात्रि के मध्यम प्रहर में पैर पर पैर रखकर दाहिनी करवट सिंह-शैय्या में लेटता है, स्मृतिमान और संप्रज्ञानी हो, उठने के संकल्प को मन में जगह देकर, रात्रि के पिछले प्रहर में उठकर चंक्रमण करता हुआ अथवा बैठा हुआ आवरण धर्मों को दूर कर चित्त को परिशुद्ध करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु जागरूक रहने में लगा हुआ रहता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु अनुलोम-प्रतिपदा का अनुगामी होता है और उसका जन्म आस्रवों के क्षय में लगा होता है।"

७. स्वकष्ट सुत्त

१७. "भिक्षुओ, इन तीन धर्मों (बातों) से स्वयं को भी कष्ट होता है, दूसरों को भी कष्ट होता है तथा दोनों को भी कष्ट होता है। कौन-से तीन धर्मों से?

"कायिक-दुश्चरित्रता से, वाचिक-दुश्चरित्रता से तथा मानसिक-दुश्चरित्रता से। भिक्षुओ, इन तीन बातों से स्वयं को भी कष्ट होता है, दूसरों को भी कष्ट होता है तथा दोनों को भी कष्ट होता है।"

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से न स्वयं को भी कष्ट होता है, न दूसरों को भी कष्ट होता है और न दोनों को भी कष्ट होता है। कौन-से तीन?

"कायिक-सुचरित्रता से, वाचिक-सुचरित्रता से तथा मानसिक-सुचरित्रता से। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से न स्वयं को भी कष्ट होता है, न दूसरों को भी कष्ट होता है और न दोनों को भी कष्ट होता है।"

८. देवलोक सुत्त

१८. "भिक्षुओ, यदि अन्य मतों के परिव्राजक तुम्हें यह पूछें – आयुष्मानो! क्या श्रमण गौतम देव-लोक में उत्पन्न होने के लिए ब्रह्मचर्य का जीवन जीता है? तो भिक्षुओ, ऐसा पूछने पर क्या तुम्हें पीड़ा नहीं होगी, लज्जा नहीं आयगी, घृणा नहीं होगी?

"भंते! हां।"

"भिक्षुओ, इससे पहले कि तुम्हें दिव्य-आयु, दिव्य-वर्ण, दिव्य-सुख, दिव्य-यश तथा दिव्य-आधिपत्य से पीड़ा हो, लज्जा हो, घृणा हो, तुम्हें

कायिक-दुश्चरितसे, वाचिक-दुश्चरित से तथा मानसिक-दुश्चरित से पीड़ा होनी चाहिए, लज्जा होनी चाहिए, घृणा होनी चाहिए।"

९. वणिक सुत्त (प्रथम)

१९. "भिक्षुओ, जिस दुकानदार में ये तीन बातें होती हैं, वह अप्राप्त धन को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त धन को बढ़ा सकने में अक्षम होता है। कौन-सी तीन बातें ?

"यहां, भिक्षुओ, जो दुकानदार पूर्वाह्न में सावधानी से अपना कारोबार नहीं करता, मध्याह्न में सावधानी से अपना कारोबार नहीं करता, शाम में सावधानी से अपना कारोबार नहीं करता।भिक्षुओ, जिस दुकानदार में ये तीन बातें होती हैं वह अप्राप्त धन को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त धन को बढ़ा सकने में अक्षम होता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस भिक्षु में ये तीन धर्म होते हैं वह अप्राप्त कुशल-धर्म को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त कुशल-धर्म को बढ़ा सकने में अक्षम होता है।

"कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु पूर्वाह्न के समय सम्यक-प्रकार से समाधि के निमित्त का अधिष्ठान नहीं करता, मध्याह्न के समय सम्यक प्रकार से समाधि के निमित्त का अधिष्ठान नहीं करता, शाम के समय समाधि के निमित्त का अधिष्ठान नहीं करता।

"भिक्षुओ, जिस भिक्षु में ये तीन धर्म होते हैं, वह अप्राप्त कुशल-धर्म को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त कुशल-धर्मको बढ़ा सकने में अक्षमहोता है।

"भिक्षुओ, जिस दुकानदार में ये तीन बातें होती हैं, वह अप्राप्त धन को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त धन को बढ़ा सकने में सक्षम होता है। कौन-सी तीन बातें?

"यहां, भिक्षुओ, जो दुकानदार पूर्वाह्न के समय सावधानी से अपना कारोबार करता है, मध्याह्न के समय सावधानी से अपना कारोबार करता है, शाम के समय सावधानी से अपना कारोबार करता है। भिक्षुओ, जिस दुकानदार में ये तीन बातें होती हैं वह अप्राप्त धन को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त धन को बढ़ा सकने में सक्षमहोता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस भिक्षु में ये तीन धर्म होते हैं, वह अप्राप्त कुशल-धर्म को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त कुशल-धर्म को बढ़ा सकने में सक्षम होता है। कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु पूर्वाह्न के समय सम्यक प्रकार से समाधि के निमित्त का अधिष्ठान करता है, मध्याह्न के समय... शाम के समय समाधि के निमित्त का अधिष्ठान करता है। भिक्षुओ, जिस भिक्षु में ये तीन धर्म होते हैं वह अप्राप्त कुशल-धर्म को प्राप्त कर सकने में तथा प्राप्त कुशल-धर्म को बढ़ा सकने में सक्षम होता है।"

१०. वणिक सुत्त (द्वितीय)

२०. "भिक्षुओ, जिस दुकानदार में ये तीन बातें होती हैं, वह शीघ्र ही संपत्ति की अधिकता वा विपुलता को प्राप्त कर लेता है। कौन-सी तीन?

"यहां, भिक्षुओ, एक तो दुकानदार चक्षुमान होता है, दूसरे विदुर (जानकार) होता है, तीसरे विश्वासपत्र होता है।

"भिक्षुओ, दुकानदार चक्षुमान कैसे होता है? यहां, भिक्षुओ, दुकानदार बेचने के सामान को जानता है कि यह इस भाव खरीदा हुआ है, इस दाम पर बेचने से इतना मूल आ जायगा और इतना लाभ रहेगा। भिक्षुओ, इस प्रकार दुकानदार चक्षुमान होता है।

"भिक्षुओ, दुकानदार विदुर कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, दुकानदार बेचने का सामान खरीदने-बेचने में कुशल होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार दुकानदारविदुर होता है।

"भिक्षुओ, दुकानदार विश्वासपात्र कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, जो श्रीमान महाधनवान तथा महासंपत्तिशाली गृहपति वा गृहपति-पुत्र हैं वे उसके बारे में जानते हैं कि यह दुकानदार चक्षुमान है, विदुर है, पुत्र-स्त्री का पालन करने में समर्थ है तथा समय-समय पर हमें हमारे धन का सूद या लाभ देने में समर्थ है। वे उसे संपत्ति देते हैं कि सौम्य! यहां से यह संपत्ति ले जा, पुत्र-स्त्री का पोषण कर तथा समय-समय पर हमें भी सूद या लाभ दे। भिक्षुओ, इस प्रकार दुकानदार विश्वासपात्र होता है। भिक्षुओ, इन तीन बातों से दुकानदार शीघ्र ही संपत्ति की अधिकता व विपुलता को प्राप्त कर लेता है।

"इस प्रकार भिक्षुओ, जिस भिक्षु में ये तीन धर्म होते हैं वह शीघ्र ही कुशल-धर्मों में महानता वा विपुलता प्राप्त कर लेता है। कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु चक्षुमान होता है, विदुर होता है तथा विश्वासपात्र होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु चक्षुमान किस प्रकार होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दु:ख है' इसे यथार्थ रूप से जानता है... 'यह निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है' इसे यथार्थ रूप से जानता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु चक्षुमान होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु विदुर किस प्रकार होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अकुशल-धर्मों का प्रहाण करने के लिए तथा कुशल-धर्मों के उत्पादन के लिए प्रयत्नशील होता है, सामर्थ्यवान होता है, दृढ़ पराक्रमी होता है। वह कुशल-धर्मों का जुआ कंधे पर धारण किये होता है, अर्थात वह बिना श्रेष्ठ मार्ग को प्राप्त किये प्रयत्न करना नहीं छोड़ता है। भिक्षुओ, भिक्षु इस प्रकार विदुर होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु किस प्रकार विश्वासपात्र होता है? यहां, भिक्षुओ, भिक्षु जो बहुश्रुत भिक्षु हैं, जो आगम या शास्त्र के जानकार हैं, जो धर्मधर हैं, जो विनयधर हैं, जो मातृका-धर हैं, उनके पास समय-समय पर जाकर पूछता है, प्रश्न करता है – भंते! यह कैसे है, इसका क्या अर्थ है? उसके लिए वे आयुष्मान ढँके को उघाड़ देते हैं, अस्पष्ट को स्पष्ट कर देते हैं, अनेक प्रकार के संदिग्ध विषयों में शंका-समाधान कर देते हैं।

"भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु विश्वासपात्र होता है। भिक्षुओ, जिस भिक्षु में ये तीन धर्म होते हैं वह शीघ्र ही कुशल-धर्मों में महानता वा विपुलता प्राप्त कर लेता है।"

* * * * *

३. पुद्गल वर्ग

१. समिद्ध सुत्त

२१. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। तब आयुष्मान समिद्ध तथा आयुष्मान महाकोट्ठिक आयुष्मान सारिपुत्त के पास गये। जाकर आयुष्मान सारिपुत्त के साथ कुशलक्षेम की बातचीत की... एक ओर बैठे हुए आयुष्मान समिद्ध को आयुष्मान सारिपुत्त ने यह कहा –

"आयुष्मान समिद्ध! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। कौन-से तीन? एक काय-साक्षी, दूसरे दृष्टि-प्राप्त तथा तीसरे श्रद्धा-विमुक्त।

आयुष्मान! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। आयुष्मान! इन तीन प्रकार के लोगों में तुम्हें कौन-सा अधिक अच्छा, अधिक श्रेष्ठ जंचता है?"

"आयुष्मान सारिपुत्त! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। कौन-से तीन? काय-साक्षी, दृष्टि-प्राप्त तथा श्रद्धा-विमुक्त। आयुष्मान! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। आयुष्मान, इन तीन प्रकार के लोगों में जो यह श्रद्धा-विमुक्त है वह मुझे अधिक अच्छा, अधिक श्रेष्ठ जंचता है। यह किसलिए? आयुष्मान! इस व्यक्ति की श्रद्धा-इंद्रिय बलवती है।"

अब आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान महाकोट्ठिक को यह कहा – "आयुष्मान कोट्ठित! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। कौन-से तीन? कायसाक्षी... आयुष्मान! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। आयुष्मान! इन तीन प्रकार के लोगों में तुम्हें कौन-सा अधिक अच्छा, अधिक श्रेष्ठ जंचता है?"

"आयुष्मान सारिपुत्त! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। कौन-से तीन? काय-साक्षी... आयुष्मान! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। आयुष्मान! इन तीन प्रकार के लोगों में जो यह काय-साक्षी है वह मुझे अधिक अच्छा, अधिक श्रेष्ठ जंचता है। यह किसलिए? आयुष्मान! इस व्यक्ति की समाधि-इंद्रिय बलवती है।"

तब आयुष्मान महाकोट्ठिक ने आयुष्मान सारिपुत्त को यह कहा – "आयुष्मान सारिपुत्त! इस संसार में... कौन-से तीन? काय-साक्षी... आयुष्मान! इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। आयुष्मान! इन तीन प्रकार के लोगों में जो यह दृष्टि-प्राप्त है वह मुझे अधिक अच्छा, अधिक श्रेष्ठ जंचता है। यह किसलिए? इस व्यक्ति की प्रज्ञा-इंद्रिय बलवती है।"

अब आयुष्मान सारिपुत्त ने आयुष्मान समिद्ध तथा आयुष्मान महाकोट्ठिक को यह कहा –

"आयुष्मानो! हम सब ने अपनी-अपनी समझ के अनुसार व्यक्त किया। आओ, भगवान के पास चलें। पास जाकर भगवान से यह बात कहें। फिर जैसे हमारे भगवान कहेंगे वैसा स्वीकार करेंगे।"

आयुष्मान समिद्ध तथा आयुष्मान महाकोट्ठिक ने आयुष्मान सारिपुत्त को प्रत्युत्तर दिया – "ठीक है, आयुष्मान!" तब आयुष्मान सारिपुत्त, आयुष्मान समिद्ध तथा आयुष्मान महाकोट्ठिक भगवान के पास गये। पास पहुँचकर, भगवान को नमस्कार कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान

सारिपुत्त ने आयुष्मान समिद्ध तथा आयुष्मान महाकोट्ठिक के साथ जितनी बातचीत हुई थी सब भगवान से कह दी।

"सारिपुत्त! निश्चित रूप से यह कहना कि इन तीन प्रकार के लोगों में यह अधिक अच्छा है, यह अधिक श्रेष्ठ है, आसान नहीं है। सारिपुत्त! इसकी संभावना है कि जो यह व्यक्ति श्रद्धा-विमुक्त हो वह अर्हत्व के मार्ग पर आरूढ़ हो और जो यह व्यक्ति काय-साक्षी है वह सकृदागामी वा अनागामी हो और इसी प्रकार जो यह दृष्टि-प्राप्त है वह भी सकृदागामी वा अनागामी हो!

"सारिपुत्त! निश्चित रूप से यह कहना कि इन तीन प्रकार के लोगों में यह अधिक अच्छा है, यह अधिक श्रेष्ठ है, आसान नहीं है। सारिपुत्त! इसकी संभावना है कि जो यह व्यक्ति काय-साक्षी है वह अर्हत्व के मार्ग पर आरूढ़ हो और जो यह व्यक्ति श्रद्धा-विमुक्त है वह सकृदागामी वा अनागामी हो और इसी प्रकार जो यह दृष्टि-प्राप्त है वह भी सकृदागामी वा अनागामी हो।

"सारिपुत्त! निश्चित रूप से यह कहना कि इन तीन प्रकार के लोगों में यह अधिक अच्छा है, यह अधिक श्रेष्ठ है, आसान नहीं है। सारिपुत्त! इसकी संभावना है कि जो यह व्यक्ति दृष्टि-प्राप्त है, वह अर्हत्व के मार्ग पर आरूढ़ हो और जो यह व्यक्ति श्रद्धा-विमुक्त है, वह सकृदागामी वा अनागामी हो और इसी प्रकार जो यह काय-साक्षीहै, वह भी सकृदागामी वा अनागामी हो।

"सारिपुत्त। निश्चित रूप से यह कहना कि इन तीन प्रकार के लोगों में यह अधिक अच्छा है, यह अधिक श्रेष्ठहै, आसान नहीं है।"

२. ग्लान सुत्त

२२. "भिक्षुओ, इस संसार में तीन तरह के रोगी हैं। कौन-से तीन तरह के ?

"यहां, भिक्षुओ, एक रोगी ऐसा होता है कि चाहे उसे अनुकूल भोजन मिले और चाहे न मिले; चाहे उसे अनुकूल औषध मिले और चाहे न मिले; चाहे उसे अनुकूल सेवक मिले और चाहे न मिले; वह उस रोग से मुक्त नहीं होता।

"यहां, भिक्षुओ, एक (दूसरा) रोगी ऐसा होता है कि चाहे उसे अनुकूल भोजन मिले, चाहे न मिले; चाहे उसे अनुकूल औषध मिले, चाहे न मिले, चाहे उसे अनुकूल सेवक मिले, और चाहे न मिले; वह उस रोग से मुक्त होता है।

"यहां, भिक्षुओ, एक (तीसरा) रोगी होता है कि उसे अनुकूल भोजन मिले, न मिलने से नहीं; अनुकूल औषध मिले, न मिलने से नहीं; अनुकूल सेवक मिले, न मिलने से नहीं; वह उस रोग से मुक्त होता है।

"भिक्षुओ, इनमें जो यह रोगी है जिसे अनुकूल भोजन मिले, न मिलने से नहीं, अनुकूल औषध मिले, न मिलने से नहीं, अनुकूल सेवक मिले, न मिलने से नहीं, तो वह रोग से मुक्त होता है, ऐसे ही रोगी के लिए पथ्य, औषध और सेवक की व्यवस्था करने के लिए कहा गया है। किंतु ऐसे रोगी को ही ध्यान में रखकर अन्य रोगियों की सेवा करनी चाहिए। भिक्षुओ, लोक में ये तीन तरह के रोगी हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, इस संसार में ये तीन रोगी-समान मनुष्य हैं। कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई चाहे उसे तथागत का दर्शन मिले, चाहे न मिले; चाहे तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनना मिले, चाहे न मिले, वह कुशल-धर्मों में (आर्य अष्टांगिक) मार्ग को प्राप्त नहीं करता।

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई चाहे उसे तथागत का दर्शन मिले, चाहे न मिले; चाहे तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनना मिले, चाहे न मिले, वह कुशल-धर्मों में (आर्य अष्टांगिक) मार्ग को प्राप्त करता है।

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई यदि उसे तथागत का दर्शन मिले, नहीं मिलने से नहीं; यदि उसे तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनना मिले, न मिलने से नहीं, वह कुशल-धर्मों में (आर्य अष्टांगिक) मार्ग को प्राप्त करता है।

"भिक्षुओ, जो यह व्यक्ति तथागत का दर्शन मिलने से, न मिलने से नहीं; तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनना मिलने से, न मिलने से नहीं; कुशल-धर्मों में मार्ग के सम्यकत्व का लाभ करता है, भिक्षुओ, इस एक व्यक्ति के लिए धर्म-देशना की अनुज्ञा की गयी है। भिक्षुओ, इस एक व्यक्ति के निमित्त से दूसरों को भी धर्मोपदेश दिया जाना चाहिए।

"भिक्षुओ, इस संसार में ये तीन रोगी-समान मनुष्य हैं।"

३. संस्कार सुत्त

२३. "भिक्षुओ, संसार में ये तीन तरह के व्यक्ति हैं। कौन-से तीन तरह के?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति दुर्भावपूर्ण कायिक कर्म की राशि बनाता है, दुर्भावपूर्ण वाचिक कर्म की राशि बनाता है, दुर्भावपूर्ण मानसिक कर्म की राशि बनाता है। वह दुर्भावपूर्ण शारीरिक-कर्म की राशि बनाकर, दुर्भावपूर्ण वाचिक-कर्म की राशि बनाकर, दुर्भावपूर्ण मानसिक-कर्म की राशि बनाकर दुर्भावपूर्ण (दुःखद) लोक में उत्पन्न होता है। वैसे ही लोक में उत्पन्न होकर वैसे

ही लोगों का स्पर्श पाकर, प्रभावित हो एकांत-दुःख वेदना का अनुभव करता है जैसे कि नरक में उत्पन्न हुए प्राणी।

“यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति सद्भावपूर्ण कायिक-कर्म की राशि बनाता है, सद्भावपूर्ण वाचिक-कर्म की राशि बनाता है, सद्भावपूर्ण मानसिक-कर्म की राशि बनाता है। वह सद्भावपूर्ण कायिक-कर्म की राशि बनाकर... सद्भावपूर्ण मानसिक-कर्म की राशि बनाकर सद्भावपूर्ण लोक में उत्पन्न होता है। वैसे ही लोक में उत्पन्न होकर वैसे ही लोगों का स्पर्श पाकर, प्रभावित हो एकांत-सुख वेदना का अनुभव करता है जैसे कि शुभकीर्ण देवता।

“यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति दुर्भावपूर्ण भी तथा सद्भावपूर्ण भी कायिक-कर्म की राशि बनाता है... मानसिक-कर्म की राशि बनाता है। वह दुर्भावपूर्ण भी तथा सद्भावपूर्ण भी कायिक-कर्म...मानसिक-कर्म की राशि बनाकर दुर्भावपूर्ण भी सद्भावपूर्ण भी लोक में उत्पन्न होता है। वैसे ही लोक में उत्पन्न होकर वैसे ही लोगों का स्पर्श पाकर, प्रभावित हो सुख-दुःख मिश्रित वेदनाओं का अनुभव करता है जैसे कुछ मनुष्य, कुछ देव तथा कुछ विनिपातिक।

“भिक्षुओ, संसार में ये तीन तरह के व्यक्ति हैं।”

४. बहूपकार सुत्त

२४. “भिक्षुओ, ये तीन व्यक्ति व्यक्ति का बहुत उपकार करने वाले होते हैं। कौन-से तीन?

“भिक्षुओ, जिस व्यक्ति के कारण व्यक्ति बुद्ध की शरण जाता है, धर्म की शरण जाता है तथा संघ की शरण जाता है, वह व्यक्ति उस व्यक्ति का बहुत उपकार करने वाला होता है।

“और भिक्षुओ, जिस व्यक्ति के कारण व्यक्ति ‘यह दुःख है’ इसे यथाभूत जानता है, ‘यह दुःख-समुदय है’ इसे...‘यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है’ इसे यथाभूत जानता है, भिक्षुओ, वह व्यक्ति उस व्यक्ति का बहुत उपकार करने वाला होता है।

“फिर भिक्षुओ, जिस व्यक्ति के कारण कोई व्यक्ति आस्रवों का क्षय करके इसी जीवन में अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को स्वयं अभिज्ञात कर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है, वह व्यक्ति उस व्यक्ति का बहुत उपकार करने वाला होता है।

“भिक्षुओ, ये तीन व्यक्ति व्यक्ति का बहुत उपकार करने वाले हैं। भिक्षुओ, मैं कहता हूं कि इन तीन व्यक्तियों से बढ़कर व्यक्ति का कोई उपकार

करने वाला नहीं है। भिक्षुओ, यदि व्यक्ति इन तीन व्यक्तियों का अभिवादन कर, सम्मान देने के लिए खड़ा होकर, हाथ-जोड़कर, मैत्रीपूर्ण व्यवहार कर, चीवर, पिंडपात, शयनासन, गिलान-प्रत्यय, भैषज्य-परिष्कार आदि देकर प्रत्युपकार करना चाहे तो भी यह सु-प्रत्युपकार नहीं होता।"

५. वज्रोपम सुत्त

२५. "भिक्षुओ, संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं। कौन-से तीन? पुराने (बहते, स्रावी) व्रण के समान चित्त वाला व्यक्ति, बिजली के समान चित्त वाला व्यक्ति तथा वज्र के समान चित्त वाला व्यक्ति।

"भिक्षुओ, पुराने व्रण के समान चित्त वाला व्यक्ति कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, कोई व्यक्ति क्रोधी-स्वभाव का होता है, अशांत चित्तवाला, थोड़ा-सा भी कुछ कहने से वह बात उसे लग जाती है, उसे क्रोध आ जाता है, वह चिड़चिड़ा हो जाता है, वह कठोर हृदय हो विरोध करता है, वह क्रोध, द्वेष तथा अप्रसन्नता प्रकट करता है। जैसे पुराना व्रण लकड़ी या ठीकरा लग जाने से और भी बहने लग जाता है, इसी प्रकार भिक्षुओ, कोई व्यक्ति क्रोधी स्वभाव का होता है... प्रकट करता है। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति पुराने व्रण के समान चित्त वाला व्यक्ति कहलाता है।

"भिक्षुओ, बिजली के समान चित्त वाला व्यक्ति कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, कोई व्यक्ति 'यह दुःख है' इसे यथार्थ रूप से जानता है...'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे यथार्थ रूप से जानता है। जैसे भिक्षुओ, कोई आंख वाला व्यक्ति बिजली चमकती घोर अंधेरी रात में रूप देखे, इसी प्रकार भिक्षुओ, यहां एक व्यक्ति यह 'दु;ख है'...'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे यथार्थ रूप से जानता है। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति बिजली के समान चित्त वाला व्यक्ति कहलाता है।

"भिक्षुओ, वज्र के समान चित्त वाला व्यक्ति कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, कोई व्यक्ति आस्रवों का क्षय करके, इसी जीवन में अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ, जैसे वज्र के लिए कुछ भी अभेद्य नहीं है, चाहे मणि हो, चाहे पाषाण हो, इसी प्रकार भिक्षुओ, एक व्यक्ति आस्रवों का क्षय कर... प्राप्तकर विहार करता है। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति वज्र के समान चित्त वाला व्यक्ति कहलाता है।

"भिक्षुओ, इस संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं।"

६. सेवितव्य सुत्त

२६. "भिक्षुओ, लोक में तीन तरह के लोग हैं। कौन-से तीन तरह के? भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति होता है जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति होता है जिसका अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति होता है जिसका सत्कार कर, गौरव कर, अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए।

"भिक्षुओ, वह व्यक्ति कैसा होता है जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए?

"यहां, भिक्षुओ, कोई व्यक्ति शील, समाधि तथा प्रज्ञा से हीन होता है। भिक्षुओ, उस पर करुणा या अनुकंपा करने की स्थिति को छोड़कर न उसका अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए।

"भिक्षुओ, वह व्यक्ति कैसा होता है जिसका अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए?

"यहां, भिक्षुओ, कोई व्यक्ति शील, समाधि तथा प्रज्ञा में अपने जैसा होता है। ऐसे व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए। यह किसलिए? हम दोनों सदृश-शील वालों में शील-कथा आरंभ होगी, हमारी शील-कथा जारी रहेगी और उससे हमें सुख मिलेगा; हम दोनों सदृश-समाधि वालों के साथ समाधि-कथा आरंभ होगी, हमारी समाधि-कथा जारी रहेगी और उससे हमें सुख मिलेगा, हम दोनों सदृश-प्रज्ञा वालों के साथ प्रज्ञा-कथा आरंभ होगी, हमारी प्रज्ञा-कथा जारी रहेगी और उसमें हमें सुख मिलेगा – यही सोचकर ऐसे व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए।

"भिक्षुओ, वह व्यक्ति कैसा होता है जिसका सत्कार कर, गौरव कर, अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए?

"यहां, भिक्षुओ, कोई व्यक्ति शील, समाधि तथा प्रज्ञा में अधिक होता है। ऐसे व्यक्ति का सत्कार कर, गौरव कर, अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए। यह किसलिए? मैं अपरिपूर्ण शील-स्कंध को परिपूर्ण करूंगा, परिपूर्ण शील-स्कंध को वहां-वहां (जो इसके लिए अलाभप्रद है, अनुपकारक है उसे छोड़कर लाभप्रद और उपकारक को) प्रज्ञा से संभाले रखूंगा, अपरिपूर्ण समाधि-स्कंध को परिपूर्ण करूंगा, परिपूर्ण

समाधि-स्कंध को वहां-वहां (जो इसके लिए अलाभप्रद है, अनुपकारक है उसे छोड़कर लाभप्रद और उपकारक को) प्रज्ञा से संभाले रखूंगा, अपरिपूर्ण प्रज्ञा-स्कंध को परिपूर्ण करूंगा, परिपूर्ण प्रज्ञा-स्कंध को वहां-वहां (जो इसके लिए अलाभप्रद है, अनुपकारक है उसे छोड़कर लाभप्रद और उपकारक को) प्रज्ञा से संभाले रखूंगा – यह सोचकर ऐसे व्यक्ति का सत्कार कर, गौरव कर, अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए।

"भिक्षुओ, लोक में ये तीन तरह के लोग हैं।"

"निहीयति पुरिसो निहीनसेवी, न च हायेथ कदाचि तुल्यसेवी।
सेट्ठमुपनमं उदेति खिप्पं, तस्मा अत्तनो उत्तरिं भजेथा"ति॥

["अपने से हीन व्यक्ति की संगति करने वाला स्वयं हीन हो जाता है, समान की संगति करने वाला कभी ह्रास को प्राप्त नहीं होता, अपने से श्रेष्ठ की संगति करने वाला शीघ्र ही उन्नति को प्राप्त होता है। इसलिए अपने से श्रेष्ठ की ही संगति करनी चाहिए।"]

७. जुगुप्सितव्य (घृणा करने योग्य) सुत्त

२७. "भिक्षुओ, लोक में ये तीन तरह के लोग हैं। कौन-से तीन तरह के? भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति होता है जो घृणा करने योग्य होता है, जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति होता है जो उपेक्षा करने योग्य होता है, जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति होता है जिसका अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए।

"भिक्षुओ, वह व्यक्ति कैसा होता है जो घृणा करने योग्य होता है, जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति होता है दुःशील, पापी, अपवित्र, शंकित आचरण वाला, प्रच्छन्न (गुप्त) आचरण करने वाला, अश्रमण होकर 'श्रमण' कहलाने वाला, अब्रह्मचारी होकर 'ब्रह्मचारी' कहलाने वाला, भीतर से सड़ा हुआ, बेकार, कूड़ा-करकट भिक्षुओ, इस तरह का व्यक्ति घृणा करने योग्य होता है, जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए। यह किसलिए? भिक्षुओ, चाहे कोई ऐसे व्यक्ति का कुछ भी अनुसरण न करता हो तो भी उसका अपयश होता है – यह पापियों का मित्र

है, यह पापियों का सहायक है, यह पापियों का जिगरी दोस्त है। जिस प्रकार गूह में लिबड़ा हुआ सर्प चाहे नहीं डँसे तो भी लीबेड़ देगा, इसी प्रकार भिक्षुओ, चाहे कोई ऐसे व्यक्ति का कुछ भी… पापियों का दोस्त है। इसलिए इस प्रकार का व्यक्ति घृणा करने योग्य होता है, जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए।

“भिक्षुओ, वह व्यक्ति कैसा होता है जो उपेक्षा करने योग्य होता है, जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए।

“यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई व्यक्ति क्रोधी-स्वभाव का होता है, अशांत चित्तवाला, कुछ थोड़ा-भी बोलने से बिगड़ जाता है, क्रोधित हो जाता है, चिड़चिड़ा हो जाता है, वह कठोरहृदय हो विरोधी हो जाता है, क्रोध, द्वेष और असंतोष प्रकट करता है। जैसे भिक्षुओ, पुराना व्रण लकड़ी या ठीकरा लग जाने से और बहने लग जाता है, इसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोई व्यक्ति… असंतोष प्रकट करता है। जैसे भिक्षुओ, तिंडुक का अलाव लकड़ी या ठीकरे से छेड़ देने से और भी अधिक चिट-चिट करता है, इसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोई व्यक्ति… असंतोष प्रकट करता है। जैसे भिक्षुओ, गूह का गड्ढा लकड़ी या ठीकरे से छेड़ देने से और भी अधिक दुर्गंध देता है, उसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोई व्यक्ति क्रोधी स्वभाव का होता है, अशांत, कुछ थोड़ा-भी बोलने से… असंतोष प्रकट करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार का व्यक्ति उपेक्षा करने योग्य होता है, जिसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए, न आदर करना चाहिए। यह किसलिए? इस प्रकार का व्यक्ति मेरा अपमान भी कर सकता है, अपशब्द भी कह सकता है और मुझे अनर्थ, हानि भी पहुँचा सकता है। इसलिए इस प्रकार के व्यक्ति के प्रति उपेक्षा करनी चाहिए, उसका न अनुसरण करना चाहिए, न सेवा करनी चाहिए और न आदर करना चाहिए।

“भिक्षुओ, वह व्यक्ति कैसा होता है जिसका अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए?

“यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति शीलवान होता है, कल्याणधर्मी। भिक्षुओ, ऐसे व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए। यह किसलिए? भिक्षुओ, ऐसे व्यक्ति का कोई कुछ अनुसरण न भी करे, तब भी उसका यश होता है – यह सज्जनों का मित्र है, सज्जनों का

सहायक है तथा सज्जनों का जिगरी दोस्त है। इसलिए इस प्रकार के व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, सेवा करनी चाहिए, आदर करना चाहिए।

भिक्षुओ, इस संसार में ये तीन तरह के लोग हैं।"

"निहीयति पुरिसो निहीनसेवी, न च हायेथ कदाचि तुल्यसेवी।
सेट्ठमुपनमं उदेति खिप्पं, तस्मा अत्तनो उत्तरिं भजेथा"ति॥

["अपने से हीन व्यक्ति की संगत करने वाला स्वयं हीन हो जाता है, समान की संगत करने वाला कभी ह्रास को प्राप्त नहीं होता, अपने से श्रेष्ठ की संगत करने वाला शीघ्र ही उन्नति को प्राप्त होता है। इसलिए अपने से श्रेष्ठ की ही संगत करनी चाहिए।"]

८. गूथभाषी (विष्ठा) सुत्त

२८. "भिक्षुओ, संसार में तीन तरह के लोग हैं। कौन-से तीन तरह के? गूथ-भाषी, पुष्प-भाषी तथा मधु-भाषी।

"भिक्षुओ, गूथ-भाषी आदमी कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी चाहे उसे सभा में ले जाकर, चाहे परिषद में ले जाकर, चाहे जाति-समूह में ले जाकर, चाहे पूग (=श्रेणी, व्यवसाय-विशेष का संगठन) में ले जाकर और चाहे राज-दरबार में ले जाकर, यदि उससे यह कहकर साक्षी पूछी जाय कि हे पुरुष! जो जानता हो वह कह। वह न जानता हुआ कहेगा कि जानता हूं, जानता हुआ कहेगा कि नहीं जानता हूं; न देखता हुआ कहेगा कि देखता हूं और देखता हुआ कहेगा कि नहीं देखता हूं। ऐसा वह या अपने लिए या पराये के लिए करेगा या किसी भौतिक लाभ के लिए करेगा। वह जान-बूझ कर झूठ बोलने वाला होगा।

"भिक्षुओ, ऐसा आदमी गूथ-भाषी होता है।

"भिक्षुओ, पुष्प-भाषी आदमी कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी चाहे उसे सभा में ले जाकर, चाहे परिषद में ले जाकर, चाहे जाति-समूह में ले जाकर, चाहे पूग में ले जाकर और चाहे राज-दरबार में ले जाकर, यदि उससे यह कहकर साक्षी पूछी जाय कि हे पुरुष! जो भली प्रकार जानता हो वह कह। वह न जानता हुआ कहेगा कि नहीं जानता हूं, जानता हुआ कहेगा कि जानता हूं, न देखता हुआ कहेगा कि नहीं देखता हूं, देखता हुआ कहेगा कि देखता हूं। वह न अपने लिए, न पराये के लिए और न किसी भौतिक लाभ के लिए जान-बूझ कर झूठ बोलने वाला होगा। भिक्षुओ, ऐसा आदमी पुष्प-भाषी होता है।

"भिक्षुओ, मधु-भाषी आदमी कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी कठोर-वाणी बोलना छोड़ कठोर-वाणी से विरत होकर रहता है। जो वाणी निर्दोष होती है, कर्णप्रिय होती है, प्रेम पैदा करनेवाली होती है, हृदय में पैठ जाने वाली होती है, शिष्ट होती है, बहुत जनों को सुंदर, बहुत जनों को प्रिय लगने वाली होती है – ऐसी वाणी बोलता है। भिक्षुओ, ऐसा आदमी मधु-भाषी होता है।

"भिक्षुओ, संसार में ये तीन प्रकार के आदमी हैं।"

९. अंध सुत्त

२९. "भिक्षुओ, संसार में तीन प्रकार के लोग हैं। कौन-से तीन प्रकार के? अंधे, एक आंखवाले, दोनों आंख वाले।

"भिक्षुओ, अंधा आदमी कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, किसी-किसी आदमी के पास ऐसी आंख नहीं होती जिससे कि वह अप्राप्त संपत्ति को प्राप्त कर सके और प्राप्त संपत्ति को बढ़ा सके; उसकी ऐसी आंख भी नहीं होती जिससे वह कुशल-अकुशलधर्मों की पहचान कर सके, सदोष-निर्दोष धर्मों की पहचान कर सके, हीन-प्रणीत धर्मों की पहचान कर सके तथा परस्पर-विरोधी कृष्ण-शुक्ल धर्मों की पहचान कर सके। भिक्षुओ, ऐसा आदमी अंधा कहलाता है।

"और भिक्षुओ, एक-आंख वाला आदमी कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, किसी-किसी आदमी के पास ऐसी आंख होती है जिससे कि वह अप्राप्त संपत्ति को प्राप्त कर सके और प्राप्त संपत्ति को बढ़ा सके; किंतु उसकी ऐसी आंख नहीं होती जिससे वह कुशल-अकुशलधर्मों की पहचान कर सके, सदोष-निर्दोष धर्मों की पहचान कर सके, हीन-प्रणीत धर्मों की पहचान कर सके तथा परस्पर-विरोधी कृष्ण-शुक्ल धर्मों की पहचान कर सके। भिक्षुओ, ऐसा आदमी एक-आंख वाला कहलाता है।

"और भिक्षुओ, दो आंख वाला आदमी कैसा होता है? यहां, भिक्षुओ, किसी-किसी आदमी के पास ऐसी आंख होती है जिससे कि वह अप्राप्त संपत्ति को प्राप्त कर सके और प्राप्त संपत्ति को बढ़ा सके; और उसकी ऐसी आंख भी होती है जिससे वह कुशल-अकुशलधर्मों की पहचान कर सके, सदोष-निर्दोष धर्मों की पहचान कर सके, हीन-प्रणीत धर्मों की पहचान कर सके तथा परस्पर-विरोधी कृष्ण-शुक्ल धर्मों की पहचान कर सके। भिक्षुओ, ऐसा आदमी दो आंख वाला कहलाता है।

"भिक्षुओ, संसार में ये तीन तरह के लोग हैं।"

"न चेव भोगा तथारूपा, न च पुञ्ञानि कुब्बति।
उभयत्थ कलिग्गाहो, अन्धस्स हतचक्खुनो॥

"अथापरायं अक्खातो, एकचक्खु च पुग्गलो।
धम्माधम्मेन सठोसो, भोगानि परियेसति॥

"थेय्येन कूटकम्मेन, मुसावादेन चूभयं।
कुसलो होति सङ्घातुं, कामभोगी च मानवो।
इतो सो निरयं गन्त्वा, एकचक्खु विहञ्ञति॥

"द्विचक्खु पन अक्खातो, सेट्ठो पुरिसपुग्गलो।
धम्मलद्धेहि भोगेहि, उट्ठानाधिगतं धनं॥

"ददाति सेट्ठसङ्कप्पो, अब्यग्गमानसो नरो।
उपेति भद्दकं ठानं, यत्थ गन्त्वा न सोचति॥

"अन्धञ्च एकचक्खुञ्च, आरका परिवज्जये।
द्विचक्खुं पन सेवेथ, सेट्ठं पुरिसपुग्गल"न्ति॥

["जो चक्षु-विहीन अंधा आदमी होता है उसके पास न तो वैसे भोग-पदार्थ ही होते हैं और न वह कोई पुण्य ही करता है, वह दोनों तरह से अभागा है।

एक दूसरा आदमी होता है जो एक आंख वाला है, वह जो धर्माधर्म में शठ है, वह संपत्ति प्राप्त करता है –चोरी से, ठगी से, दोनों तरह से झूठ बोल कर।वह कामभोगी आदमी कामभोग के पदार्थों का संग्रह करने में कुशल होता है। किंतु वह एक आंख वाला आदमी यहां से नरक में जाकर विनाश को प्राप्त होता है।

जो दो आंख वाला आदमी होता है वही श्रेष्ठ कहा गया है। वह अप्रमाद तथा धर्म से भोग्य पदार्थों को प्राप्त करता है। फिर वह व्यग्रता-रहित श्रेष्ठ संकल्प वाला नर (उनमें से) दान करता है। (इस कर्म से) वह श्रेष्ठ स्थान में जन्म लेता है जहां जाकर उसे अनुताप नहीं होता। इसलिए अंधे तथा एक चक्षु वाले से दूर-दूर रहे। जो दोनों आंख वाला श्रेष्ठ व्यक्ति हो उसी की संगत करे।"]

१०. अवकुब्ज (औंधा घड़ा) सुत्त

३०. "भिक्षुओ, संसार में तीन तरह के लोग हैं। कौन-से तीन तरह के? औंधे-घड़े जैसी प्रज्ञा वाला आदमी, पल्ले (तराजू के दो हिस्सों में से कोई एक) जैसी प्रज्ञा वाला आदमी, बहुल-प्रज्ञ आदमी।

"भिक्षुओ, औंधे-घड़े जैसी प्रज्ञा वाला आदमी कैसा होता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भिक्षुओं से धर्म सीखने के लिए उनके पास विहार में निरंतर जाने वाला होता है। उसे भिक्षु आरंभ में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अंत में कल्याणकारी धर्म का उपदेश करते हैं, अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित (अर्थात अर्थतः और अक्षरशः) संपूर्ण रूप से परिशुद्ध और परिपूर्ण धर्म को प्रकाशित करते हैं। वह आसन पर बैठा हुआ न उस उपदेश के आरंभ को मन में धारण करता है, न मध्य को और न अंत को। उस आसन से उठने पर भी न उस उपदेश के आरंभ को मन में धारण करता है, न मध्य को और न अंत को। भिक्षुओ, जैसे उल्टे घड़े में डाला हुआ पानी गिर पड़ता है, ठहरता नहीं है, इसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी धर्म सीखने के लिए भिक्षुओं के पास... न अंत को। उस आसन से उठने पर भी... न अंत को। भिक्षुओ, ऐसा आदमी औंधे-घड़े जैसी प्रज्ञा वाला आदमी कहलाता है।

"भिक्षुओ, पल्ले जैसी प्रज्ञा वाला आदमी कैसा होता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भिक्षुओं से धर्म सीखने के लिए... प्रकाशित करते हैं। वह आसन पर बैठा हुआ उस उपदेश के आरंभ को भी मन में धारण करता है, मध्य को भी और अंत को भी। किंतु उस आसन से उठने पर न उस उपदेश के आरंभ को मन में धारण करता है, न मध्य को और न अंत को। जैसे भिक्षुओ, किसी आदमी के पल्ले में नाना प्रकार की खाद्य वस्तुयें हों, तिल हों, चावल हों, लड्डू हों, बेर हों; वह आसन से उठते समय असावधानी के कारण उन्हें बिखेर दे। उसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भिक्षुओं से धर्म सीखने के लिए... प्रकाशित करते हैं। वह आसन पर बैठा... अंत को। किंतु आसन से उठने पर... न अंत को। भिक्षुओ, ऐसा आदमी पल्ले जैसी प्रज्ञा वाला कहलाता है।

"भिक्षुओ, बहुल-प्रज्ञ आदमी कैसा होता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भिक्षुओं से धर्म सीखने के लिए... प्रकाशित करते हैं। वह आसन पर बैठा हुआ उस उपदेश के आरंभ को भी मन

में धारण करता है... अंत को। वह आसन से उठने पर भी उस उपदेश के आरंभ को भी मन में धारण करता है... अंत को भी। भिक्षुओ, जैसे सीधे घड़े में डाला हुआ पानी उसमें ठहरता है, गिरता नहीं है; इसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोईआदमी भिक्षुओं से धर्म सीखने के लिए... प्रकाशित करते हैं। वह आसन पर बैठा हुआ उस उपदेश के आरंभ को भी मन में धारण करता है... अंत को भी। वह आसन से उठने पर भी उस उपदेश के आरंभ को भी मन में धारण करता है... अंत को भी। भिक्षुओ, ऐसा आदमी बहुल-प्रज्ञ आदमी कहलाता है।

"भिक्षुओ, संसार में ये तीन तरह के लोग हैं।"

"अवकुज्जपञ्ञो पुरिसो, दुम्मेधो अविचक्खणो।
अभिक्खणम्पि चे होति, गन्ता भिक्खून सन्तिके॥

"आदिं कथाय मज्झञ्च, परियोसानञ्च तादिसो।
उग्गहेतुं न सक्कोति, पञ्ञा हिस्स न विज्जति॥

"उच्छङ्गपञ्ञो पुरिसो, सेय्यो एतेन वुच्चति।
अभिक्खणम्पि चे होति, गन्ता भिक्खून सन्तिके॥

"आदिं कथाय मज्झञ्च, परियोसानञ्च तादिसो।
निसिन्नो आसने तस्मिं, उग्गहेत्वान ब्यञ्जनं।
वुट्ठितो नप्पजानाति, गहितं हिस्स मुस्सति॥

"पुथुपञ्ञो च पुरिसो, सेय्यो एतेहि वुच्चति।
अभिक्खणम्पि चे होति, गन्ता भिक्खुन सन्तिके॥

"आदिं कथाय मज्झञ्च, परियोसानञ्च तादिसो।
निसिन्नो आसने तस्मिं, उग्गहेत्वान ब्यञ्जनं॥

"धारेति सेट्ठसङ्कप्पो, अब्यग्गमानसो नरो।
धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो, दुक्खस्सन्तकरो सिया"ति॥

["दुर्बुद्धि, बे-अक्ल, औंधे घड़े जैसी प्रज्ञा वाला आदमी यदि भिक्षुओं के पास निरंतर भी जाता है, तो वह उस उपदेश का न आदि, न मध्य और न अंत ही ग्रहण कर सकता है, क्योंकि उसकी प्रज्ञा ही नहीं होती। उस आदमी की अपेक्षा पल्ले जैसी प्रज्ञा वाला आदमी श्रेष्ठ कहलाता है। वह यदि भिक्षुओं के पास निरंतर भी जाता है, तो वह आसन पर बैठे रहते समय उस धर्मोपदेश के

आदि, मध्य और अंत को व्यंजन-सहित ग्रहण कर लेता है। लेकिन उठने पर भली प्रकार नहीं जानता, क्योंकि ग्रहण किया हुआ भूल जाता है। इन दोनों से बहुल-प्रज्ञ आदमी श्रेष्ठतर माना जाता है। वह यदि भिक्षुओं के पास निरंतर भी जाता है, तो वह उस आसन पर बैठे रहते समय उस धर्मोपदेश के आदि, मध्य और अंत को व्यंजन-सहित ग्रहण कर लेता है। वह शांत-चित्त श्रेष्ठ-संकल्प वाला आदमी उस धर्म को अच्छी तरह धारण करता है। धर्मानुसार (बड़े तथा छोटे धर्मों के अनुसार) आचरण कर वह दुःख का अंत करने वाला होता है।"]

* * * * *

४. देवदूत वर्ग

१. सब्रह्मक सुत्त

३१. "भिक्षुओ, जिन कुलों के पुत्र माता-पिता की घर में पूजा करते हैं वे ऐसे कुल हैं जहां ब्रह्मा वास करते हैं। जिन कुलों के पुत्र माता-पिता की घर में पूजा करते हैं वे ऐसे कुल हैं जहां पूर्वाचार्य वास करते हैं। भिक्षुओ, जिन कुलों के पुत्र माता-पिता की घर में पूजा करते हैं वे कुल दान देने योग्य हैं अर्थात पूज्य हैं।

"भिक्षुओ, ब्रह्मा – यह माता-पिता का ही पर्याय है। भिक्षुओ, पूर्व-आचार्य – यह माता-पिता का ही पर्याय है। भिक्षुओ, जो व्यक्ति दान देने योग्य हैं वे भी माता-पिता के ही पर्याय हैं।

"यह किसलिए? भिक्षुओ, माता-पिता का अपनी संतान पर बहुत उपकार होता है। वे पालन करने वाले हैं, वे पोषण करने वाले हैं, उन्होंने इस लोक से परिचय कराया है।

"ब्रह्माति मातापितरो, पुब्बाचरियाति वुच्चरे।
आहुनेय्या च पुत्तानं, पजाय अनुकम्पका॥

"तस्मा हि ने नमस्सेय्य, सक्करेय्य च पण्डितो।
अन्नेन अथ पानेन, वत्थेन सयनेन च।
उच्छादनेन न्हापनेन, पादानं धोवनेन च॥

"ताय नं पारिचरियाय, मातापितूसु पण्डिता।
इधेव नं पसंसन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती"ति॥

["माता-पिता ही 'ब्रह्मा' कहे जाते हैं, माता-पिता ही पूर्वाचार्य कहे जाते हैं, माता-पिता ही दान देने योग्य कहे जाते हैं। वे अपनी संतान पर बहुत अनुकंपा करने वाले हैं। इसलिए बुद्धिमान (संतान) को चाहिए कि उन्हें नमस्कार करे, उनका अन्न से, पान से, वस्त्र से, शयनासन से सत्कार करे तथा मालिश करके, नहला करके, पांव धोकर उनकी सेवा, सत्कार करे। जो पंडित परिचर्या से माता-पिता को संतुष्ट करता है उसकी यहां भी प्रशंसा होती है और मृत्यु होने पर वह स्वर्ग में भी आनंदित होता है।"]

२. आनन्द सुत्त

३२. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को नमस्कार कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान से यह कहा –

"भंते! क्या भिक्षु को ऐसी समाधि का लाभ हो सकता है कि इस सविज्ञान शरीर में ही उसे अहंकार, ममत्व तथा मान का बोध न हो, और इस काया से बाहर भी जितने निमित्त हैं, उन निमित्तों में भी उसे अहंकार, ममत्व तथा मान का बोध न हो और जिस चित्त-विमुक्ति, जिस प्रज्ञा-विमुक्ति के साथ विहार करते हुए अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होते, उस चित्त-विमुक्ति, उस प्रज्ञा-विमुक्ति को प्राप्त कर विहार करे?"

"आनन्द! भिक्षु को ऐसी समाधि का लाभ हो सकता है कि इस सविज्ञान शरीर में ही... प्राप्त कर विहार करे।"

"भंते! भिक्षु का वैसा समाधि-लाभ कैसा होता है कि इस सविज्ञान शरीर में ही... प्राप्त कर विहार करे?"

"यहां, आनन्द! इस विषय में भिक्षु को ऐसा लगता है – यही शांत है, यही प्रणीत है, जो यह सब संस्कारों का शमन, सभी उपधियों का त्याग, तृष्णा का क्षय, विराग, निरोध, निर्वाण है। इस प्रकार आनन्द! भिक्षु को ऐसी समाधि का लाभ हो सकता है कि इस सविज्ञान शरीर में ही... प्राप्त कर विहार करे।

"आनन्द! पुर्ण-प्रश्न पारायण में जो मैंने यह कहा है वह इसी अर्थ में कहा है –

"सङ्खाय लोकस्मिं परोपरानि, यस्सिञ्जितं नत्थि कुहिञ्चि लोके।
सन्तो विधूमो अनीघो निरासो, अतारि सो जातिजरन्ति ब्रूमी"ति॥

["संसार में उस पार तथा इस पार का ज्ञान प्राप्त करके जिसके मन में किसी भी विषय के संबंध में चंचलता नहीं है, उस शांत, निर्धूम (राग-रहित),

दुःख-रहित तथा तृष्णा-रहित पुरुष ने जाति-जरा को पार किया है – ऐसा मैं कहता हूं।"]

३. सारिपुत्त सुत्त

३३. एक समय आयुष्मान सारिपुत्त भगवान के पास गये। जाकर भगवान को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान सारिपुत्त को भगवान ने यह कहा –

"सारिपुत्त! मैं संक्षेप में भी धर्मोपदेश देता हूं, विस्तार से भी धर्मोपदेश देता हूं, संक्षिप्त-विस्तृत रूप से भी धर्मोपदेश देता हूं, किंतु उसके समझने वाले दुर्लभ हैं।"

"भगवान! इसी का समय है। सुगत! इसी का समय है। भगवान संक्षेप में भी धर्मोपदेश दें, विस्तार से भी धर्मोपदेश दें, संक्षिप्त-विस्तृत रूप से भी धर्मोपदेश दें; धर्म के समझने वाले होंगे।"

"तो सारिपुत्त! इस कारण ठीक इसी प्रकार सीखना चाहिए – इस सविज्ञान शरीर में अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होगा, इससे बाहर सभी निमित्तों में भी अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होगा, जिस चित्त-विमुक्ति, जिस प्रज्ञा-विमुक्ति को प्राप्त कर विहार करने पर अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होते, उस चित्त-विमुक्ति, उस प्रज्ञा-विमुक्ति को प्राप्त कर विहार करेंगे। हे सारिपुत्त! ठीक इसी प्रकार सीखना चाहिए।

"क्योंकि सारिपुत्त! इस सविज्ञान शरीर में भिक्षु के मन में अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होते, इससे बाहर के सभी निमित्तों में भी अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होते, जिस चित्त-विमुक्ति, जिस प्रज्ञा-विमुक्ति को प्राप्त कर अहंकार, ममत्व तथा मान उत्पन्न नहीं होते उस चित्त-विमुक्ति को, उस प्रज्ञा-विमुक्ति को प्राप्त कर विहार करता है। हे सारिपुत्त! ऐसे भिक्षु के विषय में कहा जाता है कि इसने तृष्णा को छिन्न-भिन्न कर दिया, संयोजनों को निर्मूल कर दिया और मान को संपूर्ण रूप से समझकर दुःख का अंत कर दिया।

"सारिपुत्त! उदय-प्रश्न पारायण में जो मैंने यह कहा वह उक्त अर्थ में ही कहा –

"पहानं कामसञ्ञानं, दोमनस्सान चूभयं।
थिनस्स च पनूदनं, कुक्कुच्चानं निवारणं॥

"उपेक्खासतिसंसुद्धं, धम्मतक्क पुरेजवं।
अञ्ञाविमोक्खं पब्रूमि, अविज्जाय पभेदन"न्ति॥

["कामनाओं तथा दौर्मनस्यों – इन दोनों का प्रहाण, आलस्य का नाश तथा कौकृत्यका निवारण, उपेक्षा तथा स्मृति की परिशुद्धि, सम्यक-संकल्प (धर्म-तर्क) ही अग्रणी होता है (मार्गदर्शन करता है) तथा अविद्या का प्रभेदन जहां है वहीं विमुक्ति है – ऐसा मैं कहता हूं।"]

४. निदान सुत्त

३४. "भिक्षुओ! कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु (निदान) हैं। कौन-से तीन? लोभ कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है, द्वेष कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है, मोह कर्मों की उत्पत्तिका हेतु है।

"भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में लोभ है, जो लोभ से उत्पन्न हुआ है, जिसका निदान लोभ है, जिसका कारण लोभ है, उस कर्म के कर्ता का जन्म जहां होता है वहां वह कर्म विपाक उत्पन्न करता है, जहां वह कर्म पकता है, वहां उस कर्म का फल उसे भोगना होता है, उसी जन्म में अथवा अन्य किसी जन्म में।

"भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में द्वेष है, जो द्वेष से उत्पन्न हुआ है, जिसका निदान द्वेष है, जिसका कारण द्वेष है, उस कर्म के कर्ता का जन्म जहां होता है वहां वह कर्म विपाक उत्पन्न करता है, जहां वह कर्म पकता है, वहां उस कर्म का फल उसे भोगना होता है, उसी जन्म में अथवा अन्य किसी जन्म में।

"भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में मोह है, जो मोह से उत्पन्न हुआ है, जिसका निदान मोह है, जिसका कारण मोह है, उस कर्म के कर्ता का जन्म जहां होता है वहां वह कर्म विपाक उत्पन्न करता है, जहां वह कर्म पकता है, वहां उस कर्म का फल उसे भोगना होता है, उसी जन्म में अथवा अन्य किसी जन्म में।

"भिक्षुओ, जैसे बीज हों अखंडित, सड़े न हों, हवा-धूप से खराब न हुए हों, सारवान हों, अच्छी तरह रखे हों, अच्छी तरह तैयार की गयी भूमि वाले सुक्षेत्र में डाले गये हों और उस पर अच्छी वर्षा हो, तो भिक्षुओ, वे बीज वृद्धि तथा विपुलता को प्राप्त होंगे ही। इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में लोभ है... अथवा अन्य किसी जन्म में। जिस कर्म के मूल में द्वेष है... अथवा अन्य किसी जन्म में। जिस कर्म के मूल में मोह है... अथवा अन्य किसी जन्म में।

"भिक्षुओ, कर्मों की उत्पत्तिके ये तीन हेतु हैं।

"भिक्षुओ, कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं। कौन-से तीन? अलोभ कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है, अद्वेष कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है, अमोह कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है।

"भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में अलोभ है, जो अलोभ से उत्पन्न हुआ है, जिसका निदान अलोभ है, जिसका कारण अलोभ है, लोभ के न रहने पर उस कर्म का प्रहाण हो जाता है, उसकी जड़ उखड़ जाती है, वह कटे ताड़ वृक्ष की तरह हो जाता है, वह अभावप्राप्त हो जाता है, उसकी भावी उत्पत्ति रुक जाती है।

"भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में अद्वेष है, जो अद्वेष से उत्पन्न हुआ है, जिसका निदान अद्वेष है, जिसका कारण अद्वेष है, द्वेष के न रहने पर उस कर्म का प्रहाण हो जाता है, उसकी जड़ उखड़ जाती है, वह कटे ताड़ वृक्ष की तरह हो जाता है, वह अभावप्राप्त हो जाता है, उसकी भावी उत्पत्ति रुक जाती है।

"भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में अमोह है, जो अमोह से उत्पन्न हुआ है, जिसका निदान अमोह है, जिसका कारण अमोह है, मोह के न रहने पर उस कर्म का प्रहाण हो जाता है, उसकी जड़ उखड़ जाती है, वह कटे ताड़ वृक्ष की तरह हो जाता है, वह अभावप्राप्त हो जाता है, उसकी भावी उत्पत्ति रुक जाती है।

"भिक्षुओ, जैसे बीज अखंडित हों, सड़े न हों, हवा-धूप से खराब न हुये हों, सारवान हों, अच्छी तरह रखे हों, उन्हें आदमी आग में जला डाले, आग में जलाकर राख कर दे, राख करके तेज हवा में उड़ा दे अथवा शीघ्रगामी नदी में बहा दे, उससे उन बीजों का मूल नष्ट हो जाये, वे कटे ताड़ वृक्ष की तरह हो जायें, वे अभावप्राप्त हो जायें, उनकी भावी उत्पत्ति रुक जाये। इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में अलोभ है... उसकी भावी उत्पत्ति रुक जाती है, जिस कर्म के मूल में अद्वेष है... उसकी भावी उत्पत्ति रुक जाती है, जिस कर्म के मूल में अमोह है... उसकी भावी उत्पत्ति रुक जाती है।

"भिक्षुओ, कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं।"

"लोभजं दोसजञ्चेव, मोहजञ्चापिविद्दसु।
यं तेन पकतं कम्मं, अप्पं वा यदि वा बहुं।
इधेव तं वेदनियं, वत्थु अञ्ञं न विज्जति॥

"तस्मा लोभञ्च दोसञ्च, मोहञ्चापि विद्दसु।
विज्जं उप्पादयं भिक्खु, सब्बा दुग्गतियो जहे"ति॥

["जो मूर्ख लोभ, द्वेष अथवा मोह से प्रेरित होकर चाहे छोटा, चाहे बड़ा कुछ भी कर्म करता है, उसे ही वह भोगना पड़ता है, दूसरे को दूसरे का किया नहीं भोगना पड़ता। इसलिए बुद्धिमान भिक्षु को चाहिए कि लोभ, द्वेष और मोह का त्याग कर विद्या का लाभ कर सारी दुर्गतियों से मुक्त हो।"]

५. हत्थक सुत्त

३५. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान आळवी (राष्ट्र) में गौवों के आने-जाने के मार्ग पर सिंसप-वन में गिरे पत्तों के आसन पर बैठे थे।

तब पैदल घूमते हुए हत्थक (नामक) आळवक राजपुत्र ने भगवान को उस प्रकार गौवों के आने-जाने के मार्ग पर सिंसप-वन में गिरे पत्तों के आसन पर बैठे देखा। देखकर भगवान के पास गया। पास जाकर भगवान को नमस्कार कर एक ओर बैठ हत्थकआळवक ने भगवान को यह कहा –

"क्या भंते भगवान! आप सुख से सोये?"

"हां कुमार! मैं सुख से सोया। संसार में जो लोग सुखपूर्वक सोते हैं, मैं उनमें से एक हूं।"

"भंते! यह हेमंत ऋतु की शीत रात्रि है, माघ और फाल्गुन के बीच के आठ दिनों का समय है, हिम-पात के दिन हैं, गौवों के खुरों की मारी हुई कठोर भूमि है, पत्तों का पतला बिछौना है, पेड़ पर कहीं-कहीं थोड़े पत्ते हैं, ठंडे काषाय-वस्त्र हैं, पर्वत-प्रदेशों से ठंढी हवा (वैरम्भक) आ रही है, और भगवान ने यह कहा है – 'हां कुमार! मैं सुख से सोया। संसार में जो लोग सुखपूर्वक सोते हैं, मैं उनमें से एक हूं!"

"तो कुमार! मैं तुझ से ही पूछता हूं, जैसे तुझे अच्छा लगे वैसा कहना। कुमार! तो तू क्या समझता है यहां किसी गृहपति वा गृहपति-पुत्र का ऊंचा मकान हो, लिपा-पुता हो, जहां हवा न आती हो, अर्गल लगा हो, खिड़की बंद हो; वहां एक पलंग हो जिस पर चार अंगुल अधिक की झालर वाला आस्तरण बिछा हो, ऊन का आस्तरण बिछा हो, घने ऊन का आस्तरण बिछा हो, कदली मृग के श्रेष्ठ चर्म का आस्तरण बिछा हो, उस पलंग के ऊपर वितान तना हो, सिर और पांव की ओर दो लाल तकिये हों, तेल-प्रदीप जल रहा हो, चार भार्यायें अच्छी तरह सेवा कर रही हों तो कुमार, तुझे इस विषय में कैसा लगता है वह सुख-पूर्वक सोयेगा अथवा नहीं?"

"भंते! वह सुखपूर्वक सोयेगा। संसार में जो सुखपूर्वक सोते हैं उनमें से वह एक होगा।"

"तो कुमार! तुम क्या मानते हो क्या उस गृहपति अथवा गृहपति-पुत्र को (काम-) राग से उत्पन्न होने वाली ऐसी शारीरिक वा मानसिक जलन (परिदाह) हो सकती है जिस (काम-) राग से उत्पन्न होने वाली जलन के कारण वह दुःखी रहे?"

"हां भंते!"

"कुमार! जिस (काम-) राग से उत्पन्न जलन के कारण वह गृहपति अथवा गृहपति-पुत्र जलता रह कर दुःखी रह सकता है, तथागत का वह राग प्रहीण हो गया है, उसका जड़-मूल कट गया है, वह कटे ताड़-वृक्ष की तरह हो गया है, वह अभावप्राप्त हो गया है, उसकी भावी उत्पत्ति जाती रही है। इसलिए मैं सुखपूर्वक सोया।

"तो कुमार! तुम क्या मानते हो क्या उस गृहपति अथवा गृहपति-पुत्र को द्वेष से उत्पन्न होने वाली (द्वेषज)... मोह से उत्पन्न होने वाली (मोहज) ऐसी शारीरिक वा मानसिक जलन हो सकती है जिस मोह से उत्पन्न होने वाली जलन के कारण वह दुःखी रहे?"

"हां भंते!"

"कुमार! जिस मोह से उत्पन्न होने वाली जलन के कारण वह गृहपति अथवा गृहपति-पुत्र जलता रह कर दुःखी रह सकता है, तथागत का वह मोह प्रहीण हो गया है, उसका जड़-मूल कट गया है, वह कटे ताड़-वृक्ष की तरह हो गया है, वह अभावप्राप्त हो गया है, उसकी भावी उत्पत्ति जाती रही है। इसलिए मैं सुखपूर्वक सोया।"

"सब्बदा वे सुखं सेति, ब्राह्मणो परिनिब्बुतो।
यो न लिम्पति कामेसु, सीतिभूतो निरूपधि॥

"सब्बा आसत्तियो छेत्वा, विनेय्य हदये दरं।
उपसन्तो सुखं सेति, सन्तिं पप्पुय्य चेतसो"ति॥

["जो कामभोगों में लिप्त नहीं होता, जो शांत है, जो उपधि-रहित है, परिनिर्वृत्त है, वह ब्राह्मण निश्चित ही सुखपूर्वक सोता है। जो सभी आसक्तियों को काटकर हृदय के दुःख को दूर करता है, जो चित्त की शांति को प्राप्त करता है, ऐसा उपशांत, सुखपूर्व सोता है।"]

६. देवदूत सुत्त

३६. "भिक्षुओ, ये तीन देवदूत हैं। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, एक आदमी कायिक दुष्कर्म करता है, वाचिक दुष्कर्म करता है, मानसिक दुष्कर्म करता है। वह शरीर से दुष्कर्म करके, वाणी से दुष्कर्म करके, मन से दुष्कर्म करके शरीर छूटने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में उत्पन्न होता है। तो भिक्षुओ, उसे नाना नरक-पाल बाहों से पकड़कर यमराज के पास ले जाते हैं – 'देव! यह आदमी मातृ-सेवक नहीं, पितृ-सेवक नहीं, श्रमणों की सेवा करने वाला नहीं, ब्राह्मणों (क्षीणास्रव) की सेवा करने वाला नहीं, परिवार में बड़े-बूढ़ों का आदर करने वाला नहीं, हे देव! इसे सजा दें।'

"भिक्षुओ, उस आदमी से यमराज प्रथम देवदूत के बारे में प्रश्न करता है, पूछता है, बातचीत करता है – 'हे पुरुष! क्या तूने मनुष्य-लोक में प्रकट हुए प्रथम देवदूत को नहीं देखा?'

"वह बोला – 'स्वामी! नहीं देखा।'

"तब भिक्षुओ, यमराज उस आदमी से पूछता है – 'हे पुरुष! क्या तूने मनुष्य-लोक में किसी ऐसी स्त्री या पुरुष को नहीं देखा जिसकी आयु अस्सी वर्ष की हो, नब्बे वर्ष की हो अथवा सौ वर्ष की हो; जो बूढ़ा हो, जो शहतीर की तरह टेढ़ा हो, जो टूट गया हो, जिसके हाथ में लाठी हो, जो चलता हुआ कांपता हो, जो रोगी हो, जिसका यौवन जाता रहा हो, जिसके दांत टूट गये हों, जिसके बाल सफेद हो गये हों, जिसकी खोपड़ी गंजी हो गयी हो, जिसके झुर्रियां पड़ गयी हों तथा जिसके बदन पर काले-सफेद निशान पड़ गये हों?'

"वह बोला – 'स्वामी! देखा है।'

"तो भिक्षुओ, उसे यमराज ने कहा –'हे पुरुष! तुझ विज्ञ, स्मृतिमान वृद्ध के मन में यह नहीं हुआ कि मैं भी जरा को प्राप्त होने वाला हूं, मैं भी जरा के अधीन हूं। मैं शरीर, वाणी तथा मन से शुभ-कर्म करूं।'

"वह बोला – 'स्वामी! मुझ से न हो सका। मैंने प्रमाद किया।'

"तब भिक्षुओ, उसे यमराज ने कहा –'हे पुरुष! प्रमाद के कारण तूने शरीर, वाणी अथवा मन से शुभ कर्म नहीं किये। तो हे पुरुष! अब तेरे साथ तेरे प्रमाद के अनुरूप व्यवहार करेंगे। यह जो पाप-कर्म है, यह न तेरी माता ने किया है, न पिता ने किया है, न भाई ने किया है, न बहन ने किया है, न मित्र-अमात्यों ने किया है, न परिवार तथा रिश्तेदारों ने किया है, न देवताओं ने किया है, न श्रमण-ब्राह्मणों ने किया है; यह पाप-कर्म तेरे ही द्वारा किया गया है, तू ही इसका फल भोगेगा।'

"तो भिक्षुओ, यमराज प्रथम देवदूत के बारे में प्रश्न करके, पूछ करके, बातचीत करके, दूसरे देवदूत के बारे में प्रश्न करता है, पूछता है, बातचीत करता है – 'हे पुरुष! क्या तूने मनुष्य-लोक में प्रकट हुए दूसरे देवदूत को नहीं देखा?'

"वह बोला – 'स्वामी! नहीं देखा।'

"तब भिक्षुओ, यमराज उस आदमी से पूछता है – 'हे पुरुष! क्या तूने मनुष्य-लोक में किसी ऐसी स्त्री या पुरुष को नहीं देखा जो रोगी हो, जो दुःखी हो, जो बहुत बीमार हो, अपने मल-मूत्र में पड़ा हो, जिसे दूसरे ही आकर उठाते हों, दूसरे ही बिठाते हों?"

"वह बोला – 'स्वामी! देखा है।'

"तो भिक्षुओ, उस यमराज ने कहा –'हे पुरुष! तुझ विज्ञ, स्मृतिमान वृद्ध के मन में यह नहीं हुआ कि मैं भी व्याधि को प्राप्त होने वाला हूं, मैं भी व्याधि के अधीन हूं। मैं शरीर, वाणी तथा मन से शुभ कर्म करूं?'

"वह बोला – 'स्वामी! मुझ से न हो सका। मैंने प्रमाद किया।'

तब भिक्षुओ, उसे यमराज ने कहा –"हे पुरुष! प्रमाद के कारण तूने शरीर, वाणी अथवा मन से शुभ-कर्म नहीं किये। तो हे पुरुष! अब तेरे साथ तेरे प्रमाद के अनुरूप व्यवहार करेंगे। यह जो पाप-कर्म है, यह न तेरी माता ने किया है, न पिता ने किया है, न भाई ने किया है, न बहन ने किया है, न मित्र-अमात्यों ने किया है, न परिवार तथा रिश्तेदारों ने किया है, न देवताओं ने किया है, न श्रमण-ब्राह्मणों ने किया है, यह पाप-कर्म तेरे ही द्वारा किया गया है, तू ही इसका फल भोगेगा। "

"तो भिक्षुओ, यमराज द्वितीय देवदूत के बारे में प्रश्न करके, बातचीत करके, तृतीय देवदूत के बारे में प्रश्न करता है, पूछता है, बातचीत करता है – 'हे मनुष्य! क्या तूने मनुष्य-लोक में प्रकट हुए तीसरे देवदूत को नहीं देखा?'

"वह बोला – 'स्वामी! नहीं देखा।'

"तब भिक्षुओ, यमराज उस आदमी से पूछता है – 'हे पुरुष! क्या तूने मनुष्य-लोक में किसी ऐसी स्त्री या पुरुष को नहीं देखा जिसे मरे एक दिन हो गया हो, जिसे मरे दो दिन हो गये हों, जिसे मरे तीन दिन हो गये हों, जो फूल गया हो, जिसका शरीर नीला पड़ गया हो, जिसके बदन में पीप पड़ गयी हो?'

"वह बोला – 'स्वामी! देखा है।'

"तो भिक्षुओ, उस यमराज ने कहा –'हे पुरुष! तुझ विज्ञ, स्मृतिमान वृद्ध के मन में यह नहीं हुआ कि मैं भी मरण को प्राप्त होने वाला हूं, मैं भी मरण के अधीन हूं। मैं शरीर, वाणी तथा मन से शुभ-कर्म करूं?'

"वह बोला –'स्वामी! मुझ से न हो सका। मैंने प्रमाद किया।'

"तब भिक्षुओ, उसे यमराज ने कहा –'हे पुरुष! प्रमाद के कारण तूने शरीर, वाणी अथवा मन से शुभ-कर्म नहीं किये। तो हे पुरुष! अब तेरे साथ तेरे प्रमाद के अनुरूप व्यवहार करेंगे। यह जो पाप-कर्म है, यह न तेरी माता ने किया है, न पिता ने किया है, न भाई ने किया है, न बहन ने किया है, न मित्र-अमात्यों ने किया है, न परिवार तथा रिश्तेदारों ने किया है, न देवताओं ने किया है, न श्रमण-ब्राह्मणों ने किया है, यह पाप-कर्म तेरे ही द्वारा किया गया है, तू ही इसका फल भोगेगा।'

"तो भिक्षुओ, यमराज तृतीय देवदूत के बारे में प्रश्न करके, पूछ करके, बातचीत करके चुप हो जाता है।

"भिक्षुओ, उस आदमी को यमदूत पांच प्रकार के दंड से दंडित करते हैं – लोहे की तप्त कील हाथ में ठोकते हैं, लोहे की तप्त कील दूसरे हाथ में ठोकते हैं, लोहे की तप्त कील पांव में ठोकते हैं, लोहे की तप्त कील दूसरे पांव में ठोकते हैं, लोहे की तप्त कील छाती के बीच में ठोकते हैं। वह उससे दुःख-पूर्ण, तीव्र कष्टदायक, कटु वेदना का अनुभव करता है और तब तक नहीं मरता है जब तक उस पाप-कर्म का क्षय नहीं हो जाता।

"भिक्षुओ, उस आदमी को यमदूत लिटा कर कुल्हाड़ी से छीलते हैं। वह उससे दुःख-पूर्ण, तीव्र कष्ट-दायक, कटु वेदना का अनुभव करता है और तब तक नहीं मरता है जब तक उस पाप-कर्म का क्षय नहीं हो जाता।

"भिक्षुओ, उस आदमी को यमदूत पैर ऊपर सिर नीचे करके वसूले से छीलते हैं। वह उससे... हो जाता।

"भिक्षुओ, उस आदमी को यमदूत रथ में जोतकर जलती हुई, प्रज्वलित, प्रदीप्त भूमि पर चलाते भी हैं, हांकते भी हैं। वह उससे... हो जाता।

"भिक्षुओ, उस आदमी को यमदूत बड़े भारी, जलते हुए प्रज्वलित, प्रदीप्त, अंगारों के पर्वत पर चढ़ाते भी हैं, उतारते भी हैं। वह उससे... हो जाता।

"भिक्षुओ, उस आदमी को यमदूत पैर ऊपर सिर नीचे करके गर्म जलती हुई, प्रज्वलित, प्रदीप्त, तप्त लोहे की कड़ाही में डाल देते हैं। वह वहां खौलता

हुआ पकता है, वह वहां खौलता हुआ, पकता हुआ फेण के साथ एक बार ऊपर जाता है, एक बार नीचे जाता है, एक बार बीच में रहता है। वह उससे... हो जाता।

"भिक्षुओ, उस आदमी को यमदूत महानरक में डाल देते हैं। उस महानरक के –

"चतुक्कण्णो चतुद्वारो, विभत्तो भागसो मितो।
अयोपाकारपरियन्तो, अयसा पटिकुज्जितो॥

"तस्स अयोमया भूमि, जलिता तेजसा युता।
समन्ता योजनसतं, फरित्वा तिट्ठति सब्बदा"ति॥

["चार कोने हैं और चार द्वार हैं तथा वह हिस्सों में विभक्त है। उसके चारों ओर लोहे की दीवार है और वह लोहे से ढँका हुआ है। उसके चारों ओर सौ योजन लौह-मय भूमि हमेशा आग से प्रज्वलित रहती है।"]

"भिक्षुओ, पूर्व समय में यमराज के मन में यह हुआ –(मनुष्य-) लोक में जो पाप-कर्म करते हैं उन्हें इस प्रकार के बहुत से दंड मिलते हैं। अच्छा हो यदि मुझे मनुष्य होकर पैदा होना मिले, उस समय अर्हत सम्यक संबुद्ध तथागत का भी (मनुष्य-) लोक में जन्म हो, मैं उन भगवान का सत्संग करूं, वे भगवान मुझे धर्मोपदेश दें और मैं उन भगवान के उपदेश को जानूं।

"भिक्षुओ, मैं यह बात किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण से सुनकर नहीं कहता, बल्कि, भिक्षुओ, जो कुछ मैंने स्वयं जाना है, स्वयं देखा है, स्वयं अनुभव किया है, वही कहता हूं।

"चोदिता देवदूतेहि, ये पमज्जन्ति माणवा।
ते दीघरत्तं सोचन्ति, हीनकायूपगा नरा॥

"ये च खो देवदूतेहि, सन्तो सप्पुरिसा इध।
चोदिता नप्पमज्जन्ति, अरियधम्मे कुदाचनं॥

"उपादाने भयं दिस्वा, जातिमरणसम्भवे।
अनुपादा विमुच्चन्ति, जातिमरणसङ्खये॥

"ते अप्पमत्ता सुखिनो, दिट्ठधम्माभिनिब्बुता।
सब्बवेरभयातीता, सब्बदुक्खं उपच्चगु"न्ति॥

["देवदूतों (जरा, व्याधि, मरण) द्वारा शिक्षित किये जाने पर भी जो मनुष्य प्रमाद करते हैं, वे हीनावस्था को प्राप्त हो, दीर्घकाल तक संताप करते

हैं। जो सत्पुरुष देवदूतों द्वारा शिक्षित किये जाने पर आर्य-धर्म के विषय में कभी प्रमाद नहीं करते, वे जाति-मरण के कारण उपादान-स्कंधों को भय का कारण मान, उपादान-रहित हो जाति-मरण-क्षयस्वरूप निर्वाण को प्राप्त करते हैं। वे कल्याण को प्राप्त होते हैं। वे अप्रमत्त हो सुखी होते हैं। वे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त कर सभी वैरों तथा भयों की सीमा लांघ जाते हैं। वे सभी दु:खों का अतिक्रमण कर लेते हैं।"]

७. चतुर्महाराज सुत्त

३७. "भिक्षुओ, पक्ष की अष्टमी के दिन चारों महाराजाओं के अमात्य-पार्षद इस लोक में यह देखने के लिए विचरते हैं कि क्या मनुष्य-लोक के अधिकांश लोग मातृ-सेवक हैं, पितृ-सेवक हैं, श्रमण-सेवक हैं, ब्राह्मण (क्षीणास्रव)-सेवक हैं, अपने-अपने कुल में बड़ों का आदर करने वाले हैं, उपोसथ रखने वाले हैं, जागरण करने वाले हैं तथा पुण्य-कर्म करने वाले हैं।

"भिक्षुओ, पक्ष की चतुर्दशी के दिन चारों महाराजाओं के पुत्र इस लोक में यह देखने के लिए विचरते हैं कि क्या मनुष्य-लोक के अधिकांश लोग मातृ-सेवक हैं, पितृसेवक हैं, श्रमण-सेवक हैं, ब्राह्मण (क्षीणास्रव)-सेवक हैं, अपने-अपने कुल में बड़ों का आदर करने वाले हैं, उपोसथ रखने वाले हैं, जागरण करने वाले हैं, तथा पुण्य-कर्म करने वाले हैं।

"भिक्षुओ, उसी प्रकार पूर्णिमा-उपोसथ के दिन चारों महाराजा स्वयं ही इस लोक में यह देखने के लिए विचरते हैं कि क्या मनुष्य-लोक के अधिकांश लोग मातृ-सेवक हैं, पितृ-सेवक हैं, श्रमण-सेवक हैं, ब्राह्मण (क्षीणास्रव)-सेवक हैं, अपने-अपने कुल में बड़ों का आदर करने वाले हैं, उपोसथ रखने वाले हैं, जागरण करने वाले हैं तथा पुण्य-कर्म करने वाले हैं।

"भिक्षुओ, यदि मनुष्य-लोक में ऐसे आदमी थोड़े होते हैं जो मातृ-सेवक हों, पितृ-सेवक हों, श्रमण-सेवक हों, ब्राह्मण-सेवक हों, अपने-अपने कुल में बड़ों का आदर करने वाले हों, उपोसथ रखने वाले हों, जागरण करने वाले हों तथा पुण्य-कर्म करने वाले हों, तो भिक्षुओ, वे चारों महाराजा त्रायस्त्रिंश लोक में सुधर्मा सभा में एकत्रित हुए देवताओं को कहते हैं – 'आयुष्मानो! ऐसे आदमी थोड़े हैं जो मातृ-सेवक हैं, पितृ-सेवक हैं, श्रमण-सेवक हैं, ब्राह्मण-सेवक हैं, अपने-अपने कुल में बड़ों का आदर करने वाले हैं, उपोसथ रखने वाले हैं, जागरण करने वाले हैं तथा पुण्य-कर्म करने वाले हैं।' भिक्षुओ, उससे त्रायस्त्रिंश देवता असंतुष्ट हो कहते हैं कि देवों की संख्या घटेगी और असुरों की संख्या बढ़ेगी।

"लेकिन भिक्षुओ, यदि मनुष्य-लोक में ऐसे आदमी अधिक होते हैं जो मातृ-सेवक हों, पितृ-सेवक हों, श्रमण-सेवक हों, ब्राह्मण-सेवक हों, अपने-अपने कुल में बड़ों का आदर करने वाले हों, उपोसथ रखने वाले हों, जागरण करने वाले हों तथा पुण्य-कर्म करने वाले हों तो भिक्षुओ, वे चारों महाराजा त्रायस्त्रिंश लोक में सुधर्मा सभा में एकत्रित हुए देवताओं को कहते हैं – 'आयुष्मानो! ऐसे आदमी बहुत हैं जो मातृ-सेवक हैं, पितृ-सेवक हैं, श्रमण-सेवक हैं, ब्राह्मण-सेवक हैं, अपने-अपने कुल में बड़ों का आदर करने वाले हैं, जागरण करने वाले हैं तथा पुण्य-कर्म करने वाले हैं।' भिक्षुओ, इससे त्रायस्त्रिंश देवता संतुष्ट हो कहते हैं – 'देव बढ़ते जायेंगे और असुर नष्ट होंगे।'

"भिक्षुओ, पूर्वकाल में त्रायस्त्रिंश देवताओं के देवेंद्र शक्र ने देवों को उद्‌बोधन करते हुए यह गाथा कही –

"चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं।
उपोसथं उपवसेय्य, योपिस्स मादिसो नरो"ति॥

["जो भी नर मेरे सदृश होना चाहे वह पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी तथा प्रातिहारिय-पक्ष (अतिरिक्त छुट्टी) को आठ शीलों वाला उपोसथ रखे।"]

"भिक्षुओ, देवेंद्र शक्र द्वारा कही गयी यह गाथा सुगीत नहीं है, दुर्गीत है, सुभाषित नहीं है, दुर्भाषित है। यह किसलिए? भिक्षुओ, देवेंद्र शक्र का राग, द्वेष, मोह क्षय नहीं हुआ है। भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा भिक्षु जो अर्हत हो, क्षीणास्रव हो, श्रेष्ठ जीवन जी चुका हो, करणीय कर चुका हो, भार उतार चुका हो, सदर्थ प्राप्त कर चुका हो, भव-संयोजन क्षीण कर चुका हो, तथा सम्यक ज्ञान द्वारा विमुक्त हो गया हो, ऐसी गाथा कहे तो उसका यह कथन समुचित होगा –

"चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं।
उपोसथं उपवसेय्य, योपिस्स मादिसो नरो"ति।

["जो भी नर मेरे सदृश होना चाहे वह पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी तथा प्रातिहारिय-पक्ष (अतिरिक्त छुट्टी) को आठ शीलों वाला उपोसथ रखे।]

"यह किसलिए ?क्योंकि भिक्षुओ, वह भिक्षु राग, द्वेष, मोह रहित है।"

८. चतुर्महाराज सुत्त (द्वितीय)

३८. "भिक्षुओ, पूर्वकाल में त्रायस्त्रिंश देवताओं का नेतृत्व करने वाला देवेंद्र शक्र हुआ है। उस समय उसने यह गाथा कही –

'चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं।
उपोसथं उपवसेय्य, योपिस्स मादिसो नरो'ति॥

["जो भी नर मेरे सदृश होना चाहे वह पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी तथा प्रातिहारिय-पक्ष (अतिरिक्त छुट्टी) को आठ शीलों वाला उपोसथ रखे।"]

"भिक्षुओ, देवेंद्र शक्र द्वारा कही गयी यह गाथा सुगीत नहीं है, दुर्गीत है, सुभाषित नहीं है, दुर्भाषित है। यह किसलिए? क्योंकि भिक्षुओ, देवेंद्र शक्र जन्म, बुढ़ापा, मरण, शोक, क्रंदन (रोना-पीटना), दुःख, दौर्मनस्य, अशांति से मुक्त नहीं है। मैं कहता हूं कि वह दुःख से मुक्त नहीं है। भिक्षुओ, जो भिक्षु अर्हत हो, क्षीणास्रव हो, श्रेष्ठ जीवन जी चुका हो, करणीय कर चुका हो, भार उतार चुका हो, सदर्थ प्राप्त कर चुका हो, भव-संयोजन क्षीण कर चुका हो तथा सम्यक ज्ञान द्वारा विमुक्त हो गया हो, ऐसी गाथा कहे तो उसका यह कथन समुचित है –

'चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं।
उपोसथं उपवसेय्य, योपिस्स मादिसो नरो'ति।

["जो भी नर मेरे सदृश होना चाहे वह पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी तथा प्रातिहारिय-पक्ष (अतिरिक्त छुट्टी) को आठ शीलों वाला उपोसथ रखे।"]

"यह किसलिए? भिक्षुओ, वह भिक्षु, जन्म, बुढ़ापा, मरण, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य, अशांति से मुक्त है। मैं कहता हूं कि वह दुःख से मुक्त है।"

९. सुकुमार सुत्त

३९. "भिक्षुओ, मैं सुकुमार था, परम सुकुमार, अत्यंत सुकुमार। भिक्षुओ, मेरे पिता के घर पुष्करणियां बनी थीं – एक में उत्पल (नील कमल) पुष्पित होते थे, एक में पद्म (लाल कमल) तथा एक में पुंडरीक (श्वेत कमल)। यह सभी मेरे ही लिए थे। भिक्षुओ, उस समय मैं वह चंदन धारण नहीं करता था जो काशी का न हो, भिक्षुओ, काशी की ही बनी मेरी पगड़ी होती थी, काशी का ही कंचुक, काशी का ही निवासन (=अंदर पहनने का वस्त्र), काशी

का ही उत्तरासंग। भिक्षुओ, रात-दिन मेरे सिर पर श्वेत-छत्र तना रहता था ताकि मुझे शीत न लगे, गरमी न लगे, धूल न लगे, तिनके न लगें तथा ओस न लगे। भिक्षुओ, उस समय मेरे तीन प्रासाद थे – एक हेमंत-ऋतु के लिए, एक ग्रीष्म-ऋतु के लिए तथा एक वर्षा-ऋतु के लिए। भिक्षुओ, मैं वर्षा के चारों महीने प्रासाद से नीचे नहीं उतरता था। उस समय मैं तूर्य-वादन करने वाली स्त्रियों से घिरा रहता था। भिक्षुओ, जैसे दूसरे घरों में दासों तथा नौकर-चाकरों को बिलङ्ग (एक पौधा जिससे खट्टी दलिया बनायी जाती थी) और कणजक (टूटे चावल का) दिया जाता था, वैसे ही भिक्षुओ, मेरे पिता के घर में दासों तथा नौकर-चाकरों को मांस तथा शाली (=धान) का भात दियजाता था।

"भिक्षुओ, उस समय इस प्रकार का ऐश्वर्य भोगते हुए तथा इस प्रकार की सुकुमारता लिए हुए मेरे मन में यह हुआ – अज्ञानी सामान्य जन स्वयं जरा को प्राप्त होने वाला होकर, स्वयं जरा के अधीन होकर, किसी दूसरे बूढ़े को देखकर अपनी मर्यादा भूलकर कष्ट पाता है, लज्जित होता है तथा घृणा करता है बिना यह सोचे कि मैं भी तो बुढ़ापे को प्राप्त होने वाला हूं, बुढ़ापे के अधीन हूं। यदि मैं स्वयं बुढ़ापे को प्राप्त होने वाला होकर, स्वयं बुढ़ापे के अधीन होकर दूसरे बूढ़े को देखकर कष्ट पाऊं, लज्जित होऊं, तथा घृणा करूं, तो यह मेरे योग्य न होगा। भिक्षुओ, इस प्रकार विचार करते-करतेमेरे मन में यौवन के प्रति जो यौवन-मद था वह सब जाता रहा।

"अज्ञानी सामान्य जन स्वयं व्याधि को प्राप्त होने वाला होकर, स्वयं व्याधि के अधीन होकर, किसी दूसरे व्याधि-ग्रस्त को देखकर अपनी मर्यादा भूलकर कष्ट पाता है, लज्जित होता है तथा घृणा करता है बिना यह सोचे कि मैं भी तो व्याधि को प्राप्त होने वाला हूं, व्याधि के अधीन हूं। यदि मैं स्वयं व्याधि को प्राप्त होने वाला होकर, स्वयं व्याधि के अधीन होकर, दूसरे व्याधि-ग्रस्त को देखकर कष्ट पाऊं, लज्जित होऊं तथा घृणा करूं, तो यह मेरे योग्य न होगा। भिक्षुओ, इस प्रकार विचार करते-करतेमेरे मन में आरोग्य के प्रति जो आरोग्य-मद था वह सब जाता रहा।

"अज्ञानी सामान्य जन स्वयं मरण को प्राप्त होने वाला होकर, स्वयं मरण के अधीन होकर, किसी दूसरे मृत्यु-प्राप्त को देखकर, अपनी मर्यादा भूलकर कष्ट पाता है, लज्जित होता है तथा घृणा करता है बिना यह सोचे कि मैं भी तो मरण को प्राप्त होने वाला हूं, मरण के अधीन हूं। यदि मैं स्वयं मरण को प्राप्त होने वाला होकर, स्वयं मरण के अधीन होकर, किसी मृत्यु-प्राप्त को देखकर कष्ट पाऊं, लज्जित होऊं तथा घृणा करूं, तो यह मेरे योग्य न होगा। भिक्षुओ,

इस प्रकार विचार करते-करते मेरे मन में जीवन के प्रति जो जीवन-मद था वह सब जाता रहा।

"भिक्षुओ, तीन प्रकार के मद हैं। कौन-से तीन?

"यौवन-मद, आरोग्य-मद तथा जीवन-मद।

"भिक्षुओ, यौवन-मद में मत्त अज्ञानी सामान्य जन कायिक-दुष्कर्म करता है, वाचिक-दुष्कर्म करता है तथा मानसिक-दुष्कर्म करता है। वह शरीर, वाणी तथा मन से दुष्कर्म करके शरीर के छूटने पर, मरने के बाद, अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में उत्पन्न होता है। भिक्षुओ, आरोग्य-मद से मत्त अज्ञानी सामान्य जन कायिक-दुष्कर्म करता है, वाचिक ... मानसिक ... करता है। वह शरीर, वाणी तथा मन से ... नरक में उत्पन्न होता है। भिक्षुओ, जीवन-मद से मत्त अज्ञानी सामान्य जन कायिक-दुष्कर्म करता है ... वह शरीर, वाणी तथा मन से ... मरने के बाद ... नरक में उत्पन्न होता है।

"भिक्षुओ, यौवन-मद से मत्त भिक्षु शिक्षा का त्याग कर पतित होता है। भिक्षुओ, आरोग्य-मद से मत्त भिक्षु शिक्षा का त्याग कर पतित होता है। भिक्षुओ, जीवन-मद से मत्त भिक्षु शिक्षा का त्याग कर पतित होता है।

"ब्याधिधम्मा जराधम्मा, अथो मरणधम्मिनो।
यथाधम्मा तथासन्ता, जिगुच्छन्ति पुथुज्जना॥

"अहञ्चे तं जिगुच्छेय्यं, एवंधम्मेसु पाणिसु।
न मेतं पटिरूपस्स, मम एवं विहारिनो॥

"सोहं एवं विहरन्तो, ञत्वा धम्मं निरूपधिं।
आरोग्ये योब्बनस्मिञ्च, जीवितस्मिञ्च ये मदा॥

"सब्बे मदे अभिभोस्मि, नेक्खम्मे दट्ठु खेमतं।
तस्स मे अहु उस्साहो, निब्बानं अभिपस्सतो॥

"नाहं भब्बो एतरहि, कामानि पटिसेवितुं।
अनिवत्ति भविस्सामि, ब्रह्मचरियपरायणो"ति॥

["सामान्य जन स्वयं जरा, व्याधि तथा मरण के अधीन होते हुए भी इस प्रकार के ही दूसरे जनों से घृणा करते हैं। यदि मैं जरा, व्याधि तथा मरण के अधीन प्राणियों से घृणा करूं तो यह मेरे अनुरूप नहीं होगा। उपधि-रहित धर्म (निर्वाण) को जानकर आरोग्य, यौवन तथा जीवनरूपी जो मद हैं उन सब को

मैंने अभिभूत (जीत) कर लिया हैं, नैष्कर्म्य में ही मैंने कल्याण देखा, निर्वाण को पूर्ण रूप से देखा तो मेरे मन में उत्साह है। मैं अब कामभोगों का सेवन करने के योग्य नहीं हूं। मैं अब ब्रह्मचर्य-परायण होकर पीछे न लौटने वाला होऊंगा।"]

१०. अधिपति सुत्त

४०. "भिक्षुओ, तीन आधिपत्य हैं। कौन-से तीन?

"स्वाधिपत्य, लोकाधिपत्य, धर्माधिपत्य।

"भिक्षुओ, स्वाधिपत्य क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, एक भिक्षु अरण्यवासी होकर, अथवा वृक्ष-तले रहने वाला होकर अथवा शून्यागार में रहने वाला होकर इस प्रकार विचार करता है – 'न मैं चीवर के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ, न पिंडपात (=भोजन) के लिए, न शयनासन के लिए, न यह-वह कुछ होने के लिए। मैं जाति, जरा, मरण, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य, अशांति में गिरा हुआ हूं – दुःख में गिरा हूं, दुःख में डूबा हुआ। संभव है कि इस दुःखस्कंध का संपूर्ण विनाश देख सकूं। मैं जिस प्रकार के कामभोगों को छोड़कर घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ, वैसे ही कामभोगों के पीछे पड़ूं, तो यह उससे भी बुरा होगा। यह मेरे अनुरूप नहीं है।'

"वह यह विचार करता है – 'मेरा प्रयत्न बिना विचलित हुए क्रियाशील होगा, स्मृति निर्भ्रांत हो उपस्थित रहेगी, शरीर प्रश्रब्ध तथा उत्तेजना-रहित रहेगा और चित्त समाहित तथा एकाग्र रहेगा।' वह अपने-आप का ही आधिपत्य स्वीकार कर अकुशल का त्याग करता है, कुशल की भावना करता है, सदोष को छोड़ता है, निर्दोष की भावना करता है – अपने जीवन को शुद्ध बनाता है। भिक्षुओ, इसे स्वाधिपत्य कहते हैं।

"भिक्षुओ, लोकाधिपत्य क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, एक भिक्षु अरण्यवासी होकर, अथवा वृक्ष-तले रहने वाला होकर अथवा शून्यागार में रहने वाला होकर इस प्रकार विचार करता है – 'न मैं चीवर के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ, न पिंडपात (=भोजन) के लिए, न शयनासन के लिए, न यह-वह कुछ होने के लिए। मैं जाति, जरा, मरण शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य, अशांति में गिरा हुआ हूं – दुःख में गिरा हुआ, दुःख में डूबा हुआ – अच्छा हो कि उस दुःख का संपूर्ण विनाश देख सकूं। इस प्रकार प्रव्रजित हुआ मैं यदि कामभोग संबंधी संकल्प-विकल्पों को मन में जगह दूं, व्यापाद (=क्रोध) संबंधी संकल्प-विकल्पों को मन में जगह दूं;

विहिंसा संबंधी संकल्प-विकल्पों को मन में जगह दूं; तो यह संसार बहुत बड़ा है! इस महान संसार में कुछ श्रमण-ब्राह्मण ऐसे हैं जो ऋद्धिमान हैं, दिव्य चक्षु वाले हैं, दूसरे के मन की बात जान लेने वाले हैं। वे दूर से भी देख लेते हैं, पास होने पर भी दिखाई नहीं देते हैं, वे चित्त से भी चित्त की बात जान लेते हैं। वे भी मेरे बारे में जान लेंगे – इस कुलपुत्र को देखो! यह श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, किंतु ऐसा होकर भी यह पापी अकुशल-धर्मों से युक्त हो विहार करता है। कुछ देवता भी हैं जो ऋद्धिमान हैं, दिव्यचक्षुधर हैं तथा पर-चित्त को जान लेने वाले हैं। वे भी मुझे इस प्रकार जान लेंगे – इस कुलपुत्र को देखो! यह श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, किंतु ऐसा होकर भी यह पापी अकुशल-धर्मों से युक्त हो विहार करता है।'

"वह यह विचार करता है – 'बिना विचलित हुए मेरा प्रयत्न क्रियाशील होगा, स्मृति निर्भ्रांत हो उपस्थित रहेगी, शरीर प्रश्रब्ध तथा उत्तेजना-रहित रहेगा और चित्त समाहित तथा एकाग्र रहेगा।' वह लोक का ही आधिपत्य स्वीकार कर अकुशल का त्याग करता है, कुशल की भावना करता है, सदोष को छोड़ता है, निर्दोष की भावना करता है – अपने जीवन को शुद्ध बनाता है। भिक्षुओ, इसे लोकाधिपत्य कहते हैं।

"भिक्षुओ, धर्माधिपत्य क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, एक भिक्षु अरण्यवासी होकर, अथवा वृक्ष-तले रहने वाला होकर अथवा शून्यागार में रहने वाला होकर इस प्रकार विचार करता है – 'न मैं चीवर के लिए घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ, न पिंडपात (=भोजन) के लिए, न शयनासन के लिए, न यह-वह कुछ होने के लिए। मैं जाति, जरा, मरण, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य, अशांति में गिरा हुआ हूं – दुःख में गिरा हुआ, दुःख में डूबा हुआ। अच्छा हो कि इस दुःख का संपूर्ण विनाश देख सकूं। भगवान का धर्म सु-आख्यात है, सांदृष्टिक (इहलोक-संबंधी) है, अकालिक है, इसके बारे में कहा जा सकता है कि आओ और स्वयं देख लो, निर्वाण की ओर ले जाने वाला है, इसका विज्ञजन (ज्ञानीजन) स्वयं साक्षात कर सकते हैं। मेरे सब्रह्मचारी (साथी) हैं जो जानते हुए, देखते हुए विहार करते हैं। यदि मैं इस प्रकार के सु-आख्यात धर्म-विनय में प्रव्रजित होकर भी आलसी रहूं, प्रमादी रहूं तो यह मेरे अनुरूप नहीं होगा।'

"वह यह विचार करता है – 'बिना विचलित हुए मेरा प्रयत्न क्रियाशील होगा, स्मृति निर्भ्रांत हो उपस्थित रहेगी, शरीर प्रश्रब्ध तथा उत्तेजना-रहित रहेगा और चित्त समाहित तथा एकाग्र रहेगा।' वह धर्म का ही आधिपत्य

स्वीकार कर अकुशल का त्याग करता है, कुशल की भावना करता है, सदोष को छोड़ता है, निर्दोष की भावना करता है – अपने जीवन को शुद्ध बनाता है। भिक्षुओ, इसे धर्माधिपत्य कहते हैं। भिक्षुओ, ये तीन आधिपत्य हैं।"

"नत्थि लोके रहो नाम, पापकम्मं पकुब्बतो।
अत्ता ते पुरिस जानाति, सच्चं वा यदि वा मुसा॥

"कल्याणं वत भो सक्खि, अत्तानं अतिमञ्ञसि।
यो सन्तं अत्तनि पापं, अत्तानं परिगूहसि॥

"पस्सन्ति देवा च तथागता च, लोकस्मिं बालं विसमं चरन्तं।
तस्मा हि अत्ताधिपतेय्यको च, लोकाधिपो च निपको च झायी॥

"धम्माधिपो च अनुधम्मचारी, न हीयति सच्चपरक्कमो मुनि।
पसय्ह मारं अभिभुय्य अन्तकं, यो च फुसी जातिक्खयं पधानवा।
सो तादिसो लोकविदू सुमेधो, सब्बेसु धम्मेसु अतम्मयो मुनी"ति॥

["पाप-कर्म करने वाले के लिए लोक में छिपकर काम करने की जगह नहीं है। हे पुरुष! जो कुछ तू अच्छा या बुरा करता है, वह सत्य है या मृषा (मिथ्या) है, यह बात तेरा अपना-आप तो जानता ही है। हे मित्र! तु सुंदर है पर अपने आपका ही अवमान (तिरस्कार) करता है। तू अपने पाप को अपने से ही छिपाता है। लोक में मूर्ख आदमी जो अनुचित कर्म करता है उसे देवता और तथागत देखते हैं। इसलिए निपुण और ध्यानी, स्वाधिपत्य, लोकाधिपत्य, धर्माधिपत्य स्वीकार करने वाला, धर्मानुसार आचरण करने वाला यथार्थ-पराक्रमी मुनि कभी ह्रास को प्राप्त नहीं होता। वह प्रयत्नवान मुनि मार तथा अंतक (यमराज) को पराजित कर जाति-क्षय (निर्वाण) को स्पर्श करता है। इस प्रकार का लोक का जानकार बुद्धिमान मुनि सभी धर्मो (विषयों) की तृष्णा के पार हो जाता है।"]

* * * * *

५. चूळ वर्ग

१. सन्मुखभाव सुत्त

४१. "भिक्षुओ, इन तीन के होने से श्रद्धावान कुलपुत्र बहुत पुण्य कमाता है। किन तीन के ?

"भिक्षुओ, श्रद्धा के होने से श्रद्धावान कुलपुत्र बहुत पुण्य कमाता है। भिक्षुओ, दातव्य (दान देने योग्य)-वस्तु के होने से श्रद्धावान कुलपुत्र बहुत पुण्य कमाता है। भिक्षुओ, दक्षिणा (दान) देने योग्य व्यक्ति के मिलने से श्रद्धावान कुलपुत्र बहुत पुण्य कमाता है।

"भिक्षुओ, इन तीन के होने से श्रद्धावान कुलपुत्र बहुत पुण्य कमाता है।"

२. त्रय स्थानिक सुत्त

४२. "भिक्षुओ, तीन बातों से, श्रद्धावान और प्रसन्नचित्त वाले की पहचान होती है। कौन-सी तीन से?

"वह शीलवानों (सदाचारियों) के दर्शन की इच्छा रखने वाला होता है, वह सद्धर्म सुनने की इच्छा रखने वाला होता है, वह मात्सर्य-रहित होकर गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, उदारता से दान देने वाला[1], शुद्ध मन से उत्सर्गरत (त्यागकर प्रसन्न होने वाला), जिसके पास याचना की जा सकती है तथा दान का संविभाग करने वाला। भिक्षुओ, इन तीन बातों से श्रद्धावान की, प्रसन्नचित्त की पहचान होती है।

"दस्सनकामो सीलवतं, सद्धम्मं सोतुमिच्छति।
विनये मच्छेरमलं, स वे सद्धोति वुच्चती"ति॥

["शीलवानों का दर्शन करना चाहता है, सद्धर्म सुनना चाहता है, मात्सर्य (कंजूसपन) को दूर करता है – वही श्रद्धावान कहलाता है।"]

३. ध्यातव्य सुत्त

४३. "भिक्षुओ, दूसरों को धर्मोपदेश देने वाले को ये तीन बातें स्पष्ट होनी चाहिए। कौन-सी तीन? जो धर्मोपदेश देता है वह शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों का जानकार होता है, जो धर्मोपदेश सुनता है वह शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों का जानकार होता है, जो धर्मोपदेश देते तथा धर्मोपदेश सुनते हैं वे शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों के जानकार होते हैं। भिक्षुओ, इन तीन बातों का ख्याल कर दूसरों को धर्मोपदेशदेना योग्य है।"

---

१ यहां पालि में **मुत्तचागो पयतपाणि, वोस्सग्गरतो याचयोगो दानसंविभागरतो** वाक्यखंड है। **'मुत्तचागो'** का अर्थ 'उदारतापूर्वक दान देने वाला' होता है; **'पयतपाणि'** का अर्थ 'परिशुद्ध हाथवाला अर्थात शुद्ध मन से दान देने वाला'। **'वोस्सग्गरत'** अर्थात 'उत्सर्गरत' (त्यागकर प्रसन्न होने वाला)। **'याचयोगो'** का अर्थ 'जिसके पास याचना की जा सकती है' अर्थात जो मुक्तहस्त है। **'दानसंविभागरतो'** का अर्थ 'उदारतापूर्वक धन का संविभाग करनेवाला, दान देने वाला'।

४. क थाफ लसुत्त

४४. "भिक्षुओ, तीन के होने से (धर्म-) क था लाभक ारी होती है।[१] कौन-से तीन? जो धर्मोपदेश देता है वह शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों का जानक ार होता है, जो धर्मोपदेश सुनता है वह शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों का जानक ार होता है, जो धर्मोपदेश देते तथा धर्मोपदेश सुनते हैं वे शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों के जानक ार होते हैं। भिक्षुओ, इन तीन के होने से क था लाभक ारी होती है।"

५. पंडित सुत्त

४५. "भिक्षुओ, इन तीन बातों को पंडितों ने प्रज्ञापित कि या है, सत्पुरुषों ने प्रज्ञापित कि या है। कौन-सी तीन को?

"भिक्षुओ, दान को पंडितों ने प्रज्ञापित कि या है, सत्पुरुषों ने प्रज्ञापित कि या है। भिक्षुओ, प्रव्रज्या को पंडितों ने प्रज्ञापित कि या है, सत्पुरुषों ने प्रज्ञापित कि या है। भिक्षुओ, माता-पिता की सेवा को पंडितों ने प्रज्ञापित कि या है, सत्पुरुषों ने प्रज्ञापित कि या है। भिक्षुओ, इन तीन बातों को पंडितों ने प्रज्ञापित कि या है, सत्पुरुषों ने प्रज्ञापित कि या है।

"सब्भि दानं उपञ्ञत्तं, अहिंसा संयमो दमो।
मातापितु उपट्ठानं, सन्तानं ब्रह्मचारिनं॥

"सतं एतानि ठानानि, यानि सेवेथ पण्डितो।
अरियो दस्सनसम्पन्नो, स लोकं भजते सिव"न्ति॥

["सत्पुरुषों ने दान, अहिंसा, संयम तथा दम की प्रशंसा की है और शांत, श्रेष्ठाचरण क रने वाले तरुणों द्वारा की जाने वाली माता-पिता की सेवा की प्रशंसा की है। सत्पुरुषों द्वारा प्रशंसित बातों के अनुसार जो पंडित आचरण क रता है वह श्रेष्ठ है, वह दर्शनीय है, वह क ल्याण को प्राप्त होता है।"]

६. सीलवंत सुत्त

४६. "भिक्षुओ, जिस गांव अथवा निगम के आश्रय में शीलवान प्रव्रजित (भिक्षु) रहते हैं, वहां के रहने वाले तीन तरह से बहुत पुण्य क माते हैं। कौन-से तीन तरह से?

१ यहां क हने का तात्पर्य है कि तीन के होने से क था लाभक ारी होती है। 'क था शुरू क रने की बात' और 'क था लाभक ारी होने की बात' में बड़ा अंतर है। अट्ठक था में **'पवत्तिनीति अप्पटिहता निय्यानिक ा'** अर्थात 'बिना रुक ावट के निर्वाण की ओर ले जाने वाली है'- यह क हा गया है।

"काया से, वाणी से तथा मन से।

"भिक्षुओ, जिस गांव अथवा निगम के आश्रय में सदाचारी प्रव्रजित (भिक्षु) रहते हैं, वहां के रहने वाले तीन तरह से बहुत पुण्य लाभ कमाते हैं।"

७. संस्कृत-लक्षण सुत्त

४७. "भिक्षुओ, संस्कृत-धर्मों के ये तीन लक्षण हैं। कौन-से तीन?

"उनकी उत्पत्ति (उत्पाद) दिखाई देती है, उनका विनाश (व्यय) दिखाई देता है, उनमें परिवर्तन दिखाई देता है। भिक्षुओ, संस्कृत-धर्मों के ये तीन लक्षण हैं।"

८. असंस्कृत-लक्षण सुत्त

४८. "भिक्षुओ, असंस्कृत-धर्मों के ये तीन लक्षण हैं। कौन-से तीन?

"न उनकी उत्पत्ति दिखाई देती है, न विनाश दिखाई देता है और न उनमें परिवर्तन दिखाई देता है। भिक्षुओ, असंस्कृत-धर्मों के ये तीन लक्षण हैं।"

९. पर्वतराज सुत्त

४९. "भिक्षुओ, पर्वतराज हिमालय के आश्रित रहते हुए महाशाल वृक्ष तीन तरह से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। कौन-से तीन तरह से?

"शाखायें तथा पत्ते बढ़ते हैं, छाल तथा पपड़ी बढ़ती है, फल्गुसार में वृद्धि होती है। भिक्षुओ, पर्वतराज हिमालय के आश्रित रहते हुए महाशाल वृक्ष तीन तरह से वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, श्रद्धावान कुलपति के आश्रय में रहने वाले जनों में तीन बातों की वृद्धि होती है। किन तीन बातों की?

"श्रद्धा की वृद्धि होती है, शील की वृद्धि होती है, तथा प्रज्ञा की वृद्धि होती है। भिक्षुओ, श्रद्धावान कुलपति के आश्रय में रहने वाले जनों में तीन बातों की वृद्धि होती है।

"यथापि पब्बतो सेलो, अरञ्ञस्मिं ब्रहावने।
तं रुक्खा उपनिस्साय, वड्ढन्ते ते वनप्पती॥

"तथेव सीलसम्पन्नं, सद्धं कुलपतिं इध।
उपनिस्साय वड्ढन्ति, पुत्तदारा च बन्धवा।
अमच्चा ञातिसङ्घा च, ये चस्स अनुजीविनो॥

"त्यास्स सीलवतो सीलं, चागं सुचरितानि च।
पस्समानानुकुब्बन्ति, अत्तमत्थं विचक्खणा॥

"इध धम्मं चरित्वान, मग्गं सुगतिगामिनं।
नन्दिनो देवलोकस्मिं, मोदन्ति कामकामिनो"ति॥

["जिस प्रकार घनघोर जंगल में शैल-पर्वत के आश्रय में रहने वाले वृक्ष वृद्धि को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार यहां श्रद्धावान, शीलवान कुलपति के आश्रय में रहने वाले पुत्र-कलत्र, बंधु, अमात्य, जातिसंघ तथा अन्य आश्रित-जन वृद्धि को प्राप्त होते हैं –बुद्धिमान जन उस सदाचारी के शील तथा त्याग का अनुकरण करते हैं। वे सुगतगामियों के मार्ग धर्म के अनुसार आचरण करके इच्छाओं की पूर्ति होने से देव-लोक में प्रसन्न हो मोद को प्राप्त होते हैं।"]

१०. कठोर प्रयत्न करणीय सुत्त

५०. "भिक्षुओ, तीन अवसरों पर कठोर प्रयत्न करना चाहिए। कौन-से तीन?

"जो अनुत्पन्न पाप हैं, अकुशल-धर्म हैं उनके उत्पन्न न होने देने के लिए कठोर प्रयत्न करना चाहिए; जो अनुत्पन्न कुशल-धर्म हैं उनके उत्पन्न करने के लिए कठोर प्रयत्न करना चाहिए, जो दुःख-पूर्ण, तीव्र, प्रखर, कटु, प्रतिकूल, बुरी, प्राणहर शारीरिक वेदनायें हों उन्हें सहन करने का कठोर प्रयत्न करना चाहिए।

"भिक्षुओ, इन तीन अवसरों पर कठोर प्रयत्न करना चाहिए।

"भिक्षुओ, जब भिक्षु, जो अनुत्पन्न पाप हैं, अकुशल-धर्म हैं उनके उत्पन्न न होने देने के लिए कठोर प्रयत्न करता है, जो अनुत्पन्न कुशलधर्म हैं उनके उत्पन्न करने के लिए कठोर प्रयत्न करता है, जो दुःखपूर्ण, तीव्र, प्रखर, कटु, प्रतिकूल, बुरी, प्राणहर शारीरिक वेदनायें होती हैं; उन्हें सहन करने का कठोर प्रयत्न करता है, तो भिक्षुओ, भिक्षु सम्यक प्रकार से दुःख का अंत करने के लिए स्मृतिमान, निपुण प्रयत्नवान कहलाता है।"

११. महाचोर सुत्त

५१. "भिक्षुओ, तीन बातों से समन्वागत (युक्त) महाचोर सेंध भी लगाता है, लूट-मार भी करता है, डाका भी डालता है, रास्ते में भी लूटता (बटमारी करता) है। कौन-सी तीन?

"भिक्षुओ, इस संबंध में महाचोर विषम-आश्रित होता है, गहन-आश्रित होता है तथा बलवान-आश्रित होता है।

“भिक्षुओ, महाचोर विषम-आश्रित कैसे होता है? यहां, भिक्षुओ, महाचोर नदियों के दुर्गम प्रदेश में या दुर्लंघ्य पर्वतों के प्रदेश में रहता है। इस प्रकार भिक्षुओ, महाचोर विषम-आश्रित होता है।

“भिक्षुओ, महाचोर गहन-आश्रित कैसे होता है?

“यहां, भिक्षुओ, महाचोर घास के गहन जंगल में छिपा होता है, वृक्षों के गहन जंगल में छिपा होता है, वन में छिपा होता है, महावन में छिपा होता है। इस प्रकार भिक्षुओ, महाचोर गहन-आश्रित होता है।

“भिक्षुओ, महाचोर बलवान-आश्रित कैसे होता है?

“यहां, भिक्षुओ, महाचोर राजाओं या राजाओं के महामात्यों का आश्रित होता है। उसके मन में होता है कि यदि मुझे कोई कुछ कहेगा तो ये राजा या राजाओं के महामात्य मेरे बचाव में कुछ कहेंगे।यदि उसे कोई कुछ कहता है तो ये राजा वा राजाओं के महामात्य उसके बचाव में कुछ कहते हैं। इस प्रकार भिक्षुओ, महाचोर बलवान-आश्रित होता है। भिक्षुओ, इन तीन बातों से समन्वागत (युक्त) महाचोर सेंध भी लगाता है, लूट-मार भी करता है, डाका भी डालता है, रास्ते में भी लूटता है।

“इसी प्रकार, भिक्षुओ, तीन बातों से समन्वागत पापी भिक्षु मूल समेत उखाड़ दिये के समान सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित होता है तथा बहुत अपुण्य कमाता है। कौन-सी तीन?

“यहां, भिक्षुओ, पापी भिक्षु विषम-आश्रित होता है, गहन-आश्रित होता है तथा बलवान-आश्रित होता है।

“भिक्षुओ, पापी भिक्षु विषम-आश्रित कैसे होता है?

“यहां, भिक्षुओ, पापी भिक्षु विषम कायिक-कर्म से समन्वागत होता है, विषम वाचिक-कर्म से समन्वागत होता है, विषम मानसिक-कर्म से समन्वागत होता है। इस प्रकार भिक्षुओ, पपी भिक्षु विषम-आश्रित होता है।

“भिक्षुओ, पापी-भिक्षु गहन-आश्रित कैसे होता है?

“यहां, भिक्षुओ, पापी भिक्षु मिथ्या-दृष्टि वाला होता है, अतिवादी दृष्टि से समन्वागत। इस प्रकार भिक्षुओ, पपी भिक्षु गहन-आश्रित होता है।

“भिक्षुओ, पापी भिक्षु बलवान-आश्रित कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, पापी भिक्षु राजाओं या राजाओं के महामात्यों का आश्रित होता है। उसके मन में होता है कि यदि मुझे कोई कुछ कहेगा तो ये राजा या राजाओं के महामात्य मेरा बचाव करेंगे। यदि उसे कोई कुछ कहता है तो ये राजा या राजाओं के महामात्य उसका बचाव करते हैं। इस प्रकार भिक्षुओ, पापी भिक्षु बलवान-आश्रित होता है। इस प्रकार भिक्षुओ, इन तीन बातों से समन्वागत पापी भिक्षु अपने को स्वयं चोट पहुँचाता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित होता है तथा बहुत अपुण्य कमाता है।"

* * * * *

विषय-सूची

त्रिक -निपात (६-१०)

२. द्वितीय पंचाशतक

(६) १. ब्राह्मण वर्ग - - - - - - - - - - - - - - १६२
१. दो ब्राह्मण सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - - १६२
२. दो ब्राह्मण सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - १६३
३. अन्य ब्राह्मण सुत्त - - - - - - - - - - - - - - १६४
४. परिव्राजक सुत्त - - - - - - - - - - - - - - १६५
५. निर्वृत सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - १६६
६. पलोक (क्षय) सुत्त - - - - - - - - - - - - - १६७
७. वच्छगोत्त सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - १६८
८. तिकण्ण सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - १७०
९. जाणुस्सोणि सुत्त - - - - - - - - - - - - - - १७४
१०. सङ्गारव सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - १७६
(७) २. महा वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - १८१
१. विभिन्न वाद सुत्त - - - - - - - - - - - - - - १८१
२. भय सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - १८५
३. वेनागपुर सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - १८८
४. सरभ सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - १९१
५. केसमुत्ति सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - १९४
६. साळ्ह सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २००
७. कथावस्तु सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २०४
८. अन्यतैर्थिक सुत्त - - - - - - - - - - - - - - २०७
९. अकुसल-मूल सुत्त - - - - - - - - - - - - - - २०९
१०. उपोसथ सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २१३
(८) ३. आनन्द वर्ग - - - - - - - - - - - - - - २२२
१. छन्न सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - २२२
२. आजीवक सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २२४
३. महानाम शाक्य सुत्त - - - - - - - - - - - - - २२६
४. निर्ग्रंथ सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २२७
५. परामर्श सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २२९
६. भव सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - - - - २३०
७. भव सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - - - २३१

८. शीलव्रत सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - २३२
९. सुगंधि सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - २३२
१०. सहस्रचूळ लोक धातु सुत्त - - - - - - - - - - - - २३४
(९) ४. **श्रमण वर्ग - - - - - - - - - - - - - - - २३६**
१. श्रमण सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - २३६
२. गर्दभ सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - २३६
३. क्षेत्र सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - २३६
४. वज्जिपुत्र सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - २३७
५. शैक्ष सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - २३८
६. शिक्षा सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - - - - २३८
७. शिक्षा सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - - - २४०
८. शिक्षा सुत्त (तृतीय) - - - - - - - - - - - - - - २४१
९. शिक्षात्रय सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - - - २४२
१०. शिक्षात्रय सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - २४३
११. सङ्कवा सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - २४४
(१०) ५. **नमक वर्ग - - - - - - - - - - - - - २४७**
१. अत्यावश्यक सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २४७
२. प्रविवेक (एकांत) सुत्त - - - - - - - - - - - - - २४८
३. शरद सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - २४९
४. परिषद सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - २५०
५. आजानीय (श्रेष्ठ घोड़ा) सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - २५१
६. आजानीय सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - - २५२
७. आजानीय सुत्त (तृतीय) - - - - - - - - - - - - - २५३
८. पोत्थक (मकची केश का बना कपड़ा) सुत्त- - - - - - २५४
९. नमक सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - - २५६
१०. स्वर्णकार (मिट्टी दूर करने वाला) सुत्त - - - - - - - २६०
११. निमित्त सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - - २६३

२. द्वितीय पंचाशतक

(६) १. ब्राह्मण वर्ग

१. दो ब्राह्मण सुत्त (प्रथम)

५२. एक समय दो ब्राह्मण – जो जरा-जीर्ण थे, वृद्ध थे, बूढ़े थे, जिनकी आयु बहुत थी, जो वयः-प्राप्त थे, जो एक सौ बीस वर्ष के थे – भगवान के पास गये। जाकर भगवान को...एक ओर बैठे उन ब्राह्मणों ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! हम ब्राह्मण हैं, जरा-जीर्ण हैं, वृद्ध हैं, बूढ़े हैं, हमारी आयु बहुत है, हम वयः-प्राप्त हैं, हम एक सौ बीस वर्ष के हैं। तो भी हमने शुभ-कर्म नहीं किये हैं। कुशल-कर्म नहीं किये हैं जो हम भयभीतों की शरण हो । आप गौतम हमें उपदेश दें। आप गौतम हमारा अनुशासन करें जो दीर्घ काल तक हमारे हित और सुख के लिए हो।

"हे ब्राह्मणो! तुम सचमुच जरा-जीर्ण हो, वृद्ध हो, बूढ़े हो, तुम्हारी आयु बहुत है, तुम वयः-प्राप्त हो, तुम एक सौ बीस वर्ष के हो। तो भी तुमने शुभ-कर्म नहीं किये हैं। कुशल-कर्म नहीं किये हैं जो हम भयभीतों की शरण हो सके। हे ब्राह्मणो! यह संसार जरा, व्याधि तथा मरण द्वारा (खींचकर) ले जाया जाता है। इस प्रकार जरा, व्याधि तथा मरण द्वारा खींचकर ले जाये जाने वाले का संसार में जो यह शरीर, वाणी तथा मन का संयम है वही उस परलोक-प्राप्त व्यक्ति का त्राण है, वही आश्रय-स्थान है, वही द्वीप है, वही शरण-स्थान है, वही सहारा है।"

"उपनीयति जीवितमप्पमायु, जरूपनीतस्स न सन्ति ताणा।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, पुञ्ञानि कयिराथ सुखावहानि॥

“योध कायेन संयमो, वाचाय उद चेतसा।
तं तस्स पेतस्स सुखाय होति, यं जीवमानो पकरोति पुञ्ञ”न्ति॥

[“जीवन अल्प है। बुढ़ापे द्वारा (खींचकर) ले जाये जाने वाले के लिए कोई शरण स्थान नहीं है। मृत्यु में भय देखकर मनुष्य को चाहिए कि वह सुखदायी पुण्य-कर्म करे।

जो यहां शरीर, वाणी तथा मन का संयम है, तथा जीते-जी वह जो पुण्य कर्म करता है वह उस व्यक्ति के लिए परलोक प्राप्त होने पर सुख का कारण होता है।”]

२. दो ब्राह्मण सुत्त (द्वितीय)

५३. एक समय दो ब्राह्मण –जो जरा-जीर्ण थे, वृद्ध थे, बूढ़े थे, जिन की आयु बहुत थी, जो वयः-प्राप्त थे, जो एक सौ बीस वर्ष के थे – भगवान के पास गये। जाकर भगवान को...एक ओर बैठे उन ब्राह्मणों ने भगवान को यह कहा –

“हे गौतम! हम ब्राह्मण हैं, जरा-जीर्ण हैं, वृद्ध हैं, बूढ़े हैं, हमारी आयु बहुत है, हम वयः-प्राप्त हैं, हम एक सौ बीस वर्ष के हैं। तो भी हमने शुभ-कर्म नहीं किये हैं। कुशल-कर्मनहीं किये हैं जो हम भयभीतों की शरण हो । आप गौतम हमें उपदेश दें। आप गौतम हमारा अनुशासन करें जो दीर्घकाल तक हमारे हित और सुख के लिए हो।

“हे ब्राह्मणो! तुम सचमुच जरा-जीर्ण हो, वृद्ध हो, बूढ़े हो, तुम्हारी आयु बहुत है, तुम वयः-प्राप्त हो, तुम एक सौ बीस वर्ष के हो। तो भी तुमने शुभ-कर्म नहीं किये हैं। कुशल-कर्मनहीं किये हैं जो हम भयभीतों की शरण हो। हे ब्राह्मणो! यह संसार जरा, व्याधि, मरण से जल रहा है। इस प्रकार जरा, व्याधि तथा मरण से आदीप्त (जलते) संसार में जो यह शरीर, वाणी, तथा मन का संयम है वही उस परलोक-प्राप्त व्यक्ति का त्राण है, वही आश्रय-स्थान है, वही द्वीप है, वही शरण-स्थान है, वही सहारा है।”

“आदित्तस्मिं अगारस्मिं, यं नीहरति भाजनं।
तं तस्स होति अत्थाय, नो च यं तत्थ डय्हति॥

“एवं आदित्तो खो लोको, जराय मरणेन च।
नीहरेथेव दानेन, दिन्नं होति सुनीहतं॥

“योध कायेन संयमो, वाचाय उद चेतसा।
तं तस्स पेतस्स सुखाय होति,
यं जीवमानो पकरोति पुञ्ञ”न्ति॥

[“घर में आग लगी हो तो जो सामान उस आग में से बचा लिया जाता है, वही काम आता है। जो सामान आग में जल जाता है, वह काम नहीं आता। इसी प्रकार यह संसार जरा तथा मरण से जल रहा है। इसमें से दान देकर जो निकाला जा सके, निकाल ले। जो दिया उतना ही अच्छी तरह बचाया गया है।

जो यहां शरीर, वाणी तथा मन का संयम है, तथा जीते-जी वह जो पुण्य कर्म करता है वह उस व्यक्ति के लिए परलोक प्राप्त होने पर सुख का कारण होता है।”]

३. अन्य ब्राह्मण सुत्त

५४. एक समय एक ब्राह्मण भगवान के पास गया। जाकर भगवान के साथ... एक ओर बैठे हुए उस ब्राह्मण ने भगवान को यह कहा –

“हे गौतम! ‘धर्म सांदृष्टिक है, धर्म सांदृष्टिक है’ (जीवन में देखा जानेवाला) सांदृष्टिक है ऐसा कहा जाता है। कहां तक धर्म सांदृष्टिक है, तत्काल फलदायक है, (अकालिक) आओ और देखो कहलाने योग्य है, निर्वाण तक ले जाने वाला है, प्रत्येक विज्ञ द्वारा साक्षात करने योग्य है।

“हे ब्राह्मण! जिसका चित्त, राग से अभिभूत है, राग के वशीभूत है, वह अपने अहित की भी बात सोचता है, दूसरे के अहित की भी बात सोचता है, दोनों के अहित की भी बात सोचता है तथा चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है।

“राग के प्रहीण हो जाने पर न वह अपने अहित की बात सोचता है, न दूसरे के अहित की बात सोचता है, न दोनों के अहित की बात सोचता है तथा न चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है।

“हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से अभिभूत है... वह कायिक-दुष्कर्म करता है,... वाचिक ... मानसिक-दुष्कर्म करता है। राग के प्रहीण होने पर न कायिक-दुष्कर्म करता है... न वाचिक ... न मानसिक ...। हे ब्राह्मण!... जिसका... अपने हित को यथाभूत नहीं जानता है... दूसरे के ... दोनों के हित को...। राग के प्रहीण हो जाने पर अपना हित यथाभूत जानता है... परहित... दोनों का हित यथाभूत जानता है। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी धर्म सांदृष्टिक होता है...।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त, द्वेष से अभिभूत है, द्वेष के वशीभूत है, वह अपने अहित की भी बात सोचता है, दूसरे के अहित की भी बात सोचता है, दोनों के अहित की भी बात सोचता है तथा चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है। द्वेष का नाश हो जाने पर न वह अपने अहित की बात सोचता है, न दूसरे के अहित की बात सोचता है, न दोनों के अहित की बात सोचता है तथा न चैतसिक दु;ख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है...। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी धर्म सांदृष्टिक होता है...।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त, मोह से अभिभूत है, मोह के वशीभूत है, वह अपने अहित की भी बात सोचता है, दूसरे के अहित की भी बात सोचता है, दोनों के अहित की भी बात सोचता है तथा चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है। मोह का नाश हो जाने पर न वह अपने अहित की बात सोचता है, न दूसरे के अहित की बात सोचता है, न दोनों के अहित की बात सोचता है तथा न चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है...। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी धर्म सांदृष्टिक होता है..."।

"हे गौतम! सुंदर है... आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

४. परिव्राजक सुत्त

५५. एक समय एक ब्राह्मण परिव्राजक भगवान के पास गया... एक ओर बैठे हुए ब्राह्मण परिव्राजक ने भगवान को यह कहा –"हे गौतम! 'धर्म सांदृष्टिक है, धर्म सांदृष्टिक है' –ऐसा कहा जाता है। कौन-सा गुण होने से धर्म सांदृष्टिक होता है, अकालिक,एहिपस्सिक,ओपनयिक तथा प्रत्येक विज्ञ द्वारा साक्षात किया जा सकने वाला?"

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से... वह अपने अहित की बात... (पूर्वानुसार) अनुभव करता है। राग का नाश हो जाने पर... अनुभव करता है। राग का नाश हो जाने पर... अनुभव करता है।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से... कायिक-दुष्कर्म करता है, वाचिक... मानसिक-दुष्कर्म करता है। राग का नाश होने पर न कायिक-दुष्कर्म करता है, न वाचिक... न मानसिक-दुष्कर्म करता है।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से... वह यथाभूत अपना हित भी नहीं जानता है, यथाभूत दूसरे का हित भी नहीं जानता है, यथाभूत दोनों का भी हित नहीं जानता है। राग का प्रहाण हो जाने पर यथाभूत अपना भी हित

जानता है... दूसरे का... यथाभूत दोनों का भी हित जानता है। इस प्रकार भी ब्राह्मण! धर्म सांदृष्टिक होता है...।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त द्वेष से...

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त मोह से मूढ़ है... वह अपने अहित की बात... अनुभव करता है। मोह का प्रहाण हो जाने पर... अनुभव करता है।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त मोह से मूढ़ है... कायिक-दुष्कर्म करता है, वाचिक... मानसिक-दुष्कर्म करता है। मोह का प्रहाण होने पर न कायिक-दुष्कर्म करता है, न वाचिक... न मानसिक-दुष्कर्म करता है।

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त मोह से मूढ़ है... वह यथाभूत अपना हित भी नहीं जानता है,... दूसरे का... दोनों का भी यथाभूत हित नहीं जानता है। मोह का प्रहाण हो जाने पर यथाभूत अपना हित भी जानता है,... दूसरे का... दोनों का...। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी धर्मसांदृष्टिक होता है"।

"हे गौतम! सुंदर है... आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

५. निर्वृत सुत्त

५६. एक समय जाणुस्सोणि ब्राह्मण भगवान के पास गया... एक ओर बैठे जाणुस्सोणि ब्राह्मण ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! 'निर्वाण सांदृष्टिक है, निर्वाण सांदृष्टिक है' – ऐसा कहा जाता है। कौन-सा गुण होने से निर्वाण 'सांदृष्टिक' होता है, अकालिक, एहिपस्सिक, ओपनयिक तथा प्रत्येक विज्ञ द्वारा साक्षात किया जा सकने वाला?

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त राग से... वह अपने अहित की बात... दोनों के अहित की बात... अनुभव करता है। राग का प्रहाण हो जाने पर... न वह अपने अहित... न दोनों के अहित की बात... अनुभव करता है। हे ब्राह्मण! इस प्रकार भी निर्वाण 'सांदृष्टिक' होता है...

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त द्वेष से दूषित है...

"हे ब्राह्मण! जिसका चित्त मोह से मूढ़ है... वह अपने अहित की बात... अनुभव करता है। मोह का प्रहाण हो जाने पर... न वह अपने अहित की बात... न दोनों के अहित की बात... अनुभव करता है। हे ब्राह्मण! जो इस

संपूर्ण रागक्षय का अनुभव करना है संपूर्ण द्वेष क्षय का संपूर्ण मोहक्षय का अनुभव करना है इस प्रकार भी निर्वाण 'सांदृष्टिक' होता है, अकालिक, एहिपस्सिक, ओपनयिक तथा प्रत्येक विज्ञ द्वारा साक्षात किया जा सकने वाला होता है"।

"हे गौतम! सुंदर है... आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

६. पलोक (क्षय) सुत्त

५७. एक समय एक महाशाल ब्राह्मण भगवान के पास गया।... एक ओर बैठे हुए उस महाशाल ब्राह्मण ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! मैंने बड़े-बूढ़े आचार्य-प्राचार्य, पूर्व के ब्राह्मणों से सुना है कि पहले यह संसार इतना अधिक बसा हुआ था, मानों अवीचि नरक हो; ग्राम, निगम तथा राजधानियों में मनुष्यों की इतनी घनी आबादी थी कि मुर्गा आसानी से एक गांव से दूसरे गांव जा सकता था।

"हे गौतम! इसका क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है जिससे अब मनुष्यों का क्षय हो गया है, कमी दिखाई दे रही है, ग्राम अग्राम हो गये हैं, निगम अनिगम हो गये हैं, नगर अनगर हो गये हैं तथा जनपद अजनपद?"

"ब्राह्मण! अब मनुष्य अधर्म-रागानुरक्त हैं, विषम-लोभ के वशीभूत हैं, मिथ्याधर्म से समन्वागत हैं। वे अधर्म-रागानुरक्त होने के कारण, विषम-लोभ के वशीभूत होने के कारण, मिथ्या-धर्म से समन्वागत होने के कारण, तेज शस्त्र लेकर परस्पर एक दूसरे की जान लेते हैं। इससे बहुत मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होते हैं। हे ब्राह्मण! यह भी एक कारण है, यह भी एक प्रत्यय है जिससे अब मनुष्यों का क्षय हो गया है, कमी दिखाई दे रही है, ग्राम अग्राम हो गये हैं, निगम अनिगम हो गये हैं, नगर अनगर हो गये हैं तथा जनपद अजनपद।

"फिर ब्राह्मण! अब मनुष्य अधर्म-रागानुरक्त हैं, विषम-लोभ के वशीभूत हैं, मिथ्याधर्म से समन्वागत हैं। उनके अधर्म-रागानुरक्त होने के कारण, विषम-लोभ के वशीभूत होने के कारण, मिथ्या-धर्म से समन्वागत होने के कारण अच्छी वर्षा नहीं होती। इससे दुर्भिक्ष होता है, फसल खराब हो जाती है, उसमें फफूंदी का रोग लग जाता है, डंठल रह जाते हैं। इससे बहुत मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होते हैं। हे ब्राह्मण, यह भी एक कारण है, यह भी एक प्रत्यय है जिससे अब मनुष्यों का क्षय हो गया है, कमी दिखाई दे रही है, ग्राम अग्राम हो गये हैं, निगम अनिगम हो गये हैं, नगर अनगर हो गये हैं, तथा जनपद अजनपद।

"फिर ब्राह्मण! अब मनुष्य अधर्म-रागानुरक्त हैं, विषम-लोभ के वशीभूत हैं, मिथ्या धर्म के अनुयायी हैं। उनके अधर्म-रागानुरक्त होने के कारण, विषम-लोभ के वशीभूत होने के कारण, मिथ्या-धर्म से समन्वागत होने के कारण यक्ष अधिपति भयानक यक्षों को मनुष्य-पथ पर छोड़ देते हैं। इससे बहुत मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होते हैं। हे ब्राह्मण! यह भी एक कारण है, यह भी एक प्रत्यय है जिससे अब मनुष्यों का क्षय हो गया है, कमी दिखाई देती है, ग्राम अग्राम हो गये हैं, निगम अनिगम हो गये हैं, नगर अनगर हो गये हैं तथा जनपद अजनपद।"

"हे गौतम! सुंदर है... आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

७. वच्छगोत्त सुत्त

५८. एक समय वच्छगोत्त परिव्राजक भगवान के पास गया। ...एक ओर बैठे वच्छगोत्त परिव्राजक ने भगवान से कहा –"हे गौतम! मैंने यह सुना है कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है कि मुझे ही दान देना चाहिए, अन्यों को नहीं; मेरे ही श्रावकों (शिष्यों) को दान देना चाहिए, अन्यों को नहीं; मुझे ही देने से महान फल होता है, अन्यों को देने से महान फल नहीं होता, मेरे ही श्रावकों को देने से महान फल होता है, अन्यों को देने से नहीं। हे गौतम! जो ऐसा कहता है कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है कि 'मुझे ही दान... देने से नहीं,' क्या वे आप गौतम के कथनानुसार कहने वाले हैं, क्या वे आप गौतम पर मिथ्या आरोप तो नहीं लगाते? क्या वे आपके धर्म की सही-सही व्याख्या करते हैं? इससे आपके सहधर्मी और आपके वाद को मानने वाले आलोच्य (निंदा के पात्र) तो नहीं हो जाते? हम आप गौतम पर मिथ्या आरोपण नहीं करना चाहते।"

"हे वत्स! जो यह कहते हैं कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है कि मुझे ही दान... देने से नहीं, वे मेरे कथनानुसार कहने वाले नहीं हैं, वे मुझ पर मिथ्या आरोप लगाते हैं। हे वत्स! जो किसी दूसरे को दान देने से रोकता है वह तीन तरह से बाधक होता है, तीन की हानि करनेवाला होता है। कौन-से तीन?

"दाता के पुण्य-लाभ में बाधक होता है, प्रतिग्राहक की लाभ-प्राप्ति में बाधक होता है और सबसे पहले अपनी ही हानि, बहुत हानि करनेवाला होता है। वत्स! जो किसी दूसरे को दान देने से रोकता है वह इन तीन तरह से बाधक होता है, तीन की हानि करनेवाला होता है। वत्स! मेरा तो यह कहना है कि गूथ-कूप वा गंदे गढ़े में भी जो कीड़े रहते हैं उनके लिए भी यदि कोई थाली का

धोवन या प्याले का धोवन फेंकता है कि इससे उसमें रहने वाले कीड़े जीते रहें, उससे भी, हे वत्स! मैं पुण्य की प्राप्ति कहता हूं। मनुष्यों को दान देने की बात का तो कहना ही क्या!

"किंतु, वत्स! मैं शीलवान को दान देने का महान फल कहता हूं, वैसा दुःशील को देने का नहीं। शीलवान पांच बातों से प्रहीण[1] (रहित) होता है और वह पांच बातों से समन्वागत (युक्त) होता है।

"किन पंच बातों से वे प्रहीण होते हैं?

"उसका कामच्छंद प्रहीण होता है, व्यापाद (क्रोध) प्रहीण होता है, थिनमिद्ध (आलस्य) प्रहीण होता है, उद्धच्चकुक्कुच्च(उद्धतपन तथा अनुताप) प्रहीण होता है, विचिकित्सा (संदेह) प्रहीण होता है। ये पांच बातें प्रहीण होती हैं।

"किन पंच बातों से वह समन्वागत होता है?

"अशैक्ष शील-स्कंध से समन्वागत होता है, अशैक्ष समाधि-स्कंध से समन्वागत होता है, अशैक्ष्य प्रज्ञा-स्कंध से समन्वागत होता है, अशैक्ष्य विमुक्ति-स्कंध से समन्वागत होता है, अशैक्ष्य विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-स्कंध से समन्वागत होता है। इन पांच बातों से वह समन्वागत होता है।

"ऊपर की पांच बातों से प्रहीण तथा इन पांच बातों से समन्वागत को जो दान दिया जाता है, उसका महान फल होता है – यह मैं कहता हूं।"

"इति कण्हासु सेतासु, रोहिणीसु हरीसु वा।
कम्मासासु सरूपासु, गोसु पारेवतासु वा॥

"यासु कासुचि एतासु, दन्तो जायति पुङ्गवो।
धोरय्हो बलसम्पन्नो, कल्याणजवनिक्कमो।
तमेव भारे युञ्जन्ति, नास्स वण्णं परिक्खिरे॥

"एवमेवं मनुस्सेसु, यस्मिं कस्मिञ्चि जातिये।
खत्तिये ब्राह्मणे वेस्से, सुद्दे चण्डालपुक्कुसे॥

"यासु कासुचि एतासु, दन्तो जायति सुब्बतो।
धम्मट्ठो सीलसम्पन्नो, सच्चवादी हिरीमनो॥

"पहीनजातिमरणो, ब्रह्मचरियस्स केवली।
पन्नभारो विसंयुत्तो, कतकिच्चो अनासवो॥

---

१ यहां पालि में **'पहीन'** शब्द है। इसका अर्थ 'प्रहीण', 'रहित', 'त्यक्त', 'नष्ट' होता है।

"पारगू सब्बधम्मानं, अनुपादाय निब्बुतो।
तस्मिंयेव विरजे खेत्ते, विपुला होति दक्खिणा॥

"बाला च अविजानन्ता, दुम्मेधा अस्सुताविनो।
बहिद्धा देन्ति दानानि, न हि सन्ते उपासरे॥

"ये च सन्ते उपासन्ति, सप्पञ्ञे धीरसम्मते।
सद्धा च नेसं सुगते, मूलजाता पतिट्ठिता॥

"देवलोकञ्च ते यन्ति, कुले वा इध जायरे।
अनुपुब्बेन निब्बानं, अधिगच्छन्ति पण्डिता"ति॥

["चाहे कृष्णवर्ण की हों, चाहे श्वेत-वर्ण की हों, चाहे लोहितवर्ण की हों, चाहे भूरे वर्ण की हों, चाहे चितकबरे रंग की हों, चाहे अपने बछड़ों जैसी हों और चाहे कबूतरी रंग की हों –इनमें से जिस किसी की कोख से भी संयत, भार ढो सकने वाला, शक्तिसंपन्न, अच्छी गति वाला वृषभ जन्म ग्रहण करता है, उसे ही भार ढोने के लिए जोत दिया जाता है, उसके वर्ण की परीक्षा नहीं की जाती। इसी प्रकार मनुष्यों में भी –जिस-तिस जाति में –चाहे क्षत्रिय जाति में, चाहे ब्राह्मण जाति में, चाहे वैश्य जाति में, चाहे शूद्र जाति में, चाहे चंडाल जाति में और चाहे पुक्कुस (मैला साफ करने वाला) जाति में, जो कोई भी संयत, सुव्रत, धर्मस्थित, शीलसंपन्न, सत्यवादी, पापभीरु, जाति-मरण के बंधनों से मुक्त, ब्रह्मचर्य में पूर्णता प्राप्त, भारविहीन, बंधनमुक्त, कृतकृत्य, आस्रव-रहित, सब धर्मों में पारंगत, उपादान-स्कंधों के बंधन से मुक्त, तथा निर्वाणप्राप्त जन्म ग्रहण करता है उसी रज-रहित (पुण्य-) क्षेत्र में दान देने से दक्षिणा विपुल फलदायी होती है। जो मूर्ख हैं, जो अजानकार हैं, जो दुर्बुद्धि हैं, जो अज्ञानी हैं वे इनसे बाहर लोगों को दान देते हैं, वे शांत जनों की सेवा नहीं करते।जो पंडितों द्वारा मान्य, प्रज्ञावान, शांत जनों की सेवा करते हैं, उनकी श्रद्धा सुगत (बुद्ध) के प्रति मूलरूप से प्रतिष्ठित है। वे देव-लोक को प्राप्त होते हैं तथा यहां (श्रेष्ठ) कुल में जन्म लेते हैं। ऐसे पंडितजन क्रमशः निर्वाण को प्राप्त होते हैं।"]

८. तिकण्ण सुत्त

५९. एक समय तिकण्ण ब्राह्मण भगवान के पास गया। पास जाकर भगवान के साथ...। एक ओर बैठे हुए तिकण्ण ब्राह्मण ने भगवान के सामने त्रैविद्य ब्राह्मणों का गुणानुवाद करना आरंभ किया –'त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसे होते हैं, त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसे होते हैं!'

भगवान ने पूछा –"ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की किस प्रकार व्याख्या करते हैं?"

"यहां, हे गौतम! त्रैविद्य ब्राह्मण माता तथा पिता दोनों की ओर से सुजन्मा होता है, सात पीढ़ियों तक शुद्ध होता है, उस पर जातिवाद की दृष्टि से कोई दोष नहीं लगा होता, कोई आक्षेप नहीं लगा होता, वह अध्यायक होता है, वह मंत्रधर होता है, वह निघंटु-केटुभ सहित तीनों वेदों का –जिनके अक्षर आदि (शिक्षा, निरुक्त आदि) प्रभेद हैं –पारंगत होता है तथा इतिहास जिनमें पांचवां माना जाता है, उसका भी पारंगत होता है। वह पदों का जानकार होता है, व्याख्याकार होता है तथा लोकायत का और महापुरुषलक्षण-शास्त्र का संपूर्ण जानकार होता है। हे गौतम! इस प्रकार ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की व्याख्या करते हैं।"

"हे ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की जो व्याख्या करते हैं वह एक बात है, किंतु आर्य-विनय (सद्धर्म) में त्रैविद्य होने की व्याख्या बिल्कुल दूसरी है।"

"हे गौतम! आर्य-विनय में त्रैविद्य कैसे होता है? अच्छा हो आप गौतम मुझे वैसा धर्मोपदेश दें जैसे आर्य-विनय में त्रैविद्य होता है।"

"तो ब्राह्मण, सुन! अच्छी तरह मन में धारण कर। कहता हूं।"

"बहुत अच्छा!" कह तिकण्ण ब्राह्मण भगवान की बात सुनने लगा। भगवान ने ऐसा कहा –

"यहां, हे ब्राह्मण! भिक्षु कामभोगों से अलग, पृथक हो, अकुशल-धर्मों से पृथक हो, सवितर्क, सविचार, एकांतजन्य, प्रीतिसुख-युक्त प्रथम-ध्यानलाभी हो विहार करता है; वितर्क-विचारों का उपशमन होने के अनंतर, आंतरिक प्रसाद-युक्त, चित्त की एकाग्रता-युक्त, वितर्क-विचार-रहित, समाधिजन्य प्रीतिसुख-युक्त द्वितीय ध्यान का लाभी हो विहार करता है; प्रीति से भी वैराग्य-युक्त हो, उपेक्षावान बन विहार करता है, स्मृतिमान हो, संप्रज्ञानी हो, काया से सुखद संवेदनाओं का अनुभव करता है, जिसके बारे में आर्य-जन कहते हैं कि 'उपेक्षावान है, स्मृतिमान है, सुखपूर्वक विहार करने वाला है', ऐसा तृतीय ध्यान प्राप्त कर विहार करता है; सुख और दुःख दोनों का प्रहाण कर पूर्वस्थित सौमनस्य-दौर्मनस्य के अस्तंगमन होने से, अदुःख-असुख रूप उपेक्षा-स्मृति से परिशुद्ध चतुर्थ ध्यान लाभी हो विहार करता है।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश-रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्त कर लेने पर, गढ़नीय

(सुघट्य, कमनीय), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर उसे पूर्वजन्म को अनुस्मरण करने की ओर झुकाता है। वह अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करता है – जैसे एक जन्म भी, दो जन्म भी, तीन जन्म भी, चार जन्म भी, पांच जन्म भी, दस जन्म भी, बीस जन्म भी, तीस जन्म भी, चालीस जन्म भी, पचास जन्म भी, सौ जन्म भी, हजार जन्म भी, लाख जन्म भी, अनेक संवर्तकल्प, अनेक विवर्तकल्प, अनेक संवर्त-विवर्तकल्प –'मैं अमुक स्थान पर था, ऐसा नाम था, ऐसा गोत्र था, ऐसा वर्ण था, ऐसा आहार था, उस प्रकार का सुख-दुःख भोगा था, इतनी आयु पर्यंत रहा, फिर वहां से च्युत होकर अमुक जगह उत्पन्न हुआ। वहां भी ऐसा नाम था, ऐसा गोत्र था, ऐसा वर्ण था, ऐसा आहार था, ऐसा सुख-दुःख भोगा था, इतनी आयु पर्यंत रहा, फिर वहां से च्युत होकर यहां उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार सविस्तार से विशिष्टताओं सहित अनेक प्रकार से पूर्वजन्मों का स्मरण करता है। यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की प्रथम विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्तकर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर उसे प्राणियों की च्युति तथा उत्पत्ति जानने के लिए झुकाता है। वह दिव्य, विशुद्ध, अलौकिक[1] चक्षु से च्युत होते तथा उत्पन्न होते प्राणियों को देखता है। वह निकृष्ट-श्रेष्ठ, सुवर्ण-दुर्वर्ण, कर्मानुसार सुगति-प्राप्त, दुर्गति-प्राप्त प्राणियों को जानता है – 'ये प्राणी कायिक-दुष्कर्मसे युक्त हैं, वाचिक-दुष्कर्मसे युक्त हैं, मानसिक-दुष्कर्मसे युक्त हैं, आर्यों (श्रेष्ठ जनों) के निंदक हैं, मिथ्या-दृष्टि वाले हैं तथा मिथ्या-कर्मी हैं, वे शरीर छूटने पर, मरने के बाद, अपायगति प्राप्तकर नरक में उत्पन्न हुए हैं। अथवा ये प्राणी कायिक शुभ-कर्मसे युक्त हैं, वाचिक शुभ-कर्म से युक्त हैं, मानसिक शुभ-कर्मसे युक्त हैं, आर्यों (श्रेष्ठ-जनों) के प्रशंसक हैं, सम्यक-दृष्टि वाले हैं तथा सम्यक-कर्मी हैं, वे शरीर छूटने पर मरने के बाद, सुगति को प्राप्तकर स्वर्गलोक में उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार वह दिव्य, विशुद्ध, अलौकिक चक्षु से च्युत होते तथा उत्पन्न होते प्राणियों को देखता है। वह

---

१ पालि के **'अतिक्कन्त मानुसके न'** (बु. सं. अतिक्रान्त मानुष्यक) का अर्थ 'अलौकिक' करना ठीक होगा ।

निकृष्ट-श्रेष्ठ, सुवर्ण, दुर्वर्ण सुगति-प्राप्त, दुर्गति-प्राप्त प्राणियों को जानता है। यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की दूसरी विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्तकर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य, कमनीय), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर चित्त को आस्रवों के क्षय के ज्ञान की ओर झुकाता है। 'यह दुःख है', इसे वह यथाभूत जानता है, 'यह दुःख-समुदय है', इसे वह यथाभूत जानता है, 'यह दुःख-निरोध है', इसे वह यथाभूत जानता है, 'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे वह यथाभूत जानता है। 'ये आस्रव हैं', इसे वह यथाभूत जानता है, 'यह आस्रव-समुदय है', इसे वह यथाभूत जानता है, 'यह आस्रव-निरोध है', इसे वह यथाभूत जानता है, 'यह आस्रव-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे वह यथाभूत जानता है। उसके इस प्रकार जानते हुए का, इस प्रकार देखते हुए का चित्त कामास्रव से विमुक्त हो जाता है, भवास्रव से भी विमुक्त हो जाता है, अविद्यास्रव से भी विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने पर, 'विमुक्त हूं', यह ज्ञान होता है। वह यह यथाभूत जानता है – 'जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, अब यहां जन्म लेने का कुछ भी कारण नहीं रहा।' यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की प्राप्त की हुई तीसरी विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"अनुच्चावचसीलस्स, निपकस्स च झायिनो।
चित्तं यस्स वसीभूतं, एकग्गं सुसमाहितं॥

"तं वे तमोनुदं धीरं, तेविज्जं मच्चुहायिनं।
हितं देवमनुस्सानं, आहु सब्बप्पहायिनं॥

"तीहि विज्जाहि सम्पन्नं, असम्मूळ्हविहारिनं।
बुद्धं अन्तिमदेहिनं, तं नमस्सन्ति गोतमं॥

"पुब्बेनिवासं यो वेदी, सग्गापायञ्च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि॥

"एताहि तीहि विज्जाहि, तेविज्जो होति ब्राह्मणो।
तमहं वदामि तेविज्जं, नाञ्ञं लपितलापन"न्ति॥

["जिसका शील डांवाडोल नहीं है, जो दक्ष है, जो ध्यानी है, जिसका चित्त वश में है, जो एकाग्र है, जो खूब समाहित है, उस अंधकार-नाशक को, धैर्यवान को, त्रैविद्य को, मृत्युंजयी को, सर्वस्वत्यागी को देव-मनुष्यों का हित करनेवाला कहा गया है। जो तीन विद्याओं से युक्त है, जो ज्ञानयुक्त विहरता है, जो अंतिम देहधारी है, जो बुद्ध है, उस गौतम को (लोग) नमस्कार करते हैं। जो पूर्वजन्मों को जानता है, जो स्वर्ग-नरक को देखता है, जिसने जन्म के क्षय को प्राप्त किया है, जो अभिज्ञाप्राप्त है, जो मुनि है, वह ब्राह्मण (श्रेष्ठ-पुरुष) इन तीन विद्याओं से त्रैविद्य होता है। मैं उसे ही त्रैविद्य कहता हूं, किसी दूसरे प्रलापी को नहीं।"]

"इसी प्रकार हे ब्राह्मण! आर्य-विनय (सद्धर्म) में त्रैविद्य होता है।

"हे गौतम! ब्राह्मणों का त्रैविद्य दूसरी तरह का होता है तथा आर्य-विनय में त्रैविद्य दूसरी तरह का। हे गौतम! ब्राह्मणों का त्रैविद्य इस आर्य-विनय के त्रैविद्य की तुलना में सोलह में से एक कला के भी बराबर नहीं।

"हे गौतम! सुंदर है... आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

९. जाणुस्सोणि सुत्त

६०. एक समय जाणुस्सोणि ब्राह्मण भगवान के पास गया। ...एक ओर बैठे हुए जाणुस्सोणि ब्राह्मण ने भगवान से कहा –

"हे गौतम! जिसके यहां यज्ञ हो, श्राद्ध हो, थाली-पाक[1] हो, दातव्य[2] हो, उसे त्रैविद्य ब्राह्मणों को ही दान देना चाहिए।"

"ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की कैसी व्याख्या करते हैं?"

"हे गौतम! त्रैविद्य ब्राह्मण माता तथा पिता दोनों की ओर से सुजन्मा होता है, सात पीढ़ियों तक शुद्ध होता है, उस पर जातिवाद की दृष्टि से कोई दोष नहीं लगा होता, कोई आक्षेप नहीं लगा होता, वह अध्यायक होता है, वह मंत्रधर होता है, वह निघंटु-केटुभ सहित तीनों वेदों का –जिनके अक्षर आदि प्रभेद हैं –पारंगत होता है तथा इतिहास जिनमें पांचवां माना जाता है, उसका

१ पालि शब्द **'थालिपाक'** का अर्थ दूध में पकाया गया जौ या चावल होता है।

२ पालि शब्द **'देयधम्म'** के अन्तर्गत – चीवर, पिण्डपात (भोजन) सेनासन (शयनासन) गिलानपच्चय भेसज्ज परिक्खार (रोगी का पथ्य और दवा) अन्न, पान, वत्थ (वस्त्र) यान (सवारी) माला, गंध, विलेपन (उबटन) सेय्या (शय्या) आवसथ (निवास-स्थान) और पदीपेय्य (प्रदीप-सामग्री) आते हैं।

भी पारंगत होता है। वह पदों का जानकार होता है, व्याख्याकार होता है तथा लोकायत का और महापुरुषलक्षण शास्त्र का संपूर्ण जानकार होता है। हे गौतम! इस प्रकार ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की व्याख्या करते हैं।"

"हे ब्राह्मण! ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के त्रैविद्य होने की व्याख्या दूसरी तरह से करते हैं, किंतु आर्य-विनय(सद्धर्म) में त्रैविद्य अन्य प्रकार से होता है।"

"हे गौतम! आर्य-विनय में त्रैविद्य कैसे होता है? अच्छा हो आप गौतम मुझे वैसा धर्मोपदेश दें जैसे आर्य-विनय में त्रैविद्य होता है।"

"तो ब्राह्मण, सुन! अच्छी तरह मन में धारण कर। कहता हूं।"

"बहुत अच्छा!" कह जाणुस्सोणि ब्राह्मण भगवान की बात सुनने लगा। भगवान ने ऐसा कहा –

"हे ब्राह्मण!" भिक्षु कामभोगों से पृथक हो... चतुर्थ ध्यान लाभी हो विहरता है।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश-रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्तकर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर उसे पूर्वजन्म-स्मरण की ओर झुकाता है। वह अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करता है –जैसे एक जन्म भी, दो जन्म भी... इस प्रकार सविस्तार से विशिष्टताओं सहित अनेक प्रकार से पूर्वजन्मों का स्मरण करता है। यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की प्रथम विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश-रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्तकर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर उसे प्राणियों की च्युति तथा उत्पत्ति के ज्ञान की ओर झुकाता है। वह दिव्य, विशुद्ध, अलौकिक चक्षु से... प्राणियों को जानता है। यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की दूसरी विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"वह इस प्रकार के समाहित, शुद्ध, पर्यवदात, परिशुद्ध, राग-दोष-रहित, विगतोपक्लेश (क्लेश-रहित) चित्त के मृदु-भाव प्राप्त कर लेने पर, गढ़नीय (सुघट्य), स्थित तथा अचंचल हो जाने पर चित्त को आस्रवों के क्षय के ज्ञान की ओर झुकाता है। 'यह दुःख है', इसे वह यथाभूत जानता है। 'यह

दुःख-समुदय है', इसे वह यथाभूत जानता है। 'यह दुःख-निरोध है', इसे वह यथाभूत जान लेता है। 'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे वह यथाभूत जानता है। इस प्रकार जानते हुए, इस प्रकार देखते हुए का चित्त कामास्रव से विमुक्त हो जाता है, भवास्रव से भी विमुक्त हो जाता है, अविद्यास्रव से भी विमुक्त हो जाता है। विमुक्त हो जाने पर 'विमुक्त हूं', यह ज्ञान होता है। वह यह यथाभूत जानता है –'जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हुआ, जो करना था सो कर लिया, अब यहां जन्म लेने का कुछ भी कारण नहीं रहा।' यह उस अप्रमत्त, आतापी और दृढ़संकल्प हो विहार करने वाले की तीसरी विद्या होती है। अविद्या का नाश हो गया, विद्या उत्पन्न हो गयी, अंधकार जाता रहा, प्रकाश उत्पन्न हो गया।

"यो सीलब्बतसम्पन्नो, पहितत्तो समाहितो।
चित्तं यस्स वसीभूतं, एकग्गं सुसमाहितं॥

"पुब्बेनिवासं यो वेदी, सग्गापायञ्च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि॥

"एताहि तीहि विज्जाहि, तेविज्जो होति ब्राह्मणो।
तमहं वदामि तेविज्जं, नाञ्ञं लपितलापन"न्ति॥

["जो वह शील-व्रत से युक्त है, जो दृढ़ संकल्प वाला है, जो समाहित है, जिसका चित्त उसके वश में है, जो एकाग्र है, जो खूब समाहित है, जो पूर्वजन्म को जानता है, जो स्वर्ग-नरक को देखता है, जिसने जन्म के क्षय को प्राप्त किया है, जो अभिज्ञाप्राप्त है, जो मुनि है, वह ब्राह्मण (श्रेष्ठ-पुरुष) इन तीन विद्याओं से त्रैविद्य होता है। मैं उसे ही त्रैविद्य कहता हूं, किसी दूसरे प्रलापी को नहीं।"]

"इस प्रकार हे ब्राह्मण! आर्य-विनय (सद्धर्म) में त्रैविद्य होता है।"

"हे गौतम! ब्राह्मणों का त्रैविद्य दूसरी तरह का होता है तथा आर्य-विनय में त्रैविद्य दूसरी तरह का। हे गौतम! ब्राह्मणों का त्रैविद्य इस आर्य-विनय के त्रैविद्य की तुलना में सोलह में से एक कला के भी बराबर नहीं।

"हे गौतम! सुंदर है... आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

१०. सङ्गारव सुत्त

६१. एक समय सङ्गारव ब्राह्मण भगवान के पास गया... एक ओर बैठे सङ्गारव ब्राह्मण ने भगवान को यह कहा –

"हे गौतम! हम ब्राह्मण हैं। हम यज्ञ करते भी हैं और करवाते भी हैं। हे गौतम! जो यज्ञ करता है तथा जो यज्ञ करवाता है, वे सभी ऐसे पुण्य-मार्ग का अनुगमन करते हैं जो अनेकों के लिए होता है अर्थात यह यज्ञ का करना कराना (अनेकों के लिए होता है)। किंतु हे गौतम! यह जो जिस-तिस कुल से, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाते हैं, वे तो अकेले ही अपना दमन करते हैं, अकेले ही अपना शमन करते हैं, तथा अकेले ही परिनिर्वाण (शांति) को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यह जो प्रव्रजित होना है यह अकेले के लिए पुण्य-मार्ग है यह अकेले के लिए पुण्य-मार्ग है।"

"तो ब्राह्मण! तुझसे ही प्रतिप्रश्न करता हूं, जैसा तुझे ठीक लगे वैसा कह। हे ब्राह्मण! बता तू क्या मानता है? यहां इस संसार में तथागत जन्म ग्रहण करते हैं, अर्हत, सम्यक संबुद्ध, विद्या तथा आचरण से युक्त, सुगत, लोकज्ञ, अनुत्तर, दमनीय पुरुषों के सारथी, देवताओं तथा मनुष्यों के शास्ता, बुद्ध, भगवान। वे ऐसा कहते हैं – 'आओ, यह मार्ग है, यह प्रतिपदा है जिस पर प्रतिपन्न (आरूढ़) होकर मैं स्वयं ब्रह्मचर्य जीवन में ओत-प्रोत अनुत्तर (श्रेष्ठ) निर्वाण को साक्षात करके कहता हूं। आओ, तुम भी वैसे ही चलो, जैसे आचरण करने से तुम भी अनुत्तर ब्रह्मचर्य-गत अभिज्ञा को स्वयं साक्षात कर विहार करोगे।' इस प्रकार शास्ता इस धर्म की देशना करते हैं और दूसरे तदनुसार आचरण करते हैं। वे अनेक सौ भी होते हैं, अनेक सहस्र भी होते हैं तथा अनेक लाख भी होते हैं। तो ब्राह्मण! तुम क्या मानते हो? ऐसा होने पर जो यह प्रव्रज्या-पथ है, क्या यह एक से संबंध रखने वाला पुण्य-पथ है अथवा अनेक से संबंध रखने वाला?"

"ऐसा होने पर तो, हे गौतम! यह जो प्रव्रज्या-पथ है, यह अनेक से संबंध रखने वाला पुण्य-पथ होता है।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान आनन्द ने सङ्गारव ब्राह्मण को यह कहा – "ब्राह्मण! इन दो मार्गों में से कौन-सा मार्ग तुझे अधिक कम-खर्चीला, अधिक कम-झंझटिया तथा महान फलवाला, महान परिणाम वाला मालूम देता है?"

ऐसा कहने पर सङ्गारव ब्राह्मण ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा – "जैसे आप गौतम वैसे आप आनन्द हैं, आप दोनों ही मेरे पूज्य हैं, आप दोनों ही मेरी प्रशंसा के पात्र हैं।"

दूसरी बार भी आयुष्मान आनन्द ने सङ्गारव ब्राह्मण को यह कहा – "ब्राह्मण! मैं तुझ से यह नहीं पूछता हूं कि कौन तेरे पूज्य हैं अथवा कौन तेरी प्रशंसा के पात्र हैं। ब्राह्मण! मैं तो तुझ से पूछता हूं कि इन दो मार्गों में कौन-सा

मार्ग तुझे अधिक कम-खर्चीला, अधिक कम-झंझटी तथा महान फलवाला, महान परिणाम वाला मालूम देता है?"

दूसरी बार भी सङ्गारव ब्राह्मण ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –"जैसे आप गौतम वैसे आप आनन्द हैं, आप दोनों ही मेरे पूज्य हैं, आप दोनों ही मेरी प्रशंसा के पात्र हैं।"

तीसरी बार भी आयुष्मान आनन्द ने सङ्गारव ब्राह्मण को यह कहा – "ब्राह्मण! मैं तुझ से यह नहीं पूछता हूं कि कौन तेरे पूज्य हैं अथवा कौन तेरी प्रशंसा के पात्र हैं। ब्राह्मण! मैं तो तुझ से यह पूछता हूं कि इन दो मार्गों में कौन-सा मार्ग तुझे अधिक कम-खर्चीला, अधिक कम-झंझटी तथा महान फल वाला, महान परिणाम वाला मालूम देता है?"

तीसरी बार भी सङ्गारव ब्राह्मण ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा – "जैसे आप गौतम वैसे आप आनन्द हैं, आप दोनों ही मेरे पूज्य हैं, आप दोनों ही मेरी प्रशंसा के पात्र हैं।"

उस समय भगवान के मन में यह हुआ –तीसरी बार भी आनन्द द्वारा समुचित प्रश्न पूछे जाने पर सङ्गारव ब्राह्मण उससे कतराता ही है, प्रश्न का उत्तर नहीं देता। मैं ही उससे बात करूं।

तब भगवान ने सङ्गारव ब्राह्मण को यह कहा –"ब्राह्मण! आज राजा के अंत:पुर में, राज्य-परिषद में इकट्ठे हुए लोगों में क्या बातचीत चली थी?"

"हे गौतम! आज राजा के अंत:पुर में, राज्य-परिषद में इकट्ठे हुए लोगों में यह बातचीत चली थी कि पहले भिक्षुओं की संख्या थोड़ी थी किंतु उनमें से बहुत से असाधारण मनुष्य-धर्म अथवा ऋद्धि-बल का प्रदर्शन करते थे; आज भिक्षुओं की संख्या अधिक है किंतु उनमें से थोड़े ही ऐसा करते हैं। हे गौतम! आज राजा के अंत:पुर में, राज्य-परिषद में इकट्ठे हुए लोगों में यह बातचीत चली थी।"

"ब्राह्मण! ये तीन प्रातिहार्य (असाधारण कृतियां) हैं। कौन-से तीन? ऋद्धि-प्रातिहार्य, आदेशना-प्रातिहार्य तथा अनुशासनी-प्रातिहार्य।

"ब्राह्मण! ऋद्धि-प्रातिहार्य किसे कहते हैं?

"यहां, ब्राह्मण! कोई-कोई अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता है – 'एक होकर भी अनेक हो जाता है, अनेक होकर भी एक हो जाता है, प्रकट हो जाता है, अदृश्य हो जाता है, दीवार के पार, प्राकार के पार, पर्वत के पार उन्हें छूता हुआ चला जाता है मानो जैसे आकाश में; पृथ्वी पर भी

डूबता-उतराता है मानो जैसे पानी में; पानी के भी ऊपर-ऊपर चलता है मानो जैसे पृथ्वी पर; आकाश में भी पालथी मारकर जाता है मानो जैसे कोई पक्षी हो, इस प्रकार का ऋद्धिमान, इस प्रकार के महाप्रतापी चंद्र-सूर्य को भी हाथ से छूता है, ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाता है।' हे ब्राह्मण! यह ऋद्धि-प्रातिहार्य कहलाता है।

"ब्राह्मण! आदेशना-प्रातिहार्य किसे कहते हैं?

"हे ब्राह्मण! कोई-कोई निमित्त (लक्षण) देखकर बताता है –'तुम्हारा मन ऐसा है, तुम्हारा मन इस प्रकार का है, तुम्हारा चित्त ऐसा है।' वह बहुत भी कहता है, तो भी जैसा वह कहता है वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं होता।

"हे ब्राह्मण! कोई-कोई निमित्त देखकर नहीं कहता, बल्कि मनुष्यों, अमनुष्यों अथवा देवताओं का शब्द सुनकर कहता है –'तुम्हारा मन ऐसा है, तुम्हारा मन इस प्रकार का है, तुम्हारा चित्त ऐसा है।' वह बहुत भी कहता है, तो भी जैसा वह कहता है वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं होता।

"हे ब्राह्मण! कोई-कोई न निमित्त देखकर कहता है, न मनुष्यों, अमनुष्यों अथवा देवताओं का शब्द सुनकर कहता है, बल्कि वितर्क करके ,विचार करके वितर्क से उत्पन्न शब्द सुनकर कहता है –'तुम्हारा मन ऐसा है, तुम्हारा मन इस प्रकार का है, तुम्हारा चित्त ऐसा है।' वह बहुत भी कहता है, तो भी जैसा वह कहता है वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं होता।

"हे ब्राह्मण! कोई-कोई न निमित्त देखकर कहता है, न मनुष्यों, अमनुष्यों अथवा देवताओं का शब्द सुनकर कहता है, न वितर्क करके ,विचार करके वितर्क से उत्पन्न शब्द सुनकर कहता है, बल्कि वितर्क-रहित, विचार-रहित समाधि-प्राप्त चित्त से चित्त का स्पर्श करके अच्छी तरह जानता है –'जिस प्रकार इस समय इनके मन का संस्कार चल रहा है, इसके बाद यह महाशय इस प्रकार का वितर्क करेंगे।' वह बहुत भी कहता है, तो भी जैसा वह कहता है वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं होता। ब्राह्मण! यह आदेशना-प्रातिहार्य कहलाता है।

"ब्राह्मण! अनुशासनी-प्रातिहार्य किसे कहते हैं?

"यहां, ब्राह्मण! कोई-कोई ऐसा अनुशासन करता है –'ऐसा वितर्क करो, ऐसा वितर्क मत करो, मन में ऐसा विचार करो, मन में ऐसा विचार मत करो, इसको छोड़ो, इसको मनमें धारण कर विचरो।'

"ब्राह्मण! इसे अनुशासनी-प्रातिहार्य कहते हैं। ब्राह्मण, ये तीन प्रातिहार्य हैं।

“ब्राह्मण! इन तीन प्रातिहार्यों में तुझे कौन-सा प्रातिहार्य सुंदरतर तथा श्रेष्ठतर लगता है?”

“हे गौतम! इनमें से जो यह एक प्रातिहार्य है कि कोई-कोई अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता है... ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाता है – हे गौतम! इस प्रातिहार्य को जो करता है वही अनुभव करता है, जो करता है उसी को वह होता है। हे गौतम! यह प्रातिहार्य तो मुझे माया-सदृश लगता है। हे गौतम! यह भी जो एक प्रातिहार्य है कि कोई-कोई निमित्त देखकर बताता है... देवताओं का शब्द सुनकर...वितर्क से उत्पन्न शब्द सुनकर...चित्त से चित्त का स्पर्श करके जानता है... हे गौतम! इस प्रातिहार्य को भी जो करता है वही अनुभव करता है, जो करता है उसी को वह होता है। हे गौतम! यह प्रातिहार्य भी मुझे माया-सदृश ही लगता है। लेकिन हे गौतम! यह जो एक प्रातिहार्य है कि कोई-कोई ऐसा अनुशासन करता है... मन में धारण कर विचरो; हे गौतम! इन तीन प्रातिहार्यों में मुझे यही एक प्रातिहार्य सुंदरतर तथा श्रेष्ठतर लगता है।

“हे गौतम! आश्चर्य है! हे गौतम! अद्भुत है कि आप गौतम ने कैसी सुभाषित वाणी कही है। हम आप गौतम को इन तीनों प्रातिहार्यों से युक्त समझते हैं। आप गौतम ही अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करते हैं... ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाते हैं। आप गौतम ही वितर्क-रहित, विचार-रहित समाधि-प्राप्त चित्त से चित्त का स्पर्श करके जानते हैं कि जिस प्रकार इस समय इनका मन-संस्कार चल रहा है, इसके बाद यह महाशय इस प्रकार का वितर्क करेंगे। आप गौतम ही ऐसा अनुशासन करते हैं कि ऐसा वितर्क करो, ऐसा वितर्क मत करो, मन में ऐसा विचार करो, मन में ऐसा विचार मत करो, इसको छोड़ो, इसे मनमें धारण कर विहरो।”

“निश्चय से ब्राह्मण! मैंने तुझे (अपने गुणों के) समीप लाकर ही बात कही है। लेकिन अब मैं (स्पष्ट रूप से) व्याख्या करता हूं। ब्राह्मण! मैं ही अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता हूं... ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाता हूं। मैं ही ब्राह्मण! वितर्क-रहित, विचार-रहित समाधि-प्राप्त चित्त से चित्त का स्पर्श करके जानता हूं कि जिस प्रकार इस समय इनका मन-संस्कार चल रहा है इसके बाद यह महाशय इस प्रकार का वितर्क करेंगे। हे ब्राह्मण! मैं ही ऐसा अनुशासन करता हूं कि ऐसा वितर्क करो, ऐसा वितर्क मत करो, मन में ऐसा विचार करो, मन में ऐसा विचार मत करो, इसको छोड़ो, इसे मन में धारण कर विहरो।”

"हे गौतम! क्या आप गौतम के अतिरिक्त कोई दूसरा एक भिक्षु भी ऐसा है जो इन तीनों प्रातिहार्यों से संपन्न है?"

"हे ब्राह्मण! न केवल एक सौ, न दो सौ, न तीन सौ, न चार सौ, न पांच सौ बल्कि इससे भी अधिक ऐसे भिक्षु होंगे जो इन प्रातिहार्यों से संपन्न हों।"

"हे गौतम! इस समय वे भिक्षु कहां विहार करते हैं?"

"ब्राह्मण! इसी भिक्षु-संघ में।"

"सुंदर गौतम! बहुत सुंदर गौतम! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। मैं आप गौतम, धर्म तथा संघ की शरण जाता हूं। आप गौतम आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

(७) २. महा वर्ग

१. विभिन्न वाद सुत्त

६२. "भिक्षुओ, ये तीन, तैर्थिकों के ऐसे मत हैं जो पंडितों द्वारा कड़ाई से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर, चर्चा किये जाने पर, परंपरा के अनुसार जहां कहीं भी जाकर रुकते हैं वहां अकर्मण्यता पर ही जाकर रुकते हैं। कौन से तीन?

"भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है वह सब पूर्व-कर्मों के फलस्वरूप अनुभव करता है।

"भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है वह सब ईश्वर-निर्माण के कारण अनुभव करता है।

"भिक्षुओ, कुछ श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है वह सब बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के अनुभव करता है।

"भिक्षुओ, जिन श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब पूर्व-कर्मों के फलस्वरूप अनुभव करता है, उनके पास जाकर मैं उनसे प्रश्न करता हूं – 'आयुष्मानो! क्या सचमुच तुम्हारा यह मत है कि जो कुछ भी कोई

आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब पूर्व-कर्मों के फलस्वरूप अनुभव करता है?

"मेरे ऐसे पूछने पर वे 'हां' उत्तर देते हैं।

"तब उनसे मैं कहता हूं – 'तो आयुष्मानो! तुम्हारे मत के अनुसार पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी प्राणी-हिंसा करने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी चोरी करने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी अब्रह्मचारी होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी झूठ बोलने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी चुगलखोर होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी कठोर बोलने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी व्यर्थ बकवास करने वाले होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी लोभी होते हैं, पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी क्रोधी होते हैं, तथा पूर्व-जन्म के कर्म के ही फलस्वरूप आदमी मिथ्या-दृष्टि वाले होते हैं।

'तो भिक्षुओ, इस प्रकार वे जो पूर्व-कर्म को ही सारभूत कारण मानने वाले हैं उनके मन में न तो इच्छा ही जगती है और न वे प्रयत्न ही करते हैं और न इस काम को करने की या उस काम को न करने की आवश्यकता ही समझते हैं। तब क्रियावादिता या अक्रियावादिता की वास्तव में आवश्यकता ही नहीं दिखाई पड़ती। तो आपको "श्रमण" कैसे कहा जा सकता है क्योंकि आप अनारक्षित हैं और आपकी स्मृति नष्ट हो गयी है। अर्थात, आपकी इंद्रियां असंयत हैं और आप बिल्कुल स्मृतिमान नहीं हैं।'

"भिक्षुओ, इस प्रकार का मत, इस प्रकार की दृष्टि रखने वाले श्रमण-ब्राह्मणों पर यह मेरा प्रथम उचित (तर्कसंगत) दोषारोपण है ।

"भिक्षुओ, जिन श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है वह सब ईश्वर-निर्माण के कारण अनुभव करता है, उनके पास जाकर मैं उनसे प्रश्न करता हूं –'आयुष्मानो! क्या सचमुच तुम्हारा यह मत है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब ईश्वर-निर्माण के फलस्वरूप अनुभव करता है?

"मेरे ऐसा पूछने पर वे 'हां' उत्तर देते हैं।

"तब उनसे मैं कहता हूं – 'तो आयुष्मानो! तुम्हारे मत के अनुसार ईश्वर-निर्माण के ही फलस्वरूप आदमी प्राणी-हिंसा करने वाले होते हैं... ईश्वर-निर्माण के ही फलस्वरूप आदमी मिथ्या-दृष्टि वाले होते हैं। भिक्षुओ,

इस प्रकार वह जो ईश्वर-निर्माण को ही सारभूत कारण मानने वाले हैं उनके मन में न तो इच्छा ही जगती है और न वे प्रयत्न ही करते हैं और न इस काम को करने की या उस काम को न करने की आवश्यकता ही समझते हैं तब क्रियावादिता या अक्रियावादिता की वास्तव में आवश्यकता ही नहीं दिखाई पड़ती। तो आपको "श्रमण" कैसे कहा जा सकता है क्योंकि आप अनारक्षित हैं और आपकी स्मृति नष्ट हो गयी है। अर्थात, आपकी इंद्रियां असंयत हैं और आप बिल्कुल स्मृतिमान नहीं हैं।'

"भिक्षुओ, इस प्रकार का मत, इस प्रकार की दृष्टि रखने वाले श्रमण-ब्राह्मणों पर यह मेरा दूसरा उचित (तर्कसंगत) दोषारोपण है।

"भिक्षुओ, जिन श्रमण-ब्राह्मणों का यह मत है, यह दृष्टि है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के अनुभव करता है, उनके पास जाकर मैं उनसे प्रश्न करता हूं – 'आयुष्मानो! क्या सचमुच तुम्हारा यह मत है कि जो कुछ भी कोई आदमी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के करता है?

"मेरे ऐसा पूछने पर वे 'हां' उत्तर देते हैं।

"तब मैं उनसे कहता हूं – 'तो आयुष्मानो! तुम्हारे मत के अनुसार बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी प्राणी-हिंसा करने वाले होते हैं... बिना किसी हेतु के, बिना किसी कारण के आदमी मिथ्या-दृष्टि वाले होते हैं। भिक्षुओ, जो इस अहेतुवाद, इस अकारणवाद को ही सारभूत कारण मानने वाले हैं उनके मन में न तो इच्छा ही जगती है और न वे प्रयत्न ही करते हैं और न इस काम को करने की या उस काम को न करने की आवश्यकता ही समझते हैं। तब क्रियावादिता या अक्रियावादिता की वास्तव में आवश्यकता ही नहीं दिखाई पड़ती। तो आपको "श्रमण" कैसे कहा जा सकता है क्योंकि आप अनारक्षित हैं और आपकी स्मृति नष्ट हो गयी है। अर्थात, आपकी इंद्रियां असंयत हैं और आप बिल्कुल स्मृतिमान नहीं हैं।'

"भिक्षुओ, इस प्रकार का मत, इस प्रकार की दृष्टि रखने वाले श्रमण-ब्राह्मणों पर यह मेरा तीसरा उचित (तर्कसंगत) दोषारोपण है।

"भिक्षुओ, ये तीन, तैर्थिकों के ऐसे मत हैं, जो पंडितों द्वारा कड़ाई से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर, चर्चा किये जाने पर, परंपरा के अनुसार जहां कहीं भी जाकर रुकते हैं, वहां अकर्मण्यता पर ही जाकर रुकते हैं।

"भिक्षुओ, मैंने इस धर्म का उपदेश दिया है जो विज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा दोषारोपित नहीं है, जो संक्लिष्ट नहीं है, तथा जो परिशुद्ध है। भिक्षुओ, मैंने किस धर्म का उपदेश दिया है जो विज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा दोषारोपित नहीं है, जो संक्लिष्ट नहीं है तथा जो परिशुद्ध है?

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि छः धातु हैं और जो ... है, वह किन छः धातुओं के बारे में कहा? भिक्षुओ, ये छः धातु हैं – पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु, वायु-धातु आकाश-धातु तथा विज्ञान-धातु। भिक्षुओ, ये छः धातु हैं – यह धर्म है जिसका मैंने उपदेश दिया है, जो विज्ञ श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा दोषारोपित नहीं है, जो संक्लिष्ट नहीं है तथा, जो परिशुद्ध है। वह इन्हीं को लेकर दियागया है।

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि ये छः स्पर्शायतन हैं और जो ... है वह किन छः स्पर्शायतनों के बारे में कहा? भिक्षुओ, ये छः स्पर्शायतन हैं – चक्षु-स्पर्शायतन, श्रोत्र-स्पर्शायतन, घ्राण-स्पर्शायतन, जिह्वा-स्पर्शायतन, काय-स्पर्शायतन, मन-स्पर्शायतन। भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि ये छः स्पर्शायतन हैं और जो... है, वह इन्हीं छः स्पर्शायतनों को लेकर दिया गया है।

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि ये अठारह विहरण हैं और जो ... है, वह किन अठारह विहरणों के बारे में कहा? आंख से रूप देखकर प्रसन्न होने के विषय में विहरण करता है, दौर्मनस्य होने के विषय में विहरण करता है, उपेक्षा होने के विषय में विहरण करता है, श्रोत्र से शब्द सुनकर...घ्राण से गंध सूंघकर...जिह्वा से रस चखकर...कायसे स्पर्श करके ...मन से विषयों का अनुभव कर प्रसन्न होने के विषय में विहरण करता है, दौर्मनस्य होने के विषय में विहरण करता है, उपेक्षा होने के विषय में विहरण करता है। भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि ये अठारह विहरण हैं और जो... है, वह इन अठारह विहरणों के ही बारे में या इन अठारह विहरणों को लेकर ही कहा।

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि चार आर्य-सत्य हैं और जो ... है, वह किन आर्यसत्यों के बारे में कहा? भिक्षुओ, छः धातुओं के होने से गर्भाधान होता है, गर्भाधान होने से नाम-रूप, नाम-रूप होने से छः आयतन, छः आयतन होने से स्पर्श, तथा स्पर्श होने से वेदना की जिसे अनुभूति होती है उसी के संबंध में भिक्षुओ, मैं 'यह दुःख है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं, 'यह दुःख-समुदय है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं, 'यह दुःख-निरोध है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं, 'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाली प्रतिपदा (=मार्ग) है' ऐसा प्रज्ञापन करता हूं।

"भिक्षुओ, दुःख आर्य-सत्य क्या है?

"जन्म दुःख है, बुढ़ापा दुःख है, व्याधि दुःख है, मृत्यु दुःख है, शोक दुःख है, परिदेव दुःख है, दुःख-दौर्मनस्य दुःख है, उपायास दुःख है, अप्रिय से संयोग दुःख है, प्रिय से वियोग दुःख है, इच्छित की अप्राप्ति दुःख है, संक्षेप में कहना हो तो पांच उपादान-स्कंध ही दुःख हैं। भिक्षुओ, यह दुःख आर्य-सत्य कहलाता है।

"भिक्षुओ, दुःख-समुदय आर्य-सत्य क्या है?

"अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नाम-रूप, नाम-रूप के होने से छः आयतन, छः आयतन के होने से स्पर्श, स्पर्श के होने से वेदना, वेदना के होने से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान, उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य, अशांति होती है। इस प्रकार इस सारे दुःख-स्कंध की उत्पत्ति होती है। भिक्षुओ, यह दुःख-समुदय आर्य-सत्य कहलाता है।

"भिक्षुओ, दुःख-निरोध आर्य-सत्य क्या है?

"अविद्या के ही संपूर्ण विराग (आसक्ति का अभाव) से, निरोध से, संस्कारों का निरोध होता है। संस्कारों के निरोध से विज्ञान-निरोध, विज्ञान के निरोध से नाम-रूप-निरोध, नाम-रूप के निरोध से छः आयतनों का निरोध, छः आयतनों के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव-निरोध, भव के निरोध से जन्म का निरोध, जन्म के निरोध से बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, क्रंदन, दुःख, दौर्मनस्य, अशांति का निरोध होता है। इस प्रकार इस सारे के सारे दुःख-स्कंध का निरोध होता है। भिक्षुओ, यह दुःख-निरोध आर्य-सत्य कहलाता है।

"भिक्षुओ, दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग आर्य-सत्य कौन-सा है?

"यही आर्य अष्टांगिक मार्ग जो कि यों है – सम्यक-दृष्टि, सम्यक-संकल्प, सम्यक-वाणी, सम्यक-कर्मांत, सम्यक-आजीविका, सम्यक-व्यायाम, सम्यक-स्मृति, सम्यक-समाधि। भिक्षुओ, यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग आर्य-सत्य कहलाता है।

"भिक्षुओ, मैंने जो यह उपदेश दिया कि चार आर्य-सत्य हैं और जो ... है, वह इन आर्यसत्यों के ही बारे में (या इनको लेकर ही) कहा।"

२. भय सुत्त

६३. "भिक्षुओ, माता-पुत्र-वियोग के (माता से पुत्र को अलग करने वाले) ये तीन भय हैं, जिनकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, ऐसा समय आता है जब महान अग्निदाह होता है। भिक्षुओ, महान अग्निदाह के होने पर गांव भी जल जाते है, निगम भी जल जाते हैं और नगर भी जल जाते हैं। गांवों के जलने पर, निगमों के जलने पर तथा नगरों के जलने पर न माता की पुत्र से भेंट होती है और न पुत्र की माता से भेंट होती है। भिक्षुओ, यह पहला माता-पुत्र-वियोग भय है, जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, फिर ऐसा समय भी आता है जब भारी वर्षा होती है। भारी वर्षा के होने पर भयंकर बाढ़ आती है। भयंकर बाढ़ के आने पर गांव भी बह जाते हैं, निगम भी बह जाते हैं तथा नगर भी बह जाते हैं। गांवों के बह जाने पर, निगमों के बह जाने पर तथा नगरों के बह जाने पर न माता की पुत्र से भेंट होती है और न पुत्र की माता से भेंट होती है। भिक्षुओ, यह दूसरा माता-पुत्र-वियोग भय है जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, फिर ऐसा समय भी आता है जब जंगल (में रहने वाले चोर-डाकू) प्रकुपित हो जाते हैं। उस समय लोग रथों पर चढ़कर जनपद से भाग जाते हैं। भिक्षुओ, जब जंगल प्रकुपित हो जाते हैं और जब लोग रथों पर चढ़-चढ़कर जनपदों से भाग जाते हैं, उस समय न माता की पुत्र से भेंट होती है और न पुत्र की माता से भेंट होती है। भिक्षुओ, यह तीसरा माता-पुत्र-वियोग भय है, जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, माता को पुत्र से अलग करने वाले ये तीन भय हैं जिनकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, तीन भय ऐसे हैं जिनमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग। ये तीनों भय ही हैं जिनकी अज्ञानी पृथग्जन माता-पुत्र-वियोग भय कहकर चर्चा करता है। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, ऐसा समय आता है जब महान अग्निदाह होता है। भिक्षुओ, महान अग्निदाह के होने पर गांव भी जल जाते हैं, निगम भी जल जाते हैं और नगर भी जल जाते हैं। गांवों के जलने पर, निगमों के जलने पर तथा नगरों के जलने पर भी कभी-कभी ऐसा होता है कि माता की पुत्र से भेंट हो जाती है,

पुत्र की माता से भेंट हो जाती है। भिक्षुओ, यह पहला भय है जिसमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, फिर ऐसा समय भी आता है जब भारी वर्षा होती है। भारी वर्षा के होने पर... तथा नगरों के बह जाने पर भी कभी-कभी ऐसा होता है कि माता की पुत्र से भेंट हो जाती है, पुत्र की माता से भेंट हो जाती है। भिक्षुओ, यह दूसरा भय है जिसमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, फिर ऐसा समय भी आता है जब जंगल (में रहने वाले चोर-डाकू) प्रकुपित हो जाते हैं। उस समय लोग रथों पर चढ़-चढ़कर जनपद से भाग जाते हैं। भिक्षुओ, जब जंगल (में रहने वाले चोर-डाकू) प्रकुपित हो जाते हैं और जब लोग रथों पर चढ़-चढ़कर जनपद से भाग जाते हैं, तब भी कभी-कभी ऐसा होता है कि माता की पुत्र से भेंट हो जाती है, पुत्र की माता से भेंट हो जाती है। भिक्षुओ, यह तीसरा भय है जिसमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग जिसकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, उक्त तीन भय ऐसे हैं जिनमें कभी माता का पुत्र से संयोग होता है कभी वियोग जिनकी अज्ञानी पृथग्जन चर्चा करता है।

"भिक्षुओ, ये तीन माता-पुत्र-वियोग भय हैं। कौन-से तीन?

"बुढ़ापे का भय, रोग का भय तथा मृत्यु का भय।

"भिक्षुओ, पुत्र के बूढ़े होने पर माता यह नहीं कह सकती कि मैं बूढ़ी होती हूं, तुम बूढ़े मत होओ और माता के बूढ़ी होने पर पुत्र यह नहीं कह सकता कि मैं बूढ़ा होता हूं, तुम बूढ़ी मत होओ।

"भिक्षुओ, पुत्र के रोगी होने पर माता यह नहीं कह सकती कि मैं रोगी होती हूं, तुम रोगी मत होओ और माता के रोगी होने पर पुत्र भी यह नहीं कह सकता कि मैं रोगी होता हूं, तुम रोगिणी मत होओ।

"भिक्षुओ, मरते हुए पुत्र को माता यह नहीं कह सकती कि मैं मरती हूं, तुम मत मरो और मरती हुई माता को पुत्र भी यह नहीं कह सकता कि मैं मरता हूं, तुम मत मरो।

"भिक्षुओ, ये तीन माता-पुत्र-वियोग भय हैं।

"भिक्षुओ, इन तीनों माता-पुत्र-संयोग भयों का तथा इन तीनों माता-पुत्र-वियोग भयों का प्रहाण करनेवाला, अतिक्रमण करनेवाला मार्ग है,

पथ है। भिक्षुओ, इन तीनों माता-पुत्र-संयोग भयों का तथा इन तीनों माता-पुत्र-वियोग भयों का प्रहाण करने वाला, अतिक्रमण करने वाला मार्ग, पथ कौन-सा है?

"यही आर्य अष्टांगिक-मार्ग जो कि है सम्यक-दृष्टि, सम्यक-संकल्प, सम्यक-वाणी, सम्यक-कर्मांत, सम्यक-आजीविका, सम्यक-व्यायाम, सम्यक-स्मृति तथा सम्यक-समाधि। भिक्षुओ, इन तीनों माता-पुत्र-संयोग भयों का तथा इन तीनों माता-पुत्र-वियोग भयों का प्रहाण करने वाला, समतिक्रमण करने वाला मार्ग, पथ यही है।"

३. वेनागपुर सुत्त

६४. एक समय महान भिक्षु-संघ के साथ भगवान कोशल (-जनपद) में चारिका करते हुए कोशलों के वेनागपुर नाम के ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचे। वेनागपुर के ब्राह्मण गृहपतियों ने सुना कि शाक्य-कुल-प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम वेनागपुर आये हैं। उन भगवान गौतम का इस प्रकार का यश फैला है – 'यह भगवान अर्हत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं, विद्या तथा आचरण से युक्त हैं, सुगत हैं, लोकों के ज्ञाता हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं, (कुमार्ग-गामी) मनुष्यों का दमन करने वाले हैं और देवताओं तथा मनुष्यों के शास्ता हैं बुद्ध हैं, भगवान हैं। वे इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक को तथा श्रमण-ब्राह्मण-युक्त सदेव-मनुष्य जनता को, स्वयं जानकर, साक्षात कर (धर्म को) प्रकाशित करते हैं। वे आदि में कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक, अंत में कल्याणकारक, अर्थों तथा व्यंजनों से युक्त, संपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को प्रकाशित करते हैं। ऐसे अरहंतों का दर्शन कल्याणकारी होता है'।

तब वेनागपुर के ब्राह्मण गृहस्थ भगवान के पास पहुँचे। पहुँचकर कुछ अभिवादन करके एक ओर बैठ गये, कुछ भगवान के साथ कुशलक्षेम की बातचीत करके एक ओर बैठ गये, कुछ भगवान को हाथ जोड़कर एक ओर बैठ गये, कुछ अपना नाम-गोत्र सुनाकर एक ओर बैठ गये, कुछ चुपचाप रहकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए वेनागपुरिक वच्छगोत्त ब्राह्मण ने भगवान से कहा –

"हे गौतम! आश्चर्य है। हे गौतम! अद्भुत है। आप गौतम की इंद्रियां प्रसन्न हैं। आपकी त्वचा शुद्ध तथा साफ है। हे गौतम! जैसे शरद ऋतु का बेर शुद्ध तथा साफ होता है, उसी प्रकार आप गौतम की इंद्रियां प्रसन्न हैं और त्वचा सुंदर है। हे गौतम! जैसे ताड़ का अभी-अभी शाखा से टूटा, पका फल सुंदर होता है, उसी प्रकार आप गौतम की इंद्रियां प्रसन्न हैं और त्वचा सुंदर है।

हे गौतम! जैसे चतुर सुनार द्वारा ठोक-पीटकर तैयार किया हुआ जांबुनद-स्वर्ण पांडु-वर्ण कंबल पर रखा हुआ चमकता है, उसी प्रकार आप गौतम की इंद्रियां प्रसन्न हैं और त्वचा सुंदर है। हे गौतम! जितने भी उच्च-शयनासन, महा-शयनासन हैं – जैसे आराम-कुर्सी, पलंग, चित्रित ऊनी बिछौना, सफेद ऊनी बिछौना, मुलायम ऊनी बिछौना, रूईदार गद्दा, सिंह आदि के चित्र वाला ऊनी बिछौना, दोनों ओर डोरियेदार बिछौना, एक ओर डोरीदार ऊनी बिछौना, रत्न-जटित रेशमी बिछौना, रेशमी बिछौना, नर्तकियों के नाचने योग्य ऊनी बिछौना, हाथी आदि के चित्रों से चित्रित बिछौना, मृगासन, ऊपर चन्दोवे और दोनों ओर लाल तकियों वाला, कदलीमृग की छाल का बिछौना – आपको ये सहज ही प्राप्य हैं, आपको ये अनायास मिल जाते हैं।"

"ब्राह्मण! जो ये उच्च-शयनासन हैं, महा-शयनासन हैं – जैसे आराम-कुर्सी... कदलीमृग की छाल का बिछौना – ये प्रव्रजितों को दुर्लभ हैं, और मिलें तो इनको व्यवहार में लाना अनुचित है।

"हे ब्राह्मण! तीन उच्च-शयनासन हैं, महा-शयनासन हैं जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य हैं, अनायास सुलभ हैं। कौन-से तीन?

"दिव्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन; ब्रह्म उच्च-शयनासन, महा-शयनासन, आर्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन। हे ब्राह्मण! ये तीन उच्च-शयनासन, महा-शयनासन हैं जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य हैं, अनायास सुलभ हैं।"

"हे गौतम! कौन-सा वह दिव्य उच्च-शयनासन महा-शयनासन है जो आप गौतम को सहज ही प्राप्य है?

"हे ब्राह्मण! मैं जिस गांव या निगम के समीप रहता हूं, पूर्वाह्न होने पर चीवर पहन, पात्र-चीवर ले, उसी गांव या निगम में भिक्षार्थ जाता हूं। भिक्षाटन से लौटकर, भोजन कर चुकने पर उसी गांव के पास के जंगल में प्रवेश करता हूं। वहां जो घास या पत्ते होते हैं, उन्हें इकट्ठा कर, उन पर पालथी मार कर, शरीर को सीधा कर तथा स्मृति को मुख के ऊपर स्थापित कर बैठता हूं। उस समय मैं कामभोगों से पृथक हो, अकुशल-विचारों से पृथक हो, वितर्क-युक्त, विचार-युक्त, विवेकजन्य प्रीति तथा सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्तकर विहार करता हूं। फिर वितर्क और विचारों के उपशमन से आंतरिक प्रसन्नता और एकाग्रता रूपी समाधिजन्य प्रीतिसुख-युक्त द्वितीय ध्यान को प्राप्तकर विहार करता हूं। फिर प्रीति से भी विरक्त हो उपेक्षावान बन विहार करता हूं। उस समय स्मृतिमान, संप्रज्ञानी होता हूं, और काया से सुखद संवेदनाओं का

अनुभव करता हूं, जिसे आर्यजन 'उपेक्षावान हो, स्मृतिमान हो, सुखपूर्वक रहना कहते हैं,' उस तृतीय ध्यान को प्राप्त कर विहार करता हूं। फिर सुख और दुःख दोनों के प्रहाण से, पूर्वस्थित सौमनस्य और दौर्मनस्य के पहले ही अस्त हुए रहने से उत्पन्न चतुर्थ ध्यान को प्राप्तकर विहार करता हूं, जिसमें न दुःख होता है और न सुख, (केवल) उपेक्षा तथा स्मृति की परिशुद्धि रहती है।

"हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं चंक्रमण करता हूं तब वह मेरा दिव्य चंक्रमण होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं खड़ा होता हूं तब वह मेरा दिव्य खड़ा होना होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं बैठता हूं तब वह मेरा दिव्य बैठना होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं लेटता हूं तब वह मेरा दिव्य लेटना होता है। हे ब्राह्मण! यह है मेरा वह दिव्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य है, अनायास सुलभ है।"

"हे गौतम! आश्चर्य है। हे गौतम! अद्भुत है। आप गौतम के अतिरिक्त अन्य किसे इस प्रकार का दिव्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन सहज ही प्राप्य होगा, अनायास ही सुलभ होगा!

"हे गौतम! कौन-सा वह ब्रह्म उच्च-शयनासन महा-शयनासन है जो आप गौतम को सहज ही प्राप्य है?"

"हे ब्राह्मण! मैं जिस गांव या निगम के समीप रहता हूं, पूर्वाह्न होने पर (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले, उसी गांव या निगम में भिक्षार्थ जाता हूं। भिक्षाटन से लौटकर, भोजन कर चुकने पर उसी गांव के पास के जंगल में विहार करता हूं। वहां जो घास या पत्ते होते हैं, उन्हें इकट्ठा कर, उन पर पालथी मारकर, शरीर को सीधा कर तथा स्मृति को मुख के ऊपर स्थापित कर बैठता हूं। उस समय मैं एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा तथा चौथी दिशा को मैत्री-चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं। ऊपर, नीचे, बीच में, सर्वत्र, सब तरह से, सब प्रकार से, सारे लोक को विपुल, विशाल, अप्रमाण, अवैरी, अक्रोधी, मैत्री-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं। उस समय मैं एक दिशा... करुणा-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं। उस समय मैं एक दिशा... मुदिता-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं। उस समय मैं एक दिशा... उपेक्षा-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता हूं।

"हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं चंक्रमण करता हूं तब वह मेरा ब्रह्म चंक्रमण होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं खड़ा होता हूं... बैठता हूं... लेटता हूं तब वह मेरा ब्रह्म लेटना होता है। हे ब्राह्मण! यह है मेरा वह ब्रह्म

उच्च-शयनासन, महा-शयनासन जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य है, अनायास सुलभ है।"

"हे गौतम! आश्चर्य है। हे गौतम! अद्भुत है। आप गौतम के अतिरिक्त अन्य किसे इस प्रकार का ब्रह्म उच्च-शयनासन, महा-शयनासन सहज ही प्राप्य होगा, अनायास ही सुलभ होगा!

"हे गौतम! वह आर्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन कौन-सा है जो आप गौतम को इस समय सहज ही प्राप्य है, अनायास ही सुलभ है?"

"हे ब्राह्मण! मैं जिस गांव या निगम के समीप रहता हूं, पूर्वाह्न होने पर (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले, उसी गांव या निगम में भिक्षार्थ जाता हूं। भिक्षाटन से लौटकर, भोजन कर चुकने पर उसी गांव के पास के जंगल में विहार करता हूं। वहां जो घास या पत्ते होते हैं उन्हें इकट्ठा कर, उन पर पालथी मारकर, शरीर को सीधा कर तथा स्मृति को मुख के ऊपर स्थापित कर बैठता हूं। उस समय मैं यह जानता हूं कि मेरा राग प्रहीण हो गया है, जड़-मूल से चला गया है, कटे ताड़ वृक्ष की तरह हो गया है, अभाव को प्राप्त हो गया है, भविष्य में उत्पत्ति की संभावना नहीं रही है, मेरा द्वेष प्रहीण हो गया है... संभावना नहीं रही है, मेरा मोह प्रहीण हो गया है... संभावना नहीं रही है।

"हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं चंक्रमण करता हूं तब वह मेरा आर्य चंक्रमण होता है। हे ब्राह्मण! इस अवस्था में जब मैं खड़ा होता हूं... बैठता हूं... लेटता हूं तब वह मेरा आर्य लेटना होता है। हे ब्राह्मण! यह है मेरा वह आर्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन जो मुझे इस समय सहज ही प्राप्य है, अनायास सुलभ है।"

"हे गौतम! आश्चर्य है। हे गौतम! अद्भुत है। आप गौतम के अतिरिक्त अन्य किसे इस प्रकार का आर्य उच्च-शयनासन, महा-शयनासन सहज ही प्राप्य होगा, अनायास ही सुलभ होगा!

"सुंदर गौतम! बहुत सुंदर गौतम! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। मैं आप गौतम, धर्म तथा संघ की शरण जाता हूं। गौतम! आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

४. सरभ सुत्त

६५. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान (बुद्ध) राजगृह में गिज्झकूट पर्वत पर विहार करते थे।

उस समय सरभ नाम के परिव्राजक को इस धर्म-विनय को छोड़कर गये थोड़ा ही समय हुआ था। वह राजगृह की परिषद में ऐसी वाणी बोलता था – 'मैंने शाक्यपुत्रीय श्रमणों का धर्म जान लिया और शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जानकर ही मैं उस धर्म-विनयसे परे हट गया हूं।'

उस समय बहुत से भिक्षु पूर्वाह्न में (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले, राजगृह में भिक्षाटन के लिए प्रविष्ट हुए।

उन भिक्षुओं ने राजगृह की परिषद में सरभ परिव्राजक द्वारा बोली जाने वाली ऐसी वाणी सुनी – 'मैंने शाक्यपुत्रीय श्रमणों का धर्म जान लिया और शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जानकर ही मैं उस धर्म-विनय से परे हट गया हूं।'

तब वे भिक्षु राजगृह में भिक्षाटन करके, लौट चुकने पर, भोजन के अनंतर भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को नमस्कार कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुए उन भिक्षुओं ने भगवान को यह कहा –

"भंते! सरभ नाम का परिव्राजक कुछ ही समय हुआ इस धर्म-विनय को छोड़ गया है। वह राजगृह की परिषद में ऐसी वाणी बोलता है – 'मैंने शाक्यपुत्रीय श्रमणों का धर्म जान लिया और शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जानकर ही मैं उस धर्म-विनय से परे हट गया हूं।' भंते भगवान! अच्छा हो यदि आप कृपा करके सिप्पिनिका (नदी) के तट पर परिव्राजकाराम में जहां सरभ है, वहां पधारें।" भगवान ने मौन रहकर स्वीकार कर लिया।

तब भगवान शाम के समय, ध्यान से उठकर, सिप्पिनिका (नदी) के किनारे परिव्राजकाराम में सरभ परिव्राजक के पास गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। बैठकर भगवान ने सरभ परिव्राजक को यह कहा –

"हे सरभ! क्या तू सचमुच ऐसा कहता है – 'मैंने शाक्यपुत्रीय श्रमणों का धर्म जान लिया और शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जानकर ही उस धर्म-विनय से परे हट गया हूं।' ऐसा पूछने पर सरभ परिव्राजक चुप रहा।

दूसरी बार भी भगवान ने सरभ परिव्राजक को यह कहा – "सरभ! कह! क्या तूने शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जान लिया? यदि उसमें कुछ कमी होगी तो मैं कमी पूरी कर दूंगा। यदि तेरी जानकारी पूरी होगी तो मैं समर्थन कर दूंगा।" दूसरी बार भी सरभ परिव्राजक चुप रहा।

तीसरी बार भी भगवान ने सरभ परिव्राजक को यह कहा – "सरभ! तू बता, क्या तूने शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जान लिया? यदि उसमें कुछ

कमी होगी, तो मैं पूरी कर दूंगा। यदि तेरी जानकारी पूरी होगी तो मैं समर्थन कर दूंगा।" तीसरी बार भी सरभ परिव्राजक चुप रहा।

उस समय राजगृह के उन परिव्राजकों ने सरभ परिव्राजक को यह कहा – "आयुष्मान! जो कुछ तुम श्रमण गौतम से पूछना चाहते हो उसी विषय में श्रमण गौतम तुम्हें निमंत्रित करते हैं। आयुष्मान सरभ! कह, क्या तूने शाक्यपुत्रीय श्रमणों के धर्म को जान लिया? यदि उसमें कुछ कमी होगी तो श्रमण गौतम पूरी कर देंगे। यदि तेरी जानकारी पूरी होगी, तो उसका समर्थन कर देंगे।"

ऐसा कहे जाने पर सरभ परिव्राजक चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ, निस्तेज होकर बैठ गया।

तब भगवान ने सरभ परिव्राजक को चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ, निस्तेज बैठा देख, उन परिव्राजकों को कहा –"यदि कोई परिव्राजक मुझे यह कहे कि सम्यक संबुद्ध होने की घोषणा करने पर भी अमुक विषय का ज्ञान नहीं है, तो मैं उससे ठीक से प्रश्न करूं, पूछताछ करूं, चर्चा करूं। मेरे द्वारा ठीक से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर, चर्चा किये जाने पर, इस बात की गुंजाइश नहीं है कि वह इन तीन अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था को प्राप्त न हो; दूसरी-दूसरी बात करे, बाहर की बात लाये; क्रोध, द्वेष वा असंतोष प्रकट करे; अथवा सरभ परिव्राजक की तरह चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ निस्तेज होकर बैठ जाय।

"यदि कोई परिव्राजक मुझे यह कहे कि क्षीणास्रव होने की घोषणा करने पर भी, अमुक-अमुक आस्रव क्षीण नहीं हुए हैं, तो मैं उससे ठीक से प्रश्न करूं, पूछताछ करूं, चर्चा करूं। मेरे द्वारा ठीक से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर, चर्चा किये जाने पर, इस बात की गुंजाइश नहीं है कि वह इन तीन अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था को प्राप्त न हो; दूसरी-दूसरी बात करे, बाहर की बात लाये; क्रोध, द्वेष वा असंतोष प्रकट करे; अथवा सरभ परिव्राजक की तरह चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ, निस्तेज होकर बैठ जाय।

"यदि कोई परिव्राजक मुझे यह कहे कि जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए धर्मोपदेश किया गया है, तदनुसार आचरण करने वाले को यह दुःख के सम्यक क्षय की ओर नहीं ले जाता – तो मैं उससे ठीक से प्रश्न करूं, पूछताछ करूं, चर्चा करूं। मेरे द्वारा ठीक से प्रश्न किये जाने पर, पूछताछ किये जाने पर,

चर्चा किये जाने पर, इस बात की गुंजाइश नहीं है कि वह इन तीन अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था को प्राप्त न हो; दूसरी-दूसरी बात करे, बाहर की बात लाये; क्रोध, द्वेष वा असंतोष प्रकट करे; अथवा सरभ परिव्राजक की तरह चुपचाप, गड़बड़ाया हुआ, गर्दन गिरा, मुँह नीचे कर, सोचता हुआ, निस्तेज होकर बैठ जाय।

इस प्रकार सिप्पिनिका (नदी) के तट पर स्थित परिव्राजकाराम में भगवान तीन बार सिंहनाद करके आकाशमार्ग से चले गये।

भगवान के चले जाने के थोड़े ही समय बाद वे परिव्राजक सरभ परिव्राजक को वाणी के कोड़े मारने लगे। "आयुष्मान सरभ! जैसे कोई बूढ़ा गीदड़ बड़े जंगल में सिंहनाद करने की बात कहकर गीदड़ की बोली ही बोले, सियार की बोली ही बोले, इसी प्रकार हे आयुष्मान सरभ! तूने श्रमण गौतम की अनुपस्थिति में मैं सिंहनाद करूंगा कहकर, उपस्थिति में केवल गीदड़ की बोली, सियार की बोली ही बोली है। जैसे कोई मुर्गी का चूजा मुर्गे की तरह बांग दूंगा कहकर मुर्गी के चूजे की ही आवाज निकाले, उसी प्रकार हे आयुष्मान सरभ! तूने श्रमण गौतम की अनुपस्थिति में मैं सिंहनाद करूंगा कहकर उपस्थिति में केवल गीदड़ की बोली, सियार की बोली ही बोली है। आयुष्मान सरभ! जैसे वृषभ समझता है कि शून्य गोशाला में उसे जोर से रंभना चाहिए, इसी प्रकार आयुष्मान सरभ! तू भी यह समझता है कि श्रमण गौतम की अनुपस्थिति में ही जोर से बोलना चाहिए।"

ऐसे उन परिव्राजकों ने चारों ओर से सरभ परिव्राजक को वाणी के कोड़े लगाये।

५. केसमुत्ति सुत्त

६६. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान कोशल जनपद में महान भिक्षु-संघ के साथ चारिका करते हुए केशमुत्त नामक कालामों के निगम में गये। केशमुत्त के कालामों ने सुना कि शाक्यकुल से प्रव्रजित शाक्यपुत्र श्रमण गौतम केशमुत्त पधारे हैं। उन भगवान गौतम का इस प्रकार से सु-यश फैला हुआ है –'वह भगवान पूज्य हैं, सम्यक संबुद्ध हैं, विद्या तथा आचरण से युक्त हैं... प्रकाशित करते हैं। ऐसे अरहंतों का दर्शन करना अच्छा होता है।'

तब केशमुत्तिय कालाम भगवान के पास गये। पास जाकर कुछ भगवान को नमस्कार कर एक ओर बैठ गये, कुछ भगवान के साथ कुशलक्षेम का वार्तालाप करके एक ओर बैठ गये, कुछ भगवान को हाथ जोड़कर नमस्कार करके एक ओर बैठ गये, कुछ (अपना) नाम-गोत्र सुनाकर एक ओर बैठ गये,

कुछ चुपचाप एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे केशमुत्तिय कालामों ने भगवान को यह कहा –

"भंते! कुछ श्रमण-ब्राह्मण केशमुत्त आते हैं। वे अपने ही मत को प्रकाशित करते हैं, उसी की बड़ाई करते हैं। दूसरे के मत की निंदा करते हैं, अनादर करते हैं, तिरस्कार करते हैं, उसे कुचल देते हैं। भंते! दूसरे भी कुछ श्रमण-ब्राह्मण केशमुत्त आते हैं। वे भी अपने ही मत को प्रकाशित करते हैं, उसी की बड़ाई करते हैं। दूसरे के मत की निंदा करते हैं, अनादर करते हैं, तिरस्कार करते हैं, उसे कुचल देते हैं। भंते! इससे हमारे मन में शक पैदा होता है, संदेह पैदा होता है कि इन श्रमणों में से किसने सत्य कहा, किसने असत्य?

"हे कालामो! शक करना ठीक है। संदेह करना ठीक है। शक करने ही की जगह पर संदेह उत्पन्न होता है।

"हे कालामो! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जानो कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दुःख होता है – तब हे कालामो! तुम उन बातों को छोड़ दो।

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो लोभ उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है, या अहित के लिए?"

"भंते! अहित के लिए।"

"हे कालामो! जो लोभी है, जो लोभ से अभिभूत है, जो असंयत है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहित तथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो द्वेष उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है, या अहितके लिए?"

"भंते! अहित के लिए।"

"हे कालामो! जो द्वेषी है, जो द्वेष से अभिभूत है, जो असंयत है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहित तथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो मोह उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है या अहितके लिए?"

"भंते! अहित के लिए।"

"हे कालामो! जो मूढ़ है, जो मोह से अभिभूत है, जो असंयत है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहित तथा दुःख का कारण होता है।

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो कालामो! क्या मानते हो, ये धर्म कुशल हैं या अकुशल?"

"भंते! अकुशल हैं।"

"सदोष हैं या निर्दोष?"

"भंते! सदोष हैं।"

"विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं या प्रशंसित हैं?"

"भंते! विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं।"

"पूरी तरह से आचरण करने पर अहित के लिए, दुःख के लिए होते हैं, अथवा नहीं होते? इस विषय में तुम्हें कैसा लगता है?"

"भंते! पूरी तरह से आचरण करने पर, अहित के लिए, दुःख के लिए होते हैं। इस विषय में हमें ऐसा ही लगता है।"

"तो हे कालामो! यह जो कहा –'हे कालामो! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि

यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवलइसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवलइसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवलइसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक)है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो!जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जानो कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दुःख होता है –तब हे कालामो! तुम उन बातों को छोड़ दो' –यह जो कुछ कहा गया, यह इसी संबंध में कहा गया।

"हे कालामो!आओ। तुम किसी बात को...केवलइसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो!जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जानो कि ये बातें कुशल हैं, ये बातें निर्दोष हैं, ये बातें विज्ञ-पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से हित होता है, सुख होता है – तब हे कालामो! तुम इन बातों के अनुसार आचरणकरो।

"तो हे कालामो!क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो अलोभ उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है या अहितके लिए?"

"भंते! हित के लिए।"

"हे कालामो!जो अलोभी है, जो लोभ से अभिभूत नहीं है, जो असंयत नहीं है, वह प्राणी-हत्या भी नहीं करता, चोरी भी नहीं करता, परस्त्रीगमन भी नहीं करता, झूठ भी नहीं बोलता, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा नहीं देता; यह दीर्घकालतक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो हे कालामो!क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो अद्वेष उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए होता है या अहितके लिए?"

"भंते! हित के लिए।"

"हे कालामो!जो अद्वेषी है, जो द्वेष से अभिभूत नहीं है, जो असंयत नहीं है, वह प्राणी-हत्या भी नहीं करता, चोरी भी नहीं करता, परस्त्रीगमन भी नहीं करता, झूठ भी नहीं बोलता, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा नहीं देता; यह दीर्घकाल तक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो हे कालामो! क्या मानते हो, पुरुष के अंदर जो अमोह उत्पन्न होता है, वह उसके हित के लिए उत्पन्न होता है, या अहितके लिए?"

"भंते! हित के लिए।"

"हे कालामो! जो मूढ़ नहीं है, जो मूढ़ता से अभिभूत नहीं है, जो असंयत नहीं है, वह प्राणी-हत्या भी नहीं करता, चोरी भी नहीं करता, परस्त्रीगमन भी नहीं करता, झूठ भी नहीं बोलता, दूसरों को भी वैसी प्रेरणा नहीं देता; यह दीर्घकाल तक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो कालामो! क्या मानते हो, ये धर्म कुशल हैं या अकुशल?"

"भंते! कुशल हैं।"

"सदोष हैं या निर्दोष?"

"भंते! निर्दोष हैं।"

"विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, या प्रशंसित?"

"भंते! विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं।"

"पूरी तरह से आचरण करनेपर सुख के लिए होते हैं, अथवा नहीं होते? इस विषय में तुम्हें कैसा लगता है?"

"भंते! पूरी तरह से आचरण करनेपर, हित के लिए, सुख के लिए होते हैं। इस विषय में हमें ऐसा ही लगता है।"

"तो हे कालामो! यह जो कहा –'हे कालामो! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवलइसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवलइसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे कालामो! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही

यह जान लो कि ये बातें कु शलहैं, ये बातें निर्दोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से हित होता है, सुख होता है –तब हे क ालामो!तुम इन बातों के अनुसार चलो' –यह जो कु छक हा गया, यह इसी संबंध में क हा गया।

"हे क ालामो!जो आर्य-श्रावक !इस प्रक ारलोभरहित होता है, क्र ोध-रहित होता है, मूढ़ता-रहित होता है, जानक ारहोता है, स्मृतिमान होता है, वह एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा तथा चौथी दिशा को मैत्री-चित्त से व्याप्त क रकेविहार क रता है। ऊपर, नीचे, बीच में, सर्वत्र, सब तरह से, सब प्रक ार से, सारे लोक को विपुल, विस्तृत, अपरिमेय, अवैरी, अद्वेषी, मैत्री-युक्त चित्त से व्याप्त क रके विहार क रता है। ...क रुणा-युक्त चित्त से... मुदिता-युक्त चित्त से... उपेक्षा-युक्त चित्त से व्याप्त क रके विहारक रता है।

"हे क ालामो!उस प्रक ारके अवैरी-चित्त, अद्वेषी चित्त, असंक्लिष्ट-चित्त, शुद्ध-चित्त आर्य-श्रावक को इसी जीवन में चार प्रक ारके आश्वासन प्राप्त हो जाते हैं –

"'यदि परलोक है, यदि सुकृ त-दृष्कृ तका फ ल मिलता है, तो यह होगा कि शरीर छूटने पर, मरने के बाद, मैं सुगति को प्राप्त होऊंगा, मैं स्वर्गलोक में पैदा होऊंगा – यह उसे पहला आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"'यदि परलोक नहीं है, यदि सुकृ त-दृष्कृ तका फ लनहीं मिलता है, तो मैं यहां इस जीवन में अवैरी होक र,अद्वेषी होक र,दुःख-रहित होक र,सुखी होक र विचरण क रता हूं – यह उसे दूसरा आश्वासनप्राप्त हो जाता है।

"'यदि क रनेसे कि सीका बुरा होता है, तो मैं कि सीका बुरा नहीं सोचता हूं, जब मैं कोई पाप-क र्मनहीं क रताहूं तो मुझे दुःख कै से स्पर्श क रेगा? –यह उसे तीसरा आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"'यदि क रने से कि सी का बुरा नहीं होता, तो मैं अपने आप को दोनों दृष्टियों से विशुद्ध पाता हूं – यह उसे चौथा आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"हे क ालामो!उस प्रक ारके अवैरी-चित्त, अद्वेषी-चित्त, असंक्लिष्ट-चित्त, शुद्ध-चित्त, आर्य-श्रावक को इसी जीवन में चार प्रक ारके आश्वासन प्राप्त हो जाते हैं।"

"भगवान! ऐसा ही है। सुगत! ऐसा ही है। भंते! इस प्रक ार के अवैरी-चित्त, अद्वेषी-चित्त, असंक्लिष्ट-चित्त, शुद्ध-चित्त आर्य-श्रावक को इसी जीवन में चार प्रक ारके आश्वासन प्राप्त हो जाते हैं। 'यदि परलोक है, यदि

सुकृत-दुष्कृतका फल मिलता है तो यह होगा कि शरीर छूटने पर, मरने के बाद मैं सुगति को प्राप्त होकर स्वर्गलोक में पैदा होऊंगा – यह उसे पहला आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"'यदि परलोक नहीं है, यदि सुकृत-दुष्कृतका फल नहीं मिलता है, तो मैं यहां इस जीवन में अवैरी होकर, अद्वेषी होकर, दुःख-रहित होकर, सुखी होकर विचरण करता हूं – यह उसे दूसरा आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"'यदि करने से किसी का बुरा होता है, तो मैं किसी का बुरा नहीं सोचता हूं, जब मैं कोई पाप-कर्म नहीं करता हूं तो मुझे दुःख कैसे स्पर्श करेगा? – यह उसे तीसरा आश्वासन प्राप्त हो जाता है।

"'यदि करने से किसी का बुरा नहीं होता, तो मैं अपने आप को दोनों दृष्टियों से विशुद्ध पाता हूं – यह उसे चौथा आश्वासन प्राप्त हो जाता है। भंते! इस प्रकार के अवैरी-चित्त, अद्वेषी-चित्त, असंक्लिष्ट-चित्त, शुद्ध-चित्त आर्य-श्रावक को इसी जीवन में ये चार प्रकार के आश्वासन प्राप्त हो जाते हैं।

"भंते! सुंदर है... यह हम भगवान की, धर्म की तथा भिक्षु-संघ की शरण ग्रहण करते हैं। भंते भगवान! आज से जीवनपर्यंत आप हमें शरणागत उपासक जानें।"

६. साळ्ह सुत्त

६७. ऐसा मैंने सुना। एक समय आयुष्मान नन्दक श्रावस्ती में मिगार-माता के पूर्वाराम-प्रासाद में विहार कर रहे थे।

तब मिगार का पोता साळ्ह तथा सेखुनिय का पोता साण आयुष्मान नन्दक के पास गये। जाकर आयुष्मान नन्दक को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए मिगार के पोते साळ्ह को आयुष्मान नन्दक ने यह कहा –'हे साळ्ह! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्क सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे साळ्ह! जब तुम

स्वानुभव से अपने आप यह जान लो कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दुःख होता है –तब हे साळ्ह! तुम इन बातों को छोड़ दो।

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, लोभ है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं लोभ को ही अभिध्या कहता हूं। हे साळ्ह! जो लोभी है, जो लोभग्रस्त है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरे को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहित तथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! हां।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, द्वेष है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं द्वेष को ही व्यापाद कहता हूं। हे साळ्ह! जो द्वेष-युक्त है, जो विद्वेषी (दुर्भावनापूर्ण) है वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरे को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहित तथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! हां।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, मोह है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं मोह को ही अविद्या कहता हूं। हे साळ्ह! जो मूढ़ है, जो अविद्याग्रस्त है, वह प्राणी-हत्या भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्रीगमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरे को भी वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके अहित तथा दुःख का कारण होता है।"

"भंते! हां।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, ये धर्म कुशल हैं या अकुशल?"

"भंते! अकुशल।"

"सदोष या निर्दोष?"

"भंते! सदोष।"

"विज्ञों द्वारा निंदित या विज्ञों द्वारा प्रशंसित?"

"भंते! विज्ञों द्वारा निंदित।"

"पूरी तरह से आचरण करने पर, अहित के लिए, दु:ख के लिए होते हैं अथवा नहीं होते? इस विषय में तुम क्या सोचते हो?"

"भंते! पूरी तरह से आचरण करने पर, अहित के लिए, दु:ख के लिए होते हैं। इस विषय में हम यही सोचते हैं।"

"तो हे साळ्ह! यह जो कहा –'हे साळ्ह! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे साळ्ह! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जान लो कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दु:ख होता है – तो हे साळ्ह! तुम इन बातों को छोड़ दो।' –यह जो कुछ कहा गया, यह इसी संबंध में कहा गया।

"इस प्रकार साळ्ह! तुम किसी बात को... केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे साळ्ह! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जान लो कि ये बातें कुशल हैं, ये बातें निर्दोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से हित होता है, सुख होता है – तो हे साळ्ह! तुम इन बातों के अनुसार आचरण करो।

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, अलोभ है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं अलोभ को ही अनभिध्या कहता हूं। हे साळ्ह! जो निर्लोभी है, जो लोभरहित है, वह न प्राणी-हत्या करता है, न चोरी करता है, न परस्त्रीगमन करता है, न झूठ बोलता है, न दूसरे को वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, अद्वेष है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं अद्वेष को ही अव्यापाद कहता हूं। साळ्ह! जो द्वेष-रहित है, जो अविद्वेषी है, वह न प्राणी-हत्या करता है... न झूठ बोलता है, न दूसरे को वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, अमोह है?"

"भंते! है।"

"साळ्ह! मैं अमोह को ही विद्या कहता हूं। साळ्ह! जो मूढ़ता-रहित है, जो विद्या-प्राप्त है, वह न प्राणी-हत्या करता है... न झूठ बोलता है, न दूसरे को वैसी प्रेरणा देता है; यह दीर्घकाल तक उसके हित तथा सुख का कारण होता है।"

"भंते! ऐसा ही है।"

"तो साळ्ह! क्या मानते हो, ये धर्म कुशल हैं या अकुशल?"

"भंते! कुशल।"

"सदोष या निर्दोष?"

"भंते! निर्दोष।"

"विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदित या विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित?"

"भंते! विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित।"

"पूरी तरह से आचरण करने पर, हित के लिए, सुख के लिए होते हैं अथवा नहीं होते? इस विषय में तुम क्या सोचते हो?"

"भंते! पूरी तरह से आचरण करने पर, हित के लिए, सुख के लिए होते हैं। इस विषय में हम यही सोचते हैं।"

"तो हे साळ्ह! यह जो कहा –'हे साळ्ह! आओ। तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्क सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहनेवाले का

व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। हे साळ्ह! जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जान लो कि ये बातें कुशल हैं, ये बातें निर्दोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से हित होता है, सुख होता है – तब हे साळ्ह! तुम इन बातों के अनुसार आचरण करो' – यह जो कुछ कहा गया, वह इसी संबंध में कहा गया।

"हे साळ्ह! जो आर्य-श्रावक इस प्रकार लोभरहित होता है, द्वेष-रहित होता है, मूढ़ता-रहित होता है, संप्रज्ञानी होता है, स्मृतिमान होता है, वह एक दिशा, दूसरी दिशा, तीसरी दिशा तथा चौथी दिशा को मैत्री-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता है,... करुणा-युक्त चित्त से... मुदिता-युक्त चित्त से... उपेक्षा-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता है। ऊपर, नीचे, बीच में सर्वत्र, सब तरह से, सब प्रकार से, सारे लोक को, विपुल, उदार, अपरिमेय, अवैरी, अद्वेषी, उपेक्षा-युक्त चित्त से व्याप्त करके विहार करता है। वह यथाभूत जानता है –'यह है, यह हीन है, यह प्रणीत (=श्रेष्ठ) अवस्था है, इस संज्ञा से श्रेष्ठतर अवस्था में जाया जा सकता है।' तब उस इस तरह जानने वाले और देखने वाले का चित्त कामास्रवों से भी विमुक्त हो जाता है, भवास्रवों से भी विमुक्त हो जाता है, अविद्यास्रवों से भी विमुक्त हो जाता है, विमुक्त होने पर, 'विमुक्त हूं' यह ज्ञान हो जाता है। वह यथाभूत जान जाता है –'जन्म (का कारण) क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास (का उद्देश्य) पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया। अब यहां जन्म के लिए और कुछ कारण नहीं रह गया।'

"वह यह यथाभूत जान जाता है – 'पहले लोभ था, वह अकुशल था। अब वह नहीं रहा है, यह कुशल है। पहले द्वेष था, वह अकुशल था। अब वह नहीं रहा है, यह कुशल है। पहले मोह था, वह अकुशल था। अब वह नहीं रहा है, यह कुशल है।' इस प्रकार वह इसी जीवन में तृष्णा-विहीन, निर्वाणप्राप्त, शांत, सुखी, अपने से ब्रह्मभूत होकर विहार करता है।"

७. कथावत्थु सुत्त

६८. "भिक्षुओ, तीन कथा-वस्तुएं हैं। कौन-सी तीन?

"भिक्षुओ, या तो भूतकाल संबंधी बातचीत हो – 'भूतकाल में ऐसा हुआ' – या भविष्यकाल संबंधी बातचीत हो –'भविष्य में ऐसा होगा' – या वर्तमान काल संबंधी बातचीत हो – 'इस समय वर्तमान में ऐसा है।'

"भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि यह आदमी वार्तालाप करने योग्य है या नहीं?

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी 'हां या नहीं' में उत्तर दिये जाने वाले प्रश्न का 'हां या नहीं' में उत्तर नहीं देता, विभक्त करके उत्तर देने योग्य प्रश्न का विभक्त करके उत्तर नहीं देता, प्रतिप्रश्न पूछकर उत्तर देने योग्य प्रश्न का प्रतिप्रश्न पूछकर उत्तर नहीं देता, उत्तर न देने योग्य प्रश्न को बिना उत्तर दिये टाल नहीं देता, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य नहीं होता।

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी 'हां या नहीं' में उत्तर दिये जाने वाले प्रश्न का 'हां या नहीं' में उत्तर देता है, विभक्त करके उत्तर देने योग्य प्रश्न का विभक्त करके उत्तर देता है, प्रतिप्रश्न पूछ कर उत्तर देने योग्य प्रश्न का प्रतिप्रश्न पूछकर उत्तर देता है, उत्तर न देने योग्य प्रश्न को बिना उत्तर दिये ही टाल देता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य होता है।

"भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि यह आदमी वार्तालाप करने योग्य है या नहीं है?

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर किसी एक निष्कर्ष पर स्थिर नहीं रहता, किसी एक मान्यता पर स्थिर नहीं रहता, किसी एक सर्वमान्य तर्क पर स्थिर नहीं रहता, प्रश्नोत्तर की सामान्य प्रक्रिया को नहीं जानता, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य नहीं होता।

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर किसी एक निष्कर्ष पर स्थिर रहता है, किसी एक मान्यता पर स्थिर रहता है, किसी एक सर्वमान्य तर्क पर स्थिर रहता है, प्रश्नोत्तर की सामान्य प्रक्रिया को जानता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य होता है।

"भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि यह आदमी वार्तालाप करने योग्य है या नहीं?

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर दूसरी-दूसरी बात करता है, बाहरी बात लाता है, कोप, द्वेष वा असंतोष प्रकट करता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य नहीं होता।

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर दूसरी-दूसरी बात नहीं करता, बाहरी बात नहीं लाता, कोप, द्वेष वा असंतोष प्रकट नहीं करता, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य होता है।

"भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि यह आदमी वार्तालाप करने योग्य है या नहीं?

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर, जहां-तहां से सूत्र उद्धृत करता है, जहां-तहां से सूत्र उद्धृत करके तर्क को काट देता है, हँसकर उपहास

करता है और जब तर्क देने में कोई लड़खड़ाता है तब उसे धर दबाता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य नहीं होता।

"भिक्षुओ, यदि कोई आदमी प्रश्न पूछने पर न जहां-तहां से सूत्र उद्धृत करता है, न जहां-तहां से सूत्र उद्धृत करके तर्क को काट देता है, न हँसकर उपहास करता है, न तो तर्क देने में किसी के लड़खड़ाने पर उसे धर दबाता है, तो भिक्षुओ, ऐसा आदमी वार्तालाप करने योग्य होता है।

"भिक्षुओ, बातचीत से पता लग जाता है कि इस आदमी में वार्तालाप करने के आवश्यक आधार (प्रत्यय) हैं या नहीं?

"भिक्षुओ, जो ध्यान देकर नहीं सुनता वह वार्तालाप करने के आवश्यक आधार से युक्त नहीं होता, जो ध्यान देकर सुनता है वह वैसा होता है। जो वैसा होता है वह एक धर्म (आर्य-धर्म) को जानता है, एक धर्म (दुःखसत्यधर्म) को अच्छी तरह जानता है, एक धर्म (अकुशल) का त्याग करता है, एक धर्म (अर्हत्व) का साक्षात करता है। वह एक धर्म को जानकर, एक धर्म को अच्छी तरह जानकर, एक धर्म का त्याग कर, एक धर्म का साक्षात करता है, इस प्रकार वह एक धर्म अर्थात सम्यक-विमुक्ति को पा लेता है। भिक्षुओ, यही कथा का लाभ है, यही मंत्रणा का लाभ है, यही वार्तालाप करने के आवश्यक आधार (प्रत्यय) से युक्त होने का लाभ है और यही ध्यान देने का लाभ है जो कि यह उपादान-रहित चित्त की विमुक्ति है।"

"ये विरुद्धा सल्लपन्ति, विनिविट्ठा समुस्सिता।
अनरियगुणमासज्ज, अञ्ञोञ्ञविवरेसिनो॥

"दुब्भासितं विक्खलितं, सम्पमोहं पराजयं।
अञ्ञोञ्ञस्साभिनन्दन्ति, तदरियो कथनाचरे॥

"सचे चस्स कथाकामो, कालमञ्ञाय पण्डितो।
धम्मट्ठपटिसंयुत्ता, या अरियचरिता कथा॥

"तं कथं कथये धीरो, अविरुद्धो अनुस्सितो।
अनुन्नतेन मनसा, अपळासो असाहसो॥

"अनुसूयायमानो सो, सम्मदञ्ञाय भासति।
सुभासितं अनुमोदेय्य, दुब्भट्ठे नापसादये॥

"उपारम्भं न सिक्खेय्य, खलितञ्च न गाहये।
नाभिहरे नाभिमद्दे, न वाचं पयुतं भणे॥

"अञ्ञातत्थं पसादत्थं, सतं वे होति मन्तना।
एवं खो अरिया मन्तेन्ति, एसा अरियान मन्तना।
एतदञ्ञाय मेधावी, न समुस्सेय्य मन्तये"ति॥

["जो कथनअभिनिवेश के वशीभूत होकर,अभिमान के कारणविरोधी होता है, जो अनार्य-गुण को प्राप्त कर परस्पर छिद्रान्वेषण युक्त होता है, जो परस्पर एक दूसरे के अयथार्थ-भाषण, स्खलन, प्रमादवश बोले गये शब्दों तथा एक दूसरे की पराजय को लेकर प्रसन्नता से किया गया होता है, आर्य लोग वैसा कथन नहीं करते।

यदि कोई पंडित बात करने का उचित समय जानकर धर्म तथा अर्थ से युक्त, आर्य-चरित-युक्त बातचीत करना चाहे तो धैर्यवान, अविरोधी तथा अभिमानशून्य आदमी को चाहिए कि वह दुराग्रह-रहित हो, दुस्साहस-रहित हो, ईर्ष्या-रहित हो, शांतचित्त से अच्छी तरह सोच-समझकर बातचीत करे। उसे चाहिए कि वह दूसरों के शुभकथन का अनुमोदन करे और अनुचित बोलने का बुरा न माने। उलाहना देना न सीखे, स्खलन को लेकर न बैठे, यूं ही सूत्रादि को उद्धृत न करे, न वैसा करके प्रश्न को दबावे, न झूठी बात बोले। सत्पुरुषों की बातचीत ज्ञान के लिए होती है तथा मन में प्रसन्नता पैदा करने के लिए होती है। आर्य-जन इसी प्रकार वार्तालाप करते हैं, यही आर्य-जनों की मंत्रणा है। इस बात को जानकर मेधावी पुरुष को चाहिए कि अभिमानयुक्त होकर बातचीत न करे।"]

८. अन्यतैर्थिक सुत्त

६९. "भिक्षुओ, यदि अन्यतैर्थिक (दूसरे मतों के) परिव्राजक ऐसा पूछें कि आयुष्मानो, ये तीन धर्म हैं। कौन-से तीन? राग, द्वेष और मोह। आयुष्मानो! ये तीन धर्म हैं। आयुष्मानो! इन तीनों धर्मों में किसकी क्या विशेषता है? किसमें क्या खास बात है? किसका क्या विभेद है? भिक्षुओ, दूसरे परिव्राजकों द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर, तुम इसका क्या निराकरण करोगे?"

"भंते! भगवान ही धर्म के मूल हैं, भगवान ही धर्म के नेता हैं, भगवान ही धर्म के शरण-स्थान हैं। भंते! अच्छा हो यदि इस कथन के अर्थ को भगवान ही प्रकाशित करें। भगवान से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे।"

"तो भिक्षुओ, सुनो। अच्छी तरह मन में धारण करो। कहता हूं।" 'भंते, अच्छा!' कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, यदि अन्यतैर्थिक (दूसरे मतों के) परिव्राजक ऐसा पूछें कि आयुष्मानो, ये तीन धर्म हैं। कौन-से तीन? राग, द्वेष और मोह। आयुष्मानो, ये तीन धर्म हैं। आयुष्मानो! इन तीनों धर्मों में किसकी क्या विशेषता है? किसमें क्या खास बात है? किसका क्या विभेद है? भिक्षुओ, दूसरे परिव्राजकों द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर तुम इसका इस प्रकार निराकरण करना – 'आयुष्मानो! राग में अल्पदोष है किंतु उससे मुक्ति सहज नहीं, द्वेष में महान दोष है किंतु उससे मुक्ति सहज है; मोह में महान दोष है और उससे भी मुक्ति सहज नहीं।'

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है जिससे अनुत्पन्न राग उत्पन्न होता है, उत्पन्न अत्यधिक विपुल होता है?

"'कहना चाहिए कि शुभ-निमित्त इसका हेतु है, कारण है। शुभ-निमित्त का अयथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न राग उत्पन्न होता है, उत्पन्न राग अत्यधिक विपुल होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है, जिससे अनुत्पन्न राग उत्पन्न होता है, उत्पन्न राग अत्यधिक विपुल होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है जिससे अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है, तथा उत्पन्न द्वेष अत्यधिक विपुल होता है।

"'कहना चाहिए कि प्रतिकूल भाव इसका हेतु है, कारण है। प्रतिकूल भाव का अयथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है तथा उत्पन्न द्वेष अत्यधिक विपुल होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है, जिससे अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न होता है तथा उत्पन्न द्वेष अत्यधिक विपुल होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है, जिससे अनुत्पन्न मोह उत्पन्न होता है, तथा उत्पन्न मोह अत्यधिक विपुल होता है?

"'कहना चाहिए कि अयथार्थ चिंतन इसका हेतु है, कारण है। अयथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न मोह उत्पन्न होता है, उत्पन्न मोह अत्यधिक विपुल होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है, जिससे अनुत्पन्न मोह उत्पन्न होता है तथा उत्पन्न मोह अत्यधिक विपुल होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है जिससे अनुत्पन्न राग उत्पन्न नहीं होता, तथा उत्पन्न राग का प्रहाण होता है?

"'कहना चाहिए कि अशुभ-निमित्त ही इसका हेतु है, कारण है। अशुभ-निमित्त का यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न राग उत्पन्न नहीं होता, तथा उत्पन्न राग का प्रहाण होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है जिससे अनुत्पन्न राग उत्पन्न नहीं होता तथा उत्पन्न राग का प्रहाण होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है जिससे अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न नहीं होता तथा उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है?

"'कहना चाहिए कि चित्त को विमुक्त करने वाली मैत्री-भावना ही इसका हेतु है, कारण है। चित्त को विमुक्त करने वाली मैत्री-भावना का यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है जिससे अनुत्पन्न द्वेष उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है।

"'आयुष्मानो! इसका क्या हेतु है, क्या कारण है, जिससे अनुत्पन्न मोह उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न मोह का प्रहाण होता है?

"'कहना चाहिए कि यथार्थ चिंतन करना ही इसका हेतु है, कारण है। यथार्थ चिंतन करने से अनुत्पन्न मोह उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न मोह का प्रहाण होता है। आयुष्मानो! यह हेतु है, यह कारण है, जिससे अनुत्पन्न मोह उत्पन्न नहीं होता, उत्पन्न मोह का प्रहाण होता है।"

९. अकुसल-मूल सुत्त

७०. "भिक्षुओ, ये तीन अकुशल-मूल हैं? कौन-से तीन? लोभ अकुशल-मूल है, द्वेष अकुशल-मूल है, मोह अकुशल-मूल है।

"भिक्षुओ, जो लोभ है, अकुशल-मूल ही है और लोभी आदमी शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है वह भी अकुशल है। लोभी आदमी लोभ के कारण, लोभ से अभिभूत होकर, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए (जिसकी लाठी उसकी भैंस) के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख देता है, वह अकुशल है। इसलिए लोभ से, लोभ के कारण से, लोभ से उत्पन्न होकर, लोभ के प्रत्यय से अनेक पाप, अकुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, जो द्वेष है, अकुशल-मूल ही है और द्वेषी आदमी शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है वह भी अकुशल है। द्वेषी आदमी द्वेष के कारण, द्वेष से अभिभूत होकर, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख देता है, वह अकुशल है। इसलिए द्वेष से, द्वेष के कारण से, द्वेष से उत्पन्न होकर, द्वेष के प्रत्यय से अनेक पाप, अकुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, जो मोह है, अकु शल-मूल ही है और मूढ़ आदमी शरीर से, वाणी से, मन से जो कु छभी क रताहै वह भी अकु शलहै। मूढ़ आदमी मूढ़ता के क ारण, मूढ़ता से अभिभूत होकर, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारक र या बांधक रया उनकी धनहानि क रया उनकी निंदा क रया मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) क रना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालक रदु:ख देता है, वह अकु शलहै। इसलिए मूढ़ता से, मूढ़ता के क ारणसे, मूढ़ता से उत्पन्न होकर, मूढ़ता के प्रत्यय से अनेक पाप, अकु शल-धर्म पैदा हो जाते हैं। भिक्षुओ, इस प्रक ार व्यक्ति 'अक ाल-वादी', 'असत्य-वादी', 'अनर्थ-वादी', 'अधर्म-वादी', 'अविनय-वादी' क हाजाता है।

"भिक्षुओ, इस प्रक ार का व्यक्ति 'अक ाल-वादी' भी, 'असत्य-वादी' भी, 'अनर्थ-वादी' भी, 'अधर्म-वादी' भी, 'अविनय-वादी' भी क्यों क हा जाता है? – क्योंकि यह व्यक्ति दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारक र या बांधक र या उनकी धनहानि क र या उनकी निंदा क र या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) क रना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालक रदु:ख देता है। सच्ची बात क ही जाने पर उसे अस्वीक ार क रता है, स्वीक ार नहीं क रता; झूठी बात क ही जाने पर उसके आरोप से मुक्त होने का प्रयास नहीं क रता कि यह असत्य है, यह अभूत है। इसलिए इस प्रक ार का व्यक्ति 'अक ाल-वादी' भी, 'असत्य-वादी' भी, 'अनर्थ-वादी' भी, 'अधर्म-वादी' भी, 'अविनय-वादी' भी क हा जाता है।

"भिक्षुओ, इस प्रक ार का व्यक्ति लोभ से उत्पन्न, पापी अकु शल-धर्मों से अभिभूत होने के क ारणइसी जीवन में चिंता-युक्त, अशांति-युक्त, जलन-युक्त दु:ख अनुभव क रता है। ऐसे व्यक्ति के लिए शरीर छूटने पर, मरने के बाद दुर्गति की ही आशा क रनी चाहिए। इसी प्रक ार द्वेष से उत्पन्न... मोह से उत्पन्न, पापी अकु शल-धर्मों के अभिभूत होने के क ारण इसी जीवन में चिंता-युक्त, अशांति-युक्त, जलन-युक्त दु;ख अनुभव क रता है। ऐसे व्यक्ति के लिए शरीर छूटने पर, मरने के बाद दुर्गति की ही आशा क रनी चाहिए।

"भिक्षुओ, जैसे चाहे शाल-वृक्ष हो, चाहे धव-वृक्ष हो, चाहे स्पंदन-वृक्ष हो, यदि वह मालुवा-लता (=अमर-बेल) से लदा हो, घिरा हो तो उसकी हानि ही होती है, उसका विनाश ही होता है, हानि-विनाश ही होता है। भिक्षुओ, इसी प्रक ार, ऐसा व्यक्ति लोभ से उत्पन्न, पापी अकु शल धर्मों से अभिभूत होने के क ारण इसी जीवन में चिंता-युक्त, अशांति-युक्त, जलन-युक्त दु:ख अनुभव क रता है। ऐसे व्यक्ति के लिए शरीर छूटने पर, मरने के बाद, दुर्गति की ही

आशा करनी चाहिए। इसी प्रकार द्वेष से उत्पन्न... मोह से उत्पन्न, पापी अकुशल धर्मों के अभिभूत होने के कारण इसी जीवन में चिंता-युक्त, अशांति-युक्त, जलन-युक्त दुःख अनुभव करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए शरीर छूटने पर, मरने के बाद दुर्गति की ही आशा करनी चाहिए।

"भिक्षुओ, ये तीन कुशल-मूल हैं। कौन-से तीन? अलोभ कुशल-मूल है, अद्वेष कुशल-मूल है, अमोह कुशल-मूल है।

"भिक्षुओ, जो अलोभ है, कुशलमूल ही है और अलोभी व्यक्ति शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है वह भी कुशल है। अलोभी व्यक्ति, अलोभ के कारण लोभ से अभिभूत न होने के कारण, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख नहीं देता है, वही कुशल है। इसलिए अलोभ से, अलोभ के कारण, अलोभ से उत्पन्न होकर, अलोभ के प्रत्यय से अनेक कुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, जो अद्वेष है, कुशलमूल ही है और अद्वेषी व्यक्ति शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है, वह भी कुशल है। अद्वेषी व्यक्ति, अद्वेष के कारण, द्वेष से अभिभूत न होने के कारण, दूसरे को जो अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल का प्रयोग करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख नहीं देता है, वही कुशल है। इसलिए अद्वेष से, अद्वेष के कारण, अद्वेष से उत्पन्न होकर, अद्वेष के प्रत्यय से अनेक कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, जो अमोह है, कुशलमूल ही है और मोह-रहित व्यक्ति शरीर से, वाणी से, मन से जो कुछ भी करता है, वह भी कुशल है। मोह-रहित व्यक्ति अमोह के कारण, मोह से अभिभूत न होने के कारण, दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख नहीं देता है, वही कुशल है। इसलिए अमोह से, अमोह के कारण, अमोह से उत्पन्न होकर, अमोह के प्रत्यय से अनेक कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं।

"भिक्षुओ, इस प्रकार का व्यक्ति 'काल-वादी' कहलाता है, 'सत्य-वादी' कहलाता है, 'अर्थ-वादी' कहलाता है, 'धर्म-वादी' कहलाता है, 'विनय-वादी'

कहलाता है। भिक्षुओ, इस प्रकार का व्यक्ति 'काल-वादी' भी, 'सत्य-वादी' भी, 'अर्थ-वादी' भी, 'धर्म-वादी' भी 'विनय-वादी' भी क्यों कहलाता है? क्योंकि यह व्यक्ति दूसरे को अन्यायपूर्ण ढंग से मारकर या बांधकर या उनकी धनहानि कर या उनकी निंदा कर या मैं बलवान हूं, मुझे बल (का प्रयोग) करना चाहिए... के तर्ज पर उन्हें देश से निकालकर दुःख नहीं देता है, सच्ची बात कही जाने पर उसे स्वीकार करता है, अस्वीकार नहीं करता, झूठी बात कही जाने पर उस आरोप से मुक्त होने का प्रयास करता है कि यह असत्य है, यह अभूत है। इसलिए इस प्रकार का व्यक्ति 'काल-वादी' भी, 'सत्य-वादी' भी, 'अर्थ-वादी' भी, 'धर्म-वादी' भी, 'विनय-वादी' भी कहलाता है।

"भिक्षुओ, इस प्रकार के व्यक्ति के लोभज पापी अकुशल धर्म प्रहीण हो गये रहते हैं, उनकी जड़ें उच्छिन्न हो गयी रहती हैं, वे कटे ताड़-वृक्ष के समान हो गये रहते हैं, अभाव को प्राप्त हो गये रहते हैं, भविष्य में पुनः न उत्पन्न होने वाले। ऐसा व्यक्ति इसी जीवन में चिंता-मुक्त, अशांति-मुक्त, जलन-मुक्त सुख अनुभव करता है। वह इसी जीवन में निर्वाण को प्राप्त होता है। इस प्रकार के व्यक्ति के द्वेषज... मोहज पापी अकुशल-धर्म प्रहीण हो गये रहते हैं... भविष्य में पुनः न उत्पन्न होने वाले। ऐसा व्यक्ति इसी जीवन में चिंता-मुक्त, अशांति-मुक्त, जलन-मुक्त सुख अनुभव करता है। वह इसी जीवन में निर्वाण को प्राप्त होता है।

"भिक्षुओ, जैसे चाहे शाल-वृक्ष हो, चाहे धव-वृक्ष हो और चाहे स्पंदन-वृक्ष हो और उस पर तीन मालुवा लतायें चढ़ी हों, वह मालुवा-लता से घिरा हो। तब एक व्यक्ति कुदाल और टोकरी लिए आये। वह उस मालुवा-लता की जड़ काट दे, जड़ काट कर खने, खन कर जड़ों को निकाल डाले, यहां तक कि वीरण-घास भी। वह उस मालुवा लता के टुकड़े-टुकड़े करे, टुकड़े-टुकड़े करके उसे चीर डाले, चीर कर खपचियां-खपचियां कर दे, खपचियां-खपचियां करके हवा-धूप में सुखाये, हवा-धूप में सुखाकर आग से जलाये, आग से जलाकर राख कर दे, राख करके या तो तेज हवा में उड़ा दे या शीघ्रगामी नदी में बहा दे। ऐसा होने पर भिक्षुओ, वह मालुवा-लता जड़-मूल से नहीं रहेगी, कटे ताड़-वृक्ष की तरह हो जायगी, अभावप्राप्त हो जायगी, उसकी भावी उत्पत्ति की संभावना नहीं रहेगी। इस तरह भिक्षुओ, इस प्रकार के व्यक्ति के लोभज पापी अकुशल-धर्म प्रहीण हो गये रहते हैं, उनकी जड़ें उच्छिन्न हो गयी रहती हैं, वे कटे ताड़-वृक्ष के समान हो गये रहते हैं, अभाव को प्राप्त हो गये रहते हैं, भविष्य में पुनः न उत्पन्न होने वाले। ऐसा व्यक्ति इसी जीवन में चिंता-मुक्त, अशांति-मुक्त, जलन-मुक्त सुख अनुभव करता है। वह इसी

जीवन में निर्वाण को प्राप्त होता है। इस प्रकार के व्यक्ति के द्वेषज... मोहज पापी अकुशल-धर्म प्रहीण हो गये रहते हैं... भविष्य में पुनः न उत्पन्न होने वाले। ऐसा व्यक्ति इसी जीवन में चिंता-मुक्त, अशांति-मुक्त, जलन-मुक्त सुख अनुभव करता है। वह इसी जीवन में निर्वाण को प्राप्त होता है।

"भिक्षुओ, ये तीन कुशल-मूल हैं।"

१०. उपोसथ सुत्त

७१. ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान श्रावस्ती में मिगार-माता के पूर्वाराम प्रासाद में विहार कर रहे थे। उस समय विसाखा मिगार-माता उपोसथ के दिन भगवान के पास गयी। जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गयी। एक ओर बैठी मिगार-माता विसाखा को भगवान ने यह कहा – विसाखे! आज तू दिन चढ़ते (दोपहर) कैसे आयी?"

"भंते! आज मैंने उपोसथ रखा है।"

"विसाखे! उपोसथ तीन प्रकार का होता है। कौन-से तीन प्रकार का? गोपाल-उपोसथ, निर्ग्रंथ-उपोसथ तथा आर्य-उपोसथ।

"विसाखे! गोपाल-उपोसथ कैसे होता है? विसाखे! जैसे कोई ग्वाला शाम को मालिकों को उनकी गौवें सौंप कर यह सोचे कि आज इन गौवों ने अमुक-अमुक जगह चराई की, आज इन गौवों ने अमुक-अमुक जगह पानी पिया। कल ये गौवें अमुक-अमुक जगह चरेंगी तथा अमुक-अमुक जगह पानी पियेंगी। इसी प्रकार विसाखे! यहां कोई-कोई उपोसथ करने वाला ऐसा सोचता है – आज मैंने यह-यह खाया तथा यह-यह भोजन किया। कल मैं यह-यह खाऊंगा तथा यह-यह भोजन करूंगा। वह उस लोभयुक्त चित्त से दिन गुजार देता है। विसाखे! इस प्रकार गोपाल-उपोसथ होता है। विसाखे! इस प्रकार के गोपाल-उपोसथ का न महान फल होता है, न महान लाभ होता है, न तो यह महान प्रकाश वाला होता है और न बहुत दूर तक व्याप्त होने वाला होता है।

"हे विसाखे! निर्ग्रंथ-उपोसथ कैसे होता है?

"हे विसाखे! निर्ग्रंथ नामक श्रमणों की एक जाति है, वे अपने मतानुयायिओं को इस प्रकार उपदेश देते हैं – 'हे पुरुष! तू आ। पूर्व दिशा में सौ योजन से अधिक योजन तक (सौ योजन से परे) जितने प्राणी हैं तू उन्हें दंड से मुक्त कर, पश्चिम दिशा में सौ योजन से अधिक योजन तक जितने प्राणी हैं, तू उन्हें दंड से मुक्त कर, उत्तर दिशा में सौ योजन से अधिक योजन तक जितने प्राणी हैं तू उन्हें दंड से मुक्त कर तथा दक्षिण दिशा में सौ योजन से

अधिक योजन तक जितने प्राणी हैं तू उन्हें दंड से मुक्त कर।' इस प्रकार कुछ प्राणियों के प्रति दया उपदेशित करते हैं, कुछ के प्रति दया उपदेशित नहीं करते। वे उपोसथ-दिन पर श्रावक को इस प्रकार उपदेश देते हैं – 'हे पुरुष! तू आ। सभी वस्त्रों को त्याग कर इस प्रकार कह – "न मैं कहीं, किसी का कुछ हूं, और न मेरा कहीं, कोई कुछ है।" किंतु उसके माता-पिता जानते हैं कि यह मेरा पुत्र है और पुत्र भी जानता है कि ये मेरे माता-पिता हैं। उसके पुत्र और स्त्री उसे पिता और पति के रूप में जानते हैं और वह भी जानता है कि ये मेरे पुत्र और स्त्री हैं। उसके दास-नौकर-चाकर भी जानते हैं कि यह हमारा मालिक है और वह भी जानता है कि ये मेरे दास-नौकर-चाकर हैं। इस प्रकार जिस समय सत्य उपदेश देना चाहिए उस समय झूठा उपदेश देते हैं, इसको मैं उसका झूठ बोलना कहता हूं। उस रात्रि के बीतने पर वह उन (त्यक्त) वस्तुओं को बिना किसी के दिये ही उपयोग में लाते हैं। इसको मैं उसका चोरी करना कहता हूं। इस प्रकार हे विसाखे! यह निर्ग्रंथ-उपोसथ होता है। विसाखे! इस प्रकार के उपोसथ का न महान फल होता है, न महान लाभ होता है, न तो यह महान प्रकाश वाला होता है तथा न बहुत दूर तक व्याप्त होने वाला होता है।

"हे विसाखे! आर्य-उपोसथ कैसे होता है?

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। कैसे विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक तथागत का अनुस्मरण करता है – 'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अरहंत, सम्यक-संबुद्ध, विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्व-श्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह) भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), बुद्ध, भगवान।' इस प्रकार तथागत का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद (प्रमोद) उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है जैसे विसाखे! मैला सिर उपाय से निर्मल होता है।

"विसाखे! मैले सिर को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? खल्ली होने से, मिट्टी होने से, पानी होने से तथा व्यक्ति के प्रयत्न से। हे विसाखे! इस प्रकार मैले सिर को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक तथागत का अनुस्मरण करता है – 'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अरहंत, 'सम्यक-संबुद्ध', विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्व-श्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह)

भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), 'बुद्ध', भगवान।' इस प्रकार तथागत का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है, जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। विसाखे! इसे कहते हैं कि आर्य-श्रावक ब्रह्म-उपोसथ रखता है, ब्रह्मा के साथ रहता है, 'ब्रह्मा' के बारे में सोचकर उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। इस प्रकार विसाखे! मैले-चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक धर्म का अनुस्मरण करता है – 'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है) निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।' इस प्रकार धर्म का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है, जैसे विसाखे! मैले बदन को उपाय से साफ किया जाता है।

"विसाखे! मैले बदन को उपाय से साफ कैसे किया जाता है? शंख से, चूने से, पानी से तथा व्यक्ति के प्रयत्न से। विसाखे! इस प्रकार मैला बदन क्रमशः निर्मल होता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक धर्म का अनुस्मरण करता है – 'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।' इस प्रकार धर्म का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। विसाखे! इसे कहते हैं कि आर्य-श्रावक धर्म-उपोसथ रखता है, धर्म के साथ रहता है, धर्म को लेकर उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। इस प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक संघ का अनुस्मरण करता है – सुमार्ग पर चलने वाला भगवान का श्रावक-संघ, ऋजु मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, यह जो (मार्ग-फल प्राप्त) आर्य-व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, यानी आठ पुरुष पुद्गल हैं – यही भगवान का श्रावक-संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना (अतिथि) बनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है। इस प्रकार संघ का अनुस्मरण करनेसे उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है जैसे विसाखे! मैले वस्त्र को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले वस्त्र को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? गर्म पानी होने से, खारी मिट्टी तथा गोबर होने से, पानी (साधारण) होने से तथा व्यक्ति के प्रयत्न से। विसाखे! इस प्रकार मैला वस्त्र उपाय से निर्मल होता है। विसाखे! इसी प्रकार मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है?

"यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक संघ का अनुस्मरण करता है – सुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, ऋजु मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, यह जो (मार्ग-फल प्राप्त) आर्य-व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, यानी आठ पुरुष-पुद्गल हैं – यही भगवान का श्रावक-संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना (अतिथि) बनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है। इस प्रकार संघ का अनुस्मरण करनेसे उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। विसाखे इसे कहा जाता है -- आर्य-श्रावक संघ-उपोसथ करता है, संघ के साथ रहता है, संघ के बारे में सोच कर चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। यहां, विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक अपने शीलों का अनुस्मरण करता है – 'अखंडित, छिद्र-रहित,

बिना धब्बे के, पवित्र, शुद्ध, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित, अकलंकित तथा समाधि की ओर ले जाने वाले!' शील का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। जैसे विसाखे! मैले शीशे को उपाय से साफ किया जाता है।

"विसाखे! मैले शीशे को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? तेल से, राख से, बालों के गुच्छे से और व्यक्ति के प्रयत्न से। विसाखे! इस प्रकार मैले शीशे को उपाय से साफ किया जाता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक अपने शीलों का अनुस्मरण करता है – 'अखंडित,... समाधि की ओर ले जाने वाले।' इस प्रकार शील का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रसन्न होता है... प्रहाण होता है। विसाखे! इसे कहा जाता है – आर्य श्रावक शील-उपोसथ करता है, शील के साथ रहता है, शील में श्रद्धा उत्पन्न करता है, आनंद उत्पन्न करता है, जो चित्त के क्लेशों का प्रहाण करते हैं। विसाखे! इस प्रकार मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है। विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक देवताओं का अनुस्मरण करता है –'चातुम्महाराजिक देवता हैं, तावतिंस देवता हैं, याम देवता हैं, तुषित देवता हैं, निम्मान-रति देवता हैं, परनिम्मितवसवत्ती देवता हैं, ब्रह्मकायिक देवता हैं, और इससे आगे भी देवता हैं। जिस प्रकार की श्रद्धा से समन्वागत (युक्त) वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार की श्रद्धा है; जिस प्रकार के शील से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार का शील है; जिस प्रकार के श्रुत (=ज्ञान) से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार का ज्ञान है, जिस प्रकार के त्याग से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं; मुझमें भी उसी प्रकार का त्याग है; जिस प्रकार की प्रज्ञा से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार की प्रज्ञा है।' अपनी और उन देवताओं की श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग तथा प्रज्ञा का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है, जैसे विसाखे! मलिन सोने को उपाय से साफ किया जाता है।

"विसाखे! मलिन सोने को उपाय से साफ कैसे किया जाता है? अंगीठी होने से, नमक होने से, गेरू होने से, धौंकनी होने से, संडासी होने से तथा उसके लिए व्यक्ति का प्रयास होने से। विसाखे! इस प्रकार मलिन सोने को उपाय से साफ किया जाता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल कैसे किया जाता है? यहां, विसाखे! आर्य-श्रावक देवताओं का अनुस्मरण करता है – 'चातुम्महाराजिक देवता हैं, तावतिंस देवता हैं... इससे आगे भी देवता हैं। जिस प्रकार की श्रद्धा से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार की श्रद्धा है; जिस प्रकार के शील... श्रुत... त्याग... प्रज्ञा से समन्वागत वे देवता इस लोक से मरकर वहां उत्पन्न हुए हैं, मुझमें भी उसी प्रकार की प्रज्ञा है।' इस प्रकार अपनी और उन देवताओं की श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग तथा प्रज्ञा का अनुस्मरण करने से उसका चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। विसाखे इसे कहा जाता है -- आर्य-श्रावक देवता-उपोसथ करता है, देवता के साथ रहता है, देवता में श्रद्धा उत्पन्न करता है। देवता के बारे में सोच कर चित्त प्रशांत होता है, आनंद उत्पन्न होता है और जो चित्त के मैल हैं उनका प्रहाण होता है। इसी प्रकार विसाखे! मैले चित्त को उपाय से निर्मल किया जाता है।

"विसाखे! वह आर्य-श्रावक यह विचार करता है – 'अर्हत जीवनभर प्राणी-हिंसा छोड़, प्राणी-हिंसा से विरत होकर, दंड-त्यागी, शस्त्र-त्यागी, पाप-भीरु, दयावान, सभी प्राणियों का हित और उन पर अनुकंपा करते विचरते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन प्राणी-हिंसा छोड़, प्राणी-हिंसा से विरत होकर, दंड-त्यागी, शस्त्र-त्यागी, पाप-भीरु, दयावान होकर सभी प्राणियों का हित और उन पर अनुकंपा करते हुए विहार करूं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर चोरी करना छोड़, चोरी करने से विरत रह, केवल दिया ही लेने वाले, दिये की ही आकांक्षा करने वाले, चोरी न कर, पवित्र जीवन बिताते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन चोरी करना छोड़, चोरी करने से विरत रह, केवल दिया ही लेने वाला, दिये की ही आकांक्षा करने वाला, चोरी न कर, पवित्र जीवन बिताऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर अब्रह्मचर्य छोड़, ब्रह्मचारी, अनाचार-रहित, मैथुन ग्राम्य-धर्म से विरत रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन अब्रह्मचर्य छोड़, ब्रह्मचारी, अनाचार-रहित, मैथुन ग्राम्य-धर्म से विरत रहकर बिताऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर मृषावाद छोड़, मृषावाद से विरत होकर, कभी झूठ न बोलने वाला दृढ़ (अटल), विश्वसनीय, तथा लोक को धोखा न देने वाला होकर रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन मृषावाद छोड़, मृषावाद से विरत होकर, सत्य-वादी, झूठ न बोलने वाला, स्थिर, दृढ़ (अटल) विश्वसनीय, तथा लोक को धोखा न देने वाला होकर रहूं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमादकारक वस्तुओं को छोड़, सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमादकारक वस्तुओं से विरत होकर रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमादकारक वस्तुओं से विरत होकर रहूं। इस अंश में मैं भी अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर एकाहारी, रात्रि-भोजन-त्यक्त, विकाल-भोजन से विरत होकर रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन एकाहारी, रात्रि-भोजन-त्यक्त, विकाल-भोजन से विरत होकर बिताऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरणकरने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर नाचने, गाने, बजाने, तमाशे देखने, माला-गंध-विलेपन धारण-मंडन आदि जो विभूषित करने के सामान हैं उनसे विरत रहते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन नाचने, गाने, बजाने, तमाशा देखने, माला-गंध-विलेपन धारण-मंडन आदि जो विभूषित करने के सामान हैं उनसे विरत रहकर बिताऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।

"'अर्हत जीवनभर उच्च शय्या, महा शय्या को छोड़, उच्च शय्या, महा शय्या से विरत होकर, नीचा शयनासन – चारपाई या चटाई को ही काम में लाते हैं। मैं भी आज की रात और यह दिन उच्च शय्या, महा शय्या को छोड़, उच्च शय्या, महा शय्या से विरत होकर, नीचा शयनासन – चारपाई या चटाई को ही काम में लाऊं। इस अंश में भी मैं अर्हतों का अनुकरण करने वाला होऊंगा तथा मेरा उपोसथ पूरा होगा।'

"विसाखे! इस प्रकार आर्य-उपोसथ होता है। विसाखे! इस प्रकार रखा गया आर्य-उपोसथ महान फलवाला होता है, महान लाभ वाला होता है, यह महान प्रकाश वाला होता है तथा बहुत दूर तक व्याप्तहोने वाला होता है।"

"कितनेमहान फलवाला होता है, कितनेमहान लाभ वाला होता है, कितने महान प्रकाशवाला होता है तथा कितनीदूर तक व्याप्त होने वाला होता है?"

"विसाखे! जैसे कोई इन सोलह महान सप्त-रत्न-बहुल महाजनपदों का ऐश्वर्याधिपत्य राज्य करे–जैसे अंगों का, मगधों का, काशियोंका, कोशलोंका, वज्जियों का, मल्लों का, चेदियों का, वंगों का, कुरुओंका, पंचालों का, मत्स्यों का, शौरसेनों का, अश्मकोंका, अवंतियों का, गंधारों का तथा कंबोजों का – वह अष्टांग उपोसथ के सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं होता। यह किसलिए विसाखे! दिव्य-सुख कीतुलना में मानुषी-राज्य बिचारे काकुछमूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का पचास वर्ष होता है, वह चातुम्महाराजिक देवताओं काएक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से पांच सौ वर्ष चातुम्महाराजिक देवताओं की आयु की सीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करनेवाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद चातुम्महाराजिक देवताओं कासहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का सौ वर्ष होता है, वह तावतिंस देवताओं काएक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष! उस वर्ष से हजार दिव्य वर्ष, तावतिंस देवताओं कीआयु कीसीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद तावतिंस देवताओं का सहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख कीतुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का दो सौ वर्ष होता है, वह याम-देवताओं काएक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से दो हजार दिव्य-वर्ष, याम देवताओं कीआयु कीसीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद याम-देवताओं कासहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया है कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का चार सौ वर्ष होता है, वह तुषित देवताओं का एक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से चार हजार दिव्य-वर्ष, तुषित-देवताओं की आयु की सीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद तुषित-देवताओं का सहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का आठ सौ वर्ष होता है, वह निम्मान-रति देवताओं का एक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से आठ हजार दिव्य-वर्ष, निम्मान-रति देवताओं की आयु की सीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद निम्मान-रति देवताओं का सहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।

"विसाखे! जितना समय मनुष्यों का सोलह सौ वर्ष होता है, वह परनिम्मितवसवत्ती देवताओं का एक रात-दिन होता है। उस रात से तीस रातों का महीना। उस महीने से बारह महीनों का वर्ष। उस वर्ष से सोलह हजार वर्ष परनिम्मितवसवत्ती देवताओं की आयु की सीमा। विसाखे! संभव है कि अष्टांगिक उपोसथ करने वाली स्त्री या पुरुष शरीर छूटने पर, मरने के बाद, परनिम्मितवसवत्ती देवताओं का सहवासी हो जाय। विसाखे! इसीलिए यह कहा गया कि दिव्य-सुख की तुलना में मानुषी-राज्य बिचारे का कुछ मूल्य नहीं।"

"पाणं न हञ्ञे न चादिन्नमादिये, मुसा न भासे न च मज्जपो सिया।
अब्रह्मचरिया विरमेय्य मेथुना, रत्तिं न भुञ्जेय्य विकालभोजनं॥

"मालं न धारे न च गन्धमाचरे, मञ्चे छमायं व सयेथ सन्थते।
एतञ्हि अट्ठङ्गिकमाहुपोसथं, बुद्धेन दुक्खन्तगुना पकासितं॥

"चन्दो च सुरियो च उभो सुदस्सना, ओभासयं अनुपरियन्ति यावता।
तमोनुदा ते पन अन्तलिक्खगा, नभे पभासन्ति दिसाविरोचना॥

"एतस्मिं यं विज्जति अन्तरे धनं, मुत्ता मणि वेळुरियञ्च भद्दकं।
सिङ्गी सुवण्णं अथ वापि कञ्चनं, यं जातरूपं हटकन्ति वुच्चति॥

"अट्ठङ्गुपेतस्स उपोसथस्स, कलम्पि ते नानुभवन्ति सोळसिं।
चन्दप्पभा तारगणा च सब्बे॥

"तस्मा हि नारी च नरो च सीलवा, अट्ठङ्गुपेतं उपवस्सुपोसथं।
पुञ्ञानि कत्वान सुखुद्रयानि, अनिन्दिता सग्गमुपेन्ति ठान"न्ति॥

["प्राणी-हिंसा न करे, चोरी न करे, झूठ न बोले, मद्यप न होवे। अब्रह्मचर्य, मैथुन से विरत रहे। रात्रि को विकाल-भोजन न करे। माला न पहने। सुगंधि न धारण करे। मंच पर या बिछी-भूमि पर सोये। बुद्ध ने दुःख का अंत करने वाले इस अष्टांग-उपोसथ को प्रकाशित किया है। चंद्रमा तथा सूर्य दोनों सुदर्शन हैं। वे जहां तक (संभव है, वहां तक) प्रकाश फैलाते हैं। वे अंतरिक्षगामी हैं। अंधकार के विध्वंसक हैं। वे आकाश की सभी दिशाओं को आलोकित करते हैं। और यहां इस बीच में जो कुछ भी मुक्ता, मणि तथा बिल्लौर धन, स्फटिक है, शुद्ध कंचन, स्वर्ण, जो जातरूप वा हाटक भी कहलाता है, वह तथा चंद्रमा का प्रकाश और सभी तारागण अष्टांग-उपोसथ पालन करने वाले के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं होते। इसलिए जो सदाचारी नारी और नर हैं वे अष्टांग उपोसथ का पालन कर, तथा सुख-दायक पुण्य-कर्म कर, अनिंदित रह, स्वर्ग-स्थान को प्राप्त होते हैं।"]

* * * * *

(८) ३. आनन्द वर्ग

१. छन्न सुत्त

७२. एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। तब छन्न परिव्राजक आयुष्मान आनन्द के पास पहुँचा। पहुँच कर, आयुष्मान आनन्द के साथ कुशलक्षेम की बातचीत करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए छन्न परिव्राजक ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –

"आयुष्मान आनन्द! आप भी राग के प्रहाण की बात करते हैं, द्वेष... मोह के प्रहाण की बात करते हैं। आयुष्मान! हम भी राग के प्रहाण की बात करते हैं, द्वेष... मोह के प्रहाण की बात करते हैं।

"आयुष्मान! आप राग में क्या दोष देखकर राग के प्रहाण की बात करते हैं, द्वेष में क्या दोष... मोह में क्या दोष देखकर मोह के प्रहाण की बात करते हैं?"

"आयुष्मान! जो राग से अनुरक्त है, जो राग से अभिभूत है वह अपने दुःख की भी बात सोचता है, पराये दुःख की भी बात सोचता है, दोनों के दुःख की भी बात सोचता है, वह चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है। राग

का प्रहाण होने पर न वह अपने दुःख की बात सोचता है, न पराये दुःख की बात सोचता है, न दोनों के दुःख की बात सोचता है; वह चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव नहीं करता है।

"आयुष्मान! जो राग से अनुरक्त है, जो राग से अभिभूत है वह कायिक दुष्कर्म करता है, वाचिक दुष्कर्म करता है, मानसिक दुष्कर्म करता है। राग का प्रहाण होने पर न वह कायिक दुष्कर्म करता है, न वाचिक दुष्कर्म करता है और न मानसिक दुष्कर्म करता है।

"आयुष्मान! जो राग से अनुरक्त है, जो राग से अभिभूत है वह अपना हित भी यथार्थ रूप से नहीं पहचानता है, यथार्थ रूप से परार्थ भी नहीं पहचानता है, यथार्थ रूप से उभयार्थ भी नहीं पहचानता है। राग का प्रहाण होने पर वह यथार्थ रूप से अपना हित भी पहचानता है, यथार्थ रूप से परार्थ भी पहचानता है, यथार्थ रूप से उभयार्थ भी पहचानता है।

"आयुष्मान! जो राग है वह अंधा बना देने वाला है, चक्षु-रहित कर देने वाला है, अज्ञानी बना देने वाला है, प्रज्ञा का नाश कर देने वाला है, हानि पहुँचाने वाला है, निर्वाण-मार्ग की ओर ले जाने वाला नहीं है।

"आयुष्मान! जो द्वेष से दुष्ट है जो द्वेष से अभिभूत है वह... निर्वाण-मार्ग की ओर ले जाने वाला नहीं है।

"आयुष्मान! जो मोह से मूढ़ है, मोह से अभिभूत है वह अपने दुःख की भी बात... पराये दुःख... दोनों के दुःख की भी बात सोचता है, वह चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है। मोह का प्रहाण हो जाने पर न वह अपने दुःख की बात सोचता है... न पराये दुःख... न दोनों के दुःख की बात सोचता है, वह चैतसिक दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव नहीं करता।

"आयुष्मान! जो मोह से मूढ़ है, मोह से अभिभूत है वह कायिक दुष्कर्म करता है, वाचिक दुष्कर्म करता है, मानसिक दुष्कर्म करता है। मोह का प्रहाण होने पर, न वह कायिक दुष्कर्म करता है, न वाचिक दुष्कर्म करता है और न मानसिक दुष्कर्म करता है।

"आयुष्मान। जो मोह से मूढ़ है, जो मोह से अभिभूत है वह यथार्थ रूप से अपना हित भी नहीं पहचानता है, यथार्थ रूप से परार्थ भी नहीं पहचानता है, यथार्थ रूप से उभयार्थ भी नहीं पहचानता है। मोह का प्रहाण होने पर वह यथार्थ रूप से अपना हित भी पहचानता है, यथार्थ रूप से परार्थ भी पहचानता है, यथार्थ रूप से उभयार्थ भी पहचानता है।

"आयुष्मान! जो मोह है वह अंधा बना देने वाला है, चक्षु-रहित करदेने वाला है, अज्ञानी बना देने वाला है, प्रज्ञा का नाश कर देने वाला है, हानि पहुँचाने वाला है, निर्वाण-मार्ग की ओर ले जाने वाला नहीं है।

"आयुष्मान! हम राग का यह खतरा (पालि 'आदीनव' का अर्थ है संकट, भय, बुरा परिणाम) देखकर राग के प्रहाण की बात करते हैं, द्वेष का यह खतरा देखकर द्वेष के प्रहाण की बात करते हैं, तथा मोह का यह खतरा देखकर मोह के प्रहाणकी बात करते हैं।"

"आयुष्मान! क्या इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण का पथ है, मार्ग है?"

"आयुष्मान! इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण का पथ है, मार्ग है।"

"आयुष्मान! इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण के लिए कौन-सा पथ है, कौन-सा मार्ग है?"

"यही आर्य-अष्टांगिक मार्ग जो कि है –सम्यक दृष्टि... सम्यक समाधि। आयुष्मान! इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण के लिए यह पथ है, यह मार्ग है।"

"आयुष्मान! इस राग, द्वेष तथा मोह के प्रहाण का यह श्रेष्ठ-पथ है, श्रेष्ठ-मार्ग है। आनन्द! यह अप्रमादी बने रहने के लिए पर्याप्त है।"

२. आजीवक सुत्त

७३. एक समय आयुष्मान आनन्द कोशाम्बी के घोषिताराम में विहार कर रहे थे।

उस समय आजीवक संप्रदाय का एक गृहस्थ शिष्य आयुष्मान आनन्द के पास आया। पास जाकर आयुष्मान आनन्द को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उस आजीवक गृहस्थ शिष्य ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –

"भंते आनन्द! वास्तव में किसका धर्म सु-आख्यात (भली प्रकार कहा गया) है? संसार में कौन ठीक मार्ग पर चलते हैं? संसार में कौन सुकर्मी हैं?"

"तो गृहपति! मैं तुझसे ही पूछता हूं, जैसा तुझे लगे वैसा कहना। तो हे गृहपति! तू क्या मानता है कि जो राग के प्रहाण का उपदेश देते हैं, द्वेष के प्रहाण का उपदेश देते हैं तथा मोह के प्रहाण का उपदेश देते हैं उनका धर्म भली प्रकार कहा गया है या नहीं? तुम्हारी क्या राय है?"

"भंते! जो राग के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, द्वेष के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, मोह के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, उनका धर्म भली प्रकार कहा गया है ऐसी मेरी राय है।"

"हे गृहपति! क्या मानते हो जो राग के प्रहाण में लगे हैं, जो द्वेष के प्रहाण में लगे हैं, जो मोह के प्रहाण में लगे हैं, संसार में वे ठीक मार्ग पर चल रहे हैं या नहीं? तुम्हारी क्या राय है?"

"भंते! जो राग के प्रहाण में लगे हैं, जो द्वेष के प्रहाण में लगे हैं, जो मोह के प्रहाण में लगे हैं, संसार में वे ठीक मार्ग पर चल रहे हैं ऐसी मेरी राय है।"

"हे गृहपति! क्या मानते हो जिनका राग प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है; जिनका द्वेष प्रहीण हो गया है... संभावना नहीं रही है; जिनका मोह प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, वे संसार में सुकर्मी हैं या नहीं? तुम्हारी क्या राय है?"

"भंते! जिनका राग प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है; जिनका द्वेष प्रहीण हो गया है... संभावना नहीं रही है; जिनका मोह प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, वे संसार में सुकर्मी हैं, ऐसी मेरी राय है।"

"अब तू ही यह कह रहा है –'भंते! जो राग के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, द्वेष के ...मोह के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, उनका धर्म भली प्रकार कहा गया है।' तू ही यह कह रहा है –'भंते! जो राग के प्रहाण में लगे हैं, जो द्वेष के ...जो मोह के प्रहाण में लगे हैं, संसार में वे ठीक मार्ग पर चल रहे हैं।' तू ही यह कह रहा है, 'भंते! जिनका राग प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है; जिनका द्वेष प्रहीण... जिनका मोह प्रहीण हो गया है, जड़ से जाता रहा है, कटे ताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, वे लोक में सुकर्मी हैं।'"

"भंते! आश्चर्य है। भंते! अद्भुत है। अपने मत को ऊपर भी नहीं उठाया है और दूसरे के मत को नीचे भी नहीं गिराया है। उचित क्षेत्र में धर्म-देशना मात्र हुई है। (कल्याण की) बात कह दी गयी। अपने-आप को बीच में नहीं लाया गया।

"भंते आनन्द! आप लोग राग के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, द्वेष के ...मोह के प्रहाण के लिए धर्मोपदेश देते हैं, (इसलिए) भंते! आप लोगों का धर्म 'भली प्रकार कहा गया' (सु-आख्यात) है। भंते! आनन्द! आप लोग राग के प्रहाण में प्रतिपन्न हैं, द्वेष के ... मोह के प्रहाण में प्रतिपन्न हैं, आप लोग संसार में ठीक मार्ग पर चल रहे हैं। भंते! आनन्द! आप लोगों का राग प्रहीण है, जड़ से जाता रहा है, कटेताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है; आप लोगों का द्वेष... आप लोगों का मोह प्रहीण है, जड़ से जाता रहा है, कटेताड़ के समान हो गया है, अभावप्राप्त हो गया है, भविष्य में पुनरुत्पत्ति की कोई संभावना नहीं रही है, (इसलिए) आप लोग सुकर्मी हैं।

"सुंदर, भंते! बहुत सुंदर, भंते! जैसे कोई उल्टे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, मार्ग-भूले को रास्ता बता दे अथवा अंधेरे में मशाल धारण करे, जिससे आंख वाले चीजों को देख सकें। इसी प्रकार आर्य आनन्द ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है। भंते आनन्द! मैं उन भगवान, धर्म तथा भिक्षु-संघ की शरण जाता हूं। आर्य आनन्द! आज से जीवनपर्यंत मुझे अपना शरणागत उपासक जानें।"

३. महानाम शाक्य सुत्त

७४. ऐसा मैंने सुना – एक समय भगवान शाक्य जनपद में, कपिलवस्तु के निग्रोधाराम में विहार करते थे। उस समय भगवान रोग से मुक्त हुए थे, रोग से मुक्त हुए थोड़ा ही समय हुआ था। तब महानाम शाक्य भगवान के पास पहुँचा। पास जाकर भगवान को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए महानाम शाक्य ने भगवान को यह कहा –

"भंते! मैं जानता हूं कि भगवान ने दीर्घकाल से यह उपदेश दिया है कि समाहित-चित्त (वाले) को ही ज्ञान होता है, असमाहित-चित्त (वाले) को नहीं। भंते, क्या समाधि पहले होती है और तब ज्ञान होता है, अथवा ज्ञान पहले होता है और तब समाधि होती है?"

उस समय आयुष्मान आनन्द के मन में यह हुआ – भगवान रोग से मुक्त हुए हैं, भगवान को रोग से मुक्त हुए थोड़ा ही समय हुआ है। यह महानाम शाक्य भगवान से अति गंभीर प्रश्न पूछ रहा है। क्यों न मैं महानाम शाक्य को एक ओर ले जाकर धर्मोपदेश दूं? तब आयुष्मान आनन्द महानाम शाक्य को बांह से पकड़कर एक ओर ले गये और महानाम शाक्य से यह बोले –

"महानाम! भगवान ने शैक्ष-शील का भी उपदेश किया है, अशैक्ष-शील का भी उपदेश किया है, शैक्ष-समाधि का भी उपदेश किया है, अशैक्ष-समाधि का भी उपदेश किया है, शैक्ष-प्रज्ञा का भी उपदेश किया है, अशैक्ष-प्रज्ञा का भी उपदेश किया है।

"महानाम! शैक्ष-शील क्या है?

"यहां, हे महानाम! भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्ष... शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करने वाला... महानाम! यह शैक्ष-शील कहलाता है।

"और, महानाम! शैक्ष-समाधि क्या है?

"यहां, महानाम! भिक्षु कामभोगों से पृथक हो... चतुर्थ ध्यान प्राप्त करता है। महानाम! यह शैक्ष-समाधि कहलाती है।

"महानाम! शैक्ष-प्रज्ञा क्या है?

"यहां, महानाम! भिक्षु 'यह दुःख है', इसे यथाभूत जानता है, 'यह दुःख-समुदय है', इसे यथाभूत जानता है, 'यह दुःख-निरोध है', इसे यथाभूत जानता है, 'यह दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे यथाभूत जानता है। महानाम! यह शैक्ष-प्रज्ञा है।

"अब महानाम! वह आर्य-श्रावक शील-संपन्न, समाधि-संपन्न तथा प्रज्ञा-संपन्न होकर आस्रवों का क्षय कर चुकने के अनंतर अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में, स्वयं जानकर, साक्षात कर, सम्यक रूप से प्राप्त कर विहार करता है। इस प्रकार महानाम! भगवान ने शैक्ष-शील का भी उपदेश दिया है, अशैक्ष-शील का भी उपदेश दिया है; शैक्ष-समाधि का भी उपदेश दिया है, अशैक्ष-समाधि का भी उपदेश दिया है, शैक्ष-प्रज्ञा का भी उपदेश दिया है, अशैक्ष-प्रज्ञा का भी उपदेश दिया है।"

४. निर्ग्रंथ सुत्त

७५. एक समय आयुष्मान आनन्द वैशाली के महावन में, कूटागारशाला में विहार करते थे। उस समय अभय लिच्छवी तथा पंडितकुमारक लिच्छवी आयुष्मान आनन्द के पास पहुँचे। पहुँच कर आयुष्मान आनन्द को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे लिच्छवी अभय ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –

"भंते! नाटपुत्र निर्ग्रंथ का कहना है कि वे सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, उन्हें असीम ज्ञान-दर्शन प्राप्त है। उनका कहना है – मुझे चलते समय, खड़े रहते, सोते, जागते, सतत, लगातार ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है। वे प्रज्ञापन करते

हैं कि तपस्या से पुराने कर्मों का नाश हो जाता है और नये कर्मों के न करने के कारण दूसरे भव को जोड़ने वाला सेतु टूट जाता है। इस प्रकार कर्म के क्षय होने से दुःख का क्षय, दुःख के क्षय होने से वेदना का क्षय, वेदना के क्षय होने से सारे दुःख की निर्जरा होती है। इस प्रकार इस सांदृष्टिक निर्जरा-विशुद्धि से (दुःख का) समतिक्रमण होता है। भंते! भगवान इस विषय में क्या कहते हैं?"

"अभय! उन भगवान, ज्ञानी, दर्शी, अर्हत, सम्यक-संबुद्ध द्वारा ये तीन निर्जरा-विशुद्धियां सम्यक प्रकार कही गयी हैं, प्राणियों की विशुद्धि के लिए, शोक तथा क्रंदन के समतिक्रमण के लिए, दुःख-दौर्मनस्य के नाश के लिए, ज्ञान की प्राप्ति के लिए और निर्वाण को साक्षात करने के लिए। कौन-सी तीन?

"यहां, हे अभय! भिक्षु शीलवान होता है, प्रातिमोक्ष... शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करने वाला। वह नया कर्म नहीं करता है और पुराने कर्मों को छू-छू कर समाप्त कर देता है।[१] (उदीर्ण कर्मसंस्कारों को संवेदनाओं के स्तर पर तटस्थभाव से देख-देखकर निर्जरा कर देता है।) यह सांदृष्टिक निर्जरा है, अकालिक (देश और काल की सीमाओं से परे) है, इसके बारे में कह सकते हैं कि 'आओ और स्वयं परीक्षा कर लो, यह निर्वाण की ओर ले जाने वाली है, इसे प्रत्येक विज्ञ व्यक्ति साक्षात कर सकता है'।

"हे अभय! अब वह शील-संपन्न भिक्षु कामभोगों से दूर हो... चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है! वह नया कर्म नहीं करता है और पुराने कर्मों को छू-छू कर समाप्त कर देता है। यह सांदृष्टिक निर्जरा है, तत्काल फलदायक है। 'आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है'।

"हे अभय! अब वह समाधिसंपन्न भिक्षु आस्रवों का क्षय कर अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं सम्यक रूप से जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। वह नया कर्म नहीं करता है और पुराने कर्मों को छू-छू कर समाप्त कर देता है। यह सांदृष्टिक निर्जरा है, अकालिक

---

१ पालि में **पुराणञ्च कम्मं फुस्स फुस्स ब्यन्तीकरोति** है। इसका अर्थ तब तक ठीक से नहीं समझा जा सकता जब तक विपश्यना का अनुभव न हो। पुराने कर्मों के फल को साधक साधारणतया संवेदनाओं को तटस्थभाव से देखकर समाप्त करते हैं। राग और द्वेष के संस्कार जो भीतर चट्टान की परतों की तरह हैं वे विपश्यना साधना द्वारा ऊपर आते हैं। यदि उन्हें तटस्थ भाव से देखें तो वे तो समाप्त होते ही हैं और नये संस्कार इसलिए नहीं बन पाते क्योंकि उनकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। राग और द्वेष की वृद्धि प्रतिक्रिया से होती है। यदि और जलावन डालेंगे तो आग बढ़ेगी ही, पर यदि जलावन डालना छोड़ दें तो आग जल कर बुझ जायगी।

(देश और कालकी सीमाओं से परे) है, इसके बारे में कह सकते हैं कि 'आओ और स्वयं परीक्षा कर लो, यह निर्वाण की ओर ले जाने वाली है, इसे प्रत्येक विज्ञ व्यक्ति साक्षात कर सकता है'।

"अभय! उन भगवान, ज्ञानी, दर्शी, अर्हत, सम्यक-संबुद्ध द्वारा ये तीन निर्जरा-विशुद्धियां सम्यक प्रकार कही गई हैं, प्राणियों की विशुद्धि के लिए, शोक तथा क्रंदन के समतिक्रमण के लिए, दुःख-दौर्मनस्य के नाश के लिए, ज्ञान की प्राप्ति के लिए और निर्वाण को साक्षात करने के लिए।"

ऐसे कहे जाने पर पंडितकुमारक लिच्छवी ने अभय लिच्छवी को यह कहा –

"सौम्य अभय! क्या तू आयुष्मान आनन्द के सुभाषित को सुभाषित कह कर अनुमोदन नहीं करता?"

"सौम्य! मैं आयुष्मान आनन्द के सुभाषित को सुभाषित की तरह अनुमोदन कैसे नहीं करूंगा? जो आयुष्मान आनन्द के सुभाषित को सुभाषित की तरह अनुमोदन न करे, उसका सिर टुकड़े-टुकड़े हो सकता है।"

५. परामर्श सुत्त

७६. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द को भगवान ने यह कहा –

"आनन्द! जिसे अनुकंपा करने योग्य समझो और जो तुम्हें सुनने योग्य मानें – चाहे वे मित्र हों, चाहे सुहृद हों, चाहे रिश्तेदार हों, चाहे रक्त-संबंधी (परिवार) हों, उन्हें आनन्द! तीन बातों की सलाह देनी चाहिए, तीन बातों में स्थापित करना चाहिए, प्रतिष्ठित करना चाहिए। किन तीन बातों में?

"बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धा की सलाह देनी चाहिए... प्रतिष्ठित करना चाहिए – 'ऐसे ही तो हैं वे भगवान! अरहंत, सम्यक-संबुद्ध, विद्या तथा सदाचरण से संपन्न, उत्तम गति प्राप्त, समस्त लोकों के ज्ञाता, सर्व-श्रेष्ठ, (पथ-भ्रष्ट घोड़ों की तरह) भटके लोगों को सही मार्ग पर ले आने वाले सारथी, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता (आचार्य), बुद्ध, भगवान।' धर्म के प्रति अचल श्रद्धा की सलाह देनी चाहिए... प्रतिष्ठित करना चाहिए – 'भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म सांदृष्टिक है, काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।' संघ

के प्रति अचल श्रद्धा की सलाह देनी चाहिए – 'सुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, ऋजुमार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, न्याय (सत्य) मार्ग पर चलने वाला है भगवान का श्रावक-संघ, यह जो (मार्ग-फलप्राप्त) आर्य-व्यक्तियों के चार जोड़े हैं, यानी आठ पुरुष पुद्गल हैं – यही भगवान का श्रावक-संघ है, (यही) आवाहन करने योग्य है, पाहुना (अतिथि) बनाने योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है।'

"आनन्द! पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु तथा वायु-धातु का 'अन्यथात्व' (परिवत्तितिरूप) हो सकता है, किंतु बुद्ध में अचल श्रद्धा रखने वाले आर्य-श्रावक का नहीं। इस विषय में 'अन्यथात्व' का अभिप्राय यह है, आनन्द! बुद्ध में अचल श्रद्धा रखने वाला आर्य-श्रावक नरक में पैदा होगा, पशु-योनि में पैदा होगा या प्रेत-योनि में पैदा होगा –इसकी संभावना नहीं है।

"आनन्द! पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु तथा वायु-धातु का 'अन्यथात्व' हो सकता है, किंतु धर्म में... संघ में अचल श्रद्धा रखने वाले आर्य-श्रावक का नहीं। इस विषय में 'अन्यथात्व' का अभिप्राय यह है, आनन्द! संघ में अचल श्रद्धा रखने वाला आर्य-श्रावक नरक में पैदा होगा, पशु-योनि में पैदा होगा या प्रेत-योनि में पैदा होगा –इसकी संभावना नहीं है।

"आनन्द! जिसे अनुकंपा करने योग्य समझो और जो तुम्हें सुनने योग्य मानें –चाहे वे मित्र हों, चाहे सुहृद हों, चाहे रिश्तेदार हों, चाहे रक्त-संबंधी हों –उन्हें आनन्द! इन तीन बातों की सलाह देनी चाहिए, उनमें स्थापित करना चाहिए, प्रतिष्ठित करना चाहिए।"

६. भव सुत्त (प्रथम)

७७. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास पहुँचे। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! 'भव', 'भव' कहा जाता है। क्या होने से भव होता है?"

"आनन्द! यदि काम-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या काम-भव दिखाई देगा?"

"भंते! नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र (खेत) है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों का हीन (काम) धातु

में विज्ञान स्थापित होता है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।

"आनन्द! यदि रूप-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या रूप-भव दिखाई देगा?"

"भंते! नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों का मध्यम (रूप) धातु में विज्ञान स्थापित होता है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।

"आनन्द! यदि अरूप-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या अरूप-भव दिखाई देगा?"

"भंते। नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों का श्रेष्ठ (अरूप) धातु में विज्ञान स्थापित होता है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।"

७. भव सुत्त (द्वितीय)

७८. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास पहुँचे। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! 'भव', 'भव' कहा जाता है। क्या होने से भव होता है?"

"आनन्द! यदि काम-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या काम-भव दिखाई देगा?"

"भंते! नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों की हीन (काम) धातु में चेतना स्थापित होती है, कामना (तृष्णा) स्थापित होती है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।

"आनन्द! यदि रूप-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या रूप-भव दिखाई देगा?"

"भंते! नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों की मध्यम (रूप) धातु में चेतना स्थापित होती है, कामना तृष्णा स्थापित होती है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।

"आनन्द! यदि अरूप-धातु (के कर्म का) विपाक न हो तो क्या अरूप-धातु दिखाई देगा?"

"भंते। नहीं।"

"इसलिए आनन्द! कर्म क्षेत्र है, विज्ञान बीज है, तृष्णा जल है, अविद्या-नीवरण वाले तथा तृष्णा-संयोजन वाले प्राणियों की श्रेष्ठ (अरूप) धातु में चेतना स्थापित होती है, कामना (तृष्णा) स्थापित होती है। इस प्रकार भविष्य में पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार आनन्द! भव होता है।"

८. शीलव्रत सुत्त

७९. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास पहुँचे। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द को भगवान ने इस प्रकार कहा –

"आनन्द! क्या सभी प्रकार के शील-व्रत, सभी प्रकार की जीवन शैली, सभी प्रकार के ब्रह्मचर्य, सभी प्रकार के उपस्थान-सार (सेवा) सफल होते हैं?"

"भंते! सर्वांश में यह ऐसा नहीं है।"

"तो आनन्द! विभक्त करके कहो।"

"भंते! जिस शील-व्रत से, जिस जीवन शैली से, जिस ब्रह्मचर्य के पालन करने से, जिस उपस्थान-सार (सेवा) से अकुशल-धर्म बढ़ते हैं तथा कुशल-धर्म प्रहीण होते हैं, वह शील-व्रत, वह जीवन शैली, वह ब्रह्मचर्य, वह उपस्थान-सार निष्फल हैं। जिस शील-व्रत से, जिस जीवन शैली से जिस ब्रह्मचर्य से, जिस उपस्थान-सार से अकुशल-धर्म प्रहीण होते हैं तथा कुशल-धर्म बढ़ते हैं, वह शील-व्रत, वह जीवन शैली, वह ब्रह्मचर्य, वह उपस्थान-सार सफल होते हैं।

आयुष्मान आनन्द ने यह कहा। शास्ता संतुष्ट हुए।

अब आयुष्मान आनन्द ने यह जान कर कि शास्ता मेरे उत्तर से संतुष्ट हैं, भगवान को अभिवादन किया और प्रदक्षिणा कर चले गये।

तब भगवान ने आयुष्मान आनन्द के चले जाने के थोड़ी देर बाद भिक्षुओं को बुलाया –"भिक्षुओ! आनन्द शैक्ष है, तो भी प्रज्ञा में इसकी बराबरी करने वाला सुलभ नहीं है।"

९. सुगंधि सुत्त

८०. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! ये तीन प्रकार की सुगंधियां हैं जिनकी सुगंध वायु के अनुकूल ही जाती है, वायु के प्रतिकूल नहीं। कौन-से तीन प्रकार की? मूल-सुगंध, सार-सुगंध तथा पुष्प-सुगंध। भंते! ये तीन प्रकार की सुगंधियां हैं जिनकी सुगंध वायु के अनुकूल ही जाती है, वायु के प्रतिकूल नहीं। भंते! क्या कोई ऐसी सुगंधि है जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती हो, प्रतिकूल भी जाती हो, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती हो?"

"आनन्द! ऐसी सुगंधि है, जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती है, प्रतिकूल भी जाती है, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती है।"

"भंते! वह कौन-सी सुगंधि है जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती है, प्रतिकूल भी जाती है, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती है?"

"यहां, आनन्द! जिस गांव या निगम में स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण गये होते हैं, धर्म की शरण गये होते हैं, संघ की शरण गये होते हैं, प्राणी-हिंसा से विरत होते हैं, चोरी से विरत होते हैं, कामभोगसंबंधी मिथ्याचार से विरत होते हैं, झूठ बोलने से विरत होते हैं, सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमाद के कारणों से विरत होते हैं, कल्याणधर्मी शीलवान होते हैं, मात्सर्य रूपी मल से रहित चित्त से घर में रहते हैं – उदारता से दान देने वाला, शुद्ध मन से, उत्सर्गरत (त्यागकर प्रसन्न होने वाला) होकर, दान देने वाला, जिसके पास याचना की जा सकती है तथा जो धन का उदारता पूर्वक संविभाग करने वाला है।

"उस गांव के श्रमण-ब्राह्मण चारों दिशाओं में गुणानुवाद करते हैं – अमुक गांव में या अमुक निगम में स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण गये होते हैं, धर्म की शरण गये होते हैं, संघ की शरण गये होते हैं, प्राणी-हिंसा से विरत होते हैं, चोरी से विरत होते हैं, कामभोगसंबंधी मिथ्याचार से विरत होते हैं, झूठ बोलने से विरत होते हैं, सुरा-मेरय-मद्य आदि प्रमाद के कारणों से विरत होते हैं, कल्याणधर्मी, शीलवान होते हैं, मात्सर्य रूपी मल से रहित चित्त से घर में रहते हैं – उदारता से दान देने वाले, शुद्ध मन से, उत्सर्गरत (त्यागकर प्रसन्न होने वाले), जिसके पास याचना की जा सकती है तथा जो दान का संविभाग करने वाले हैं; देवता भी उस गांव या निगम का गुणानुवाद करते हैं – अमुक

गांव या निगम में स्त्री या पुरुष बुद्ध की शरण गये होते हैं... संविभाग करने वाले हैं। आनन्द! यह ऐसी सुगंधि है, जिसकी सुगंध वायु के अनुकूल भी जाती है, प्रतिकूल भी जाती है, अनुकूल-प्रतिकूल भी जाती है।"

"न पुप्फगन्धो पटिवातमेति, न चन्दनं तगरमल्लिका वा।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवायती"ति॥

["फूल की सुगंध वायु के विरुद्ध नहीं जाती, न चंदन की, न तगर की और न मल्लिका की। सत्पुरुषों की सुगंध वायु के विरुद्ध भी जाती है। सत्पुरुष की सुगंध सभी दिशाओं में जाती है।"]

१०. सहस्रचूळ लोक धातु सुत्त

८१. एक समय आयुष्मान आनन्द भगवान के पास गये। पहुँचकर भगवान को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! भगवान के मुँह से सुना है, भगवान के मुँह से ग्रहण किया है कि 'हे आनन्द! सिखी (बुद्ध) का अभिभू नाम का श्रावक ब्रह्मलोक में स्थित होकर सहस्री-लोक धातु में अपनी आवाज पहुँचा सकता है (अर्थात, वहां स्थित हो वह जो बोलता है वह सहस्र-लोक धातु में सुनाई देता है।) भंते! भगवान अर्हत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं। भगवान की आवाज कहां तक जा सकती है?"

"आनन्द! वह श्रावक है, और तथागतों का बल तो अपरिमेय है।"

दूसरी बार भी आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! भगवान के मुँह से सुना है, भगवान के मुँह से ग्रहण किया है कि 'हे आनन्द! सिखी (बुद्ध) का अभिभू नाम का श्रावक ब्रह्मलोक में स्थित होकर सहस्री-लोक धातु में अपनी आवाज पहुँचा सकता है। भंते! भगवान अर्हत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं। भगवान की आवाज कहां तक जा सकती है?

"आनन्द! वह श्रावक है और तथागतों का बल तो अपरिमेय है।"

तीसरी बार भी आयुष्मान आनन्द ने भगवान को यह कहा –

"भंते! भगवान के मुँह से सुना है, भगवान के मुँह से ग्रहण किया है कि 'हे आनन्द! सिखी (बुद्ध) का अभिभू नाम का श्रावक ब्रह्मलोक में स्थित होकर सहस्री-लोक धातु में अपनी आवाज पहुँचा सकता है। भंते! भगवान अर्हत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं। भगवान की आवाज कहां तक जा सकती है?"

"आनन्द! सुना है तूने कि एक सहस्रीचूल लोक धातु है?"

"भगवान! इसी का समय है, सुगत! इसी का समय है। आप कहें।आप से सुनकर भिक्षु ग्रहण करेंगे।"

"तो आनन्द! सुन। अच्छी तरह से मन में धारण कर। कहता हूं।"

"भंते! अच्छा" कह आयुष्मान आनन्द ने भगवान को प्रत्युत्तर दिया। भगवान ने यह कहा –

"आनन्द! जहां तक चंद्रमा और सूर्य का प्रकाश फैला है, वहां तक सहस्रधा लोक हैं। उस प्रकार के सहस्र चंद्रमा होने से, सहस्र सूर्य होने से, सहस्र सुमेरु पर्वतराज होने से, सहस्र जंबुद्वीप होने से, सहस्र अपरगोयान होने से, सहस्र उत्तरकुरु होने से, सहस्र पूर्व-विदेह होने से, चार हजार महासमुद्र होने से, चार हजार महाराजागण होने से, सहस्र चातुम्महाराजिक होने से, सहस्र तावतिंस होने से, सहस्र याम होने से, सहस्र तुसित होने से, सहस्र निम्मान-रति होने से, सहस्र परनिम्मितवसवत्ती होने से, सहस्र ब्रह्मलोक होने से, आनन्द! यह लोक 'सहस्री चूल लोकधातु' कहलाता है। आनन्द! जितना बड़ा क्षेत्र सहस्री चूल लोकधातु का है, वैसे हजार लोकों का एक लोक 'द्विसहस्री मध्यम लोकधातु' कहलाता है। आनन्द! जितना बड़ा क्षेत्र द्विसहस्री मध्यम लोकधातु का है, वैसे हजार लोकों का एक लोक 'त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु' कहलाता है। आनन्द! यदि तथागत चाहें तो त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु में अपनी आवाज सुना सकते हैं अथवा और भी जहां तक चाहें।"

"भंते! भगवान त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु को अथवा जहां तक आकांक्षा करें – उस सारे प्रदेशतक अपनी आवाज कैसे सुनायेंगे?

"यहां, आनन्द! तथागत त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु को अपने प्रकाश से व्याप्त करते हैं और जब वे प्राणी उस आलोक को पहचान लें तब तथागत घोषणा कर सकते हैं, आवाज सुना सकते हैं। इस प्रकार आनन्द! तथागत आकांक्षा करें तो त्रिसहस्री-महासहस्री लोकधातु तक अपनी आवाज सुना सकते हैं अथवा और भी जहां तक आकांक्षा करें।"

ऐसे कहे जाने पर आयुष्मान आनंद ने आयुष्मान उदायी को कहा – "वास्तव में हम लोगों के लिए यह लाभ है, सुलाभ है यह कि हमारे शास्ता इस प्रकार ऋद्धिमान एवं महानुभाव हैं!" ऐसे कहे जाने पर आयुष्मान उदायी ने आयुष्मान आनन्द को यह कहा –"आनन्द! तुझे इससे क्या लाभ यदि शास्ता इस प्रकार ऋद्धिमान हों अथवा ऐसे महानुभावी हों?"

ऐसा कहने पर भगवान ने आयुष्मान उदायी को यह कहा –"उदायि! ऐसा मत कहो।उदायि! ऐसा मत कहो।उदायि! यदि आनन्द बिना वीतराग हुए शरीर छोड़े तो वह इसी चित्त की प्रसन्नता के कारण देव-लोक में सात बार

देव-राज्य करे अथवा इसी जंबुद्वीप में सात बार महाराजा बने। लेकिन उदायि! आनन्द इसी जीवन में परिनिर्वाण को प्राप्त होगा।"

* * * * *

(९) ४. श्रमण वर्ग

१. श्रमण सुत्त

८२. "भिक्षुओ, ये तीन श्रमण के श्रमण-कर्तव्य हैं। कौन-से तीन? अधि (श्रेष्ठतर)-शील का पालन करना, अधि (श्रेष्ठतर)-चित्त की शिक्षा ग्रहण करना तथा अधि (श्रेष्ठतर)-प्रज्ञा की शिक्षा ग्रहण करना। भिक्षुओ, ये तीन श्रमण के श्रमण-कर्तव्य हैं। इसलिए भिक्षुओ, ठीक ऐसा ही सीखना चाहिए – श्रेष्ठतर-शील पालन के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा। भिक्षुओ, ठीक इसी प्रकार तुम्हें सीखना चाहिए।

२. गर्दभ सुत्त

८३. "जैसे भिक्षुओ, कोई गधा बैलों के समूह के पीछे-पीछे हो ले –'मैं भी दान्त बैल ही हूं। मैं भी दान्त बैल ही हूं।' उसका न वैसा रंग होता है जैसा बैलों का, न वैसी आवाज़ होती है जैसी बैलों की, न वैसे पांव होते हैं जैसे बैलों के। वह बैलों के पीछे-पीछे लगा रहता है –'मैं भी दान्त बैल ही हूं, मैं भी दान्त बैल ही हूं।'

"इसी प्रकार भिक्षुओ, यहां कोई-कोई भिक्षु भिक्षु-संघ के पीछे-पीछे चलता रहता है –'मैं भी भिक्षु हूं, मैं भी भिक्षु हूं।' उसका न श्रेष्ठतर-शील पालन के लिए वैसा प्रयास होता है जैसा अन्य भिक्षुओं का, न श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा के लिए वैसा प्रयास होता है जैसा अन्य भिक्षुओं का, न श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा के लिए वैसा प्रयास होता है जैसा अन्य भिक्षुओं का। वह केवल भिक्षु-संघ के पीछे-पीछे चलता रहता है –'मैं भी भिक्षु हूं, मैं भी भिक्षु हूं।'

"इसलिए भिक्षुओ, ठीक ऐसा ही सीखना चाहिए –'श्रेष्ठतर-शील पालन के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा।' भिक्षुओ, ठीक इसी प्रकार तुम्हें सीखना चाहिए।"

३. क्षेत्र सुत्त

८४. "भिक्षुओ, कृषक-गृहस्थ के लिए ये तीन पूर्व-कृत्य हैं। कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, कृषक-गृहपति सावधानी से खेत को अच्छी तरह जोतकर मिट्टी ठीक करता है, सावधानी से खेत को अच्छी तरह जोतकर मिट्टी ठीक करके समय पर बीज बोता है, समय पर बीज बोकर पानी देता भी है, बंद भी करता है। भिक्षुओ, कृषक-गृहस्थ के लिए ये तीन पूर्व-कृत्य हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओं के ये तीन भिक्षु-पूर्व-कृत्य हैं। कौन-से तीन?

"श्रेष्ठतर-शील का पालन करना चाहिए, श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए, श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा की भावना करनी चाहिए। भिक्षुओ, ये तीन भिक्षु के पूर्व-कृत्य हैं। इसलिए भिक्षुओ, ठीक ऐसा ही सीखना चाहिए – श्रेष्ठतर-शील पालन के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-चित्त-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा, श्रेष्ठतर-प्रज्ञा-शिक्षा के लिए हमारा तीव्र प्रयास होगा। भिक्षुओ, ठीक इसी प्रकार तुम्हें सीखना चाहिए।"

४. वज्जिपुत्र सुत्त

८५. एक समय भगवान वैशाली के महावन में, कूटागारशाला में विहार करते थे। उस समय एक वज्जिपुत्र भिक्षु भगवान के पास पहुँचा... एक ओर बैठे उस वज्जिपुत्र भिक्षु ने भगवान को यह कहा –

"भंते! यह डेढ़ सौ से अधिक शिक्षा-पद प्रत्येक आधे-महीने पर पाठ किये जाते हैं। ये अधिक हैं। भंते! मैं इतने शिक्षा-पद नहीं सीख सकता।"

"भिक्षु! क्या तू तीन शिक्षा-पदों का पालन कर सकेगा – अधिशील संबंधी शिक्षा-पद, अधिचित्त संबंधी शिक्षा-पद, अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा-पद?"

"भंते! मैं इन तीन शिक्षा-पदों को –अधिशील संबंधी शिक्षा-पद को, अधिचित्त संबंधी शिक्षा-पद को और अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा-पद को सीख सकूंगा।"

"इसलिए भिक्षु तू ठीक ऐसे ही तीन शिक्षा-पदों को सीख – अधिशील संबंधी शिक्षा-पद को, अधिचित्त संबंधी शिक्षा-पद को तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा पद को। हे भिक्षु! क्योंकि तू अधिशील संबंधी शिक्षा-पद का भी पालन करेगा, अधिचित्त संबंधी शिक्षा-पद का भी पालन करेगा, तथा अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा-पद का भी पालन करेगा, इसलिए तेरे राग का भी प्रहाण हो

जायगा, द्वेष का भी प्रहाण हो जायगा, मोह का भी प्रहाण हो जायगा। इस प्रकार राग, द्वेष तथा मोह का प्रहाण हो जाने के कारण जो अकुशल-धर्म हैं उसे नहीं करोगे, पाप का सेवन नहीं करोगे।"

तब उस भिक्षु ने आगे चलकर अधिशील संबंधी शिक्षा का भी अभ्यास किया, अधिचित्त संबंधी शिक्षा का भी अभ्यास किया, अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा का भी अभ्यास किया। उसके अधिशील, अधिचित्त तथा अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षाओं के अभ्यास करने से उसके राग, द्वेष तथा मोह का प्रहाण हो गया। राग, द्वेष तथा मोह का प्रहाण हो जाने के कारण वह अकुशल-धर्म से बचा रहा तथा उसने पाप-कर्म नहीं किया।

५. शैक्ष सुत्त

८६. एक समय एक भिक्षु भगवान के पास गया। ...एक ओर बैठा हुआ वह भिक्षु भगवान से यह बोला –

"भंते! 'शैक्ष' 'शैक्ष' कहा जाता है। क्या होने से 'शैक्ष' होता है?

"भिक्षु, सीखता (ग्रहण करता) है, इसलिए 'शैक्ष' कहलाता है।

"क्या सीखता है?

"अधिशील संबंधी शिक्षा ग्रहण करता है, अधिचित्त संबंधी शिक्षा ग्रहण करता है तथा अधिप्रज्ञा संबंधी शिक्षा ग्रहण करता है। इसीलिए वह भिक्षु 'शैक्ष' कहलाता है।"

"सेखस्स सिक्खमानस्स, उजुमग्गानुसारिनो।
खयस्मिं पठमं ञाणं, ततो अञ्ञा अनन्तरा॥

"ततो अञ्ञाविमुत्तस्स, ञाणं वे होति तादिनो।
अकुप्पा मे विमुत्तीति, भवसंयोजनक्खये"ति॥

["जो शिक्षार्थी है, जो शैक्ष है, जो ऋजु मार्ग पर चलने वाला है, उसे पहले क्षय के विषय में ज्ञान होता है, उसके बाद प्रज्ञा की प्राप्ति होती है, तब उस प्रज्ञाविमुक्त को निश्चित रूप से यह ज्ञान होता है कि मेरे भव-संयोजनों का क्षय हो गया और अब मुझे अचल-विमुक्ति प्राप्त हो गयी है।"]

६. शिक्षा सुत्त (प्रथम)

८७. "भिक्षुओ, यह जो डेढ़ सौ 'अधिक' शिक्षा-पद हैं, यह हर पखवारे पाठ किये जाते हैं, जिन्हें स्व-हित चाहने वाले कुलपुत्र सीखते हैं। भिक्षुओ, ये सभी तीन शिक्षाओं के अंतर्गत आ जाते हैं। कौन-सी तीन?

“अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा। भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं जिनके अंतर्गत ये सभी आ जाते हैं।

“यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों को परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी यथाबल पालन करने वाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। तीन संयोजनों के परिक्षय हो जाने पर स्रोतापन्न होता है, चारों अपाय योनियों में जाने से मुक्त, निश्चित संबोधि-परायण।

“यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों को परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी यथाबल पालन करने वाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। तीन संयोजनों के परिक्षय हो जाने पर राग, द्वेष तथा मोह के क्षीण (कम) हो जाने पर वह सकृदागामी होता है, एक ही बार और इस लोक में आकर दुःख का अंत करता है।

“यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों को परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि को परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला तथा प्रज्ञा का भी यथाबल पालन करने वाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह पांच ओरंभागिय संयोजनों का परिक्षय कर सहज रूप से उत्पन्न होने वाला होता है, वहीं से परिनिर्वाण को प्राप्त होने वाला, वह उस लोक से लौटने वाला नहीं होता।

“यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों को परिपूर्ण करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी यथासंभव पालन करने वाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त भी होता है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ

जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह आस्रवों का क्षय करके, अनास्रव-चित्त की विमुक्ति को, प्रज्ञा की विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है।

"भिक्षुओ, अपूर्ण रूप से पालन करने वाला (सीमित क्षेत्र में काम करने वाले – स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी) अपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, संपूर्ण रूप से पालन करने वाला (परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला अर्हत) संपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, लेकिन किसी भी रूप में शिक्षा-पदों का पालन वंध्य (निष्फल) नहीं ही होता, यह मैं कहता हूं।"

७. शिक्षा सुत्त (द्वितीय)

८८. "यह जो डेढ़ सौ 'अधिक' शिक्षा-पद हैं, यह हर पखवारे पाठ किये जाते हैं, जिन्हें स्व-हित चाहने वाले कुलपुत्र सीखते हैं। भिक्षुओ, ये सभी तीन शिक्षाओं के अंतर्गत आ जाते हैं। कौन-सी तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा। भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं जिनके अंतर्गत ये सभी आ जाते हैं।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों का परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी यथाबल पालन करने वाला होता है। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं, उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह तीन संयोजनों का क्षय करके, अधिक-से-अधिक सात बार जन्म ग्रहण करने वाला होता है, सात जन्म तक देव-योनि वा मनुष्य-योनि में जन्म ग्रहण करके दुःख का नाश करता है। वह तीन संयोजनों का क्षय करके 'कोलंकोल' होता है, अर्थात दो या तीन जन्म ग्रहण करके दुःख का नाश करता है। वह तीन संयोजनों का क्षय करके 'एकबीजी' होता है, अर्थात एक ही बार मनुष्य-देह धारण कर दुःख का नाश करता है। तीन संयोजनों के क्षय हो जाने पर, राग, द्वेष तथा मोह के क्षीण हो जाने पर वह सकृदागामी होता है, एक ही बार और इस लोक में आकर दुःख का क्षय करता है।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों का परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि को भी परिपूर्ण करने वाला तथा प्रज्ञा का भी यथाबल...। वह जो

छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके ऊर्ध्वगामी होता है, उच्च लोकों में जाने वाला, अकनिष्ठगामी। वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके ससंस्कार-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है। वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके असंस्कार-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है, वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके उपहत्य-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है, वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके अन्तरा-परिनिर्वाण-प्राप्तहोता है।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों का परिपूर्ण रूप से पालन करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी परिपूर्णता से...। वह जो छोटे-मोटे दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ-जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं, उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह आस्रवों का क्षय करके, अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा की विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहारकरता है।

"भिक्षुओ, अपूर्ण रूप से पालन करने वाला अपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, संपूर्ण रूप से पालन करने वाला संपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, लेकिन किसी भी रूप में शिक्षा-पदों का पालन वंध्य नहीं ही होता, यह मैं कहता हूं।"

८. शिक्षा सुत्त (तृतीय)

८९. "यह जो डेढ़ सौ 'अधिक' शिक्षा-पद हैं, यह हर पखवारे पाठ किये जाते हैं, जिन्हें स्व-हित चाहने वाले कुलपुत्र सीखते हैं। भिक्षुओ, ये सभी तीन शिक्षाओं के अंतर्गत आ जाते हैं। कौन-सी तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा। भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं जिनके अंतर्गत ये सभी आ जाते हैं।

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलों का परिपूर्ण पालन करने वाला होता है, समाधि तथा प्रज्ञा का भी परिपूर्णता से...। वह जो छोटे-बड़े दोष हैं उन्हें करता भी है, उनसे मुक्त होता भी है। यह किसलिए? मैंने ऐसा हो सकना असंभव नहीं कहा है। जो आदि-ब्रह्मचर्यक शिक्षा-पद हैं, जो श्रेष्ठ जीवन के अनुकूल शिक्षा-पद हैं उनके विषय में वह स्थिर-शील होता है, स्थित-शील; वह

शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। वह आस्रवों का क्षय करके अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्तकर विहारकरता है।

"अथवा यदि अर्हत्व प्राप्त न हो तो वह अनागामी पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके अन्तरा-परिनिर्वाण को प्राप्त करता है। यदि वैसा भी न हो, तो वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके उपहत्य-परिनिर्वाण प्राप्त करता है... असंस्कार-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है... संस्कार-परिनिर्वाण-प्राप्त होता है। वह पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके ऊर्ध्वगामी होता है, उच्च लोकों में जाने वाला, अकनिष्ठगामी।यदि वैसा भी न हो, तो तीन संयोजनों के क्षय हो जाने पर, राग, द्वेष तथा मोह के क्षीण हो जाने पर वह सकृदागामी होता है, एक ही बार और इस लोक में आकर दुःख का क्षय करता है। यदि वैसा भी न हो, तो तीन संयोजनों के क्षय हो जाने पर वह 'एकबीजी' होता है, अर्थात एक ही बार मनुष्य-देह धारण कर दुःख का नाश करता है। यदि वैसा भी न हो, तो तीनों संयोजनों के क्षय हो जाने पर वह 'कोलंकोलं' होता है, अर्थात दो या तीन जन्म ग्रहण करके दुःख का नाश करता है। यदि वैसा भी न हो, तो तीनों संयोजनों के क्षय हो जाने पर वह अधिक-से-अधिक सात बार जन्म ग्रहण करने वाला होता है, सात जन्म तक देव-योनि वा मनुष्य-योनि में जन्म ग्रहण करके दुःख का क्षय करता है।

"भिक्षुओ, अपूर्ण रूप से पालन करने वाला अपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, संपूर्ण रूप से पालन करने वाला संपूर्ण रूप से प्राप्त करता है, लेकिन किसी भी रूप में शिक्षा-पदों का पालन वंध्य नहीं ही होता, यह मैं कहता हूं।"

९. शिक्षात्रय सुत्त (प्रथम)

९०. "भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं। कौन-सी तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा, तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा।

"भिक्षुओ, अधिशील-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है... सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, यह है अधिशील-संबंधी शिक्षा।

"और भिक्षुओ, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु कामभोगों से पृथक हो... चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिचित्त-संबंधीशिक्षा।

"और भिक्षुओ, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, 'भिक्षु यह दुःख है', इसे यथार्थ रूप से जानता है,... 'यह दुःखनिरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे यथार्थ रूप से जानता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा।

"भिक्षुओ, ये तीनों शिक्षाएं हैं।"

१०. शिक्षात्रय सुत्त (द्वितीय)

९१. "भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं। कौन-सी तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा।

"भिक्षुओ, अधिशील-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है... सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिशील-संबंधी शिक्षा।

"और, भिक्षुओ, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु कामभोगों से पृथक हो... चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिचित्त-संबंधीशिक्षा।

"और, भिक्षुओ, अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु आस्रवों का क्षय करके अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा-विमुक्ति को, इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करता है। भिक्षुओ, यह कहलाती है अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा। भिक्षुओ, ये तीन शिक्षाएं हैं।"

"अधिसीलं अधिचित्तं, अधिपञ्ञञ्च वीरियवा।
थामवा धितिमा झायी, सतो गुत्तिन्द्रियो चरे॥

"यथा पुरे तथा पच्छा, यथा पच्छा तथा पुरे।
यथा अधो तथा उद्धं, यथा उद्धं तथा अधो॥

"यथा दिवा तथा रत्तिं, यथा रत्तिं तथा दिवा।
अभिभुय्य दिसा सब्बा, अप्पमाणसमाधिना॥

"तमाहु सेखं पटिपदं, अथो संसुद्धचारियं।
तमाहु लोके सम्बुद्धं, धीरं पटिपदन्तगुं॥

"विञ्ञाणस्स निरोधेन, तण्हाक्खयविमुत्तिनो।
पज्जोतस्सेव निब्बानं, विमोक्खो होति चेतसो"ति॥

["जो प्रयत्न-शील है, जो सामर्थ्यवान है, जो धृतिमान है, जो ध्यानी है, जो स्मृतिमान है, जो संयमी है, उसे चाहिए कि वह अधिशील-संबंधी, अधिचित्त-संबंधी तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षाओं के अनुसार आचरण करे। जैसे पहले (तीनों शिक्षाओं का पालन करता है) वैसे ही बाद (में करे), जैसे बाद में वैसे ही पहले; उसी प्रकार जैसे (शरीर के) निचले हिस्से के प्रति (प्रतिकूल भावना रखता है) वैसे ही ऊपर के हिस्से के प्रति रखे; जैसे ऊपर के हिस्से के प्रति (प्रतिकूल भावना रखता है), वैसे ही निचले हिस्से के प्रति रखे। जैसे दिन में तीनों प्रकार की शिक्षाओं के अनुसार चलता है, वैसे ही रात में, जैसे रात में वैसे ही दिन में चले। इस प्रकार असीम समाधि द्वारा जो सभी दिशाओं को जीत लेता है वही शैक्ष-मार्गी है। जो लोक में सम्यक प्रकार शुद्धाचारी है, उसी को संबुद्ध कहते हैं, उसी को वीर कहते हैं, उसी को मार्ग के अंत तक जाने वाला कहते हैं। विज्ञान का निरोध होने पर, तृष्णा के क्षय-स्वरूप प्राप्त मुक्ति वाले को, प्रदीप के निर्वाण की तरह चित्त का मोक्ष प्राप्त होता है।"]

११. सङ्कवा सुत्त

९२. एक समय महान भिक्षु-संघ के साथ भगवान कोशल में चारिका करते-करते कोशलों के सङ्कवा नामक निगम में पहुँचे। वहां भगवान सङ्कवा में विहार करते थे, सङ्कवा नाम के कोशलों के निगम में।

उस समय काश्यपगोत्र नामक भिक्षु सङ्कवा में रहता था। वहां भगवान शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते थे, उन्हें प्रेरित करते थे, उन्हें उत्साहित करते थे, उन्हें संप्रहर्षित करते थे। उस समय जब भगवान शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण कर रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे, उन्हें उत्साहित कर रहे थे, उन्हें संप्रहर्षित कर रहे थे, तब काश्यपगोत्र भिक्षु अधीर हुआ, उसके मन में असंतोष जागा –'यह श्रमण बना-बनाकर मीठी-मीठी बातें कर रहा है'।

तब भगवान सङ्कवा में यथारुचि विहार कर राजगृह की ओर चारिका के लिए निकल पड़े। क्रमशः चारिका करते हुये राजगृह जा पहुँचे। तब भगवान राजगृह में विहार करते थे।

तब भगवान के चले जाने के थोड़ी देर बाद काश्यपगोत्र भिक्षु के मन में कौकृत्य हुआ, पश्चात्ताप हुआ –"यह मेरे अलाभ की ही बात है, लाभ की नहीं है, यह मेरा दुर्लभ ही है, सुलाभ नहीं है जो भगवान के शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक-कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते समय, उन्हें प्रेरित करते समय, उन्हें

उत्साहित करते समय, उन्हें संप्रहर्षित करते समय मेरे मन में अशांति हुई, असंतोष हुआ –'यह श्रमण बना-बनाकर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' क्यों न मैं भगवान ही के पास जाऊं, और जाकर भगवान के सामने अपना अपराध अपराध के रूप में स्वीकार करूं?"

तब काश्यपगोत्र भिक्षु शयनासन को लपेट, पात्र-चीवर ले, राजगृह पहुँचा। क्रमशः गृध्रकूट पर्वत पर, भगवान के पास पहुँचा। पहुँच कर, अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे काश्यपगोत्र भिक्षु ने भगवान से यह कहा –

"भंते! भगवान एक समय सङ्कवा में विहार कर रहे थे, सङ्कवा नाम के कोशलों के निगम में। वहां भगवान ने शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण किया, उन्हें प्रेरित किया, उन्हें उत्साहित किया तथा उन्हें संप्रहर्षित किया। उस समय जब भगवान शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण कर रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे, उन्हें उत्साहित कर रहे थे, उन्हें संप्रहर्षित कर रहे थे, उस समय मेरे मन में अशांति हुई, असंतोष हुआ –'यह श्रमण बना-बना कर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' तब भगवान सङ्कवा में यथारुचि विहार करके राजगृह की ओर चारिका के लिए निकल पड़े। भंते! भगवान के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद मेरे मन में कौकृत्य हुआ, पश्चात्ताप हुआ –यह मेरे अलाभ की ही बात है, लाभ की नहीं है, यह मेरा दुर्लभ ही है, सुलाभ नहीं है जो भगवान के शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते समय, उन्हें प्रेरित करते समय, उन्हें उत्साहित करते समय, उन्हें संप्रहर्षित करते समय मेरे मन में अशांति हुई, असंतोष हुआ – 'यह श्रमण बना-बना कर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' क्यों न मैं भगवान के पास जाऊं, और भगवान के पास अपराध को अपराध के रूप में स्वीकार करूं? भंते! गलती हो गई, मेरी मूर्खता थी, मूढ़ता थी, मेरा दुष्कृत्य था, जो भगवान के शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते समय, उन्हें प्रेरित करते समय, उन्हें उत्साहित करते समय, उन्हें संप्रहर्षित करते समय मेरे मन में अशांति हुई, असंतोष हुआ – 'यह श्रमण बना-बना कर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' भंते! भगवान मेरे अपराध को अपराध के रूप में स्वीकार करें ताकि मैं भविष्य में संयत रह सकूं।"

"निश्चय ही काश्यप तूने गलती की, तेरी मूर्खता थी, मूढ़ता थी, तेरा दुष्कृत्य था, जो मेरे शिक्षा-पद-युक्त धार्मिक कथा से भिक्षुओं का शिक्षण करते समय, उन्हें प्रेरित करते समय, उन्हें उत्साहित करते समय, उन्हें संप्रहर्षित

करते समय तेरे मन में अशांति हुई, तेरे मन में असंतोष हुआ – 'यह श्रमण बना-बना कर मीठी-मीठी बातें कर रहा है।' क्योंकि काश्यप, तू गलती को गलती जानकर उसे यथोचित रूप से स्वीकार कर रहा है, हम तेरी इस भूल को स्वीकार करते हैं। काश्यप! आर्य-विनय के अनुसार इससे उन्नति ही होती है जो अपने अपराध को अपराध के रूप में स्वीकार करता है और भविष्य में संयत रहता है।

"हे काश्यप! चाहे कोई भिक्षु 'स्थविर' हो, लेकिन यदि वह शिक्षा-कामी न हो, शिक्षा ग्रहण करने की प्रशंसा करने वाला न हो, जो दूसरे अशिक्षा-कामी भिक्षु हों उन्हें शिक्षा की ओर प्रेरित नहीं करता है, जो दूसरे शिक्षा-कामी भिक्षु हैं उनकी उचित समय पर यथार्थ सच्ची प्रशंसा नहीं करता, काश्यप! इस प्रकार के स्थविर भिक्षु की मैं भी प्रशंसा नहीं करता। यह किसलिए? 'शास्ता इसकी प्रशंसा करते हैं' सोच दूसरे भिक्षु उसकी संगति कर सकते हैं। जो उसकी संगत करेंगे वे उसका अनुकरण करेंगे। जो उसका अनुकरण करेंगे, वह उनके लिए चिरकाल तक अहित, दु:ख का कारण होगा। इसलिए काश्यप! मैं इस प्रकार के भिक्षु की प्रशंसा नहीं करता।

"हे काश्यप! चाहे कोई भिक्षु 'बीच की आयु' का हो,... चाहे कोई भिक्षु 'नया' हो, लेकिन यदि वह शिक्षा-कामी न हो, शिक्षा ग्रहण करने की प्रशंसा करने वाला न हो, जो दूसरे अशिक्षा-कामी भिक्षु हों उन्हें शिक्षा की ओर आकर्षित नहीं करता है, जो दूसरे शिक्षा-कामी भिक्षु हों उनकी उचित समय पर, यथार्थ सच्ची प्रशंसा न करता हो, काश्यप! इस प्रकार के नये भिक्षु की भी मैं प्रशंसा नहीं करता। यह किसलिए? 'शास्ता इसकी प्रशंसा करते हैं' सोच दूसरे भिक्षु उसकी संगत कर सकते हैं। जो उसकी संगत करेंगे, वे उसका अनुकरण करेंगे। जो उसका अनुकरण करेंगे, वह उनके लिए चिरकाल तक अहित, दु:ख का कारण होगा। इसलिए काश्यप! मैं इस प्रकार के भिक्षु की प्रशंसा नहीं करता।

"हे काश्यप! चाहे कोई भिक्षु 'स्थविर' हो, लेकिन यदि वह शिक्षा-कामी हो, शिक्षा ग्रहण करने की प्रशंसा करने वाला हो, जो दूसरे अशिक्षा-कामी भिक्षु हों उन्हें शिक्षा की ओर आकर्षित करता हो, जो दूसरे शिक्षा-कामी भिक्षु हों उनकी उचित समय पर यथार्थ सच्ची प्रशंसा करता हो, काश्यप! इस प्रकार के स्थविर भिक्षु की मैं प्रशंसा करता हूं। यह किसलिए? 'शास्ता इसकी प्रशंसा करते हैं' सोच दूसरे भिक्षु उसकी संगति कर सकते हैं। जो उसकी संगति करेंगे वे उसका अनुकरण करेंगे। जो उसका अनुकरण करेंगे वह उनके लिए

चिरकालतक हित सुख के लिए होगा। इसलिए काश्यप!मैं इस प्रकारके भिक्षु की प्रशंसा करता हूं।

"हे काश्यप! चाहे कोई भिक्षु 'बीच की आयु' का हो... चाहे कोई भिक्षु 'नया' हो, लेकिन यदि वह शिक्षा-कामी हो, शिक्षा ग्रहण करने की प्रशंसा करने वाला हो, जो दूसरे अशिक्षा-कामी भिक्षु हों उन्हें शिक्षा की ओर आकर्षित करता हो, जो दूसरे शिक्षा-कामी भिक्षु हों उनकी उचित समय पर यथार्थ सच्ची प्रशंसा करता हो, काश्यप! इस प्रकार के नये भिक्षु की मैं प्रशंसा करता हूं। यह किसलिए? 'शास्ता इसकी प्रशंसा करते हैं' सोच दूसरे भिक्षु उसकी संगति कर सकते हैं। जो उसकी संगति करेंगे वे उसका अनुकरण करेंगे। जो उसका अनुकरण करेंगे वह उनके लिए चिरकालतक हित सुख के लिए होगा। इसलिए काश्यप! मैं इस प्रकार के भिक्षु की प्रशंसा करता हूं।"

* * * * *

(१०) ५. नमक वर्ग

१. अत्यावश्यक सुत्त

९३. "भिक्षुओ, कृषक-गृहपति के लिए ये तीन अविलंब करने योग्य कर्तव्य हैं। कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, कृषक-गृहपति जल्दी-जल्दी खेत में हल जोत कर उसकी मिट्टी ठीक करता है, जल्दी-जल्दी खेत में हल जोत कर मिट्टी ठीक करके बीजों को बोता है, तथा जल्दी-जल्दी बीजों को बोकर जल्दी-जल्दी पानी देता भी है, बंद भी करता है। भिक्षुओ, ये तीन कृषक-गृहपति के अविलंब करने योग्य कर्तव्य हैं।

"भिक्षुओ, उस कृषक-गृहपति के पास ऐसा कोई ऋद्धि-बल या प्रताप नहीं है, जिससे वह यह कर सके कि 'आज ही मेरे धान उग जायं, कल दाने पड़ जायं और परसों पक जायं।' भिक्षुओ, समय आता है जब उस कृषक-गृहपति के वे धान उगते भी हैं, उनमें दाने पड़ते भी हैं और वे पकते भी हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, ये तीन भिक्षु के करने योग्य कर्तव्य हैं। कौन-से तीन?

"अधिशील-संबंधी शिक्षा का ग्रहण, अधिचित्त-संबंधी शिक्षा का ग्रहण, तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षा का ग्रहण।

"भिक्षुओ, ये तीन भिक्षु के अविलंब करने योग्य कर्तव्य हैं।

"भिक्षुओ, उस भिक्षु का ऐसा कोई ऋद्धि-बल या प्रताप नहीं होता जिससे वह कह सके कि 'आज ही उपादान-रहित हो मेरा चित्त आस्रव-विमुक्त हो जाय, कल हो जाय अथवा परसों हो जाय।' लेकिन भिक्षुओ! समय आता है जब अधिशील, अधिचित्त तथा अधिप्रज्ञा-संबंधी शिक्षाओं के अनुसार आचरण करते-करते उपादान-रहित हो चित्त आस्रव-विमुक्त हो जाता है।

"इसलिए भिक्षुओ, ठीक इस प्रकार सीखना चाहिए – 'श्रेष्ठतर शील शिक्षा के लिए हमारी तीव्र इच्छा होगी, श्रेष्ठतर चित्त-शिक्षा के लिए हमारी तीव्र इच्छा होगी, श्रेष्ठतर प्रज्ञा-शिक्षा के लिए हमारी तीव्र इच्छा होगी।' भिक्षुओ, इसी प्रकार तुम्हें सीखना चाहिए।"

२. प्रविवेक (एकांत) सुत्त

९४. "भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजक तीन प्रकार की अल्पेच्छताओं (प्रविवेकों, एकांतों) को प्रज्ञापित करते हैं। कौन-सी तीन?

"चीवर संबंधी, पिंडपात (=भोजन) संबंधी तथा शयनासन संबंधी।

"भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजकों का चीवर संबंधी प्रविवेक इस प्रकार है – वे सन के कपड़े भी धारण करते हैं, सन-मिश्रित कपड़े भी पहनते हैं, शव-वस्त्र (=कफन) भी पहनते हैं, कूड़े के ढेर पर फेंके हुए वस्त्र भी पहनते हैं, (वृक्ष-विशेष की) छाल के कपड़े भी पहनते हैं, अजिन (=मृग) की खाल भी पहनते हैं, अजिन (मृग) की खाल की पट्टियों से बुना वस्त्र भी पहनते हैं, कुश (घास) का बना वस्त्र भी पहनते हैं, छाल (=वाक) के वस्त्र भी पहनते हैं, फलक (=छाल) का वस्त्र भी पहनते हैं, केशों से बना कंबल भी पहनते हैं, पूंछ के बालों का बना कंबल भी पहनते हैं तथा उल्लू के परों का बना कपड़ा भी पहनते हैं। भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजकों का चीवर संबंधी 'प्रविवेक' इस प्रकार है।

"भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजकों का पिंडपात (=भोजन) संबंधी 'प्रविवेक' इस प्रकार है – वे शाक खाने वाले भी होते हैं, स्यामाक खाने वाले भी होते हैं, नीवार (-धान) के खाने वाले भी होते हैं, दद्दुल (-धान) के खाने वाले भी होते हैं, हट (-शाक) के खाने वाले भी होते हैं, टूटे धान (=कणी) के खाने वाले भी होते हैं, माण्ड खाने वाले भी होते हैं, खली खाने वाले भी होते हैं, तिनके खाने वाले भी होते हैं, गोबर खाने वाले भी होते हैं, जंगल के पेड़ों से गिरे फलों तथा जड़ों को खाकर ही रहने वाले भी होते हैं।

"भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजकों का शयनासन संबंधी 'प्रविवेक' इस प्रकार है – अरण्य-वास, वृक्ष के तले रहना, श्मशान में रहना, जंगल में रहना, खुले आकाश के नीचे रहना, पलाल (सूखी घास) की ढेरी पर रहना, तथा फूस के घर में रहना।

"भिक्षुओ, अन्य मतों के परिव्राजक इन तीन प्रकार के एकांतों, अल्पेच्छताओं (प्रविवेकों) को प्रज्ञापित करते हैं।

"भिक्षुओ, इस धर्मवनय में भिक्षु की ये तीन अल्पेच्छताएं हैं। कौन-सी तीन?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है, उसकी दुःशीलता का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह 'पृथक' हो जाता है; वह सम्यक-दृष्टि वाला होता है, उसकी मिथ्या-दृष्टि का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह 'पृथक' हो जाता है; वह क्षीणास्रव होता है, उसके आस्रवों का प्रहाण हो गया रहता है, वह उनसे 'पृथक' हो जाता है। भिक्षुओ, क्योंकि भिक्षु शीलवान होता है, उसकी दुःशीलता का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह 'पृथक' हो जाता है; वह सम्यक-दृष्टि वाला होता है, उसकी मिथ्या-दृष्टि का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह 'पृथक' हो जाता है; वह क्षीणास्रव होता है, उसके आस्रवों का प्रहाण हो गया रहता है, वह उनसे 'पृथक' हो जाता है – 'इसलिए वह अग्र-प्राप्त कहलाता है, सार-प्राप्त कहलाता है, शुद्ध कहलाता है, सार में प्रतिष्ठित कहलाता है।'

"भिक्षुओ, जैसे किसी कृषक-गृहपति का धान का खेत तैयार हो। कृषक-गृहपति उसे जल्दी-जल्दी कटवाये, जल्दी-जल्दी कटवाकर उसे जल्दी-जल्दी इकट्ठा कराये, जल्दी-जल्दी इकट्ठा कराकर उसे जल्दी-जल्दी उठवाये, जल्दी-जल्दी उठवाकर उसका ढेर लगवाये, जल्दी-जल्दी उसका ढेर लगवाकर जल्दी-जल्दी दंवरी करवाये, जल्दी-जल्दी दंवरी कराकर जल्दी-जल्दी पुआल पृथक कराये, जल्दी-जल्दी पुआल पृथक कराकर जल्दी-जल्दी भूसा पृथक कराये, जल्दी-जल्दी भूसा पृथक कराकर जल्दी-जल्दी उसे छाज (सूप) से उड़वाये, जल्दी-जल्दी छाज से उड़वाकर जल्दी-जल्दी इकट्ठा करवाये, जल्दी-जल्दी इकट्ठा करवाकर जल्दी-जल्दी कुटवाये, जल्दी-जल्दी कुटवाकर जल्दी-जल्दी 'भूसी' पृथक कराये –ऐसा होने से भिक्षुओ, उस कृषक-गृहपति के वे चावल श्रेष्ठ होंगे, सारवान होंगे, शुद्ध होंगे तथा सार में प्रतिष्ठित होंगे।

"इसी प्रकार भिक्षुओ! क्योंकि भिक्षु शीलवान होता है, उसकी दुःशीलता का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह पृथक हो जाता है; वह सम्यक-दृष्टि वाला होता है, उसकी मिथ्या-दृष्टि का प्रहाण हो गया रहता है, उससे वह

पृथक हो जाता है; वह क्षीणास्रव होता है, उसके आस्रवों का प्रहाण हो गया रहता है, वह उनसे पृथक हो जाता है – 'इसलिए वह अग्र-प्राप्त कहलाता है, सार-प्राप्त कहलाता है, शुद्ध कहलाता है तथा सार में प्रतिष्ठित कहलाता है।'"

३. शरद सुत्त

९५. "भिक्षुओ, जैसे शरद-ऋतु में जब आकाश बादल-रहित हो साफ हो जाता है, उस समय आकाश में ऊपर उठता हुआ सूर्य, सारे आकाश के अंधेरे को दूर करके चमकता है, तपता है तथा प्रकाशित होता है, उसी प्रकार भिक्षुओ, जब आर्य-श्रावक को रज-रहित, मल-रहित धर्म-चक्षु उत्पन्न हो जाता है, तब भिक्षुओ, उसके इस ज्ञान के उत्पादन के साथ-साथ ही तीन संयोजनों का नाश हो जाता है – सत्काय-दृष्टि का, विचिकित्सा का तथा शीलव्रत परामर्श का।

"इसके बाद अभिध्या तथा व्यापाद यह दो धर्म निःशेष हो जाते हैं। तब वह कामभोगों से पृथक हो, अकुशल-धर्मों से पृथक हो प्रथम ध्यान को प्राप्त कर विहार करता है, जिसमें वितर्क रहते हैं, विचार रहते हैं, जो एकांतवास से उत्पन्न होता है तथा जिसमें प्रीति और सुख रहते हैं। भिक्षुओ, यदि आर्य-श्रावक उस समय मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो उस समय वह किसी ऐसे संयोजन से बँधा नहीं रहता जिस बंधन के कारण उसका पुनः इस लोक में आगमन हो।"

४. परिषद सुत्त

९६. "भिक्षुओ, परिषद के ये तीन प्रकार हैं। कौन-से तीन?

अग्र (श्रेष्ठ)-परिषद, व्यग्र (गुटों में बँटी)-परिषद, समग्र (एकजुट) -परिषद।

"भिक्षुओ, अग्र-परिषद किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, जिस परिषद में स्थविर भिक्षु अल्पेच्छ होते हैं, शिथिल नहीं होते, पतन की ओर अग्रसर नहीं होते, एकांतसेवन के प्रति उदासीन नहीं होते, अप्राप्त की प्राप्ति के लिए, जो हस्तगत नहीं है उसे हस्तगत करने के लिए, जिसका साक्षात नहीं हुआ है उसका साक्षात करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं, उनके अनुयायी भी उनका अनुकरण करते हैं, वे भी अल्पेच्छ होते हैं, शिथिल नहीं होते, पतन की ओर अग्रसर नहीं होते, एकांतसेवन के प्रति उदासीन नहीं होते, अप्राप्त की प्राप्ति के लिए, जो हस्तगत नहीं हुआ है उसे हस्तगत करने के

लिए, जिसका साक्षात नहीं हुआ है उसका साक्षात करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार की परिषदअग्र-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, व्यग्र परिषद कौन-सी होती है?

"यहां, भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु परस्पर झगड़ा करते हैं, कलह करते हैं, विवाद करते हैं, एक दूसरे को शब्दशूल से बींधते रहते हैं –भिक्षुओ, इस प्रकार की परिषदव्यग्र परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, समग्र-परिषद कौन-सी होती है?

"यहां, भिक्षुओ, जिस परिषद में भिक्षु मिल-जुलकर प्रसन्नतापूर्वक ,बिना विवाद करते हुए, दूध-पानी की तरह मिले हुए, एक दूसरे को प्रेमभरी दृष्टि से सम्यक प्रकार से देखते हुए विहार करते हैं –भिक्षुओ, इस प्रकार की परिषद समग्र-परिषद कहलाती है।

"भिक्षुओ, जिस समय भिक्षु मिल-जुलकर प्रसन्नतापूर्वक , बिना विवाद करते हुए, दूध-पानी की तरह मिले हुए, एक दूसरे को प्रेमभरी दृष्टि से सम्यक प्रकार से देखते हुए विहार करते हैं, उस समय भिक्षुओ, भिक्षु बहुत पुण्यार्जन करते हैं। उस समय भिक्षुओ! भिक्षु ब्रह्म-विहार करते हैं, जो कि उनका यह मुदिता व्याप्त चित्त से प्राप्त चित्त-विमुक्ति के साथ रहना है। प्रमुदित के मन में प्रीति पैदा होती है, प्रीति-युक्त की काया प्रश्रब्ध होती है, वह प्रश्रब्ध काया वाला सुख का अनुभव करता है, उस सुखी का चित्तसमाधिस्थ होता है।

"जैसे भिक्षुओ, ऊपर पहाड़ पर भारी वर्षा होने से वह पानी नीचे की ओर बहता हुआ पर्वत की कंदराओं, दरारों आदि को भर देता है, पर्वत की कंदरायें, दरारें आदि भर कर छोटे-छोटे गड्ढों को भर देता है, छोटे-छोटे गड्ढे भर कर बड़े-बड़े गड्ढे भर देता है, बड़े-बड़े गड्ढे भर कर छोटी-छोटी नदियां भर देता है, छोटी-छोटी नदियां भर कर बड़ी-बड़ी नदियां भर देता है, बड़ी-बड़ी नदियां भर कर समुद्र को भर देता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, जिस समय भिक्षु मिल-जुलकर प्रसन्नतापूर्वक , बिना विवाद करते हुए, दूध-पानी की तरह मिले हुए, एक दूसरे को प्रेमभरी दृष्टि से देखते हुए विहार करते हैं, उस समय भिक्षुओ, भिक्षु बहुत पुण्यार्जन करते हैं। उस समय भिक्षुओ, भिक्षु ब्रह्म-विहार करते हैं जो कि उनका यह मुदिता व्याप्त चित्त से प्राप्त चित्त-विमुक्ति के साथ रहना है। प्रमुदित के मन में प्रीति पैदा होती है, प्रीति-युक्त की काया प्रश्रब्ध होती है, वह प्रश्रब्ध काया वाला सुख का अनुभव करता है, उस सुखी का चित्तसमाधिस्थ होता है।

"भिक्षुओ, ये तीन प्रकार की परिषदहोती हैं।"

५. आजानीय (श्रेष्ठ घोड़ा) सुत्त (प्रथम)

९७. "भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है। किन तीन अंगों से?

"यहां, भिक्षुओ, राजा का श्रेष्ठ घोड़ा वर्णयुक्त होता है, बलयुक्त होता है, गतियुक्त होता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है, आतिथ्य करने योग्य होता है, दान-दक्षिणा देने योग्य होता है, हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य होता है, तथा लोक में श्रेष्ठ पुण्य-क्षेत्र होता है। किन तीन अंगों से ?

"भिक्षुओ, भिक्षु वर्ण से युक्त होता है, बल से युक्त होता है तथा गति से युक्त होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु वर्णवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है। प्रातिमोक्ष के नियमों के अनुसार संयत रहने वाला, सदाचरण की गोचर-भूमि में ही विचरने वाला, अत्यंत छोटे दोष को करने में भी भय मानने वाला; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु वर्णवानहोता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु बलवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अकुशल धर्मों का प्रहाण करने के लिए, कुशल धर्मों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह कुशल-धर्मों में सामर्थ्यवान रहता है, दृढ़-पराक्रमी रहता है, कंधे का जुआ नहीं गिराये रहता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु बलवान होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु गतिमान कैसे होता है?

"भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दुःख है', इसे यथार्थ रूप से जानता है, 'यह दुःख-समुदय है', इसे यथार्थ रूप से जानता है... 'यह दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है' इसे यथार्थ रूप से जानता है – इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु गतिमान होता है।

"भिक्षुओ, इन तीन बातों से युक्त भिक्षु आवाहन करने योग्य है, पाहुना बनाने (अतिथ्य) योग्य है, दक्षिणा देने योग्य है, अंजलिबद्ध (प्रणाम) किये जाने योग्य है। लोगों का यही श्रेष्ठतम पुण्य-क्षेत्र है।"

६. आजानीय सुत्त (द्वितीय)

९८. "भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है। किन तीन अंगों से?

"यहां, भिक्षुओ, राजा का श्रेष्ठ घोड़ा वर्णयुक्त होता है, बलयुक्त होता है, गतियुक्त होता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है, आतिथ्य करने योग्य होता है, दान-दक्षिणा देने योग्य होता है, हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य होता है तथा लोक का पुण्य-क्षेत्र होता है। किन तीन अंगों से?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु वर्ण से युक्त होता है, बल से युक्त होता है तथा गति से युक्त होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु वर्णवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है। प्रातिमोक्ष के नियमों के अनुसार संयत रहने वाला, सदाचरण की ही गोचर-भूमि में विचरने वाला, अत्यंत छोटे दोष को करने में भी भय मानने वाला; वह शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु वर्णवान होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु बलवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अकुशल धर्मों का प्रहाण करने के लिए, कुशल-धर्मों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नवान रहता है। वह कुशल-धर्मों के प्रति सामर्थ्यवान रहता है, दृढ़-पराक्रमी रहता है, कंधे का जुआ नहीं गिराये रहता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु बलवान होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु गतिमान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु इस ओर के पांचों ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके परलोक में ही उत्पन्न होने वाला होता है, वहीं से परिनिर्वाण को प्राप्त होने वाला, उस लोक से यहां नहीं लौटने वाला।

"भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु गतिमान होता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है... पुण्य-क्षेत्र होता है।"

७. आजानीय सुत्त (तृतीय)

९९. "भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है। किन तीन अंगों से?

"यहां, भिक्षुओ, राजा का श्रेष्ठ घोड़ा वर्णयुक्त होता है, बलयुक्त होता है, गतियुक्त होता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त श्रेष्ठ घोड़ा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही गिना जाता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है... पुण्य-क्षेत्र होता है। किन तीन अंगों से?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु वर्ण से युक्त होता है, बल से युक्त होता है तथा गति से युक्त होता है।

"भिक्षुओ, भिक्षु वर्णवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु शीलवान होता है। प्रातिमोक्ष के नियमों के अनुसार संयत रहने वाला... शिक्षा-पदों को सम्यक प्रकार ग्रहण करता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु वर्णवान होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु बलवान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अकुशल धर्मों का प्रहाण करने के लिए... कंधे का जुआ नहीं गिराये रहता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु बलवान होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु गतिमान कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु आस्रवों का क्षय करके अनास्रव चित्त-विमुक्ति को, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर, विहार करता है। भिक्षुओ, भिक्षु इस प्रकार गतिमान होता है।

"भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदर करने योग्य होता है... लोक का पुण्य-क्षेत्र होता है।"

८. पोत्थक (मकचीकेश का बना कपड़ा) सुत्त

१००. "भिक्षुओ, छाल का नया वस्त्र भी दुर्वर्ण होता है, खुरदरा होता है, कम मूल्य का होता है। कुछ समय काम में लाया हुआ भी छाल का वस्त्र दुर्वर्ण होता है, खुरदरा होता है, कम मूल्य का होता है। पुराना भी छाल का वस्त्र दुर्वर्ण होता है, खुरदरा होता है, कम मूल्य का होता है। भिक्षुओ, छाल के पुराने वस्त्र को या तो हांड़ी पोंछने के काम में लाते हैं या कूड़े के ढेर पर फेंक देते हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, यदि नया भिक्षु भी दुःशील होता है, पापी होता है, तो मैं यह उसका दुर्वर्ण होना ही कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का वस्त्र दुर्वर्ण होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"जो उसके साथ रहते हैं, उसकी संगति करते हैं, उसके आश्रय में रहते हैं तथा उसका अनुकरण करते हैं, उसके लिए दीर्घकाल तक यह अहित, दुःख का कारण होता है, तो मैं यह उसका खुरदरा होना कहता हूं। भिक्षुओ! जैसे वह छाल का कपड़ा खुरदरा होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"यह जिनके (दाताओं के) चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय ग्रहण करता है, उनके लिए यह न महान फल देने वाला होता है, न महान शुभपरिणामकारी। यह मैं उसका अल्प-मूल्यवान होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का कपड़ा कम मूल्य का होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"भिक्षुओ, यदि कोई मध्यम (जो भिक्षु न नया है और न स्थविर है) भिक्षु भी... यदि कोई स्थविर भी दुःशील होता है, पापी होता है, तो मैं यह उसका दुर्वर्ण होना ही कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का वस्त्र दुर्वर्ण होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"जो उसके साथ रहते हैं, उसकी संगति करते हैं, उसके आश्रय में रहते हैं, तथा उसका अनुकरण करते हैं, उनके लिए दीर्घकाल तक यह अहित, दुःख का कारण होता है, तो मैं यह उसका खुरदरा होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का कपड़ा खुरदरा होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"यह जिनके (दाताओं के) चीवर-पिंडपात-शयनासन तथा ग्लान-प्रत्यय ग्रहण करता है, उनके लिए यह न महान फल देने वाला होता है, न महान शुभपरिणामकारी। यह मैं उसका अल्प मूल्यवान होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह छाल का कपड़ा कम मूल्य का होता है, वैसे ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"भिक्षुओ, यदि ऐसा स्थविर भिक्षु भी संघ के बीच बैठकर कुछ बोलता है तो भिक्षु उसे कहते हैं – 'तुम्हारे मूर्ख के, अपंडित (अज्ञानी) के बोलने से क्या लाभ! तुम भी समझते हो कि तुम्हारे पास कुछ बोलने योग्य है?' वह कुपित होकर, असंतुष्ट होकर मुँह से ऐसी बात निकालता है जिससे संघ उसे उसी प्रकार फेंक देता है जैसे कूड़े के ढेर पर छाल का कपड़ा।

"भिक्षुओ, काशी का नया वस्त्र भी सुंदर होता है, मुलायम (सुखदायी) होता है, बहुमूल्य होता है। कुछ समय काम में लाया हुआ भी काशी का वस्त्र सुंदर होता है, मुलायम होता है, बहुमूल्य होता है। पुराना भी काशी का वस्त्र

सुंदर होता है, मुलायम होता है, बहुमूल्य होता है। भिक्षुओ! काशी के पुराने वस्त्र में भी या तो रत्न लपेटे जाते हैं या उसे सुगंधित पेटी में रखते हैं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ! यदि नया भिक्षु शीलवान कल्याणधर्मी हो, तो मैं इसे उसका सौंदर्य कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह काशी का सुंदर वस्त्र, वैसा ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"जो उसके साथ रहते हैं, उसकी संगति करते हैं, उसके आश्रय में रहते हैं, तथा उसका अनुकरण करते हैं, उनके लिए दीर्घकाल तक यह हित, सुख का कारण होता है, तो मैं यह उसका सुखदायी होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे यह काशी का वस्त्र मुलायम होता है, वैसा ही मैं उस व्यक्ति को कहता हूं।

"यह जिनके (दाताओं के) चीवर-पिंडपात-शयनासन, ग्लान-प्रत्यय ग्रहण करता है उनके लिए यह महान फल देने वाला होता है, महान शुभपरिणामकारी। यह मैं उसका बहुमूल्यवान होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह काशी का वस्त्र बहुमूल्यवान होता है, वैसा ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"भिक्षुओ, यदि कोई मध्यम आयु का भिक्षु भी... यदि कोई स्थविर भिक्षु भी शीलवान, कल्याणधर्मी होता है तो यह उसका सौंदर्य है। भिक्षुओ, जैसे वह काशी का सुंदर वस्त्र, वैसा ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"जो उसके साथ रहते हैं, उसकी संगति करते हैं, उसके आश्रय में रहते हैं तथा उनका अनुकरण करते हैं, उनके लिए दीर्घकाल तक यह हित, सुख का कारण होता है, तो मैं यह उसका सुखदायी होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे यह काशी का वस्त्र मुलायम होता है, वैसा ही मैं उस व्यक्ति को कहता हूं।

"यह जिनके (दाताओं के) चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय ग्रहण करता है उनके लिए यह महान फल देने वाला होता है, महान शुभपरिणामकारी। यह मैं उसका बहुमूल्यवान होना कहता हूं। भिक्षुओ, जैसे वह काशी का वस्त्र बहुमूल्यवान होता है, वैसा ही मैं इस व्यक्ति को कहता हूं।

"भिक्षुओ, यदि इस प्रकार का स्थविर भिक्षु संघ के बीच में कुछ बोलता है तो उस समय भिक्षु कहते हैं – 'आयुष्मानो! चुप रहो! स्थविर भिक्षु धर्म तथा विनय कह रहा है।' इसलिए भिक्षुओ, ठीक इसी प्रकार सीखना चाहिए कि काशी के वस्त्र के समान होंगे, छाल के वस्त्र के समान नहीं। भिक्षुओ, ऐसा ही तुम्हें सीखना चाहिए।"

९. नमक सुत्त

१०१. "भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहता हो कि जैसा-जैसा भी यह आदमी कर्म करता है उसे वह सब भोगना ही होता है – तो ऐसा होने पर तो

श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करना असंभव हो जाता है, तथा दु:ख का सम्यक अंत करने की गुंजाइश नहीं रहती। (लेकिन) भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहे कि जिस प्रकार का भोग्य (वेदनीय)-कर्म वह करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है, तो ऐसा होने पर तो श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करना संभव हो जाता है, तथा दु:ख का सम्यक अंत करने की गुंजाइश रहती है।

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि कोई अल्पमात्र भी पाप-कर्म करता है तो वह उसे नरक में ही ले जाता है। लेकिन भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, बहुत क्या (आगे के लिए) अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी अभावित-काय, अभावित-शील, अभावित-चित्त तथा अभावित-प्रज्ञा वाला होता है। वह तुच्छ होता है, महत्त्वहीन, गुणविहीन और दु:खी जीवन जीने वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्रभी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है, (आगे के लिए) बहुत क्या अणुमात्र भी नहीं बचा रहता?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भावित-काय, भावित-शील, भावित-चित्त तथा भावित-प्रज्ञ होता है। वह तुच्छ नहीं होता है, महान होता है तथा अनंत सुख-विहारी होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार का आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है, तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, बहुत क्या (आगे के लिए) अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, जैसे कोई आदमी नमक का एक टुकड़ा छोटे पानी के कटोरे में डाले, तो भिक्षुओ, क्या मानते हो, क्या उस छोटे पानी के कटोरे में नमक का वह टुकड़ा डालने से उसका पानी नमकीन, अपेय नहीं हो जायगा?

"हां, भंते!"

"ऐसा क्यों?"

"भंते! पानी के कटोरे में थोड़ा-सा पानी है। वह नमक का टुकड़ा डालने से नमकीन, अपेय हो ही जायगा।"

"भिक्षुओ, जैसे कोई आदमी नमक का एक टुकड़ा गंगा नदी में फेंके | तो भिक्षुओ, क्या मानते हो, क्या उस नमक के टुकड़े से उस गंगा नदी का पानी नमकीन, अपेय हो जायगा?"

"भंते! नहीं।"

"ऐसा क्यों?"

"भंते! गंगा नदी में महान जलराशि है। वह नमक के टुकड़े से नमकीन, अपेय नहीं होगी।"

"भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि कोई अल्पमात्र भी पाप-कर्म करता है तो वह उसे नरक में ही ले जाता है। लेकिन भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, बहुत क्या (आगे के लिए) अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी अभावित-काय...थोड़े (पाप) से भी दुःख भोगने वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है, (आगे के लिए) बहुत क्या, अणुमात्र भी नहीं बचा रहता। यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भावित-काय...अनंत सुख विहारी होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है, (आगे के लिए) बहुत क्या अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी आधे कार्षापण[१] (के ऋण लेने) के लिए भी बंदी बना लिया जाता है, कार्षापण के लिए भी तथा सौ कार्षापणों के लिए भी बंदी बना लिया जाता है। भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी आधे कार्षापण (के ऋण लेने) के लिए भी बंदी नहीं बनाया जाता, कार्षापण के लिए भी नहीं तथा सौ कार्षापण के लिए भी नहीं।

"भिक्षुओ, कैसा आदमी आधे कार्षापण के लिए भी बंदी बना लिया जाता है, कार्षापण के लिए भी तथा सौ कार्षापणों के लिए भी बंदी बना लिया जाता है? भिक्षुओ, एक आदमी दरिद्र होता है, अल्प-सामर्थ्य वाला होता है, अल्प-भोगों वाला होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार का आदमी आधे कार्षापण के

१ पालि 'कहापण' (सं. कार्षापण) का अर्थ तांबे का वर्गाकार सिक्का होता है।

लिए भी बंदी बना लिया जाता है, कार्षापण के लिए भी, सौ कार्षापण के लिए भी।

"भिक्षुओ, कैसा आदमी आधे कार्षापण के लिए भी बंदी नहीं बनाया जाता, कार्षापण के लिए भी नहीं, सौ कार्षापण के लिए भी नहीं? भिक्षुओ, एक आदमी धनवान होता है, महाधनवान होता है, बहुत-भोगों वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार का आदमी आधे कार्षापण के लिए भी बंदी नहीं बनाया जाता, कार्षापण के लिए भी नहीं, सौ कार्षापण के लिए भी नहीं।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, एक आदमी यदि कोई अल्पमात्र भी पाप-कर्म करता है तो वह उसे नरक में ही ले जाता है। लेकिन भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, बहुत क्या (आगे के लिए) अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है?

"यहां, भिक्षुओ, यदि कोई आदमी अभावित-काय... थोड़े (पाप) से भी दुःख भोगने वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है। भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है? (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता? यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भावित-काय... अनंत सुख-विहारी होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"जैसे भिक्षुओ, कोई भेड़ मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई हो। वह चोरी से भेड़ ले जाने वाले किसी आदमी को पीट भी सकता है, बांध भी सकता है और मार भी डाल सकता है अथवा यथापराध दंड दे सकता है; किंतु चोरी से भेड़ ले जाने वाले ही किसी दूसरे आदमी को न तो वह पीट ही सकता है, न बांध ही सकता है, न मार ही डाल सकता है और न यथापराध दंड दे सकता है।

"भिक्षुओ, भेड़ चुराकर ले जाने वाले किस तरह के आदमी को भेड़ मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई पीट भी सकता है, बांध भी सकता है, मार भी डाल सकता है अथवा यथापराध दंड भी दे सकता है?

"यहां, भिक्षुओ, एक आदमी दरिद्र होता है, अल्प-सामर्थ्य वाला होता है, अल्प-भोगों वाला होता है। ऐसे भेड़ चुराकर ले जाने वाले आदमी को भेड़

मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई पीट भी सकता है, बांध भी सकता है, मार भी डाल सकता है अथवा यथापराध दंड भी दे सकता है।

"भिक्षुओ, भेड़ चुराकर ले जाने वाले किस तरह के आदमी को भेड़ मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई न पीट ही सकता है, न बांध ही सकता है, न मार ही डाल सकता है अथवा न यथापराध दंड दे सकता है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई आदमी धनी होता है, महाधनवान होता है, महा भोगों वाला होता है, राजा होता है, राजा का महामात्य होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार के भेड़ चुराकर ले जाने वाले आदमी को भेड़ मारने वाला वा भेड़-घातक कसाई न पीट ही सकता है, न बांध ही सकता है और न (जान से) मार डाल सकता है अथवा न यथापराध दंड दे सकता है। बल्कि, वह हाथ जोड़कर उसे कहता है – मालिक! या तो मेरी भेड़ दे दो या भेड़ का मूल्य दे दो!

"इसी प्रकार भिक्षुओ, एक आदमी यदि कोई अल्पमात्र भी पाप-कर्म करता है तो वह उसे नरक में ही ले जाता है। लेकिन भिक्षुओ, कोई आदमी यदि वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म करता है तो उसका फल वह इसी जीवन में भोग लेता है, (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचता।

"भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी का किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है?

"यहां, भिक्षुओ, यदि कोई आदमी अभावित-काय... थोड़े (पाप) से भी दुःख भोगने वाला। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया हुआ अल्पमात्र भी पाप-कर्म उसे नरक में ले जाता है। भिक्षुओ, किस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म इसी जीवन में फल देता है। (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोई आदमी भावित-काय... अनंत सुख-विहारी होता है। भिक्षुओ, इस प्रकार के आदमी द्वारा किया गया वैसा ही अल्पमात्र पाप-कर्म भी इसी जीवन में फल देता है। (आगे के लिए) बहुत क्या, अणु-मात्र भी नहीं बचा रहता।

"भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहता हो कि जैसा-जैसा भी यह आदमी कर्म करता है उसे वह सब भोगना ही होता है – तो ऐसा होने पर तो श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत करना असंभव हो जाता है (तथा) दुःख का सम्यक अंत करने की गुंजाइश नहीं रहती। (लेकिन) भिक्षुओ, यदि कोई ऐसा कहे कि जिस प्रकार का भोग्य (=वेदनीय) कर्म वह करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है, तो ऐसा

होने पर तो श्रेष्ठ-जीवन व्यतीत करना संभव हो जाता है तथा दुःख का सम्यक अंत करने की गुंजाइश रहती है।"

१०. स्वर्णकार (मिट्टी दूर करने वाला) सुत्त

१०२. "भिक्षुओ, स्वर्ण (अयस्क) में मैल होते हैं, मिट्टी, बालू, कंकड़, गिट्टी। उन्हें मिट्टी दूर करनेवाला वा मिट्टी दूर करनेवाले का शागिर्द द्रोणी में डालकर धोता है, अच्छी तरह धोता है, मलकर धोता है ताकि उस मैल का प्रहाण हो जाय, वह दूर हो जाय। ऐसा करनेपर भी कुछ-कुछ सामान्य मैल रह ही जाते हैं महीन कंकड़ और मोटी गिट्टी... ऐसा कर चुकने पर भी कुछ-न-कुछ सूक्ष्ममैल रह ही जाते हैं जैसे महीन बालू और काली धूल...।

"तब स्वर्ण-कण ही शेष रह जाते हैं। तब सुनार या सुनार का शागिर्द उस सोने को धरिया में डालकर तपाता है, अच्छी तरह तपाता है, फिर भी शुद्ध नहीं होता है। वह स्वर्ण तपा हुआ होता है, अच्छी तरह तपा हुआ होता है, किंतु शुद्ध नहीं होता, न वह कोमल होता है, न गढ़नीय होता है, न प्रभास्वर होता है; वह काम में लाने पर टूट जाता है।

"भिक्षुओ, समय आता है जब वह सुनार अथवा सुनार का शागिर्द उस सोने को तपाता है, अच्छी तरह तपाता है और साफ भी करता है। वह सोना तपाया हुआ होता है, अच्छी तरह तपाया हुआ होता है, साफ होता है। वह कोमल होता है, गढ़नीय होता है और प्रभास्वर होता है। वह काम में लानेपर टूटता नहीं। जो-जो गहना बनाना चाहता है –चाहे करधनी हो, चाहे कुंडल हो, चाहे कंठा हो, चाहे माला हो –वह जो कुछ बनाना चाहे उसके लिए उसका उपयोग कर सकता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, श्रेष्ठतर-चित्त की प्राप्ति में लगे हुए भिक्षु के बड़े-बड़े दोष रहते हैं –कायिक दुष्चरित (दुराचरण), वाचिक दुष्चरित, (दुराचरण), मानसिक दुष्चरित, (दुराचरण)। समझदार (ज्ञानी, पंडित) भिक्षु उन्हें छोड़ता है, त्यागता है, उनका पूरी तरह प्रहाण (परित्याग) करता है। ऐसा करने पर सामान्य दोष रह जाते हैं – काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्क। ज्ञानी, पंडित भिक्षु उन्हें छोड़ता है, त्यागता है, उनका पूरी तरह प्रहाण करता है। ऐसा करनेपर भी सूक्ष्म दोष रह जाते हैं –जाति-संबंधी वितर्क, जनपद-संबंधी वितर्क, अनवज्ञा-संबंधी वितर्क अर्थात वैसा वितर्क जिसमें वह यह सोचता है कि दूसरे उससे घृणा न करे दूसरे उसका आदर करे। ज्ञानी, पंडित भिक्षु उन्हें छोड़ता है, त्यागता है, उनका पूरी तरह प्रहाण करता है। उसके पूरी तरह प्रहाण होने पर धर्म-वितर्क ही शेष रहते हैं। उस समय जो समाधि होती है, वह न शांत

होती है, न प्रणीत होती है, न प्रश्रब्ध होती है, न एकाग्रता-युक्त होती है। वह संस्कारोंको जैसे-तैसे रोककर प्राप्त की हुई होती है।

"भिक्षुओ, समय आता है जब वह चित्त अपने में ही स्थिर होता है, बैठ जाता है, एकाग्र हो जाता है, समाधि-प्राप्त हो जाता है। उस समय जो समाधि होती है, वह शांत होती है, प्रणीत होती है, प्रश्रब्ध होती है, एकाग्र होती है। वह संस्कारों को जैसे-तैसे रोक प्राप्त की हुई नहीं होती। वह अभिज्ञा के द्वारा साक्षात करने योग्य जिस-जिस धर्म की ओर मन को झुकाता है, उसे-उसे ही साक्षीभाव से प्राप्त कर लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो[1]। (पूर्वजन्मों में विशेष रूप से किये गये कुशल कर्म तथा वर्तमान जीवन में किये गये पादक ध्यान -- ये दो कारण जब-जब पूर्ण होते हैं, प्रयत्न के अनुपात में उस-उस अभिज्ञा की प्राप्ति होती है जिस-जिस ओर वह मन को झुकाता है।)

"यदि वह यह इच्छा करे कि मैं अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करूं –एक होकर भी अनेक हो जाऊं, अनेक होकर भी एक हो जाऊं, प्रकट हो जाऊं, अदृश्य हो जाऊं, दीवार के पार, प्राकार के पार, पर्वत के पार अनिरुद्ध चला जाऊं, जैसे आकाश में; पृथ्वी पर भी उतराना-डूबना करूं जैसे पानी में; पानी के भी ऊपर-ऊपर चलूं जैसे पृथ्वी पर; आकाश में भी पालथी मारकर जाऊं जैसे कोई पक्षी हो; इस प्रकार के ऋद्धि-मान, इस प्रकार के महाप्रतापी चंद्र-सूर्य को भी हाथ से छू लूं तथा ब्रह्मलोक तक भी सशरीर पहुँच जाऊं –तो वह उसे-उसे ही प्राप्त कर लेता है –चाहे जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे कि मैं अलौकिक ,विशुद्ध, दिव्य-श्रोत्र-धातु से दोनों प्रकार के शब्द सुनूं –दिव्य भी तथा मानुषी भी, दूर के भी, समीप के भी –तो वह उसे-उसे ही प्राप्त कर लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे –मैं दूसरे सत्त्वों के , दूसरे प्राणियों के चित्त को अपने चित्त से जान लूं –सराग-चित्त को सराग-चित्त जान लूं, राग-रहित चित्त को राग-रहित चित्त जान लूं, सद्वेष-चित्त को सद्वेष-चित्त जान लूं, द्वेष-रहित चित्त को द्वेष-रहित चित्त जान लूं; स-मोह चित्त को स-मोह चित्त जान लूं, वीतमोह-चित्त को वीतमोह-चित्त जान लूं; स्थिर-चित्त को स्थिर-चित्त जान लूं, चंचल-चित्त को चंचल-चित्त जान लूं; महापरिमाण (=महद्गत) चित्त को महापरिमाण-चित्त जान लूं, अ-महापरिमाण को अ-महापरिमाण जान लूं। स-उत्तर चित्त को स-उत्तर चित्त जान लूं। अनुत्तर-चित्त को अनुत्तर-चित्त जान

१ पालि के **'सति सतिआयतने'** का अर्थ 'जहां तक उसकी पहुँच हो' है (पहुँच – अपनी पारमी के अनुसार अर्थात अपने पूर्व जन्मों के हेतु तथा वर्तमान जीवन में अभिज्ञापादक ध्यान के अनुसार)।

लूं; एकाग्र-चित्त को एकाग्र-चित्त जान लूं; एकाग्रता-रहित चित्त को एकाग्रता-रहित चित्त जान लूं। विमुक्त-चित्त को विमुक्त-चित्त जान लूं, अविमुक्त-चित्त को अविमुक्त-चित्त जान लूं – तो वह उसे-उसे ही जान लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे –मैं अनेक प्रकार के पूर्व-जन्मों को याद करूं, एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म... सौ जन्म, हजार जन्म, लाख जन्म, अनेक संवर्त-कल्प, अनेक विवर्त-कल्प, मैं अमुक जगह था, यह मेरा नाम था, यह गोत्र था, यह आहार था, इस सुख-दुःख का अनुभव किया, इतनी आयु तक जीवित रहा; वहां से च्युत होकर अमुक जगह उत्पन्न हुआ, वहां भी मेरा यह नाम था, यह गोत्र था, यह वर्ण था, यह आहार था, इस सुख-दुःख का मैंने अनुभव किया, इतनी आयु तक जीवित रहाः वहां से च्युत होकर यहां उत्पन्न हुआ, इस प्रकार विवरण-सहित, उद्देश्य-सहित अनेक प्रकार के पूर्व-जन्मों का स्मरण करूं –तो वह उसे-उसे ही स्मरण कर लेता है –जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे –मैं अलौकिक ,दिव्य, विशुद्ध चक्षु से मरते-उत्पन्न होते, अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगति-प्राप्त, दुर्गति-प्राप्त सत्त्वों को जानूं –सत्त्वों के कर्मानुसार सत्त्वों की उत्पत्ति को अच्छी तरह जानूं – ये प्राणी कायिक दुष्कर्म से युक्त हैं, वाचिक दुष्कर्म से युक्त हैं, मानसिक दुष्कर्म से युक्त हैं, ये आर्य (=श्रेष्ठ) जनों के निंदक हैं, मिथ्या-दृष्टि वाले हैं, मिथ्या-दृष्टि-युक्त कर्म करने वाले हैं, वे शरीर न रहने पर, मरने के बाद दुर्गति में पड़कर, पतित होकर नरक में पैदा हुए; अथवा ये प्राणी कायिक सुचरित से युक्त हैं, वाचिक सुचरित से युक्त हैं, मानसिक सुचरित से युक्त हैं, श्रेष्ठजनों के निंदक नहीं हैं, सम्यक-दृष्टि वाले हैं, सम्यक-दृष्टि के अनुसार कर्म करने वाले हैं, वे शरीर न रहने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्ग लोक में उत्पन्न हुए –इस प्रकार मैं अलौकिक, दिव्य, विशुद्ध, चक्षु से मरते-उत्पन्न होते, अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगति-प्राप्त, दुर्गति-प्राप्त सत्त्वों को जानूं, सत्त्वों के कर्मानुसार सत्त्वों की उत्पत्ति को अच्छी तरह जानूं – तो वह उसे-उसे ही जान लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो।

"यदि वह इच्छा करे –आस्रवों का क्षय कर अनास्रव चित्त-विमुक्ति प्रज्ञा-विमुक्ति को, इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करूं – तो वह उसे-उसेही प्राप्त कर लेता है – जहां तक उसकी पहुँच हो।"

११. निमित्त सुत्त

१०३. "भिक्षुओ, श्रेष्ठतर चित्त की साधना में लगे हुए भिक्षु को समय-समय पर तीन बातों को मन में जगह देनी चाहिए – समय-समय पर समाधि-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए, समय-समय-पर प्रयत्न प्रग्रह--निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए तथा समय-समय पर उपेक्षा-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए।

"भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल समाधि-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त आलस्य की ओर झुक जाय। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल प्रयत्न प्रग्रह-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त उद्धतपन की ओर झुक जाय। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल उपेक्षा-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त आस्रवों के क्षय के लिए सम्यक रूप से समाधिस्थ न हो। क्योंकि भिक्षुओ, श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु समय-समय पर समाधि-निमित्त को मन में जगह देता है, समय-समय पर प्रयत्न-निमित्त को मन में जगह देता है, समय-समय पर उपेक्षा-निमित्त को मन में जगह देता है, इसलिए वह चित्त मृदु, कोमल हो जाता है, कमनीय हो जाता है, प्रभास्वर हो जाता है तथा टूटता नहीं है। वह आस्रवों का क्षय करने के लिए सम्यक प्रकार से समाधिस्थ होता है।

"भिक्षुओ, जैसे सुनार या सुनार का शागिर्द अंगीठी तैयार करता है, अंगीठी तैयार करके अंगीठी को लीपता है, अंगीठी को लीप कर संडासी से स्वर्ण लेकर उसे अंगीठी में रखता है, तब वह बीच-बीच में उसे तपाता है, बीच-बीच में उस पर पानी के छींटे देता है, बीच-बीच में वह परीक्षण करता है। भिक्षुओ, यदि वह सुनार या सुनार का शागिर्द उस स्वर्ण को एकदम तपाता ही रहे तो निश्चय से वह स्वर्ण जल जायगा। भिक्षुओ, यदि वह सुनार या सुनार का शागिर्द उस सोने पर निरंतर पानी के छींटे ही डालता रहे तो वह स्वर्ण ठंडा पड़ जायगा। भिक्षुओ, यदि वह सुनार या सुनार का शागिर्द उस स्वर्ण का परीक्षण ही करता रहे तो संभव है कि वह स्वर्ण अच्छी तरह से बने ही नहीं। क्योंकि भिक्षुओ, सुनार या सुनार का शागिर्द उस स्वर्ण को समय-समय पर तपाता है, समय-समय पर उस पर पानी के छींटे देता है, समय-समय पर उसका परीक्षण करता है, इसलिए वह स्वर्ण मृदु, कोमल तथा कमनीय होता है, प्रभास्वर होता है। वह टूटता नहीं है। वह काम में लाये जाने के योग्य होता है।

उससे जो-जो गहना बनाना हो, चाहे करधनी हो, चाहे कुंडल हो, चाहे कंठा हो, चाहे स्वर्ण-माला हो – वह जो कुछ बनाना चाहे उसके लिए उसका उपयोग कर सकता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, श्रेष्ठ-चित्त की साधना में लगे हुए भिक्षु को समय-समय पर तीन बातों को मन में जगह देनी चाहिए – समय-समय पर समाधि-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए, समय-समय पर प्रयत्न प्रग्रह-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए, समय-समय पर उपेक्षा-निमित्त को मन में जगह देनी चाहिए। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल समाधि-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि यह चित्त आलस्य की ओर झुक जाय। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल प्रयत्न प्रग्रह-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त उद्धतपन की ओर झुक जाय। भिक्षुओ, यदि श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु केवल उपेक्षा-निमित्त को ही मन में जगह देता है तो इसकी संभावना है कि वह चित्त आस्रवों के क्षय के लिए सम्यक रूप से समाधिस्थ न हो। क्योंकि भिक्षुओ, श्रेष्ठतर-चित्त की साधना में लगा हुआ भिक्षु समय-समय पर समाधि-निमित्त को मन में जगह देता है, समय-समय पर प्रयत्न प्रग्रह-निमित्त को मन में जगह देता है, समय-समय पर उपेक्षा-निमित्त को मन में जगह देता है, इसलिए वह चित्त मृदु, कोमल हो जाता है, कमनीय हो जाता है, प्रभास्वर हो जाता है तथा टूटता नहीं है। वह आस्रवों का क्षय करने के लिए सम्यक रूप से समाधिस्थ होता है। वह अभिज्ञा के द्वारा साक्षात करने योग्य जिस-जिस धर्म की ओर मन को झुकाता है, उसे-उसे ही प्राप्त कर लेता है – चाहे जहां तक उसकी पहुँच हो।

"वह यदि इच्छा करे कि मैं अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करूं... छह अभिज्ञाओं को जानूं... आस्रवों का क्षय कर... साक्षात कर, प्राप्त कर विहार करूं – उसे-उसे ही प्राप्त कर लेता है – चाहे जहां तक उसकी पहुँच हो।"

* * * * *

विषय-सूची

त्रिक-निपात (११-१८)

३. तृतीय पंचाशतक

(११) १. संबोधि वर्ग - - - - - - - - - - - - - - २६५
१. पूर्वसंबोध सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २६५
२. आस्वाद सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - - २६६
३. आस्वाद सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - २६६
४. श्रमण-ब्राह्मण सुत्त - - - - - - - - - - - - - २६७
५. रोदन सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २६७
६. अतृप्ति सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २६८
७. अरक्षित सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २६८
८. दूषित-चित्त सुत्त - - - - - - - - - - - - - - २६९
९. हेतु सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - - - - २६९
१०. हेतु सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - - २७०
(१२) २. अपाय (नरक) वर्ग - - - - - - - - - - - - २७२
१. नरकगामी सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २७२
२. दुर्लभ सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २७२
३. अपरिमेय सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २७२
४. आनेञ्ज सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २७३
५. असफलता-सफलता सुत्त - - - - - - - - - - - २७४
६. अनुलोम मार्ग सुत्त - - - - - - - - - - - - - २७६
७. कर्मांत सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २७६
८. शुचिता सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - - २७८
९. शुचिता सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - २७८
१०. मौन सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २८०
(१३) ३. कुसिनार वर्ग - - - - - - - - - - - - - - २८०
१. कुसिनार सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २८०
२. कलह सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २८२
३. गोतमक-चेतिय सुत्त - - - - - - - - - - - - २८३
४. भरण्डुकालाम सुत्त - - - - - - - - - - - - - २८३
५. हत्थक सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २८५
६. उच्छिष्ट सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २८६
७. अनुरुद्ध सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - - २८८

८. अनुरुद्ध सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - - - २८८
९. प्रतिच्छन्न सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २८९
१०. रेख सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २८९
(१४) ४. योद्धाजीव वर्ग - - - - - - - - - - - - - २९०
१. योद्धा सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २९०
२. परिषद सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २९२
३. मित्र सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २९२
४. उत्पाद सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २९२
५. के सक म्बल सुत्त- - - - - - - - - - - - - - - २९३
६. संपदा सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २९३
७. वृद्धि सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २९४
८. अदमनीय सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २९४
९. परिष्कृ त अश्व सुत्त - - - - - - - - - - - - - २९५
१०. श्रेष्ठ-अश्व सुत्त - - - - - - - - - - - - - - २९६
११. मोरनिवाप सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - २९७
१२. मोरनिवाप सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - २९८
१३. मोरनिवाप सुत्त (तृतीय) - - - - - - - - - - - २९८
(१५) ५. मंगल वर्ग - - - - - - - - - - - - - - २९८
१. अकु शल सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - २९८
२. सावद्य सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २९९
३. विषम सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २९९
४. अशुचि सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - २९९
५. मूलोच्छेद सुत्त (प्रथम) - - - - - - - - - - - - २९९
६. मूलोच्छेद सुत्त (द्वितीय) - - - - - - - - - - - ३००
७. मूलोच्छेद सुत्त (तृतीय) - - - - - - - - - - - ३००
८. मूलोच्छेद सुत्त (चतुर्थ) - - - - - - - - - - - - ३००
९. वंदना सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - - ३०१
१०. पूर्वाह्न सुत्त - - - - - - - - - - - - - - - ३०१
(१६) ६. अचेलक वर्ग - - - - - - - - - - - - - - ३०१
(१७) ७. क र्म पर्याय - - - - - - - - - - - - - - ३०४
(१८) ८. राग पर्याय - - - - - - - - - - - - - - ३०६

३. तृतीय पंचाशतक

(११) १. संबोधि वर्ग

१. पूर्वसंबोध सुत्त

१०४. भिक्षुओ, बोधि-प्राप्ति से पूर्व, जब मैं संबुद्ध नहीं था, जब मैं बोधिसत्व था, तब मेरे मन में यह जिज्ञासा पैदा हुई –"लोक में 'आस्वाद' क्या होता है? लोक में 'दुष्परिणाम' क्या होता है? लोक में 'विमुक्ति' (=निस्सरण) क्या है?" तब भिक्षुओ, मेरे मन में यह हुआ –लोक में जो किसी भी प्रत्यय के फलस्वरूप सुख, सौमनस्य पैदा होता है यही लोक में 'आस्वाद' है; लोक में जो अनित्यता है, जो दु:ख है, जो परिवर्तनशीलता (विपरिणामधर्मता) है, यही लोक में 'दुष्परिणाम' है; लोक में जो छंद (इच्छा)-राग का विनयन करना है, जो छंद-राग का प्रहाण है यही लोक में 'विमुक्ति' है।

"भिक्षुओ, मैंने जब तक इस लोक के 'आस्वाद' को 'आस्वाद' करके यथार्थ रूप से नहीं जाना, 'दुष्परिणाम' को 'दुष्परिणाम' करके यथार्थ रूप से नहीं जाना, 'निस्सरण' को 'निस्सरण' करके यथार्थ रूप से नहीं जाना, तब तक मैंने भिक्षुओ, इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक में –जहां श्रमण-ब्राह्मण रहते हैं तथा जहां देव-मनुष्य रहते हैं –यह नहीं कहा कि मुझे अनुत्तर सम्यक संबोधि प्राप्त हो गई। क्योंकि भिक्षुओ, अब मैंने लोक के 'आस्वाद' को 'आस्वाद' करके यथार्थ रूप से जान लिया, 'दुष्परिणाम' को 'दुष्परिणाम' करके यथार्थ रूप से

जान लिया, 'निस्सरण' को 'निस्सरण' करके यथार्थ रूप से जान लिया, इसलिए भिक्षुओ, मैंने इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक में –जहां श्रमण-ब्राह्मण रहते हैं तथा जहां देव-मनुष्य रहते हैं –यह कहा कि मुझे अनुत्तर सम्यक संबोधि प्राप्त हो गई, मुझे 'ज्ञान' हो गया, मुझे 'दृष्टि' उत्पन्न हो गई –'मेरी विमुक्ति अचल है, मेरा यह अंतिम जन्म है, मेरा अब पुनर्भव नहीं है।'"

२. आस्वाद सुत्त (प्रथम)

१०५. "भिक्षुओ, मैंने लोक में 'आस्वाद' की खोज की; लोक में जो 'आस्वाद' है उसे जाना और लोक में जितना 'आस्वाद' है उस सब को भी प्रज्ञा से भली प्रकार जाना। भिक्षुओ, मैंने लोक में 'दुष्परिणाम' की खोज की। लोक में जो 'दुष्परिणाम' है उस सब को भी प्रज्ञा से भली प्रकार जाना। भिक्षुओ, मैंने लोक में 'निस्सरण' (विमुक्ति) की खोज की। लोक में जो 'निस्सरण' है उस सब को भी प्रज्ञा से भली प्रकार जाना।

"भिक्षुओ, मैंने जब तक इस लोक के 'आस्वाद' को 'आस्वाद' करके यथार्थ रूप से नहीं जाना; 'दुष्परिणाम' को 'दुष्परिणाम' करके यथार्थ रूप से नहीं जाना, 'निस्सरण' को 'निस्सरण' करके यथार्थ रूप से नहीं जाना, तब तक मैंने भिक्षुओ, इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक में –जहां श्रमण-ब्राह्मण रहते हैं तथा जहां देव-मनुष्य रहते हैं –यह नहीं कहा कि मुझे अनुत्तर सम्यक संबोधि प्राप्त हो गई। क्योंकि मैंने भिक्षुओ, अब लोक के 'आस्वाद' को 'आस्वाद' करके यथार्थ रूप से जान लिया, 'दुष्परिणाम' को 'दुष्परिणाम' करके यथार्थ रूप से जान लिया, 'निस्सरण' को 'निस्सरण' करके यथार्थ रूप से जान लिया; इसलिए भिक्षुओ, मैंने इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक में –जहां श्रमण-ब्राह्मण रहते हैं तथा जहां देव-मनुष्य रहते हैं –यह कहा कि मुझे अनुत्तर सम्यक संबोधि प्राप्त हो गई, मुझे 'ज्ञान' हो गया, मुझे 'दृष्टि' उत्पन्न हो गई –मेरी विमुक्ति अचल है, मेरा यह अंतिम जन्म है, मेरा अब पुनर्भव नहीं है।"

३. आस्वाद सुत्त (द्वितीय)

१०६. "भिक्षुओ, यदि लोक में 'आस्वाद' न हो तो ये प्राणी संसार में आसक्त न हों। क्योंकि भिक्षुओ, लोक में 'आस्वाद' है, इसलिए प्राणी लोक में आसक्त होते हैं। भिक्षुओ, यदि लोक में 'दुष्परिणाम' न हो तो ये प्राणी संसार से विरक्त न हों। क्योंकि भिक्षुओ, लोक में 'दुष्परिणाम' है, इसलिए प्राणी लोक से विरक्त होते हैं। भिक्षुओ, यदि लोक में 'निस्सरण' न हो तो प्राणी लोक से विमुक्त न हों। क्योंकि भिक्षुओ, लोक में 'निस्सरण' है, इसीलिए प्राणी लोक से विमुक्त होते हैं।

"भिक्षुओ, जब तक प्राणी संसार के 'आस्वाद' को 'आस्वाद' करके यथार्थ रूप से न जान लेते, संसार के 'दुष्परिणाम' को 'दुष्परिणाम' करके यथार्थ रूप से न जान लेते, संसार के 'निस्सरण' को 'निस्सरण' करके यथार्थ रूप से न जान लेते, तब तक भिक्षुओ, प्राणी इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक से – जहां श्रमण-ब्राह्मण रहते हैं तथा जहां देव-मनुष्य रहते हैं – बाहर न निकलते, विसंयुक्त न होते, विप्रमुक्त न होते, बंधन-मुक्त चित्त से विहार न कर सकते। क्योंकि प्राणियों ने संसार के 'आस्वाद' को 'आस्वाद' करके यथार्थ रूप से जान लिया, संसार के 'दुष्परिणाम' को 'दुष्परिणाम' करके यथार्थ रूप से जान लिया, संसार के 'निस्सरण' को 'निस्सरण' करके यथार्थ रूप से जान लिया, इसीलिए भिक्षुओ, प्राणी इस स-देव, स-मार, स-ब्रह्म लोक से... बाहर निकलकर, विसंयुक्त होकर, विप्रमुक्त होकर, बंधन-मुक्त चित्त से विहार करते हैं।"

४. श्रमण-ब्राह्मण सुत्त

१०७. "भिक्षुओ, जो श्रमण या ब्राह्मण लोक के 'आस्वाद' को 'आस्वाद' करके, लोक के 'दुष्परिणाम' को 'दुष्परिणाम' करके, लोक के 'निस्सरण' (विमुक्ति) को 'निस्सरण' करके यथार्थ रूप से नहीं जानते, भिक्षुओ, न मैं उन श्रमणों की श्रमणों में गिनती करता हूं, न उन ब्राह्मणों की ब्राह्मणों में गिनती करता हूं, और न वे आयुष्मान इसी जीवन में 'श्रामण्य' वा 'ब्राह्मण्य' को साक्षात कर विहार करते हैं।

"भिक्षुओ, जो श्रमण या ब्राह्मण लोक के 'आस्वाद' को 'आस्वाद' करके, लोक के 'दुष्परिणाम' को 'दुष्परिणाम' करके, लोक के 'निस्सरण' को 'निस्सरण' करके यथार्थ रूप से जान लेते हैं, भिक्षुओ, मैं उन्हीं श्रमणों की 'श्रमणों' में गिनती करता हूं, उन्हीं ब्राह्मणों की 'ब्राह्मणों' में गिनती करता हूं; वे आयुष्मान इसी जीवन में 'श्रामण्य' वा 'ब्राह्मण्य' को साक्षात कर विहार करते हैं।"

५. रोदन सुत्त

१०८. "भिक्षुओ, यह जो 'गाना' है, यह आर्य-विनय के अनुसार 'रोना' ही है। भिक्षुओ, यह जो नाचना है, यह आर्य-विनय के अनुसार 'पागलपन' ही है। भिक्षुओ, यह जो देर तक दांत निकालकर हँसना है, यह आर्य-विनय के अनुसार 'बचपना' ही है। इसलिए भिक्षुओ, यह जो गाना है, यह सेतु ध्वंसनीय है, यह जो नाचना है, यह सेतु ध्वंसनीय है। धर्मप्रमुदित संत पुरुषों का मुस्कराना ही पर्याप्त है।"

६. अतृप्ति सुत्त

१०९. "भिक्षुओ, इन तीन बातों से तृप्ति नहीं होती। कौन-सी तीन बातों से?

"भिक्षुओ, सोने से तृप्ति नहीं होती; भिक्षुओ, सुरा-मेरय के पीने से तृप्ति नहीं होती; भिक्षुओ, मैथुन से तृप्ति नहीं होती। भिक्षुओ, इन तीन बातों का सेवन करने से तृप्ति नहीं होती।"

७. अरक्षित सुत्त

११०. एक समय अनाथपिण्डिक गृहपति भगवान के पास पहुँचा। पहुँच कर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान ने यह कहा –

"गृहपति! चित्त अरक्षित रहने से कायिक-कर्म भी अरक्षित रहते हैं, वाचिक-कर्म भी अरक्षित रहते हैं, मानसिक-कर्म भी अरक्षित रहते हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म अरक्षित रहते हैं, उसके काया, वाणी, मन के कर्म 'चूते' (रिसते, स्रावी – तृष्णा के कारण स्राव वाले) हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म 'चूते' हैं, उसके काया, वाणी तथा मन के कर्म 'सड़े' होते हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म 'सड़े' होते हैं, उसका मरना अच्छी तरह नहीं होता, उसकी कालक्रिया(मृत्यु) अच्छी तरह नहीं होती।

"गृहपति! जैसे यदि कूटागार (शिखर वाला घर) अच्छी तरह से आच्छादित न हो, तो शिखर भी अरक्षित रहता है, कड़ियां भी अरक्षित रहती हैं तथा दीवार भी अरक्षित रहती है। शिखर भी चूता है, कड़ियां भी चूती हैं, दीवार भी चूती है। शिखर भी सड़ जाता है, कड़ियां भी सड़ जाती हैं, दीवार भी सड़ जाती है। इसी प्रकार गृहपति! चित्त के अरक्षित रहने पर कायिक-कर्म भी अरक्षित रहता है... कालक्रिया अच्छी तरह नहीं होती।

"गृहपति! चित्त रक्षित रहने से कायिक-कर्म भी रक्षित रहते हैं, वाचिक-कर्म भी रक्षित रहते हैं, मानसिक-कर्म भी रक्षित रहते हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म रक्षित रहते हैं, उसके काया, वाणी तथा मन के कर्म 'चूते' नहीं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म 'चूते' नहीं, उसके काया, वाणी तथा मन के कर्म 'सड़ते' नहीं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म 'सड़ते' नहीं, उसका मरना अच्छी तरह होता है, उसकी कालक्रिया भी अच्छी तरह होती है।

"गृहपति! जैसे यदि कूटागार (शिखर-गृह) अच्छी तरह से आच्छादित हो, तो शिखर भी सुरक्षित रहता है, कड़ियां भी सुरक्षित रहती हैं तथा दीवार भी सुरक्षित रहती है। शिखर भी नहीं चूता, कड़ियां भी नहीं चूतीं, दीवार भी नहीं चूती। शिखर भी नहीं सड़ता, कड़ियां भी नहीं सड़तीं, दीवार भी नहीं सड़ती। इसी प्रकार गृहपति! चित्त के सुरक्षित रहने पर कायिक-कर्म भी सुरक्षित रहते हैं... कालक्रिया भी अच्छी तरह होती है।"

८. दूषित-चित्त सुत्त

१११. एक ओर बैठे अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान ने यह कहा – "गृहपति! चित्त के खराब हो जाने (द्वेषयुक्त हो जाने पर) पर काया, वाणी तथा मन के कर्म भी खराब हो जाते हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म खराब हो जाते हैं, उसका मरना भी अच्छा नहीं होता, उसकी मृत्यु भी अच्छी नहीं होती।

"गृहपति! जैसे यदि कूटागार अच्छी तरह आच्छादित न हो तो शिखर भी खराब हो जाता है, कड़ियां भी खराब हो जाती हैं, दीवार भी खराब हो जाती है; इसी प्रकार गृहपति! चित्त के खराब होने पर काया, वाणी तथा मन के कर्म खराब होते हैं। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म खराब हो जाते हैं, उसका मरना भी अच्छा नहीं होता, उसकी मृत्यु भी अच्छी नहीं होती।

"गृहपति! चित्त के खराब न होने पर (द्वेषयुक्त न होने पर) काया, वाणी तथा मन के कर्म भी खराब नहीं होते, उसका मरना भी अच्छा होता है, उसकी मृत्यु भी अच्छी होती है।

"जैसे गृहपति! कूटागार की छत अच्छी तरह से आच्छादित हो, तो शिखर भी खराब नहीं होता, कड़ियां भी खराब नहीं होतीं, दीवार भी खराब नहीं होती; इसी प्रकार गृहपति! चित्त के खराब न होने पर काया, वाणी तथा मन के कर्म भी खराब नहीं होते। जिसके काया, वाणी तथा मन के कर्म खराब नहीं होते, उसका मरना भी अच्छा होता है, उसकी मृत्यु भी अच्छी होती है।"

९. हेतु सुत्त (प्रथम)

११२. "भिक्षुओ! कर्मों की उत्पत्ति के तीन हेतु (=निदान) हैं। कौन-से तीन?

"लोभ कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है, द्वेष कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है तथा मोह कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है।

"भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में लोभ है, जो लोभ से उत्पन्न हुआ है, जिसका हेतु लोभ है, जिसकी उत्पत्ति लोभ से हुई है वह अकुशल कर्म है, वह सदोष कर्म है, उस कर्म का फल दुःख है, उस कर्म से कर्म का समुदय होता है, उस कर्म से कर्म का निरोध नहीं होता। भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में द्वेष है... जिसके मूल में मोह है, जो मोह से उत्पन्न हुआ है, जिसका हेतु मोह है, जिसकी उत्पत्ति मोह से हुई है वह अकुशल कर्म है, वह सदोष-कर्म है, उस कर्म का फल दुःख है, उस कर्म से कर्म का समुदय होता है, उस कर्म से कर्म का निरोध नहीं होता।

"भिक्षुओ, कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं।

"भिक्षुओ, कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं। कौन-से तीन?

"अलोभ कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है, अद्वेष कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है, अमोह कर्मों की उत्पत्ति का हेतु है।

"भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में अलोभ है, जो अलोभ से उत्पन्न हुआ है, जिसका हेतु अलोभ है, जिसकी उत्पत्ति अलोभ से हुई है वह कुशल कर्म है, वह निर्दोष कर्म है, उस कर्म का फल सुख है, उस कर्म से कर्म का निरोध होता है, उस कर्म से कर्म का समुदय नहीं होता। भिक्षुओ, जिस कर्म के मूल में अद्वेष है... जिस कर्म के मूल में अमोह है, जो अमोह से उत्पन्न हुआ है, जिसका हेतु अमोह है, जिसकी उत्पत्ति अमोह से हुई है, वह कुशल-कर्म है, वह निर्दोष-कर्म है, उस कर्म का फल सुख है, उस कर्म से कर्म का निरोध होता है, उस कर्म से कर्म का समुदय नहीं होता। भिक्षुओ! कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं।"

१०. हेतु सुत्त (द्वितीय)

११३. "भिक्षुओ! कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, भूतकाल के छंद-राग-स्थानीय (छंद-राग के जो कारण हैं उन) विषयों को लेकर छंद (=इच्छा) उत्पन्न होता है; भिक्षुओ! भविष्य के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद उत्पन्न होता है; भिक्षुओ, वर्तमान के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद उत्पन्न होता है।

"भिक्षुओ! भूतकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद कैसे उत्पन्न होता है? भूतकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर चित्त में वितर्क पैदा होते हैं, चित्त में विचार पैदा होते हैं। उनसे छंद की उत्पत्ति होती है। छंद (=इच्छा) उत्पन्न होने पर व्यक्ति उन विषयों से संयुक्त हो जाता है। भिक्षुओ! यह जो सराग चित्त है, इसे ही मैं संयोजन कहता हूं। इसी प्रकार भिक्षुओ! भूतकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद उत्पन्न होता है।

"और भिक्षुओ! भविष्य कालके छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद कैसे उत्पन्न होता है? भविष्य कालके छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर चित्त में वितर्क पैदा होते हैं, विचार पैदा होते हैं। उनसे छंद की उत्पत्ति होती है, छंद उत्पन्न होने पर व्यक्ति उन विषयों से संयुक्त हो जाता है। भिक्षुओ! यह जो सराग चित्त है, इसे ही मैं संयोजन कहता हूं। इसी प्रकार भिक्षुओ! भविष्य काल के छंद-राग-स्थानीयविषयों को लेकर छंदउत्पन्न होता है।

"और भिक्षुओ! वर्तमान के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद कैसे उत्पन्न होता है? वर्तमान कालके छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर चित्त में वितर्क पैदा होते हैं, विचार पैदा होते हैं। उनसे छंद की उत्पत्ति होती है। छंद उत्पन्न होने पर व्यक्ति उन विषयों से संयुक्त हो जाता है। भिक्षुओ! यह जो सराग चित्त है, इसे ही मैं संयोजन कहता हूं। इसी प्रकार भिक्षुओ, वर्तमान के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद उत्पन्न होता है। भिक्षुओ! कर्मों की उत्पत्ति के ये तीन हेतु हैं।

"भिक्षुओ! कर्मों की उत्पत्तिके ये तीन हेतु हैं। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, भूतकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद उत्पन्न नहीं होता। भिक्षुओ! भविष्य के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद उत्पन्न नहीं होता। भिक्षुओ! वर्तमान के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद उत्पन्न नहीं होता।

"भिक्षुओ, भूतकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद कैसे उत्पन्न नहीं होता?

"भिक्षुओ, वह भूतकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों का भावी फल अच्छी तरह जानता है, भावी फलजानकर उनसे पृथक होता है, पृथक होकर, चित्त से हटाकर,प्रज्ञा से बींध करदेखता है। इस प्रकार भिक्षुओ, भूतकालके छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंदउत्पन्न नहीं होता।

"और भिक्षुओ, भविष्य कालके छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद कैसे उत्पन्न नहीं होता?

"भिक्षुओ, वह भविष्यकालके छंद-राग-स्थानीय विषयों का भावी फल अच्छी तरह जानता है, भावी फलजानकर उनसे पृथक होता है, पृथक होकर, चित्त से हटा कर,प्रज्ञा से बींध करदेखता है। इस प्रकारभिक्षुओ, भविष्यकाल के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंदउत्पन्न नहीं होता।

"और भिक्षुओ, वर्तमान के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंद कैसे उत्पन्न नहीं होता?

"भिक्षुओ, वह वर्तमान कालके छंद-राग-स्थानीय विषयों का भावी फल अच्छी तरह जानता है, भावी फलजानकर उनसे पृथक होता है, पृथक होकर, चित्त से हटाकर, प्रज्ञा से बींध कर देखता है। इस प्रकार भिक्षुओ! वर्तमान के छंद-राग-स्थानीय विषयों को लेकर छंदउत्पन्न नहीं होता।

"भिक्षुओ, कर्मों की उत्पत्तिके ये तीन हेतु हैं।"

* * * * *

(१२) २. अपाय (नरक) वर्ग

१. नरक गामी सुत्त

११४. "भिक्षुओ, इन (पाप-धर्मों) को न छोड़ने वाले तीन जन अपायगामी हैं, नरक गामी हैं। कौन-से तीन?

"जो अब्रह्मचारी होकर ब्रह्मचारी का स्वांग भरता है, जो परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का आचरण करने वाले शुद्ध ब्रह्मचारी पर झूठा दोष लगाता है, तथा जिसका ऐसा मत होता है या ऐसी दृष्टि होती है कि, 'कामभोगों में दोष नहीं है', सो वह कामभोगों में निःसंकोच पड़ता है। भिक्षुओ, इन (पाप-धर्मों) को न छोड़ने वाले तीन जन अपायगामी हैं, नरक गामी हैं।"

२. दुर्लभ सुत्त

११५. "भिक्षुओ, संसार में इन तीन का प्रादुर्भाव दुर्लभ है। किन तीन का?

"भिक्षुओ, संसार में तथागत अर्हत सम्यक संबुद्ध का प्रादुर्भाव दुर्लभ है। संसार में तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म के उपदेष्टा का प्रादुर्भाव दुर्लभ है। संसार में कृतज्ञ, कृतवेदी का प्रादुर्भाव दुर्लभ है।

"भिक्षुओ, संसार में इन तीन का प्रादुर्भाव दुर्लभ है।"

३. अपरिमेय सुत्त

११६. "भिक्षुओ, संसार में तीन प्रकार के लोग हैं। कौन-से तीन?

"आसानी से मापे जा सकने योग्य, कठिनाई से मापे जा सकने योग्य, न मापे जा सकने योग्य।

"भिक्षुओ, आसानी से मापा जा सकने वाला व्यक्ति कैसा होता है?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति होता है उद्धत, मानी, चपल, मुखर, असंयतभाषी, मूढ़, असंप्रज्ञानी, असमाहित, भ्रांतचित्त, असंयत-इंद्रिय। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति आसानी से मापा जा सकने वाला व्यक्ति कहलाता है।

"भिक्षुओ, कठिनाई से मापा जा सकने वाला व्यक्ति कैसा होता है?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति होता है अनुद्धत, अमानी, अचपल, अमुखर, संयत-भाषी, अमूढ़, संप्रज्ञानी, समाहित, अभ्रांत-चित्त, संयत-इंद्रिय। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति कठिनाई से मापा जा सकने वाला व्यक्ति होता है।

"भिक्षुओ, न मापे जा सकने वाला व्यक्ति कैसा होता है?

"यहां, भिक्षुओ, एक भिक्षु अर्हत होता है, क्षीणास्रव होता है। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति न मापा जा सकने वाला व्यक्ति होता है। भिक्षुओ, संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं।"

४. आनेञ्ज सुत्त

११७. "भिक्षुओ, संसार में तीन तरह के लोग हैं? कौन-से तीन?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति सब रूप-संज्ञाओं को पार कर, प्रतिघ-संज्ञाओं को अस्त कर, नानत्व-संज्ञा को मन से निकाल, 'आकाश अनंत है' करके आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहरता है। वह उसका आनंद लेता है, उसे चाहता है और उससे सुखी होता है। उस ध्यान में स्थित रहकर, उसी में लगा रहकर, उसी में प्रायः विहार करते रहकर, उस ध्यानावस्था को प्राप्त वह जब मरता है, तब वह आकाशानन्त्यायतन के देवताओं के साथ उत्पन्न होता है। भिक्षुओ, आकाशानन्त्यायतन के देवताओं की बीस हजार कल्प आयु होती है। सामान्य पृथग्जन आयु पर्यंत रहकर, जब तक उन देवताओं की आयु है उसे बिताकर नरक को भी जा सकता है, पशु-योनि में भी उत्पन्न हो सकता है, प्रेत-योनि में भी उत्पन्न हो सकता है। लेकिन जो भगवान का श्रावक है वह वहां आयु पर्यंत रहकर, जितनी उन देवताओं की आयु होती है, उतनी बिताकर उसी भव में परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है। भिक्षुओ, गति तथा उत्पत्ति के बारे में यह विशेषता है, यह खास बात है, यह भेद है ज्ञानी आर्य श्रावक तथा अज्ञानी पृथग्जन में।

"फिर भिक्षुओ, एक व्यक्ति सब तरह से आकाशानन्त्यायतन को पार कर 'विज्ञान अनंत है' करके विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहरता है। वह उसका आनंद लेता है, उसे चाहता है और उससे सुखी होता है। उस ध्यान में स्थित रहकर, उसी में लगा रहकर, उसी में प्रायः विहार करते रहकर, उस ध्यानावस्था को प्राप्त वह जब मरता है तब वह विज्ञानानन्त्यायतन के देवताओं के साथ उत्पन्न होता है। भिक्षुओ, विज्ञानानन्त्यायतन के देवताओं की चालीस हजार कल्प की आयु होती है। सामान्य पृथग्जन आयु पर्यंत रहकर, जब तक उन देवताओं की आयु है उसे बिताकर नरक को भी जा सकता है, पशु-योनि में भी उत्पन्न हो सकता है, प्रेत-योनि में भी उत्पन्न हो सकता है। लेकिन जो

भगवान का श्रावक है वह वहां आयु पर्यंत रहकर जितनी उन देवताओं की आयु होती है उतनी बिताकर उसी भव में परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है। भिक्षुओ, गति तथा उत्पत्ति के बारे में यह विशेषता है, यह खास बात है, यह भेद है, ज्ञानी आर्य श्रावक तथा अज्ञानी पृथग्जन में।

"फिर भिक्षुओ, एक व्यक्ति सब तरह से विज्ञानानन्त्यायतन को पार कर 'कुछ नहीं है' करके आकिञ्चन्ययतन को प्राप्त कर विहार करता है। वह उसका आनंद लेता है, उसे चाहता है और उससे सुखी होता है। उस ध्यान में स्थित रह कर, उसी में लगा रहकर, उसी में प्रायः विहार करते रहकर, उस ध्यानावस्था को प्राप्त वह जब मरता है तब वह आकिञ्चन्यायतन के देवताओं के साथ उत्पन्न होता है। भिक्षुओ, आकिञ्चन्यायतन के देवताओं की साठ हजार कल्प की आयु होती है। सामान्य पृथग्जन आयु पर्यंत रहकर, जब तक उन देवताओं की आयु है, उसे बिताकर नरक को भी जा सकता है, पशु-योनि में भी उत्पन्न हो सकता है, प्रेत-योनि में भी उत्पन्न हो सकता है। लेकिन जो भगवान का श्रावक है वह वहां आयु पर्यंत रहकर, जितनी उन देवताओं की आयु होती है उतनी बिताकर उसी भव में परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है। भिक्षुओ, गति तथा उत्पत्ति के बारे में यह विशेषता है, यह खास बात है, यह भेद है ज्ञानी आर्य श्रावक तथा अज्ञानी पृथग्जन में।

"भिक्षुओ, संसार में ये तीन प्रकार के लोग हैं।"

५. असफलता-सफलता[1] सुत्त

११८. "भिक्षुओ, ये तीन असफलताएं हैं। कौन-सी तीन?

"शील पालन में असफल होना, चित्त (समाधि) की प्राप्ति में असफल होना, दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में असफल होना।

"भिक्षुओ, शील पालन में असफल होना किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति प्राणी-हिंसा करता है, चोरी करता है, कामभोग संबंधी मिथ्याचार करता है, झूठ बोलता है, चुगली खाता है, कठोर बोलता है, व्यर्थ बोलता है। भिक्षुओ, इसे शील पालन में असफल होना कहते हैं।

---

१ पालि **'विपत्ति'** हिन्दी **'विपत्ति'** का पर्याय नहीं है। हिन्दी **'विपत्ति'** का अर्थ 'संकट' 'नाश' 'आफत' आदि है। पालि **'विपत्ति'** का अर्थ 'असफलता' है। पालि **'सील विपत्ति'** का अर्थ 'शील पालन में असफल होना' है। उसी तरह पालि 'सम्पदा' का अर्थ हिन्दी 'संपदा' नहीं है। हिन्दी **'संपदा'** का अर्थ 'धनसंपत्ति' 'ऐश्वर्य' आदि है। पालि **'सम्पदा'** का अर्थ 'सफलता' है। पालि **'सील सम्पदा'** का अर्थ 'शील पालन में सफल होना' है।

'विपत्ति' तथा **'सम्पदा'** पालि वाङ्मय में पारिभाषिक शब्द हैं।

"भिक्षुओ, चित्त (समाधि) की प्राप्ति में असफल होना किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति लोभी होता है, क्रोधी होता है। भिक्षुओ, इसे चित्त (समाधि) की प्राप्ति में असफल होना कहते हैं।

"भिक्षुओ, दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में असफल होना किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति मिथ्या-दृष्टि वाला होता है, विपरीत-मति (विपरीत दर्शन वाला)-दान का, यज्ञ का, आहुति का, सुकृत-दुष्कृत कर्मों का फल नहीं, यह लोक नहीं, परलोक नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, च्युत होकर उत्पन्न होने वाले प्राणी नहीं, संसार में कोई सन्मार्ग-गामी, सुपथ-गामी श्रमण-ब्राह्मण नहीं जो इस लोक तथा परलोक को स्वयं जानकर साक्षात कर उसकी बात करते हों – वह ऐसा मानने वाला होता है। भिक्षुओ, इसे दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में असफल होना कहते हैं।

"भिक्षुओ, शील पालन में असफल होने के कारण प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा होते हैं, अथवा चित्त (समाधि) की प्राप्ति में असफल होने के कारण प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा होते हैं अथवा दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में असफल होने के कारण प्राणी, शरीर के न रहने पर, मरने के बाद अपायगति, दुर्गति में पड़कर नरक में पैदा होते हैं। भिक्षुओ, ये तीन असफलताएं हैं।

"भिक्षुओ, ये तीन सफलताएं हैं? कौन-सी तीन?

"शील पालन में सफल होना, चित्त (समाधि) की प्राप्ति में सफल होना तथा दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में सफल होना।

"भिक्षुओ, शील पालन में सफल होना क्या है?

"यहां, भिक्षुओ! एक व्यक्ति प्राणी-हिंसा से विरत होता है, चोरी से विरत होता है, कामभोग संबंधी मिथ्याचार से विरत होता है, झूठ बोलने से विरत होता है, चुगली खाने से विरत होता है, कठोर बोलने से विरत रहता है तथा व्यर्थ बोलने से विरत रहता है। भिक्षुओ, इसे शील पालन में सफल कहते हैं।

"और भिक्षुओ! चित्त (समाधि) की प्राप्ति में सफल होना क्या है?

"यहां, भिक्षुओ! एक व्यक्ति अलोभी होता है, अक्रोधी होता है। भिक्षुओ, इसे चित्त (समाधि) की प्राप्ति में सफल होना कहते हैं।

"और भिक्षुओ! दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में सफल होना किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ! एक व्यक्ति सम्यक-दृष्टि वाला होता है, सीधी-समझ वाला –दान का, यज्ञ का, आहुति, सुकृत-दुष्कृत कर्मों का फल-विपाक है, यह

लोक है, परलोक है, माता है, पिता है, च्युत होकर उत्पन्न होने वाले प्राणी हैं, लोक में सन्मार्ग-गामी, सुपथ-गामी, श्रमण-ब्राह्मण हैं जो इस लोक तथा परलोक को स्वयं जानकर, साक्षात कर उनकी बात करते हैं –वह ऐसा मानता है। भिक्षुओ! इसे दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में सफल होना कहते हैं।

"भिक्षुओ, शील पालन में सफल होने के कारण प्राणी शरीर के न रहने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्गलोक में जन्म ग्रहण करते हैं या भिक्षुओ, चित्त (समाधि) की प्राप्ति में सफल होने के कारण प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्गलोक में जन्म ग्रहण करते हैं अथवा भिक्षुओ, दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में सफल होने के कारण प्राणी शरीर छूटने पर, मरने के बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्गलोक में जन्म ग्रहण करते हैं।

"भिक्षुओ, ये तीन सफलताएं हैं।"

६. अनुलोम मार्ग सुत्त

११९. "भिक्षुओ, तीन असफलताएं हैं। कौन-सी तीन?

"शील पालन में असफल होना, चित्त (समाधि) की प्राप्ति में असफल होना, दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में असफल होना... (पूर्वानुसार)

"भिक्षुओ, जैसे ऊपर फेंका हुआ पासा जहां-जहां भी गिरता है, निश्चित ही ठीक गिरकर प्रतिष्ठित हो जाता है, इसी प्रकार भिक्षुओ, शील पालन में असफल होने के कारण प्राणी... में पैदा होते हैं (नरक में गिरना निश्चित है), अथवा चित्त (समाधि) की प्राप्ति में असफल होने के कारण... पैदा होते हैं अथवा दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में असफल होने के कारण... पैदा होते हैं। भिक्षुओ, ये तीन असफलताएं हैं।

"भिक्षुओ, ये तीन सफलताएं हैं? कौन-सी तीन?

"शील पालन में सफल होना, चित्त (समाधि) की प्राप्ति में सफल होना, दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में सफल होना।

"भिक्षुओ, जैसे ऊपर फेंका हुआ पासा जहां-जहां भी गिरता है, ठीक ही गिरता है, इसी प्रकार भिक्षुओ, शील पालन में सफल होने के कारण प्राणी... जन्म ग्रहण करते हैं, अथवा चित्त (समाधि) की प्राप्ति में सफल होने के कारण प्राणी... जन्म ग्रहण करते हैं, अथवा दृष्टि (प्रज्ञा) के अधिगम में सफल होने के कारण प्राणी... जन्म ग्रहण करते हैं। भिक्षुओ, ये तीन सफलताएं हैं।"

७. कर्मांत सुत्त

१२०. "भिक्षुओ, ये तीन असफलताएं हैं। कौन-सी तीन?

"कर्मांत (सम्यक कर्म) करने में असफल होना, आजीव (सम्यक आजीविका) प्राप्त करने में असफल होना, दृष्टि (सम्यक दृष्टि) के अधिगम में असफल होना।

"भिक्षुओ, कर्मांत (सम्यक कर्म) करने में असफल होना किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति प्राणी-हिंसा करता है... व्यर्थ बोलता है। भिक्षुओ, इसे कर्मांत करने में असफल होना कहते हैं।

"और भिक्षुओ, आजीव प्राप्त करने में असफल होना किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति मिथ्या-जीवी होता है, मिथ्या-आजीविका से जीविका चलाता है। भिक्षुओ, इसे आजीव प्राप्त करने में असफल होना कहते हैं।

"और भिक्षुओ, दृष्टि के अधिगम में असफल होना किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति मिथ्या-दृष्टि वाला, विपरीत-मति वाला होता है – दान का, यज्ञ का... जो इस लोक तथा परलोक को स्वयं जानकर, साक्षात कर उनकी बात करते हैं – ऐसा मानने वाला होता है। भिक्षुओ! इसे दृष्टि के अधिगम में असफल होना कहते हैं। भिक्षुओ, ये तीन असफलताएं हैं।

"भिक्षुओ, ये तीन सफलताएं हैं। कौन-सी तीन?

"कर्मांत करने में सफल होना, आजीव की प्राप्ति में सफल होना, दृष्टि के अधिगम में सफल होना।

"भिक्षुओ, कर्मांत करने में सफल होना क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति प्राणी-हिंसा से विरत रहता है...व्यर्थ बोलने से विरत रहता है। भिक्षुओ, इसे कर्मांत करने में सफल होना कहते हैं।

"और भिक्षुओ, आजीव की प्राप्ति में सफल होना किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति सम्यक जीवी होता है, वह सम्यक आजीविका से जीविका चलाता है। भिक्षुओ, इसे आजीव की प्राप्ति में सफल होना कहते हैं।

"और भिक्षुओ, दृष्टि के अधिगम में सफल होना किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ, एक व्यक्ति सम्यक-दृष्टि वाला होता है... अविपरीत-दर्शी – दान का...जो इस लोक तथा परलोक को स्वयं जानकर, साक्षात कर उनकी बात करते हैं – ऐसा मानने वाला होता है। भिक्षुओ, इसे दृष्टि के अधिगम में सफल होना कहते हैं। भिक्षुओ, ये तीन सफलताएं हैं।"

८. शुचिता सुत्त (प्रथम)

१२१. "भिक्षुओ, ये तीन शुचिताएं हैं। कौन-सी तीन?

"काया की शुचिता, वाणी की शुचिता, मन की शुचिता।

"भिक्षुओ, काया की शुचिता किसे कहते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति प्राणी-हिंसा से विरत रहता है, चोरी से विरत रहता है। कामभोग संबंधी मिथ्याचार से विरत रहता है। भिक्षुओ, यह काया की शुचिता है।

"और भिक्षुओ, वाणी की शुचिता क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति झूठ बोलने से विरत रहता है... चुगली खाने से विरत रहता है, कठोर बोलने से विरत रहता है तथा व्यर्थ बोलने से विरत रहता है। भिक्षुओ, इसे वाणी की शुचिता कहते हैं।

"और भिक्षुओ, मन की शुचिता क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, एक व्यक्ति निर्लोभी होता है, अक्रोधी होता है तथा सम्यक-दृष्टिवाला होता है। भिक्षुओ, यह मन की शुचिता है। भिक्षुओ, ये तीन शुचिताएं हैं।"

९. शुचिता सुत्त (द्वितीय)

१२२. "भिक्षुओ, ये तीन शुचिताएं हैं। कौन-सी तीन?

"काया की शुचिता, वाणी की शुचिता, मन की शुचिता।

"और भिक्षुओ, काया की शुचिता क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु प्राणी-हिंसा से विरत होता है, चोरी से विरत होता है, अब्रह्मचर्य से विरत होता है। भिक्षुओ, यह काया की शुचिता है।

"और भिक्षुओ, वाणी की शुचिता क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु झूठ से विरत होता है, चुगली खाने से विरत होता है, कठोर बोलने से विरत होता है तथा व्यर्थ बोलने से विरत होता है। भिक्षुओ, यह वाणी की शुचिता है।

"और भिक्षुओ, मन की शुचिता क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अपने भीतर कामच्छंद (कामुकता) के विद्यमान होने पर 'मेरे भीतर कामच्छंद है', यह भली प्रकार जानता है। उसमें कामच्छंद नहीं होने पर 'मेरे भीतर कामच्छंद नहीं है', यह भली प्रकार जानता है। जिस तरह अनुत्पन्न कामच्छंद की उत्पत्ति होती है –उसे भली प्रकार जानता है। जिस

तरह उत्पन्न कामच्छंद का प्रहाण होता है – उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह प्रहीण कामच्छंद की भविष्य मे उत्पत्ति नहीं होती है – उसे भली प्रकार जानता है।

“अपने भीतर व्यापाद (द्वेष) विद्यमान होने पर ‘मेरे भीतर द्वेष है’, यह भली प्रकार जानता है। भीतर द्वेष नहीं होने पर ‘मेरे भीतर द्वेष नहीं है’, यह भली प्रकार जानता है। जिस तरह अनुत्पन्न द्वेष की उत्पत्ति होती है – उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह उत्पन्न द्वेष का प्रहाण होता है – उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह प्रहीण हुआ द्वेष फिर नहीं उत्पन्न होता है – उसे भली प्रकार जानता है।

“अपने भीतर आलस्य (=स्त्यान-मृद्ध) विद्यमान होने पर ‘मेरे भीतर आलस्य है’, यह भली प्रकार जानता है। उसमें आलस्य नहीं होने पर ‘मेरे भीतर आलस्य नहीं है’, यह भली प्रकार जानता है। जिस तरह अनुत्पन्न आलस्य की उत्पत्ति होती है – उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह उत्पन्न आलस्य का प्रहाण होता है – उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह प्रहीण हुआ आलस्य भविष्य में उत्पन्न नहीं होता है – उसे भली प्रकार जानता है।

“अपने भीतर उद्धतपन तथा पश्चात्ताप (औद्धत्य-कौकृत्य) विद्यमान होने पर ‘मेरे भीतर उद्धतपन तथा पश्चात्ताप है’, यह भली प्रकार जानता है। उसमे उद्धतपन तथा पश्चात्ताप नहीं होने पर ‘उद्धतपन तथा पश्चात्ताप नहीं है’ – यह भली प्रकार जानता है। जिस तरह अनुत्पन्न उद्धतपन तथा पश्चात्ताप की उत्पत्ति होती है – उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह उत्पन्न उद्धतपन तथा पश्चात्ताप का प्रहाण होता है – उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह प्रहीण हुआ उद्धतपन तथा पश्चात्ताप भविष्य में उत्पन्न नहीं होता है – उसे भली प्रकार जानता है।

“अपने भीतर संशय (विचिकित्सा) विद्यमान होने पर ‘मेरे भीतर संशय है’, यह भली प्रकार जानता है। भीतर संशय नहीं होने पर ‘मेरे भीतर संशय नहीं है’, यह भली प्रकार जानता है। जिस तरह अनुत्पन्न संशय की उत्पत्ति होती है – उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह उत्पन्न संशय का प्रहाण होता है – उसे भली प्रकार जानता है। जिस तरह प्रहीण संशय भविष्य में उत्पन्न नहीं होता है – उसे भली प्रकार जानता है। भिक्षुओ, यह मन की शुचिता है। भिक्षुओ, ये तीन शुचिताएं हैं।”

“कायसुचिं वचीसुचिं, चेतोसुचिं अनासवं।
सुचिं सोचेय्यसम्पन्नं, आहु निन्हातपापक ”न्ति॥

[“जिसका काय (-कर्म) पवित्र है, वाणी पवित्र है तथा मन पवित्र है ऐसे पवित्र शुचि-भाव-संपन्न अनास्रव को पाप से स्वच्छ हुआ कहते हैं।”]

१०. मौन सुत्त

१२३. “भिक्षुओ ‘मौन’ तीन प्रकार का होता है। कौन-से तीन प्रकार का? काया का मौन, वाणी का मौन, मन का मौन। भिक्षुओ, काया का ‘मौन’ कैसा होता है?

“भिक्षुओ, भिक्षु प्राणी-हिंसा से विरत होता है, चोरी से विरत होता है, कामभोग संबंधी मिथ्याचार से विरत होता है। भिक्षुओ, यह काया का ‘मौन’ कहलाता है।

“और भिक्षुओ, वाणी का मौन कैसा होता है?

“यहां, भिक्षुओ, भिक्षु झूठ बोलने से विरत होता है, चुगली खाने से विरत होता है, कठोर बोलने से विरत होता है, व्यर्थ बोलने से विरत होता है। भिक्षुओ, यह वाणी का ‘मौन’ कहलाता है।

“और भिक्षुओ, मन का ‘मौन’ कैसा होता है?

“यहां, भिक्षुओ, भिक्षु आस्रवों का क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में अपने आप जानकर, साक्षात कर, प्राप्तकर विहार करता है। भिक्षुओ, यह मन का ‘मौन’ कहलाता है।

“भिक्षुओ, ये तीन ‘मौन’ हैं।”

“कायमुनिं वचीमुनिं, चेतोमुनिं अनासवं।
मुनिं मोनेय्यसम्पन्नं, आहु सब्बप्पहायिन”न्ति॥

[“जिसकी काया ‘मौन’ है, जिसकी वाणी ‘मौन’ है, जिसका चित्त ‘मौन’ है – ऐसे मौन-युक्त, सर्वत्यागी अनास्रव जन को ‘मुनि’ कहते हैं।”]

* * * * *

(१३) ३. कुसिनार वर्ग

१. कुसिनार सुत्त

१२४. एक समय भगवान कुशीनारा में बलिहरण नाम के वन-खंड में विहार करते थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया –

“भिक्षुओ!”

"भदंत!" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, कोई एक भिक्षु किसी एक गांव या निगम के आश्रय में रहकर विहार करता है। कोई गृहस्थ या गृहस्थ-पुत्र आकर उसे अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित करता है। भिक्षुओ! इच्छा करने वाला भिक्षु उसे स्वीकार कर लेता है। उस रात के बीत जाने पर, पूर्वाह्न समय होने पर, (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले, वह उस गृहस्थ वा गृहस्थ-पुत्र के घर पहुँचता है। जाकर बिछे आसन पर बैठता है। वह गृहपति वा गृहपति-पुत्र उस भिक्षु को बढ़िया खाना, बढ़िया भोजन अपने हाथ से परोसता है। उसके मन में होता है –अच्छा है यह गृहपति वा गृहपति-पुत्र बढ़िया खाना, बढ़िया भोजन मुझे अपने हाथ से परोसता है। उसके मन में यह भी होता है –क्या अच्छा हो यदि यह गृहपति वा गृहपति-पुत्र भविष्य में भी बढ़िया खाना, बढ़िया भोजन मुझे अपने हाथ से परोसे। उस भोजन में आसक्त होकर, मूर्च्छित होकर, वश में होकर, आदीनव (खतरा, बुरा परिणाम) न देखता हुआ, उससे विमुक्त होने की प्रज्ञा से विहीन हो वह उसे ग्रहण करता है। उसके मन में काम-वितर्क भी उठते हैं, व्यापाद-वितर्क भी उठते हैं तथा विहिंसा-वितर्क भी उठते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकार के भिक्षु को दिये गये दान का मैं 'महान-फल' नहीं कहता। यह किसलिए? क्योंकि, भिक्षुओ, वह भिक्षु 'प्रमत्त' (प्रमादी) रहकर विहार करता है।

"इसी प्रसंग में, भिक्षुओ, कोई एक भिक्षु किसी एक गांव या निगम के आश्रय में रहकर विहार करता है। कोई गृहस्थ या गृहस्थ-पुत्र आकर उसे अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित करता है। भिक्षुओ! इच्छा करने वाला भिक्षु उसे स्वीकार कर लेता है। उस रात के बीत जाने पर, पूर्वाह्न समय होने पर, (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले वह उस गृहस्थ वा गृहस्थ-पुत्र के घर पहुँचता है। जाकर बिछे आसन पर बैठता है। गृहपति वा गृहपति-पुत्र उस भिक्षु को बढ़िया खाना, बढ़िया भोजन अपने हाथ से परोसता है। उसके मन में यह नहीं होता – अच्छा है यह गृहपति या गृहपति-पुत्र बढ़िया-खाना, बढ़िया-भोजन मुझे अपने हाथ से परोसता है। उसके मन में यह भी नहीं होता है – क्या अच्छा हो यदि यह गृहपति या गृहपति-पुत्र भविष्य में भी बढ़िया-खाना, बढ़िया-भोजन मुझे अपने हाथ से परोसे। उस भोजन में आसक्त न हो, अमूर्च्छित रह कर, वशीभूत न हो, आदीनव देखता हुआ, उससे विमुक्त होने की प्रज्ञा से युक्त हो वह उसे ग्रहण करता है। उसके मन में निष्क्रमण-वितर्क उठते हैं, अद्वेष-संबंधी वितर्क उठते हैं, अविहिंसा-संबंधी

वितर्क उठते हैं। भिक्षुओ, इस प्रकारके भिक्षु को दिये गये दान का मैं 'महान फल' कहता हूं। यह किसलिए? भिक्षुओ, भिक्षु अप्रमादी रह विहार करता है।"

२. कलह सुत्त

१२५. "भिक्षुओ, जिस दिशा में भिक्षु आपस में झगड़ते हैं, कलह करते हैं, विवाद करते हैं, परस्पर एक दूसरे को शब्दशूल से बींधते हुए विचरते हैं, भिक्षुओ, उस दिशा में जाने की तो बात ही क्या, उस दिशा की ओर ध्यान देने से भी मुझे सुख नहीं होता। उनके बारे में मेरे मन में यह निश्चय हो जाता है कि उन आयुष्मानों ने तीन बातों को छोड़ दिया होगा और दूसरी तीन बातों को ही बढ़ाया होगा।

"किन तीन बातों को छोड़ दिया होगा? नैष्क्रम्य-वितर्क, अव्यापाद-वितर्क, अविहिंसा-वितर्क। इन तीन बातों को छोड़ दियहोगा।

"किन तीन बातों को ही बढ़ाया होगा?

"काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्क। इन तीन बातों को ही बढ़ाया होगा।

"भिक्षुओ, जिस दिशा में भिक्षु आपस में झगड़ते हैं, कलह करते हैं, विवाद करते हैं, परस्पर एक दूसरे को शब्दशूल से बींधते हुए विचरते हैं, भिक्षुओ, उस दिशा में जाने की तो बात ही क्या, उस दिशा की ओर ध्यान देने से भी मुझे सुख नहीं होता। उनके बारे में मेरे मन में यह निश्चय हो जाता है कि उन आयुष्मानों ने इन तीन बातों को छोड़ दिया होगा और इन तीन बातों को ही बढ़ाया होगा।

"भिक्षुओ, जिस दिशा में भिक्षु समग्र-भाव से, प्रमुदित मन से, परस्पर विवाद न करते हुए, दूध-पानी बने हुए, एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से सम्यक प्रकार से देखते हुए विचरते हैं, भिक्षुओ, उस दिशा की ओर ध्यान देने की तो बात ही क्या, उस दिशा की ओर जाने में मुझे सुख मिलता है। उनके बारे में मेरे मन में निश्चय हो जाता है कि उन आयुष्मानों ने तीन बातों को छोड़ दिया होगा और तीन बातों को ही बढ़ाया होगा।

"किन तीन बातों को छोड़ दियाहोगा?

"काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्क। इन तीन बातों को छोड़ दिया होगा।

"किन तीन बातों को बढ़ाया होगा? नैष्क्रम्य-वितर्क ...बढ़ाया होगा। भिक्षुओ, जिस दिशा में भिक्षु समग्र-भाव से... सुख मिलता है। उनके बारे में... बढ़ाया होगा।"

३. गोतमक-चेतिय सुत्त

१२६. एक समय भगवान वैशाली के गोतमक चैत्य में विहार करते थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया –

"भिक्षुओ!"

"भदंत!" कहकर भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, मैं पूरी तरह जानकर धर्म का उपदेश करता हूं, बिना पूरी तरह जाने नहीं; भिक्षुओ, मैं निदान (=हेतु)-सहित धर्मों का उपदेश देता हूं, बिना निदान के नहीं; भिक्षुओ, मैं प्रातिहार्य के साथ धर्मों का उपदेश करता हूं, बिना प्रातिहार्य के नहीं। जब मैं पूरी तरह जानकर धर्म का उपदेश करता हूं, बिना पूरी तरह जाने नहीं; जब मैं निदान-सहित धर्म का उपदेश करता हूं, बिना निदान के नहीं; जब मैं प्रातिहार्य के साथ धर्म का उपदेश करता हूं, बिना प्रातिहार्य के नहीं तब मेरे उपदेश के अनुसार आचरण होना ही चाहिए, मेरा अनुशासन माना ही जाना चाहिए। भिक्षुओ, तुम्हारी संतुष्टि के लिए, तुम्हारे संतोष के लिए, तुम्हारी प्रसन्नता के लिए यह पर्याप्त है कि –'भगवान सम्यक संबुद्ध हैं, धर्म सु-आख्यात (भली प्रकार कहा गया) है, संघ सुमार्ग-गामी है।'" भगवान ने यह कहा।

संतुष्ट हुए उन भिक्षुओं ने भगवान के भाषण का अभिनंदन किया। इस 'व्याख्या' के कहे जाते समय सहस्री लोकधातु कांप उठी।

४. भरण्डुकालाम सुत्त

१२७. एक समय भगवान कोशल जनपद में चारिका करते हुए कपिलवस्तु पहुँचे। महानाम शाक्य ने सुना कि भगवान कपिलवस्तु में पहुँच गये हैं। तब महानाम शाक्य भगवान के पास गया। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े महानाम शाक्य को भगवान ने यह कहा –

"महानाम! कपिलवस्तु जा। ऐसा निवासस्थान खोज जहां हम आज एक रात रहें।"

"भंते! अच्छा।" कहकर महानाम शाक्य ने भगवान को प्रतिवचन दिया और कपिलवस्तु में प्रवेश कर उसने सारी कपिलवस्तु में निवासस्थान खोजा। उसे कपिलवस्तु में कोई ऐसा निवासस्थान नहीं दिखाई दिया जहां भगवान एक रात रह सकें। तब महानाम शाक्य भगवान के पास गया। पास जाकर उसने भगवान से कहा –

"भंते! कपिलवस्तु में वैसा निवासस्थान नहीं है जहां भगवान आज एक रात रहें। भंते! यह भरण्डु कालाम है भगवान का पुराना सह-पाठी। आज रात भगवान उसके आश्रम में रहें।"

"महानाम! जा। शयनासन बिछा।"

"भंते! अच्छा" कह, महानाम शाक्य भगवान की बात सुन भरण्डु कालाम के आश्रम गया। जाकर शयनासन तैयार कर, पैर धोने के लिए पानी रखकर, भगवान के पास गया। जाकर भगवान से बोला –

"भंते! शयनासन बिछा है। पैर धोने के लिए पानी रखा है। अब भंते! भगवान जो इस समय करना हो करें।"

तब भगवान भरण्डु कालाम के आश्रम गये। पहुँचकर बिछे आसन पर बैठे। बैठकर पांव धोये। उस समय महानाम शाक्य के मन में यह विचार आया –

"आज भगवान का सत्संग करने का समय नहीं है। भगवान थके हैं। कल मैं भगवान की सेवा में आऊंगा।" वह भगवान को प्रणाम कर, प्रदक्षिणा करके चला गया।

अब महानाम शाक्य उस रात्रि के बीतने पर भगवान के पास गया। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे महानाम शाक्य को भगवान ने यह कहा –

"महानाम! इस संसार में तीन प्रकार के शास्ता हैं। कौन-से तीन प्रकार के ?"

"महानाम! एक शास्ता कामनाओं का पूर्ण ज्ञान से (यथार्थतः) प्रज्ञापन करते हैं, रूप का नहीं, वेदनाओं का नहीं; महानाम! एक दूसरे शास्ता कामनाओं का पूर्ण ज्ञान से प्रज्ञापन करते हैं, रूप का पूर्ण ज्ञान से प्रज्ञापन करते हैं, वेदनाओं का नहीं; महानाम! एक तीसरे शास्ता कामनाओं का पूर्ण ज्ञान से प्रज्ञापन करते हैं, रूप का पूर्ण ज्ञान से प्रज्ञापन करते हैं और वेदनाओं का पूर्ण ज्ञान से प्रज्ञापन करते हैं। महानाम! संसार में ये तीन प्रकार के शास्ता हैं। महानाम! इन तीन प्रकार के शास्ताओं का एक ही निष्कर्ष है वा भिन्न-भिन्न निष्कर्ष है ?"

ऐसा कहे जाने पर भरण्डु कालाम ने महानाम शाक्य को यह कहा –

"महानाम! कह कि एक ही निष्कर्ष है।"

ऐसा कहने पर भगवान ने महानाम शाक्य को कहा –

"महानाम! कह अनेक।"

दूसरी बार भी भरण्डु कालाम ने महानाम शाक्य को यह कहा – "महानाम! कह एक।" दूसरी बार भी भगवान ने महानाम शाक्य को कहा – "महानाम! कह अनेक।" तीसरी बार भी भरण्डु कालाम ने महानाम शाक्य को कहा –"महानाम! कह एक।" तीसरी बार भी भगवान ने महानाम शाक्य को कहा – "महानाम! कह अनेक।"

तब भरण्डु कालाम के मन में यह हुआ –

"प्रतापी महानाम शाक्य के सामने श्रमण गौतम ने मेरा तीन बार खंडन कर दिया। मेरे लिए अच्छा है कि मैं कपिलवस्तु से निकल भागूं।"

तब भरण्डु कालाम कपिलवस्तु से चला गया। कपिलवस्तु से जो गया, सो गया। फिर लौटकर नहीं आया।

५. हत्थक सुत्त

१२८. एक समय भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम में विहार करते थे। उस समय अभिरूप हत्थक-देवपुत्र रात के बीतते सारे के सारे जेतवन को प्रकाशित कर भगवान के पास गया। पास जाकर 'भगवान के सामने खड़ा होऊंगा' सोच लड़खड़ाता था, इधर-उधर झुकता था किंतु खड़ा नहीं रह सकता था। जैसे घी या तेल को यदि बालू पर डाला जाए तो वह नीचे चला जाता है, ऊपर नहीं रहता, उसी प्रकार हत्थक देवपुत्र 'भगवान के सामने खड़ा होऊंगा' सोच लड़खड़ाता था, इधर-उधर झुकता था किंतु खड़ा नहीं रह सकता था।

तब भगवान ने हत्थक-देवपुत्र को यह कहा –"हत्थक! तू स्थूल रूप बना"। "भंते! अच्छा" कह हत्थक-देवपुत्र भगवान की बात सुन स्थूल रूप बनाकर भगवान को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े हुए हत्थक-देवपुत्र को भगवान ने यह कहा –

"हत्थक! मनुष्य रहते समय जो-जो बातें होती थीं, वे इस समय भी प्रवर्तित होती हैं?

"भंते भगवान! जो बातें पहले मनुष्य रहते समय होती थीं, वे बातें अब भी प्रवर्तित होती हैं और जो बातें पहले मनुष्य रहते नहीं होती थीं, वे भी अब प्रवर्तित होती हैं। जैसे भंते भगवान इस समय भिक्षुओं से, भिक्षुणियों से, उपासकों से, उपासिकाओं से, राजाओं से, राजमहामात्यों से, तैर्थिकों से, तैर्थिक-श्रावकों से परिवृत होकर विहार करते हैं; उसी प्रकार भंते, मैं भी

देवपुत्रों से परिवृत हो विचरण करता हूं। भंते! 'हत्थक-देवपुत्र से धर्म सुनेंगे' सोच दूर-दूर से देवपुत्र आते हैं।

"भंते! मैं तीन बातों से अतृप्त रहकर, असंतुष्ट रहकर ही मर गया। किन तीन से? भंते! मैं भगवान के दर्शन से अतृप्त रहकर ही मर गया। सद्धर्म श्रवण में भी मैं अतृप्त रहकर ही मर गया। भंते! मैं संघ की सेवा करने के विषय में भी अतृप्त रहकर ही मर गया।

"भंते! मैं इन तीन बातों के विषय में अतृप्त रहकर, असंतुष्ट रहकर ही मर गया।"

"नाहं भगवतो दस्सनस्स, तित्तिमज्झगा कुदाचनं।
सङ्घस्स उपट्ठानस्स, सद्धम्मसवनस्स च॥

"अधिसीलं सिक्खमानो, सद्धम्मसवने रतो।
तिण्णं धम्मानं अतित्तो, हत्थको अविहं गतो"ति॥

["मैं कभी भगवान के दर्शन से तृप्त नहीं हुआ, संघ की सेवा करने तथा सद्धर्म सुनने से तृप्त नहीं हुआ। श्रेष्ठतर-शील को सीखता हुआ, सद्धर्म सुनने में रत रहकर मैं हत्थक, तीनों विषयों में अतृप्त रहकर अविह (लोक को) गया।"]

६. उच्छिष्ट सुत्त

१२९. एक समय भगवान वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाय में विहार करते थे। तब भगवान पूर्वाह्न समय (चीवर) पहन कर तथा पात्र-चीवर लेकर वाराणसी में भिक्षाटन के लिए निकले। गो-योग-पिलक्ष (बरगद के पेड़ के नीचे जहां गायों की हाट लगती थी) स्थान पर भिक्षाटन करते समय भगवान ने एक भिक्षु को देखा जो (ध्यान-) सुख से रिक्त था, जो (ध्यान-) सुख से बाहर था, जो मूढ़-स्मृति था, जो असंप्रज्ञानी था, जो असमाहित था, जो विभ्रांत-चित्त था तथा जो असंयत-इंद्रिय था। उस भिक्षु को देखकर भगवान ने यह कहा –

"भिक्षु! तू अपने आपको जूठा सड़ा हुआ न बना। भिक्षु! यह असंभव है कि तू अपने आपको जूठा सड़ा हुआ बनाये, उसमें से दुर्गंध निकले और उस पर मक्खियां न बैठें, न मंडरायें।

भगवान का यह उपदेश सुना तो उस भिक्षु के मन में संवेग जागा। तब भगवान ने वाराणसी में भिक्षाटन कर, भोजन के अनंतर, भिक्षाटन से लौट चुकने पर, भिक्षुओं को आमंत्रित किया –

"भिक्षुओ! मैंने पूर्वाह्न समय (चीवर) पहन, पात्र-चीवर ले वाराणसी में भिक्षाटन के लिए प्रवेश किया। भिक्षुओ! मैंने गो-योग-पिलक्ष में भिक्षाटन के लिए घूमते समय एक भिक्षु को देखा जो (ध्यान-) सुख से रिक्त था, जो (ध्यान-) सुख से बाहर था, जो मूढ़-स्मृति था, जो असंप्रज्ञानी था, जो असमाहित था, जो विभ्रांत-चित्त था, जो असंयत-इंद्रिय था। उस भिक्षु को देखकर मैंने कहा –

"'भिक्षु! तू अपने आपको जूठा सड़ा हुआ न बना। भिक्षु! यह असंभव है कि तू अपने आपको जूठा सड़ा हुआ बनाये, उसमें से दुर्गंध निकले और उस पर मक्खियां न बैठें, न मंडरायें।'

"भिक्षुओ, मेरे इस उपदेश से उस भिक्षु के मन में संवेग पैदा हो गया।

ऐसा कहने पर एक भिक्षु ने भगवान से कहा –

"भंते! जूठन किसे कहते हैं? सड़ायँध किसे कहते हैं? मक्खियां किसे कहते हैं?

"भिक्षुओ! लोभ जूठन है, क्रोध सड़ायँध है, पापी अकुशल-वितर्क मक्खियां हैं। यह असंभव है कि भिक्षु अपने आपको जूठा जनाये, उसमें से दुर्गंध न निकले और उस पर मक्खियां न बैठें, न मंडरायें।"

"अगुत्तं चक्खुसोतस्मिं, इन्द्रियेसु असंवुतं।
मक्खिकानुपतिस्सन्ति, सङ्कप्पा रागनिस्सिता॥

"कटुवियकतो भिक्खु, आमगन्धे अवस्सुतो।
आरका होति निब्बाना, विघातस्सेव भागवा॥

"गामे वा यदि वारञ्ञे, अलद्धा समथमत्तनो।
परेति बालो दुम्मेधो, मक्खिकाहि पुरक्खतो॥

"ये च सीलेन सम्पन्ना, पञ्ञायूपसमेरता।
उपसन्ता सुखं सेन्ति, नासयित्वान मक्खिका"ति॥

["जब चक्षु तथा श्रोत्र इंद्रियां अरक्षित रहती हैं, जब इंद्रियां असंयत रहती हैं तब सराग संकल्प रूपी मक्खियां मंडराती हैं। जब भिक्षु 'जूठा' हो जाता है, जब सड़ांध पैदा होती है तब वह निर्वाण से दूर हो जाता है और विनाश का ही हिस्सेदार होता है। जो मूर्ख होता है, जो बुद्धिहीन होता है, वह सम्यकत्व को बिना प्राप्त किये, मक्खियों से घिरा हुआ, गांव या अरण्य में विचरता रहता है। जो शीलसंपन्न हैं, जो प्रज्ञावान हैं वे मक्खियों का नाश कर शांत हो सुखपूर्वक रहते हैं।"]

७. अनुरुद्ध सुत्त (प्रथम)

१३०. एक समय आयुष्मान अनुरुद्ध भगवान के पास गये। पास जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान अनुरुद्ध ने भगवान से यह कहा –

"भंते! मैं अलौकिक,विशुद्ध, दिव्य चक्षु से देखता हूं कि स्त्रियां शरीर छूटने पर, मरने के बाद अधिकांश में दुर्गति को प्राप्त होती हैं, नरक में उत्पन्न होती हैं। भंते! किन-किन धर्मों से युक्त होने पर स्त्रियां शरीर छूटने पर मरने के बाद दुर्गति को प्राप्त होती हैं, नरक में जन्म ग्रहण करती हैं?

"अनुरुद्ध! तीन धर्मों से युक्त होने पर स्त्री शरीर छूटने पर, मरने के बाद दुर्गति को प्राप्त होती है, नरक में उत्पन्न होती है। कौन-से तीन?

"यहां, अनुरुद्ध! स्त्री पूर्वाह्न में मात्सर्य रूपी मल-युक्त चित्त से घर में निवास करती है, मध्याह्न में ईर्ष्या रूपी मल-युक्त चित्त से घर में निवास करती है, शाम के समय काम-राग रूपी मल-युक्त चित्त से घर में निवास करती है। अनुरुद्ध! इन तीन बातों से युक्त होने पर स्त्री शरीर छूटने पर मरने के बाद दुर्गति को प्राप्त होती है, नरक में उत्पन्न होती है।"

८. अनुरुद्ध सुत्त (द्वितीय)

१३१. एक बार आयुष्मान अनुरुद्ध आयुष्मान सारिपुत्त के पास पहुँचे। पास जाकर आयुष्मान सारिपुत्त के साथ कुशलक्षेम की बातचीत की। कुशलक्षेम की बातचीत समाप्त कर आयुष्मान अनुरुद्ध एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान अनुरुद्ध ने आयुष्मान सारिपुत्त को कहा –

"सारिपुत्त! मैं अलौकिक,विशुद्ध, दिव्य चक्षु से सहस्रों लोकों को देखता हूं। मेरा आलस्य-रहित प्रयत्न आरंभ है। उपस्थित-स्मृति मूढ़ता विहीन है। शांत-शरीर उत्तेजना-रहित है। समाहित-चित्त एकाग्र है। लेकिन तब भी मेरा चित्त उपादान रहित होकर आस्रवों से विमुक्त नहीं होता।"

"आयुष्मान अनुरुद्ध! आपके मन में जो यह होता है कि मैं अलौकिक, विशुद्ध, दिव्य चक्षु से सहस्रों लोकों को देखता हूं – यह आपका मान है। आयुष्मान अनुरुद्ध! आपके मन में जो यह होता है कि मेरा आलस्य-रहित प्रयत्न आरंभ है, उपस्थित-स्मृति मूढ़ता-विहीन है, शांत-शरीर उत्तेजना-रहित है, समाहित-चित्त एकाग्र है – यह आपका उद्धतपन है। आयुष्मान अनुरुद्ध! आप के मन में जो यह होता है कि मेरा चित्त उपादान रहित होकर आस्रवों से विमुक्त नहीं होता – यह आपका कौकृत्य है। आयुष्मान अनुरुद्ध! अच्छा होगा

यदि आप इन तीनों बातों को छोड़कर, इन तीनों धर्मों को मन से निकालकर चित्त को अमृत-धातु (=निर्वाण) की ओर केंद्रित करें।"

तब आगे चलकर आयुष्मान अनुरुद्ध ने इन तीनों बातों को छोड़कर, इन तीनों धर्मों को मन से निकालकर, चित्त को अमृत-धातु की ओर केंद्रित किया। तब (उन धर्मों से) हट जाने से, अप्रमादी होकर प्रयत्न करने से, यत्नवान होकर विहार करने से आयुष्मान अनुरुद्ध ने अचिरकाल में ही, जिसके लिए कुलपुत्र घर का त्याग कर बेघर हो जाते हैं, उस ब्रह्मचर्य-मय सर्वश्रेष्ठ (पद) को इसी जीवन में, स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विहार किया। उन्होंने जान लिया कि जन्म (का कारण) क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया, करणीय समाप्त हो गया और यहां के लिए (अर्थात फिर जन्म लेने के लिए) कुछ शेष नहीं रहा। आयुष्मान अनुरुद्ध अर्हतों में से एक हुए।

९. प्रतिच्छन्न सुत्त

१३२. "भिक्षुओ, ये तीन छिपे-छिपे रहते हैं, खुले नहीं। कौन तीन?

"भिक्षुओ, स्त्रियां गुप्त रूप से काम करती हैं, खुलकर नहीं; भिक्षुओ, ब्राह्मण गुप्त रूप से मंत्र पाठ करते हैं, खुलकर नहीं; भिक्षुओ, मिथ्या-मत वाले अपने मत को गुप्त रखते हैं, खुले नहीं।

"भिक्षुओ, ये तीन खुले चमकते हैं, ढँके नहीं। कौन तीन?

"भिक्षुओ, चंद्रमंडल खुला चमकता है, आच्छादित नहीं; भिक्षुओ, सूर्य-मंडल खुला चमकता है, आच्छादित नहीं; इसी प्रकार तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म खुला चमकता है, आच्छादित नहीं।

"भिक्षुओ, ये तीन खुले चमकते हैं, ढँके नहीं।"

१०. रेख सुत्त

१३३. "भिक्षुओ, संसार में तीन तरह के व्यक्ति हैं। कौन-से तीन?

"पत्थर पर खिंची रेखा के समान व्यक्ति, पृथ्वी पर खिंची रेखा के समान व्यक्ति, पानी पर खिंची रेखा के समान व्यक्ति।

"भिक्षुओ, पत्थर पर खिंची रेखा के समान व्यक्ति कैसा होता है? भिक्षुओ, एक व्यक्ति प्रायः क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध दीर्घकाल तक रहता है। जैसे भिक्षुओ, पत्थर पर खिंची रेखा शीघ्र नहीं मिटती, न हवा से, न पानी से, चिरस्थायी होती है, इसी प्रकार भिक्षुओ, यहां एक व्यक्ति प्रायः क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध दीर्घकाल तक रहता है। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति 'पत्थर पर खिंची रेखा समान व्यक्ति' कहलाता है।

"और भिक्षुओ, पृथ्वी पर खिंची रेखा के समान व्यक्ति कैसा होता है? भिक्षुओ, एक व्यक्ति प्रायः क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध दीर्घकाल तक नहीं रहता। जैसे भिक्षुओ, पृथ्वी पर खिंची रेखा शीघ्र मिट जाती है, हवा से वा पानी से, चिरस्थायी नहीं होती। इसी प्रकार भिक्षुओ, यहां एक व्यक्ति प्रायः क्रोधित होता है। उसका क्रोध दीर्घकाल तक नहीं रहता। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति 'पृथ्वी पर खिंची रेखा समान व्यक्ति' कहलाता है।

"और भिक्षुओ, पानी पर खिंची रेखा के समान व्यक्ति कैसा होता है? भिक्षुओ, कोई-कोई व्यक्ति ऐसा होता है कि यदि कडुवा भी बोला जाय, कठोर भी बोला जाय, अप्रिय भी बोला जाय तो भी वह जुड़ा ही रहता है, मिला ही रहता है, प्रसन्न ही रहता है। जिस प्रकार भिक्षुओ, पानी पर खिंची रेखा शीघ्र विलीन हो जाती है, चिरस्थायी नहीं होती; इसी प्रकार भिक्षुओ, कोई-कोई व्यक्ति ऐसा होता है जिसे यदि कडुवा भी बोला जाय, कठोर भी बोला जाय, अप्रिय भी बोला जाय तो भी वह जुड़ा ही रहता है, मिला ही रहता है, प्रसन्न ही रहता है। भिक्षुओ, ऐसा व्यक्ति 'पानी पर खिंची रेखा समान व्यक्ति' कहलाता है।

"भिक्षुओ, संसार में ये तीन तरह के लोग हैं।"

* * * * *

(१४) ४. योद्धाजीव वर्ग

१. योद्धा सुत्त

१३४. "भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त योद्धा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही कहलाता है। किन तीन अंगों से?

"यहां, भिक्षुओ, जो ऐसा योद्धा होता है वह दूर तक बींधने वाला (तीर फेंकनेवाला) होता है, अक्षणवेधी (विद्युत गति से अचूक निशाना लगाने वाला होता है) तथा बड़े (तख्तों के) समूह को बींधने वाला होता है। भिक्षुओ, इन तीन बातों से युक्त योद्धा राजा के योग्य होता है, राजा का भोग्य होता है, राजा का अंग ही कहलाता है।

"इसी प्रकार भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदरणीय होता है... लोगों के लिए सर्वश्रेष्ठ पुण्य-क्षेत्र होता है। किन तीन अंगों से?

"भिक्षुओ, ऐसा भिक्षु दूर तक बींधने वाला होता है, अक्षणवेधी होता है तथा बड़े समूह को बींधने वाला।

"भिक्षुओ, भिक्षु दूर तक बींधने वाला कैसे होता है?

"यहां, भिक्षुओ, वह भिक्षु जितना भी रूप है – चाहे भूतकाल का हो, चाहे वर्तमान का, चाहे भविष्य का, चाहे अपने भीतर का हो, अथवा बाहर का, चाहे स्थूल हो अथवा सूक्ष्म, चाहे बुरा हो अथवा भला, चाहे दूर हो अथवा समीप, इस सारे रूप को यथार्थ रूप से प्रज्ञा से इसी प्रकार देखता है कि 'यह न मेरा है, न यह मैं हूं और न यह मेरी आत्मा है।'

"भिक्षुओ, वह भिक्षु जितनी भी वेदना है – चाहे भूतकाल की हो, चाहे वर्तमान की, चाहे भविष्य की, चाहे अपने भीतर की हो, अथवा बाहर की, चाहे स्थूल हो अथवा सूक्ष्म, चाहे बुरी हो अथवा भली, चाहे दूर हो अथवा समीप, इस सारी वेदना को यथार्थ रूप से प्रज्ञा से इसी प्रकार देखता है कि 'यह न मेरी है, न यह मैं हूं और न यह मेरी आत्मा है।'

"भिक्षुओ, वह भिक्षु जितनी भी संज्ञा है – चाहे भूतकाल की हो, चाहे वर्तमान की, चाहे भविष्य की, चाहे अपने भीतर की हो अथवा बाहर की, चाहे स्थूल हो अथवा सूक्ष्म, चाहे बुरी हो अथवा भली, चाहे दूर हो अथवा समीप, इस सारी संज्ञा को यथार्थ रूप से प्रज्ञा से इसी प्रकार देखता है कि 'यह न मेरी है, न यह मैं हूं और न यह मेरी आत्मा है।'

"भिक्षुओ, वह भिक्षु जितने भी संस्कार हैं – चाहे भूतकाल के हों, चाहे वर्तमान के, चाहे भविष्य के, चाहे अपने भीतर के हों अथवा बाहर के, चाहे स्थूल हों अथवा सूक्ष्म, चाहे बुरे हों अथवा भले, चाहे दूर हों अथवा समीप, इन सारे संस्कारों को यथार्थ रूप से प्रज्ञा से इसी प्रकार देखता है कि 'यह न मेरे हैं, न यह मैं हूं और न यह मेरी आत्मा हैं।'

"भिक्षुओ, वह भिक्षु जितना भी विज्ञान है – चाहे भूतकाल का हो, चाहे वर्तमान का, चाहे भविष्य का, चाहे अपने भीतर का हो अथवा बाहर का, चाहे स्थूल हो अथवा सूक्ष्म, चाहे बुरा हो अथवा भला, चाहे दूर हो अथवा समीप, इस सारे विज्ञान को यथार्थरूप से प्रज्ञा से इसी प्रकार देखता है कि 'यह न मेरा है, न यह मैं हूं और न यह मेरी आत्मा है।' इस प्रकार भिक्षुओ, भिक्षु दूर तक बींधने वाला होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु अक्षणवेधी कैसे होता है?

"भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थ रूप से जानता है... 'यह दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है', इसे यथार्थ रूप से जानता है। भिक्षुओ, इस प्रकार भिक्षु अक्षणवेधी होता है।

"और भिक्षुओ, भिक्षु किस प्रकार बड़े समूह का बींधने वाला होता है?

"भिक्षुओ, भिक्षु महान अविद्या-स्कंध को चीर डालता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त भिक्षु आदरणीय होता है... लोगों के लिए सर्वश्रेष्ठ पुण्य-क्षेत्र होता है।"

२. परिषद सुत्त

१३५. "भिक्षुओ, ये तीन तरह की परिषद होती हैं। कौन-सी तीन?

"प्रबुद्ध एवं विनीत परिषद (अट्ठकथा के अनुसार बिना प्रश्नोत्तर के विनीत अर्थात दुर्विनीत) प्रश्नोत्तर द्वारा विनीत परिषद एवं प्रमाण भर अर्थात जितना विनीत होना चाहिए उसकी मात्रा जानकर विनीत हुई परिषद।

"भिक्षुओ, ये तीन तरह की परिषदें हैं।"

३. मित्र सुत्त

१३६. "भिक्षुओ, तीन अंगों से युक्त मित्र की संगति करनी चाहिए। कौन-से तीन?

"भिक्षुओ, जो मित्र कठिनाई से दी जा सकने योग्य वस्तु देता है, कठिनाई से किया जा सकने वाला कार्य करता है, कठिनाई से सहन की जा सकने वाली बात सहन करता है। भिक्षुओ, इन तीन अंगों से युक्त मित्र की संगति करनी चाहिए।"

४. उत्पाद सुत्त

१३७. "भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हों, चाहे तथागत उत्पन्न न हों, यह धर्म-स्थिति, यह धर्म-नियम यूं ही रहता है – सभी संस्कार अनित्य हैं। इस नियम को तथागत पूर्णतया जान जाते हैं, इसका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। पूर्णतया जानकर, ज्ञान प्राप्त करके कहते हैं, उपदेश देते हैं, प्रज्ञापित करते हैं, स्थापित करते हैं, उघाड़ते हैं, व्याख्या करते हैं, प्रकट करते हैं कि 'सभी संस्कार अनित्य हैं'।

"भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हों, चाहे तथागत उत्पन्न न हों, यह धर्म-स्थिति, यह धर्म-नियम यूं ही रहता है –सभी संस्कार दुःख हैं। इस नियम को तथागत पूर्णतया जान जाते हैं, इसका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। पूर्णतया जानकर, ज्ञान प्राप्त करके कहते हैं, उपदेश देते हैं, प्रज्ञापित करते हैं, स्थापित करते हैं, स्थापित करते हैं, उघाड़ते हैं, व्याख्या करते हैं, प्रकट करते हैं कि 'सभी संस्कार दुःख हैं'।

"भिक्षुओ, चाहे तथागत उत्पन्न हों, चाहे तथागत उत्पन्न न हों, यह धर्म-स्थिति, यह धर्म-नियम यूं ही रहता है – सभी धर्म (=संस्कृत

धर्म+असंस्कृत धर्म) अनात्म हैं। इस नियम को तथागत पूर्णतया जान जाते हैं, इसका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। पूर्णतया जानकर, ज्ञान प्राप्त करके कहते हैं, उपदेश देते हैं, प्रज्ञापित करते हैं, स्थापित करते हैं, उघाड़ते हैं, व्याख्या करते हैं, प्रकट करते हैं कि 'सभी धर्म अनात्म हैं'।"

५. केसकम्बलसुत्त

१३८. "भिक्षुओ, जितने भी धागों से बने वस्त्र हैं उनमें बालों से बना कंबल निकृष्ट कहलाता है। भिक्षुओ! बालों से बना कंबल जाड़े में ठंडा, गरमी में गरम, दुर्वर्ण, दुर्गंधयुक्त, अप्रिय स्पर्श वाला होता है; इसी प्रकार भिक्षुओ, जितने भी श्रमण-मत हैं उनमें मक्खली-मत निकृष्टतम कहा जाता है। भिक्षुओ! मूर्ख मक्खली का यह वाद है, यह मत है – 'न कर्म है, न क्रिया है, न पराक्रम है।'

"भिक्षुओ, भूतकाल में जितने भी अर्हत सम्यक-संबुद्ध हुए हैं, वे सभी भगवान कर्मवादी थे, क्रियावादी थे, पराक्रम-वादी थे। भिक्षुओ, मूर्ख मक्खली उनका भी खंडन (प्रतिषेध) करता है –'न कर्म है, न क्रिया है, न पराक्रम है।'

"भिक्षुओ, भविष्य में भी जो अर्हत, सम्यक संबुद्ध होंगे, वे सभी भगवान कर्मवादी, क्रियावादी तथा पराक्रम-वादी होंगे। भिक्षुओ, मूर्ख मक्खली उनका भी खंडन करता है –'न कर्म है, न क्रिया है, न पराक्रम है।'

"भिक्षुओ, मैं भी इस समय अर्हत सम्यक संबुद्ध हूं। मैं भी कर्मवादी हूं, क्रियावादी हूं, पराक्रम-वादी हूं। भिक्षुओ, मूर्ख मक्खली मेरा भी खंडन करता है –'न कर्म है, न क्रिया है, न पराक्रम है।'

"भिक्षुओ, जैसे नदी के मुँह पर कोई मनुष्य जाल बांधे, बहुत सी मछलियों के अहित के लिए, दुःख के लिए, दुर्भाग्य के लिए तथा विनाश के लिए। इसी प्रकार भिक्षुओ, मूर्ख मक्खली लोक में पैदा हुआ है, मानो लोक में आदमियों को जाल में फँसाने के लिए, बहुत प्राणियों के अहित के लिए, दुःख के लिए, दुर्भाग्य के लिए तथा विनाश के लिए।"

६. संपदा सुत्त

१३९. "भिक्षुओ, संपत्तियां तीन हैं। कौन-सी तीन?

"श्रद्धा-संपत्ति, शील-संपत्ति, प्रज्ञा-संपत्ति। भिक्षुओ, ये तीन संपत्तियां हैं।"

७. वृद्धि सुत्त

१४०. "भिक्षुओ, ये तीन वृद्धियां हैं। कौन-सी तीन?

"श्रद्धा-वृद्धि, शील-वृद्धि तथा प्रज्ञा-वृद्धि। भिक्षुओ, ये तीन वृद्धियां हैं।"

८. अदमनीय सुत्त

१४१. "भिक्षुओ, तीन अश्व-कुमारों (=बछेरों) का उपदेश देता हूं और तीन मनुष्य-कुमारों का। यह सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो, कहता हूं।"

"भंते! अच्छा" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, तीन प्रकार के बछेरे कौन-से होते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक अश्व-कुमार गतियुक्त होता है, किंतु न तो वर्णयुक्त होता है और न आरोहण करने योग्य (उचित गुणों से संपन्न न होना)। भिक्षुओ, एक अश्व-कुमार गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है किंतु आरोहण योग्य नहीं होता। भिक्षुओ, एक अश्व-कुमार गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण योग्य भी। भिक्षुओ, ये तीन प्रकार के बछेरे होते हैं।

"और भिक्षुओ, तीन प्रकार के मनुष्य-कुमार कौन-से होते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक मनुष्य-कुमार गतियुक्त होता है, किंतु न वर्ण युक्त होता है और न आरोहण योग्य। भिक्षुओ, एक तरुण गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है पर आरोहण योग्य नहीं। भिक्षुओ, एक तरुण गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण योग्य भी।

"और भिक्षुओ, मनुष्य-कुमार कैसे गतियुक्त होता है, किंतु न वर्णयुक्त और न आरोहण योग्य?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दुःख है', इसे यथार्थ रूप से जानता है... 'यह दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है' इसे यथार्थ रूप से जानता है। यह उसमें 'गति' होना कहता हूं। अभिधर्म और अभिविनय के बारे में प्रश्न पूछे जाने पर कतरा जाता है, उत्तर नहीं देता। यह उसमें 'वर्ण' का न होना कहता हूं। वह चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य आदि चीजों को प्राप्त करने वाला नहीं होता। यह उसका 'आरोहण योग्य' न होना कहता हूं।

"और भिक्षुओ, मनुष्य-कुमार कैसे गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है किंतु 'आरोहण योग्य' नहीं होता?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थ रूप से जानता है... 'यह दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है' इसे यथार्थ रूप से जानता है। यह उसमें 'गति' होना कहता हूं। अभिधर्म और अभिविनय के बारे में प्रश्न पूछे जाने पर कतराता नहीं है, उत्तर देता है। यह उसमें 'वर्ण' का होना कहता हूं। वह चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य आदि चीजों को पाने वाला नहीं होता। यह उसका 'आरोहण योग्य' न होना कहता हूं।

"और भिक्षुओ, मनुष्य-कुमार कैसे 'गति' युक्त होता है, 'वर्णयुक्त' होता है और 'आरोहण योग्य' भी होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु 'यह दुःख है' इसे यथार्थ रूप से जानता है... 'यह दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है' इसे यथार्थ रूप से जानता है। यह उसमें 'गति' होना कहता हूं। अभिधर्म और अभिविनय के बारे में प्रश्न पूछे जाने पर कतराता नहीं, उत्तर देता है। यह उसमें 'वर्ण' का होना कहता हूं। चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य आदि चीजों का पाने वाला होता है। यह उसका 'आरोहण योग्य' होना कहता हूं। भिक्षुओ, इस प्रकार मनुष्य-कुमार गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण योग्य भी होता है। भिक्षुओ, ये तीन प्रकार के मनुष्य-कुमार हैं।"

९. परिष्कृत अश्व सुत्त

१४२. "भिक्षुओ, तीन प्रकार के श्रेष्ठ-अश्वों का उपदेश करता हूं और तीन प्रकार के श्रेष्ठ-पुरुषों का। वह सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो, कहता हूं।"

"अच्छा, भंते" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ! तीन प्रकार के श्रेष्ठ-अश्व कौन-से हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-अश्व गतियुक्त होता है पर न वर्णयुक्त और न आरोहण योग्य। भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-अश्व गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है, किंतु आरोहण-योग्य नहीं। भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-अश्व गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण-योग्य भी। भिक्षुओ! ये तीन प्रकार के श्रेष्ठ-अश्व होते हैं।"

"भिक्षुओ! तीन प्रकार के श्रेष्ठ-पुरुष कौन-से होते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-पुरुष गतियुक्त होता है पर न वर्णयुक्त और न आरोहण योग्य। भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-पुरुष गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता

है पर आरोहण-योग्य नहीं। भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-पुरुष गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण-योग्य भी।

"भिक्षुओ, किस प्रकार श्रेष्ठ-पुरुष गतियुक्त होता है, किंतु न वर्णयुक्त होता है और न आरोहण-योग्य?

"भिक्षुओ, भिक्षु पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय करके न जन्म लेने वाला होता है, वहीं परिनिर्वृत्त होने वाला – उस लोक से न लौटने वाला। यह उसमें 'गति' होना कहता हूं। अभिधर्म और अभिविनय के बारे में प्रश्न पूछे जाने पर कतराता है, उत्तर नहीं देता। यह उसमें 'वर्ण' का न होना कहता हूं। वह चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य आदि चीजों का पाने वाला नहीं होता। यह उसका 'आरोहण योग्य' न होना कहता हूं। भिक्षुओ, इस प्रकार श्रेष्ठ-पुरुष गतियुक्त होता है, किंतु न वर्णयुक्त होता है और न आरोहण योग्य।

"भिक्षुओ, श्रेष्ठ-पुरुष किस प्रकार गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है, किंतु आरोहण योग्य नहीं?

"भिक्षुओ, भिक्षु पांच ओरंभागीय संयोजनों का क्षय कर जन्म न लेने वाला होता है, वहीं परिनिर्वृत्त होने वाला, उस लोक से न लौटने वाला। यह उसमें 'गति' का होना कहता हूं। अभिधर्म और अभिविनय के बारे में प्रश्न पूछने पर कतराता नहीं है, उत्तर देता है। यह उसमें 'वर्ण' का होना कहता हूं। वह चीवर... चीजों को पाने वाला नहीं होता। यह उसका 'आरोहण योग्य' न होना कहता हूं। इस प्रकार भिक्षुओ, श्रेष्ठ-पुरुष गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है; किंतु आरोहण-योग्य नहीं।

"भिक्षुओ, श्रेष्ठ-पुरुष किस प्रकार गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण योग्य होता है?

"भिक्षुओ, भिक्षु पांच... न लौटने वाला। यह उसमें 'गति' का होना कहता हूं। अभिधर्म और अभिविनय के बारे में प्रश्न पूछने पर कतराता नहीं, उत्तर देता है। यह उसमें 'वर्ण' का होना कहता हूं। वह चीवर... चीजों का पाने वाला होता है। यह उसका 'आरोहण योग्य' होना कहता हूं। भिक्षुओ, ये तीन श्रेष्ठ-पुरुष हैं।"

१०. श्रेष्ठ-अश्व सुत्त

१४३. "भिक्षुओ, तीन श्रेष्ठ दान्त (=प्रशिक्षित) अश्वों का उपदेश करता हूं और तीन श्रेष्ठ-पुरुषों का। वह सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो, कहता हूं।

"भिक्षुओ, तीन श्रेष्ठ-अश्व कैसे होते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-अश्व गतियुक्त है, न वर्णयुक्त होता है... गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है, आरोहण योग्य होता है। भिक्षुओ, ये तीन श्रेष्ठ-अश्व हैं।

"भिक्षुओ, ये तीन श्रेष्ठ-अश्व हैं।

"और भिक्षुओ, तीन श्रेष्ठ-पुरुष कैसे होते हैं?

"यहां, भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-पुरुष... गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण योग्य होता है।

"भिक्षुओ, एक श्रेष्ठ-पुरुष कैसे गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण योग्य होता है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु आस्रवों का क्षय करके अनास्रव चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात कर, प्राप्त कर विचरता है। भिक्षुओ, यह उसमें 'गति' का होना कहता हूं। अभिधर्म और अभिविनय के बारे में पूछने पर कतराता नहीं है, उत्तर देता है, यह उसमें 'वर्ण' का होना कहता हूं। वह चीवर-पिंडपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य आदि चीजों का पाने वाला हो। यह उसका 'आरोहण योग्य' होना कहता हूं। इस प्रकार भिक्षुओ! श्रेष्ठ-पुरुष गतियुक्त होता है, वर्णयुक्त होता है और आरोहण योग्य होता है।

"भिक्षुओ, ये तीन श्रेष्ठ-पुरुष हैं।"

११. मोरनिवाप सुत्त (प्रथम)

१४४. एक बार भगवान राजगृह के मोरनिवाप नाम के परिव्राजकाराम में विहार करते थे। वहां भगवान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया – "भिक्षुओ!" "भदंत" कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान को प्रतिवचन दिया। भगवान ने यह कहा –

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त भिक्षु अत्यंत (पूर्ण) प्रवीण होता है, पूर्ण योग-क्षेमी होता है, पूर्ण ब्रह्मचारी होता है, पूर्ण-उद्देश्य (पूर्ण-लक्षी) होता है तथा देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है। किन तीन धर्मों से?

"अशैक्ष शील-स्कंध से युक्त होता है, अशैक्ष समाधि-स्कंध से युक्त होता है, अशैक्ष प्रज्ञा-स्कंध से युक्त होता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु

अत्यंत प्रवीण होता है, पूर्ण योग-क्षेमी होता है, पूर्ण ब्रह्मचारी होता है, पूर्ण-उद्देश्य होता है तथा देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है।"

१२. मोरनिवाप सुत्त (द्वितीय)

१४५. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त भिक्षु अत्यंत प्रवीण… देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है। किन तीन धर्मों से?

"ऋद्धि-प्रातिहार्य से युक्त, देशना-प्रातिहार्य से युक्त, अनुशासनी-प्रातिहार्य से युक्त। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त भिक्षु अत्यंत प्रवीण होता है, पूर्ण योग-क्षेमी होता है, पूर्ण ब्रह्मचारी होता है, पूर्ण-उद्देश्य होता है तथा देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है।

१३. मोरनिवाप सुत्त (तृतीय)

१४६. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त भिक्षु अत्यंत प्रवीण… देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है। किन तीन धर्मों से?

"सम्यक-दृष्टि से, सम्यक-ज्ञान से और सम्यक विमुक्ति से। भिक्षुओ, इन धर्मों से युक्त भिक्षु, अत्यंत प्रवीण… देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है।"

* * * * *

(१५) ५. मंगल वर्ग

१. अकुशल सुत्त

१४७. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर नरक में डाल दिया गया हो। किन तीन धर्मों से?

"अकुशल कायकर्म से, अकुशल वाणी के कर्म से, अकुशल मानसिक-कर्म से। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर नरक में डाल दिया गया हो।

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो। किन तीन धर्मों से?

"कुशल कायकर्म से, कुशल वाणी के कर्म से, कुशल मानसिक-कर्म से। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो।"

२. सावद्य सुत्त

१४८. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर नरक में डाल दिया गया हो। किन तीन धर्मों से?

"सदोष कायकर्मसे, सदोष वाणी के कर्मसे, सदोष मानसिक-कर्मसे। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर नरक में डाल दिया गया हो।

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो। किन तीन धर्मों से?

"निर्दोष कायकर्मसे, निर्दोष वाणी के कर्मसे, निर्दोष मानसिक-कर्मसे। भिक्षुओ, इन धर्मों से युक्त... डाल दिया गया हो।"

३. विषम सुत्त

१४९. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त... विषम कायकर्मसे, विषम वाणी के कर्मसे, विषम मानसिक-कर्मसे। भिक्षुओ, इन धर्मों से युक्त... नरक में लाकर डाल दिया गया हो।"

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त... अ-विषम कायकर्मसे, अ-विषम वाणी के कर्मसे, अ-विषम मानसिक-कर्मसे।

"भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त... स्वर्ग में डाल दिया गया हो।"

४. अशुचि सुत्त

१५०. "...अपवित्र कायकर्मसे, अपवित्र वाणी के कर्मसे, अपवित्र मानसिक-कर्मसे...।

"...पवित्र कायकर्मसे, पवित्र वाणी के कर्मसे, पवित्र मानसिक-कर्मसे। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो।"

५. मूलोच्छेद सुत्त (प्रथम)

१५१. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है। किन तीन धर्मों से?

"अकुशल कायकर्म से, अकुशल वाणी के कर्म से, अकुशल मानसिक-कर्मसे।

"भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त मूर्ख, अव्यक्त, असत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान, सत्त्वहीन हो विचरता है (अर्थात मिथ्या-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), अवगुणी होता है, सदोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा निंदनीय होता है और बहुत अपुण्य कमाता है।

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान नहीं हो सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है। किन तीन धर्मों से?

"कुशल कायकर्मसे, कुशल वाणी के कर्म से, कुशल मानसिक-कर्म से..."

६. मूलोच्छेद सुत्त (द्वितीय)

१५२. "...सदोष कायकर्म से, सदोष वाणी के कर्म से, सदोष मानसिक-कर्मसे...

"...निर्दोष कायकर्मसे, निर्दोष वाणी के कर्मसे, निर्दोष मानसिक-कर्म से..."

७. मूलोच्छेद सुत्त (तृतीय)

१५३. "...विषम कायकर्म से, विषम वाणी के कर्म से, विषम मानसिक-कर्मसे..."

"...अविषम कायकर्म से, अविषम वाणी के कर्म से, अविषम मानसिक-कर्मसे..."

८. मूलोच्छेद सुत्त (चतुर्थ)

१५४. "...अपवित्र कायकर्मसे, अपवित्र वाणी के कर्म से, अपवित्र मानसिक-कर्मसे...

"...पवित्र कायकर्मसे, पवित्र वाणी के कर्मसे, पवित्र मानसिक-कर्मसे।

"भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त पंडित, व्यक्त, सत्पुरुष मूल समेत उखाड़ दिये के समान नहीं हो सत्त्वयुक्त हो विचरता है (अर्थात सम्यक-दृष्टि-संपन्न हो जीवन बिताता है), गुणी होता है, निर्दोष होता है, विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय होता है और बहुत पुण्य कमाता है।"

९. वंदना सुत्त

१५५. "भिक्षुओ, ये तीन वंदनाएं हैं। कौन-सी तीन?

"काय-वंदना, वाणी की वंदना, मन की वंदना। भिक्षुओ! ये तीन वंदनाएं हैं।"

१०. पूर्वाह्न सुत्त

१५६. "भिक्षुओ, जो प्राणी पूर्वाह्न के समय शरीर से सदाचरण करते हैं, वाणी से सदाचरण करते हैं, मन से सदाचरण करते हैं, भिक्षुओ, उन प्राणियों का वह सुपूर्वाह्न है। भिक्षुओ, जो प्राणी मध्याह्न में शरीर से सदाचरण करते हैं...मन से सदाचरण करते हैं उन प्राणियों का वह सुमध्याह्न है। भिक्षुओ, जो प्राणी शाम के समय शरीर से सदाचरण करते हैं...मन से सदाचरण करते हैं, भिक्षुओ, उन प्राणियों का वह सुसायह्न है।"

"सुनक्खत्तं सुमङ्गलं, सुप्पभातं सुहुट्ठितं।
सुखणो सुमुहुत्तो च, सुयिट्ठं ब्रह्मचारिसु॥

"पदक्खिणं कायकम्मं, वाचाकम्मं पदक्खिणं।
पदक्खिणं मनोकम्मं, पणीधि ते पदक्खिणे।
पदक्खिणानि कत्वान, लभन्तत्थे पदक्खिणे॥

"ते अत्थलद्धा सुखिता, विरुळ्हा बुद्धसासने।
अरोगा सुखिता होथ, सह सब्बेहि ञातिभी"ति॥

["(वही) सुनक्षत्र है, सुमंगल है, सुप्रभात है, सु-उत्थान है, सु-क्षण है, सु-मुहूर्त है, ब्रह्मचारियों के साथ सु-यज्ञ है। (शुभ) कायकर्म ही प्रदक्षिणा है, वाणी का कर्म ही प्रदक्षिणा है, मानसिक-कर्म प्रदक्षिणा है, प्रणिधान प्रदक्षिणा है। प्रदक्षिणा करने से यहां प्रदक्षिणा (उन्नति) की प्राप्ति होती है। उन अर्थों को प्राप्त करके सभी संबंधियों के साथ बुद्ध-शासन में अर्थसंपन्न हों, निरोग हों, सुखी हों।"]

* * * * *

(१६) ६. अचेलक वर्ग

१५७-१६३. "भिक्षुओ, तीन मार्ग (पटिपदा) हैं। कौन-से तीन?

"शिथिल मार्ग; कठोर मार्ग, मध्यम मार्ग।

"भिक्षुओ, शिथिल मार्ग कौन-सा है?

"यहां, भिक्षुओ, किसी-किसीका ऐसा मत होता है, ऐसी दृष्टि होती है – कामभोगों में दोष नहीं है। वह कामभोगों में जा पड़ता है। भिक्षुओ, यह 'शिथिल मार्ग' कहलाता है।

"भिक्षुओ, अतियों का कठोरमार्ग कौन-सा है?

"यहां, भिक्षुओ, कोई-कोईनग्न होता है, शिष्टाचार-शून्य, हाथ चाटने वाला, 'भदंत आयें' कहनेपर न आने वाला, 'भदंत खड़े रहें' कहनेपर खड़ा न रहने वाला, लाया हुआ न खाने वाला, उद्देश्य से बनाया हुआ न खाने वाला और निमंत्रण भी न स्वीकारकरनेवाला होता है। वह न घड़े में से दिया हुआ लेता है, न ऊखल में से दिया हुआ लेता है, न किवाड़की ओट से दिया हुआ लेता है, न मेढ़े के बीच में आ जाने से दिया हुआ, न दंड के बीच में पड़ जाने से लेता है, न मूसल के बीच में आ जाने से लेता है। वह दो जने खाते हों, उनमें से एक के उठकरदेने पर नहीं लेता है, न गर्भिणी का दिया लेता है, न बच्चे को दूध पिलाती हुई का दिया लेता है, न पुरुष के पास गई हुई का दिया लेता है, न संग्रह कियेहुए अन्न में से पकायाहुआ लेता है, न जहां कुत्ता खड़ा हो वहां से लेता है, न जहां मक्खियां उड़ती हों वहां से लेता है। वह न मछली खाता है, न मांस खाता है। न सुरा पीता है, न मेरय पीता है, न चावल का पानी पीता है। वह या तो एक ही घर से लेकरखाने वाला होता है या एक ही कौरखाने वाला; दो घरों से लेकरखाने वाला होता है या दो ही कौरखाने वाला... सात घरों से लेकरखाने वाला होता है या सात कौरखाने वाला। वह एक ही छोटी प्लेट से भी गुजारा करनेवाला होता है... सात छोटी प्लेटों से भी गुजारा करनेवाला होता है। वह दिन में एक बार भी खाने वाला होता है, दो दिन में एक बार भी खाने वाला होता है... सात दिन में एक बार भी खाने वाला होता है; इस प्रकारवह पंद्रह दिन में एक बार खाकरभी रहता है। वह शाक खाने वाला भी होता है, स्यामाक खाने वाला भी होता है, नीवार (धान) खाने वाला भी होता है, दद्दुल (धान) खाने वाला भी होता है, हट (शाक)खाने वाला भी होता है, कणाज-भातखाने वाला भी होता है, आचाम खाने वाला भी होता है, खली खाने वाला भी होता है, तिनके (घास) खाने वाला भी होता है, गोबर खाने वाला भी होता है, जंगल के पेड़ों से गिरे फल-मूलको खाने वाला भी होता है। वह सन के कपड़े भी धारण करता है, सन-मिश्रित कपड़े भी धारण करताहै, शव-वस्त्र (कफन)भी पहनता है, फेंकेहुए वस्त्र भी पहनता है, वृक्ष-विशेष की छाल के कपड़े भी पहनता है, अजिन (-मृग) की खाल भी पहनता है, अजिन (-मृग) की चमड़ी से बनी पट्टियों से बुना वस्त्र भी पहनता है, कुशका बना वस्त्र भी पहनता है, छाल (वाक)का वस्त्र भी पहनता है,

फलक (छाल) का वस्त्र भी पहनता है, केशों से बना कंबल भी पहनता है, पूंछ के बालों का बना कंबल भी पहनता है, उल्लू के परों का बना वस्त्र भी पहनता है। वह केश-दाढ़ी का लुंचन करने वाला भी होता है। वह बैठने का त्याग कर निरंतर खड़ा ही रहने वाला भी होता है। वह उकड़ूं बैठ कर प्रयत्न करने वाला भी होता है, वह कांटों की शय्या पर सोने वाला भी होता है। प्रातः, मध्याह्न, सायं – दिन में तीन बार पानी में जाने वाला होता है। इस तरह, वह नाना प्रकार से शरीर को कष्ट पीड़ा पहुँचाता हुआ विहार करता है। भिक्षुओ, यह 'कठोर मार्ग' कहलाता है।

"और भिक्षुओ, 'मध्यम मार्ग' कौन-सा है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है, श्रमशील, संप्रज्ञानी, स्मृतिमान तथा लोक में अभिध्या (लोभ)-दौर्मनस्य (द्वेष) को हटाकर; वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर... चित्त में चित्तानुपश्यी होकर... धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहार करता है. श्रमशील, संप्रज्ञानी, स्मृतिमान तथा लोक में अभिध्या (लोभ)-दौर्मनस्य को हटाकर। भिक्षुओ, यह 'मध्यम मार्ग' कहलाता है। भिक्षुओ, ये तीन मार्ग हैं। ""भिक्षुओ, ये तीन मार्ग हैं। कौन-से तीन?

"शिथिल, कठोर मार्ग, मध्यम मार्ग।

"और भिक्षुओ, शिथिल मार्ग कौन-सा है? (पूर्वानुसार) भिक्षुओ, यह 'शिथिल मार्ग' कहलाता है।

"और भिक्षुओ, कठोर मार्ग कौन-सा है?

"...(पूर्वानुसार) भिक्षुओ, इसे 'कठोर मार्ग' कहते हैं।

"और भिक्षुओ, मध्यम मार्ग क्या है?

"यहां, भिक्षुओ, भिक्षु अनुत्पन्न पापी अकुशल-धर्मों को उत्पन्न न होने देने के लिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, परिश्रम करता है, मन को काबू में रखता है। उत्पन्न पापी अकुशल-धर्मों का प्रहाण करने के लिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, परिश्रम करता है, मन को काबू में रखता है। अनुत्पन्न कुशल धर्मों को उत्पन्न करने के लिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, परिश्रम करता है, मन को काबू में रखता है। उत्पन्न कुशल धर्मों को स्थित रखने के लिए, लोप न होने देने के लिए, अधिकाधिक बढ़ाने के लिए संकल्प करता है, प्रयत्न करता है, परिश्रम करता है, मन को काबू में रखता है। ...छंद-प्रयत्न-संस्कार युक्त ऋद्धि-पथ का अभ्यास करता है, वीर्य-समाधि, चित्त-समाधि, वीमंसा

(मीमांसा)-समाधि और प्रधान (=प्रयत्न) तथा संस्कार से युक्त ऋद्धि-पथ का अभ्यास करता है... श्रद्धा-इंद्रिय का अभ्यास करता है, वीर्य-इंद्रिय का अभ्यास करता है, स्मृति-इंद्रिय का अभ्यास करता है, समाधि-इंद्रिय का अभ्यास करता है, प्रज्ञा-इंद्रिय का अभ्यास करता है... श्रद्धा-बल का अभ्यास करता है, वीर्य-बल का अभ्यास करता है, स्मृति-बल का अभ्यास करता है, समाधि-बल का अभ्यास करता है, प्रज्ञा-बल का अभ्यास करता है, स्मृति-संबोधि अंग का अभ्यास करता है, धर्मविचय-संबोधि अंग का अभ्यास करता है, वीर्य-संबोधि अंग का अभ्यास करता है, प्रीति-संबोधि अंग का अभ्यास करता है, प्रश्रब्धि-संबोधि अंग का अभ्यास करता है, समाधि-संबोधि अंग का अभ्यास करता है, उपेक्षा-संबोधि अंग का अभ्यास करता है, सम्यक-दृष्टि का अभ्यास करता है, सम्यक-संकल्प का अभ्यास करता है, सम्यक-वाणी का अभ्यास करता है, सम्यक-कर्मांत का अभ्यास करता है, सम्यक-आजीविका का अभ्यास करता है, सम्यक-व्यायाम का अभ्यास करता है, सम्यक-स्मृति का अभ्यास करता है तथा सम्यक-समाधि का अभ्यास करता है। भिक्षुओ, यह 'मध्यम मार्ग' कहलाता है। भिक्षुओ, ये तीन मार्ग हैं।"

(१७) ७. कर्म पर्याय

१६४-१८३. "भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर नरक में डाल दिया गया हो। किन तीन धर्मों से? स्वयं प्राणी-हिंसा करता है, दूसरे को प्राणी-हिंसा के लिए प्रेरित करता है और प्राणी-हिंसा का समर्थन करता है। भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा ही होता है जैसे लाकर नरक में डाल दिया गया हो।

"भिक्षुओ, तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो। किन तीन धर्मों से?

"स्वयं प्राणी-हिंसा से विरत रहता है, दूसरे को प्राणी-हिंसा के लिए प्रेरित नहीं करता और प्राणी-हिंसा का समर्थन नहीं करता...

"...स्वयं चोरी करता है, दूसरे को चोरी के लिए प्रेरित करता है और चोरी का समर्थन करता है... स्वयं चोरी से विरत रहता है, दूसरे को चोरी के लिए प्रेरित नहीं करता और चोरी का समर्थन नहीं करता है...

"...स्वयं कामभोग संबंधी मिथ्याचार करने वाला होता है, दूसरे को कामभोग संबंधी मिथ्याचार के लिए प्रेरित करता है और कामभोग संबंधी

मिथ्याचार का समर्थन करता है... स्वयं कामभोग संबंधी मिथ्याचार से विरत होता है, दूसरे को कामभोग संबंधी मिथ्याचार के लिए प्रेरित नहीं करता और कामभोग संबंधी मिथ्याचार से विरत रहने का समर्थन करता है...

"...स्वयं झूठ बोलता है, दूसरे को झूठ बोलने के लिए प्रेरित करता है और झूठ बोलने का समर्थन करता है... स्वयं झूठ बोलने से विरत रहता है, दूसरे को झूठ बोलने के लिए प्रेरित नहीं करता और झूठ बोलने से विरत रहने का समर्थन करता है...

"...स्वयं चुगली खाता है, दूसरे को चुगली खाने के लिए प्रेरित करता है और चुगली खाने का समर्थन करता है... स्वयं चुगली खाने से विरत रहता है, दूसरे को चुगली खाने के लिए प्रेरित नहीं करता और चुगली खाने से विरत रहने का समर्थन करता है...

"...स्वयं कठोर बोलता है, दूसरे को कठोर बोलने के लिए प्रेरित करता है और कठोर बोलने का समर्थन करता है... स्वयं कठोर बोलने से विरत रहता है, दूसरे को कठोर बोलने के लिए प्रेरित नहीं करता है और कठोर बोलने से विरत रहने का समर्थन करता है...

"...स्वयं व्यर्थ बोलने वाला होता है, दूसरे को व्यर्थ बोलने के लिए प्रेरित करता है और व्यर्थ बोलने का समर्थन करता है... स्वयं व्यर्थ बोलने से विरत रहता है, दूसरे को व्यर्थ बोलने के लिए प्रेरित नहीं करता है और व्यर्थ बोलने से विरत रहने का समर्थन करता है...

"...स्वयं लोभी होता है, दूसरे को लोभ के लिए प्रेरित करता है और लोभ का समर्थन करता है... स्वयं लोभ से विरत रहता है, दूसरे को लोभ के लिए प्रेरित नहीं करता है और लोभ से विरत रहने का समर्थन करता है...

"...स्वयं क्रोधी होता है, दूसरे को क्रोध के लिए प्रेरित करता है और क्रोध का समर्थन करता है।... स्वयं क्रोध से विरत रहता है, दूसरे को क्रोध के लिए प्रेरित नहीं करता है और क्रोध से विरत रहने का समर्थन करता है।

"...स्वयं मिथ्या-दृष्टि वाला होता है, दूसरे को मिथ्या-दृष्टि की ओर प्रेरित करता है और मिथ्या-दृष्टि का समर्थन करता है... स्वयं सम्यक-दृष्टि वाला होता है, दूसरे को सम्यक-दृष्टि की ओर प्रेरित करता है और सम्यक-दृष्टि का समर्थन करता है।

"भिक्षुओ, इन तीन धर्मों से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर स्वर्ग में डाल दिया गया हो।"

(१८) ८. राग पर्याय

१८४. "भिक्षुओ, राग के अभिज्ञान के लिए इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिए।

"किन तीन की?

"शून्यता-समाधि की, अनिमित्त-समाधि की तथा अप्रणिहित-समाधि की। भिक्षुओ, राग के अभिज्ञान के लिए इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिए।

"भिक्षुओ, राग के परिज्ञान के लिए, परिक्षय के लिए, प्रहाण के लिए, क्षय के लिए, व्यय के लिए, वैराग्य के लिए, निरोध के लिए, त्याग के लिए तथा प्रतिनिसर्ग के लिए इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिए।

"द्वेष के ...मोह के ...क्रोधके ...,उपनाह के ...,म्रक्ष के ...,प्रदास के ..., ईर्ष्या के ..., मात्सर्य के ..., माया के ..., शठता के ..., जड़ता के ..., सारंभ के ...,मान के ...,अतिमान के ...,मद के ...तथा प्रमाद के अभिज्ञान के लिए, परिज्ञान के लिए, परिक्षय के लिए, प्रहाण के लिए, क्षय के लिए, व्यय के लिए, वैराग्य के लिए, निरोध के लिए, त्याग के लिए तथा प्रतिनिसर्ग के लिए इन तीन धर्मों की भावना करनी चाहिए।"

भगवान ने यह कहा। उन भिक्षुओं ने संतुष्ट होकर भगवान के भाषण का अभिनंदन किया।

एकक, द्विक तथा त्रिक निपात समाप्त।